श्रीगणेशायनमः



गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशम्पुष्पम्

# स्कन्द महापुराणम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

**ब्रह्मखण्डात्मकः**

## तृतीयो भागः

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्
( मत्स्य पुराणम् )

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०१८ ईशवीय सन् १९६१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशम्पुष्पम्

# स्कन्दपुराणम्

——:o:——

श्रीमन्महर्षि-कृष्ण [illegible] विरचितम्

तस्य

ब्रह्मखण्डम्

## तृतीयो भागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

| वैक्रमाब्दः | प्रथमसंस्करणम् | खृस्ताब्दः |
| --- | --- | --- |
| २०१८ | ५००० | १९६१ |

卐

Gurumandal Series No. XX

# Skanda Puranam

*Volume III*

## Brahma khand

BY

**Shrimanmaharshi Krishna Dwaipayan Vedavyas.**

## Part III

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram Era 2018 | First Edition 5000 | Christian era 1961

मुद्रकः—
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी-
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद-
सूनुः श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये
गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
नामके
स्थानम् :—८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

# स्कन्दपुराणब्रह्मखण्डके विषय में

स्कन्दपुराण का ब्रह्मखण्ड गुरुमण्डलग्रन्थमाला के २० वें पुष्प के तृतीयखण्ड के रूप में विद्वद्वर्ग की सेवा में समर्पित किया जा रहा है यह अत्यन्त ही आनन्द का विषय है।

नारद पुराण की पूर्वभागीय बृहदुपाख्यान के चतुर्थ पाद की १०४ की अध्याय में जो विषयानुक्रमणिका वर्णित है उसके अनुसार सम्पूर्ण पाठ प्रस्तुत किया जाता है :—

तृतीय ब्रह्मखण्ड में—

हे मरीचे! इसके (वैष्णवखण्ड के) बाद पुण्यदायक ब्रह्मखण्ड की विषयानुक्रमणिका सुनिये। इसमें सेतु माहात्म्य वर्णन में स्नान और दर्शन का फल वर्णित है। आगे गालव ऋषि की तपश्चर्या एवं राक्षसाख्यान है वेतालतीर्थ की महिमा पापनाशादि का वर्णन, मङ्गल आदि का माहात्म्य, ब्रह्मकुण्डादि का वर्णन, हनुमत् कुण्ड की महिमा, अगस्त्यतीर्थ का फल, रामतीर्थ आदि का वर्णन, लक्ष्मीतीर्थ का निरूपण, शङ्खादि की महिमा, साध्यामृतादि से उत्पन्न महिमा, धनुष्कोटि आदि तीर्थों का माहात्म्य क्षीरकुण्डादि से उत्पन्न तीर्थ के साथ वर्णित है। गायत्री आदि तीर्थों का माहात्म्य यहां कीर्त्तित है। सेतु माहात्म्यमें रामनाथ की

---

तृतीयेब्रह्मखण्डे—

अतः परं ब्रह्मखण्डंमरीचेश्रृणु पुण्यदम्। यत्र वैसेतुमाहात्म्येफलंस्नानेक्षणोद्भवम् गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकंततः। चक्रतीर्थादि माहात्म्यंदेवीपत्तनसंयुतम् वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्त्तनम्। मङ्गलादिकमाहात्म्यंब्रह्मकुण्डादिवर्णनम् हनूमत्कुण्डमहिमागस्त्यतीर्थभवम्फलम्। रामतीर्थादिकथनंलक्ष्मीतीर्थनिरूपणम्

शङ्खादितीर्थमहिमा तथासाध्यामृतादिजः।
धनुष्कोट्यादिमाहात्म्यं क्षीरकुण्डादिजं तथा॥
गायत्र्यादिकतीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्त्तितम्।

की महिमा, तत्त्व ज्ञान का उपदेश, यात्रा विधान वर्णन सभी मनुष्यों को मुक्ति-प्रद ( मुक्तिदेने वाला ) है। उसके अनन्तर धर्मारण्य का माहात्म्य कहा है। भगवान् शङ्कर ने जहां स्कन्द ( कार्त्तिकेय ) को तत्त्व का उपदेश किया उस धर्मारण्य का पुण्य फलवर्णन है। कर्मसिद्धि का आख्यान, ऋषिवंश का वर्णन, अप्सरादि तीर्थ मुख्यों का माहात्म्य एवं पुण्य फल प्रतिपादन; वर्ण और आश्रमों का धर्म तत्त्व निरूपण, देवस्थान विभाग तथा बकुलार्क की पवित्र कथा का वर्णन है जहां पुण्यदात्री छत्रा, नन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतङ्गिनी देवियों का वर्णन है। इन्द्रेश्वरादि के माहात्म्य सहित द्वारकादि का निरूपण है।

लोहासुर का आख्यान, गङ्गाकूप का निरूपण, श्रीरामचरित्र, सत्य मन्दिर वर्णन, जीर्णोद्धार का कथन, शासन का प्रतिपादन, जातिभेदवर्णन, स्मृतिधर्म का निरूपण तदनन्तर विभिन्न आख्यानों के पुण्य प्रमाणों से वैष्णव धर्म फिर पुण्यदायक चातुर्मास्य में सब धर्मों का निरूपण। दान की प्रशंसा तब व्रत का महिमा, तपस्या और पूजा के सच्छिद्रों का निरूपण, प्रकृतियों का भेद व शालग्राम का वर्णन, तारक वध का उपाय, त्रिनेत्र ( त्र्यक्ष ) शङ्कर की पूजा का महत्त्व। विष्णु का शाप, वृक्षत्व की प्राप्ति फिर पार्वती द्वारा अनुनय-विनय, भगवान् शङ्कर का ताण्डवनृत्य, रामनाथ का निरूपण, हर का लिङ्गपतन, पंजवन का आख्यान, पार्वती जन्म चरित्र, तारक के वध का अद्भुत आख्यान, प्रणव ( ओंकार ) के ऐश्वर्य का वर्णन तब तारकाचरित यक्ष यज्ञ की समाप्ति, द्वादश अक्षर का वर्णन, ज्ञानयोग का प्रतिपादन, द्वादशाक्षरमन्त्र की महिमा, इसके सुनने के पुण्यमनुष्यों को सम्पूर्ण सुखों को देने वाला है।

---

रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् ॥
यात्राविधानकथनंसेतौमुक्तिप्रदं नृणाम् । धर्म्मारण्यस्यमाहात्म्यंततःपरमुदीरितम्
स्थाणुः स्कन्दाय भगवान् यत्र तत्त्वमुपादिशत् ।
धर्म्मारण्यसुसंभूतिस्तत्पुण्यपरिकीर्त्तनम् ॥
कर्म्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम् ।
अप्सरातीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्त्तनम् ॥
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्म्मतत्त्वनिरूपणम् । देवस्थानविभागश्च बकुलार्ककथा शुभा

## तृतीय ब्रह्मखण्ड के उत्तरभाग में—

ब्रह्मोत्तर भाग में शिव की अद्भुत महिमा, पञ्चाक्षर की महिमा, गोकर्ण की महिमा, शिवरात्रि का माहात्म्य, प्रदोष व्रत का सम्पूर्ण विधान, सोमवार व्रत, सीमन्तिनी का कथानक, भद्रायु की उत्पत्ति, सदाचार का वर्णन, शिवधर्म का उद्देश्य, भद्रायु के विवाह का वर्णन, भद्रायु की महिमा, भस्म का माहात्म्य शबराख्यान, उमामहेश्वर का व्रत, रुद्राक्ष का माहात्म्य एवं रुद्राध्याय का पुण्य वर्णन है। इस खण्ड के श्रवणादि की फलश्रुति यह ब्रह्मखण्ड का विषय है।

इस खण्ड के चातुर्मास्य माहात्म्य की उपलब्धि हमें श्री नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड से हुई है तदर्थ हम अनेकशः धन्यवाद श्री नवलकिशोर प्रेस के स्वामिमहोदय को प्रदान करते हैं। नारद-

---

छत्रा नन्दा तथा शान्ता श्रीमाता च मतङ्गिनी।
पुण्यदाख्यः समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः॥
इन्द्रेश्वरादि माहात्म्यंद्वारकादिनिरूपणम्। लोहासुरसमाख्यानंगङ्गाकूपनिरूपणम्
श्रीरामचरितञ्चैव सत्यमन्दिरवर्णनम्। जीर्णोद्धारस्यकथनं शासनप्रतिपादनम्॥
जातिभेदप्रकथनंस्मृतिधर्म्मनिरूपणम्। ततस्तुवैष्णवाधर्म्मानानाख्यानैरुदीरिताः
चातुर्म्मास्ये ततःपुण्येसर्वधर्मनिरूपणम्। दानप्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्यमहिमाततः
तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनं ततः। प्रकृतीनां भिदाख्यानंशालग्रामनिरूपणम्
तारकस्यवधोपायोऽग्यक्षार्चामहिमातथा। विष्णोःशापश्च वृक्षत्वंपार्वत्यनुनयस्ततः
हरस्य ताण्डवं नृत्यं रामनामनिरूपणम्। हरस्य लिङ्गपतनं कथा पैजवनस्य च
पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः। प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितंपुनः॥
दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षररूपणम्। ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशार्णजः
श्रवणादिकपुण्यश्च कीर्तितं शर्मदं नृणाम्।

## तृतीयब्रह्मखण्डस्योत्तरभागे—

ततो ब्रह्मोत्तरे भागे शिवस्यमहिमाद्भुतः। पञ्चाक्षरस्य महिमागोकर्णमहिमाततः
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्त्तनम्। सोमवारव्रतञ्चापिसीमन्तिन्याःकथानकम्
भद्रायूत्पत्ति कथनं सदाचारनिरूपणम्। शिवधर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम्॥
भद्रायुमहिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्त्तनम्। शबराख्यानकञ्चैवउमामाहेश्वरव्रतम्
रुद्राक्षस्यचमाहात्म्यंरुद्राध्यायस्यपुण्यकम्।श्रवणादिकपुण्यश्चब्रह्मखण्डोऽयमीरितः

पुराणीय विषयानुक्रम के अनुसार धर्मारण्य माहात्म्य के अनन्तर चातुर्मास्य माहात्म्य का वर्णन आता है यह न तो श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस में प्रकाशित स्कन्द पुराणस्थ ब्रह्मखण्ड में उपलब्ध है न बङ्गाक्षर मुद्रित बङ्गवासी प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थ में ही। अतः इसे सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार स्कन्द का सह्याद्रि खण्ड अनुपलब्ध है उसके लिये और महाराज सरफोजी सरस्वती महाल पुस्तकालय, तञ्जौर से पत्र व्यवहार कर हस्तलिखित प्रति के लिये प्रतिलिपीकरण की व्यवस्था की जा रही है। हमें इस खण्ड के सम्पादन कार्य के लिये श्री शारदा सदन पुस्तकालय लक्ष्मणगढ़ की प्रबन्ध समिति के सदस्यों और सभापति महोदय श्री पं० गङ्गाधर जी जोषी साहित्य-गणित वेदान्त भूषण एवं पुस्तकालयाध्यक्ष श्री महावीर प्रसादजी जोषी हिन्दी विशारद का विशेष साभार उपकार मानते हुए मैं उन्हें हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशन करता हूँ।

आरम्भसे सम्पादन कार्यमें व्यापृत लक्ष्मणगढ़ निवासि पण्डित श्रीब्रह्मदत्तजी त्रिवेदीव्याकरणाचार्य एम० ए० नवलगढ़ निवासि श्रीरामनाथजी दाधीचसाहित्य-शास्त्री पुराण-सांख्यस्मृतितीर्थ एवं विश्वनाथजी शास्त्री से पूर्ण सहयोग मिला है तदर्थ उनके लिये साधुवाद पुरःसरविद्याव्रत की सफल कामना करता हूँ। इसमें भ्रम प्रमाद आलस्यादिवशात् आगत त्रुटियों के परिमार्जन, परिशोधन के लिये विद्वद्वर्ग से मेरी सानुरोध विनम्र प्रार्थना है।

अन्त में भारतीय विद्या के अक्षय भण्डार इन पुराणों के अविकल प्रचार के लिये साग्रह निवेदन करता हुआ पुराणमूर्त्ति व्यासदेव के ४ लाख श्लोकों की शीघ्रातिशीघ्र अनुसन्धान पूर्ण शोध की आवश्यकता अनुभव कर उनकी पूर्ण पूर्त्ति के लिये मुझे सहायता प्रदान करने को विद्वानों को सादर निमन्त्रित करता हूँ।

पुनः पुनः अपनी अपूर्णताओं के लिये क्षमा प्रार्थना करता हूँ।
"कामयेदुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

आपका

शुभमिति द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला
१३ प्रदोषतिथि
२०१८ विक्रमसम्वत्

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता –१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

## अथ स्कन्दपुराणान्तर्गत-तृतीय-ब्रह्मखण्डस्य

# विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते

——:o:——

## धर्मारण्यमाहात्म्यम्

## चातुर्मास्यमाहात्म्यम्

## ब्रह्मोत्तरखण्डम्

समाप्तेयं स्कन्दपुराणान्तर्गतब्रह्मखण्डस्यविषयानुक्रमणिका
इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन
( लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि ) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—
नवलदुर्गवास्तव्य ( नवलगढ़-जयपुर-
निवासि) रामनाथमिश्रदाधीचौ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ ॐ नमोभगवतेवासुदेवाय ॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

# स्कन्दपुराणम्

## तस्येदं तृतीयं ब्रह्मखण्डम्प्रारभ्यते

### प्रथमोऽध्यायः

#### तत्राऽऽदौ सेतुमाहात्म्यवर्णनम्

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णञ्चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनंध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये
नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः । अष्टाङ्गयोगनिरताब्रह्मज्ञानैकतत्पराः ॥ २ ॥
मुमुक्षवोहमहात्मानो निर्ममाब्रह्मवादिनः । धर्मज्ञाअनसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ॥ ३
जितेन्द्रियाजितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः । भक्त्यापरमयाविष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ॥
तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषे मुक्तिदायिनि । एकदातेमहात्मानः समाजञ्चक्रुरुत्तमम् ॥ ५
कथयन्तोमहापुण्याःकथाःपापप्रणाशिनीः । भुक्तिमुक्तेरुपायञ्च जिज्ञासन्तःपरस्परम्
षड्विंशतिसहस्राणामृषीणाम्भावितात्मनाम् ।
तेषां शिष्यप्रशिष्याणां सङ्ख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ ७ ॥

अत्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्योमहामुनिः । अगमन्नैमिषारण्यंसूतःपौराणिकोत्तमः
तमागतंमुनिंदृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् । अर्घ्याद्यैःपूजयामासुर्मुनयः शौनकादयः ॥
सुखोपविष्टं तं सूतमासने परमेशुभे । पप्रच्छुः परमंगुह्यं लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥१०॥
सूतधर्मार्थतत्त्वज्ञसर्वागतंमुनिपुङ्गव । श्रुतवांस्त्वंपुराणानिव्यासात्सत्यवतीसुतात्
अतः सर्वपुराणानामर्थज्ञोसिमहामुने । कानिक्षेत्राणिपुण्यानिकानितीर्थानिभूतले ॥
कथंवाल्पस्यतेमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् । कथंहरेहरौवापि नृणांभक्तिःप्रजायते ॥
केनसिद्ध्यतेत्रफलं कर्मणस्त्रिविधात्मनः । एतच्चाऽन्यच्चतत्सर्वं कृपया वद सूतज!॥
ब्रूयुःस्निग्धायशिष्याय गुरवोगुह्यमप्युत । इतिपृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभिः
वक्तुं प्रचक्रमे नत्वा व्यासं स्वगुरुमादितः ।

श्रीसूत उवाच

सम्यक्पृष्टमिदं विप्रा! युष्माभिर्जगतो हितम् ॥ १६ ॥
रहस्यमेतद्युष्माकं वक्ष्यामिशृणुतादरात् । मयानोक्तमिदंपूर्वं कस्याऽपि मुनिपुङ्गवाः!
मनोनियम्यविप्रेन्द्राः शृणुध्वंभक्तिःपूर्वकम् । अस्तिरामेश्वरं नामरामसेतुपवित्रितम्
क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थानामपिचोत्तमम् । दृष्टमात्रेणतत्सेतुं मुक्तिः संसारसागरात्
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नाऽत्र संशयः ॥ २० ॥
योनरोजन्ममध्येतु सेतुंभक्त्याऽवलोकयेत् । तस्यपुण्यफलंवक्ष्येशृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः
मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः । निर्विश्यशम्भुनाकल्पं ततोमोक्षत्वमश्नुते
गण्यन्ते पांसवोभूमेर्गण्यन्तेदिवितारकाः । सेतुदर्शनजं पुण्यं शेषेणाऽपि न गण्यते
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्ध प्रकीर्तितः । तद्दर्शनवतः पुंसो कःपुण्यंगणितुं क्षमः ॥
सेतुंदृष्ट्वानरोविप्राः सर्वयागकरः स्मृतः । स्नानञ्चसर्वतीर्थेषु तपोतऽप्यतथाखिलम् ॥
सेतुंगच्छेतियोब्रूयाद्दूयंकस्वापिनरंद्विजाः। सोऽपितत्फलमाप्नोतिकिमन्यैर्बहुभाषणैः
सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः । सम्प्राप्यविष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते॥
सेतुंरामेश्वरंलिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् । चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः । कल्पत्रयंशम्भुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ॥
मृगावस्थांवसाकूपं तथावैतरणीं नदीम् । श्वभक्ष्यंमूत्रपानञ्च सेतुस्नायीनपश्यति ॥
तप्तशूलन्तप्तशिलां पुरीषहृदमेवच । तथाशोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥३१॥
शल्मल्यारोहणंरक्तभोजनंकृमिभोजनम् । स्वमांसभोजनंचैव वह्निज्वालाप्रवेशनम ॥
शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरकं कालसूत्रकम् । क्षारोदकंचोष्णतोयं नैयात्सेत्ववलोककः
सेतुस्नायीनरोविप्राः पञ्चपातकवानपि । मातृतःपितृतश्चैव शतकोटिकुलान्वितः
कल्पत्रयंविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैवमुच्यते । अधःशिरःशोषणं च नरकंक्षारसेचनम्॥
पाषाणयन्त्रपीडाञ्च मरुत्प्रपतनं तथा । पुरीषलेपनञ्चैव तथा क्रकचदारणम ॥ ३६॥
पुरीषभोजनंरेतः पानंसन्धिपुदाहनम् । अङ्गारशय्याभ्रमणं तथामुसलमर्द्दनम् ॥ ३७॥

एतानि नरकाण्यद्धा सेतुस्नायी न पश्यति ।
सेतुस्नानं करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम ॥ ३८ ॥

गच्छेच्छतपदंयस्तु समहापातकोऽपिसन् । बहूनांकाष्ठयन्त्राणांकर्षणं शस्त्रभेदनम्
पतनोत्पतनं चैव गदादण्डनिपीडनम् । गजदन्तैश्च हननं नानाभुजगदंशनम ॥ ४०
धूमपानंपाशबन्धं नानाशूलनिपीडनम् । मुखेच नासिकायांचक्षारोदकनिषेचनम् ॥
क्षाराम्बुपाननरकं तप्तायः सूचिभक्षणम् । एतानि नरकाण्यद्धा नयाति गतपातकः
क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्राणां प्रवेशंमेहभोजनम् । स्नायुच्छेदंस्नायुदाहमस्थिभेदनमेव च ॥
श्लेष्मादनंपित्तपानं महातिक्तनिषेवणम् । अत्युष्णतैलपानञ्च पानंक्षारोदकस्य च
काषायोदकपानञ्च तप्तपाषाण भोजनम् । अत्युष्णसिकतास्नानं तथादशनमर्दनम् ॥
तप्तायःशयनञ्चैवसन्तप्ताम्बुनिषेचनम् । सूचिप्रक्षेपणञ्चैव नेत्रयोर्मुखसन्धिषु ॥ ४६ ॥
शिश्नेसवृषणेचैव ह्ययोभारस्यबन्धनम् । वृक्षाग्रात्पतनं चैव दुर्गन्धिपरिपूरिते ॥४७

तीक्ष्णधाराऽस्त्रशय्याञ्च रेतः पानादिकं तथा ।
इत्यादिनरकान्घोरान्सेतुस्नायी न पश्यति ॥ ४८ ॥

सेतुसंकतमध्येयःशेतेतत्पांसुकुण्ठितः । यावन्तःपांसवोलग्नास्तस्याङ्गेविप्रसत्तमाः !
तावतांब्रह्महत्यानांनाशःस्यान्नाऽत्रसंशयः।सेतुमध्यस्थवातेनयस्याङ्गंस्पृश्यतेऽखिलम्

सुरापानायुतं तस्य तत्क्षणादेव नश्यति । वर्तन्तेयस्यकेशास्तु वपनात्सेतुमध्यतः ॥
गुरुतल्पायुतंतस्यतत्क्षणादेवनश्यति । यस्यास्थिसेतुमध्येतु स्थापितंपुत्रपौत्रकैः
स्वर्णस्तेयायुतं तस्य तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ५२ ॥
स्मृत्वा यं सेतुमध्ये तु स्नानं कुर्याद् द्विजोत्तमाः ।।
महापातकिसंसर्गाद्दोषस्तस्य लयं व्रजेत् ॥ ५३ ॥
मार्गभेदी स्वार्थपाकी यतिब्राह्मणदूषकः । अन्त्याशीवेदविक्रीतापञ्चैतेब्रह्मघातकाः॥
ब्राह्मणान्यः समाहूय दास्यामीति धनादिकम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूते ब्रह्महा सोऽपिकीर्तितः ॥ ५५ ॥
परिज्ञायततोधर्मांस्तस्मैयोद्वेषमाचरेत् । अवजानातिवा विप्राब्रह्महासोऽपि कीर्तितः
जलपानार्थमायान्तं गोवृन्दं तु जलाशये । निवारयतियोविप्राब्रह्महा सोऽपिकीर्तितः
सेतुमेत्यतु ते सर्वे मुच्यन्ते दोषसञ्चये । ब्रह्मघातकतुल्या ये सन्तिचान्येद्विजोत्तमाः
तेसर्वेसेतुमागत्य मुच्यन्तेनाऽत्रसंशयः । औपासनपरित्यागी देवताऽन्नस्यभोजकः
सुरापयोषित्संसर्गी गणिकान्नाशनस्तथा । गणान्नभोजकश्चैव पतितान्नरतश्चयः ॥
एते सुरापिनः प्रोक्ताः सर्वकर्मबहिष्कृताः । सेतुस्नानेनमुच्यन्ते तेसर्वेहतकिल्बिषाः ॥
सुरापतुल्यायेचान्ये मुच्यन्ते सेतुमज्जनात् । कन्दमूलफलानाञ्च कस्तूरीपट्टवाससाम्
पयश्चन्दनकर्पूरकमुकाणान्तथैव च । मध्वाज्यताम्रस्यकांस्यानांरुद्राक्षाणान्तथैवच
चोरकास्तु परिज्ञेया सुवर्णस्तेयिनस्सदा । ते सेतुक्षेत्रमागत्य मुच्यन्तेनाऽत्रसंशयः
अन्येचस्तेयिनःसर्वेसेतुस्नानेनवैद्विजाः । मुच्यन्तेसर्वपापिभ्योनाऽत्रकार्याविचारणा
भगिनीं पुत्रभार्याञ्च तथैवचरजस्वलाम् । भ्रातृभार्याम्मित्रभार्यां मद्यपाञ्चपरस्त्रियम्
हीनस्त्रियञ्चविश्वस्तां योऽभिगच्छतिरागतः । गुरुतल्पीसविज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः
एतेचान्येचयेसन्ति गुरुतल्पगतुल्यकाः । ते सर्वेऽत्र विमुच्यन्ते सेतुस्नानेनवैद्विजाः
एतेसंसर्गिणोविप्रा येचान्येसन्तिपापिनः । सेतुस्नानेन महता तेऽपि मोक्षमवाप्नुयुः
यागंविनादेवलोके घृताचीमेनकादिभिः । सम्भोगकामिनोविप्राः स्नातुंसेतावघापहे ॥
अनिषेव्यरविवह्निमनुपास्यपरान्सुरान् । शुभकामीजनः सेतौकुर्यात्स्नानंसभक्तिकम्

तिलान्भूमिंसुवर्णञ्च धान्यंतण्डुलमेवच । अदत्त्वेच्छन्तियेस्वर्गंस्नातुं सेतौतुतेद्विजाः
उपवासैर्व्रतैः कृत्स्नैरसंताप्यनिजान्तनुम् ।
स्वर्गाऽभिलाषिणः पुंसः स्नातुं सेतौ विमुक्तिदे ॥ ७३ ॥
सेतुस्नानंमोक्षदं च मनःशुद्धिप्रदं तथा । जपाद्धोमात्तथादानाद्यागाच्च तपसोऽपि च
सेतुस्नानंविशिष्टंहि पुराणेपरिपठ्यते । अकामनाकृतंस्नानं सेतौ पापविनाशने ॥७५
अपुनर्भवदंप्रोक्तं सत्यमुक्तं द्विजोत्तमाः । यः सम्पदं समुद्दिश्य स्नातिसेतौ नरोमुदा
स सम्पदमवाप्नोति विपुलां द्विजपुङ्गवाः ।
शुद्ध्यर्थं स्नाति चेत्सेतौ तदा शुद्धिमवाऽप्नुयात् ॥ ७७ ॥
रत्यर्थंयदिचस्नायादप्सरोभिर्नरोदिवि । तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरीजनैः ॥
मुक्त्यर्थंयदिचस्नायात्सेतौमुक्तिप्रदायिनि । तदामुक्तिमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जिताम्
सेतुस्नानेनधर्मः स्यात्सेतुस्नानादघक्षयः । सेतुस्नानंद्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम्
सर्वव्रताधिकंपुण्यं सर्वयज्ञोत्तरंस्मृतम् । सर्वयोगाधिकंप्रोक्तं सर्वतीर्थाधिकंस्मृतम्
इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषां प्रवर्त्तते । स्नातव्यंतैर्द्विजश्रेष्ठाः सेतौ रामकृतेसकृत्
ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासमपिशिवालये । रन्तुमिच्छाभवेद्येषांतेसेतौस्नान्तुसादरम्
आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् । चतुर्णामपिवेदानांसाङ्गानाम्पारगामिनाम्
सर्वशास्त्राधिगन्तृत्वं सर्वमन्त्रेष्वभिज्ञताम् ।
समुद्दिश्य तु यः स्नायात्सेतौ सर्वार्थसिद्धिदे ॥ ८५ ॥
तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्यं स्यान्नाऽत्र संशयः ।
दारिद्र्यान्नरकाद्ये च बिभ्यन्ति मनुजा भुवि ॥ ८६ ॥
स्नानङ्कुर्वन्तुते सर्वे रामसेतौविमुक्तिदे । श्रद्धयासहितोमर्त्यः श्रद्धया रहितोऽपिवा
इहलोकेपरत्रापि सेतुस्नायीनदुःखभाक् । सेतुस्नानेनसर्वेषां नश्यते पापसञ्चयः॥८८
वर्द्धंतेधर्मराशिश्च शुक्लपक्षेयथाशशी । यथारत्नानिवर्द्धन्ते समुद्रेविविधान्यपि ॥ ८६॥
तथापुण्यानिवर्द्धन्ते सेतुस्नानेनवैद्विजाः । कामधेनुर्यथालोके सर्वान्कामान्प्रयच्छति
चिन्तामणिर्यथादद्यात्पुरुषाणांमनोरथान् । यथाऽमरतरुर्दद्यात्पुरुषाणामभीप्सितम्

सेतुस्नानंतथानृणांसर्वाभीष्टान्प्रदास्यति । अशक्तःसेतुयात्रायांदारिद्र्येणचमानवः
याचयित्वाधनंशिष्टात् सेतौस्नानंसमाचरेत् । सेतुस्नानंसमंपुण्यं तत्रदातासमश्नुते
तथाऽप्रतिगृहीताऽपि प्राप्नोत्यविकलं फलम् ।
सेतुयात्रां समुद्दिश्य गृह्णीयाद् ब्राह्मणाद्धनम् ॥ ९४ ॥
क्षत्रियादपिगृह्णीयाद्धर्मब्राह्मणायदि । वैश्याद्वाप्रतिगृह्णीयान्नप्रयच्छन्तिचेन्नृपाः ९५
शूद्रान्नप्रतिगृह्णीयात्कथञ्चिदपिमानवः । यःसेतुंगच्छतः पुंसो धनं वाधान्यमेववा ॥
दत्त्वावस्त्रादिकंवाऽपि प्रवर्तयतिमानवः । सोऽश्वमेधादियज्ञानांफलमाप्नोत्यनुत्तमम्
चतुर्णामपि वेदानां पारायणफलं लभेत् । तुलापुरुषमुख्यस्य दानस्य फलमश्नुते ॥
ब्रह्महत्यादिपापानां नाशःस्यान्नाऽत्रसंशयः । बहुनाकिंप्रलापेन सर्वान्कामान्समश्नुते
एवं प्रतिगृहीताऽपि तत्तुल्यफलमश्नुते । याचनः सेतुयात्रार्थं न प्रतिग्रहकल्मषम् ॥
सेतुंगच्छधनन्तेहं दास्यामीतिप्रलोभ्ययः । पश्चाऽन्नास्तीतिचब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्
गमिष्येसेतुमितिवै योगृहीत्वाधनंनरः । नयातिसेतुंलोभेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥१०२
लोभेन सेतुयात्रार्थं सम्पन्नोऽपिदरिद्रवत् । मानवोयदियाचेत तमाहुःस्तेयिनम्बुधाः
येनकेनाऽप्युपायेन सेतुङ्गच्छेन्नरोमुदा । अशक्तोदक्षिणांदत्त्वा गमयेद्वाद्विजोत्तमम् ॥
याचित्वायज्ञकरणे यथादोषोनविद्यते । याचित्वासेतुयात्रायां तथा दोषो न विद्यते
याचित्वाऽप्यन्यतो द्रव्यं सेतुस्नाने प्रवर्तयेत्
ज्ञानेन मोक्षमभियान्ति कृतेयुगे तु त्रेतायुगे यजनमेव विमुक्तिदायि ।
श्रेष्ठं तथाऽन्ययुगयोरपि दानमाहुः सर्वत्रसेत्वभिषवो हि वरो नराणाम्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येश्रीसेतुमाहात्म्यकीर्तनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

# द्वितीयोऽध्यायः

## श्रीरामेणसेतुबन्धनसहितंतत्रत्यतीर्थवर्णनम्

**ऋषय ऊचुः**

कथं सूतमहाभाग! रामेणाऽक्लिष्टकर्मणा। सेतुर्बद्धोनदीनाथे ह्यगाधे वरुणालये ॥ १॥
सेतौ च कतितीर्थानि गन्धमादनपर्वते। एतन्नः श्रद्दधानानां ब्रूहि पौराणिकोत्तम!

**श्रीसूत उवाच**

रामेणहियथासेतु निबद्धो वरुणालये। तदहंसम्प्रवक्ष्यामि युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ॥३
आज्ञयाहिपितूरामो न्यवसद्दण्डकानने। सीतालक्ष्मणसंयुक्तः पञ्चवट्यांसमाहितः
तस्मिन्निवसतस्तस्य राघवस्यमहात्मनः। रावणेनहृताभार्या मारीचच्छद्मनाद्विजाः
मार्गमाणोवनेभार्यां रामोदशरथात्मजः। पम्पातीरेजगामाऽसौ शोकमोहसमन्वितः
दृष्टवान्वानरं तत्र कश्चिद्दशरथात्मजः। वानरेणाऽथपृष्टोऽयं कोभवानिति राघवः ॥७
आदितः स्वस्यवृत्तान्तं तस्मैप्रोवाचतत्त्वतः। अथराघवसम्पृष्टो वानरःकोभवानिति।
सोऽपिविज्ञापयामास राघवायमहात्मने। अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः ॥

नेन च प्रेरितोऽभ्यागां युवाभ्यां सख्यमिच्छता।
आगच्छतन्तद्भद्रम्वां सुग्रीवान्तिकमाऽऽशु वै ॥ १० ॥
तथाऽस्त्विति स रामोऽपि तेन साकं मुनीश्वराः!।
सुग्रीवान्तिकमागत्य सख्यञ्चक्रेऽग्निसाक्षिकः ॥ ११ ॥

प्रतिजज्ञोऽथरामोऽपितस्मैबालिवधम्प्रति। सुग्रीवश्चापि वैदेह्याः पुनरानयनं द्विजाः
इत्येवंसमयंकृत्वा विश्वस्यचपरस्परम्। मुदा परमयायुक्तौ नरेश्वरकपीश्वरौ ॥ १३॥
आसा ते ब्राह्मणश्रेष्ठा! ऋष्यमूकगिरौतथा। सुग्रीवप्रत्ययार्थञ्चदुन्दुभेःकायमाशु वै
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप राघवोबहुयोजनम्। सप्ततालाविनिर्भिन्ना राघवेणमहात्मना ॥
ततःप्रीतमनावीरः सुग्रीवोराममब्रवीत्। इन्द्रादिदेवताभ्योऽपि नाऽस्तिराघवतेभयम्

भवान्मित्रंमयालब्धं यस्मादतिपराक्रमः । अहं लङ्केश्वरंहत्वा भार्यामानयिताऽस्मिते
ततः सुग्रीवसहितो रामचन्द्रो महाबलः ।
सलक्ष्मणो ययौ तूर्णं किष्किन्धाम्बालिपालिताम् ॥ १८ ॥
ततोजगर्जसुग्रीवो बाल्यागमनकङ्क्षया । अमृष्यमाणोबालीचगर्जितंस्वाऽनुजस्यवै
अन्तःपुराद्विनिष्क्रम्य युयुधेऽवरजेन सः । बालिमुष्टिप्रहारेण ताडितोभृशविह्वलः ॥
सुग्रीवोनिर्गतस्तूर्णं यत्ररामोमहाबलः । ततोरामोमहाबाहुस्सुग्रीवस्यशिरोधरे ॥२१
लतामाबद्धयचिह्नन्तु युद्धायाऽचोदयत्तदा । गर्जितेनसमाहूय सुग्रीवोबालिनंपुनः ॥
रामप्रेरणयातेन बाहुयुद्धमथाऽकरोत् । ततोबालिनमाजघ्नेशरेणैकेनराघवः ॥ २३ ॥
हतेबालिनिसुग्रीवः किष्किन्धाम्प्रत्यपद्यत । ततोवर्षास्वतीतासुसुग्रीवोवानराधिपः
सीतामानयितुं तूर्णं वानराणांमहाचमूम् । समादायसमागच्छद्दन्तिकरघुपुत्रयोः ॥
प्रस्थापयामास कपीन् सीतान्वेषणकङ्क्षया ।
विदितायान्तु वैदेह्यां लङ्कायां वायुसूनुना ॥ २६ ॥
दत्तेचूडामणौचाऽपि राघवोहर्षशोकवान् । सुग्रीवेणानुजेनाऽपि वायुपुत्रेणधीमता
तथान्यैःकपिभिश्चैवजाम्बवन्नलमुख्यकैः । अन्वीयमानोरामोसौमुहूर्त्तेभिजितिद्विजाः
विलङ्घ्यविविधान्देशान्महेन्द्रंपर्वतंययौ । चक्रतीर्थन्ततोगत्वा निवासमकरोत्तदा ॥
तत्रैवतुसधर्मात्मा समागच्छद्विभीषणः । भ्रातावैराक्षसेन्द्रस्य चतुर्भिःसचिवैः सह
प्रतिजग्राह रामस्तं स्वागतेन महामनाः ।
सुग्रीवस्य तु शङ्काऽभूत्प्रणिधिः स्यादयन्त्विति ॥ ३१ ॥
राघवस्तस्यचेष्टाभिः सम्यक्सुचरितैर्हितैः । अदुष्टमेनंदृष्ट्वैव ततएनमपूजयत् ॥ ३२ ॥
सर्वराक्षसराज्येतमभ्यषिञ्चद्विभीषणम् । चक्रेचमन्त्रिप्रवरं सद्वशंरविसूनुना ॥ ३३॥
चक्रतीर्थंसमासाद्य निवसद्रघुनन्दनः । चिन्तयन्राघवः श्रीमान्सुग्रीवादीनभाषत ॥
मध्येवानरमुख्यानां प्राप्तकालमिदंवचः । उपायः को नुभवतामेतत्सागरलङ्घने ॥ ३५॥
इयञ्चमहतीसेना सागरश्चापिदुस्तरः । अम्भोराशिरयंनीलश्चञ्चलोर्म्मिसमाकुलः ॥
उद्यन्मत्स्योमहानक्रशङ्खशुक्तिसमाकुलः । क्वचिदौर्वानलाक्रान्तः फेनवानतिभीषणः ॥

प्रकृष्टपवनाकृष्टनीलमेघसमन्वितः । प्रलयाम्भोधरारावः सारवानानिलोद्धतः ॥ ३८ ॥
कथंसागरमक्षोभ्यन्तरामोवरुणालयम् । सैन्यैः परिवृताःसर्वे वानराणांमहौजसाम्
उपायैरधिगच्छामो यथानदनदीपतिम् । कथं तरामः सहसा ससैन्या वरुणालयम्॥
शतयोजनमाग्रातं मनसाऽपिदुरासदम् । अतोनविघ्ना बहवः कथं प्राप्या च मैथिली
कष्टात्कष्टतरंप्राप्ता वयमद्यनिराश्रयाः । महाजले महावाते समुद्रे हि निराश्रये ॥४२॥
उपायंकंविधास्यामस्तरणार्थंवनौकसाम् । राज्याद्भ्रष्टोवनंप्राप्ताहृतासीतामृतःपिता
इतोऽपि दुःसहंदुःखं यत्सागरविलङ्घनम् ।
धिग्धिग्गर्जितमम्भोधे धिग्धिकृता वारिराशिताम् ॥ ४४ ॥
कथंतद्वचनंमिथ्या महर्षेः कुम्भजन्मनः । हत्वा त्वंरावणंपापं पवित्रे गन्धमादने ॥४५
पापोपशमनायाऽऽशु गच्छन्त्वेति यदीरितम् ।

श्रीसूत उवाच

इति रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवप्रमुखास्तदा ॥ ४६ ॥
ऊचुःप्राञ्जलयःसर्वे राघवं तं महाबलम् । नौभिरेनं तरिष्यामः प्लवैश्चविविधैरपि ॥
मध्येवानरकोटीनां ततोवाच विभीषणः । समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तु मर्हति ॥
खनितः सागरैरेष समुद्रो वरुणालयः । कर्तुमर्हतिरामस्य तज्ज्ञातेः कार्यमम्बुधिः ॥
विभीषणेनैव मुक्तो राक्षसेनविपश्चिता । सान्त्वयन्राघवः सर्वान्वानरानिदमब्रवीत्
शतयोजनविस्तारमशक्ताः सर्ववानराः । तर्तुं प्लवोडुपैरेनं समुद्रमतिभीषणम् ॥ ५१॥
नावो न सन्तिसेनाया बहवो वानरपुङ्गवाः । वणिजामुपघातञ्च कथमस्मद्विधश्चरेत्
विस्तीर्णञ्चैवनः सैन्यं हन्याच्छिद्रेषुवापरः । प्लवोडुपप्रतारोऽतो नैवाऽत्र मम रोचते
विभीषणोक्तमेवेदं मोदद्ध्वमवानराः । अहं त्विमञ्जलनिधिमुपास्ये मार्गसिद्धये ५४
नोचेद्दर्शयितामार्गं धक्ष्याम्येन महं तदा । महास्त्रैरप्रतिहतैरत्यग्निपवनोज्ज्वलैः ॥५५
इत्युक्त्वासहसौमित्रिरुपस्पृश्याथराघवः । प्रतिशिश्ये जलनिधिं विधिवत्कुशसंस्तरे
तदा रामः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः । संविवेशमहाबाहुर्वेद्यामिव हुताशनः ॥५७
शेषभोगनिभम्बाहुमुपधायरघूद्वहः । दक्षिणोदक्षिणम्बाहुमुपास्ते मकरालयम् ॥ ५८

तस्यरामस्यसुप्तस्यकुशास्तीर्णेमहीतले। नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोऽतिचक्रमुः
सन्निरात्रोषितस्तत्र नयज्ञोधर्मतत्परः। उपास्तेतस्मदारामः सागरंमार्गसिद्धये ॥ ६०
न च दर्शयते मन्दस्तदा रामस्य सागरः। प्रयतेनाऽपिरामेण यथार्हमपि पूजितः ॥
तथापि सागरोरामं नदर्शयतिचाऽऽत्मनः। समुद्राय ततः क्रुद्धो रामोरक्तान्तलोचनः॥
समीपवर्तिनञ्चेदं लक्ष्मणंप्रत्यभाषत। अद्यमद्बाणनिर्भिन्नैर्मकरैर्वरुणालयम् ॥ ६३ ॥
निरुद्धतोयंसौमित्रे! करिष्यामिक्षणादहम्। सशङ्खशुक्ति जालं हि समीनमकरं शनैः
अद्य बाणैरमोघाख्यैर्वारिधिपरिशोषये। क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ॥
असमर्थंविजानाति धिक्क्षमामीदृशेजने। नदर्शयतिसाम्नामे सागरोरूपमात्मनः

चापमानय सौमित्रे! शरांश्चाऽऽशीविषोपमान।
सागरं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः ॥ ६७ ॥

एनं लङ्घितमर्यादं सहस्रोर्मिसमाकुलम्। निर्मर्यादंकरिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ॥
महार्णवंक्षोभयिष्ये महादानवसङ्कुलम्। महामकरनक्राढ्यं महावीचिसमाकुलम् ॥
एवमुक्त्वाधनुष्पाणिः क्रोधपर्याकुलेक्षणः। रामोबभूवदुर्धर्षस्त्रिपुरघ्नोयथाशिवः ॥७०
आकृष्यचापकोपेन कम्पयित्वाशरैर्जगत्। मुमोचविशिखानुग्रांस्त्रिपुरेषुयथाभवः ॥
दीप्तबाणाश्च घोरा भासयन्तो दिशोदश। प्राविशन्वारिधेस्तोयं दृप्तदानवसङ्कुलम
समुद्रस्तुततोभीतो वेपमानःकृताञ्जलिः। अनन्यशरणोविप्राःपातालात्स्वयमुत्थितः
शरणं राघवम्भेजे कैवल्यपदकारणम्। तुष्टावराघवंविप्रो भूत्वाशब्दैर्मनोरमैः ॥ ७४॥

समुद्र उवाच

नमामि ते राघव! पादपङ्कजं सीतापते! सौख्यदपादसेविनाम्!।
नमामि ते गौतमदारमोक्षदं श्रीपादरेणुं सुरवृन्दसेव्यम् ॥ ७५ ॥
सुन्दप्रियादेहविदारिणे नमो नमोऽस्तु ते कौशिकयागरक्षिणे!।
नमो महादेवशरासभेदिने नमो नमो राक्षससङ्घनाशिने ॥ ७६ ॥

रामरामनमस्यामि भक्तानामिष्टदायिनम्। अवतीर्णंरघुकुले देवकार्यचिकीर्षया ॥७७
नारायणमनाद्यन्तं मोक्षदंशिवमच्युतम्। रामराममहाबाहो रक्ष मां शरणागतम् ॥

कोपंसंहरराजेन्द्र क्षमस्वकरुणालय ! । भूमिर्वातोवियच्चापो ज्योतींषिचरघूद्वह ॥
यत्स्वभावानिसृष्टानि ब्रह्मणापरमेष्ठिना । वर्तन्तेतत्स्वभावानि स्वभावोमेह्यगाधता
विकारस्तुभवेद्गाधएतत्सत्यंवदाम्यहम् । लोभात्कामाद्भयाद्वापि रागाद्वापिरघूद्वह ॥
न वंशजंगुणंहातुमुत्सहेऽहं कथञ्चन । तत्करिष्ये च साहाय्यं सेनायास्तरणेतव ८२

इत्युक्तवन्तञ्जलधिं रामो वादीन्नदीपतिम् ।
ससैन्योऽहङ्गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ॥ ८३ ॥

तच्छोषमुपयाहित्वं तरणार्थं ममाधुना । इत्युक्तस्तं पुनः प्राह राघवंवरुणालयः ॥८४
शृणुष्वावहितोराम श्रुत्वाकर्तव्यमाचर । यद्याज्ञयातेशोष्यामि ससैन्यस्ययियासतः
अन्येप्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवं धनुषोबलात् । उपायमन्यंवक्ष्यामि तरणार्थंबलस्यते

अस्ति ह्यत्र नलो नाम वानरः शिल्पिसम्मतः ।
त्वष्टुः काकुत्स्थ तनयो बलवान्विश्वकर्मणः ॥ ८७ ॥

सयत्काष्ठंतृणंवाऽपि शिलांवाक्षेप्स्यतेमयि । सर्वंतद्धारयिष्यामिसतेसेतुर्भविष्यति
सेतुनातेनगच्छत्वं लङ्कांरावणपालिताम् । उक्त्वेत्यन्तर्हितेतस्मिन् रामोनलमुवाचह
कुरुसेतुंसमुद्रेत्वं शक्तोह्यसिमहामते !। तदाऽब्रवीन्नलोवाक्य रामं धर्मभृताम्वरम् ९०
अहंसेतुंविधास्यामि ह्ययाधेवरुणालये । पित्रादत्तवरश्चाहं सामर्थ्येचापितत्समः ॥
मातुर्ममवरोदत्तो मन्दरेविश्वकर्मणा । शिल्पकर्मणिमत्तुल्यो भवितातेसुतस्त्विति ॥
पुत्रोऽहमौरसस्तस्य तुल्योवैविश्वकर्मणा । अद्यैवकामम्बध्नन्तु सेतुम्वानरपुङ्गवाः
ततोरामविसृष्टास्ते वानराबलवत्तराः । पर्वतान् गिरिशृङ्गाणि लतातृणमहीरुहान् ॥
समाजह्रुर्महाकाया गरुडानिलरंहसः । नलश्चक्रेमहासेतुं मध्येनदनदीपतेः ॥ ९५ ॥
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् । जानकीरमणोरामस्सेतुमेवमकारयत् ॥९६॥
नलेनवानरेन्द्रेण विश्वकर्मसुतेनवै । तमेवंसेतुमासाद्य रामचन्द्रेणकारितम् ॥ ९७ ॥
सर्वपातकिनोमर्त्या मुच्यन्तेसर्वपातकैः । व्रतदानतपोहोमैर्नतथातुष्यतेशिवः॥ ९८ ॥
सेतुमज्जनमात्रेण यथातुष्यतिशङ्करः । नतुल्यंविद्यतेतेजो यथासौरेणतेजसा ॥ ९९ ॥
सेतुस्नानेन च तथा न तुल्यं विद्यते क्वचित् । तत्सेतुमूलंलङ्काया यत्ररामोयियासया

वानरैस्सेतुमारंभे पुण्यं पापप्रणाशनम् । तद्दर्भशयनंनाम्ना पश्चाल्लोकेषुविश्रुतम् १०१
एवमुक्तं मया विप्रास्समुद्रेसेतुबन्धनम् । अत्रतीर्थान्यनेकानि सन्तिपुण्यान्यनेकशः
नसङ्ख्यान्नामधेयम्वाशेषोगणयितुंक्षमः । किन्त्वहंप्रब्रवीम्यद्यतत्रतीर्थानिकानिचित्
चतुर्विंशतितीर्थानि सन्तिसेतौप्रधानतः । प्रथमञ्चक्रतीर्थंस्याद्वेतालवरदन्ततः १०४

ततः पापविनाशाख्यं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।

ततस्सीतासरः पुण्यं ततो मङ्गलतीर्थकम् १०५ ॥

ततस्सकलपापघ्नी नाम्नाचाऽमृतवापिका । ब्रह्मकुण्डं ततस्तीर्थं ततः कुण्डं हनूमतः
आगस्त्यंहिततस्तीर्थं रामतीर्थमतः परम् । ततोलक्ष्मणतीर्थंस्याज्जटातीर्थमतःपरम्
ततोलक्ष्म्याः परन्तीर्थमग्नितीर्थमतः परम् । चक्रतीर्थन्ततः पुण्यं शिवतीर्थमतःपरम्
ततश्शङ्खाभिधन्तीर्थं ततोयामुनतीर्थकम् । गङ्गातीर्थन्ततः पश्चाद्गयातीर्थमनन्तरम् ॥

ततः स्यात्कोटितीर्थाख्यं साध्यानाममृतं ततः ।

मानसाख्यन्ततस्तीर्थं धनुष्कोटिस्ततः परम् ॥ ११० ॥

प्रधानतीर्थान्येतानि महापापहराणि च । कथितानिद्विजश्रेष्ठास्सेतुमध्यगतानि वै॥
यथा सेतुश्चबद्धोऽभूद्रामेणजलधौमहान् । कथितन्तच्चविप्रेन्द्राः पुण्यं पापहरन्तथा ॥

तच्छ्रुत्वा च पठित्वा च मुच्यते मानवो भुवि ॥ ११३ ॥

अध्यायमेनम्पठते मनुष्यः शृणोति वा भक्तियुतो द्विजेन्द्राः ।

सोऽनन्तमाप्नोति जयम्परत्र पुनर्भवक्लेशमसौ न गच्छेत् ॥ ११४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येरामेणसेतुबन्धनसहितंतत्रत्यतीर्थवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

# तृतीयोऽध्यायः

## चतुर्विंशतितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

चतुर्विंशति तीर्थानियान्युक्तानित्वया मुने !। तेषां प्रधानतीर्थानांसेतौपापविनाशने
आदिमस्यतुतीर्थस्यचक्रतीर्थमितिप्रथा । कथंसमागतासूतवदास्माकंहिपृच्छताम् ॥

श्रीसूत उवाच

चतुर्विंशतितीर्थानां प्रधानानांद्विजोत्तमाः । यदुक्तमादिमन्तीर्थं सर्वलोकेषुविश्रुतम्
स्मरणात्तस्यतीर्थस्य गर्भवासोनविद्यते । विलयंयान्तिपापानि लक्षजन्मकृतान्यपि

तस्मिंस्तीर्थे सकृत्स्नानात्स्मरणात्कीर्तनादपि ।
लोके ततोऽधिकन्तीर्थं तत्तुल्यं वा द्विजोत्तमाः !॥ ५ ॥

नविद्यतेमुनिश्रेष्ठाः सत्यमुक्तमिदम्मया । गङ्गासरस्वतीरेवा पम्पागोदावरीनदी ॥६
कालिन्दीचैवकावेरी नर्मदामणिकर्णिका । अन्यानियानितीर्थानि नद्यःपुण्यामहीतले

अस्य तीर्थस्य विप्रेन्द्राः कोट्यंशेनाऽपि नो समाः ।
धर्मतीर्थमितिप्राहुस्तत्तीर्थं हि पुराविदः ॥ ८ ॥

यथासमागतातस्य चक्रतीर्थमितिप्रथा । तदिदानींप्रवक्ष्यामि शृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः
सेतुमूलंहियत्प्रोक्तं तद्दर्भशयनंमतम् । तत्रैव चक्रतीर्थन्तु महापातकमर्द्दनम् ॥ १० ॥
पुराहिगालवोनाम मुनिर्विष्णुपरायणः । दक्षिणाम्भोनिधेस्तीरे हालास्याद‌विदूरतः
फुल्लग्रामसमीपे च तथाक्षीरसरोऽन्तिके । धर्मपुष्करिणीतीरे सोऽतप्यतमहत्तपः ॥
युगानामयुतंब्रह्म गृणन्विप्रास्सनातनम् । दयायुक्तोनिराहारस्सत्यवाग्विजितेन्द्रियः
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिस्पृहः । सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः॥

वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ।
किञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ १५ ॥

एवं पञ्चसहस्राणि वर्षाणि स महामुनिः । अतप्यत तपो घोरं देवैरपिसुदुष्करम् ॥
ततःपञ्चसहस्राणि वर्षाणिमुनिपुङ्गवः । निराहारोनिरालोकोनिरुच्छ्वासोनिरास्पदः
वर्षास्वासारसहनं हेमन्तेषुजलेशयः । ग्रीष्मेपञ्चाऽग्निमध्यस्थो विष्णुध्यानपरायणः
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदिजनार्दनम् । ततापं सुमहातेजा गालवोमुनिपुङ्गवः ॥
एवंत्वयुतवर्षाणि समतीतानि वै मुनेः । अथतत्तपसातुष्टो भगवान् कमलापतिः ॥
प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः । विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥
विनतानन्दनाऽऽरूढश्छत्रचामरशोभितः । हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥ २२॥
विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैःपरिवारितः । वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ॥
उपगीयमानविभवःपीताम्बरविराजितः । लक्ष्मीविराजितोरस्कोनीलमेघसमच्छविः
धुनानः पद्ममेकेन पाणिना मधुसूदनः । सनकादि महायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥
मन्दस्मितेनसकलं मोहयन्भुवनत्रयम् । स्वभासाभासयन्सर्वान्दिशोदश च भूसुराः
कण्ठलग्नेनमणिना कौस्तुभेन च शोभितः । सुवर्णवेत्रहस्तैश्च सौविदल्लैरनेकशः

अनन्यदुर्लभाऽचिन्त्यगीयमाननिजाद्भुतः ।
सुभक्तसुलभोदेवो लक्ष्मीकान्तो हरिस्स्वयम् ॥ २८ ॥

सन्निधत्तेपुरस्तस्य गालवस्य महामुनेः । आविर्भूतं तदादृष्ट्वा श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्
पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनिः । भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टावजगदीश्वरम् ॥

गालव उवाच

नमो देवादिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते । नमो नित्याय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे ॥
नमोभक्तार्तिहन्त्रे ते हव्यकव्यस्वरूपिणे । नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे

नमः परेशाय नमो विभूम्ने नमोऽस्तुलक्ष्मीपतये विधात्रे ।
नमोस्तस्तु सूर्येन्दु विलोचनाय नमो विरिञ्च्याद्यभिवन्दिताय ॥ ३३ ॥
यो नामजात्यादिविकल्पहीनस्समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ।
समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमोदैत्यविनाशनाय ॥ ३४ ॥
वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वैकुण्ठवासाय विधातृपित्रे ।

नमोनमस्सद्यजनार्तिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमाय ॥ ३५ ॥
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवायशार्ङ्गिणे । भूयोभूयोनमस्तुभ्यं शेषपर्यङ्कशायिने ॥३६
इति स्तुत्वा हरिं विप्रास्तूष्णीमास्ते स्म गालवः ।
श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां हरिस्तस्य महात्मनः ॥ ३७ ॥
अवापपरमन्तोषं शङ्खचक्रगदाधरः । अथाऽऽलिङ्ग्यमुनिंशौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ॥
चभाषेप्रीतिसंयुक्तो वरंवैव्रियतामिति । तुष्टोऽस्मितपसातेद्यस्तोत्रेणापिचगालव !
नमस्कारेण च प्रीतो वरदोऽहं तवाऽऽगतः ।

गालव उवाच

नारायण ! रमानाथ ! पीताम्बर जगन्मय !॥ ४० ॥
जनार्द्दनजगद्धामन्गोविन्दनरकान्तकम् । त्वद्दर्शनात्कृतार्थोस्मिसर्वस्मादधिकस्तथा
त्वांनपश्यन्त्यधर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः । यन्नवेत्तिभवोब्रह्मा यन्नवेत्तित्रयीयथा ॥
नंवेद्मिपरमात्मानं किमस्मादधिकम्वरम् । योगिनोयन्नपश्यन्ति यन्नपश्यन्तिकर्मठाः
तपश्यामिपरमात्मानंकिमस्मादधिकम्वरम् । एतेनचकृतार्थोऽस्मि जनार्दनजगत्पते!
यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि च । मुक्तिंप्राप्यन्तिमुनयस्तंपश्यामिजनार्दनम्
त्वत्पादपद्मयुगले निश्चला भक्तिरस्तु मे ।

हरिरुवाच

मयि भक्तिर्द्दृढा तेऽस्तु निष्कामागालवाऽधुना ॥ ४६ ॥
शृणुचाप्यवरंवाक्यमुच्यमानं मया मुने !। मदर्थंकर्मकुर्वाणो मद्ध्यानोमत्परायणः
एतत्प्रारब्धदेहान्तेमत्स्वरूपमवाप्स्यसि । अस्मिन्नेवाऽऽश्रमेवासं कुरुष्वमुनिपुङ्गव!
धर्मपुष्करिणी चेयं पुण्यपापविनाशिनी ।
अस्यास्तीरे तपः कुर्वंस्तपः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥
धर्मः पुरा समागत्य दक्षिणस्योदधेस्तटे । तपस्तेपे महादेवं चिन्तयन्मनसा तदा॥
स्नानार्थमेकतीर्थञ्च चक्रेधर्मोमहामुने !। धर्मपुष्करिणीतेन प्रसिद्धातत्कृतायतः ॥ ५१
त्वयायथातपस्तप्तमिदानींमुनिसत्तम !। तथा ततंतपस्तेन धर्मेण हरसेविना ॥ ५२॥

तपसा तस्य तुष्टस्तङ्कुलपाणिर्महेश्वरः ।
प्रादुरासीत्स्वया दीप्त्या दिशो दश विभासयन् ॥ ५३ ॥
अथाऽऽश्रममनुप्राप्तं महादेवं कृपानिधिम् । धर्मः परमसन्तुष्टस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥

धर्म उवाच

प्रणमामि जगन्नाथमीशानं प्रणवात्मकम् । समस्तदेवतारूपमादिमध्यान्तवर्जितम्
ऊर्ध्वरेतंविरूपाक्षं विश्वरूपनमाम्यहम् । समस्तजगदाधारमनन्तमजमव्ययम् ॥ ५६॥
यमानमन्तियोगीन्द्रास्तंवन्देपुष्टिवर्धनम् । नमोलोकाऽधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते ॥
नमोऽस्तुनीलकण्ठाय पशूनाम्पतयेनमः । नमः कल्मषनाशाय नमोमीढुष्टमायच ॥५८
नमोरुद्रायदेवाय कद्रुद्रायप्रचेतसे । नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ॥ ५९ ॥
नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टीनाम्पतयेनमः । नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणाम्पतयेनमः ॥ ६० ॥
इतिस्तुतोमहादेवश्शङ्करो लोकशङ्करः । धर्मस्य परमां तुष्टिमापन्नस्तमुवाचवै ॥६१॥

महेश्वर उवाच

प्रीतोऽस्म्यनेन स्तोत्रेण तवधर्ममहामते !। वरं मत्तो वृणीष्वत्वं माविलम्बकुरुष्ववै
ईश्वरेणैवमुक्तस्तु धर्मोदेवमथाब्रवीत् । वाहनन्तेभविष्यामि सदाऽहपार्वतीपते !॥६३
अयमेववरोमह्यं दातव्यस्त्रिपुरान्तक !। नवोद्वहनमात्रेण कृतार्थोहम्भवामिभो ॥ ६४॥
इत्थं धर्मेण कथितो देवो धर्ममथाऽब्रवीत् ।

ईश्वर उवाच

वाहन भव मे धर्म ! सर्वदा लोकपूजितः ॥ ६५ ॥
ममचोद्वहनेशक्तिरमोघातेभविष्यति । त्वत्सेविनांसदाभक्तिर्भयिस्यान्नाऽत्रसंशयः ॥
इत्युक्ते शङ्करेणाऽथ धर्मोऽपिवृषरूपधृक् । उवाहपरमेशानं तदाप्रभृति गालव !॥६७
महादेवस्तमारुह्य धर्मं व वृषरूपिणम् । शोभमानोभृशं धर्ममुवाचपरमामृतम् ॥ ६८॥

ईश्वर उवाच

त्वयाकृतंहियत्तीर्थं दक्षिणस्योदधेस्तटे । धर्मपुष्करिणीत्येषालोकेख्याताभविष्यति
अस्यास्तीरे जपो होमो दानं स्वाध्यायमेव च ।

अन्ये च धर्मनिवहाः क्रियमाणा नरैर्मुदा ।
अनन्तफलदाज्ञेया नात्रकार्याविचारणा । इतिदत्त्वावरंतस्मै धर्मतीर्थाय शङ्करः ॥
आरुह्यवृषभंधर्मं कैलासंपर्वतंययौ । धर्मपुष्करिणीतीरे गालवत्वमतोधुना ॥ ७२ ॥
शरीरपातपर्यन्तं तपः कुर्वन् समाहितः । वसत्वंमुनिशार्दूल पश्चान्मामाप्स्यसेध्रुवम्
यदातेजायतेभीतिस्तदातान्नाशयाम्यहम् । ममाऽऽयुधेन चक्रेण प्रेरितेनमयाक्षणात्
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ।

श्रीसूत उवाच

तस्मिन्नन्तर्हिते विष्णौ गालवो मुनिपुङ्गवः ॥ ७५ ॥
धर्मपुष्करिणीतीरे विष्णुध्यानपरायणः । त्रिकालमर्चयन्विष्णुं शालग्रामेविमुक्तिदे
उवासमतिमान्धीरो विरक्तोविजितेन्द्रियः । कदाचिन्माघमासेतु शुक्लपक्षेहरेर्दिने
उपोष्यजागरंकृत्वा रात्रौविष्णुमपूजयत् । स्नात्वापरेद्युर्द्वादश्यां धर्मपुष्करिणीजले
सन्ध्यावन्दनपूर्वाणि नित्यकर्माणिचाऽकरोत् । ततःपूजांविधातुंसहरेस्समुपचक्रमे
तुलस्यादीनिपुष्पाणिसमाहृत्यचगालवः । विधायपूजांकृष्णस्यस्तोत्रमेतदुदीरयन्

गालव उवाच

सहस्रशिरसंविष्णुं मत्स्यरूपधरंहरिम् । नमस्यामिहृषीकेशं कूर्मवाराहरूपिणम्
नारसिंहंवामनाख्यं जामदग्न्यञ्चराघवम् । बलभद्रञ्चकृष्णञ्च कल्किविष्णुंनमाम्यहम्
वासुदेवमनाधारं प्रणतार्तिविनाशनम् । आधारं सर्वभूतानां प्रणमामि जनार्दनम् ॥
सर्वज्ञंसर्वकर्तारं सच्चिदानन्दविग्रहम् । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रणतोऽस्मिजनार्दनम्
एवंस्तुवन्महायोगी गालवोमुनिपुङ्गवः । धर्मपुष्करिणीतीरे तस्थौध्यानपरायणः
एतस्मिन्नन्तरेकश्चिद्राक्षसोगालवंमुनिम् । आययौभक्षितुंघोरःक्षुधयापीडितोभृशम्
गालवंतरसासोऽयं राक्षसोजगृहेतदा । गृहीतस्तरसातेन गालवो नैर्ऋतेन सः ॥
प्रचुक्रोशदयाम्भोधिमापन्नानांपरायणम् । नारायणंचक्रपाणिं रक्षरक्षेतिवैमुहुः ॥
परेशपरमानन्द शरणागतपालक !। त्राहिमांकरुणासिन्धो रक्षोवशमुपागतम् ॥८६॥
लक्ष्मीकान्तहरेविष्णो वैकुण्ठ गरुडध्वज !। मां रक्षरक्षसाक्रान्तं ग्राहाकान्तंगजंयथा

दामोदरजगन्नाथ! हिरण्यासुरमर्द्दन। प्रह्लादमिवमांरक्षराक्षसेनाऽतिपीडितम् ॥ ६१॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य गालवस्य द्विजोत्तमाः!।

स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्वृषाकपिः ॥ ६२ ॥

स्वचक्रं प्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात्। प्रेरितं विष्णुचक्रंतद् विष्णुनाप्रभविष्णुना आजगामाथवेगेन धर्मपुष्करिणीतटम्। अनन्तादित्यसंकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ महाज्वालंमहानादं महासुरविमर्दनम्। दृष्ट्वा सुदर्शनंविष्णो राक्षसोऽथ प्रदुद्रुवे ॥६५ द्रवमाणस्यतस्याऽऽशुराक्षसस्यसुदर्शनम्। शिरश्चकर्तसहस्राज्वालामालादुरासदम् ततस्तुगालवो दृष्ट्वा राक्षसंपतितम्भुवि। मुदापरमयायुक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम् ॥

गालव उवाच

विष्णुचक्र! नमस्तेऽस्तुविश्वरक्षणदीक्षित!। नारायणकराम्भोजभूषणायणमोस्तुते युद्धेष्वसुरसंहारकुशलायमहारव। सुदर्शन! नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशिने ॥ ६६ ॥ रक्षमांभयसंविग्नं सर्वस्मादपिकल्मषात्। स्वामिन्सुदर्शनविभोधर्मतीर्थेसदाभवान् संनिधेहिहितायत्वं जगतोमुक्तिकाङ्क्षिणः। गालवेनेव मुक्तंतद्विष्णुचक्रंमुनीश्वराः

तं प्राह गालवमुनिं प्रीणयन्निव सौहृदात्।

सुदर्शन उवाच

गालवैतन्महापुण्यं धर्मतीर्थमनुत्तमम् ॥ १०२ ॥

अस्मिन्वसामि सततं लोकानां हितकाम्यया।

त्वत्पीडां परिचिन्त्याऽहं राक्षसेन दुरात्मना ॥ १०३ ॥

प्रेरितोविष्णुनाविप्रास्त्वरयासमुपागतः। त्वत्पीडकोऽपिनिहतो मयायंराक्षसाधमः

मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेःसदा।

पुष्करिण्यामहं त्वस्यां धर्मस्य मुनिपुङ्गव ॥ १०५ ॥

सततंलोकरक्षार्थं संनिधानं करोमिवै। अस्यांमत्संनिधानात्ते तथान्येषामपिद्विज ॥ इतःपरंनपीडास्याद्भूतराक्षससम्भवा। धर्मपुष्करिणीह्येषा सर्वपापविनाशिनी ॥ देवीपत्तनपर्यन्ता कृताधर्मेणवैपुरा। अत्र सर्वत्र वत्स्यामि सर्वदा मुनिपुङ्गव !॥१०८॥

अस्यामत्संनिधानात्स्याश्चक्रतीर्थमितिप्रथा । स्नानंयेत्रप्रकुर्वन्तिचक्रतीर्थेविमुक्तिदे
तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च वंशजाः सर्वएवहि । विधूतपापायास्यन्ति तद्विष्णोःपरमंपदम्
पितॄनुद्दिश्यपिण्डानांदातारोयेऽत्रगालव !। स्वर्गंप्रयान्तितेसर्वे पितरश्चापितर्पिताः
इत्युक्त्वाविष्णुचक्रंतद्गालवस्यापिपश्यतः । अन्येषामपिविप्राणांपश्यतांसहसाद्विजाः
धर्मपुष्करिणीं तां तु प्राविशत्पापनाशिनीम् ।

सूत उवाच

धर्मतीर्थस्य विप्रेन्द्राश्चक्रतीर्थमिति प्रथा ॥ ११३ ॥
प्राप्तायथातत्कथितंयुष्माकंहिमयामुदा । चक्रतीर्थसमन्तीर्थंनभूतंनभविष्यति ॥११४
अत्रस्नातानरा विप्र! मोक्षभाजोनसंशयः । कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः
चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोतिफलमुत्तमम् । इहलोके सुखंप्राप्य परत्राऽपिसुखंलभेत्
यो धर्मतीर्थं च तथैव गालवं कुर्वाणमत्युग्रसमाधियोगम् ।
सुदर्शनं राक्षसनाशनं च स्मरेत्सकृद्वा न स पापभाग्जनः ॥ ११७ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये धर्मतीर्थस्यचक्रतीर्थप्रथावर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

## चतुर्थोऽध्यायः

### दुर्दमगन्धर्वपापमोचनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवान्! राक्षसः कोऽसौ सूत ! पौराणिकोत्तम !।
विष्णुभक्तं महात्मानं यो गालवमबाधत ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच

वक्ष्यामिराक्षसंक्रूरं तंविप्राःशृणुताऽऽदरात् । यथासराक्षसोजातोमुनीनांशापवैभवात्

पुरा कैलासशिखरे हालास्येशिवमन्दिरे । चतुर्विंशतिसाहस्रा मुनयोब्रह्मवादिनः ॥३
वसिष्ठाऽत्रिमुखाःसर्वे शिवभक्तामहौजसः ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ॥ ४ ॥
रुद्राक्षमालाभरणाः पञ्चाक्षरजपे रताः । हालास्यनाथं भूतेशंचन्द्रचूडमुमापतिम् ॥
उपासाञ्चक्रिरेमुक्त्यैमधुरापुरवासिनः । कदाचित्तत्रगन्धर्वो विश्वावसुसुतोबली ॥
दुर्द्दमोनामविप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः । ललनाशतसंयुक्तो विवस्त्रः सलिलाशये ॥
विक्रीडसविवस्त्राभिः साकंयुवतिभिर्मुदा । हालास्यनाथंतीर्थंतद्वसिष्ठोमुनिभिःसह
माध्यन्दिनंकर्तुमनाययौशङ्करमन्दिरात् । तानृषीनवलोक्याऽथ रामास्ताभयकातराः
वासांस्याच्छादयामासुर्दुर्द्दमोनतुसाहसी । ततोवसिष्ठःकुपितः शशापैनंगतत्रपम् ॥

वसिष्ठ उवाच

यस्माद्दुर्दमगन्धर्व!दृष्ट्वास्माँल्लज्जयात्वया । वासोनाच्छादितंशीघ्रंयाहिराक्षसतांततः
इत्युक्त्वाःता स्त्रियः प्राह वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ।
यस्मादाच्छादितं वस्त्रं दृष्ट्वाऽस्माँल्ललनोत्तमाः ॥ १२ ॥
ततो न युष्माञ्छप्स्यामि गच्छध्वं त्रिदिवं ततः ।
एवमुक्ता वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलयस्तदा ॥ १३ ॥
प्रणिपत्यवसिष्ठं तं भक्तिनम्रेणचेतसा । मुनिमण्डलमध्ये तं वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥१४

रामा ऊचुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ! चतुराननन्दन !। दयासिन्धोऽवलोक्याऽस्मान्न कोपं कर्तुमर्हसि॥
पतिरेवहिनारीणां भूषणंपरमुच्यते । पतिहीना पियानारी शतपुत्राऽपिसामुने !॥१६
विधवेत्युच्यतेलोके तत्स्त्रीणांमरणंस्मृतम् । तत्प्रसादंकुरुमुनेपतावस्माकमादरात्
एकोऽपराधः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
क्षमांकुरुदयासिन्धो ! युष्मच्छिष्येऽत्र दुर्दमे ॥ १८ ॥
वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवं दुर्दमस्याङ्गनाजनैः । प्रोवाचवचनंभूयः प्रसन्नः सद्विजोत्तमः ॥
नमेस्याद्वचनंमिथ्या कदाचिदपिसुभ्रुवः !। उपायम्वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं श्रद्धयासह

षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वोभविताध्रुवम् । षोडशाब्दावधौचैषदुर्दमोराक्षसाकृतिः
यदृच्छयाचक्रतीर्थं गमिष्यतिसुराङ्गनाः । आस्तेतत्रमहायोगी गालवोविष्णुतत्परः ॥
भक्ष्यार्थंतंमुनिंसोऽयं राक्षसोऽभिगमिष्यति । ततोगालवरक्षार्थं प्रेरितंचक्रमुत्तमम्
विष्णुनास्यशिरोरामा हरिष्यतिनसंशयः । ततः स्वरूपमासाद्य शापान्मुक्तःसुदुर्दमः
पतिर्वस्त्रिदिवंभूयो गन्तास्त्यत्रनसंशयः । ततस्त्रिदिवमासाद्य दुर्दमोऽयंपतिर्हिवः॥
रमयिष्यति सुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेषभृत् ।

श्रीसूत उवाच

इत्युक्त्वा तु वसिष्ठस्ता दुर्दमस्य वराङ्गनाः ॥ २६ ॥
स्वाश्रमंप्रययौतूर्णं हालास्येश्वरभक्तिमान् । अथरामास्तमालिङ्ग्यदुर्दमंपतिमातुराः
रुरुदुःशोकसंविग्ना दुःखसागरमध्यगाः । प्रपश्यन्तीषु तास्वेवदुर्दमोराक्षसोऽभवत्
महादंष्ट्रोमहाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः । तं दृष्ट्वाभयसंविग्ना जग्मूरामास्त्रिविष्टपम् ॥
ततोराक्षसवेषोऽयं दुर्दमोभैरवाकृतिः । भक्षयन्प्राणिनः सर्वान्देशाद्देशंवनाद्वनम् ॥
भ्रमन्ननिलवेगोऽसौ धर्मतीर्थंतनो ययौ । एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा
ततस्तुषोडशाब्दान्तेराक्षसोऽयं मुनीश्वराः । भक्षितुंगालवमुनिंधर्मतीर्थनिवासिनम्
उपाद्रवद्वायुवेगः सचाऽस्तौषीज्जनार्दनम् । गालवेन स्तुतोविष्णुस्तदाचक्रमचोदयत्
रक्षितुंगालवमुनिंराक्षसेनप्रपीडितम् । अथागत्यहरेश्चक्रं राक्षसस्यशिरोऽहरत् ॥ ३४
ततोऽयंराक्षसंदेहं त्यक्त्वादिव्यकलेवरः । विमानवरमारुह्य दुर्दमः पुष्पवर्षितः ॥ ३५
प्राञ्जलिःप्रणतोभूत्वा ववन्देतं सुदर्शनम् । तुष्टावश्रुतिरम्याभिरश्रुभिर्वाग्भिरादरात्॥

दुर्दम उवाच

सुदर्शननमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण !। नमस्तेसुर संहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥३७
कृपालेशेनभवतस्त्यक्त्वाऽहं राक्षसींतनुम् । स्वरूपमभजंविष्णोश्चक्रायुधनमोस्तुते
अनुजानीहिमांगन्तुं त्रिदिवंविष्णुवल्लभ । भार्यामेपरिशोचन्ति विरहातुरचेतसः ॥
त्वन्मनस्कोभविष्यामि यावज्जीवंयथाह्यहम् । तथाकृपांकुरुष्वत्वंमयिचक्रनमोस्तुते
एवंस्तुतंविष्णुचक्रं दुर्दमेनसभक्तिकम् । अनुजग्राहसहसातथास्त्वितिमुनीश्वराः ॥

चक्रायुधाभ्यनुज्ञातो दुर्दमो गालवंमुनिम् । प्रणम्यतेनाऽनुज्ञातो गन्धर्वस्त्रिदिवं ययौ
दुर्दमेतुगतेस्वर्गं गालवोमुनिपुङ्गवः । सचक्रंप्रार्थयामास विष्णवायुधमनुत्तमम् ॥
चक्रायुध! नमामित्वां महासुरविमर्द्दन !। देवीपत्तनपर्यन्तं धर्मतीर्थे ह्यनुत्तमे ॥ ४४॥
सन्निधानंकुरुष्वत्वंसर्वपापविनाशनम् । त्वत्सन्निधानात्सर्वेषांस्नातानांपापिनामिह

पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षं च कुरु शाश्वतम् ।

चक्रतीर्थमिति ख्यातिं लोकेऽस्य परिकल्पय ॥ ४६ ॥

त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनांभयनाशनम् । इतःपरं भवत्वार्य! चक्रायुध'नमोऽस्तुते॥
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयंमाभवतुप्रभो !। इतिसंप्रार्थितंचक्रं गालवेन मुनीश्वराः ॥४८॥

तथवाऽस्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम् ।

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितो विप्रा ! राक्षसस्य भवो मया ॥ ४९ ॥

माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य कथितं च मलापहम् ।

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ५० ॥

ऋषय ऊचुः

व्यासशिष्यमहाप्राज्ञ!सूत! पौराणिकोत्तम !। आरभ्यदर्भशयनमादेवीपत्तनावधि ॥५१
बहुव्यायामसंयुक्तं चक्रतीर्थमनुत्तमम् । ययौविच्छिन्नतांमध्ये कथंकथयसाम्प्रतम् ॥

एन मनसि तिष्ठन्तं संशयं छेत्तुमर्हसि ।

श्रीसूत उवाच

पुरा हि पर्वताः सर्वे जातपक्षा मनोजवाः ॥ ५३ ॥

पर्यन्तपर्वतैःसार्द्धं चेरुराकाशमार्गगाः । नगरेषु च राष्ट्रेषुग्रामेषु च वनेषु च ॥ ५४ ॥
आप्लुत्याप्लुत्यतिष्ठन्तिपर्वताःसर्वतोभुवि । आक्रम्याक्रम्यतिष्ठन्तियत्रयत्रमहीधराः
तत्रतत्रनरागावस्तथान्येप्राणिसञ्चयाः । मरणंसहसा प्रापुः पीड्यमानामहीधरैः ॥
ब्राह्मणादिषुवर्णेषु नष्टेषुसमनन्तरम् । यज्ञाद्यभावात्सहसा देवता व्यसनं ययुः ॥५७॥
ततोइन्द्रोमहाक्रुद्धो वज्रमादायवेगवान् । चिच्छेदसहसापक्षान् पर्वतानांतरस्विनाम्

छिद्यमानच्छदाःसर्वेवासवेनमहीधराः । अनन्यशरणा भूत्वा समुद्रंप्राविशन्भयात् ॥
अचलेषु च सर्वेषु पतत्सुलवणार्णवे । निपेतुरर्णवभ्रान्त्या चक्रतीर्थेऽपि केचन ॥
पतितैःपर्वतैस्तैस्तु मध्यतः पूरितोदरम् । चक्रतीर्थं महापुण्यं मध्येविच्छेदमाययौ
यदृच्छयामहाशैलाः पार्श्वयोस्तत्रनापतन् । अतोवेदर्भशयने तथा देवीपुरेऽपि च ॥
विच्छिन्नमध्यंतद्द्वेधा विभक्तमिवदृश्यते । मध्यतःपतितैःशैलैश्चक्रतीर्थस्थलीकृतम्

श्रीसूत उवाच

युष्माकमेवं कथितं मुनीन्द्रा ! यन्मध्यतस्तीर्थमिदं स्थलीकृतम् ।
यथा महीध्रास्सहसा बिडौजसा विभिन्नपक्षा इह पेतुरुन्नताः ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येदुर्दमगन्धर्वशापविमोक्षणंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः

### चक्रतीर्थप्रशंसायामलम्बुसाविधूमशापविमोचनम्

श्रीसूत उवाच

प्रस्तुत्यचक्रतीर्थंतु पुण्यंपापविनाशनम् । पुनरप्यद्भुतंकिञ्चित्प्रब्रवीमिमुनीश्वराः॥
विधूमनामा हि वसुर्देवस्त्रीचाप्यलम्बुसा । ब्रह्मशापान्महाघोरात्पुराप्राप्तौ मनुष्यताम्
चक्रतीर्थे महापुण्ये स्नात्वा शापाद्विमोचितौ ।

ऋषय ऊचुः

सूत! सूत महाप्राज्ञ! पुराणार्थविशारद! ॥ ३ ॥
प्राज्ञत्वाद्व्यासशिष्यत्वादज्ञानं ते न किञ्चन । ब्रह्मकेनापराधेन सहालम्बुसयावसुम्
पुराविधूमनामानं शप्तवांश्चतुराननः । ब्रह्मशापेनघोरेणकयोस्तौ पुत्रतां गतौ ॥५॥

शापस्यान्तःकथमभूद्ब्रह्मणाशप्तयोस्तयोः । एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि

श्रीसूत उवाच

पुराहिभगवान्ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननः । साविज्या च सरस्वत्यापार्श्वयोःप्रविराजितः
सनातनेन मुनिनासनकेन च धीमता । सनत्कुमारनाम्ना च नारदेन महात्मना ॥ ८॥
सनन्दनादिभिश्चाऽन्यैःसेव्यमानोमुनीश्वरैः । सुपर्ववृन्दजुष्टेन स्तूयमानोविडौजसा
आदित्यादिग्रहैश्चैव स्तूयमानपदाम्बुजः । सिद्धैःसाध्यैर्मरुद्भिश्च किन्नरैश्चसमावृतः
गणैःकिम्पुरुषाणाञ्च वसुभिश्चाष्टभिर्वृतः । उर्वशीप्रमुखानाञ्च स्वर्वेश्यानांमनोरमम्
नृत्यं वादित्रसहितं वीक्षमाणोमुहुर्मुहुः । गोष्ठीं चक्रेसभामध्ये सत्यलोकेकदाचन ॥
मेघगर्जितगम्भीरो जनानानन्दयन्मुहुः । वीणावेणुमृदङ्गानां ध्वनिस्तत्रव्यसर्पत ॥
गङ्गातरङ्गमालानां शीकरस्पर्शशीतलः । पवमानःसुखस्पर्शो मन्दंमन्दंववौतदा ॥
पर्यायेणतदासर्वा ननृतुर्देवयोषितः । नृत्यश्रमेणखिन्नासु वेश्यास्वन्यासुसादरम् ॥
अलम्बुसादेवनारी रूपयौवनशालिनी । मदयन्तीजनान् सर्वान् सभामध्येननर्तच ॥
तस्मिन्नवसरे तस्या नृत्यन्त्याः संसदि द्विजाः ।
वस्त्रमाभ्यन्तरं वायुर्लीलया समुदक्षिपत् ॥ १७ ॥
तत्क्षिप्ते वसने स्पष्ट मूरुमूलमदृश्यत । तथाभूतान्तु तां दृष्ट्वा सर्वे ब्रह्मादयो ह्रिया ॥
सभामध्येसमासीना निमीलितदृशोऽभवन् । विधूमनामातुवसुःकामबाणप्रपीडितः
तामेवब्रह्मभवने दृष्ट्वानिलहृतांशुकाम् । हर्षसम्फुल्लनयनो हृष्टरोमाततोऽभवत् ॥ २० ॥
अलम्बुसायांतस्यांतु जातकामंविलोक्यतम् । वसुं विधूमनामानं शशाप चतुराननः
यस्मात्त्वमीदृशंकार्यं विधूमकृतवानसि । तस्माद्धिमर्त्यलोकेत्वं मानुषत्वमवाप्स्यसि
इयंचदेवयोषित्ते तत्र भार्या भविष्यति । एवं स ब्रह्मणाशप्तो विधूमः खिन्नमानसः॥
प्रसादयामास वसुब्रह्माणं प्रणिपत्य तु ।

विधूम उवाच

अस्य शापस्य घोरस्य भगवन्भक्तवत्सल !॥ २४ ॥
नाहमर्होऽस्मि देवेश रक्ष मां करुणानिधे !। एवंप्रसादितस्तेन भारतीपतिरव्ययः॥

कृपया परयायुक्तो विधूमं प्राहसान्त्वयन्

ब्रह्मोवाच

त्वयि शापोऽप्य यं दत्तो नचाऽसत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ २६॥

ततोविधिकरुणयामिशापस्यास्यतवाधुना । मर्त्यभावंसमापन्नः सहालम्बुसयाऽनया
तत्रभूत्वामहाराजः शासयित्वाचिरंमहीम् । पुत्रमप्रतिमंत्वस्यांजनयित्वामहीपतिम्

अभिषिच्य च राज्ये तं राज्यरक्षाविचक्षणम् ॥ २८ ॥

एतच्छापस्यशान्त्यर्थं दक्षिणस्योदधेस्तटे । फुल्लग्रामसमीपस्थे चक्रतीर्थे महत्तरे॥
अनयाभार्ययासार्द्धं यदास्नानंकरिष्यसि । तदात्वंमानुषंभावं जीर्णत्वचमिवोरगः ॥
विसृज्यभार्ययासार्द्धंस्वंलोकंप्रतिपत्स्यसे । चक्रतीर्थेविनास्नानं न नश्येच्छापईदृशः
इतिब्रह्मवचःश्रुत्वा विध्रूमोनातिहृष्टवान् । स्ववेश्म प्राविशत्तूर्णमामन्त्र्यचतुराननम् ॥

चिन्तयामास तत्राऽसौ मर्त्यतां यास्यतो मम ।

को वा पिता भवेद्द भूमौ का वा माता भविष्यति ॥ ३३ ॥

बहुंधेत्थंसमालोच्यविध्रूमोनिश्चिकाय सः । कौशाम्बीनगरे राजा शतानीकइतिश्रुतः

अस्ति वीरो महाभागो भार्या चाऽपि पतिव्रता ।

तस्य विष्णुमती नाम विष्णोः श्रीरिव वल्लभा ॥ ३५ ॥

तमेवपितरंकृत्वा मातरञ्चविधायताम् । सम्भविष्यामिभूलोके स्वकर्मपरिपाकतः ॥
ततःसमाल्यवन्तं च पुष्पदन्तं बलोत्कटम् । त्रीनाहूयात्मनोभृत्यान्वृत्तमेतन्न्यवेदयत्
भृत्याःश्रृणुतभद्रंवोब्रह्मशापान्महाभयात् । जनिष्यामिशतानीकाद्विष्णुमत्यामहंसुतः
इतिश्रुत्वावचोभृत्यास्तस्यप्राणाबहिश्चराः । वाष्पपूर्णमुखाःसर्वेविध्रमंवाक्यमब्रुवन्

भृत्या ऊचुः

त्वद्वियोगंवयंसर्वे क्षणोऽपिन सहामहे । तस्मान्मानुषभावंत्वमस्माभिःसहयास्यसि
शतानीकस्यराजर्षेर्मन्त्रीयोऽयंयुगन्धरः । सेनानीर्विप्रतीकश्च योऽयंप्राग्रसरो रणे ४१
नर्मकर्मसुहृद्विप्रो वल्लभाख्योमहांश्चयः । तेषांपु[illegible]ऽप्येते भविष्यामो न संशयः
शतानीकस्यराजर्षेः पुत्रभावंगतस्य ते । शु[illegible]स्तेषुतेषु च कर्मसु ॥

तानेवं वादिनः सोऽयं विभ्रमो वाक्यमब्रवीत् ।

विभ्रम उवाच

जानेऽहं भवतां स्नेहं तादृशं मय्यनुत्तमम् ॥ ४४ ॥

तथापिकथयाम्यद्य तच्छृणुध्वं हि तं वचः । ब्रह्मशापेनघोरेण स्वेनदुष्कर्मणाकृतम्
कुत्सितंमानुषंभावमहमेकोनुवर्तये । विहितं न हि युष्माकमेतच्छापानुवर्तनम् ॥
जुगुप्सितेतोमानुष्ये माकुरुध्वमतोधुना । अतःशापावधिर्यावन्मद्वियोगोविषह्यताम्
इत्युक्तवन्तं ते सर्वे माल्यवत्प्रमुखास्तदा । ऊचुःप्रणम्य शिरसा प्रार्थयन्तं पुनः पुनः
रक्षित्याकृपयाह्यस्मान्माकुरुष्वत्र साहसम् । परित्यज्यसितःसर्वान्भक्तानद्यनिरागसः

त्वद्वियोगान्महाघोरान्मानुष्यमपि कुत्सितम् ।

बहुमन्यामहे देव ! तस्मात्त्रस्याहि साम्प्रतम् ॥ ५० ॥

एवं मयाचमानांस्तांस्तत्त्वमन्यत भृत्यकान् ।

तैस्त्रिभिः सहितः सोऽयं कौशाम्बीं गन्तुमैच्छत ॥ ५१ ॥

एतस्मिन्नेवकाले तु सोमवंशविवर्द्धनः । अर्जुनाभिजने जातो जनमेजयसम्भवः ॥
शतानीकोमहीपालः पृथिवीमन्वपालयत । बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी प्रजापालनतत्परः
चतुरङ्गबलोपेतो विक्रमैकधनोयुवा । सकौशाम्बींमहाराजोनगरीमध्युवास वै ॥
तस्यमन्त्ररहस्यज्ञो मन्त्रीजातोयुगन्धरः । सेनानीर्विप्रतीकश्च तस्यप्राग्रसरोरणे ॥

नर्मकर्मसुतस्याऽऽसीद्वल्लभाख्यः सखा द्विजः ।

तस्य विष्णुमती नाम विष्णोः श्रीरिव वल्लभा ॥ ५६ ॥

ससर्वगुणसम्पन्नः शतानीकोमहामतिः । पुत्रमात्मसमं तस्यां भार्यायांनान्वविन्दत
आत्मानमसुतंज्ञात्वा सभृशं पर्यतप्यत । सयुगन्धरमाहूय मन्त्रिणं मन्त्रवित्तमम् ॥
पुत्रलाभःकथंमेस्यादितिकार्यममन्त्रयत । युगन्धरोमहीपालं पुत्रालाभेन पीडितम् ॥

हर्षयन्वचसा स्वेन वाक्यमेतदभाषत ।

युगन्धर उवाच

अस्ति शाण्डिल्यनामा तु महर्षिः सत्यवाक्शुचिः ॥ ६० ॥

शत्रुमित्रसमोदान्तस्तपःस्वाध्यायतत्परः । तमेव मुनिमासाद्य ज्वलन्तमिवपावकम्
पुत्रमात्मसमंराजन्प्रार्थयेथाविनीतवत् । कृपावान्समहर्षिस्तु पुत्रं ते दास्यति ध्रुवम्
इतितद्वचनं श्रुत्वा हर्षसम्फुल्ललोचनः । मन्त्रिणातेनसंयुक्तस्तस्यागादाश्रमंमुनेः ॥
तमाश्रमेसमासीनं प्रणनाममहीपतिः । शाण्डिल्यस्तुमहातेजा राजानंप्राप्तमाश्रमम्
दृष्ट्वा पाद्यादिभिः पूज्य स्वागतं व्याजहार सः ।

शाण्डिल्य उवाच

शतानीक किमर्थं त्वमाश्रमं प्राप्तवान्मम ॥ ६५ ॥
यत्कर्तव्यमिदानींते तद्ब्रूहिस्वकरोम्यहम् । मुनिमेवंवदन्तं तं प्रत्यवादीद्युगन्धरः ॥
भगवन्नेष वै राजा पुत्रालाभेनकर्शितः । भवन्तं शरणं प्राप्तः साम्प्रतं पुत्रकारणात् ॥
अस्यापुत्रत्वजंदुःखं त्वमपाकर्तुमर्हसि । इतितस्यवचःश्रुत्वाशाण्डिल्योमुनिसत्तमः
पुत्रलाभवरंतस्मै प्रतिजज्ञेनृपायवै । सराज्ञोवरदःश्रीमान्कौशाम्बीमेत्यसादरः ॥
पुत्रेष्ट्यांपुत्रकामस्य याजकोऽभवन्महामुनिः । ततोमुनिप्रसादेन राजादशरथोपमः ॥
यज्वारामभिवप्राप सहस्रानीकमात्मजम् । एवंविधूमःसजज्ञेशतानीकान्नृपोत्तमात् ॥
अत्रान्तरेमन्त्रिवरस्सेनानीस्तुमहीपतेः । द्विजोनर्मवयस्याश्च पुत्रान्प्रापुःकुलोचितान्
पुत्रोयुगंधरस्यासीन्मालयवान्नामभृत्यकः । यौगन्धरायणोनाम्नामन्त्रशास्त्रेषुकोविदः
विप्रतीकस्यतनयः पुष्पदन्तोबभूवह । रुमण्वानितिविख्यातः परसैन्यविमर्दनः ॥
वल्लभस्यतदाजज्ञे तनयोवैबलोत्कटः । वसन्तकइतिख्यातो नर्मकर्मसुकोविदः ॥
अथ ते ववृधुः सर्वे राजपुत्रपुरोगमाः । पञ्चहायनतांतेषु यातेषु तदनन्तरम् ॥ ७६ ॥
अलम्बुसापिस्वर्वेश्या भूपतेःकृतवर्मणः । अयोध्यायांमहापुर्यां कन्याजातामृगावती
एवंविक्रममुख्यास्ते जज्ञिरेक्षितिमण्डले । अत्रान्तरेमहासत्त्वो दुष्टःसानुचरोबली ॥
अहिदंष्ट्रइतिख्यातो महादैत्यबलोत्कटः । युक्तस्थूलशिरोनाम्ना सहायेनदुरात्मना॥
रुरोध देवनगरंबबाधेविबुधानपि । वर्तमानेदिवि महासमरेसुररक्षसाम् ॥ ८० ॥
आनिनायशतानीकं सहायार्थंपुरन्दरः । सयौवराज्ये तनयं विधायविधिनानृपः॥
प्रतस्थेरथमास्थाय युद्धायदितिजैः सह । नीतो मातलिनाऽभ्येत्य सादरंसधनुर्धरः

विधायप्रेक्षकान्देवाञ्चानदितिजानरणे । अथ दैत्याधिपःसोऽपि निहतःसमरेदिवि
ततःशक्रस्यवचसा परेतं नृपपुङ्गवम् । रथमारोप्य सहसा कौशाम्बींमातलिर्ययौ ॥
नीत्वामहीतलमसौ तत्सुतायन्यवेदयत् । ततःसहस्रानीकोऽपि विलप्यबहुदुःखितः
मन्त्रिभिःसहसम्भूय प्रेतकार्यन्यवर्तयत् । मृतंज्ञात्वापतिराज्ञी सहैवाऽनुममार च ॥
महिष्यासहसम्प्राप्ते भूपालेकीर्तिशेषताम् । भेजेराज्यंशतानीकतनयोमन्त्रिणांगिरा
युगन्धरेचिप्रतीकेवलभे च मृतेमति । यौगन्धरायणमुखास्तत्पुत्राःसर्वएवहि ॥
शतानीकसुतस्यास्यतत्तत्कार्यमकुर्वत । एवं स पालयामासमहींराजसुतोबली ॥८६॥

याते काले,महेन्द्रेण सनन्दनमहोत्सवे ।
निमन्त्रितस्तत्कथितां भाविनीमश्रृणोत्कथाम् ॥ ९० ॥

स्वर्योषिद्ब्रह्मणःशापादयोध्यायामलम्बुसा । जातामृगावतीकन्या भूपतेःकृतवर्मणः
विश्रमनामा च वसुमत्त्यंनाकललनाम्पुरा । तामेवब्रह्मसदने दृष्ट्वाऽनिलहृतांशुकाम् ॥
तदैवमदनाक्रान्तः शापान्मर्त्यत्वमागतः । सैवतेदयिताराजन् भाविनी न चिरात्सखे
यदात्वमात्मनःपुत्रं राज्येसंस्थाप्यभूपते । मृगावत्यास्त्रियासार्द्धंदक्षिणस्योदधेस्तटे
चक्रतीर्थेमहापुण्ये फुल्लग्रामसमीपतः । स्नानं करिष्यसि तदा शापान्मुक्तोभविष्यसि
इतिप्रोवाचभगवान् सत्यलोकेपितामहः । इतीन्द्रवचनंश्रुत्वा सहस्रानीकभूपतिः ॥

तदुद्वाहकृतोत्साहः समामन्त्र्य शचीपतिम् ।
कौशाम्बींप्रस्थितोहृष्टः सतिलोत्तमया पथि ॥ ९७ ॥
स्मरन्किमपि तां कान्तां भाषमाणामनन्यधीः ।
ध्यायन्त्वच्छतकतुवचो नालुलोके महीपतिः ॥ ९८ ॥

साशशापनृपमुच्चैरनादरतिरस्कृता । आहूयमानोऽपि मया सहस्रानीकभूपते !॥ ९९
मृगयावतींहृदाध्यायन्किमर्थंमामुपेक्षसे । सौभाग्यमत्तामानिन्योनसहन्तेवधीरणाम्
मामवज्ञाययांराजन् हृदाध्यायसिसाम्प्रतम् । तयाचतुर्दशसमावियुक्तस्त्वंभविष्यसि
इतिशप्तवतींराजा तामुवाचतिलोत्तमाम् । तामेवयदिलप्स्येयं तनुजांकृतवर्मणः ॥
चतुर्दशसमादुःखं सहिष्येतद्वियोगजम् । इत्युक्त्वा तद्गतमना नृपःप्रायान्निजांपुरीम्

ततःकालेनतनया भूपतेःकृतवर्मणः । तमाससाददयिता सर्वस्वंपुष्पधन्वनः ॥ १०४॥
मृगावतींसमासाद्य विलासतरुवल्लरीम् । विभ्रमाम्भोधिलहरीं ननन्दमदनद्युतिः ॥
सातस्माद्गर्भमाधत्त भवानीवेन्दुशेखरात् । पाण्डिम्नाशशिलेखेवपीयूषक्षालिताबभौ ॥
सुन्दरीदौहृदव्यक्तेरथपौरन्दरीवदिक् । रराज राजमहिषी रजनीकरगर्भिणी ॥ १०७
सादौहृदवशाद्राज्ञी यंयंकाममकामयत् । सुदुर्लभमपिप्रेम्णा तत्तत्सर्वं समाहरत् ॥
पत्यौसमीहितकरे साकदाचिन्मृगावती । स्वेच्छयावैमतिंचक्रे रक्तवापीनिमज्जने
अभिलाषंसविज्ञाय मृगावत्यामहीपतिः । कौसुम्भसलिलैःपूर्णां क्षणाद्वापीमकारयत
तस्मिन्नक्तजलेराज्ञीस्नानंसादरमातनोत् । ततस्तांरक्ततोयार्द्रां फुल्लकिंशुकसन्निभाम्
राजस्त्रीमामिषधिया सुपर्णकुलसम्भवः । महारविटकःपक्षी मुग्धां दग्धविधेर्वशात्
नीत्वाविहायसादूरं सतामचलसन्निभः । तत्याजमोहविवशामुदयाचलकन्दरे ॥ ११३
लब्धसञ्ज्ञाशनैःकम्पविलोलतनुवल्लरी । दृग्भ्यामुत्पलतुल्याभ्यां मुहुरश्रूण्यवर्तयत्

हा नाथ! मन्दभाग्याऽहं त्वद्वियोगेन पीडिता ।
का गतिः क्व नु गच्छामि द्रक्ष्यामि त्वन्मुखं कदा ॥ ११५ ॥
इत्युक्त्वा गजसिंहानां पुरोऽभूद्वधकाङ्क्षिणी ।
सा सर्वकेसरिगजैस्त्यक्ता न निधनं गता ॥ ११६ ॥

आपत्कालेनृणानूनं मरणं नैवलभ्यते । अतिदीनं समाकर्ण्य तस्याःक्रन्दितमुन्मुखाः

मृगा निष्पन्दगतयो न तृणान्यप्यभक्षयन् ।
ततस्तांकरुणासिन्धुर्मुनिपुत्रस्तथा स्थिताम् ॥ ११८ ॥

रुदतींकृपयाराज्ञीं समानीयस्वमाश्रमम् । न्यवेदयच्चतांराज्ञीं गुरवे जमदग्नये ॥११६॥
जमदग्निस्तुधर्मात्मा तामाश्वासयदन्तिके । तथाजानीहिमांभद्रे कृतवर्मा यथा तव
एवमाश्वासितातत्र कृपयाजमदग्निना । चक्रे तत्रैव सा वासमाश्रमेमुनिसङ्कुले ॥१२१
ततस्स्वल्पेनकालेन विशाखमिवपार्वती । असूततनयंबाला शौर्यधैर्यगुणान्वितम्
सूतिकागृहकृत्यानियानिकार्याणिबन्धुभिः । चक्रिरेमातृवत्तानिमृगावत्यामुनिस्त्रियः
तंसुजातंनृपसुतं काऽपि वागशरीरिणी । उदयाचलजातत्वाच्चकारोदयनाभिधम् ॥

आश्रमेसमुनीन्द्रेण कृतचूडादिकव्रतः । जग्राहसकलाविद्या जमदग्नेर्महामुनेः ॥१२५॥

युवा नृपसुतः सोऽयं कदाचिन्मृगयापरः ।

अपश्यदेकं भुजगं व्याधेन दृढसंयतम् ॥ १२६ ॥

उवाचसकृपायुक्तो व्याधमुञ्च भुजङ्गमम् । किंकरिष्यस्यनेनत्वं नैनंहिंसितुमर्हसि ॥

तमुवाचततोव्याधः सर्पणानेनपुरुष !। धनधान्यादिकलभ्ये ग्रामेषुनगरेषु च ॥ १२८

अतोऽहं जीविकामेनं नवमोक्ष्येकथञ्चन । इत्युक्त्वा पेटिकायान्तं बवन्धशबराधमः

बद्धमालोक्यभुजगं शबरायधनार्थिने । अमोचयत्स्वजननीदत्तंदत्त्वासकङ्कणम् ॥

मोचितस्तेनसर्पोऽसौनरोभूत्वाकृताञ्जलिः । स्तवं कृत्वाचसहसा तं पातालंनिनायवै

किन्नराख्येननागेन धृतराष्ट्रसुतेन सः । पातालंप्राविशत्तत्र न्यवसत्पूजितस्सुखम् ॥

धृतराष्ट्रस्यतनया भगिनीकिन्नरस्य च । ललिताख्यांगुणोपेतां प्रियाभेजेनृपात्मजः

सातस्माज्जनयामास पुत्रमप्रतिमौजसम् । ततःसाललिताप्राह त्वरितोदयनं प्रति

ललितोवाच

अहं विद्याधरीपूर्वं सुकर्णीनामनामतः । शापात्सर्पत्वमाप्ताऽस्मि शापान्तोगर्भ एपमे

ततोऽमुंप्रतिगृह्णीष्व पुत्रमप्रतिमौजसम् । ताम्बूलीस्रजमम्लानां वीणांघोषवतीमपि

तथेतिप्रतिजग्राह तत्सर्वंनृपनन्दनः । पश्यता सर्वसर्पाणां साप्यगच्छद्विहायसम् ॥

ततः सोऽपि गृहीत्वा तु वीणा मालां च पुत्रकम् ।

दुःखितामात्मजननी द्रष्टुकामस्त्वरान्वितः ॥ १३८ ॥

श्वशुरादीननुज्ञाप्य सहसा स्वाश्रमं ययौ । जननीशोकसन्तप्तामाश्वस्तां जमदग्निना॥

समेत्यतोषयामास वृत्तंचास्यैन्यवेदयत् । तदाप्रहृष्टहृदया सा बभूव मृगावती ॥१४०

अत्रान्तरेसशबरः कौशाम्ब्यांवणिज ययौ । सहस्रानीकनामाङ्कं विक्रेतुंमणिकङ्कणम्

राजमुद्रांसमालोक्य कङ्कणेसवणिग्वरः । शबरेणसमं गत्वासर्वं राज्ञेन्यवेदयत् ॥

ततः सहस्रानीकोऽयंतत्प्राप्यमणिकङ्कणम् । मृगावतीविप्रयोगविषाग्निपरिपीडितः

तद्बाहुसङ्गपीयूषशीकरासारशीतलम् । कङ्कणंहृदयेन्यस्य विललापसुदुःखितः ॥

उवाच च कथं लब्धं कङ्कणंशबरत्वया । सचैव मुक्तस्तत्प्राप्तिक्रमंतस्मैन्यवेदयत ॥

शबरस्य वचः श्रुत्वा सहस्रानीकभूपतिः ।
प्रतस्थे मन्त्रिभिः सार्द्धं प्रियालोकनकौतुकी ॥ १४६ ॥
यत्रेन्दुभास्करमुखा लभन्तेसहसोदयम् । तमेव गिरिमुद्दिश्य सहसासोऽभ्यगच्छत
किञ्चिन्मार्गं समुल्लङ्घ्य तस्थौ विश्रान्तसैनिकः ।
तस्मिन्विनिद्रेदयिता सङ्गमध्यानतत्परे ॥ १४८ ॥
वसन्तको विचित्रास्तु कथयामास वै कथाः । तत्कथाश्रवणेनेव तांराञ्जीमनिनायवै
ततःकालेनककुभ प्राप्यजम्भारिपालिताम् । जमदग्न्याऽऽश्रमं गत्वानिर्वैरहरिकुञ्जरम्
तपस्यन्त मुनिंदृष्ट्वा शिरसाप्रणनामसः । आशीर्वादैनसमुनिः प्रतिजग्राह तं नृपम् ॥
विधिवत्पूजयामास पाद्यार्घ्याचमनादिकैः । उवाच च महीपालं धर्मार्थसहितं वचः
नरनाथमृगावत्या जातोयं तनयस्तव । यशोनिधिर्महातेजा रामचन्द्रइवाऽपरः ॥
भविष्यतिदिशाजेता सिंहसंहननोऽप्ययम् । पौत्रस्तवमहाभाग !तथा ह्युदयनात्मजः
इयंमृगावतीभार्या पातिव्रत्यपरायणा । तदेनास्त्वंमहाराज प्रतिगृह्णीष्वमाचिरम् ॥
उक्त्वैवं मुनिना दत्तां तां गृहीत्वा महीपतिः ।
प्रियासहायःस्वपुरीं प्रतस्थे मन्त्रिभिर्वृतः ॥ १५६ ॥
ततःप्रविश्यकौशाम्बीं नगरीं सनृपोत्तमः । स्मरञ्छुकस्यवचनं मानुषंजन्मकुत्सयन्
महीमुदयनायैव ददौ पुत्रायधीमते । तस्मिन्नुदयनेपुत्रे राज्यपालनदक्षिणे ॥ १५८
राज्यभारंविनिक्षिप्य सशापविनिवृत्तये । वसन्तकरुमण्वद्भ्यां मृगावत्याच भार्यया
यौगन्धरायणेनाऽपि मन्त्रिपुत्रेणसंयुतः । चक्रतीर्थे महापुण्येदक्षिणस्योदधेस्तटे ॥
स्नानंकर्तुंययौतूर्णं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमे । वाहनैर्वातरंहोभिरचिराल्लवणोदधिम् ॥
सम्प्राप्यचक्रतीर्थं च स्नानंचक्रुर्यथाविधि । तेषु च स्नातमात्रेषु स्वंरूपप्रतिपेदिरे ॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः । विमानानिमहार्हाणि समारुह्यविभूषिताः
तत्तीर्थंबहुमन्वानाः स्वशापच्छेदकारणम् । पश्यतांसर्वलोकानांस्वर्गलोकंययुस्तदा
तदाप्रभृतितेसर्वे ज्ञात्वातत्तीर्थवैभवम् । पावनेचक्रतीर्थेऽस्मिन् स्नानं कुर्वन्तिसर्वदा
एवं प्रभावंतत्तीर्थं ये समागत्यमानवाः । स्नानंसकृच्चकुर्वन्ति ते सर्वेस्वर्गवासिनः ॥

एवम्वःकथितंविप्रा विधूमचरितंमहम् । यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥
यं यं कामयते कामं तं सर्वं शीघ्रमाप्नुयात् ।
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये चक्रतीर्थप्रशंसायामलम्बुसाविधूमशापविमोचनंनाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्यायः

### देवीमहिषासुरयुद्धवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

द्वैपायनविनेय! त्वं सूत पौराणिकोत्तम !। देवीपत्तनपर्यन्तं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१॥
इत्यब्रवीःपुरास्माकमतःपृच्छामिकिञ्चन । देवीपुरं हितत्कुत्र यदन्तंचक्रतीर्थकम् ॥
देवीपत्तनमित्याख्या कथंतस्याभवत्तथा। श्रीरामसेतुमूले च स्नातानाम्पापिनामपि
कीदृशंवाभवेत्पुण्यं चक्रतीर्थेतथैव च । एतच्चान्यान्विशेषांश्चब्रूहि पौराणिकोत्तम!

श्रीसूत उवाच

सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः । पठतांशृण्वतांचैतदाख्यानंपापनाशनम् ॥
यत्रपाषाणनवकं स्थापयित्वारघूद्वहः । बबन्धप्रथमंसेतुं समुद्रेमैथिलीपतिः ॥ ६ ॥
देवीपुरंतु तत्रैव यदन्तं चक्रतीर्थकम् । देवीपत्तनमित्याख्या यथातस्यसमागता ॥ ७
तद्ब्रवीमिमुनिश्रेष्ठाः ! शृणुध्वंश्रद्धयासह । पुरादेवासुरेयुद्धे देवैर्नाशितपुत्रिणा ॥
दितिः प्रोवाच तनयामात्मनः शोकमोहिता ।

दितिरुवाच

याहि पुत्रि! तपः कर्तुं तपोवनमनुत्तमम् ॥ ९ ॥
पुत्रार्थं तपसुश्रोणि नियतानियतेन्द्रिय। इन्द्रादयो नशिष्येरन्येन पुत्रेण वै सुराः॥१०
उदितातनया चैवं जनन्याताम्प्रणम्य च । स्वीकृत्यमाहिषंरूपं वनंपञ्चाग्निमध्यगा ॥

तपोतप्यतसाघोरं तेनलोकाश्चकम्पिरे । तस्यांतपःप्रकुर्वन्त्यांत्रिलोक्यासीद्भयातुरा
इन्द्रादयःसुरगणामोहमापुर्द्विजोत्तमाः । सुपार्श्वस्तपसातस्यामुनिःक्षुब्धोऽवदत्तुताम्

सुपार्श्व उवाच

परितुष्टोऽस्मिसुश्रोणि! पुत्रस्तवभविष्यति । मुखेनमहिषाकारो वपुषानररूपवान् ॥
महिषोनामपुत्रस्तेभविष्यत्यतिवीर्यवान् । पीडयिष्यतियःस्वर्गंदेवेन्द्रंचससंनिकम्
सुपार्श्वस्त्वेवमुक्त्वा तां विनिवार्य तपस्तथा ।
आगच्छदात्मनो लोकमनुनीय तपस्विनीम् ॥ १६ ॥
अथजज्ञेस महिषो यथोक्तंब्रह्मणापुरा । व्यवर्द्धतमहावीर्यः पर्वणीवमहोदधिः ॥ १७॥
ततः पुत्रो विप्रचित्तेर्विद्युन्मालयसुराग्रणीः ।
अन्येऽप्यसुरवर्यास्ते सन्ति ये भूतले द्विजाः !॥ १८ ॥
ते सर्वेमहिषस्यास्य श्रुत्वादत्तंवरम्मुदा । समागम्यमुनिश्रेष्ठाः! प्रावदन्महिषासुरम्
स्वर्गाधिपत्यमस्माकंपूर्वमासीन्महामते !। देवैर्विष्णुंसमाश्रित्यराज्यंनोह्रतमोजसा
तद्राज्यमानयबलादस्माकंमहिषासुर । वीर्यं प्रकटयस्वाऽद्य प्रभावमपिचाऽऽत्मनः ॥
अतुल्यबलवीर्यस्त्वं ब्रह्मदत्तवरोद्धतः । पुलोमजापतिं युद्धे जहिदेवगणैः सह ॥ २२॥
दनुजैरेवमुक्तोऽसौ योद्धुकामोऽमरैःसह । महावीर्योऽथ महिषः प्रययावमरावतीम्
देवानामसुराणाञ्च सम्वत्सरशतरणम् । पुराबभूवविप्रेन्द्रास्तुमुलंरोमहर्षणम् ॥ २४॥
देववृन्दंततोभीत्या पुरस्कृत्यपुरन्दरम् । कान्दिशीकमभूद्विप्रा ब्रह्माणञ्च ययौ तदा ॥
ब्रह्मातानमरान्सर्वान्समादाययया पुनः । नारायणशिवौयत्र वर्तेतेविश्वपालकौ ॥
तत्रगत्वानमस्कृत्य स्तुत्वास्तोत्रैरनेकशः । ब्रह्मा निवेदयामास महिषासुरचेष्टितम्
सुराणामसुरैः पीडां देवयोः शम्भुकृष्णयोः । इन्द्राग्नियमसूर्येन्दुकुबेरवरुणादिकान्
निराकृत्याधिकारेषु तेषांतिष्ठत्ययंस्वयम् । अन्येषांदेववृन्दानामधिकारेऽपि तिष्ठति
निरस्तंदेववृन्दंतत् स्वर्लोकादवनीतले । मनुष्यवद्विचरते महिषासुरबाधितम् ॥
एतज्ज्ञापयितुंदेवौ युवयोरहमागतः । सार्द्धंदेवगणैरत्र रक्षतन्तान् समागतान् ॥ ३१
ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा रमेश्वरमहेश्वरौ । कोपात्करालवदनौदुष्प्रेक्ष्यौ तौ बभूवतुः ॥३२

अत्यन्तकोपज्वलितान्मुखाद्विष्णोरथ द्विजाः ।
निश्चक्राम महत्तेजः शम्भोः स्रष्टुस्तथैव च ॥ ३३ ॥
अपरेषां सुराणाञ्च देहादिन्द्रशरीरतः । तेजः समुद्भूत्क्रूरं तदेकं समजायत ॥ ३४ ॥
तेषां तुतेजसांराशिर्ज्वलत्पर्वतसन्निभः । ददृशेदेववृन्दैस्तैर्ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥
तेजसांसमुदायोऽसौ नारीकाचिदभूत्तदा । शिवतेजोमुखमभूद्विष्णुतेजोभुजौ द्विजाः
ब्रह्मतेजस्तुचरणौ मध्यमैन्द्रेणतेजसा । यमस्यतेजसाकेशाः कुचौ चन्द्रस्यतेजसा ॥
जङ्घोरूकल्पितौविप्रा वरुणस्यतु तेजसा । नितम्बंपृथिवीतेजःपादाङ्गुल्योऽर्कतेजसा
कराङ्गुल्योवसूनाञ्च तेजसाकल्पितास्तथा । कुबेरतेजसाविप्रा नासिका परिकल्पिता
नवप्रजापतीनाञ्च तेजसा दन्तपङ्क्तयः । चक्षुर्द्वयंसमजनि हव्यवाहन तेजसा ॥ ४०॥
उभेसन्ध्येभ्रुवौजाते श्रवणेवायुतेजसा । इतरेषां च देवानां तेजोभिरतिदारुणैः ॥
कृतासावयवानारी दुर्गापरमभास्वरा । बभूवदुर्धर्षतरा सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ४२ ॥
सर्ववृन्दारकानीकतेजःसङ्घसमुद्भवाम् । तां दृष्ट्वाप्रीतिमापुस्ते देवामहिषबाधिताः ॥
ततो रुद्रादयो देवा विनिष्कृष्यायुधाऽऽन्निजात् ।
आयुधानि ददुस्तस्यै शूलादीनि द्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥
भूषणानिददुस्तस्यैवस्त्रमाल्यानिचन्दनम् । साऽपिदेवीतदावस्त्रभूषणैश्चन्दनादिभिः
कुसुमैरायुधैर्हारैर्भूषितापरिचारकैः । साट्टहासं प्रमुञ्चन्तीभैरवीभैरवस्वना ॥ ४६ ॥
ननाद कम्पयन्तीव रोदसीदेवसेविता । देव्याभैरवनादेन चचाल सकलं जगत् ॥४७॥
सिंहवाहनमारूढां देवीताममरास्तदा । मुनयः सिद्धगन्धर्वास्तुष्टुवुर्जयशब्दतः ॥
अतिभीषणनादेन देव्याःक्षुब्धं जगत्त्रयम् । दृष्ट्वादेवारयोदैत्या समंतस्थुरुदायुधाः ॥
महिषोऽपि महाक्रोधात्समुद्यतमहायुधः । तंशब्दमवलक्ष्याथ ययावसुरसम्वृतः ॥५०
व्यलोकयत्ततो देवीं तेजोव्याप्तजगत्त्रयीम् ।
सायुधानन्तबाह्वाढ्यां नादकम्पितभूतलाम् ॥ ५१ ॥
क्षोभिताशेषशेषादिमहानागपरम्पराम् । विलोक्यदेवीमसुराः समनह्यन्नुदायुधाः ॥
ततोदेव्यातयासार्द्धमसुराणामभूद्रणम् । अस्त्रैःशस्त्रैःशरैश्चक्रैर्गदाभिर्मुसलैरपि ॥ ५३

गजाश्वरथपादातैरसङ्ख्येयैर्महाबलः । महिषोयुयुधेतत्र देव्यासाकमरिन्दमः ॥ ५४
लक्षकोटिसहस्राणिप्रधानासुरयूथपाः । एकैकस्य तु सेनायास्तेषांसङ्ख्या नविद्यते
ते सर्वे युगपद्देवीं शस्त्रैराववुरोजसा । सापिदेवीततोभीम दैत्यमुक्तास्त्रसञ्चयम् ॥
विभेदलीलयाबाणैः स्वकार्मुकविनिःसृतैः । ससर्जदैत्यकायेषु बाणपूगान्यनेकशः
देव्याश्रयबलाद्देवा निर्भयादैत्ययूथपैः । युयुधुःसंयुगे शस्त्रैरस्त्रैरप्यायुधान्तरैः ॥५८
ततोदेवाबलोत्सिक्ता देवीशक्त्युपबृंहिताः । निःशेषमसुरान्सर्वानायुधैर्निरमूलयन्
स्वसैन्ये तु क्षयंयातेसंक्षुब्धोमहिषासुरः । चापमादायवेगेन विकृष्य च महास्वनम्
संधायमुमुचेबाणान्देवसैन्येषु भूसुराः । इन्द्रे तु दशसाहस्रं यमेपञ्चसहस्रकम् ॥६१॥
वरुणेचाऽष्टसाहस्रं कुबेरेषट्सहस्रकम् । सूर्येचन्द्रे च वह्नौ च वायौवसुषुचाश्विनोः
अन्येष्वपि च देवेषु महिषो दानवेश्वरः । प्रत्येकमयुतं बाणान्मुमुचेबलिनांवरः ॥६३
पलायन्ते ततो देवा: महिषासुरमर्द्दिताः । देवीं शरणमाजग्मुस्त्राहित्राहीतिवादिनः ॥

ततो देवीगणान्स्वस्य भूतवेतालकादिकान् ।

यूयं नाशयत क्षिप्रमासुरं बलमित्यगात् ॥ ६५ ॥

अहं तु महिषं युद्धे योधयामि बलोद्धतम् । ततो देव्यागणैः सर्वमासुरं क्षतमाशु वै॥
ततःसैन्येक्षयंनीते गणैर्देवीप्रचोदितैः ।योद्धुकामःसमहिषो गणैस्साकंव्यतिष्ठतः ॥
अत्रान्तरेमहानादः सुचक्षुश्चमहाहनुः । महाचण्डोमहाभक्षोमहोदरमहोत्कटौ ॥ ६८ ॥
पञ्चास्यःपादचूडश्च बहुनेत्रःप्रबाहुकः । एकाक्षस्त्वेकपादश्च बहुपादोऽप्यपादकः ॥
एतेचान्ये च बहवोमहिषासुरमन्त्रिणः । योद्धकामारणेदेव्याः पुरतस्त्ववतस्थिरे॥
सिंहवाहनमारुह्य ततो देवी मनोजवम् । प्रलयाम्बुदनिर्घोषश्चापमादाय भैरवम् ॥
विस्फोट्यमुमुचेबाणान्वज्रवेगसमान्युधि । दशलक्षगजैश्चापि शतलक्षैश्चवाजिभिः
शतलक्षैरथैश्चाऽपि लक्षायुतपदातिभिः । युक्तोमहाहनुर्दैत्यो देव्यायुद्धेनिपातितः ॥
सैन्ये च तस्यनिहते देव्याबाणैर्द्विजोत्तमाः । लक्षकोटिसहस्राणिप्रधानासुरनायकाः
महिषस्यहिविद्यन्ते महाबलपराक्रमाः । एकैकस्य प्रधानस्य चतुरङ्गबलं तथा ॥७५॥
महाहनोर्यथाविप्रास्तथैवाऽस्तिमहद्बलम् । तत्सर्वंनिहतंदेव्या शरैः काञ्चनपुङ्खितैः

याममात्रेण विप्रेन्द्रास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ७७ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येचक्रतीर्थप्रशंसायांदेवीपुराभिधानकथनेदेवीमहिषासुर-
युद्धोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः

### चक्रतीर्थप्रशंसायां देवीपुराभिधानकथने महिषासुरसंहारवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

स्वसैन्यमवलोक्याऽथ महिषोदानवेश्वरः । हतंदेव्यामहाक्रोधाच्चण्डकोपमथाब्रवीत्

महिष उवाच

चण्डकोप ! महावीर्य ! युद्धयस्वैनां दुरात्मिकाम् ।
तथाऽस्त्विति स चोक्त्वाऽथ चण्डकोपः प्रतापवान् ॥ २ ॥
अवाकिरद्बाणवर्षैर्देवीसमरमूर्द्धनि । बाणजालानितस्याऽऽशु चण्डकोपस्य लीलया
छित्त्वा जघान शस्त्रेण चण्डकोपस्य साऽम्बिका ।
चकर्त वाजिनोप्यस्य सारथिं च ध्वजं धनुः ॥ ४ ॥
उन्ममाथ रथञ्चापि तम्बाणैर्हृद्यताडयत् । सभग्नधन्वाविरथो हताश्वोहतसारथिः॥
चण्डकोपस्ततोदेवींखड्गचर्मधरोऽभ्यगात् । खड्गेनसिंहमाजघ्ने देव्यावाहम्महासुरः
देवीमपिभुजेसव्ये खड्गेनप्रजघानसः । खड्गोदेव्याभुजेसव्ये व्यशीर्यतसहस्रधा ॥७
ततःशूलेनमहता चण्डकोपंतदाऽम्बिका । जघानहृदयेसोऽपिपपात च ममार च ॥८॥
चण्डकोपेहतेतस्मिन्महावीर्ये महाबले । चित्रभानुर्गजाऽऽरूढो देवीं तामभ्यधावत
दिव्यांशक्तिंससर्जाऽथ महाघण्टारवाकुलाम् । न्यवारयतहुङ्कारैर्देवीशक्तिंनिराकुलाम्
ततःशूलेनसादेवीचित्रभानुंव्यदारयत् । मृते तस्मिंस्ततोयुद्धे करालोद्गतमभ्यगात्

करमुष्टिप्रहारेण सोऽपिदेव्यानिपातितः । ततो देवीमदोन्मत्तं गदया व्यसुमातनोत्

वाष्कलिम्पट्टिशेनाऽपि चक्रेणाऽपि तथाऽन्तिकम् ।

प्राहिणोद्यमलोकाय दुर्गादेवी द्विजोत्तमाः ! ॥ १३ ॥

एवमन्यान्महाकायान्मन्त्रिणोमहिषस्यच । शूलेनपोथयित्वाऽथप्राहिणोद्यमसादनम्

आत्मसैन्येहतेत्वेवं दुर्गयामहिषासुरः । माहिषेणस्वरूपेण गणान्देव्याअभर्त्सयत्

तुण्डेन निजघानैकान् खुराघातैस्तथाऽपरान् ।

निश्वासवायुभिश्चाऽन्यान्पातयामास रोषितः ॥ १६ ॥

देव्याभूतगणंत्वेवं निहत्य महिषासुरः । सिंहं मारयितुं देव्याश्चुक्रोध च ननाद च

ततः सिद्धोऽभवत्क्रुद्धो महावीर्यो महाबलः । खुराभिघातनिर्भिन्नमहीतलमहीधरः

महिषासुरमायान्तंनखैरेनंव्यदारयत् । चण्डिकाऽपिततःक्रुद्धावधेतस्याऽकरोन्मतिम्

बबन्ध पाशैर्महिषं चण्डिका कोपमूर्च्छिता ।

मोचयित्वा ततः पाशांस्त्यक्तमाहिषवेषवान् ॥ २० ॥

सिंहवेषोऽभवद्दैत्यो महाबलपराक्रमः । देवीतस्यशिरोयावच्छेत्तुं बुद्धिमधारयत्

तावत्स पुरुषोभूत्वा खड्गपाणिरदृश्यत । अथतंपुरुषंदेवी खड्गहस्तं शरोत्करैः ॥

जघानतीक्ष्णधाराग्रैः परमर्मविदारणैः । ततः सपुरुषोविप्रा गजोऽभूद्धस्तदन्तवान्

दुर्गायावाहनं सिंहं करेण विचकर्ष च । ततः सिंहः करं तस्य विचकर्तनखाङ्कुरैः

भूयोमहासुरोजातो माहिषंवेषमाश्रितः । ततः क्रुद्धा भद्रकाली महत्पानमसेवत ॥

ततःपानवशान्मत्ताजहासाऽरुणलोचना । महिषःसोऽपिगर्वेणशृङ्गाभ्यांपर्वतोत्करान्

चण्डिकाम्प्रतिचिक्षेप साचतानच्छिनच्छरैः । ततोदेवीजगन्मातामहिषासुरमब्रवीत्

देव्युवाच

कुरुगर्वंक्षणम्मूढ मधुयावत्पिवाम्यहम् । निवृत्तमधुपानाऽहं त्वान्नयिष्ये यमक्षयम्

हतेत्वयिदुराधर्षे मयादैवतकण्टके । स्वंस्वंस्थानंप्रपद्यन्तां सिद्धाःसाध्यामरुद्गणाः

उक्त्वैवंताडयामास मुष्टिनामहिषासुरम् । ताडितोऽयं ततोदेव्यामहिषोभृशविह्वलः

दक्षिणस्योदधेस्तीरे प्रादुद्रावत्वरान्वितः । अनुदुद्रावतं देवी सिंहमाऽऽरुह्यवाहनम्

अनुद्रुतस्ततोदेव्या महिषोदानवेश्वरः । धर्मपुष्करिणीतोये दशयोजनमायते ॥ ३२॥
प्रविश्यान्तर्हितस्तस्थौ दुर्गाताडनविह्वलः । ततोदुर्गासमासाद्यधर्मपुष्करिणीतटम्
न ददर्शाऽसुरंतत्र महिषं चण्डिका तदा । अशरीराततोवाणी दुर्गांदेवीमभाषत ३४
भद्रकालि! महादेवि! महिषो दानवस्त्वया । ताडितोमुष्टिनाभद्रे धर्मपुष्करिणीजले
अस्मिन्नन्तर्हितःशेते भयार्तोमारयस्वतम् । येनकेनाप्युपायेन घनं प्राणैर्वियोजय ॥
एवंवाचाऽशरीरिण्या कथिताचण्डिका तदा । प्राहस्ववाहनंसिंहमसुरेन्द्रवधोद्यता
मृगेन्द्रसिंह विक्रान्त! महाबलपराक्रम !। धर्मपुष्करिणीतोयं निःशेषंपीयतांत्वया ॥
देव्यैवमुक्तःपञ्चास्यो धर्मपुष्करिणीजलम् । निःशेषचपपौविप्रा यथापांसुर्भवेत्तथा
निरगान्महिषोदीनस्ततस्तस्माज्जलाशयात् । आयान्तमसुरं देवी पादेनाक्रम्यमूर्द्धनि
कण्ठंशूलेनतीक्ष्णेन पीडयामासकोपिता । ततोदेव्यसिमादायचकर्ताऽस्यशिरोमहत्
एवं समहिषोविप्राः स भृत्यबलवाहनः । दुर्गयानिहतोभूमौ पपात च ममार च ॥
ततोदेवाःसगन्धर्वाः सिद्धाश्चपरमर्षयः । स्तुत्वा देवीततः स्तोत्रैस्तुष्टांजहृषिरेतदा
अनुज्ञातास्ततोदेव्या देवाजग्मुर्यथागतम् । ततो देवी जगन्माता स्वनाम्नापुरमुत्तमम्
दक्षिणस्यसमुद्रस्य तीरेचक्रेतदोत्तरे । ततो देव्यनुशिष्टास्ते देवाःशक्रपुरोगमाः
पूरयामासुरमृतैर्धर्मपुष्करिणीं तदा । ततो ह्यमृततीर्थाख्यां लेभेतत्तीर्थमुत्तमम् ४६
ततो देवीवरमदात्स्वपुरस्य मुदान्विता । नीरोगश्च पशव्यश्च पुरमेतद्भवत्विति ॥ ४७

दर्दौ तीर्थाय च वरं स्नातानामत्र वै नृणाम् ।
यथाभिलाषं सिद्धिः स्यादित्युक्त्वा सा दिवं ययौ ॥४८ ॥

श्रीसूत उवाच

यतस्वनाम्नाचकारेदं देवीपुरमनुत्तमम् । देवीपत्तनमित्युक्तं तेनदेव्याः पुरोत्तमम् ॥
देवीपत्तनमारभ्य सुमुहूर्ते दिनेद्विजाः । विघ्नेश्वरं प्रणम्यादौ तिलकस्वामिनं तथा
महादेवाभ्यनुज्ञातोरामचन्द्रोऽतिधार्मिकः । स्थापयित्वाम्वहस्तेनपाषाणनवकम्मुदा
सेतुमारब्धवान्विप्रा यावल्लङ्कामतन्द्रितः । सिंहासनंसमारुह्य रामोनलकृतंशुभम्
वानरैःकारयामास सेतुमब्धौ नलादिभिः ।

पर्वतांश्छाखिनोवृक्षान् द्रुपदः काष्ठसञ्चयान् ॥ ५३ ॥
तृणानि च समाजह्रु र्वानरा वनमध्यतः ॥ ५४ ॥
नलस्तानि समादायचक्रेसेतुं महोदधौ । पञ्चभिर्दिवसैः सेतुर्यावल्लङ्कासमीपतः ॥
दशयोजनविस्तीर्णश्शतयोजनमायतः । कृतः सेतुर्नलेनाऽब्धौ पुण्यः पापविनाशनः
देवीपुरस्यनिकटे नवपाषाणरूपके । सेतुमूले नरः स्नायात्स्वपापपरिशुद्धये ॥ ५७॥
चक्रतीर्थतथास्नायाद्व्रजेत्सेत्वधिपंहरिम्। वीपत्तनमारभ्य यत्कृतंसेतुबन्धनम् ॥
तत्सेतुमूलं विप्रेन्द्रा यथार्थम्परिकल्पितम् ।
सेतोस्तु पश्चिमाकोटिर्दर्भशय्या प्रकीर्तिता ॥ ५६ ॥
देवीपुरीचप्राक्कोटिरुभयंसेतुमूलकम् । उभय पुण्यमाख्यातम्पवित्रम्पापनाशनम् ॥
यत्सेतुमूलंगच्छन्ति येनमार्गेणयेनराः । तत्तन्मार्गगतास्तेतेतस्मिंस्तस्मिन्विमुक्तिदे
स्नात्वादौसेतुमूलेतु चक्रतीर्थे तथैव च । सङ्कल्पपूर्वकम्पश्चाद्गच्छेयुःसेतुबन्धनम् ॥
देवीपुरे तथादर्भशय्यायामपिभूसुराः ॥ चक्रतीर्थेशिवेस्नानं पुण्यम्पापविनाशनम् ॥
स्मरणादुभयस्याऽपि चक्रतीर्थस्य वै द्विजाः ॥
भस्मीभवन्ति पापानि लक्षजन्मकृतान्यपि ॥ ६४ ॥
जन्माऽपिविलयंयायान्मुक्तिश्चापिकरेस्थिता । चक्रतीर्थसमन्तीर्थनभूतंनभविष्यति
भूलोके यानि तीर्थानि गङ्गादीनि द्विजोत्तमाः ॥
चक्रतीर्थस्यतान्यद्धा कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६६ ॥
आदौ तु नवपाषाणमध्येऽब्धौस्नानमाचरेत् । क्षेत्रपिण्डंततःकुर्याच्चक्रतीर्थेतथैव च
सेतुनाथं हरिं सेवेत्स्वपापपरिशुद्धये । एवं हि दर्भशय्यायां कुर्युस्तन्मार्गतो गताः
आरूढंरामचन्द्रेण यो नमस्कुरुतेजनः । सिंहासनं नलकृतं नतस्यनरकाद्भयम् ॥ ६६॥
सेतुमादौ नमस्कुर्याद्रामंध्यायन्हृदामुदा । रघुवीरपदन्यासपवित्रीकृतपांसवे ॥
दशकण्ठशिरश्छेदहेतवे सेतवे नमः । केतवे रामचन्द्रस्य मोक्षमार्गैकहेतवे ॥ ७१ ॥
सीतायामानसाम्भोजभानवे सेतवे नमः । साष्टाङ्गम्प्रणिपत्यादौमन्त्रेणानेनवै द्विजाः
ततो वेतालवरदं तीर्थं गच्छेन्महाबलम् ।

योऽध्यायमेनम्पठते मनुष्यः शृणोति वाभक्तियुतोद्विजेन्द्राः !।
स्वर्गादयस्तस्य न दुर्लभाः स्युः कैवल्यमप्यस्य करस्थमेव ॥ ६४ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येचक्रतीर्थप्रशंसायादेवीपुराभिधानकथने महिषासुर-
संहारोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

## अष्टमोऽध्यायः

### वेतालवरदतीर्थप्रशंसायां सुदर्शनवेतालत्वप्राप्तिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्सूतसर्वज्ञ कृष्णद्वैपायनप्रिय !। त्वन्मुखाद्वै कथाःश्रुत्वा श्रोत्रैकामृतवर्षिणीः
तृप्तिर्नजायतेऽस्माकंत्वद्वचोमृतपायिनाम् । अतः शुश्रूषमाणानाम्भूयोब्रूहिकथा शुभाः
वेतालवरदंनाम चक्रतीर्थस्यदक्षिणे । तीर्थमस्तिमहापुण्यमित्यवादीद्भवान्पुरा ॥ ३॥
वेतालवरदाभिख्यातीर्थस्यास्याभ्यागताकथम् । किम्प्रभावश्च तत्तीर्थमेतन्नोवक्तुमर्हसि

श्रीसूत उवाच

साधुपृष्टं हियुष्माभिरतिगुह्यमुनीश्वराः !। शृणुध्वंमनसासार्द्धं ब्रवीम्यत्यद्भुतांकथाम्
पामराअपिमोदन्ते यांवैश्रुत्वाकथांशुभाम् । कथाचेयंमहापुण्या पुरा कैलासपर्वते ॥
केलिकालेषु पार्वत्यै शम्भुना कथिता द्विजाः ।
तामब्रवीमि कथामेनामत्यद्भुततरां हि वः ॥ ७ ॥

पुरा हि गालवोनाम महर्षिः सत्यवाक्शुचिः । चिन्तयानः परम्ब्रह्मतपस्तेपेनिजाश्रमे
तस्यकन्यामहाभागा रूपयौवनशालिनी । नाम्नाकान्तिमतीबाला व्यचरत्पितुरन्तिके
आहरन्तीचपुष्पाणिबल्यर्थं तस्य वै मुनेः । वेदिसम्मार्जनादीनि समिदाहरणानि च

कुर्वन्तीपितरंबाला सम्यक्परिचचार ह । कदाचित्सातुबल्यर्थं पुष्पाण्याहर्तुमुद्यता
तस्मिन्वने कान्तिमती सुदूरमगमत्तदा । तत्र पुष्पाणि रम्याणि समाहृत्यचपेटके
तूर्णं निववृतेबाला पितृशुश्रूषणे रता । निवर्तमानां तां कन्यां विद्याधरकुमारकौ ॥
सुदर्शनसुकर्णाख्यौविमानस्थौददर्शतुः । तां दृष्ट्वागालवसुतां रूपयौवनशालिनीम्
कामस्यपत्नींललितां रतिं मूर्तिमतीमिव । सुदर्शनाभिधोज्येष्ठो विद्याधरकुमारकः
हर्षसम्फुल्लनयनश्चकमे काममोहितः । पूर्णचन्द्राननां तां वै वीक्षमाणो मुहुर्मुहुः
तयारिरंसुकामोऽसौ विमानाग्रादवातरत् । तामुपेत्यमुनेः कन्यामित्युवाचसुदर्शनः

सुदर्शन उवाच

काऽसिभद्रे सुता कस्य रूपयौवनशालिनी । रूपमप्रतिमं ह्येतदाह्लादयति मे मनः ॥
त्वांदृष्ट्वारतिसंकाशांबाधतेमांमनोभवः । सुकण्ठनामधेयस्य विद्याधरपतेरहम् ॥
आत्मजो रूपसम्पन्नो नाम्ना चैव सुदर्शनः । प्रतिगृह्णीष्वमां भद्रे रक्षमां करुणादृशा

भर्तारं मां समासाद्य सर्वान्भोगानवाप्स्यसि ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य विद्याधरसुतस्य सा ॥ २१ ॥

तदा कान्तिमतीवाक्यंधर्मयुक्तमभाषत । सुदर्शनमहाभाग! विद्याधरपतेःसुत !॥ २२
आत्मजांमांविजानीहिगालवस्यमहात्मनः । कन्याचाहमनूढाऽस्मिपितृशुश्रूषणेरता
बल्यर्थंहिपितुश्चाऽहंपुष्पाण्याहर्तुमागता । आहरन्त्याश्चपुष्पाणियामएकोन्यवर्तत
मद्विलम्बेनसमुनिर्देवतार्चनतत्परः । कोपं विधास्यतेनूनं तपस्वी मुनिपुङ्गवः ॥२५॥

तच्छीघ्रमद्य गच्छामि पुष्पाण्यप्याहृतानि मे ।
कन्याश्चापितुराधीना न स्वतन्त्राः कदाचन ॥ २६ ॥

यदिमामिच्छसिभवान्पितरम्ममयाचय । इतिविद्याधरसुतमुक्त्वाकान्तिमतीतदा
पितुराशङ्कितातूर्णमाश्रमंगन्तुमुद्यता । गच्छन्तीं तां समालोक्य विद्याधरकुमारकः
तूर्णंजग्राहकेशेषु धावित्वामदनार्दितः । अभ्येत्यनिजकेशेषु गृह्णन्तन्तं विलोक्यसा ॥
उच्चैश्चक्रन्दसहसा कुररीवमुनेःसुता । अस्माद्विद्याधरसुताज्जनक! त्राहि मां विभो॥
बलादुगृह्णातिदुष्टात्माविद्याधरसुतोऽधमाम् । इत्थमुच्चैःप्रचुक्रोशस्वाश्रमान्नातिदूरतः

तदाक्रन्दितमाकर्ण्य गन्धमादनवासिनः । मुनयस्तु पुरस्कृत्य गालवम्मुनिपुङ्गवम् ॥
किमेतदिति विज्ञातुं तं देशंतूर्णमाययुः । तं देशं तु समागत्य सर्वे ते ऋषिपुङ्गवाः !
विद्याधरगृहीतां तां ददृशुर्मुनिकन्यकाम् । विद्याधरसुतंचान्यमन्तिकेसमुपस्थितम्
एतद्दृष्ट्वामहायोगीगालवो मुनिपुङ्गवः । गतःकोपवशंकिञ्चिद्दुरात्मानं शशाप तम् ॥
कृतवानीदृशंकार्यं यत्त्वं विद्याधराधम । तद्याहि मानुषीयोनिं स्वस्यदुष्कर्मणःफलम्
सम्प्राप्यमानुषंजन्म बहुदुःखसमाकुलम् । अचिरेण तु कालेन तस्मिन्नेव तु जन्मनि
मनुष्यैरपिनिन्द्यं तद्वेतालत्वम्प्रयास्यसि । मांसानिशोणितंचैव सर्वदाभक्षयिष्यसि

वेताला राक्षसप्राया बलाद् गृह्णन्ति योषितः ।
तस्मात्त्वम्मानुषो भूत्वा वेतालत्वमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥

तवदुष्कर्मणोयोसावनुमन्ताकनिष्ठकः । सुकर्णइतिविख्यातोभवितासोऽपि मानुषः

किन्तु साक्षान्न कृतवान्यतोऽसावीदृशी क्रियाम् ।
तन्मानुषत्वमेवाऽस्य वेतालत्वन्तु नो भवेत् ॥ ४१ ॥
विज्ञप्तिकौतुकाभिख्यं यदा विद्याधराधिपम ।
द्रक्ष्यतेऽसौ कनिष्ठस्ते तदा शापाद्विमोक्ष्यते ॥ ४२ ॥

ईदृशस्यतुयःकर्तामहापापस्यकर्मणः । स त्वंसम्प्राप्यमानुष्यं तस्मिन्नेव तु जन्मनि

वेतालजन्म सम्प्राप्य चिरं लोके चरिष्यसि ।
इत्युक्त्वा गालवः कन्या गृहीत्वा मुनिभिः सह ॥ ४४ ॥

विद्याधरसुतौशप्त्वा स्वाश्रमम्प्रतिनिर्ययौ । ततस्तस्मिन्महाभागे निर्यातेमुनिपुङ्गवे
सुदर्शनसुकर्णाख्यौ विद्याधरपतेःसुतौ । मुनिशापेनदुःखार्तौचिन्तयामासतुर्भृशम्

कर्तव्यन्तौ विनिश्चित्य सुदर्शनसुकर्णकौ
गोविन्दस्वामिनामनं यमुनातटवासिनम् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणंशीलसम्पन्नं पितृत्वेसमरोचयत् । परित्यज्यस्वकंरूपमजायेतां तदात्मजौ ॥
विजयाशोकदत्ताख्यौतस्यपुत्रौबभूवतुः । सुतोविजयदत्ताख्यो ज्येष्ठोजज्ञेसुदर्शनः ॥
अशोकदत्तनामातु सुकर्णस्तु कनिष्ठकः । विजयाशोकदत्तौतु क्रमाद्यौवनमापतुः ॥

एतस्मिन्नेवकालेतु यमुनायास्तटेशुभे । अनावृष्ट्यातुदुर्भिक्षमभूद्द्वादशवार्षिकम् ॥
गोविन्दस्वामिनामातु ब्राह्मणोवेदपारगः । दुर्भिक्षोपहतांदृष्ट्वा तदानींसनिजांपुरीम्
प्रययौकाशीनगरं सपुत्रः सहभार्यया । सप्रयागंसमासाद्य पुण्यंदृष्ट्वामहावटम् ॥ ५३ ॥
कपालमालाभरणं सोऽपश्यद्यतिनंपुरः । गोविन्दस्वामिनामातु नमश्चक्रेसतंमुनिम्
सपुत्रस्यसभार्यस्य सोवादीदाशिषोमुनिः । इदं च वचनंप्राह गोविन्दस्वामिनंप्रति
ज्येष्ठेनाऽनेनपुत्रेण साम्प्रतंब्राह्मणोत्तम ।। क्षिप्रंविजयदत्तेन वियोगस्तेभविष्यति ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दस्वामिनामतः ।
सूर्ये चाऽस्तं गते तत्र सान्ध्यं कर्मसमाप्य च ॥ ५७ ॥

सभार्यःससुतोविप्रः सुदूराध्वसमाकुलः । उवासतस्यांशर्वर्यां शून्येवैदेवतालये ॥
तदान्वशोकदत्तश्च ब्राह्मणौ च समाकुलौ । वस्त्रेणास्तीर्यपृथिवींरात्रौनिद्रांसमापतुः
ततोविजयदत्तस्तु दूरमार्गविलङ्घनात् । बभूवात्यन्तमलसोभृशंशीतज्वरार्दितः ॥

गोविन्दस्वामिना पित्रा शीतबाधानिवृत्तये ।
गाढमालिङ्ग्यमानोऽपि शीतबाधां न सोऽत्यजत् ॥ ६१ ॥

बाधतेत्यर्थमधुना तात! मां शीतलोज्वरः । एतद्बाधानिवृत्त्यर्थं वह्निमानयमाचिरम्॥
इतिपुत्रवचःश्रुत्वा सर्वत्राऽग्निगवेषयन् । अलब्धवह्निः प्रोवाच पुनरभ्येत्यपुत्रकम् ॥
नवह्निंपुत्र! विन्दामि मार्गमाणोऽपिसर्वशः । रात्रिमध्येतुसम्प्राप्ते द्वारेषु पिहितेषु च
निद्रापरवशाःपौरा नैवदास्यन्तिपावकम् । इत्थं विजयदत्तोसाबुक्तः पित्राज्वरातुरः
ययाचे वह्निमेवाऽसौ पितरं दीनयागिरा । शीतज्वरसमुद्भूतशीतबाधाप्रपीडितम्
हिमशीकरवान्वायुर्द्विगुणंबाधतेऽद्यमाम् । वह्निर्नलब्धइतिवैमिथ्यैवोक्तंपितस्त्वया
दूरादेवपुरोभागे ज्वालामालासमाकुलः । शिखाभिर्लेलिहानोऽभ्रं दृश्यते पश्यपावकः
तं वह्निमानयक्षिप्रं तात! शीतनिवृत्तये । इत्युक्तवन्तन्तं पुत्रं सपिताप्रत्यभाषत ॥६६
नानृतं वच्मिपुत्राद्य सत्यमेवब्रवीम्यहम् । वह्निमान्योयमुद्देशो दूरादेव विलोक्यते ॥
पितृकाननदेश तं पुत्रजानीहिसाम्प्रतम् । यद्येपोऽभ्रंलिहज्वालःपुरस्ताज्ज्वलतेऽनलः
पुत्रवित्रासजनकं तंजानीहिचितानलम् । अमङ्गलोनसेव्योऽयंचिताग्निःस्पर्शदूषितः

तस्यचायुःक्षयंयाति सेवतेयश्चितानलम् । तस्मात्तवायुर्हानिर्माभूयादितिमयासुत!
अमङ्गलस्तथास्पृश्यो नाऽऽनीतोयं चितानलः । इत्युक्तवन्तं पितरंसदीनःप्रत्यभाषत
अयंशावानलोवास्यादध्वरानलएववा । सर्वथानीयतामेव नोचेन्मेमरणंभवेत् ॥ ७५ ॥

पुत्रस्नेहाभिभूतोऽथ समाहर्तुं चितानलम् ।
गोविन्दस्वामिनामा तु श्मशानं शीघ्रमभ्यगात् ॥ ७६ ॥

गोविन्दस्वामिनिगतेसमाहर्तुंचितानलम् । तूर्णंविजयदत्तोऽपितदागच्छन्तमन्वयात्

संप्राप्य तापनिकटं विकीर्णास्थिचितानलम् ।
आलिङ्गन्निवसोद्वेगं शनैर्निर्वृतिमाप्तवान् ॥ ७८ ॥

अथावादीत्सपितरन्तदिदंपरिवर्तुलम् । अतिदीप्तं विभात्यग्नौ किंरक्ताम्बुजसन्निभम्
इतितस्यवचःश्रुत्वा पुत्रस्य ब्राह्मणोत्तमः । निपुणन्तं निरूप्यैतद्वचनं पुनरब्रवीत् ॥

गोविन्दस्वाम्युवाच

एतत्कपालमनलज्वालावलयवर्तुलम् । वसाकीकसमासाढ्यमेतद्रक्ताम्बुजोपमम् ॥
द्विजस्यसूनु श्रुत्वेतिकाष्ठाग्रेणजघानतत् । येनतत्स्फुटनोद्गीर्णवसासिक्तमुखोऽभवत्
कपालघट्टनाद्रक्तं यत्संसक्तंमुखेतदा । जिह्वयालेलिहानोऽसौ मुहुस्तद्रक्तमास्वदत् ॥
आस्वाद्यैवंसमादाय तत्कपालंसमाकुलः । पीत्वावसामहाकायो बभूवाऽतिभयङ्करः
सद्योवेतालतांप्राप तीक्ष्णदंष्ट्रस्तदानिशि । तस्याऽट्टहास घोषेण दिनश्चप्रदिशस्तदा
द्यौरन्तरिक्षंभूमिश्च स्फुटिताइवसर्वशः । तस्मिन्वेगात्समाकृष्य पितरं हन्तुमुद्यतः
माकृथाःसाहसमिति प्रादुरासीद्वचोदिवि । सदिव्यांगिरमकर्ण्यवेतालोऽतिभयङ्करः
पितरन्तंपरित्यज्य महावेगसमन्वितः । तूर्णमाकाशमाविश्य प्रययावस्खलद्गतिः ॥
सगत्वादूरमध्वानं वेतालैःसहसङ्गतः । तमागतंसमालोक्य वेतालास्सर्वएवते ॥
कपालस्फोटनादेव वेतालत्वंयदाप्तवान् । कपालस्फोटनामानमाह्वयंचक्रिरेततः ॥
ततःकपालस्फोटोऽसौ वेतालैःसर्वतोवृतः । नरास्थिभूषणाख्यस्यसद्योवेतालभूपतेः
अन्तिकंसहसाप्राप महाबलसमन्वितः । नरास्थिभूषणश्चैनं सेनापतिमकल्पयत् ॥

तं कदाचित्तु गन्धर्वश्चित्रसेनाभिधो बली ।

नरास्थिभूषणं सङ्ख्ये न्यवधीत्सोऽपि संस्थितः ॥ ६३ ॥
नरास्थिभूष गेतस्मिन्गन्धर्वेणहतेयुधि । तद्राकपालस्फोटोऽसौ तत्पदंसमवाप्तवान्
विद्याधरेन्द्रस्य सुतः सुदर्शनो मनुष्यतां वै प्रथमं स गत्वा ।
वेतालतां प्राप्य महर्षिशापात्क्रमाच्च वेतालपतिर्बभूव ॥ ६५ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणेएकाशीतिसाहस्रयांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
श्रीवेतालवरदतीर्थप्रशंसायांसुदर्शनवेतालत्वप्राप्तिवर्णनं-
नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः

### सुदर्शनसुकर्णशापमोक्षणवर्णनम्

सूत उवाच

ततःसविप्रःप्रत्यूषे पुत्रशोकेनपीडितः । अशोकदत्तसंयुक्तो भार्यया विललापह ॥ १
विलपन्तं समालोक्य गोविन्दस्वामिनं द्विजाः ।
वणिक्समुद्रदत्ताख्यः समानिन्ये निजं गृहम् ॥ २ ॥
समानीयसमाश्वास्य दयायुक्तोवणिग्वरः । स्वधनानांहिसर्वेषां रक्षितारमकल्पयत्
स्मरन्महायतिवचः पुत्रदर्शनलालसः । स तस्यौवणिजोगेहे पुत्रभार्यासमन्वितः ॥
अशोकदत्तनामातु द्वितीयोविप्रनन्दनः । शस्त्रेचैवतथाशास्त्रे बभूवाऽतिविचक्षणः
तथाऽन्यास्वपि विद्यासु नास्ति तत्सदृशो भुवि ।
कृतविद्यो द्विजसुतः प्रख्यातो नगरेऽभवत् ॥ ६ ॥
अत्रान्तरेनरपतिं प्रतापमुकुटाभिधम् । काशिदेशाधिपंमल्लः कश्चिदभ्याययौबली ॥
प्रतापमुकुटोराजा मल्लस्याऽस्यजयाय सः । बलिनंद्विजपुत्रन्तमाह्वयामासभृत्यकैः ॥
तमागतंसमालोक्य प्रतापमुकुटोऽब्रवीत् । अशोकदत्तसहसा मल्लमेनंबलोत्कटम् ॥६

दुर्जयश्चहि सङ्ग्रामे त्वं वै बलवताम्वरः । दाक्षिणात्यमहामल्लपतावस्मिञ्जितेत्वया
यदिष्टंतवत्सर्वं दास्याम्यहमसंशयः । इतितस्यवचःश्रुत्वा बलवान्द्विजनन्दनः ॥
दाक्षिणात्यं महामल्लनृपतिं समताडयत् । ताडितो द्विजपुत्रेण मल्लः स बलिनाबला
सद्योविवर्तनयनःपरासुर्न्यपतद्भुवि । द्विजपुत्रस्य तत्कर्म देवैरपि सुदुष्करम् ॥ १३॥
प्रतापमुकुटो दृष्ट्वा प्रसन्नहृदयोऽभवत् । दत्त्वा बहुधनान् ग्रामान् समीपेस्थापयत्तदा
सकदाचिन्महाराजः सहितो द्विजसूनुना । सन्ध्यायां विजनेदेशे चचार तुरगेण वै॥

द्विजसूनुसखस्तत्र दीनां वाणीमथाऽशृणोत् ।

राजन्नल्पापराधोऽहं शत्रुप्रेरणयाऽसकृत् ॥ १६ ॥

दण्डपालेननिहितः शूले निर्घृणचेतसा । दीनमद्यचतुर्थं मे शूलस्थस्यैव जीवतः ॥

प्राणाः सुखेन निर्यान्ति नहि दुष्कृतकर्मणाम् ।

भृशं माम्बाधते तृष्णा तां निवारय भूपते !॥ १८ ॥

इतिदीनांसमाकर्ण्य वाचंराजाद्विजात्मजम् । अशोकदत्तनामानं धैर्यवन्तमभाषत ॥
अस्मैनिरपराधाय शूलप्रोतायजन्तवे । तृष्णार्दितायदातव्यं द्विजसूनो! त्वयाजलम् ॥
इत्यादिष्टो नरेन्द्रेण सहसा द्विजनन्दनः । जलपूर्णं समादाय कलशं वेगवान्ययौ ॥
तच्छमशानंसमासाद्य भूतवेतालसङ्कुलम् । शूलप्रोतायवैतस्मै जलंदातुंसमुत्सुकः ॥

ददर्शाऽधः स्थितां नारीं नवयौवनशालिनीम् ।

उदैक्षत महाकान्ति मूर्तामिव रतिं द्विजः ॥ २३ ॥

तामालोक्यततःप्राहधैर्यवान्द्विजनन्दनः । काऽसिभद्रेवरारोहे श्मशानेविजनेस्थिता

अस्याधस्तात्किमर्थं त्वं शूलप्रोतस्य तिष्ठसि ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा सा प्राह रुचिरानना ॥ २५ ॥

पुरुषोवल्लभोऽयंमे शूलेराज्ञासमर्पितः । धनयथातिकृपणः पश्यन प्राणान्नमुञ्चति ॥ २६
आसन्नमरणंचैनमनुयातुमिहस्थिता । तृषितोयाचतेवारी मामयंव्यथते मुहुः ॥ २७॥
शूलप्रोतोद्धतग्रीवं मुमूर्षुं प्राणनायकम् । नाऽस्मिपाययितुंशक्ता जलमेनमधःस्थिता
अशोकदत्तस्तच्छ्रुत्वा करुणावरुणालयः । तत्कालसदृशंवाक्यं तां वज्रमब्रवीत्तदा ॥

अशोकदत्त उवाच

मातर्मत्स्कन्धमारुह्य देह्यस्मैशीतलंजलम् । सातथेनितप्राभाष्य तरुणीत्वरयान्विता
आनम्रवपुरस्तस्य स्कन्धंपद्भ्यां रुरोह वै । द्विजसूनुर्ददर्शाथ शोणितं नूतनं पतत्
किमेतदितिसोऽपश्यदुन्नम्यसहसामुखम् । भक्ष्यमाणंतयातत्सविज्ञायद्विजनन्दनः
अशोकदत्तो जग्राहतस्याः पादंसनूपुरम् । ततोऽगान्नूपुरन्त्यक्त्वाबद्धरत्नंविहायतम्
प्रत्युप्तानेकरत्नाढ्यं तदादायचनूपुरम् । अशोकदत्तःप्रययौ तच्छ्मशानन्नृपान्तिकम्
श्मशानवृत्तनत्सर्वं स नृपायनिवेद्य वै । महर्घ्यं रत्नप्रत्युप्तं नूपुरञ्च ददौ तदा ॥३५॥
ज्ञात्वातद्वीरचरितं वीरैरन्यैः सुदुष्करम् । ददौ मदनलेखाख्यां सुतांतस्मैमहीपतिः
कदाचिदथतद्दिव्यं नूपुरं वीक्ष्य भूपतिः । अस्य नूपुरवर्यस्य तुल्यं वै नूपुरान्तरम्
कुतोवालभ्यतइति सादरं समचिन्तयत् । अशोकदत्तस्तुतदाविज्ञाय नृपकाङ्क्षितम्
नूपुरान्तरसिद्ध्यर्थं चिन्तयामास चेतसा । श्मशाने नूपुरमिदं यतः प्राप्तं मयापुरा

तां नूपुरान्तरप्राप्त्यै कुत्र द्रक्ष्यामि साम्प्रतम् ।
इत्थं वितर्क्य बहुधा निश्चिकाय महामतिः ॥ ४० ॥

विक्रेष्यामि महामांसं समेत्यपितृकाननम् । तत्र राक्षसवेताल पिशाचादिषुसर्वशः

मन्त्रैराहूयमानेषु साप्याऽऽयास्यति राक्षसी ।
तामागतामबलाद्गृह्य तद्ग्रहीष्यामि नूपुरम् ॥ ४२ ॥

राक्षसानांसहस्रं वा पिशाचानांतथायुतम् । वेतालानांतथाकोटिर्नलक्ष्याबलिनोमम
इतिनिश्चित्यमनसा श्मशानंसहसाययौ । विक्रीणानोमहामांसं मन्त्राहूयराक्षसान्
गृहाणेत्युच्चयावाचा चचारश्रावयन्दिशः । विक्रीयतेमहामांसं गृह्यतां गृह्यतामिति ॥
तत्रराक्षसवेतालाः कङ्कालाश्चपिशाचकाः । अन्येचभूतनिवहाः समाजग्मुः प्रहर्षिताः
भक्षयिष्यामहे सर्वे मांसमिष्टतमन्त्विति । तत्रागच्छत्सुसर्वेषु रक्षःकन्यासमावृता

आययौ राक्षसी साऽपि मांसभक्षणलालसा ।
गवेषयंस्तदाविप्रस्तां समुद्वीक्ष्य राक्षसीम् ॥ ४८ ॥

सेयंदृष्टापुरेत्येव प्रत्यभिज्ञानमाप्तवान् । तामाहद्विजपुत्रोऽस्यद्देहि मे नूपुरन्त्विति ॥

सातस्य वचनं श्रुत्वा प्रीतावाक्यमथाब्रवीत् । ममैव च त्वयानीतं पुराचीरेन्द्रनूपुरम्
गृहाणरत्नरुचिरं द्वितीयमपिनूपुरम् । इत्युक्त्वानूपुरं तस्मैस्वसुताञ्च ददौप्रियाम्
विद्युत्केश्या तदा दत्तां प्रियाविद्युत्प्रभाभिधाम् ।
विप्रः सम्प्राप्य मुमुदे रूपयौवनशालिनीम् ॥५२ ॥
विद्युत्केशीतुजामात्रे हेमाब्जमपिसाददौ । विद्युत्प्रभां नूपुरञ्च हेमाब्जमपिलभ्यसः
श्वश्रूमाभाष्यसहसा पुनः प्रायान्नृपान्तिकम् । ततःप्रतापमुकुटो नूपुरप्राप्तिनन्दितः
शौर्यधैर्यसमायुक्तंप्रशशंसद्विजात्मजम् । अथविद्युत्प्रभांविप्रःसोऽब्रवीद्रहसिप्रियाम्
मात्रातवकुतोलब्धमेतद्धेमाम्बुजं प्रिये । एतत्तुल्यानिचान्यानि यतः प्राप्स्येवरानने ॥
द्विजात्मजंततः प्राह पतिंविद्युत्प्रभारहः । प्रभो! कपालविस्फोटनाम्नोवेतालभूपतेः
अस्ति दिव्यं सरः किञ्चिद्धेमाम्बुजपरिष्कृतम् ।
तव श्वश्रवा जलक्रीडां वितन्वन्त्येदमाहृतम् ॥ ५८ ॥
इतिश्रुत्वा वचस्तत्र मांनयेतिजगादसः । ततः सासहसाविप्रं निन्येतत्काञ्चनंसरः
ततः स हेमपद्मानामाजिहीर्षुर्द्विजात्मजः ।
तद्विघ्नकारिणः सर्वान्वेतालादींस्ततोऽवधीत् ॥ ६० ॥
स्वयंकपालविस्फोटं निहताशेषसैनिकम् । ददर्शवेतालपतिं तञ्चहन्तुं प्रचक्रमे ॥
अत्रान्तरेमहातेजा नाम्नाविज्ञप्तिकौतुकः । विद्याधरपतिः प्राप्य विमानेनेनमब्रवीत्
अशोकदत्तविपेन्द्र! साहसंमाकृथाइति । तदाकर्ण्यद्विजसुतो विमानवरसंस्थितम्॥
ददर्शप्रभयायुक्तं विद्याधरपतिंदिवि । तस्यदर्शनमात्रेण शापान्मुक्तोद्विजात्मजः ॥
सन्त्यज्य मानुषंरूपं दिव्यरूपमवाप्तवान् । विमानवरमाऽऽरूढं दिव्याभरणभूषितम्
शापान्मुक्तंसुकर्णन्तं प्राहविज्ञप्तिकौतुकः । अयं सुकर्णतेभ्राता गालवस्यमहामुनेः ॥
शापाद्वेतालतांप्राप तत्कन्यास्पर्शपातकी । त्वंचशप्तः पुरातेन तत्पापस्याऽनुमोदकः
तवाऽयमल्पपापस्य शापो मद्दर्शनावधिः ।
कल्पितस्तेनमुनिना शापान्तो नाऽस्य कल्पितः ॥ ६८ ॥
तदेहि मुक्तशापोऽसि सुकर्णस्वर्गमारुह । ततः सुकर्णस्तम्प्राह विद्याधरकुलाधिपम्

विद्याधरपते! भ्रात्रा विनाज्येष्ठेनसाम्प्रतम् । सर्वभोगयुतं स्वर्गं नैवं गन्तुंसमुत्सहे
शापस्यान्तोयथाभूयान्ममभ्रातुस्तथा वद । तमुवाच महातेजास्तदा विज्ञप्तिकौतुकः
दुर्निवारमिमंशापमन्यःकोवानिवारयेत् । किन्तुगुह्यतमं किञ्चित्तववक्ष्यामिसाम्प्रतम्
ब्रह्मणासनकादिभ्यो मुनिभ्यः कथितं पुरा । सर्वतार्थाश्रयेपुण्येदक्षिणस्योदधेस्तटे
चक्रतीर्थसमीपे तु तीर्थमस्तिमहत्तरम् । महापातकसङ्घाश्च यस्य दर्शनमात्रतः ॥७४
नश्यन्तितत्क्षणादेव नजानेस्नानजम्फलम् । तत्रगत्वातवज्येष्ठो यदि स्नायान्महत्तरे
वेतालत्वं त्यजेन्नूनं तदागालवशापजम् । सुकर्णस्तद्वचःश्रुत्वा भ्रात्रावेतालरूपिणा
सहितः सहसाप्रायाद्दक्षिणस्योदधेस्तटम् । दक्षिणंचक्रतीर्थाख्यादुत्तरंगन्धमादनात्
ब्रह्मणासनकादिभ्यः कथितं तीर्थमभ्यगात् । तत्तीर्थकूलमासाद्यभ्रातरं चेदमब्रवीत्
भ्रातर्गालवशापस्य घोरस्यास्यनिवृत्तये । तीर्थेस्मिन्नचिरात्स्नाहिसर्वतीर्थोत्तमोत्तमे
तस्मिन्नवसरेविप्रास्तस्यतीर्थस्यशीकराः । न्यपतंस्तस्यगात्रेषुवायुना वै समाहृताः
स तच्छीकरसंस्पर्शात्त्यक्त्वा वेतालतां तदा । तदैवमानुषं भावंद्विजपुत्रत्वमाप्तवान्
ततः सङ्कल्प्यसह सातस्मिस्तार्थोत्तमोत्तमे । मनुष्यत्वनिवृत्त्यर्थंनिममज्जद्विजात्मजः
उत्तिष्ठन्नेवसहसा दिव्यंरूपमवाप्तवान् । विमानवरमारूढो देवस्त्रीपरिवारितः ॥
सर्वाभरणसंयुक्तः सहभ्रात्रासुदर्शनः । श्लाघमानश्च तत्तीर्थं नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥
विज्ञप्तिकौतुकञ्चापि पुरस्कृत्य दिवं ययौ । तदा प्रभृति तत्तीर्थं वेतालवरदाभिधम्
वेतालत्वंविनष्टंयच्छीकरस्पर्शमात्रतः । य इदं तीर्थमासाद्य चक्रतीर्थस्य दक्षिणे ॥
स्नानं कदाचित्कुर्वन्ति जीवन्मुक्ताभवन्तिते । एतत्तीर्थसमंपुण्यं न भूतंन भविष्यति
घोरां वेतालतां त्यक्त्वा दिव्यतां स यदाप्तवान् ॥ ८८ ॥
अत्र सङ्कल्प्यचस्नात्वा वेतालवरदे शुभे । पितृभ्यःपिण्डदानञ्च कुर्याद्वैनियमान्वितः
एवं वःकथितंविप्रास्तस्यतीर्थस्यवैभवम् । वेतालवरदाभिख्यायथावास्यसमागताः
यः पठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा स मुच्यते ॥ ९१ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
वेतालवरदतीर्थप्रशंसनवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९

# दशमोऽध्यायः

## गन्धमादनप्रशंसायांपापविनाशप्रभावकथनम्

### श्रीसूत उवाच

वेतालवरदेतीर्थे नरःस्नात्वाद्विजोत्तमाः !। ततः शनैःशनैर्गच्छेद्गन्धमादनपर्वतम् ॥ १
योऽम्बुधौसेतुरूपेण वर्तते गन्धमादनः । समार्गोब्रह्मलोकस्य विश्वकर्त्राविनिर्मितः
लक्षकोटिसहस्राणि सरांसिसरितस्तथा । समुद्राश्चमहापुण्यावनान्यप्याश्रमाणिच
पुण्यानिक्षेत्रजातानि वेदारण्यादिकानि च । मुनयश्चवशिष्ठाद्याः सिद्धचारणकिन्नराः
लक्ष्म्यासह धरण्या च भगवान्मधुसूदनः । सावित्र्या च सरस्वत्या सहैव चतुराननः
हेरम्बःषणमुखश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः । आदित्यादिग्रहाश्चैव तथाऽष्टौ वसवो द्विजाः
पितरो लोकपालाश्च तथाऽन्येदेवतागणाः । महापातकसङ्घानां नाशने लोकपावने ॥
दिवानिशंवसन्त्यत्र पर्वतेगन्धमादने । अत्र गौरी सदा तुष्टा हरेण सह वर्तते ॥ ८॥
अत्रकिन्नरकान्तानां क्रीडाजागर्तिनित्यशः । तस्यदर्शनमात्रेणबुद्धिसौख्यंनृणांभवेत्
तन्मूर्द्धनिकृतावासाः सिद्धचारणयोषितः । पूजयन्तित्सदाकालं शङ्करंगिरिजापतिम्
कोटयोब्रह्महन्यानामगम्यागमकोटयः । अङ्गलग्नैर्विनश्यन्ति गन्धमादनमारुतैः ॥
असावुल्लोलकल्लोले तिष्ठन्मध्येमहाम्बुधौ । आसीन्मुनिगणैःसेव्यः पुरावैगन्धमादनः
ततो नलेनसेतौ तु बद्धेतन्मध्यगोचरः । रामाज्ञयाऽखिलैः सेव्यो बभूव मनुजैरपि
सेतुरूपं गिरिंतं तु प्रार्थयेद्गन्धमादनम् । क्षमाधर ! महापुण्य ! सर्वदेवनमस्कृत !॥
विष्ण्वादयोऽपियं देवास्सेवन्तेश्रद्धयासह । तं भवन्तमहंपद्भ्यामाक्रमामि नगोत्तम!
क्षमस्व पादघातम्मे दयया पापचेतसः । त्वन्मूर्द्धनिकृतावासं शङ्करं दर्शयस्व मे १६
प्रार्थयित्वा नरस्त्वेवं सेतुरूप नगोत्तमे !। ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं गन्धमादनम्॥
अब्धौ तत्र नरस्स्नात्वा पर्वते गन्धमादने । पिण्डदानंततःकुर्यादपिसर्षपमात्रकम् ॥
तृप्तिंप्रयान्तिपितरस्तस्ययावद्युगक्षयः । शमीदलसमानान्वादद्यात्पिण्डान्पितृन्प्रति

स्वर्गस्थामोक्षमायान्तिस्वर्गनरकवासिनः । ततस्तस्योपरिमहातीर्थंलोकेषुविश्रुतम्
सर्वतीर्थोत्तमंपुण्यं नाम्नापापविनाशनम् । अस्तिपुण्यतमंविप्राः! पवित्रे गन्धमादने॥
यस्यसंस्मरणादेव गर्भवासो न विद्यते । तत्प्राप्य तु नरस्स्नायात्स्वदेहमलनाशनम्
तत्र स्नानान्नरो यान्ति वैकुण्ठं नाऽत्र संशयः ।

ऋषय ऊचुः

सूतपापविनाशाख्यतीर्थस्यब्रूहिवैभवम् । व्यासेन बोधितस्त्वंहि वेत्सिसर्वंमहामुने!

श्रीसूत उवाच

ब्रह्माश्रमपदेवृत्तां पार्श्वेहिमवतःशुभे । वक्ष्यामिब्राह्मणश्रेष्ठा! युष्माकंतु कथां शुभाम्
अस्याऽऽश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदंशुभे । नानावृक्षगणाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥
बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् । सिद्धचारणसङ्घुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम्
यतिभिर्बहुभिःकीर्णं तापसैरुपशोभितम् ।
ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ २७ ॥
नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णंतपस्विभिः । दीक्षितैर्यागहेतोश्च यताहारैःकृतात्मभिः
वेदाध्ययनसम्पन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम् । वर्णिभिश्चगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः
स्वाश्रमाचारनिरतैः सुवर्णोक्तविधायिभिः ।
बालखिल्यैश्च मुनिभिः सम्प्राप्तैश्च मरीचिभिः ॥ ३० ॥
तत्राऽऽश्रमेपुराकश्चिच्छूद्रोदृढमतिर्द्विजाः । साहसीब्राह्मणाभ्याशमाजगाममुदान्वितः
आगतोह्याश्रमदद्ं पूजितश्चतपस्विभिः । नाम्नादृढमतिःशूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै ॥
तान्सदृष्ट्वामुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः । कुर्वतो विविधान्यज्ञान्संप्रहृष्यत शूद्रकः
अथाऽस्यबुद्धिरभवत्तपःकर्तुमनुत्तमम् । ततोऽब्रवीत्कुलपतिं मुनिमागत्यतापसम् ॥

दृढमतिरुवाच

तपोधन!नमस्तेऽस्तु रक्ष मां करुणानिधे । तव प्रसादादिच्छामि धर्मंचर्तुं द्विजर्षभ!
तस्मादभिगतं मां त्वं यागेदीक्षयसुव्रत !। ब्रह्मन्नवरवर्णोऽहं शूद्रोजात्याऽस्मिसत्तम
शुश्रूषां कर्तुमिच्छामि प्रपन्नाय प्रसीद मे । एवमुक्ते तु शूद्रेण तमाह ब्राह्मणस्तदा ॥

कुलपतिरुवाच

यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक् ।
श्रूयतां यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरतो भव ॥ ३८ ॥
उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित् ।
उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्य विद्यते ॥ ३९ ॥

नाऽध्यापयेद् बुधःशूद्रंतथानैव च याजयेत् । न पाठयेत्तथाशूद्रं शास्त्रंव्याकरणादिकम्
काव्यं वा नाटकं वापि तथाऽलङ्कारमेवच । पुराणमितिहासंच शूद्रं नैव तु पाठयेत्
यदिचोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानिकर्हिचित् । त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रंतंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात्
शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चण्डालवत्त्यजेत् । शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतःपरिवर्जयेत् ॥४३
अतःशुश्रूषभद्रन्ते ब्राह्मणान्श्रद्धयासह । शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥
नहि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुंत्वमर्हसि । एवमुक्तस्तुमुनिना स शूद्रोऽचिन्तयत्तदा
किं कर्तव्यं मयात्वद्य व्रतेश्रद्धाहिमेपुरा । यथास्यान्ममविज्ञानं यतिष्येऽहं तथाऽद्यवै
इतिनिश्चित्यमनसा शूद्रोदृढमतिस्तदा । गत्वाऽऽश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजंशुभम् ॥
तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानिच । पुष्पारामादिकंचापि तटाकखननादिकम् ॥
श्रद्धयाकारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः । अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि
बलिंचकृत्वाहुत्वाच देवतान्यभ्यपूजयत् । सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः
नित्यंकन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथाफलैः । अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान्
एवंहिसुमहाकालो व्यतिचक्रामतस्यवै । अथाश्रममगात्तस्य सुमतिर्नामनामतः ॥

द्विजो गर्गकुलोद्भूतः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
स्वागतेन मुनिम्पूज्य तोषयित्वा फलादिकैः ॥ ५३ ॥

कथयन्वै कथाः पुण्याः कुशलं पर्यपृच्छत । इत्थं स प्रणिपाताद्यैरुपचारैस्तुपूजितः
आशीर्भिरभिनन्द्यैनं प्रतिगृह्यचसत्क्रियाम् । तमापृच्छ्यप्रहृष्टात्मा स्वाश्रमंपुनराययौ
एवंदिनेदिनेविप्रः शूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान् । आगच्छदाश्रमंतस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम्
बहुकालं द्विजस्याभूत्संसर्गःशूद्रयोनिना । स्नेहस्य वशमापन्नः शूद्रोक्तं नाऽतिचक्रमे

अथाऽऽगतं द्विजं शूद्रः प्राहस्नेहवशीकृतम् । हव्यकव्यविधानं मेकृत्स्नंब्रूहिमुनीश्वर!
पितृकार्यविधानार्थं देवकार्यार्थमेव च । मन्त्रानुपदिशत्वं मे महालयविधिं तथा ॥
अष्टकाश्राद्धकृत्यंच वैदिकं यच्चकिञ्चन । सर्वमेतद्रहस्यस्मै ब्रूहि त्वं गुरुर्मतः ॥ ६०॥
एवमुक्तः सशूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत् । कारयामास तस्य यं पितृकार्यादिकं तथा ॥
पितृकार्यकृतेतेन विसृष्टःसद्विजोगतः । अथ दीर्घेण कालेनपोषितःशूद्रयोनिना ॥६२
त्यक्तोविप्रगणैःसोऽयं पञ्चत्वमगमद्द्विजः । वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितोनरकेष्वपि

कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।

भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत् ॥ ६४ ॥

गर्दभस्तुततोजज्ञे विड्वराहस्ततःपरम् । जज्ञेऽथसारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः
अथचण्डालतां प्राप शूद्रयोनिमगात्ततः । गतवान्वैश्यतांपश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ॥
प्रबलैर्वध्यमानोऽसौ ब्राह्मणोवैतदाऽभवत् । उपनीतः सपित्रातु वर्षेगर्भाऽष्टमेद्विजः
वर्तमानःपितुर्गेहे स्त्राचाराभ्यासतत्परः । गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतोब्रह्मरक्षसा ॥
रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रहसन्विलपन्नसौ । शश्वद्धाहेतिचवदन्वैदिकंकर्मसोऽत्यजत्
दृष्ट्वासुतंतथा भूतं पितादुःखेन पीडितः । सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणंययौ ॥

भक्त्या मुनिं प्रणम्याऽसौ पिता तस्य सुतस्य वै ।

तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम् ॥ ७१ ॥

अब्रवीच्च तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम् । एष मे तनयो ब्रह्मन्!गृहीतो ब्रह्मरक्षसा
सुखं नभजतेब्रह्मन्! रक्षतंकरुणादृशा । नाऽस्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितृणामृणमुक्तये
अस्यपीडाविनाशार्थमुपायंब्रूहिकुम्भज । त्वत्समस्त्रिषु लोकेषु तपःशीलो न विद्यते
अग्रणीःशिवभक्तानामुक्तस्त्वंहिमहर्षिभिः । त्वांविनास्यपरित्राणं न मेपुत्रस्यविद्यते

पित्रे कृपां कुरुष्व त्वं दयाशीला हि साधवः ।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजो ध्यानमास्थितः ॥ ७६ ॥

ध्यात्वा तु सुचिरं कालमब्रवीद् ब्राह्मणं ततः ।

अगस्त्य उवाच

पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयं महामते ॥ ७७ ॥
सुमतिर्नामविप्रोऽयं महीं विप्राय वै ददौ । कर्माणिवैदिकान्येष सर्वाण्युपदिदेश वै
अतोऽयंनरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम् । जातोभुवितदन्तेषुस्थावरादिषुयोनिषु
इदानीं ब्राह्मणोजातः कर्मशेषेण ते सुतः । यमेन प्रेषितेनाऽत्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥
क्रूरेण पातकेनाद्य पूर्वजन्मकृतेन वै । उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षो विनाशने ॥८१॥
शृणुष्व श्रद्धयायुक्तः समाधाय च मानसम् ।
दक्षिणाम्भोनिधौ विप्र ! सेतुरूपो महागिरिः ॥ ८२ ॥
वर्ततेदैवतैः सेव्यः पावनोगन्धमादनः । तस्योपरिमहातीर्थं नाम्ना पापविनाशनम् ॥
अस्तिपुण्यं प्रसिद्धञ्च महापातकनाशनम् । भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम् ॥
महताञ्चैव रोगाणां तीर्थंतन्नाशकं स्मृतम् । सुतमादायगच्छत्वंतत्तीर्थंसेतुमध्यगम्
प्रयतः स्नापयसुतं तीर्थेपाप विनाशने । स्नानेन त्रिदिनं तत्र ब्रह्मरक्षोविनश्यति
नैवोपायान्तरंतस्य विनाशेविद्यतेभुवि । तस्माच्छीघ्रंप्रयाहित्वं रामसेतुंविमुक्तिदम्
तत्रपापविनाशाख्यतीर्थे स्नापयसंसुतम् । माविलम्बं कुरुष्वात्र त्वरयायाहिवैद्विज ॥
इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
अनुज्ञातश्च तेनाऽसौ प्रययौगन्धमादनम् ॥ ८६ ॥
सुतेनसार्कंविप्रेन्द्रो गत्वापापविनाशनम् । सङ्कल्पपूर्वतंस्नाप्य दिनत्रयमसौ सुतम्
सस्नौस्वयञ्चविप्रेन्द्रः पितापापविनाशने । अथ तस्यसुतस्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा
समजायतनीरोगःस्वस्थःसुन्दररूपधृक् । सर्वसम्पत्समृद्धोऽसौभुक्त्वाभोगाननेकशः
देहान्तेप्रययौमुक्तिं स्नानात्पापविनाशने । पितापितत्रस्नानेन देहान्तेमुक्तिमाप्तवान्
तेनोपदिष्टोयःशूद्रःसभुक्त्वानरकान्क्रमात् । अनेकेषुजनित्वाच कुत्सितेष्वपियोनिषु
गृध्रजन्माऽभवत्पश्चाद्गन्धमादनपर्वते । सकदाचिज्जलं पातुं तीर्थे पापविनाशने ॥
समागतःपपौतोयंसिषिचेचात्मनस्तनुम् । तदैव दिव्यदेहः सन्सर्वाऽऽभरणभूषितः
दिव्यमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनरूषितः । दिव्यंविमानमारुह्य शोभितश्छत्रचामरैः ॥

उत्तमस्त्रीपरिवृतः प्रययावमरालयम् । एवं प्रभावमेतद्धि तीर्थं पापविनाशनम् ॥ ९८ ॥
स्वर्गदं मोक्षदं पुण्यं प्रायश्चित्तकरन्तथा । ब्रह्मविष्णुमहेशानैः सेवितं सुरसेवितम्
पापानां नाशनाद्विप्राः पापनाशाभिधं हि तत् ।
श्रेयोऽर्थी पुरुषस्तस्मात्स्नायात्पापविनाशने ॥ १०० ॥
इत्थं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य ।
यत्राऽभिषेकात्सहसा विमुक्तो द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ ॥ १०१ ॥
श्रीस्कन्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येगन्धमादनप्रशंसायां पापविनाशप्रभावकथनन्नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

# एकादशोऽध्यायः

## सीतासरःप्रशंसायामिन्द्रब्रह्महत्याविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

पापनाशेनरः स्नात्वा सर्वपापनिवर्हणे । ततः सीतासरोगच्छेत्स्नातुं नियमपूर्वकम्
यानि कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै ।
तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये ॥ २ ॥
सीतासरसिवर्तन्ते महापातकनाशने । क्षेत्राण्यपि महार्हाणिकाश्यादीनिदिवानिशम्
सीतासरोऽत्रसेवन्तेस्वस्वकल्मषशान्तये । तस्याःसरसिसङ्गीतगुणेनाहृष्यब्राह्मणाः
पञ्चाननोऽपिवसते पञ्चपातकनाशनः । तदेतत्तीर्थमागत्य स्नात्वा वै श्रद्धया सह ॥
पुरन्दरः पुरा विप्रा ! मुमुचे ब्रह्महत्यया ।

ऋषय ऊचुः

ब्रह्महत्या कथमभूद्रामवस्य पुरा मुने ! ॥
सीतासरसि स स्नायात्कथं मुक्तोऽभवत्तया ।

श्रीसूत उवाच

कपालाभरणो नाम राक्षसोऽभूत्पुरा द्विजाः !॥ ७ ॥
अवध्यः सर्वदेवानां सोभवद्ब्रह्मणोवरात् । शवभक्षणनामातुनस्यासीन्मन्त्रिसत्तमः
अक्षौहिणीशतंतस्य हयेभरथसङ्कुलम् । अस्तितस्यपुरञ्चाऽपि वैजयन्तमितिश्रुतम्
वसत्यस्मिन्पुरेसोऽयं कपालाभरणोबली । शवभक्षंसमाहूय बभाषेमन्त्रिणं द्विजा!
शवभक्षमहावीर्य! मन्त्रशास्त्रेषु कोविद !। वयं देवपुरीं गत्वा विनिर्जित्यसुरान्रणे
शक्रस्य भवने रम्ये स्थास्यामस्सैनिकैः सह ।
रमामो नन्दने तस्य रम्भाद्याप्सरसां गणैः ॥ १२ ॥
कपालभरणस्येदं निशम्यवचनंतदा । शवभक्षोऽब्रवीद्विप्रावचस्तत्र तथाऽस्त्विति
ततः कपालाभरणः पुत्रंदुर्मेधसम्वली । प्रतिष्ठाप्य पुरेशूरं सेनया परिवारितः ॥
युयुत्सुरमरैःसाकं प्रययावमरावतीम् । गजाश्वरथपादातैरुद्धतैरेणुमञ्जयैः ॥
शोषयञ्जलधीन्सिन्धूश्चूर्णयन्पर्वतानपि । निस्साणध्वनिना विप्रा नादयन्रोदसीतथा
अश्वानां हेषितरवैर्गजानामपिबृंहितैः । रथनेमिस्वनैरुग्रैः सिंहनादैः पदातिनाम् ॥
श्रोत्राणिदिग्गजानाञ्च वितन्वन्बधिराणिसः । अगमद्देवनगरीं युयुत्सुरमरैः सह ॥
ततइन्द्रादयोदेवाः सेनाकलकलध्वनिम् । श्रुत्वाभिनिर्ययुःपुर्यायुद्धाभिमनसोद्विजाः
ततो युद्धं समभवद्देवानां राक्षसैः सह । अदृष्टपूर्वं जगति तथैवाऽश्रुतपूर्वकम् ॥ २०
ततइन्द्रादयोदेवा राक्षसाञ्जघ्नुराहवे । राक्षसाश्चसुराञ्जघ्नुः समरे विजिगीषवः ॥२१
द्वन्द्वयुद्धंचसमभूदन्योन्यंसुररक्षसाम् । कपालाभरणेनाऽऽजौ युयुधे बलवृत्रहा ॥२२
यमेनशवभक्षश्च वरुणेन च कौशिकः । कुबेरोरुधिराक्षेण युयुधे ब्राह्मणोत्तमाः ॥ २३॥
मांसप्रियोमद्यसेवी क्रूरदृष्टिर्भयावहः । चत्वारएतेविक्रान्ताः कपालाभरणानुजाः ॥
अश्विभ्यामग्निवायुभ्यां युद्धेयुयुधिरेमिथः । ततोयमोमहावीर्यः कालदण्डेनवेगवान्
शवभक्षन्निहत्याजावनयद्यमसादनम् । तस्यचाक्षौहिणीस्त्रिशन्निजघ्नेसमरेयमः ॥

वरुणःकौशिकस्याजौ प्रासेनप्राहरच्छिरः । कुबेरोरुधिराक्षस्यकुन्तेनाभ्यहरच्छिरः
अश्विभ्यामग्निवायुभ्यां कपालाभरणानुजाः । निहताः समरेविप्राःप्रययुर्यमसादनम्
अक्षौहिणीशतश्चाऽपि देवेन्द्रेण मृधेद्विजाः । यामार्द्धेन हतं युद्धे प्रययौ यमसादनम्

ततःकपालाभरणः प्रेक्ष्य सेनां निजां हताम् ।

चापमादाय निशिताञ्छरांश्चाऽपि महाजवान् ॥ ३० ॥

अभ्ययात्समरे शक्रं तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् । ततःशक्रस्यशिरसि व्यधमच्छरपञ्चकैः॥
तानप्राप्तान्प्रचिच्छेद शरैर्युद्धेसवृत्रहा । ततः शूलंसमादाय कपालाभरणो मृधे ॥३२

देवेन्द्राय प्रचिक्षेप तं शतया निजघान सः ।

ततः कपालाभरणः शतहस्तायतां गदाम् ॥ ३३ ॥

आयसींपञ्चसाहस्रतुलाभारेणनिर्मिताम् । आददेसमरेशक्रं वक्षोदेशे जघान च ॥ ३४

ततःसम्मूर्च्छितःशक्रो रथोपस्थ उपाविशत् ।

मृतसञ्जीवनी विद्या जपित्वाऽथ बृहस्पतिः ॥ ३५ ॥

पुलोमजापतिं युद्धे समजीवयदद्भुतम् । ऐरावतं तदारुह्य कपालाभरणान्तिकम् ॥३६
आजगामशचीभर्ता प्राहर्तुंकुलिशेनतम् । एकप्रहारेण तदामहेन्द्रः पाकशासनः ॥ ३७
कपालाभरणं युद्धे वज्रेणसरथाश्वकम् । स चापंसध्वजं चैव सतूणीरं सवर्मकम् ॥
चूर्णयामासकुपितस्तिलशःकणशस्तथा । हतेतस्मिन्महावीरे कपालाभरणेरणे ॥
सुखंसर्वस्यलोकस्य बभूवचिरदुःखिनः । राक्षसस्यवधोत्पन्ना ब्रह्महत्यापुरन्दरम्

अन्वधावत्तदा भीमा नादयन्ती दिशो दश ।

ऋषय ऊचुः

न विप्रो राक्षसः सूत कपालाभरणो मुने !॥ ४१ ॥

तत्कथं ब्रह्महत्येन्द्रं तद्वधात्समुपाद्रवत् ।

श्रीसूत उवाच

वक्ष्यामि परमंगुह्यं मुनीन्द्राः परमाद्भुतम् ॥ ४२ ॥

शृणुतश्रद्धयायूयं समाधायस्वमानसम् । पुराविन्ध्यप्रदेशेषु त्रिवक्रो नाम राक्षसः ॥

तस्य भार्या गुणोपेता सौन्दर्यगुणशालिनी ।
सुशीला नाम सुश्रोणी सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ४४ ॥
साकदाचिन्मनोज्ञाङ्गासुवेषाचारुहासिनी । विन्ध्यपादवनोद्देशेविचचारविलासिनी
तस्मिन्वनेशुचिर्नामवर्ततेस्ममहामुनिः । तपस्समाधिसंयुक्तो वेदाध्ययनतत्परः ॥
तस्याऽऽश्रमसमीपंतु सायर्यौवरवर्णिनी । तांदृष्ट्वासमुनिर्धैर्यं मुमोचाऽनङ्गपीडितः॥
तामासाद्य वरारोहां बभाषे मुनिसत्तमः ।

शुचिरुवाच

ललने ! स्वागतं तेऽस्तु कस्य भार्या शुचिस्मिते !॥ ४८ ॥
किमागमनकृत्यंते वनेस्मिन्नतिभीषणे । श्रान्तासित्वंवरारोहे वसाऽस्मिन्नुटजेमम
तथोक्तासातुश्रोणी तंमुनिप्रत्यभाषत । त्रिवक्ररक्षोभार्याऽहं सुशीलानामतोमुने ॥
पुष्पोपचयकामेन वनमेतत्समागता । अपुत्राऽहं मुनेभर्त्रा प्रेरिता पुत्रमिच्छता ॥५१॥
शुचिमुनिंसमाराध्य तस्मात्पुत्रमवाप्नुहि । इतिप्रतिसमादिष्टा पतिनात्वां समागता
पुत्रमुत्पाद्य त्वं मे कृपां कुरुमुने! मयि । तयैवमुक्तः सशुचिः सुशीलां तामभाषत

शुचिरुवाच

त्वां दृष्ट्वाममचप्रीतिः सुशीले! विद्यतेऽधुना । मनोरथमहाम्भोधिं त्वमापूरयमामकम्
इत्युक्त्वासमुनिस्तत्र तयारेमेदिनत्रयम् । तामुवाचमुनिःप्रीतः सुशीलांसुन्दराकृतिम्
तवोदरेमहावीर्यः कपालाभरणाभिधः । भविष्यतिश्चिरं राज्यं पालयिष्यतिसुन्दरि
सहस्रंवत्सराञ्जीवेत्तपसाप्रीणयन्विधिम् । पुरन्दरंविनाऽन्येभ्योदेवेभ्योनास्यवध्यता
ईदृशस्तेसुतोभूयादिन्द्रतुल्यपराक्रमः । इत्युक्त्वासमुनिर्नारीं काशींशिवपुरं ययौ ॥
सुशीलासाऽपि सुषुवे कपालाभरणं सुतम् । तं जघान मृधेशक्रो वज्रेण मुनिपुङ्गवाः
शुचेर्बीजसमुद्भूतं तमिन्द्रोन्यवधीद्यतः । ततःपुरन्दरःशक्रो जगृहेब्रह्महत्यया ॥
धावतिस्मतदाशक्रःसर्वाँल्लोकान्भयाकुलः । धावन्तमनुधावन्तीब्रह्महत्यातमन्वगात्
अनुद्रुतोऽयंविप्रेन्द्राः शक्रोऽयं ब्रह्महत्यया । पितामहसदः प्राप्य सन्तप्तहृदयो भृशम्
न्यवेदयद्ब्रह्महत्यां ब्रह्मणेसपुरन्दरः । भगवँल्लोकनाथेयं ब्रह्महत्याऽतिभीषणा ॥६३

बाधते माम्प्रजानाथ! तस्यनाशं ब्रवीहि मे । पुरन्दरेणैवमुक्तो ब्रह्माप्राह दिवस्पतिम्

ब्रह्मोवाच

सीताकुण्डंप्रयाहीन्द्र गन्धमादनपर्वते । सीताकुण्डस्यतीरेत्वमिष्ट्वायागैःसदाशिवम्
तस्मिन्सरसिचस्नायात्सर्वपापहरेशुभे । ततः पूतोभवाञ्छक्र! ब्रह्महत्याविमोचितः
देवलोकंपुनर्यायाः सर्वदुःखविवर्जितः । सर्वपापहरंपुण्यं सीताकुण्डंविमुक्तिदम् ॥
महापातकसङ्घानां नाशकं परमामृतम् । सर्वदुःखप्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ॥
धनधान्यप्रदंशुद्धं वैकुण्ठादिपदप्रदम् । तस्मात्तत्रकुरुष्वेष्टिं सीतासरसि वृत्रहन् !॥
इत्युक्तःसुरराजोसौ प्रययौगन्धमादनम् । प्राप्यसीतासरोविप्राःस्नात्वेष्ट्वाचतदन्तिके
प्रययौस्वपुरींभूयो ब्रह्महत्याविमोचितः । एवंप्रभावंतत्तीर्थं सीतायाः कुण्डमुत्तमम्
राघवप्रत्ययार्थं हि प्रविश्यहुतवाहनम् । सन्निधौसर्वदेवानां मैथिली जनकात्मजा ॥
विनिर्गतापुनर्वह्नेः स्थितासर्वाङ्गशोभना । निर्ममे लोकरक्षार्थं स्वनाम्नातीर्थमुत्तमम्
तत्रसस्नौस्वयंसीता तेनसीतासरःस्मृतम् । तत्रयोमानवःस्नानिसर्वान्कामाँल्लभेतसः

तस्मिन्नुपस्पृश्य नरो द्विजेन्द्राः ! दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि ।
कृत्वा च यज्ञान्बहुदक्षिणाभिर्लोकम्प्रयायात्परमेश्वरस्य ॥ ७५ ॥
युष्माकमेवं प्रथितम्मुनीन्द्राः ! सीतासरोवैभवमेतदुक्तम् ।
शृण्वन्पठन्वै तदिहैव भोगान्भुक्त्वा परत्राऽपि सुखं लभेत ॥ ७६ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सीतासरःप्रशंसायामिन्द्रब्रह्महत्याविमोक्षणं
नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः

### मङ्गलतीर्थप्रशंसायांमनोजवालक्ष्मीविनाशवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

सीताकुण्डेमहापुण्ये नरःस्नात्वाद्विजोत्तमाः । ततस्तुमङ्गलंतीर्थमभिगच्छेत्समाहितः
सन्निधत्तेसदायत्र कमलाविष्णुवल्लभा । अलक्ष्मीपरिहाराययस्मिन्सरसि वै सुराः
शतक्रतुमुखाः सर्वे समागच्छन्तिनित्यशः । तदेतत्तीर्थमुद्दिश्य ऋषयोलोकपावनम्
इतिहासं प्रवक्ष्यामि पुण्यंपापविनाशनम् । पुरामनोजवोनाम राजा सोमकुलोद्भवः ॥
पालयामासधर्मेण धरांसागरमेखलाम् । अयष्ट ससुरान्यज्ञैर्ब्राह्मणानन्नसञ्चयैः ॥ ५ ॥
तर्पयामास कव्येन प्रत्यब्दंपितृदेवताः । त्रयीमध्यैष्टसततमपाठीच्छास्त्रमर्थवत् ॥ ६॥
व्यजेष्टशत्रून्वीर्येण प्राणंसीदीशकेशवौ । अरंस्तनीतिशास्त्रेषु तथाऽपाठीन्महामनून्
एवं स धर्मतो राजा पालयामासमेदिनीम् । रक्षतस्तस्यराज्ञोभूद्राज्यंनिहतकण्टकम्
अहङ्कारोऽभवत्तस्य पुत्रसम्पद्विनाशनः । अहङ्कारोभवेद्यत्र तत्रलोभोमदस्तथा ॥ ९॥
कामःक्रोधश्चहिंसाचतथाऽसूयाविमोहिनी । भवन्त्येतानिविप्रेन्द्राःसम्पदांनाशहेतवः
एतानि यत्रविद्यन्ते पुरुषेसविनश्यति । क्षणेन पुत्रपौत्रैश्च साद्धंचाखिलसम्पदा ॥
बभूवतस्यासूयाच जनविद्वेषिणी सदा । असूयाकुलचित्तस्य वृथाऽहङ्कारिणस्तथा
लुब्धस्यकामदुष्टस्य मतिरेवं बभूव ह । विप्रग्रामेकरादानं करिष्यामीतिनिश्चितः ॥
अकरोच्च तथाराजा निश्चित्यमनसातदा । धनंधान्यञ्च विप्राणां जहार किललोभतः

शिवविष्ण्वादिदेवानां वित्तान्यादत्त रागतः ।

शिवविष्ण्वादिदेवानां विप्राणां च महात्मनाम् ॥ १५ ॥

क्षेत्राण्यपजहारायमहङ्कारावमूढधीः । एवमन्याययुक्तस्य देवद्विजविरोधिनः ॥ १६॥
दुष्कर्मपरिपाकेन क्रूरेणद्विजपुङ्गवाः । पुरंदरोधवलवान् रणदेशाधिपो रिपुः ॥ १७॥
गोलभोनामविप्रेन्द्राश्चतुरङ्गबलैर्युतः । षाण्मासंयुद्धमभवद्गोलभेन दुरात्मनः ॥ १८ ॥

मनोजवस्यनृपतेरहङ्कारवतात्मनः । ततः सगोलभेनाऽऽजौजितोराज्यात्परिच्युतः
वनं सपुत्रदारःसन्प्रपेदेस मनोजवः । गोलभःपालयन्नास्ते मनोजवपुरे चिरम् ॥२०॥
चतुरङ्गबलोपेतस्तमुद्रास्यरणेबला । मनोजवोऽपिविप्रेन्द्राः शोचन्स्त्रीपुत्रसंयुतः ॥

क्षुत्क्षामःप्रस्खलञ्छश्वत्प्रविवेश महावनम् ।
झिल्लिकागणसंघुष्टं व्याघ्रश्वापदभीषणम् ॥ २२ ॥

मत्तद्विरदचीत्कार वराहमहिषाकुलम् । तस्मिन्वनेमहाघोरे क्षुधया परिपीडितः ॥
अयाचताऽन्नंपितरं मनोजवसुतःशिशुः । अम्ब! मेन्नंप्रयच्छत्वं क्षुधामाम्बाधतेभृशम्
एवंस्वजननीञ्चापि प्रार्थयामासबालकः । तन्मातापितरौतत्रश्रुत्वापुत्रस्यभाषितम् ॥
शोकाभिभूतौसहसामोहंसमुपजग्मतुः । भार्यामथाब्रवीद्राजा सुमित्रांनामनामतः ॥
मुह्यमानश्चसमुहुःशुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । सुमित्रेकिङ्करिष्यामिकुत्रयास्यामिकागतिः
मरिष्यत्यचिरादेष सुतोमेक्षुधयार्दितः । किमर्थंससृजेवेधा दुर्भाग्यंमांवृथाप्रिये !॥
कोवामोचयितादुःखमेतद्दुष्कर्मजं मम । न पूजितो मयाशम्भुर्हरिर्वा पूर्वजन्मसु ॥
तथान्यादेवताःसूर्यविभावसुमुखाःप्रिये । तेन पापेन बाद्याऽहमस्मिजन्मनिशोभने !

अहङ्काराभिभूतोऽस्मि विप्रक्षेत्राण्यपाहरम् ।
शिवविष्ण्वादिदेवानां वित्तञ्चापहृतंमया ॥ ३१ ॥

एवंदुष्कर्मबाहुल्याद्गोलभेनपराजितः । वनंयातोऽस्मि विजनं त्वया सह सुतेन च ॥
निरन्नोनिर्धनोदुःखी क्षुधितोऽहंपिपासितः । कथमन्नंप्रदास्यामि क्षुधितायसुतायमे
नमयान्नानिदत्तानि ब्राह्मणेभ्यःशुचिस्मिते । नमयापूजितःशम्भुर्विष्णुर्वादेवतान्तरम्
तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् । न मयाऽग्नौहुतंपूर्वं नतीर्थमपिसेवितम ३५
मातृश्राद्धंपितृश्राद्धं मृताहदिवसेतयोः । नैकोद्दिष्टविधानेन पार्वणेनाऽपिवैप्रिये ॥
कृतन्नहिमयाभद्रे भूरिभोजन मेव वा । तेन पापेन मेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥३७॥
चैत्रमासेप्रियेचित्रानक्षत्रेपानकम्मया । पनसानांफलंस्वादु कदलीफलमेववा ॥३८॥
तदाछत्रंसदण्डञ्चरम्यंपादुकयोर्द्वयम् । ताम्बूलानि च पुष्पाणि चन्दनंचाऽनुलेपनम्
न दत्तं वेदविद्भ्यस्तु चित्रगुप्तस्य तुष्टये । तेन पापेन मे त्वद्य दुःखमेतत्समागतम्॥

नाऽश्वत्थश्चूतवृक्षो वा न्यग्रोधस्तिन्तिणी तथा।
पिचुमन्दः कपित्थो वा तथैवाऽऽमलकीतरुः ॥ ४१ ॥
नारिकेलतरुर्वापि स्थापितोऽघ्वगशान्तये। तेन पापेन मेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम्
सम्मार्जनञ्चनकृतंशिवविष्णवालयेमया। नखानि तं तटाकञ्च न कूपोऽपि ह्रदोऽपिवा
नरोपितं पुष्पवनं तथैव तुलसीवनम्। शिवविष्णवालयौवापि निर्मितौ नमयाप्रिये
तेन पापेन मे त्वद्य दुःखमेतत्समागतम्। नमयापैतृकेमासि पितृनुद्दिश्य शोभने!॥
महालयं कृतं श्राद्धमष्टकाश्राद्धमेव वा ॥ ४५ ॥
नित्यश्राद्धं तथाकाम्यंश्राद्धंनैमित्तिकंप्रिये। नकृताःकतवश्चापिविधिवद्भूरिदक्षिणाः
मासोपवासोनकृत एकादश्यामुपोषणम्। धनुर्मासेप्युषःकालेशम्भुविष्णवादिदेवताः
सम्पूज्यविधिवद्भद्रे नैवेद्यं न कृतं मया। तेन पापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥
हरिशङ्करयोर्नाम्नाकीर्तनं न मया कृतम्। उद्धूलन त्रिपुण्ड्रञ्च जाबालोक्तैश्चसप्तभिः
न धृतंभस्मनाभद्रे रुद्राक्षं न धृतम्मया। जपश्चरुद्रसूक्तानां पञ्चाक्षरजपस्तथा ॥ ५० ॥
तथा पुरुष सूक्तानां जपोऽप्यष्टाक्षरस्य च। नैवाऽकारिमयाभद्रे नैवान्योधर्मसञ्चयः॥
तेन पापेन मे त्वद्य दुःखमेतत्समागतम्। एवं सविलपन्राजाभार्यामाभाष्यखिन्नधीः
मूर्च्छामुपाययौविप्राः पपातचधरातले। सुमित्रापतितंदृष्ट्वाभार्यासापतिमङ्गना॥
आलिङ्ग्य प्रललापाऽथ सपुत्राभृशदुःखिता। ममनाथ महाराज! सोमान्वयधुरन्धर
मांविहाय कयातोऽसिसपुत्रांविजनेवने। अनाथान्त्वामनुगतां सिंहत्रस्तांमृगीमिव
मृतोऽसियदिराजेन्द्र! तर्हित्वामहमप्यरम्। अनुव्रजामिविधवा नस्थास्येक्षणमप्युत
पितरंपश्यपतितचन्द्रकान्तसुत!क्षितौ। इत्युक्तश्चन्द्रकान्तोऽपि सुतोराज्ञःक्षुधार्दितः
पितरंपरिरभ्याथ निःशब्दंप्ररुरोदसः। एतस्मिन्नन्तरेविप्रा जटावल्कलसंवृतः॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः। रुद्राक्षमालाभरणःसितयज्ञोपवीतवान्
पराशरोनाममुनिराजगामयदृच्छया। तंशब्दमभिलक्ष्यासौसाधुसज्जनसम्मतः ॥ ६०
ततः सुमित्रा तं दृष्ट्वा पराशरमुपागतम्। ववन्देचरणौतस्य सपुत्रा सा पतिव्रता॥
ततः पराशरेणेवं सुमित्रा परिसान्त्विता।

आश्वसिता च मुनिना मा शोचस्वेति भामिनि ॥ ६२ ॥
ततः सुमित्रां पप्रच्छ शक्तिपुत्रो महामुनिः ।

पराशर उवाच

का त्वं सुश्रोणि! कश्चाऽसौ यश्चाऽयं पतितोऽग्रतः ॥ ६३ ॥
अयंशिशुश्च कस्तेस्याद्वदतत्त्वेन मे शुभे । पृष्टैवं मुनिना साध्वी तमुवाच महामुनिम्

सुमित्रोवाच

पतिर्ममाऽयमस्याहंभार्यावैमुनिसत्तम । आवाभ्यांजनितश्चायंचन्द्रकान्ताभिधःसुतः
अयं मनोजवोनाम राजासोमकुलोद्भवः । विक्रमाढ्यस्यतनयःशौर्ये विष्णुसमोबली
सुमित्रानामतस्याऽहं भार्यापतिमनुव्रता । युद्धे विनिर्जितो राजा गोलभेन मनोजवः
राज्याद् भ्रष्टोनिरालम्बो मयापुत्रेण चान्वितः । वनंविवेशब्रह्मर्षे! क्रूरसत्त्वभयानकम्
क्षुधयापीडितः पुत्रोह्यावामन्नमयाचत । निरन्नो विधुरो राजा दृष्ट्वा पुत्रं क्षुधार्दितम्
शोकाकुलमनाब्रह्मन्मूर्च्छितःपतितोभुवि । इतितद्वचनं श्रुत्वा शोकपर्याकुलाक्षरम्
शक्तिपुत्रो मुनिः प्राह सुमित्रां तां पतिव्रताम् ।
मनोजवस्य नृपतेर्भार्यामग्निशिखोपमाम् ॥ ७१ ॥

पराशर उवाच

मनोजवस्यभार्ये ! ते माभीर्भूयात्कथञ्चन । युष्माकमशुभंसत्यमचिरान्नाशमेष्यति
मूर्च्छांविहाय भद्रेते क्षणादुत्थास्यतेपतिः । ततःपराशरोविप्रः पाणिनातन्नराधिपम्
पस्पर्शमन्त्रंप्रजपन्ध्यात्वादेवं त्रियम्बकम् । ततो मनोजवोराजा करस्पृष्टो महामुनेः
उत्थितः सहसातत्यक्त्वामूर्च्छांतमोमयीम् । ततः पराशरमुनिं प्रणम्यजगतीपतिः
उवाच परमप्रीतः प्राञ्जलिर्विप्रसत्तमम् ।

मनोजव उवाच

पराशरमुने! त्वद्य त्वत्पादाब्जनिषेवणात् ॥ ७६ ॥
मूर्च्छामेविगतासद्यः पातकञ्चैव नाशितम् । त्वद्दर्शनमपुण्यानां नैवसिध्येत्कदाचन
रक्षमां करुणादृष्ट्या च्यावितंशत्रुभिःपुरात् । इत्युक्तःसमुनिः प्राहराजानन्तंमोवजम्

पराशर उवाच

उपायन्ते प्रवक्ष्यामि राजञ्छत्रुजयाय वै । रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते
विद्यतेमङ्गलंतीर्थं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् । सर्वलोकोपकाराय तस्मिन्सरसि राघवः ॥
सन्निधत्ते सदा लक्ष्म्या सीतया राजसत्तम ।
सपुत्रभार्यस्त्वं तत्र गत्वा स्नात्वा सभक्तिकम् ॥ ८१ ॥
क्षेत्रश्राद्धादिकञ्चाऽपि तत्तीरे कुरुभूपते । एवंकृतेत्वयाराजन्नलक्ष्मीः क्लेशकारिणी
वैभवात्तस्य तीर्थस्य नाशं यास्यत्यसंशयम् ।
मङ्गलानि च सर्वाणि प्राप्स्यसे ह्यचिरान्नृप ॥ ८३ ॥
विजित्य शत्रूंश्चरणे पुनर्भूमिं प्रपत्स्यसे । अतस्त्वं भार्ययासार्द्धं पुत्रेणच मनोजव!
गच्छमङ्गलतीर्थं तद्गन्धमादनपर्वते । अहमप्यागमिष्यामि तवाऽनुग्रहकाम्यया
पराशरस्त्वेवमुक्त्वाराजमुख्यैस्त्रिभिः सह । प्रायात्सेतुं समुद्दिश्यस्नातुंमङ्गलतीर्थके
राजादिभिःसह मुनिर्विलङ्घ्य विविधं वनम् । वनप्रदेशदेशांश्च दस्युग्रामाननेकशः
प्रययौ मङ्गलं तीर्थं गन्धमादनपर्वते । तत्र सङ्कल्प्य विधिवत्सस्नौस मुनिपुङ्गवः
तानपिस्नापयामास राजादीन्विधिपूर्वकम् । तत्रश्राद्धञ्च भूपालश्चकारपितृतृप्तये
तत्रमासत्रयंसस्नौ राजा पत्नी सुतस्तथा । ततः पराशरमुनिः सस्नौ नियमपूर्वकम्
एवं मासत्रयं सस्नौ तैः साकम्मुनिपुङ्गवः । मङ्गलाख्यमहापुण्ये सर्वामङ्गलनाशने
ततः पराशरमुनिः सर्वानर्थविनाशम् । रामस्यैकाक्षरं मन्त्रं तदन्ते समुपादिशत्
चत्वारिंशद्दिनं तत्र मन्त्रमेकाक्षरन्नृपः । तत्र तीर्थे जजापासौ मुन्युक्तेनैव वर्त्मना
एवमभ्यसतस्तस्य मन्त्रमेकाक्षरं द्विजाः । मुनिप्रसादात्पुरतो धनुः प्रादुरभूद्दृढम्
अक्षयाविषुधीचापि खड्गौ च कनकत्सरू । एकश्चर्मगदा चैकातथैको मुसलोत्तमः
एकः शङ्खोमहानादो वाजियुक्तोरथस्तथा । ससारथिःपताका च तीर्थादुत्तस्थुरग्रतः
कवचं काञ्चनमयं वैश्वानर समप्रभम् । प्रादुर्बभूव तत्तीर्थात्प्रसादेन मुनेस्तथा ॥६७॥
हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषणम् । तीर्थानाम्प्रवरात्तस्मादुत्थितन्नृपतेः पुरः ॥
दिव्याम्बरसहस्रञ्च तीर्थात्प्रादुरभूत्तदा ।

माला च वैजयन्त्याख्या स्वर्णपङ्कजशोभिता ॥ ९९ ॥
एतत्सर्वंसमालोक्य मुनयेसौऽन्यवेदयत् । ततःपराशरमुनिर्जलमादायतीर्थतः॥ १००
अभ्यषिञ्चन्नरपतिं मन्त्रपूतेनवारिणा । ततोऽभिषिक्तोनृपतिर्मुनिना परिशोभितः ॥
सन्नद्धःकवचीखड्गीचापबाणधरो युवा । हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥१०२॥
दिव्याम्बरधरश्चापि वाजियुक्तरथस्थितः । शुशुभेऽतीवनृपतिर्मध्याह्न इव भास्करः॥
तस्मै नृपतयेतत्र ब्रह्माद्यस्त्रं महामुनिः । साङ्गञ्चसरहस्यञ्च सोत्सर्गं सोपसंहृतिम् ॥
उपादिशच्छक्तिपुत्रः सुमित्राजानयेतदा । मनोजवोऽथमुनिना ह्याशीर्वादपुरःसरम्
प्रेरितो रथमास्थाय प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । प्रदक्षिणीकृत्य तदाऽभ्यनुज्ञातो महर्षिणा
सार्द्धं पत्न्या च पुत्रेण प्रययौविजयायसः । सगत्वास्वपुरंराजा प्रदध्मौजलजं तदा
ततः शङ्खरवंश्रुत्वागोलभस्तुससैनिकः। युद्धायनिर्ययौतूर्णं मनोजवनृपेण सः ॥१०८
दिनत्रयं रणं जज्ञेगोलभेन नृपस्य वै । ततश्चतुर्थेदिवसे गोलभन्तु स सैनिकम् ॥
मनोजवोनृपोयुद्धे ब्रह्मास्त्रेणव्यनाशयत् । ततःसपुत्रभार्योऽयं पुरम्प्राप्यनिजं नृपः ॥
पालयन्पृथिवींसर्वां बुभुजेभार्ययासह । तदा प्रभृतिराजाऽसौ नाऽहङ्कारञ्चकार वै ॥
असूयादींस्तथादोषान्वर्जयामासभूपतिः । अहिंसानिरतोदान्तः सदाधर्मपरोऽभवत्
सहस्रं वत्सरानेवं ररक्ष समहीपतिः । ततोविरक्तोराजेन्द्रः पुत्रे राज्यंनिधायतु॥११३
जगाममङ्गलंतीर्थं गन्धमादनपर्वते । तपश्चचारतत्राऽसौ ध्यायन् हृदि सदाशिवम् ॥
ततोऽचिरेणकालेनत्यक्त्वादेहंमनोजवः । शिवलोकंययौराजा तस्यतीर्थस्य वैभवात्
तस्य भार्या सुमित्राऽपि तस्याऽऽलिङ्गय तनुं तदा ।
अन्वारुढा चितां विप्राः! प्राप तल्लोकमेव सा ॥ ११६ ॥

श्रीसूत उवाच

एवंप्रभावंतत्तीर्थं श्रीमन्मङ्गलनामकम् । मनोजवोनृपोयत्र स्नात्वा तीर्थेमहत्तरे ॥
शत्रून्विजित्य देहान्ते शिवलोकं ययौ स्त्रिया ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यं मङ्गलतीर्थकम् ॥ ११८ ॥
तीर्थमेतदतिशोभनं शिवम्भुक्तिमुक्तिफलदं नृणां सदा ।

पापराशितृणतूलपावकं सेवत द्विजवरा! विमुक्तये ॥ ११६ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमहात्म्येमङ्गलतीर्थप्रशंसायांमनोजवालक्ष्मीविनाशोनाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

## त्रयोदशोऽध्यायः

### अमृतवापीप्रशंसायामगस्त्यभ्रातृविमुक्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

मङ्गलाख्येमहातीर्थे नरःस्नात्वाविकल्मषः । एकान्तरामनाथाख्यं क्षेत्रं गच्छेत्ततःपरम्
तत्ररामोजगन्नाथो जानक्या लक्ष्मणेन च । हनुमत्प्रमुखैश्चापि वानरैःपरिवारितः ॥
सन्निधत्तेसदाविप्राः! लोकानुग्रहकाम्यया । विद्यते पुण्यदातत्र नाम्नाह्यमृतवापिका॥
यस्मिन्निमज्जतान्नृणांनजरान्तकजंभयम् । अस्यामसृतवाप्यांयःसश्रद्धस्नातिमानवः
अमृतत्वंभजत्येव शङ्करस्यप्रसादतः । महापातकनाशिन्यामस्यांवाप्यांनिमज्जताम् ॥
अमृतत्वं हरो दातुं सन्निधत्ते सदा तटे ।

ऋषय ऊचुः

इयं ह्यमृतवापीति कुतो हेतोर्निगद्यते ॥ ६ ॥
अस्माकमेतद्ब्रूहित्वं कृपयाव्यासशासित !। तथैवामृतनामिन्यावापिकायाश्चवैभवम्
तृप्तिर्नजायतेऽस्माकं त्वद्वचोऽमृतपायिनाम् ।

श्रीसूत उवाच

अस्या अमृतनामत्वं वैभवञ्च मनोहरम् ॥ ८ ॥
प्रवक्ष्यामिविशेषेण शृणुत! द्विजसत्तमाः । पुराहिमवतःपार्श्वे नानामुनिसमाकुले ॥
सिद्धचारणगन्धर्वदेवकिन्नरसेविते । सिंहव्याघ्रवराहेभमहिषादिसमाकुले ॥ १० ॥

तमालतालहिन्तालचम्पकाशोकसन्तते । हंसकोकिलदात्यूहचक्रवाकादिशोभिते ॥
पद्मेन्दीवरकह्लारकुमुदाढ्यसरोवृते । सत्यवाञ्छीलवान्वग्मी वशीकुम्भजसोदरः ॥

आस्ते तपश्चरन्नित्यं मोक्षार्थी शङ्करप्रियः ।
त्रिकालमर्चयञ्छम्भुं वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ १३ ॥

आगतान्स्वाश्रमाभ्याशमतिथीन्वन्यभोजनैः । पूजयन्नर्चयन्नग्निं सन्ध्योपासनतत्परः

गायत्र्यादीन्महामन्त्रान्काले काले जपन्मुदा ।
निद्रां परित्यजन्ब्राह्मे मुहूर्ते विष्णुचिन्तकः ॥ १५ ॥

स्नानंकुर्वन्नुषः काले नमन्सन्ध्याम्प्रसन्नधीः । गायत्रींप्रजपन्विप्राःपूजयन्हरिशङ्करौ
वेदाध्यायीशास्त्रपाठीमध्याह्नेऽतिथिपूजकः । श्रोतापुराणपाठानामग्निकार्येष्वतन्द्रितः
पञ्चयज्ञपरोनित्यंवैश्वदेवबलिप्रदः । प्रत्यब्दं श्राद्धकृत्पित्रोस्तथाऽन्यश्राद्धकृद्द्विजाः!
एवं निनायकालंस नित्यानुष्ठानतत्परः । तस्यैवं वर्तमानस्य तपश्चरत उत्तमम् ॥
सहस्रवर्षाण्यगमञ्छङ्करासक्तचेतसः । तथाऽपिशङ्करोनास्याऽऽययौप्रत्यक्षतांतदा

ततस्त्वगस्त्यभ्राताऽसौ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यगः ।
भास्करे दत्तदृष्टिश्च मौनव्रतसमन्वितः ॥ २१ ॥
तिष्ठन्कनिष्ठिकाङ्गुल्या वामपादश्च निश्चलः ।
ऊर्ध्ववबाहुर्निरालम्बस्तपस्तेपेऽतिदारुणम् ॥ २२ ॥
अथ तस्य प्रसन्नात्मा महादेवो घृणानिधिः ।
प्रादुरासीत्स्वया दीप्त्या दिशो दश विभासयन् ॥ २३ ॥

ततोऽद्राक्षीन्मुनिःशम्भुं साम्बंवृषभसंस्थितम् । दृष्ट्वाप्रणम्यतुष्टावभवानीपतिमीश्वरम्

मुनिरुवाच

नमस्तेपार्वतीनाथ ! नीलकण्ठमहेश्वर ! । शिवरुद्रमहादेव ! नमस्तेशम्भवे विभो !॥
श्रीकण्ठोमापते! शूलिन्भगनेत्रहराऽव्यय । गङ्गाधर! विरूपाक्ष ! नमस्तेरुद्रमन्यवे ॥
अन्तकारे! कामशत्रो! देवदेवजगत्पते !। स्वामिन्पशुपते! शर्व नमस्ते शतधन्विने ॥
दक्षयज्ञविनाशाय स्तायूनाम्पतयेनमः । निर्वैरवेनमस्तुभ्यं पुष्टानाम्पतये नमः ॥ २८॥

भूयो भूयोनमस्तुभ्यं महादेव! कृपालय !। दुस्तराद्भवसिन्धोर्मांतारयस्व त्रिलोचन!
अगस्त्यसोदरेणैवंस्तुतः शम्भुरभाषत । प्रीणयन्वचसास्वेन कुम्भजस्यानुजम्मुनिम्

ईश्वर उवाच

कुम्भजानुज ! वक्ष्यामि मुक्त्युपायं तवाऽनघ । सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते मङ्गलाख्यस्यतीर्थस्य नाऽतिदूरेणवर्तते । तत्रगत्वाकुरुस्नानं ततोमुक्तिमवाप्स्यसि तत्तीर्थसेवनान्नान्यो मोक्षोपायो लघुस्तव । नहितत्तीर्थवैशिष्ट्यं वक्तुंशक्यंमयापिच सन्देहोनाऽत्रकर्तव्यस्त्वयाद्यमुनिसत्तम !। तस्मात्तत्रैवगच्छत्वंयदीच्छसिभवक्षयम् इत्युक्त्वा भगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत । ततो देवस्य वचनादगस्त्यस्य सहोदरः गत्वा सेतुं समुद्रेतु गन्धमादनपर्वते । ईश्वरेणैवगदितं तीर्थं तच्छीघ्रमासदत् ॥३६॥ तत्रतीर्थे महापुण्ये स्नाताना मुक्तिदायिनि । एकान्तरामनाथाख्यक्षेत्रालङ्करणे शुभे सस्नौनियमपूर्वंस त्रीणिवर्षाणि वै द्विजः। ततश्चतुर्थवर्षेतु समाधिस्थो महामुनिः ब्रह्मनाड्यां प्राणवायुं मूर्द्धन्यारोप्ययोगत. । प्राणान्निर्गमयामास ब्रह्मरन्ध्रेण तत्रसः

ततोऽगस्त्यानुजः सोऽयं परित्यज्य कलेवरम् ।
अवाप मुक्तिं परमान्तस्य तीर्थस्य वैभवात् ॥ ४० ॥

विनष्टाशेषदुःखस्य तत्तीर्थस्नानवैभवात् । अमृतत्वमभूद्यस्मादगस्त्यस्यानुजन्मनः ततोह्यमृतवापीतिप्रथाऽस्याऽऽसीन्मुनीश्वराः । अत्र तीर्थे नरायेतुवर्षत्रयमतन्द्रिताः स्नानं कुर्वन्ति ते सत्यममृतत्वं प्रयान्ति हि । एवं त्वमृतवापीतिप्रथातद्वैभवन्तथा

युष्माकं कथितं विप्राः! किम्भूयः श्रोतुमिच्छथ ।

ऋषय ऊचुः

एकान्तरामनाथाख्या तस्य क्षेत्रस्य वै मुने !॥ ४४ ॥

कथं समागता सूत! वक्तुमेतत्त्वमर्हसि । अस्माकंमुनिशार्दूल! तच्छुश्रूषाऽतिभूयसी

श्रीसूत उवाच

पुरा दाशरथी रामः ससुग्रीवविभीषणः । लक्ष्मणेन युतो भ्राता मन्त्रज्ञेन हनूमता ॥ वानरैर्बध्यमाने तु सेतावम्बुधिमध्यतः । चिन्तयन्मनसा सीतामेकान्तेसममन्त्रयत्

तेषु मन्त्रयमाणेषु रावणादिवधम्प्रति । उल्लोलतरुकल्लोलो जुघोष जलधिर्भृशम् ॥
अर्णवस्य महाभीमे जृम्भमाणे महाध्वनौ ।
अन्योन्यकथितां वार्तां नाऽश्रृण्वंस्ते परस्परम् ॥ ४६ ॥
ततः किञ्चिदिवक्रुद्धो भृकुटीकुटिलेक्षणः । भ्रूभङ्गलीलयारामो नियम्यजलधिन्तदा
न्यमन्त्रयत विप्रेन्द्रा राक्षसानां वधम्प्रति । एकान्तेऽमन्त्रयत्तत्र तैःसार्धंराघवो यतः
एकान्तरामनाथाख्यंतत्क्षेत्रमभवद्द्विजाः ।सोऽयं नियमितोवार्धी रामभ्रूभङ्गलीलया
अद्याऽपि निश्चलजलस्तत्प्रदेशेषु दृश्यते । एकान्तरामनाथाख्यं तदेतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥
आगत्याऽमृतवाप्याञ्च स्नात्वानियमपूर्वकम् । रामादीनपिसेवन्तेतेसर्वेमुक्तिमाप्नुयुः
अद्वैतविज्ञानविवेकशून्या विरक्तिहीनाश्च समाधिहीनाः ।
यागाद्यनुष्ठानविवर्जिताश्च स्नात्वाऽत्र यास्यन्त्यमृतंद्विजेन्द्राः ॥ ५५ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येऽमृतवापीप्रशंसायामगस्त्यभ्रातृविमुक्तिरेकान्त-
रामनाथाख्यक्षेत्रमहत्त्ववर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

# चतुर्दशोऽध्यायः

## ब्रह्मकुण्डप्रशंसायांब्रह्मशापविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

स्नात्वा त्वमृतवाप्यां वै सेवित्वैकान्तराघवम् ।
जितेन्द्रियो नरः स्नातुं ब्रह्मकुण्डं ततो व्रजेत् ॥ १ ॥
सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते । ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वदारिद्र्यभेषजम् ॥
विद्यते ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम् । दर्शनं ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम् ॥
किन्तस्य बहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभिः किमध्वरैः ।

महादानैश्च किन्तस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिनः ॥ ४ ॥
ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नानं वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्मयेनधृतं द्विजाः
तस्यानुगास्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनायस्त्रिपुण्ड्रकम्
करोतितस्य कैवल्यंकरस्थंनाऽत्र संशयः । तद्भस्मपरमाणुर्वायोललाटे धृतोऽभवत्
तावतैवाऽस्य मुक्तिः स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा ।
तत्कुण्डभस्मना मर्त्यः कुर्यादुद्धूलनन्तु यः ॥ ८ ॥
तस्य पुण्यफलंवक्तुं शङ्करो वेत्ति वा न वा । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतंभस्मयोनैवधारयेत्
रौरवे नरके सोऽयं पतेदाचन्द्रतारकम् । उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रंवा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना
नराधमो न कुर्याद्यः सुखंनास्य कदाचन । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तुयः
उत्पत्तौतस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्मैतल्लोकपावनम्
अन्यभस्मसमं यस्तु नूनं वा वक्ति मानवः । उत्पत्तौतस्यसाङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽप्यस्मिन्भस्मनि जाग्रति ।
भस्मान्तरेण मनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ १४ ॥
उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यं मनुमेयं विपश्चिता । कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तन धारयेत्
उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता । ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्म दद्याद् द्विजाय यः
चतुरर्णवपर्यन्ता तेनदत्ता वसुन्धरा । सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ॥
सत्यं सत्यंपुनःसत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते । ब्रह्मकुण्डोद्भवं भस्मधारयध्वंद्विजोत्तमाः!
एतद्धि पावनं भस्म ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम् । पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
सन्निधौ सर्वदेवानां पर्वते गन्धमादने । ईशशापनिवृत्त्यर्थं क्रतून्सर्वान्समातनोत् ॥
विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्बहुदक्षिणान् । मुमुचेसहसाब्रह्माशम्भुशापाद्द्विजोत्तमाः
तदेतत्तीर्थमासाद्य स्नानं कुर्वन्तिये नराः । ते महादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति न संशयः
ऋषय ऊचुः
व्यासशिष्य! महाप्राज्ञ! पुराणार्थविशारद !। चतुर्दशानां लोकानां स्रष्टारश्चतुराननम्
शम्भुः केनाऽपराधेन शप्तवान्भारतीपतिम् । शापश्च कीदृशस्तस्य पुरा दत्तो हरेणवै

एतत्सर्वम्मुने! ब्रूहि तत्त्वतोऽस्माकदरात् ।

श्रीसूत उवाच

पुरा बभूव कलहो ब्रह्मविष्ण्वोः परस्परम् ॥ ३४ ॥

कश्चिद्धेतुंसमुद्दिश्यस्पर्धयाश्लाघमानयोः । अहंकर्त्तानमत्तोऽन्यःकर्त्ताऽस्तिजगतीतले
एवमाह हरिं ब्रह्मा ब्रह्माणञ्च हरिस्तथा । एवंविवादः सुमहान्प्रावर्त्तत पुरा तयोः ॥
एतस्मिन्नन्तरेविप्राः! कुर्वतोः कलहं मिथः । तयोर्गर्वविनाशाय प्रबोधार्थञ्च देवयोः
मध्येप्रादुरभूल्लिङ्गंस्वयंज्योतिरनामयम् । तौ दृष्ट्वाविस्मितौलिङ्गंब्रह्मविष्णूपरस्परम्
समयञ्चक्रतुर्विप्रा देवानां सन्निधौपुरा । अनाद्यन्तं महालिङ्गं यदेतद्दृश्यते पुरः ॥
अनन्तादित्यसकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् । आवयोरस्यलिङ्गस्य योन्तमादिञ्चपश्यति
सभवेदधिको लोके लोककर्ताचसप्रभुः । अहमूर्ध्वंगमिष्यामि लिङ्गस्यान्तंगवेषयन्
गवेषणाय मूलस्य त्वमधस्ताद्धरे! व्रज । इति तस्य वचः श्रुत्वा तथेत्याह रमापतिः
एवं तौसमयं कृत्वा मार्गणाय विनिर्गतौ । विष्णुर्वराहरूपेण गतोऽधस्ताद्गवेषितुम्

हंसताम्भारतीजानिः स्वीकृत्योपरि निर्ययौ ।

अधोलोकान्विचित्याऽथो विष्णुर्वर्षगणान्बहून् ॥ ३५ ॥

यथास्थानं समागम्य बभारे देवसन्निधौ ।

विष्णुरुवाच

अहं लिङ्गस्य नाऽद्राक्षमादिमस्येति सत्यवाक् ॥ ३६ ॥

ऊर्ध्वंगवेषयित्वाऽथ ब्रह्माऽप्यागच्छदत्रसः । आगत्यच वचः प्राहच्छद्मना चतुराननः

ब्रह्मोवाच

अहमद्राक्षमस्यान्तलिङ्गस्येति मृषा पुनः । तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्मविष्ण्वोर्महेश्वरः

मिथ्यावादिनमाहेदं प्रहस्य चतुराननम् ।

ईश्वर उवाच

असत्यं यदवोचस्त्वं चतुरानन! मत्पुरः ॥ ३६ ॥

तस्मात्पूजा न ते भूयाल्लोके सर्वत्र सर्वदा । अथ विष्णुं पुनःप्राह भगवान्परमेश्वरः

यस्मात्सत्यमवोचस्त्वंकमलायाःपतेहरे !। तस्मात्तेमत्समा पूजाभविष्यतिनसंशयः
ततोब्रह्मा विषण्णःसन् शङ्करंप्रत्यभाषत । स्वामिन्ममापराधन्त्वंक्षमस्वकरुणानिधे!

एकोऽपराधः क्षन्तव्यः स्वामिभिर्जगदीश्वरैः ।
ततो महेश्वरोऽवादीद् ब्रह्माणं परिसान्त्वयन् ॥ ४३ ॥

ईश्वर उवाच

नमिथ्यावचनम्मेस्याद्ब्रह्मन्वक्ष्यामितेशृणु । गच्छन्त्वं सहसावत्सगन्धमादनपर्वतम्
तत्रक्रतून्कुरुष्व त्वं मिथ्यादोषप्रशान्तये । ततो विधूतपापस्त्वं भविष्यसिनसंशयः
तेन श्रौतेषुतेब्रह्मन्स्मार्तेष्वपि च कर्मसु । पूजाभविष्यति सदा न पूजा प्रतिमासुते
इत्युक्त्वा भगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत । ततो ब्रह्मा ययौ विप्रा गन्धमादनपर्वतम्
ईजे च क्रतुकर्तारं क्रतुभिःपार्वतीपतिम् । अष्टाशीतिसहस्राणि वर्षाणि मुनिपुङ्गवाः!
पौण्डरीकादिभिः सर्वैरध्वरैर्भूरिदक्षिणैः । इन्द्रादिसर्वदेवानांसन्निधावयजच्छिवम्

तेन तुष्टोऽभवच्छम्भुर्वरमस्मै प्रदत्तवान् ।

ईश्वर उवाच

मिथ्योक्तिदोषस्ते नष्टः क्रतैरेतैर्मखैरिह ॥ ५० ॥

चतुरानन ते! पूजा श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु । भविष्यत्यमला ब्रह्मन्न पूजा प्रतिमासु ते ॥

यास्यत्यलमिदं तेऽद्य ब्रह्मकुण्डमिति प्रथाम् ।
भविष्यति त्रिलोकेऽस्मिन्पुण्यं पापविनाशनम् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मकुण्डाभिधेतीर्थे सकृद्यःस्नानमाचरेत् । मुक्तिद्वारार्गलन्तस्य भिद्यतेतत्क्षणाद्विधे
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं ललाटे भस्म धारयन् । मायाकपाटं निर्भिद्य मुक्तिद्वारंप्रयास्यति
ब्रह्मकुण्डोत्थितं भस्मललाटे योनधारयेत् । स्वपितुर्बीजसम्भूतो नमातरिसुतस्तुसः
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मधारणतो विधे !। ब्रह्महत्यायुतं नश्येत्सुरापानायुतन्तथा ॥
गुरुतल्पायुतं नश्येत्स्वर्णस्तेयायुतं तथा । तत्संसर्गायुतंनश्येत्सत्यमुक्तं मया विधे!
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मधारणवैभवात् । भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्ति क्षणमात्रतः ॥
इत्युक्त्वा भगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत । यज्ञेष्वथ समाप्तेषु मुनयश्च जितेन्द्रियाः ॥

इन्द्रादिदेवताश्चैव सिद्धचारणकिन्नराः । अन्ये च देवनिवहा गन्धमादनपर्वते ॥
तान्यज्ञांश्च समाश्रित्य स्वयं रुद्रेण सेवितान् ।
निरन्तरमवर्तन्त विदित्वा तस्य वैभवम् ॥ ६१ ॥
यथाविधिनतोयज्ञान्समाप्य बहुदक्षिणान् । सत्यलोकमगाद्ब्रह्माशिवाल्लब्धमनोरथः
तदा प्रभृतिदेवाश्च मुनयश्च द्विजोत्तमाः । ब्रह्मकुण्डं समासाद्य चक्रुर्यागान्विधानतः
तस्माद्द्विबुभुक्षवो मर्त्याः कुर्युर्यज्ञानिहैव हि ।
मनुजदेवमुनीश्वरवन्दितं सकलसंसृतिनाशकरं द्विजाः ॥ ६४ ॥
जलजसम्भवकुण्डमिदं शुभं सकलपापहरं सकलार्थदम् ॥ ६५ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येब्रह्मकुण्डप्रशंसायांब्रह्मशापविमोक्षणंनाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## पञ्चदशोऽध्यायः

### हनुमत्कुण्डप्रशंसायांधर्मसखशतपुत्रावाप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

ब्रह्मकुण्डेमहापुण्ये स्नानंकृत्वासमाहितः । नरोहनुमतः कुण्डमथगच्छेद्द्विजोत्तमाः
पुराहतेषु रक्षःसुसमाप्ते रणकर्मणि । रामादिषु निवृत्तेषु गन्धमादनपर्वते ॥ २ ॥
सर्वलोकोपकाराय हनूमान्मारुतात्मजः । सर्वतीर्थोत्तमञ्चक्रे स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम्
विदित्वा वैभवं यस्य स्वयं रुद्रेण सेव्यते । तस्य तीर्थस्य सदृशंनभूतंनभविष्यति
यत्रस्नातानरायान्ति शिवलोकं सनातनम् । यस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये महापातकनाशने
सर्वलोकोपकाराय निर्मिते वायुसूनुना । सर्वाणि नरकाण्यासञ्छून्यान्यथचिरायवै

वैभवं तस्य तीर्थस्य शङ्करोवेत्ति वानवा । यत्र धर्मसखो नाम राजा केकयवंशजः ॥
भक्त्या सह पुरा स्नात्वा शतं पुत्रानवाप्तवान् ।

ऋषय ऊचुः

सूत! धर्मसखस्याऽद्य चरितं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
हनूमत्कुण्डतीर्थे यो लेभे स्नात्वा शतं सुतान् ।

श्रीसूत उवाच

शृणुध्वमृषयो यूयं चरितं तस्य भूपतेः ॥ ६ ॥

अद्य धर्मसखस्याऽहंप्रवक्ष्यामिसमासतः । राजाधर्मसखोनामविजितारिःसुधार्मिकः
बभूव नीतिमान्पूर्वं प्रजापालनतत्परः । तस्य भार्याशतं विप्रा! बभूवपतिदैवतम् ॥
सपालयन्महीं राजा सशैलवनकाननाम् । तासु भार्यासु तनयं नाऽविन्दद्वंशवर्द्धनम्
पुत्रार्थं स महीपालो बहून्यत्नानथाकरोत् । अकरोच्च महादानं पुत्रार्थं स महीपतिः
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरयजच्च सुरान्प्रति । तुलापुरुषमुख्यानि ददौ दानानि भूरिशः ॥
आमध्यरात्रमन्नानि सर्वेभ्योऽप्यनिवारितम् ।
प्रायच्छद् बहुरूपानि सभ्योपेतानि भूमिपः ॥ १५ ॥
पितॄनुद्दिश्य च श्राद्धमकरोद्विधिपूर्वकम् । सन्तानदायिनो मन्त्राञ्जजापनियतेन्द्रियः
एवमादीन्बहून्धर्मान्पुत्रार्थं कृतवान्नृपः । पुत्रमुद्दिश्य सततं कुर्वन्धर्माननुत्तमान् ॥
राजा दीर्घेण कालेन वृद्धतामप्रत्यपद्यत । कदाचित्तस्य वृद्धस्य यतमानस्य भूपतेः
पुत्रस्सुचन्द्रनामाऽभूज्ज्येष्ठपत्न्यांमनोरमः । जातं पुत्रंजनन्यस्ताः सर्वावैषम्यवर्जिता
समं संवर्द्धयामासुः क्षीरादिभिरनुत्तमाः । राज्ञश्चसर्वमातॄणां पौराणाम्मन्त्रिणांतथा
मनोनयनसन्तोषजनकोऽयं सुतोऽभवन् । लालनात्सुतरांराजा मुदं लेभे परात्परम्
आन्दोलिकाशयानस्य सूनोस्तस्य कदाचन ।
वृश्चिको कुट्टयेत्पादे पुच्छेनोग्रद्विषाग्निना ॥ २२ ॥
कुट्टनाद्वृश्चिकस्यासावरुदत्तनयो भृशम् । ततस्तन्मातरःसर्वाःप्रारुदञ्छोककातराः
परिवार्यात्मजंविप्राः सध्वनिःसङ्कुलोऽभवत् । आर्तध्वनिंसशुश्रावराजाधर्मसखस्तदा

उपविष्टः सभामध्ये सहामात्यपुरोहितः । अथप्रातिष्ठिपद्राजा सौविदल्लंसवेदितुम्
अन्तःपुरबहिर्द्वारं सौविदल्लः समेत्य नः । षण्ढवृद्धान्समाहूय वाक्यमेतदभाषत
षण्ढाः ! किमर्थमधुना रुदन्त्यन्तःपुरस्त्रियः । तत्परिज्ञायतान्तत्र गत्वारोदनकारणम्
एतदर्थंहिमांराजा प्रेरयामाससंसदि । इत्युक्तास्तुपरिज्ञाय निदानं रोदनस्यते
निर्गम्यान्तःपुरात्तस्मै यथावृत्तंन्यवेदयत् । सषण्ढकवचःश्रुत्वासौविदल्लःसभांगतः
राज्ञो निवेदयामास पुत्रं वृश्चिकपीडितम् । ततोधर्मसखोराजाश्रुत्वावृत्तान्तमीदृशम्
त्वरमाणःसमुत्थायसामात्यःसपुरोहितः । प्रविश्यान्तःपुरंसार्द्धंमन्त्रिकैर्विषहारिभिः
चिकित्सयामाससुतमौषधाद्यैरनेकशः । जातस्वास्थ्यंततःपुत्रं लालयित्वासभूपतिः

मानयित्वा च मन्त्रज्ञान् स्त्रकाञ्चनमौक्तिकैः ।
निष्क्रम्याऽन्तःपुराद्राजा भृशं चिन्तासमाकुलः ॥ ३३ ॥
ऋत्विकपुरोहितामात्यैस्तां सभां समुपाविशत् ।
तत्र धर्मसखो राजा सामासीनो वरासने ॥ ३४ ॥
उवाचेदं वचोयुक्तमृत्विजः सपुरोहितान् ।

धर्मसख उवाच

दुःखायैवैकपुत्रत्वं भवति ब्राह्मणोत्तमाः !॥ ३५ ॥

एकपुत्रत्वतो नृणां वरावैवहुपुत्रता । नित्यं व्यपाययुक्तत्वाद्वरमेवहुपुत्रता

अहं भार्याशतं विप्रा ! उदवोढं विचिन्त्य तु ॥ ३६ ॥
वयश्च समतिक्रान्तं सपत्नीकस्य मे द्विजाः !।
प्राणा मम च भार्याणामस्मिन्पुत्रे व्यवस्थिताः ॥ ३७ ॥

तन्नाशेममभार्याणां सर्वासाञ्च मृतिर्ध्रुवा । ममापि प्राणनाशः स्यादेकपुत्रस्य मारणे
अतो मे बहुपुत्रत्वं केनोपायेन वै भवेत् । तमुपायं मम ब्रूत ब्राह्मणा वेदवित्तमाः!॥
एकैकः शतभार्यासु पुत्रोमेस्याद्यथा गुणी । तत्कर्मब्रूत यूयन्तुशास्त्रमालोक्य धर्मतः
महता लघुना वापि कर्मणा दुष्करेणवा । फलं यद्यपि तत्साध्यंकरिष्येऽहं नसंशयः
युष्माभिरुदितं कर्म करिष्यामि न संशयः । कृतमेवहि तद्विप्त शपेऽहं सुकृतैर्मम

अस्ति चेदीदृशं कर्म येन पुत्रशतम्भवेत् । तत्कर्म कुत्र कर्तव्यं मयेति वदताऽधुना
इति पृष्टास्तदा राज्ञा ऋत्विजः सपुरोहिताः ।
सम्भूय सर्वे राजानमिदमूचुः सुनिश्चितम् ॥ ४४ ॥

ऋत्विज ऊचुः

अस्ति राजन्प्रवक्ष्यामो येन पुत्रशतं तव । भवेद्धर्मेण महता शतभार्यासु केकय
अस्ति कश्चिन्महापुण्यो गन्धमादनपर्वतः । दक्षिणाम्बुधिमध्येयः सेतुरूपेण वर्तते
सिद्धचारणगन्धर्वदेवर्षिगणसङ्कुलः । दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्महापातकनाशनः ॥ ४७ ॥
तत्रास्ति हनुमत्कुण्डमिति लोकेषु विश्रुतम् । महादुःखप्रशमनं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्
नरकक्लेशशमनं तथा दारिद्र्यमोचनम् । पुत्रप्रदमपुत्राणामस्त्रीणां स्त्रीप्रदं नृणाम्
तत्र त्वम्प्रयतः स्नात्वा सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ।
पुत्रीयेष्टिं च तत्तीरे कुरुष्व सुसमाहितः ॥ ५० ॥
तेन तेशतभार्यासु प्रत्येकं तनयो नृप !। एकैकस्तु भवेच्छीघ्रम्मा कुरुष्वात्र संशयम्
तथोक्तो नृपतिर्विप्रैर्ऋत्विग्भिः सपुरोहितः ।
तत्क्षणेनैव ऋत्विग्भिर्भार्याभिश्च पुरोधसा ॥ ५२ ॥
वृतोऽमात्यैश्च भृत्यैश्च यज्ञसम्भारसंयुतः । प्रययौ दक्षिणाम्भोधौगन्धमादनपर्वतम्
हनुमत्कुण्डमासाद्य तत्र सस्नौ ससैनिकः । मासमात्रंसतत्तीरे न्यवसत्स्नानमाचरत्
ततो वसन्ते सम्प्राप्ते चैत्रमासि नृपोत्तमः । इष्टिमारब्धवांस्तत्र पुत्रीयां सपुरोहितः
सम्यक्कर्माणि चक्रुस्ते ऋत्विजःसपुरोधसः । सपत्नीकस्यराजर्षेस्तथा धर्ममखस्यतु
इष्टौतस्यसमाप्तायां हनूमत्कुण्डतीरतः । पुरोहितो हुतोच्छिष्टम्प्राशयद्राजयोषितः
ततोधर्मसखोराजाहनूमत्कुण्डवारिषु । सम्यक् चकारावभृथस्नानम्भार्याशतान्वितः
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणाः प्रादादसंख्यातास्तु भूरिशः ।
ग्रामांश्च प्रददौ राजा ब्राह्मणेभ्यो द्विजोत्तमाः ॥ ५६ ॥
सामात्यः सपरिवारः सपत्नीकःसधार्मिकः । राजाततोनिववृते पुरींस्वांप्रतिनन्दितः
ततः कतिपये काले गते दशममासिवै । शतम्भार्याः शतम्पुत्रान् सुषुवुर्गुणवत्तरान्

अथ प्रीतमनाराजा वीरोधर्मसखो महान् । स्नातःशुद्धश्चसङ्कल्प्यजातकर्माऽकरोत्तदा गोभूतिलहिरण्यादिब्राह्मणेभ्योददौवहु । द्वौपुत्रौ ज्येष्ठभार्यायाः पूर्वजोऽवरजस्तदा सर्वे वबृधिरे पुत्रा एकाधिकशतंद्विजाः ।'प्रौढेषु तेषुराजासौ तेभ्यो राज्यंविभज्यतु दत्त्वा च प्रययौसेतुं सभार्यो गन्धमादनम् । हनुमत्कुण्डमासाद्य तपोऽतप्यततत्तटे

महान् कालो व्यतीयाय राज्ञस्तस्य तपस्यतः ।
राज्ञो धर्मसखस्यास्य ध्यायमानस्य शूलिनम् ॥ ६६ ॥

ततो वहुतिथे काले गते धर्मसखो नृपः । कालधर्मं ययौ तत्र धार्मिकश्शान्तमानसः पत्न्योऽपि तस्यराजर्षेरनुजग्मुः पतिं तदा । ज्येष्ठपुत्रःसुचन्द्रोपि सस्कृत्यपितरंततः अकरोच्छ्राद्धपर्यन्तं कर्माणि श्रद्धयासह । राजा सभार्योवैकुण्ठम्मरणादत्र जग्मिवान् सुचन्द्रमुख्यास्तेसर्वेराजपुत्रामहौजसः । स्वस्वराज्यम्बुभुजिरे भ्रातरस्त्यक्तमत्सराः एवं वः कथितं विप्राः हनूमत्कुण्डवैभवम् । राज्ञो धर्मसखस्यापिचरित्रम्परमाद्भुतम्

तत्सर्वकामसिद्ध्यर्थं स्नायात्कुण्डे हनूमतः ॥ ७२ ॥
अध्यायमेनम्पठते मनुष्यः शृणोति वा यः सुसमाहितो द्विजाः! ।
सोऽनन्तमाप्नोति सुखम्परत्र क्रीडेत सार्द्धं दिवि देववृन्दैः ॥ ७३ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येहनुमत्कुण्डप्रशंसायांधर्मसखशतपुत्रावाप्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

# षोडशोऽध्यायः

## अगस्त्यतीर्थप्रशंसायांकक्षीवदुद्वाहोद्योगवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

कुण्डेहनुमतःस्नात्वास्वयंरुद्रेणसेविते । अगस्तितीर्थंविप्रेन्द्रास्ततोगच्छेत्समाहितः
एतद्विनिर्मितं तीर्थं साक्षाद्वै कुम्भयोनिना । प्रवर्त्तमाने कलहे पुरा वै मेरुविन्ध्ययोः
निरुद्धभुवनाभोगो ववृधे विन्ध्यपर्वतः । तदा प्राणिषु सर्वेषु निरुच्छ्वासेषु देवताः
कैलासं पर्वतं गत्वा शम्भवे तद्व्यजिज्ञपन् । तदा सपार्वतीपाणिग्रहणोत्सवकौतुकी

प्रेषयित्वा वशिष्ठादीन् पार्वतीं याचितुम्मुनीन् ।

कुम्भज! त्वं निगृह्णीष्व विन्ध्याद्रिमिति सोऽन्वशात् ॥ ५ ॥

ततः सकुम्भजः प्राह भगवन्तम्पिनाकिनम् । उद्वाहवेषं ते देव न द्रक्ष्येऽहं कथंविभो!
इतिविज्ञापितःशम्भुः पुनःकुम्भजमब्रवीत् । कुम्भजोद्वाहवेषन्ते पार्वत्यासहितोह्यहम्
वेदारण्ये महापुण्येदर्शयिष्याम्यसंशयः । तद्गच्छशीघ्रं विन्ध्याद्रि निग्रहीतु मुनीश्वर
एवमुक्तस्ततोऽगस्त्योविन्ध्याद्रिंसनिगृह्यच । पादाक्रमणमात्रेणसमीकुर्वन्महीतलम्
चरित्वादक्षिणान्देशान्गन्धमादनमन्वगात् । सविदित्वामहर्षिस्तु गन्धमादनवैभवम्
तत्र तीर्थम्महापुण्यं स्वनाम्नानिर्ममेमुनिः । लोपामुद्रासखस्तत्र वर्ततेऽद्यापिकुम्भजः
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचनभूयोजन्मभाग्भवेत् । इहलोकेत्रिकालेऽपि तत्तीर्थसदृशद्विजाः
तीर्थं न विद्यते पुण्यम्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । सर्वाभीष्टप्रदं नृणां यत्तीर्थस्नानवैभवात्
सदीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवान्नामनामतः । लेभे मनोरमां नाम स्वनयस्य सुताम्प्रियाम्

कक्षीवतः कथा सेयम्पुण्या पापविनाशिनी ।

तां कथां वः प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वम्मुनीश्वराः ॥ १५ ॥

अस्ति दीर्घतमा नाम मुनिःपरमधार्मिकः । तस्य पुत्रःसमभवत्कक्षीवानिति विश्रुतः
उपनीतः सकक्षीवान्ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः । वेदाभ्यासायसगुरोःकुले वासमकल्पयत्

उदङ्कस्य गुरोर्गेहे वसन्दीर्घतमः सुतः।
सोऽध्यैष्ट चतुरो वेदान् साङ्गाञ्छास्त्राणि षट्तथा ॥ १८ ॥
इतिहासपुराणानि तथोपनिषदोऽपि च । उषित्वा षष्टिवर्षाणिकक्षीवानगुरुसन्निधौ
प्रयास्यन्स्वगृहं विप्रा ! गुरवे दक्षिणामदात् ।
उवाच वै गुरुं विद्वान्कक्षीवान् ब्रह्मवित्तमः ॥ २० ॥

कक्षीवानुवाच

अहं गृहम्प्रयास्यामिकुर्वनुज्ञाम्महामुने !। अवलोक्य कृपादृष्ट्या मांरक्षोदङ्कसाम्प्रतम्
उदङ्कस्त्वेवमुदितः कक्षीवन्तमथाब्रवीत् ।

उदङ्क उवाच

अनुजानामि कक्षीवन् ! गच्छ त्वं स्वगृहम्प्रति ॥ २२ ॥
उद्वाहार्थमुपायं ते वत्स! वक्ष्यामितच्छृणु । रामसेतुम्प्रयाहि त्वं गन्धमादनपर्वतम्
तत्राऽगस्त्यकृतं तीर्थं सर्वाभीष्टप्रदायकम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं पुंसां सर्वपापनिबर्हणम्
विद्यते स्नाहि तत्र त्वं सर्वमङ्गलसाधने । त्रिवर्षं वस तत्रत्वं नियमाचारसंयुतः
वर्षेषु त्रिषु यातेषु चतुर्थे वत्सरे ततः । निर्गमिष्यति मातङ्गः कश्चित्तीर्थोत्तमात्ततः
चतुर्दन्तो महाकायः शरदभ्रसमच्छविः । तंगजं गिरिसङ्काशं स्नात्वा तत्र समारुह
आरुह्य तं गजंवत्स स्वनयस्य पुरींव्रज । चतुर्दन्तगजस्थं त्वां दृष्ट्वा शक्रमिवापरम्
राजर्षिः स्वनयो धीमान् हर्षव्याकुललोचनः ।
स्वकन्यायाः कृतं दुःखं त्यजेदेव हृदि स्थितम् ॥ २६ ॥
पुरा हि प्रतिजज्ञेसा तस्य पुत्री मनोरमा । चतुर्दन्तम्महाकायं गजं सर्वाङ्गपाण्डुरम्
आरुह्य यः समागच्छेत्समे भर्ता भवेदिति ।
स्वकन्यायाः प्रतिज्ञां तां समाकर्ण्य स भूपतिः ॥ ३१ ॥
दुःखाकुलमना भूत्वा सततम्पर्यचिन्तयत् । स्वनये चिन्तयत्येवं नारदःसमुपागमत्
तमागतम्मुनिं दृष्ट्वा राजर्षिरतिधार्मिकः । प्रत्युद्गम्य मुदायुक्तः पाद्यार्घ्याद्यैरपूजयत्
प्रणम्य नारदंराजा वचनञ्चेदमब्रवीत् । कन्येयम्मम देवर्षे ! प्रतिज्ञामकरोत्पुरा

चतुर्दन्तं महाकायं गजं सर्वाङ्गपाण्डुरम् । आरुह्ययः समागच्छेत्स मे भर्ताभवेदिति
चतुर्दन्तो महाकायो गजः सर्वाङ्गपाण्डुरः । सम्भवेदिन्द्रभवने भूतले नैव विद्यते
इयञ्चदुस्तरामेनाम्प्रतिज्ञां बालिशाऽकरोत् । इयम्प्रतिज्ञातितरांसततम्बाधतेहिंमाम्

अनूढा हि पितुः कन्या सर्वदा शोकमावहेत् ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा स्वनयं नारदोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥
मा विषी दस्व राजर्षे ! तस्या ईदृग्विधःपतिः ।
भविष्यत्यचिरादेव पृथिव्याम्ब्राह्मणोत्तमः ॥ ३९ ॥

कक्षीवानिति विख्यातोजामातातेभविष्यति । इत्युक्त्वानारदमुनिर्ययावाकाशमार्गतः
स्वनयस्तद्वचः श्रुत्वानारदेनप्रभाषितम् । आकाङ्क्षतेदिवारात्रं तादृग्विधसमागमम्
अतः सौम्यमहाभागकक्षीवन्बालतापस । अगस्त्यतीर्थमद्यत्वंस्नातुंगच्छत्वरान्वितः
सर्वमङ्गलसिद्धिस्ते भविष्यति न संशयः । उदङ्केनैवमुक्तोऽथ कक्षीवान्द्विजपुङ्गवः
अनुज्ञातश्चगुरुणाप्रययौगन्धमादनम् । सम्प्राप्याऽगस्त्यतीर्थञ्चतत्रसस्नौजितेन्द्रियः
क्षेत्रोपवासमकरोद्दिनमेकम्मुनीश्वरः । अपरेद्युः पुनः स्नात्वा पारणामकरोद् द्विजः
रात्रौ तत्रैव सुष्वाप कक्षीवान्धर्मतत्परः । एवं नियमयुक्तस्य तस्य कक्षीवतो मुनेः
एकेन दिवसेनोनं वर्षत्रयमथाऽगमत् । अथ वर्षत्रयस्यान्ते तस्मिन्नेवदिने मुनिः

अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां सुखं सुष्वाप तत्तटे ।
याममात्रावशिष्टायां विभावर्यां महाध्वनिः ॥ ४८ ॥

उदभूत्प्रलयाम्भोधिवीचिकोलाहलोपमः । तेन शब्देन महता कक्षीवान्प्रत्यबुध्यत
ततस्तु स्वनयो नाम राजा सानुचरो बली । मृगयाकौतुकी तत्र मथुरापतिराययौ

विनिघ्नन्स गजान् सिंहान् वराहान्महिषान् रुरून् ।
अन्यान्मृगविशेषांश्च स राजा न्यवधीच्छरैः ॥ ५१ ॥

सामात्यौ मृगयासक्तोरथवाजिगजैर्युतः । अगस्त्यतीर्थसविधमाससादभटान्वितः
स राजा मृगयाश्रान्तः श्रान्तसैनिकसम्वृतः । तत्तीर्थतीरप्रान्तेषु निषसाद महीपतिः

ततः प्रभाते विमले कक्षीवान्मुनिसत्तमः ।

अगस्त्यतीर्थे स्नात्वाऽसौ सन्ध्याम्पूर्वामुपास्य च ॥ ५४ ॥
तस्य तीरे जपन्मन्त्रांस्तस्थौ नियमसंयुतः । अत्रान्तरे तीर्थवराद्गजएकोविनिर्ययौ
चतुर्दन्तो महाकायःकैलासइवमूर्त्तिमान् । ससमुत्थायतत्तीर्थादगात्कक्षीवदन्तिकम्
तमागतमुदङ्कोकलक्षणैरुपलक्षितम् । तदा निरीक्ष्य कक्षीवानारोढुं स्नानमातनोत्
नमस्कृत्य च तत्तीर्थं श्लाघमानो मुहुर्मुहुः । आरुरोहच कक्षीवांश्चतुर्दन्तं महागजम्
आरुह्य तञ्चतुर्दन्तं रजताचलसन्निभम् । स्वनयस्य पुरीमेव कक्षीवान्गन्तुमैच्छत
तमारूढश्चतुर्दन्तश्वेतदन्ताचलोपमम् । सवीक्ष्यनिश्चिकायैनं कक्षीवानिति भूपतिः
प्रसन्नहृदयो राजातस्यान्तिकमुपागमत् । तदाभ्याशमुपागम्यकक्षीवन्तं नृपोऽब्रवीत्

स्वनय उवाच

त्वम्ब्रह्मन्कस्य पुत्रोऽसि नाम किं चवमेवद । गजमेनं समारुह्यकुत्रवागन्तुमिच्छसि
स्वनयेनैवमुक्तस्तु कक्षीवान्वाक्यमब्रवीत् ।

कक्षीवानुवाच

पुत्रोऽहं दीर्घतमसः कक्षीवानिति विश्रुतः ॥ ६३ ॥
स्वनयस्य तु राजर्षेर्गच्छामिनगरम्प्रति । अहमुद्वोढुमिच्छामितस्यकन्याम्मनोरमाम्
चतुर्दन्तगजारूढस्तत्प्रतिज्ञाञ्च पूरयन् । स्वनयस्य सुतापाणिं ग्रहीष्यामि नराधिप
तद्भाषितं समाकर्ण्य श्रोत्रपीयूषवर्षिणम् । हर्षसम्फुल्लनयनः स्वनयो वाक्यमब्रवीत्
कक्षीवन्भोः कृतार्थोऽस्मि स एव स्वनयो ह्यहम् ।
उद्वोढुमिच्छसि भवान्यस्य कन्याम्मनोरमाम् ॥ ६७ ॥
स्वागतन्ते मुनिश्रेष्ठ कक्षीवन्बालतापस । मम कन्यां गृहाणत्वं तपोधनमनोरमाम्
तया सह चरन्धर्मान् गार्हस्थ्यम्प्रतिपालय । राज्ञोक्तःसतदोवाचकक्षीवान्धर्मतत्परः
राजानं स्वनयम्प्रीतम्मथुरापुरवासिनम् ।

कक्षीवानुवाच

पिता दीर्घतमा नाम वेदारण्ये मम प्रभो !॥ ७० ॥
आस्ते तपस्तत्तौष्मो नियमाचारतत्परः । तस्याऽन्तिकम्प्रेषयत्वं विप्रमेकंधरापते!

तथोक्तः सतदा राजास्वनयोहृष्टमानसः । अनेकसेनयासार्द्धम्प्राहिणोत्स्वपुरोधसम्
विप्रं सुदर्शनं नाम वेदारण्यस्थलम्प्रति । सुदर्शनः समादिष्टः स्वनयेन नृपेण सः
महत्या सेनया सार्धम्प्रययौ वेदकाननम् । तत्रोटजे समासीनं तं दीर्घतमसम्मुनिम्
तपश्चरन्तमासीनं ध्यायन्वेदाटवीपतिम् । पुरोहितो ददर्शाथ जपन्तम्मन्त्रमुत्तमम्
प्रणाममकरोत्तस्मै मुकये स सुदर्शनः । उवाच दीर्घतमसम्मुनिम्प्रह्लादयन्निव

सुदर्शन उवाच

कच्चित्ते कुशलम्ब्रह्मन्कच्चित्ते वर्धते तपः । आश्रमे कुशलं कच्चित्कच्चिद्धर्मे सुखं वद
पृष्टः सुदर्शनेनैवं मुनिर्दीर्घतमास्तदा । सुदर्शनमुवाचेदमर्घ्यादिविधिपूर्वकम् ॥

दीर्घतमा उवाच

सर्वत्र कुशलम्ब्रह्मन् सुदर्शन महामते !। मम वेदाटवीनाथ कृपया नाऽशुभं क्वचित्
तवापि कुशलं ब्रह्मन् ! किं सुखागमनं तथा । किं चागमनकार्यन्ते सुदर्शन ममाश्रमे
स्वनयस्य पुरोधास्त्वं खलु वेदविदाम्वरः । तं विहाय महाराजं मथुरापुरवासिनम्
महत्या सेनया सार्धं किमर्थं त्वमिहागतः । इत्युक्तो दीर्घतमसा तदानीं ससुदर्शनः
उवाच तम्महात्मानम्मुनिं ज्वलिततेजसम् । सर्वत्र मे सुखम्ब्रह्मन्भवतः कृपया सदा
भगवन्!स्वनयोराजासाष्टाङ्गंप्रणिपत्यतु । त्वाम्प्राहप्रश्रितवाक्यम्मन्मुखेनश्रृणुष्वतत्

स्वनय उवाच

कक्षीवांस्ते सुतोब्रह्मन् !गन्धमादनपर्वते । स्नानं कुर्वन्नगस्त्यस्य तीर्थेसम्प्रतिवर्तते
तस्य रूपं तपोधर्ममाचारान्वैदिकांस्तथा । वेदशास्त्रप्रवीणत्वमभिज्ञात्यश्रुतादृशम्
लोकोत्तरमिदं सर्वं विज्ञायतवनन्दने । मनोरमां सुतां तस्मै दातुमिच्छाम्यहम्मुने
मृगयाकौतुकी चाहं गन्धमादनपर्वतम् । आगतो मुनिशार्दूल! वर्त्ते युष्मत्सुतान्तिके
पित्रनुज्ञां विना नाऽहमुद्वहेयं सुतांतव । इति ते तव सुतः कक्षीवान्मुनिसत्तम
तद्वचान्मत्सुतां तस्मै दातुं मेऽनुग्रहं कुरु । अप्रेषयं समीपं ते सेनया च सुदर्शनम्

सुदर्शन उवाच

इतिमाम्भगवन्राजाप्राहिणोत्तवसन्निधिम् । तद्भवाननुमन्यस्वराज्ञस्तस्यचिकीर्षितम्

श्रीसूत उवाच

इत्युक्त्वा विररामाथ स्वनयस्य पुरोहितः। ततोदीर्घतमाःप्राहस्वनयस्यपुरोहितम्

दीर्घतमा उवाच

सुदर्शन! भवन्त्वेवंकथितं स्वनयेन यत्। ममाभीष्टनमं ह्येतत्पाणिग्रहणमङ्गलम्
आगमिष्याम्यहं विप्रगन्धमादनपर्वतम्। इत्युक्त्वासमुनिर्विप्राः स चदीर्घतमामुनिः
वेदाटवीपतिं नत्वा भक्तिप्रवणचेतसा। सुदर्शनेन सहितः सेतुमुद्दिश्य निर्ययौ
षड्भिर्दिनैर्मुनिः पुण्यं प्रययौगन्धमादनम्। अगस्तितीर्थतीरञ्चगत्वादीर्घतमामुनिः
अथ पुत्रं ददर्शाग्रे कक्षीवन्तम्महामुनिः। कक्षीवान्पितरं दृष्ट्वा ववन्दे नाम कीर्तयन्
ततोदीर्घतमायोगीस्वाङ्कमारोप्यतंसुतम्। मूर्ध्न्युपाघ्रायसस्नेहंसस्वजेपुलकाकुलः
कुशलम्परिप्रच्छतद्दीर्घतमा ऋषिः। सर्वेवेदास्त्वयाऽधीताः कक्षीवन्किमुवत्सक
शास्त्राण्यपाठीः किंत्वंवावत्ससर्वंवदस्वमे। इतिपृष्टःस्वपित्रासर्वनिवृत्तमब्रवीत्

श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थप्रशंसायां कक्षीवदुद्वाहोद्योगोनाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

## सप्तदशोऽध्यायः

### कक्षीवद्विवादनिष्पत्तिनिरूपणम्

श्रीसूत उवाच

पुनरित्याह कक्षीवान्पितरन्तं मुनीश्वराः। ततोदङ्केन गुरुणा प्रेषितोऽहमिहाधुना
समागतोऽस्मि तीर्थेऽस्मिन्नागस्त्ये मुनिसत्तम!।
स्वनयस्य सुतोद्वाहसिद्ध्यर्थं गुरुचोदितः॥ २॥
उपायन्तं विगदितमत्र कुर्वन्निवर्तिषम्। वर्षत्रयावसाने मामुद्वाहोपायसंयुतम्

स्वनयोत्रैवतिष्ठन्तमाससादयदृच्छया। सचमामेत्यकन्यान्तेदास्यामीतिवचोऽब्रवीत्
ततोऽस्मदनुरोधेन त्वामाह्वयदयन्नृपः । इतीरयित्वा पितरं कक्षीवान्विरराम सः
सुदर्शनोऽथविप्रेन्द्रःपुरोधाः स्वनयस्य सः। प्रययौ राजसविधं स्वनयायनिवेदितुम्
राजाऽनन्तं समासाद्य स्वनयं स सुदर्शनः। प्राप्तं निवेदयामास तं दीर्घतमसम्मुनिम्
ततः सराजास्वनयोमुनिंप्राप्तंपुरोहितात्। श्रुत्वाविनिर्ययौद्रष्टुं सहसापटमण्डपात्
अगस्त्यतीर्थतीरेतं सपुत्रमृषिसत्तमम्। ददर्श राजा स्वनयो ब्रह्माणमिवदेवराट्
ववन्दे दीर्घतमसश्चरणौ लोकमङ्गलौ। उत्थाप्य नृपतिं विप्रास्तदा दीर्घतमा मुनिः
आशिषं प्रयुयोजाथ स्वनयाय नृपाय सः। अत्रान्तरे समायात उदङ्कोऽपिमहानृषिः
रामसेतौधनुष्कोटौस्नातुंशिष्यगणैर्वृतः। लक्षसङ्ख्यामुनिगणस्तेनसाकंमुनीश्वराः
उदङ्कोऽगस्त्यतीर्थेऽस्मिन् स्नातुं सम्प्राप्तवान्मुनिः।
उदङ्कमागतं दृष्ट्वा कक्षीवान्प्रणनाम तम्॥ १३॥
अकरोदाशिषं विप्रः शिष्यायाथ गुरुस्तदा। अथ दीर्घतमाविप्रस्तमुदङ्कं महामुनिः
कुशलं परिपप्रच्छ स प्रीतम्मुनिपुङ्गवम्। उभौतौ मुनिशार्दूलौ सर्वलोकेषु विश्रुतौ
कथयामासतुस्तत्र कथाः पापप्रणाशिनीः। अथ राजा ततोदङ्कं प्रणनाममुनीश्वरम्
उदङ्कोऽप्याशिषन्तस्मैप्रायुङ्क्तस्वनयायवै। राजाऽथस्वनयःप्रीतस्तत्रवाक्यमभाषत
मुनितंदीर्घतमसं विवाहः क्रियतामिति। तथास्त्वित्यवदत्सोपितदादीर्घतमा मुनिः
श्व एव क्रियतां राजन्सुमुहूर्ते महामते॥ अत्रैव पाणिग्रहणं क्रियतां गन्धमादने॥
तस्मादिहाऽऽनयक्षिप्रंकन्यामन्तःपुरन्तथा। इत्युक्तःस्वनयोराजागत्वास्वपटमण्डपम्
आहूय शतसङ्ख्याकान्वृद्धान्वर्षवरांस्तदा। आनेतुं प्रेषयामास कन्यामन्तःपुरन्तथा॥
ते वर्षवरमुख्यास्तु स्वनयेन प्रचोदिताः। मनोजवान् समारुह्य वाजिनो मथुरा ययुः
गत्वा चान्तःपुरन्तूर्णं वृत्तंसर्वं निवेद्य च। कन्ययाऽन्तःपुरेणापि सहिताः पुनराययुः
ततः परस्मिन्दिवसे शुभे दीर्घतमाऋषिः। गोदानादीनि पुत्रस्य विधिवन्निरवर्तयत्
निर्वृत्तेष्वथ कक्षीवान्गोदानादिषुकर्मसु। उद्वोढुं राजतनयां पित्रा च गुरुणा सह
चतुर्दन्तं महाकायं गजं सर्वाङ्गपाण्डुरम्। आरुह्य हर्षसंयुक्तो द्वितीय इवदेवराट्

मनोरमायाः कन्यायाःपूरयंश्चमनोरथम् । ब्राह्मणैर्बहुसाहस्रैः सहितः स्वस्तिवाचकैः
तोरणालङ्कृतद्वारं राजर्षेः पटमण्डपम् । कृतमङ्गलकृत्योसौ कक्षीवान्मुदितो ययौ
ततः स्वनयकन्या सा कृतमङ्गलभूषणा । चतुर्दन्तम्महाकायं श्वेतदन्तगजस्थितम्
कक्षीवन्तं समायातं दृष्ट्वास्वोद्वाहनोत्सुकम् । प्रतिज्ञामत्कृतेदानीं निवृत्तेतिमुदं ययौ
कक्षीवान्दीर्घतमसा तथोदङ्केन संयुतः । पटाकारबहिर्द्वारं क्रमाद्राज्ञः समाययौ ॥
स्वनयस्तु ततो दृष्ट्वा कक्षीवन्तं समागतम् । प्रत्युज्जगाम सहितः सुदर्शनपुरोधसा
कक्षीवतोवरस्याथ कन्यकापरिचारिकाः । राजतैःस्वर्णपात्रैश्च चक्रुर्नीराजनाविधिम्
स्वनयेनसमाहूतो ब्राह्मणैःपरिवारितः । प्रविवेशाथलक्ष्मीवान्कक्षीवान्राजमन्दिरम्
ततो वरेण सहितं तन्दीर्घतमसम्मुनिम् । सोदङ्कमनयद्राजा स्वगृहं विनयान्वितः
उदङ्कदीर्घतमसोरर्घ्यश्च प्रददौ नृपः । अलङ्कृते प्रपामध्ये वस्त्रचामरतोरणैः ॥
वरोदीर्घतमाश्चान्येसोदङ्का मुनयस्तदा । न्यषीदन्स्वनयश्चापिसामात्यःसपुरोहितः
ततो दुहितरंकन्यां सुकेशींताम्मनोरमाम् । भूषणालङ्कृतांगात्रे दिव्यवस्त्रधरांशुभाम्
बिम्बोष्ठीं चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् । प्रपाया मध्यमनयन्महाजनसमाकुलम्
ततो वरस्यकण्ठेसा मालाञ्चम्पकनिर्मिताम् । निवेशयामासशुभा जनमध्ये मनोरमा
उदङ्कस्तत्रआगत्य प्रतिष्ठाप्यानलंस्थले । कृत्वाग्निमुखपर्यन्तं लाजाहोमादिकन्तथा
पाणिमग्राहयत्तस्याः कन्यायाश्च वरेणतु । उदङ्कः सर्वकर्माणि कारयामास तत्र वै
वरवध्वोस्तदाविप्राः प्रायुञ्जततदाशिषः । ततःस राजा स्वनयो वरंदीर्घतमोमुनिम्
उदङ्कं वरपक्षीयान्स्वपक्षीयांस्तथाद्विजाः । त्रिलक्षं ब्राह्मणानन्नैर्भोजयामास षड्रसैः
ततः सम्भावयामास ताम्बूलाद्यैरनेकधा । अथामन्त्र्य मुनिश्रेष्ठमुदङ्कः स्वाश्रमं ययौ
अन्ये च ब्राह्मणाः सर्वेस्वदेशान्प्रययुस्तदा । एवंविवाहे निर्वृत्ते कक्षीवद्राजकन्ययोः
प्रविश्यागस्त्यतीर्थं स तिरोधत्त गजोत्तमः । ततोदीर्घतमा विप्रः पुत्रेणस्नुषयासह
अगस्त्यस्यमहातीर्थे स्नानं कन्येप्रदायिनि । श्लाघमानश्चतत्तीर्थंसर्वलोकेषुविश्रुतम्
प्रयातुं स्वाश्रमम्पुण्यं वेदारण्यम्मनोदधे । राजानञ्च तमागन्तुमापृच्छन्मुनिसत्तमः
स्वनयोपितदाराजास्वदुहित्रे मुदान्वितः । ददौशतसहस्राणि स्वर्णानिस्त्रीधनन्तदा

गवां सहस्रं प्रददौ दासीनाञ्च सहस्रकम् । ग्रामम्पञ्चशतञ्चापि ददौ दुहितृवत्सलः
दिव्यवस्त्रायुतञ्चाऽपि शत भूषणपेटिकाः ।
हारमालासहस्रञ्च ददौ दुहितृसौहृदात् ॥ ५२ ॥
एतत्सर्वं समादाय सपुत्रः सस्नुषोमुनिः । राज्ञा च समनुज्ञातः प्रययौ वेदकाननम्
वेदारण्यंसमासाद्य तदादीर्घतमा मुनिः । उवास स सुखं विप्राः पुत्रेण स्नुषया सह
सेवन्वेदाटवीनाथं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । न्यवसत्सचिरंकालं कक्षीवानपिभार्यया
स्वनयोऽपि स राजर्षिः स्नात्वा कुम्भजनिर्मिते ।
तत्र तीर्थे महापुण्ये सहितः सर्वसैनिकैः ॥ ५६ ॥
अन्तःपुरं समादाय मुदितः स्वपुरंययौ । अगस्त्यतीर्थमाहात्म्यादेवंकक्षीवतोमुनेः
अनन्यसुलभो विप्रा ! विवाहः समजायत ।

श्रीसूत उवाच

इतिहासस्त्वयं पुण्यो वेदसिद्धो मुनीश्वराः !॥ ५८ ॥
धन्यो यशस्य आयुष्यः कीर्तिसौभाग्यवर्द्धनः ।
श्रोतव्यः पठितव्योऽयं सर्वथा मानवैर्द्विजाः ॥ ५६ ॥
पठतां शृण्वतांचेममितिहासंपुरातनम् । नेहामुत्रापिवाक्लेशोदारिद्र्यञ्चापिनोभवेत्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येकक्षीवद्विवादनिष्पत्तिर्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

# अष्टादशोऽध्यायः

## रामतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रमिथ्याकथनदोषशान्तिवर्णनम्

### श्रीसूत उवाच

कुम्भसम्भवतीर्थेऽस्मिन्विधायाभिषवन्नरः । रामकुण्डंततःपुण्यं गच्छेत्पापविमुक्तये रघुनाथसरः पुण्यं द्विजाः पापहरं तथा । रघुनाथसरस्तीरे कृतो यज्ञोऽल्पदक्षिणः सम्पूर्णफलदो भूयात्स्वाध्यायोऽपिजपस्तथा । रघुनाथसरस्तीरेमुष्टिमात्रमपिद्विजाः दत्तश्चेद्वेदविदुषे तदनन्तगुणं भवेत् । रामतीर्थं समुद्दिश्य वक्ष्यामि मुनिपुङ्गवाः इतिहासं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् । सुतीक्ष्णनामा विप्रेन्द्रा मुनिर्नियतमानसः अगस्त्यशिष्योरामस्यचरणाब्जविचिन्तकः । रामचन्द्रसरस्तीरे तपस्तेपेसुदुष्करम् जपन्षडक्षरं मन्त्रं रामचन्द्राधिदैवतम् । नित्यं स पञ्चसाहस्रं मन्त्रराजमतन्द्रितः जजापकुर्वन्स्नानञ्च रघुनाथसरो जले । भिक्षाशीनियताहारो जितक्रोधोजितेन्द्रियः एवं सुतीक्ष्णो विप्रेन्द्राः बहुकालमवर्तत । ततःकदाचित्समुनी रामंध्यायन्सदाहृदि

तुष्टाव सीतासहितं रामचन्द्रं सभक्तिकम् ।

### सुतीक्ष्ण उवाच

नमस्ते जानकीनाथ! नमस्ते हनुमत्प्रिय !॥ १० ॥

नमस्ते कौशिकमुनेर्यागरक्षणदीक्षित । नमस्ते कौशलेयाय विश्वामित्रप्रियाय च नमस्ते हरकोदण्डभञ्जकाऽमरसेवित !। मारीचान्तक! राजेन्द्र ! ताटकाप्रणनाशन ॥ कबन्धारे! हरे तुभ्यं नमो दशरथात्मज !। जामदग्न्यजिते तुभ्यं खरविध्वंसिने नमः नमः सुग्रीवनाथाय नमो बालिहरायते । विभीषणभयक्लेशहारिणे मलहारिणे ॥ अहल्यादुःखसंहर्त्रे नमस्ते भरताग्रज !। अम्भोधिगर्वसंहर्त्रे तस्मिन्सेतुकृते नमः तारकब्रह्मणे तुभ्यं लक्ष्मणाग्रज ते नमः । रक्षः संहारिणे तुभ्यं नमो रावणमर्द्दिने कोदण्डधारिणेतुभ्यंसर्वरक्षाविधायिने । इतिस्तुवन्मुनिःसोयंसुतीक्ष्णोराममन्वहम्

निनाय कालमनिशं रामचन्द्रनिषण्णधीः । एवमभ्यसतस्तस्य राममन्त्रं षडक्षरम्
स्तुवतो रामचन्द्रञ्चस्तोत्रेणानेन सुव्रताः । तीर्थे च रघुनाथस्यकुर्वतः स्नानमन्वहम्
अभवन्निश्चला भक्ती रामचन्द्रेऽतिनिर्मला । अभूदद्भुतविज्ञानं प्रत्यगात्मैकलक्षणम्
अनधीतत्रयीज्ञानं तथैवाऽश्रुतवेदनम् । परकायप्रवेशेच सामर्थ्यमभवद्द्विजाः ॥
आकाशगमने शक्ती कलावैदग्ध्यमेवच । अश्रुतानाञ्च शास्त्राणामभिज्ञानंविनागुरुम्
गमनं सर्वलोकेषु प्रतिघातविवर्जितम् । अतीन्द्रियार्थद्रष्टृत्वं देवैः सम्भाषणन्तथा
पिपीलिकादिजन्तूनां वार्ताज्ञानमपिद्विजाः । ब्रह्मविष्णुमहादेवलोकेषुगमनन्तथा
चतुर्दशेषु लोकेषु निर्यत्तगमनन्तथा । एतान्यन्यानिसर्वाणि योगिलभ्यानिसत्तमाः
सुतीक्ष्णस्याऽभवन्विप्रा रामतीर्थनिषेवणात् । एवं प्रभावंतत्तीर्थं महापातकनाशनम्
महासिद्धिकरं पुण्यमपमृत्युविनाशनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं पुंसां नरकक्लेशनाशनम्
रामभक्तिप्रदंनित्यं संसारोच्छेदकारणम् । अस्य तीरे महल्लिङ्गं लोकानुग्रहकाम्यया
रामतीर्थेमहापुण्येस्नात्वातल्लिङ्गदर्शनात् । नराणांमुक्तिरेवस्यात्किमुतान्याविभूतयः
तत्रस्नात्वाशिवंद्रष्ट्वाधर्मपुत्रःपुराद्विजाः । अनृतोक्तिसमुद्भूतदोषान्मुक्तोऽभवत्क्षणात्

ऋषय ऊचुः

असत्यमुदितं कस्माद्धर्मपुत्रेण सूतज! । यद्दोषशान्तये सस्नौ रामतीर्थेऽतिपावने

श्रीसूत उवाच

युष्माकमृषयोवक्ष्ये यथोक्तमनृतं रणे । छलेन धर्मपुत्रेण यत्रछं रामतीर्थके
अन्योन्यं पाण्डवा विप्रा! धर्मपुत्रादयः पुरा । धृतराष्ट्रस्य पुत्राश्च दुर्योधनमुखास्तदा
महान्तं वैरमासाद्य राज्यार्थं विप्रसत्तमाः । महत्या सेनया सार्द्धं कुरुक्षेत्रे समेत्यच
अयुध्यन्समरे वीराः समरेष्वनिवर्तिनः । युद्धंकृत्वा दशदिनं गाङ्गेयः पतितो भुवि
ततः पञ्चदिनं भूयो धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् । आचार्योयुयुधे द्रोणो महाबलपराक्रमः

अनेकास्त्राणि शास्त्राणि द्रोणाचार्यो महाबली ।
विसृजन्पाण्डवानीकं पीडयामास वीर्यवान् ॥ ३७ ॥

अथदिव्यास्त्रविच्छूरो धृष्टद्युम्नो महाबली । अभिनद्बाणवर्षेण द्रोणसेनामनेकधा

धृष्टद्युम्नन्तदा द्रोणः शरवर्षैरवाकिरत् । पार्थसेना तथा द्रोणबाणवर्षातिपीडिता
दश दिक्षु भयाक्रान्ता विद्रुताद्विजसत्तमाः । ततोऽर्जुनो रणे द्रोणंयुयुधेरथिनांवरः
रणप्रवीणयोस्तत्र विजयद्रोणयोरणे । द्रष्टुं समागतैर्देवैरभूद्व्योमनिरन्तरम्
द्रोणफाल्गुनयोर्विप्रानास्तियुद्धोपमाभुवि । सामर्थयोस्तदाचार्यशिष्ययोरभवद्रणम्
द्रोणफाल्गुनयोर्युद्धं द्रोणफाल्गुनयोरिव । बहुमेनेऽथ मनसा द्रोणोऽर्जुनपराक्रमम्
ततो द्रोणोमहावीर्यं प्रियशिष्यंसफाल्गुनम् । विहायपाञ्चालबलंसमयुध्यतवीर्यवान्
सविंशतिसहस्राणि दशतत्रायुतानित्र । द्रोणाचार्योऽवधीराज्ञांयुद्धेसगजवाजिनाम्
धृष्टद्युम्नोथ कुपितो द्रोणमभ्यहनच्छरैः । द्रोणश्च पट्टिशंगृह्य धृष्टद्युम्नम ताडयत्
शरैर्विव्याध तंयुद्धे तीक्ष्णैरग्निशिखोपमैः । पराङ्मुखो भवत्तत्र धृष्टद्युम्नः शराहतः
ततो विरथमागत्य धृष्टद्युम्नंवृकोदरः । स्वंस्यन्दनंसमारोप्य द्रोणाचार्यमथाब्रवीत्
स्वकर्मभिरसन्तुष्टाः शिक्षितास्त्राद्विजाधमाः । नयुद्ध्येत्तरन्यदिक्रूराननश्येरन्नृपारणे
अहिंसाहि परोधर्मो ब्राह्मणानांसदास्मृतः । हिंसयादारपुत्रादीन्रक्षन्तेव्याधजातयः
हिंसित्वमेकपुत्रार्थे युद्धेम्भिथन्वा बहून्नृपान् । सत्रापितेसुतोब्रह्मन्हतः शेतेरणाजिरे
तथाऽपि लज्जा ते नास्ति शोकोऽपीह न जायते ।
वचनं त्विति भीमस्य सत्यं श्रुत्वा युधिष्ठिरात् ॥ ५२ ॥
निजायुधंमतत्याजपपातस्यन्दनोपरि । योगवित्प्रायमातस्थेद्रोणाचार्यस्तदाद्विजाः
तदन्तरम्परिज्ञाय द्रोणाचार्यस्य पार्षदः । खड्गपाणिः शिरश्छेत्तुमभ्यधावद्रणाजिरे
वार्यमाणोऽपि पार्थाद्यैस्तच्छिरश्छेत्तुमुद्ययौ ।
योगविस्त्वाद्द्रोणमूर्ध्नां ज्योतिरूर्ध्वं दिवं ययौ ॥ ५३ ॥
दृष्टं कृष्णार्जुनकृपधर्मपुत्रादिभिर्मृधे । द्रोणस्यास्यगतप्राणाच्छरीरादच्छिनच्छिरः
भारद्वाजे हते युद्धे कौरवाः प्राद्रवन्भयात् । जहृषुः पाण्डवाविप्राधृष्टद्युम्नादयस्तदा
सेनांतां विद्रुतान्दृष्ट्वा द्रौणिरूचे सुयोधनम् । एतद्द्रवतिकिंसैन्यं त्यक्तप्रहरणन्नृप
तदा दुर्योधनो राजा स्वयं वक्तुशक्नुवन् । युद्धे द्रोणवधंवक्तुं कृपाचार्यमचोदयत्
द्रोणयेऽथ कृपाचार्या वधमूचे गुरोस्तदा ।

कृप उवाच

अश्वत्थामंस्तव पिता ब्रह्मास्त्रेण मृधेरिपून् ॥६० ॥

हत्वा निनाय सदनं यमस्य शतशोबली । दुराधर्षतमं दृष्ट्वा तद्वीर्यं केशवस्तदा

पाण्डवान्प्राह विप्रेन्द्रा ! वाक्यं वाक्यविशारदः ।

केशव उवाच

द्रोणञ्जेतुमुपायोऽस्ति पाण्डवा युधि दुर्जयम् ॥ ६१ ॥

अश्वत्थामा तवसुतो हतोद्रोण! मृधेऽधुना । सत्यवादी वदेद्वेवंयदिप्रामाणिकोजनः

द्रोणा निवर्ततेरणात्तदायत्तरायुधं क्षणात् । अत एनां मृषांवार्ताधर्मराजोऽधुनावदेत्

नान्यथा शक्यतेजेतुंद्रोणोयुद्धविशारदः । धर्माज्जेतुमशक्यञ्चेद्धर्मंत्यक्त्वाप्यरिञ्जयेत्

इति केशववाक्यंतच्छ्रुत्वा भीमःपृथासुतः । पितरन्तेसमभ्येत्यमिथ्यावाक्यमभाषत

अश्वत्थामा हतो द्रोण युद्धेऽत्रपतितोधुना । द्रोणचार्योपितद्वाक्यममन्यतयथार्थतः

अविश्वस्य पुनः सोऽथ धर्मजम्प्राप्य चाऽब्रवीत् ।

धर्मात्मज! मृधेसूनुरश्वत्थामा ममाऽधुना ॥ ६८ ॥

हतःकिन्त्वंवदस्वाद्यसत्यवादीभवान्मतः । धर्मपुत्रोसत्यभीरुरासीच्चारिजयोत्सुकः

किंकर्तव्यं मयाद्येति दोलालोलमना अभूत् । सदृष्ट्वाभीमनिहतमश्वत्थामाभिधगजम्

अश्वत्थामा हतो युद्धभीमेनाद्य रणेमहान् । इत्थं वचोबभाषेऽसौधर्मपुत्रश्छलोक्तितः

तच्छ्रुत्वा त्वत्पिताशस्त्रं त्यक्त्वा युद्धान्न्यवर्तत । अथ धर्मसुतःप्राहपरवारणइत्यपि

त्यक्तशस्त्र न गृह्णीया युद्धेपुनरितिस्मसः । प्रतिजज्ञे तव पितावत्स! द्रोणोबलीपुरा

अतः शस्त्रं न जग्राह प्रतिज्ञाभङ्गकातरः । धृष्टद्युम्नं त दादृष्ट्वापिता ते मृत्युमात्मनः

मत्वा प्रायोपवेशेनरथोपस्थेसयोगवित् । अशयिष्टसमाधिस्थःप्राणानायम्यवाग्यतः

ततो निर्भिद्यपूर्धानंतत्प्राणनिर्ययुःक्षणात् । तदामृतस्यद्रोणस्यवत्सखड्गेनताच्छरः

केशान्गृहीत्वा हस्तेनधृष्टद्युम्नोऽच्छिनद्युधि ।

मावधीरिति पार्थाद्याः प्रोचुः सर्वे च सैनिकाः ॥ ६७ ॥

सर्वनिवार्यमाणोऽपि त्वत्तातं पार्षदोऽवधीत् ।

श्रीसूत उवाच

पितरं निहतं श्रुत्वा रुदन्द्रौणिश्चिरन्द्विजाः ॥ ७८ ॥

कोपेन महतातत्र ज्वलन्वाक्यमथाब्रवीत् । अनृतम्प्रोक्य पितरं न्यस्तशस्त्रञ्चकारयः पितरम्मेघ्नन्पार्थमप्यन्यानथपाण्डवान् । गृहीत्वाकेशपाशं यस्त्यक्तशस्त्रशिरोऽहनत् छद्मना पार्षदन्तञ्च हनिष्याम्यचिरादहम । कृष्णेनसह पश्यन्तु पाण्डवामत्पराक्रमम् इति द्रौणिर्द्विजास्तत्र प्रतिजज्ञे भयङ्करम् । ततोऽस्तङ्गतआदित्येराजानः सर्वएव ते सेनरे निहते द्रोणे प्राविशन्पटमण्डपम् । अष्टादशदिनैरेवं निवृत्तमभवद्रणम् शल्यं कर्णं तथान्याश्च दुर्योधनमुखास्ततः । धार्तराष्ट्रान्निहत्याजौ धर्मराजोयुधिष्ठिरः

स्वीयानां च परेषा च मृतानां साम्परायिकम् ।

अकरोद्विधिवद्विप्राः सार्द्धं धौम्यादिभिर्द्विजैः ॥ ८५ ॥

वन्दित्वा धृतराष्ट्रञ्च सर्वे सम्भूय पाण्डवाः । धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञाता हतशिष्टजनैर्वृताः सम्प्राप्य हस्तिनपुरंप्राविशंस्ते स्वमन्दिरम् । ततः कतिपयाहःसुगतेषुकिलनागराः धौम्यादिमुनिभिः सार्द्धधर्मजस्यमहात्मनः । राज्याभिषेचनं कर्तुंप्रारभन्तमुनीश्वराः राज्याभिषेचनेतस्य प्रवृत्ते धर्मजस्य तु । अशरीरा ततोवाणी बभाषे धर्मनन्दनम् धर्मपुत्र महाभाग रिपूणामपिवत्सल । राज्याभिषेक माकार्षीर्नार्हस्त्वं राज्यपालने यतस्त्वंछद्मनाऽऽचार्यमुक्त्वा सत्यं द्विजोत्तमम् । न्यस्तशस्त्रंरणेराजन्नघातयदलज्जकः अतस्ते पापबाहुल्यं विद्यते धर्मनन्दन !। प्रायश्चित्तमकृत्वाऽस्य राज्यपालनकर्मणि नार्हता विद्यते यस्मात्प्रायश्चित्तमतश्चर । इत्युक्त्वा विररामाऽथ सातुवागशरीरिणी ततो धर्मसुतो राजा तद्वाक्यभृशकातरः । मूढोऽहं साहसीकूरः पिशुनोलोभमोहितः

तुच्छराज्याभिलाषेण कृतवान्पापमीदृशम् ।

एतत्पापविशुद्ध्यर्थं किं करिष्यामि का गतिः ॥ ९५ ॥

किंत्वादानंप्रदास्यमि कुत्रयास्यामि वा पुनः । इतिशोकसमाविष्टेतस्मिन्राजनिधर्मजे

कृष्णद्वैपायनो व्यासस्समायातस्तदन्तिकम् ।

ततोऽभिवन्द्य तं व्यासं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥ ९७ ॥

सम्पूज्याऽर्घ्यादिनाविप्रा भक्तियुक्तेन चेतसा । अदेहवाघायत्प्रोक्तंतत्सर्वमखिलेनसः
व्यासायश्रावयामास दुःखितोधर्मनन्दनः । श्रुत्वातदखिलं वाक्यंधर्मजस्यमहामुनिः
ध्यात्वा तु सुचिरंकालं ततो वक्तुं प्रचक्रमे ।

व्यास उवाच

माऽकार्षीस्त्वं भयं राजन्नुपायं प्रब्रवीमि ते ॥ १०० ॥
अस्य पापस्य शान्त्यर्थं श्रुत्वाऽनुष्ठीयतान्त्वया ।

युधिष्ठिर उवाच

किं तद् ब्रूहि महायोगिन्पाराशर्य! कृपानिधे !॥ १०१ ॥
येन मे पापनाशः स्यादचिरात्तद्वदाऽधुना ।

व्यास उवाच

दक्षिणाम्भोनिधौ सेतौ गन्धमादनपर्वते ॥ १०२ ॥
रामसेतौ महाराज! रामतीर्थमितिश्रुतम् । अस्ति पुण्यं सरःसिद्धंमहापातकनाशनम्
यस्य दर्शनमात्रेण महापातककोटयः । प्रयान्ति विलयं सद्यस्तमःसूर्योदये यथा
रामतीर्थं यदा पश्येत्स्वयं रामेण निर्मितम् । तत्रैव ब्रह्महत्याया मुच्यते नात्र संशयः
तत्रगत्वामहाराज रामतीर्थे विमुक्तिदे । स्नाहितेपापशुद्धिः स्याद्राज्यरक्षार्हतापि च
दानं कुरुष्व तत्तीरे गोभूमितिलवाससाम् । सुवर्णरजतानाञ्च दानं कुरु युधिष्ठिर
अवश्यमेतत्पापानां शुद्धिस्तेनाऽचिराद्भवेत् ।

श्रीसूत उवाच

व्यासेन धर्मपुत्रोऽयमेवमुक्तो द्विजोत्तमाः !॥ ८ ॥
तत्क्षणेनैव धौम्येन सहितः सानुजस्तदा । सहदेवं प्रतिष्ठाप्य राज्यैधर्मात्मजस्तदा
रामसेतुं समुद्दिश्य प्रतस्थे वाहनं विना । दिनैः कतिपयैरेव रामसेतुं जगाम सः
रामतीर्थं समासाद्य धौम्येन सहपाण्डवः । पुरोहितोक्तमार्गेण सङ्कल्प्यविधिपूर्वकम्
सस्नौरामसरस्तीर्थे पुण्येपापविनाशने । स्नात्वाचस्यविशुद्धात्माक्षेत्रपिण्डम्प्रदायच
व्यासोक्ताखिलदानानि प्रददौ स युधिष्ठिरः । मासमेकं निराहारः सस्नौतत्रसधर्मजः

प्रत्यहं चददौ दानं वित्तलोभं विनाद्विजाः । एकमासे गतेत्वेवं कस्मिंश्चिद्दिवसे ततः
आह धर्मात्मजं वाणी पुनरप्यशरीरिणा । राजंस्ते विलयं यातं सर्वपापं युधिष्ठिर!
छलेनाऽसत्यवचनाद्दाचार्यस्य वधेन यः । दोषस्ते समभूत्पूर्वंसोऽपि नष्टः परन्तप
याहिस्वनगरंराजन्गत्वा पालयमेदिनीम् । अभिषेचयचात्मानंराज्यरक्षार्हताऽस्तिते
इत्युक्त्वाविररामाथसाविवागशरीरिणी । ततोधर्मात्मजः प्रीतस्तामुद्दिश्यदिशम्प्रति
नमस्कृत्वाऽशरीरिण्यै तस्यैवाचे सहानुजः । प्रययौ हस्तिनपुरं सुप्रीतेनान्तरात्मना

अभिषिक्तोऽथ राज्येऽसौ पालयामास मेदिनीम् ।

इत्थं धर्मात्मजो विप्रा! रामतीर्थे निमज्जनात् ॥ १२० ॥

गतपापो विशुद्धात्मा योग्योऽभूद्राज्यरक्षणे । एवं वःकथितंचित्रं रामतीर्थस्यवैभवम्
सर्वपापहरं पुण्यंभक्तिमुक्तिप्रदायकम् । यत्रस्नानाद्विमुक्तोऽभून्मिथ्यादोषात्सधर्मजः

पठन्तियेऽध्यायमिमं द्विजोत्तमाः! शृण्वन्ति वा ये मनुजा विपातकाः ।
यास्यन्ति कैलासमनन्यलभ्यं गत्वा न संयान्ति पुनश्च जन्म ॥ १२३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येरामतीर्थप्रशंसायाधर्मपुत्रमिथ्याकथनदोषशान्तिर्नामाऽ-
ष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

## एकोनविंशोऽध्यायः

### लक्ष्मणतीर्थप्रशंसायांबलभद्रब्रह्महत्याविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

तारकब्रह्मणस्तस्य तीर्थे स्नात्वा द्विजोत्तमाः ।
लक्ष्मणस्य ततस्तीर्थमभिगच्छेत्समाहितः ॥ १ ॥

श्रीलक्ष्मणस्यतीर्थेतुस्नात्वापापैर्विमोचितः । मुक्तिं प्रयातिविमलामपुनर्भवलक्षणाम्

स्नानाल्लक्ष्मणतीर्थे तु दारिद्र्यं नश्यतेऽखिलम् ।
आयुष्मान्गुणवान्विद्वान्पुत्रश्चवास्य जायते ॥ ३ ॥

कूले लक्ष्मणतीर्थस्य तन्मन्त्रं जपते तु यः । स सर्वशास्त्रवेत्ता स्याच्चतुर्वेदविदप्यसौ
तस्यकूलेमहल्लिङ्गं स्थापयामासलक्ष्मण । तत्रतीर्थेतु यः स्नात्वासेवतेलक्ष्मणेश्वरम्

इह दारिद्र्यरोगाभ्यां संसाराच्च विमुच्यते ।
स्नात्वा लक्ष्मणतीर्थे तु सेवित्वा लक्ष्मणेश्वरम् ॥ ६ ॥
बलभद्रः पुरा विप्रा मुमुचे ब्रह्महत्यया ।

ऋषय ऊचुः

ब्रह्मह त्या कथमभूद्रौहिणेयस्य सूनज ?॥ ७ ॥
कथं चाऽत्र विनष्टा सा तन्नो ब्रूहि महामुने ?।

श्रीसूत उवाच

शेषावतारो भगवान्बलभद्रः पुरा द्विजाः ॥ ८ ॥

कुरूणांपाण्डवानाञ्च युद्धोद्योगंविलोक्यतु । बन्धूनांसवधं सोढमसमर्थो हलायुधः विचारमेवमकरोद्बलभद्रो महामतिः । यद्यहं कुरुराजस्य करिष्यामि सहायताम् कोपः स्यात्पाण्डुपुत्राणामस्यवाय सुदारुणः । उपकारंकरिष्यामि पाण्डवानामहंयदि दुर्योधनस्यकोपः स्यादितिबुद्ध्वाहलायुधः ।तीर्थयात्राछलेनासौमध्यस्थः प्रययौतदा प्रभासमभिगम्याथस्नात्वासङ्कल्पपूर्वकम् । देवानृषीन्पितृगणांस्तर्पयामासवारिणा सरस्वतींतत प्रायात्प्रतीच्यामिमुखाहलीं । पृथूदकं बिन्दुसरो मुक्तिदंब्रह्मतीर्थकम् गङ्गाञ्चयमुनासिन्धु शतद्रु चसुदर्शनम् । सम्प्राप्यबलभद्रोऽयं स्नात्वातीर्थेषुभ्रमत प्रपेदे नैमिषारण्यं मुनीन्द्रैरभिसेवितम् । आगतं तंविलोक्याथनमिषीयास्तपस्विनः दीर्घसत्रस्थिता सम्यङ्नियतास्तमतन्द्रिताः । अभ्युद्गम्ययदुश्रेष्ठंप्रणम्योत्थायचासनात् अपूजयन्विप्रराद्य कन्दमूलफलैस्तदा । आसनं परिगृह्याऽयं पूजितः सपुरःसरः उच्चासनेस्थितसूतमनमन्तमनुत्थितम् । अकृताञ्जलिमात्मीनव्यासशिष्यंविलोक्यस

विप्राश्चाऽऽनमतो दृष्ट्वा विलोक्यात्मानमागतम् ।

चुक्रोध रोहिणीसूनुः सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ २० ॥
मध्येमुनीनांसूतोऽयं कस्मान्निन्द्योनुलोमजः । उच्चासनेसमध्यास्तेनयुक्तमिदमञ्जसा
अवमत्य भृशञ्चास्मान्धर्मसंरक्षकानयम् । आस्तेऽनुत्थायनिर्भीतिर्न च प्रणमतेतथा
पठित्वा यं पुराणानि द्वैपायनसकाशतः । सेतिहासानि सर्वाणिधर्मशास्त्राण्यनेकशः
नमांदृष्ट्वा प्रणमने नवत्यजति चासनम् । द्वैपायनस्य महतः शिष्याः पैलादयोद्विजाः
एवंविधमधर्मन्ते नवकुर्युर्यथात्वयम् । तस्मादेनंवधिष्यामि दुरात्मानमचेतनम्
दुष्टानांनिग्रहार्थं हि भूर्लोकमहमागतम् । मयाहतो हि दुष्टात्माशुद्धिमेष्यत्यसंशयम्
इत्युक्त्वा भगवान्रामो मुशली प्रबली हली ।
पाणिस्थेन कुशाग्रेण तच्छिरः प्राच्छिनद्रुषा ॥ २७ ॥
तत्रत्या मुनयःसर्वे हा कष्टमिति चुक्रुशुः । अथादिषुस्तदा रामं मुनयो ब्रह्मवादिनः
रामाधर्मःकृतःकष्टस्त्वया सङ्कर्षणप्रभो !। अस्य सूतस्य चास्माभिर्दत्तंब्रह्मासनं महत्
अक्षयं चायुरस्माभिरस्य दत्तं हलायुध !। भवता जानतैवायकृतो ब्रह्मवधो महान्
योगेश्वरस्य भवतो नास्ति कश्चिन्नियामकः ।
अस्यास्तु ब्रह्महत्याया यत्कर्त्तव्यं विचार्य तत् ॥ ३१ ॥
प्रायश्चित्तं भवानेव लोकसंग्रहणाय तु । कुरुष्व भगवन्राम नाऽन्येन प्रेरितःकुरु
इत्युक्तो भगवान्रामस्तानुवाच मुनीन्प्रति

राम उवाच

प्रायश्चित्तं करिष्यामि पपशोधकमास्तिकाः ॥ ३३ ॥
लोकसंग्रहणार्थाय नान्यकामनयाऽधुना । यादृशो नियमोस्माभिःकर्तव्यःपापशान्तये
तादृशं नियमं त्वत्र भवन्तः प्रब्रुवन्तु नः । भवद्भिरस्य सूतस्य यदायुर्दत्तमक्षयम्
इन्द्रियाणि च सत्त्वं च करिष्ये योगमायया ।

मुनय ऊचुः

पराक्रमस्य तेऽस्त्रस्य मृत्योर्नश्च यथा प्रभो !॥ ३६ ॥
स्यात्सत्यवचनं राम! तद्भवान्कर्तुमर्हति ।

राम उवाच

आत्मा वै पुत्ररूपेण भवतीति श्रुतिस्सदा ॥ ३७ ॥
उद्घोषयतिविप्रेन्द्रास्तस्मादस्यशरीरतः । पुत्रोभवतुदीर्घायुः सत्वेन्द्रियबलोर्जितः
कथयिष्यतियुष्माकंपुराणादीनिसोन्वहम् । सम्भविष्यतिसर्वज्ञोयोगमायाबलान्मम
इत्युक्त्वारौहिणेयस्तान्पुनःप्रश्रितमब्रवीत् । मनोभिलषितंकिंवायुष्माकंकरवाण्यहम्
तद्ब्रूतमुनयोयूयं करिष्यामिनसंशयः । अज्ञानान्मत्कृतस्यास्य पापस्यापिनिवर्तकम्
प्रायश्चित्तं भवन्तो मे प्रब्रूत मुनिसत्तमाः ।

मुनय ऊचुः

इल्वलस्यात्मजःकश्चिद्दानवो बल्वलाभिधः ॥ ४२ ॥
स दूषयति नो यागंरामेहाऽऽगत्य पर्वणि । दुष्टन्तद्दानवं पापं जहि लोककण्टकम्
अनेनपूजाह्यस्माकं कृतास्याद्भवताधुना । अस्थिविण्मूत्ररक्तानिसुरामांसानि च क्रतौ
सदाभिवर्षतेस्माकमत्रागत्य सदानवः । अस्मिन्भारतभूभागेयानितीर्थानिसन्ति हि
तेषुस्नात्वाब्दमेकंत्वं सर्वेषु सुसमाहितः । तेनते पापशान्तिःस्यान्नात्र कार्याविचारणा

श्रीसूत उवाच

पर्वकाले तु विप्रेन्द्राःसमावृत्ते मुनिक्रतौ । महाभीमोरजोवर्षो झञ्झावातश्चभीषणः
प्रादुर्बभूव विप्रेन्द्राः पूयरक्तैश्च वर्षणम् । ततो विष्ठामयावृष्टिर्बल्वलेन कृताप्यभूत्
असुरंयज्ञशालायाः शूलपाणिमथक्षणात् । अपश्यद्बलभद्रोऽसौ महाबलपराक्रमम्
तमालोक्य महादेहं दग्धाद्रिप्रतिमन्तदा । प्रतप्तताम्रसंकाशं श्मश्रुदंष्ट्रोत्कटाननम्
चिन्तयामास मुशलं रामःपरविदारणम् । सीरञ्च दानवहरं गदां दैत्यविदारिणीम्
याम्यायुधानितंरामं चिन्तितान्युपतस्थिरे । सीराग्रेण तमाकृष्य बल्वलंखेचरन्तदा
मुशलेन निजघ्ने सः कुपितो मूर्ध्निवेगतः । पपात भुवि संक्षुण्णललाटेरक्तमुद्वमन्
बल्वलो दीर्णवदनो गिरिर्वज्रहतो यथा । संस्तुत्वाथमुनयोरामं प्रोक्षार्य विमलाशिषः
अभिषिञ्चञ्छुभैःस्तोयैर्वृत्रशत्रुं यथासुराः । म्लानदुर्वैजयन्तींश्रीमदम्बुजशोभिताम्
माधवाय शुभे वस्त्रेभूषणानि शुभानि च । धारयन्तानि सर्वाणि रौहिणेयो महाबलः

पुष्पितानोकहोपेतः कैलास इव पर्वतः । अनुज्ञातोऽथमुनिभिःसर्वतीर्थेषु सद्द्विजाः
एकमब्दश्चरन्सन्नौ नियमाचारसंयुतः । ततःसंवत्सरे पूर्णे कालिन्दीभेदनोबलः
समाप्ततीर्थयात्रः सन्पुरीं गन्तुं प्रचक्रमे । ततस्तमोमयींछायांपृष्ठतोऽनुगतां कृशाम्
अपश्यद्बलदेवोऽयं महानादविराविणीम् । अथवार्ता सशुश्रावसमुद्भूतान्तदाम्बरे
रामराम महाबाहो! रौहिणेय! सितप्रभ !। तीर्थाभिगमनेनाद्याऽऽचरितेन त्वयाऽनघ
न नष्टाब्रह्महत्या ते निश्शेषं रोहिणीसुत !। इतिवार्तांसमाकर्ण्य चिन्तयामासवैबलः
प्रायश्चित्त मयाचीर्णमेकाब्दं तीर्थसेवया । तथापि ब्रह्महत्यानो न नष्टेतिश्रुतं वचः
किंकुर्मइतिसंचिन्त्य नैमिषारण्यमभ्यगात् । तत्र गत्वा मुनीनां तन्न्यवेदयदरिन्दमः
यच्छ्रुतं गगने वाक्यं या च दृष्टातमोमयी । न्यवेदयत तत्सर्वं मुनीनां रोहिणीसुतः
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे रामं वाक्यमथाब्रुवन् ।

मुनय ऊचुः

यदि राम! न नष्टा ते ब्रह्महत्या तु कृत्स्नशः ॥ ६६ ॥

तर्हिगच्छ महाभाग ! गन्धमादनपर्वतम् । महादुःखप्रशमनं महारोगविनाशनम् ॥
रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते । अस्तिलक्ष्मणतीर्थाख्यं सरःपापविनाशनम्
स्नानंकुरुष्व तत्रत्वं तल्लिङ्गं च नमस्कुरु । निःशेषंतेननष्टा स्याद्ब्रह्महत्या नसंशयः

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तस्तदा रामो गन्धमादनपर्वतम् । गत्वा लक्ष्मणतीर्थं च प्राप्तवान्मुनिपुङ्गवाः
स्नात्वासंकल्पपूर्वंतु तत्रतीर्थेहलायुधः । ब्राह्मणेभ्योददौवित्तंधान्यंगाश्च वसुन्धराम्
तस्मिन्नवसरे तत्र राममाहाऽशरीरवाक् । निःशेषं रामनष्टा ते ब्रह्महत्याऽधुनात्विह
सन्देहो नात्रकर्तव्यः सुखंयाहि पुरींनिजाम् । तच्छ्रुत्वा बलभद्रोऽथतत्तीर्थंप्रशशंस ह
ततस्तत्रत्यतीर्थेषु स्नात्वासर्वेषुमाधवः । धनुष्कोटौतथास्नात्वा रामनाथंनिषेव्यच
द्वारकां स्वपुरीं यायान्नष्टपातकसंचयः ।

श्रीसूत उवाच

एवम्वःकथितं विप्राः! श्रीलक्ष्मणसरोऽमलम् ॥ ७५ ॥

पुण्यं पवित्रं पापघ्नं ब्रह्महत्यादिशोधकम् । यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः
स याति मुक्तिं विप्रेन्द्राः ! पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ ७७ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये लक्ष्मणतीर्थप्रशंसायांबलभद्रब्रह्महत्याविमोक्षणंनामैको-
नविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

## विंशोऽध्यायः

### जटातीर्थप्रशंसायांशुकचित्तशुद्धिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

लक्ष्मणस्यमहातीर्थेब्रह्महत्याविनाशने । स्नात्वास्यचित्तशुद्धयर्थं जटातीर्थंततोव्रजेत्
जन्ममृत्युजराक्रान्तसंसारातुरचेतसाम् । अज्ञाननाशकं नास्तिजटातीर्थाद्दृते द्विजाः
लोकेमुमुक्षवःकेचिच्चित्तशुद्धिमभीप्सवः । वाचापठन्तिवेदान्तांस्तूष्णींनानुभवन्तिते
पूर्वपक्षमहाग्राहेसिद्धान्तझषसङ्कुले । वेदान्ताब्धाविहाऽज्ञानं मुह्यन्ति पतिता द्विजाः
प्रथमं चित्तशुद्धयर्थंवेदान्तान्संपठन्ति ये । विवादं ते पठित्वाहिकलहं च वितन्वते
चित्तशुद्धिर्न वेदान्ताद्बहुव्यामोहकारणात् । ततो वयं नवेदान्तान्मुनीन्द्रा बहुमन्महे
चित्तशुद्धिं यदीच्छध्वं लघूपायेन तापसाः । उद्घोषयामि सर्वेषां जटातीर्थंनिषेवत
पुरासर्वोपकारार्थं तीर्थमज्ञाननाशनम् । एतद्विनिर्मितं साक्षाच्छम्भुना गन्धमादने
निहते रावणे विप्रा जटां रामस्तुधार्मिकः । क्षालयामासयत्तोयेतज्जटातीर्थमुच्यते
वर्षाणां षष्टिसाहस्रं जाह्नवीजलमज्जनम् । गोदावर्यांसकृत्स्नानंसिंहस्थेचबृहस्पतौ
तावत्सहस्रस्नानानि सिंहंदेवगुरौ गते । गोमत्यां लभ्यते वर्षैस्तज्जटातीर्थदर्शनात्
जटातीर्थे मनुष्याणां स्नातानां द्विजपुङ्गवाः !।
अन्तःकरणशुद्धिः स्यात्ततोऽज्ञानं विनश्यति ॥ १२ ॥

अज्ञाननाशे ज्ञानं स्यात्ततो मुक्तिमवाप्स्यति ।
अखण्डसच्चिदानन्दः सम्पूर्णः स्यात्ततः परम् ॥ १३ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । पितुः पुत्रस्यसम्वादं व्यासस्यचशुकस्यच
पुरा मुनिवरं कृष्णं भावितात्मानमच्युतम् । पारम्पर्यविशेषज्ञं सर्वशास्त्रार्थकोविदम्
प्रणम्य शिरसा व्यासं शुकः पप्रच्छ वै द्विजाः ॥

श्रीशुक उवाच

भगवंस्तात सर्वज्ञ ! ब्रूहि गुह्यमनुत्तमम् ॥ १६ ॥
अन्तः करणशुद्धिःस्यात्तथाज्ञानविनाशनम् । ज्ञानोदयश्चयेनस्यादन्तेमुक्तिश्चशाश्वती
तमुपायं वदस्वाद्य स्नेहान्ममहामुने ॥ वेदान्ताश्चेतिहासाश्च पुराणादीनिकृत्स्नशः
अधीतानि मयात्वत्तःशोधयन्तिनमानसम् । अतो मेचित्तशुद्धिःस्याद्यथातातथावद
इति पृष्टस्तदा व्यासः शुकेन मुनिसत्तमाः । रहस्यं कथयामासयेनाविद्याविनश्यति

व्यास उवाच

शुक! वक्ष्यामितेगुह्यमविद्याग्रन्थिभेदनम् । बुद्धिशुद्धिप्रदं पुंसांजन्मादिभयनाशनम्
रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते । विद्यते पापसंहारि जटातीर्थमितिश्रुतम्
जटांस्वांशोधयामासयत्रामोहरिःस्वयम् । रामोदाशरथिःश्रीमांस्तीर्थायवरंददौ
स्नान्तियेऽत्रसमागत्यजटातीर्थेऽतिपावने । अन्तःकरणशुद्धिश्चतेषांभूयादितिस्मसः
विना यज्ञं विनाज्ञानं विना जाप्यमुपोषणम् ।
स्नानमात्राज्जटातीर्थे बुद्धि शुद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ २५ ॥
सर्वदानसमं पुण्यं स्नानादत्र भविष्यति । दुर्गाण्यनेन तरति पुण्यलोकान्समश्नुते
महत्त्वमश्नुते स्नानाज्जटातीर्थेशुभोदके । जटातीर्थं विनानान्यदन्तःकरणशुद्धये
विद्यते नियमो वापि जपोवाप्यन्यदेवता । धन्यंयशस्यमायुष्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम्
पवित्राणां पवित्रं च जटातीर्थंशुकाधुना । सर्वपापप्रशमनं मङ्गलानां च मङ्गलम्
भृगुर्वै वारुणिः पूर्वं वरुणं पितरं शुक ॥ बुद्धिशुद्धिप्रदोपायमपृच्छत्पावनं शुभम्
प्रोवाच वरुणस्तस्मै बुद्धिशुद्धिप्रदं शुभम् ।

वरुण उवाच

रामसेतौ भृगो! पुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ३१ ॥

स्नानमात्राज्जटातीर्थे बुद्धिशुद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । सपितुर्वचनात्सद्यो भृगुर्वैवरुणात्मजः

गत्वास्नात्वा जटातीर्थे बुद्धिशुद्धिमवाप्तवान् ।

विनष्टाऽज्ञानसन्तानस्तयाशुद्ध्या तदा भृगुः ॥ ३३ ॥

उत्पन्नाद्वैतविज्ञानः स्वपितुर्वरुणादयम् । अखण्डसच्चिदानन्दपूर्णकारोभवच्छुकः

शङ्करांशोऽपिदुर्वासाजटातीर्थेऽभिषेकतः । मनश्शुद्धिमवाप्याशुब्रह्मानन्दमयोऽभवत्

दत्तात्रेयोऽपि विष्ण्वंशस्तीर्थेऽस्मिन्नभिषेचनात् ।

शुद्धान्तःकरणो भूत्वा ब्रह्माकारोऽभवच्छुक ॥ ३६ ॥

इच्छेदज्ञाननाशं यः स स्नायात्तु जटाभिधे । तीर्थेशुद्धतमे पुण्ये सर्वपापविनाशने

जटातीर्थेमतस्त्वं च शुक गच्छमहामते । मनः शुद्धिप्रदे तस्मिन्स्नानंच कुरुपुण्यदे

पित्रैवमुक्तोव्यासेन शुकः पुत्रस्तदा द्विजाः । रामसेतुं महापुण्यं गन्धमादनपर्वतम्

अगमत्स्नातुकामः सञ्जटातीर्थे विशुद्धिदे । स्नात्वासंकल्पपूर्वंचजटातीर्थेशुकोमुनिः

मनः शुद्धिमनुप्राप्य तेन चाऽज्ञाननाशने । स स्वरूपसमापन्नः परमानन्दरूपकम्

येचाप्यन्येमनःशुद्धिकामाःसन्तिद्विजोत्तमाः । जटातीर्थेतुतेसर्वेस्नान्तुभक्तिपुरःसरम्

अहो जनाजटातीर्थे कामधेनुसमेशुभे । विद्यमानेऽपि किन्तुच्छे रमते यत्र मोहिताः

भुक्तिकामोलभेद्भुक्तिंमुक्तिकाामस्तुतांलभेत् । स्ननमात्राज्जटातीर्थेसत्यमुक्तंमयाद्विजाः

वेदानुवचनात्पुण्याद्यज्ञाद्दानात्तपोव्रतात् ।

उपवासाज्जपाद्योगान्मनः शुद्धिर्नृणां भवेत् ॥ ४५ ॥

विनाप्येतानि विप्रेन्द्राजटातीर्थेतिपावने । स्नानमात्रान्मनःशुद्धिर्ब्राह्मणानांध्रुवंभवेत्

जटातीर्थस्यमाहात्म्यं मयावक्तु न शक्यते । शङ्करोवेत्तितत्तीर्थंहरिर्वेत्तिविधिस्तथा

जटातीर्थसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति । जटातीर्थस्यतीरे यः क्षेत्रपिण्डंसमाचरेत्

गयाश्राद्धसमं पुण्यं तस्यस्यान्नात्रसंशयः । जटातीर्थेनरः स्नात्वानपापेनविलिप्यते

दारिद्र्यं न समाप्नोति नैयाच्च नरकार्णवम् ।

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितं विप्रा जटातीर्थस्य वैभवम् ॥ ५० ॥
यत्रव्याससुतो योगी स्नात्वा पापविमोचने । अवाप्तवान्मनःशुद्धिमद्वैतज्ञानसाधनम्
यस्त्विमं पठतेऽध्यायं शृणुते वा समाहितः । सविधूयेहपापानि लभतेवैष्णवंपदम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येजटातीर्थप्रशंसायांशुकचित्तशुद्धिर्नामविंशोध्यायः ॥ २० ॥

---

# एकविंशोऽध्यायः

## लक्ष्मीतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रनिरतिशयसम्पदावाप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

जटातीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने । स्नानंकृत्वाविशुद्धात्मालक्ष्मीतीर्थंततोव्रजेत्
यं यं कामंसमुद्दिश्यलक्ष्मीतीर्थेद्विजोत्तमाः । स्नानंसमाचरेन्मर्त्यस्तंतंकामंसमश्नुते
महादारिद्र्यशमनं महाधान्यसमृद्धिदम् । महादुःखप्रशमनं महासम्पद्विवर्धनम्
अत्र स्नात्वा धर्मपुत्रो महदैश्वर्यमाप्तवान् । इन्द्रप्रस्थे वसन्पूर्वं श्रीकृष्णेन प्रचोदितः

ऋषय ऊचुः

यथैश्वर्यं धर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थे निमज्जनात् । आप्तवान्कृष्णवचनात्तन्नो ब्रूहिमहामुने

श्रीसूत उवाच

इन्द्रप्रस्थे पुरा विप्रा धृतराष्ट्रेण चोदिताः । न्यवसन्पाण्डवाः पञ्चमहाबलपराक्रमाः
इन्द्रप्रस्थं ययौ कृष्णः कदाचित्तान्निरीक्षितुम् ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्ते समुत्सुकाः ॥ ७ ॥
स्वगृहं प्रापयामासुर्मुदापरमयायुताः । कञ्चित्कालमसौकृष्णस्तत्रावात्सीत्पुरोत्तमे
कदाचित्कृष्णमाहूयपूजयित्वा युधिष्ठिरः । पप्रच्छ पुण्डरीकाक्षं वासुदेवंजगत्पतिम्

युधिष्ठिर उवाच

कृष्ण! कृष्ण! महाप्राज्ञ! येन धर्मेण मानवाः । लभन्ते महदैश्वर्यं तन्नो ब्रूहि महामते

इत्युक्तो धर्मपुत्रेण कृष्णः प्राह युधिष्ठिरम् ।

श्रीकृष्ण उवाच

धर्मपुत्र! महाभाग! गन्धमादनपर्वते ॥ ११ ॥

लक्ष्मीतीर्थमितिख्यातमस्त्यैश्वर्यैककारणम् ।

तत्र स्नानं कुरुष्वत्वमैश्वर्यं ते भविष्यति ॥ १२ ॥

तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः । सर्वे सपत्ना नश्यन्ति क्षेत्रमेषांविवर्द्धते
तीर्थेसस्नुः पुरादेवा लक्ष्मीनामनि पुण्यदे । अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेन पुण्येनधर्मज
असुरांश्चमहावीर्यान्निमरेजघ्नुरञ्जसा । महालक्ष्मीश्च धर्मश्चतत्तीर्थस्नायिनांनृणाम्
भविष्यत्यचिरादेव संशयं मा कृथा इह । तपोभिः क्रतुभिर्दानैराशीर्वादैश्चपाण्डव
ऐश्वर्यंप्राप्यते यद्वल्लक्ष्मीतीर्थनिमज्जनात् । सर्वपापानिनश्यन्तिविघ्नाश्यान्तिलयंसदा

व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।

श्रेयः सुविपुलं लोके लभ्यते नात्रसंशयः ॥ १८ ॥

स्नानमात्रेणत्रैलक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन्धर्मनन्दन !। रम्भामप्सरसांश्रेष्ठांलब्धवान्नलकूबरः
स्नात्वाऽत्रतीर्थेपुण्ये तु कुबेरोनरवाहनः । समहापद्ममुख्यानान्निधीनान्नायकोऽभवत्
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे । स्नात्वा वृकोदरमुखैरनुजैरपि संवृतः
लप्स्यसे महतीं लक्ष्मीं जेष्यसे च रिपूनपि । सन्देहोनात्रकर्तव्यः पैतृस्वस्रेयधर्मज!
इत्युक्तो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः । सानुजः प्रययौ शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम्

लक्ष्मीतीर्थं ततो गत्वा महदैश्वर्यकारणम् ।

सस्नौ युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ॥ २४ ॥

लक्ष्मीतीर्थस्यतोये ससर्वपातकनाशने । सानुजोमासमेकन्तुसस्नौनियमपूर्वकम्
गोभूतिलहिरण्यादीन्ब्राह्मणेभ्योददौबहून् । सानुजोधर्मपुत्रोऽसाविन्द्रप्रस्थंययौततः
राजसूयक्रतुंकर्तुं ततऐच्छद्युधिष्ठिरः । कृष्णं समाह्वयामास यियक्षुर्धर्मनन्दनः ॥२७॥

कृष्णोधर्मजदूतेन समाहूतःससम्भ्रमः। चतुर्भिरश्वैः संयुक्तं रथमारुह्य वेगिनम्
सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थं समाययौ। तमागतं समालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दनः
न्यवेदयत्सकृष्णाय राजसूयोद्यमन्तदा। अन्वमन्यत कृष्णोपि तथैव क्रियतामिति
वाक्यं च युक्तिसंयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत। पैतृस्वस्रेय धर्मात्मञ्छृणु पथ्यंवचोमम
दुष्करो राजसूयोऽयं सर्वैरपि महीश्वरैः। अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमान्
महामतिरिमं यज्ञं कर्तुमर्हति नेतरः। दिशो दश विजेतव्याः प्रथमं बलिना त्वया
पराजितेभ्यःशत्रुभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम्। तेन काञ्चनजातेन कर्तव्योऽयं क्रतूत्तमः
रोचयेमुक्तिमदनं न हित्वां भीषयामि भोः। अतः क्रतुसमारम्भात्पूर्वंदिग्विजयं कुरु
ततोधर्मात्मजःश्रुत्वा कृष्णस्य वचनंहितम्। प्रशंसन्देवकीपुत्रमाजुहवनिजानुजान्
आहूय चतुरो भ्रातॄन् धर्मजःप्राहहर्षयन्। अयि भीम! महाबाहो बहुवीर्यधनञ्जय
यमौ च सुकुमाराङ्गौ शत्रुसंहारदीक्षितौ। चिकीर्षामि महायज्ञं राजसूयमनुत्तमम्

स च सर्वान् रणे जित्वा कर्तव्यः पृथिवीपतीन्।
अतो विजेतुं भूपालां श्चत्वारोपि ससैनिकाः॥ ३६॥

दिशश्चनस्रोगच्छन्तु भवन्तोवीर्यवत्तराः। युष्माभिराहृतैर्द्रव्यैःकरिष्यामिमहाक्रतुम्
इत्युक्ताः सादरं सर्वे वृकोदरमुखास्तदा। प्रसन्नवदना भूत्वा धर्मपुत्रानुजाः पुरात्
राज्ञोजयायसर्वासु निर्ययुर्दिक्षुपाण्डवाः। तेसर्वे नृपतीञ्जित्वाचतुर्दिक्षुस्थितान्बहून्
स्ववशेस्थापयित्वातान्नृपतीन्पाण्डुनन्दनाः। तैर्दत्तम्बहुधा द्रव्यमसंख्यातमनुत्तमम्
आदाय स्वपुरं तूर्णमाययुःकृष्णसंश्रयाः। भीमःसमाययौ तत्र महाबलपराक्रमः
शतभारसुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम्। सहस्रं भारमादाय सुवर्णानां ततोऽर्जुनः
शक्रप्रस्थं समायातो महाबलपराक्रमः। शतभारं सुवर्णानां प्रगृह्य नकुलस्तथा
समागतो महातेजाःशक्रप्रस्थं पुरोत्तमम्। दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालांश्चतुर्दश

दाक्षिणात्यमहीपानां गृहीत्वा धनसञ्चयम्।
सहदेवोऽपि सहसा समादाय निजाम्पुरीम्॥ ४८॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतान्यपि। सुवर्णानि ददौ कृष्णोधर्मपुत्राययादवः

स्वानुजैराहृतैरेवमसङ्ख्यातैर्महाधनैः । कृष्णदत्तैरसङ्ख्यातैर्धनैरपि युधिष्ठिरः ॥ ५०
कृष्णाश्रयोऽयजद्विप्रा राजसूयेनपाण्डवः । तस्मिन्यागेददौद्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो यथेष्टतः
अन्नानिप्रददौतत्र ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः । वस्त्राणिगाश्च भूमिश्च भूषणानिददौ तथा
अर्थिनःपरितुष्यन्तियावताकाञ्चनादिना । ततोऽपि द्विगुणन्तेभ्योदापयामासधर्मजः
इयन्तिदत्तान्यर्थिभ्यो धनानिविविधान्यपि । इतीयत्तांपरिच्छेत्तुं नशक्ताब्रह्मकोटयः
अर्थिभिर्दीयमानानि दृष्ट्वा तत्र धनानि वै । सर्वस्वमप्यहो राज्ञादत्तमित्यब्रवीज्जनः
दृष्ट्वा कोशांस्तथानन्ताननन्तमणिकाञ्चनान् ॥ ५६ ॥
स्वल्पं हि दत्तमर्थिभ्य इत्यवोचञ्जनास्तदा । इष्ट्वैवं राजसूयेनधर्मपुत्रःसहानुजः
बहुवित्तःसमृद्धःसन् रेमे तत्र पुरोत्तमे । लक्ष्मीतीर्थस्य माहात्म्याद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः
लेभे सर्वमिदं विप्रा अहोतीर्थस्य वैभवम् । इदं तीर्थं महापुण्यं महादारिद्र्यनाशनम्
धनधान्यप्रदं पुंसां महापातकनाशनम् । महानरकसंहर्तृ महादुःखनिवर्तकम् ॥
मोक्षदं स्वर्गदन्नित्यं महाऋणविमोचनम् । सुकलत्रप्रदं पुंसांसुपुत्रप्रदमेव च
एतत्तीर्थसमं तीर्थंन भूतन्न भविष्यति । एतद्वःकथितं विप्रा लक्ष्मीतीर्थस्य वैभवम्
दुस्स्वप्ननाशनं पुण्यं सर्वाभीष्टप्रसाधकम् । यःपठेदिममध्यायंशृणुतेवासभक्तिकम्
धनधान्यसमृद्धस्स्यात्स नरो नास्ति संशयः ।
भुक्त्वेह सकलान्भोगान्देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येलक्ष्मीतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रनिरतिशयसम्पदावाप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

# द्वाविंशोऽध्यायः

## अग्नितीर्थप्रशंसायां दुष्पण्यपैशाच्यमोक्षणवर्णनम्

### श्रीसूत उवाच

लक्ष्मीतीर्थेशुभेपुंसांसर्वैश्वर्यैककारणे । स्नात्वानरस्ततोगच्छेदग्नितीर्थंद्विजोत्तमाः
अग्नितीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम् । तीर्थानामुत्तमंतीर्थं सर्वाभीष्टैकसाधनम्
तत्र स्नायान्नरो भक्त्या स्वपापपरिशुद्धये ।

### ऋषय ऊचुः

अग्नितीर्थमितिख्यातिः कथं तस्य मुनीश्वर !॥ ३ ॥

कुत्रेदमग्नितीर्थञ्च कीदृशन्तस्य वैभवम् । एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि

### श्रीसूत उवाच

सम्यक् पृष्टं हि युष्माभिः शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः !।
पुरा हि राघवो हत्वा रावणं सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥
स्थापयित्वा तु लङ्कायां भर्तारञ्च विभीषणम् ।
सीतासौमित्रिसंयुक्तो रामो दशरथात्मजः ॥ ६ ॥

सिद्धचारणगन्धर्वैर्देवैरप्सरसाङ्गणैः । स्तूयमानोमुनिगणैः सत्याशीस्तीर्थकौतुकी
धारयन् लीलया चापं रामोऽसह्यपराक्रमः । आत्मनःशुद्धिमायातुंजानकींशोधितुन्तथा
इन्द्रादिदेववृन्दैश्च मुनिभिःपितृभिस्तथा । विभीषणेन सहितः सर्वैरपि च वानरैः
आययौ सेतुमार्गेण गन्धमादनपर्वतम् । लक्ष्मीतीर्थतटेस्थित्वाजानकीशोधनाय सः
अग्निमावाहयामास देवर्षिपितृसन्निधौ । अथोत्तस्थैमहाम्भोधेर्लक्ष्मीतीर्थाद्विदूरतः
पश्यत्सु सर्वलोकेषु लिहन्नम्भांसि पावकः । आताम्रलोचनःपीतःपीतवासाधनुर्धरः
सप्तभिश्चैव जिह्वाभिर्लेलिहानो दिशो दश । दृष्ट्वा रघुपतिं शूरं लीलामानुषरूपिणम्
जगाद वचनं रम्यं जानकीशुद्धिकारणात् । राम राम महाबाहो राक्षसानां भयावह!

पातिव्रत्येन जानक्या रावणं हतवान्भवान् । सत्यंसत्यंपुनःसत्यंनात्रकार्याविचारणा
कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा । देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ॥

जिष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ।

यदा यदा जगत्स्वामिन्देवदेव! जनार्दन !॥ १७ ॥

अवतारान्करोषित्वं तदेयंत्वत्सहायिनी । यदा त्वंभार्गवोरामस्तदाभूद्धरणीत्वियम्
अधुना जानकी जाताभवित्रीरुक्मिणीततः । अन्येष्वावतारेषुविष्णोरेषासहायिनी
तस्मान्मद्वचनादेनां प्रतिगृह्णीष्व राघव । पावकस्येतुतद्वाक्यंश्रुत्वादेवा महर्षयः
विद्याधराश्च गन्धर्वा मानवाः पन्नगास्तथा । अन्ये च भूतनिवहा रामंदशरथात्मजम्
जानकींमैथिलींश्चैव प्रशशंसुः पुनः पुनः । रामोऽग्निवचनात्सीतांप्रतिजग्राहनिर्मलाम्
एवंसीताविशुद्ध्यर्थं रामेणाक्लिष्टकर्मणा । आवाहने कृतेवह्निर्लक्ष्मीतीर्थाद्विदूरतः
यतः प्रदेशादुत्तस्थावम्बुधेर्द्विजसत्तमाः । अग्नितीर्थं विजानीत तत्प्रदेशमनुत्तमम् ॥
ततो विनिर्गमादग्नेरग्नितीर्थमितीर्यते । अत्रस्नात्वा नरो भक्त्या वह्नेस्तीर्थेविमुक्तिदे

उपोष्य वेदविदुषो ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।

तेभ्यो वस्त्रं धनं भूमिं दद्यात्कन्याश्च भूषिताम् ॥ २६ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

अग्नितीर्थस्य कूलेऽस्मिन्नन्नदानं विशिष्यते ॥ २७ ॥

अग्नितीर्थसमन्तीर्थन्न भूतं न भविष्यति ।

दुष्पण्योपि महापापो यत्र स्नानात्पिशाचताम् ॥ २८ ॥

परित्यज्य महाघोरां दिव्यं रूपमवाप्तवान् । पशुमान्नाम वैश्योऽभूत्पुरा पाटलिपुत्रके
स च धर्मपरोनित्यं ब्राह्मणाराधने रतः । कृषिन्निरन्तरं कुर्वन्गोरक्षांश्चैव सर्वदा ॥

पण्यवीथ्यांश्च विक्रीणन्काञ्चनादीनि धर्मतः ।

पशुमान्नामधेयस्य वणिक्श्रेष्ठस्य तस्य वै ॥ ३१ ॥

बभूवभार्यात्रितयं पतिशुश्रूषणे रतम् । ज्येष्ठा त्रीन्सुषुवे पुत्रान्वैश्यवंशविवर्द्धनान्
सुपण्यं पण्यवन्तश्च चारुपण्यं तथैव च । मध्यमा सुषुवे पुत्रौ सुकोशबहुकोशकौ

तृतीयायां त्रयः पुत्रास्तस्य वैश्यस्य जज्ञिरे ।

महापण्यो महाकोशो दुष्पण्य इति विश्रुताः ॥ ३४ ॥

एवं पशुमतस्तस्य वैश्यस्य द्विजसत्तमाः बभूवुरष्टौ तनयास्तासु स्त्रीषु तिसृष्वपि ते सुपण्यमुखास्सर्वे पुत्रावदृधिरे क्रमात् । धूलिकेलिं वितन्वन्त पितरौतोषयन्तिते पञ्चहायनतांप्राप्ताः क्रमात्ते वैश्यनन्दनाः । पशुमानपि वैश्येन्द्रः सर्वानपिचतान्सुतान्

बाल्यमारभ्य सततं स्वकृत्येषु व्यशिक्षयत् ।

कृषिगोत्राणवाणिज्यकर्मसु क्रमशिक्षिताः ॥ ३८ ॥

सुपण्यमुख्याःसप्तैव पितृवाक्यमशृण्वत । पशुमान्वक्ति यत्कार्यं तत्क्षणान्निरवर्तयन् नैपुण्यं प्रापुरत्यन्तं तेसुवर्णक्रियास्वपि । दुष्पण्यस्त्वष्टमःपुत्रोबाल्यमारभ्यसन्ततम्

दुर्मार्गनिरतो भूत्वा नाऽशृणोत्पितृभाषितम् ।

धूलिकेलिं समारभ्य दुर्मार्गनिरतोऽभवत् ॥ ४१ ॥

स बाल एवसन्पुत्रो बालानन्यानबाधत । दुष्कर्मनिरतं दृष्ट्वा तं पिता पशुमांस्तथा उपेक्षामेवकृतवान्बालिशोऽयमितीरयन् । अथाष्टावपि वैश्यस्य प्रापुर्यौवनमात्मजाः ततोऽयमष्टमःपुत्रो दुष्पण्यो बलिनां वरः । गृहीत्वा पाणियुगले बालाग्नगरवर्तिनः निचिक्षेप स कूपेषु सरित्सु च सरःस्वपि । न कापितस्यजानातिदुश्चरित्रमिदञ्जनः यावन्म्रियन्ते ते बालास्तावन्निक्षिप्तवाञ्जले । तेषांमृतानांबालानांपितरोमातरस्तथा गवेषयन्ति तान्सर्वान्नगरेषु हि सर्वशः । तानदृष्ट्वा मृतान्पुत्रान्केवलं प्रारुदञ्जनाः ॥ जलेष्वथ शवान्दृष्ट्वा जनाश्चक्रुर्यथोचितम् । एवं प्रतिदिनं बालान्दुष्पण्योमारयन्पुरे जनैरप्यपरिज्ञातश्चिरमेवमवर्तत । म्रियमाणेषु बालेषु वैश्यपुत्रस्य कर्मणा ॥ ४६ ॥ प्रजानां वृद्धिराहित्याच्छून्यप्रायमभूत्पुरम् । ततः समेत्यपौरास्तु वृत्तंराज्ञेन्यवेदयन्

श्रुत्वा नृपस्तद्वचनमाहूय ग्रामपालकान् ।

कारणं बालमरणे चिन्त्यतामितिसोन्वशात् ॥ ५१ ॥

ग्रामपालास्तथेत्युक्त्वा तत्र तत्र व्यवस्थिताः । सम्यग्गवेषयामासुःकारणंबालमारणे ते वै गवेषयन्तोऽपि नाविन्दन्बालमारकम् । तेपुनर्नृपमासाद्यभीतावाक्यमथाऽब्रुवन्

गवेषयन्तोपि व्रयन्तन्नविन्दामहेनृप । यो बालान्नगरेस्थित्वा सन्ततंमारयत्यपि ॥
पुनश्च नागराः सर्वे राजानं प्राप्य दुःखिताः । पुनःप्रजानां मरणमब्रुवन्वाष्पसङ्कुलाः

राजा तत्कारणाज्ञानात्तूष्णीमास्ते विचिन्त्य तु ।
कदाचिद्वैश्यपुत्रोऽयं पञ्चभिर्बालकैः सह ॥ ५६ ॥
तटाकान्तिकमापेदे पङ्कजाहरणच्छलात् ।
बलाद् गृहीत्वा तान्बालान्दुष्पण्यः क्रोशतस्तदा ॥ ५७ ॥
क्रूरात्मा मज्जयामास कण्ठदघ्ने सरोजले ।
मृतान्मत्वा च ताञ्छीघ्रं दुष्पण्यःस्वगृहं ययौ ॥ ५८ ॥

पञ्चानां पितरस्तेषां मार्गयन्तः सुतान्पुरे । तेषु वै मार्गमाणेषु पञ्च ते नातिबालकाः
निक्षिप्ता अपि तोयेषु नाऽम्रियन्तयदृच्छया । तेशनैःकूलमासाद्यपञ्चापिक्लिन्नमौलयः
अशक्ता नगरंगन्तुं बालयात्तत्रैव बभ्रमुः । दूरादुच्चार्यमाणानि स्वनामानि स्वबन्धुभिः
श्रुत्वा पञ्चापि तेबालाः प्रतिशब्दमकुर्वत । ततस्तत्पितरः श्रुत्वा तत्रागत्यसरस्तटे
पुत्रान्दृष्ट्वा तु सप्राणान्प्रहर्षमतुलङ्गताः । किमेतदिति पित्राद्यैः पृष्टास्तेबालकास्तदा

दुष्पण्यस्याथ दुष्कृत्यं बन्धुभ्यस्ते न्यवेदयन् ।
ततो विदितवृत्तान्ता राजानं प्राप्य नागराः ॥ ६४ ॥

पञ्चभिःकथितं वृत्तं दुष्पण्यस्यन्यवेदयन् । ततो राजा समाहूयपशुमन्तं वणिग्वरम्

पौरेष्वपि च शृण्वत्सु वाक्यमेतदभाषत ।

राजोवाच

दुष्पण्यनाम्ना पशुमन्बहुप्रजमिदंपुरम् ॥ ६६ ॥

शून्यप्रायं कृतं पश्य त्वत्पुत्रेण दुरात्मना । इदानीं बालकानेतान्मज्जयामास वै जले
यदृच्छया च सप्राणाः पुनरप्यागताःपुरम् । अस्मिन्नित्थङ्गतेकार्ये किंकर्तव्यंवदाधुना
अद्य त्वामेव पृच्छामि यतस्त्वंधर्मतत्परः । इत्युक्तः पशुमान्राज्ञाधर्मज्ञोयुक्तमब्रवीत्

पशुमानुवाच

पुरं निश्शेषितं येन वधमेवायमर्हति । न ह्यत्रविषये किञ्चित्प्रष्टव्यं विद्यते नृप

न ह्ययं ममपुत्रः स्याच्छत्रुरेवातिपापकृत्। न ह्यस्य निष्कृतिपश्येयेननिश्शेषितंपुरम्
बध्यतामेव दुष्टात्मा सत्यमेव ब्रवीम्यहम्। श्रुत्वा पशुमतोवाक्यंनागरास्सर्वएवहि
वणिग्वरं श्लाघमाना राजानमिदमूचिरे। न बध्यतामयंदुष्टस्तूर्णंनिर्वास्यतांपुरात्
ततःसराजादुष्पण्यंसमाहूयेदमब्रवीत्। अस्माद्देशाद्व्रजाच्छीघ्रंदुष्टात्मन्गच्छसाम्प्रतम्
यदितिष्ठेस्त्वमत्रैव दण्डयेयं वधेन वै। इतिराज्ञाविनिर्भर्त्स्य दूतैर्निर्वासितः पुरात्
दुष्पण्यस्त्वथतं देशं परित्यज्य भयान्वितः। मुनिमण्डलसंबाधं वनमेव ययौ तदा
तत्राप्येकं मुनिसुतं सतोयेषु न्यमज्जयत्। केल्यर्थमागता दृष्ट्वा मुनिपुत्रा मृतं शिशुम्
तत्पित्रे कथयामासुरभ्येत्य भृशदुःखिताः। तत उग्रश्रवाश्श्रुत्वातेभ्यःपुत्रं जलेमृतम्
ततो महिम्ना दुष्पण्यचरितं तदमन्यत। उग्रश्रवाः शशापैनं दुष्पण्यं वैश्यनन्दनम्

उग्रश्रवा उवाच

मत्सुतं पयसि क्षिप्य यत्त्वं मारितवानसि। तवापि मरणंभूयाज्जलएवनिमज्जनात्
मृतश्चसुचिरंकालंपिशाचस्त्वंभविष्यसि। इतिशापेश्रुतेसद्योदुष्पण्यःखिन्नमानसः
तद्वै वनंपरित्यज्य घोरमन्यद्वनंययौ। सिंहादिक्रूरसत्त्वाढ्ये तस्मिन्प्राप्ते वनान्तरे
पांसुवर्षं महद्वर्षं वृक्षानात्रोटयन्मुहुः। वज्रघातसमस्पर्शो ववौ झञ्झानिलो महान्
वेगेनगात्रंभिन्दन्तिवृष्टिश्चासीत्सुदुःसहा। तद्दृष्ट्वासतुदुष्पण्यश्चिन्तयन्भृशदुःखितः
मृतंशुष्कं महाकायं गजमेकमपश्यत। महावातं महावर्षं तदा सोढुमशक्नुवन्
गजस्यविवरेणैव विवेशोदरगह्वरम्। तस्मिन्प्रविष्टमात्रे तु वृष्टिरासीत्सुभूयसी
ततो वर्षजलैःसर्वैः प्रवाहः सुमहानभूत्। स प्रवाहो वने तस्मिन्नदी काचिदजायत
अथतैर्वर्षसलिलैः सगजः पूरितोदरः। प्लवमानो महापूरे नीरन्ध्रः समजायत
ततो निर्विवरस्यास्य जलपूर्णोदरस्य च। गजस्य जठरात्सोयंनिर्गन्तुं न शशाकह
ततश्च वृष्टितोयानां प्रवाहो भीमवेगवान्। उदरस्थितदुष्पण्यं समुद्रं प्रापयद्गजम्
दुष्पण्यःसलिलेमग्नःक्षणात्प्राणैर्व्ययुज्यत। मृतएवसदुष्पण्यःपिशाचत्वमवाप्तवान्
पीडितः क्षुत्पिपासाभ्यां दुर्गमं वनमाश्रितः। घोरेषु घर्मकालेषुबिभ्रद्रूपं भयानकम्
अतिष्ठद्गहनेरण्ये दुःखान्यनुभवन्बहु। कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च

स पिशाचो महादुःखी न्यवसद् घोरकानने । वनाद्वनान्तरं धावन्देशाद्देशान्तरन्तथा
सर्वत्रानुभवन्दुःखमाययौ दण्डकान्क्रमात् ।
अगस्त्याश्रमात्पुण्यान्नातिदूरे स सञ्चरन् ॥ ९५ ॥
नदन्भैरवनादश्च वाक्यमुच्चैरभाषत । भोभोस्तपोधनाः सर्वे शृणुध्वं मामकं वचः
भवन्तो हि कृपावन्तःसर्वभूतहितेरताः । कृपादृष्ट्यानुगृह्णीत मां दुःखैरतिपीडितम्
पुरादुष्पण्यनामाहं वैश्यः पाटलिपुत्रके । पुत्रः पशुमतश्चापि बहून्बालानमारयम्
ततो विवासितो राज्ञा तस्माद्देशाद्वनंगतः । अमारयञ्जले पुत्रं तत्रोग्रश्रवसो मुनेः
समुनिर्दत्तवाञ्छापंममापिमरणञ्जले । पिशाचताञ्च मे घोरांदत्तवान्दुःखभूयसीम्
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतान्यपि । पिशाचतानुभूतेयं शून्यकाननभूमिषु
नाऽहंसोढुं समर्थोऽस्मि पिपासाक्षुधमेवच । रक्षध्वंकृपयायूयमतोमाम्बहुदुःखिनम्
यथा मुच्येय पैशाच्यात्तथा कुरुततापसाः । इति श्रुत्वापिशाचस्यवचनन्तेतपोधनाः
लोपामुद्रा सहचरमूचिरे कुम्भसम्भवम् ।

तापसा ऊचुः

पिशाचस्यास्य भगवन्ब्रूहि निष्कृतिमुत्तमाम् ॥ १०४ ॥
एवंविधानां पापानां त्वं समर्थो हि रक्षणे । तेषामगस्त्यः श्रुत्वाक्कृपयापरयायुतः
प्रियशिष्यं समाहूय सुतीक्ष्णं वाक्यमब्रवीत् ।

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण! गच्छ त्वरितं पर्वतं गन्धमादनम् ॥ १०६ ॥
तत्राग्नितीर्थं सुमहद्विद्यते पापनाशनम् । पिशाचमोक्षणार्थाय तत्र स्नाहि महामते
पिशाचार्थन्त्वयिस्नातेतत्रसङ्कल्पपूर्वकम् । पिशाचभावमुन्मुच्य दिव्यतामेषयास्यति
निष्कृतिर्नास्य पश्यामि विना तत्तीर्थसेवनात् ।
अतः सुतीक्ष्ण! कृपया रक्षस्वैनं पिशाचकम् ॥ १०९ ॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु सुतीक्ष्णो गन्धमादनम् ।
प्राप्याग्नितीर्थे सङ्कल्प्य पिशाचार्थं कृपानिधिः ॥ ११० ॥

सस्नौ तत्र पिशाचार्थं नियमेन दिनत्रयम् । रामनाथादिकं सेव्य तत्तीर्थं प्रविगाह्य च
स्वाश्रमं प्रतिगत्वाथ सुतीक्ष्णो विप्रसत्तमः ।
तत्तीर्थप्रोक्षणात्सद्यः स विसृज्य पिशाचताम् ॥ ११२ ॥
वैभवात्तस्य तीर्थस्य सद्यो दिव्यत्वमाप्तवान् । विमानवरमारूढो दिव्यस्त्रीपरिवारितः
सुतीक्ष्णञ्चाप्यऽगस्त्यञ्च तथान्यांश्च तपोधनान् ।
पुनः पुनर्नमस्कृत्य तांश्चाऽऽमन्त्र्य प्रहर्षितः ॥ ११४ ॥
स्वर्गमेवाऽरुहत्तूर्णं देवैरपि पूजितः । अग्नितीर्थस्य माहात्म्याद् दुष्पण्यो वैश्यनन्दनः
पैशाच्यं शापजं त्यक्त्वा दिव्यतामित्थमाप्तवान् ।
एवम्वः कथितं विप्रा! अग्नितीर्थस्य वैभवम् ॥११६ ॥
यः पठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासभक्तिकम् । पिशाचमोक्षणाख्यानं मुच्यते सर्वपातकैः
इह भुक्त्वा महाभोगान्परत्राऽपि सुखं लभेत् ॥ ११८ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येऽग्नितीर्थप्रशंसायांदुष्पण्यपैशाच्यमोक्षणंनाम-
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### चक्रतीर्थप्रशंसायामादित्यहिरण्मयपाण्यवाप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अग्नितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने । स्नानंकृत्वाविशुद्धात्माचक्रतीर्थंततोव्रजेत्
यं यंकामं समुद्दिश्य चक्रतीर्थे द्विजोत्तमाः । स्नानंसमाचरेन्मर्त्यस्तं तंकामंसमश्नुते
पुराऽहिर्बुध्न्यनामा तु महर्षिःसंशितव्रतः । सुदर्शनमुपास्तेस्मिंस्तपस्वीगन्धमादने
तपस्यन्तं मुनितत्र राक्षसा घोररूपिणः । अबाधन्तसदाविप्रास्तपोविघ्नैकतत्पराः

सुदर्शनं तदागत्य भक्तरक्षणवाञ्छया । यातुधानान्बाधमानान्यवधीलींलयापुरा ।
तदाप्रभृति तच्चक्रं भक्तप्रार्थनयाद्विजाः । अहिर्बुध्न्यकृते तीर्थे सन्निधानंसदाऽकरोत्
तदाप्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमितीर्यते । सुदर्शनप्रसादेन तत्र तीर्थे निमज्जनात्

रक्षःपिशाचादिकृता पीडा नाऽस्त्येव कर्हिचित् ।
स्नात्वाऽस्मिन्पावने तीर्थे छिन्नपाणिःपुरा रविः ॥ ८ ॥
सहिरण्मयौ पाणी लब्धवांस्तीर्थवैभवात् ।

ऋषय ऊचुः

छिन्नपाणिः कथमभूदादित्यःसूतनन्दन ! ॥ ९ ॥
यथा च लब्धवान्पाणी सौवर्णौ तद्वदस्व नः ।

श्रीसूत उवाच

इन्द्रादयः सुराःपूर्वं सततं दैत्यपीडिताः ॥ १० ॥

किंकुर्मइतिसञ्चिन्त्य सम्भूयसममन्त्रयन् । बृहस्पतिंपुरस्कृत्य मन्त्रयित्वाचिरंसुराः
तुराषाहंपुरोधाय धामस्वायम्भुवंययुः । ते ब्रह्माणंसमासाद्य दृष्ट्वा स्तुत्वा चभक्तितः

ततो व्यजिज्ञपंस्तस्मै स्वेषामागमकारणम् ।

सुरा ऊचुः

भगवन्भारतीनाथ! दैत्या ह्यस्मान्बलोत्कटाः ॥ १३ ॥

बाधन्ते सततं देव! तत्र ब्रूहिप्रतिक्रियाम् । इत्युक्तः स सुरैर्ब्रह्मा तानाह कृपया वचः

ब्रह्मोवाच

मा भैष्ट यूयं विबुधास्तत्रोपायं ब्रवीम्यहम् । माहेश्वरं महायज्ञमसुराणां विनाशनम्
प्रारभध्वं सुरायूयं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अयञ्च दैवतैःसर्वैर्विघ्नलोपं विना क्रतुः
माहेश्वरो महायज्ञः क्रियतांगन्धमादने । यदि ह्यन्यत्र तं यज्ञं कुर्यास्तद्विबुधर्षभाः
यज्ञविघ्नं तदा कुर्युर्दुरात्मानःसुरद्विषः । क्रियते यद्ययं यज्ञो गन्धमादनपर्वते
सुदर्शनप्रसादेन नैव विघ्नो भवेत्तदा । अहिर्बुध्न्याभिधानस्य महर्षेर्गन्धमादने
अनुग्रहाय तत्तीर्थे सन्निधत्ते सुदर्शनम् । अतःकुरुध्वं भो यूयं तं यज्ञं गन्धमादने

नातिदूरे चक्रतीर्थादसुराणां विनाशकम् । ततस्ते ब्रह्मवचसा सहसा गन्धमादनम्
बृहस्पतिपुरस्कृत्य जग्मुर्यज्ञचिकीर्षया । ते प्रणम्य महात्मानमहिर्बुध्न्यं मुनीश्वरम्
अकल्पयन्यज्ञवाटन्नातिदूरे तदाश्रमात् । यज्ञकर्मसु निष्णातैः सहितास्ते तपोधनैः

इष्टिमारेभिरे देवा असुराणां विनाशिनीम् ।
तस्मिन्कर्मणि होताऽऽसीत्स्वयमेव बृहस्पतिः ॥ २४ ॥

बभूव मैत्रावरुणो जयन्तः पाकशासनिः । अच्छावाको बभूवाऽत्र वसूनामष्टमो वसुः
ग्रावस्तदाऽभवत्तत्र शक्तिपुत्रः पराशरः । अष्टावक्रो महातेजा अध्वर्युर्धुरमूढवान् ॥
तत्र प्रतिप्रस्थाताभूद्विश्वामित्रो महामुनिः । नेष्टा बभूव वरुण उन्नेताच धनेश्वरः
ब्रह्मा बभूवसविता यज्ञस्यार्थधुरं वहन् । बभूवब्राह्मणाच्छंसि वशिष्ठो ब्राह्मणोत्तमः
आग्नीध्रोऽभूच्छुनः शेपःपोता जातश्चपावकः । उद्गातावायुरभवत्प्रस्तोताचपरेतराट्

प्रतिहर्ता तु तत्राऽऽसीदगस्त्यः कुम्भसम्भवः ।
सुब्रह्मण्यो मधुच्छन्दा विश्वामित्रात्मजो महान् ॥ ३० ॥

यजमानःस्वयमभूद्देवराजःपुरन्दरः । उपद्रष्टा बभूवात्र व्यासपुत्रःशुको मुनिः ॥
ततस्ते ऋत्विजःसर्वे देवराजं पुरन्दरम् । विधिवद्दीक्षयांचक्रुस्तत्र माहेश्वरे क्रतौ
प्रावर्तत महायज्ञ एवं वै गन्धमादने । सुदर्शनप्रभावेण दुःसहेनाऽतिपीडिताः ॥३३ ॥
नाऽविन्दन्नसुरास्तत्र रन्ध्रं यज्ञे प्रवर्तिते । एवं निरन्तरं योऽसौ प्रावर्तत महाक्रतुः
भक्षयंश्च हविस्तत्र जज्वाल हुतवाहनः । विधिवत्कर्मजालानि कृत्वाध्वर्युरसंभ्रमात्
मन्त्रपूतं पुरोडाशं जुहवामास पावके । हुतशेषं पुरोडाशं विभज्याध्वर्युरादरात् ॥
ऋत्विग्भ्योहोतृमुख्येभ्य प्रददौ पापनाशनम् । सवित्रे ब्रह्मणे चैकमत्युग्रतरतेजसम्
ददौ तत्र पुरोडाशभागं प्राशित्रनामकम् । प्रतिजग्राहपाणिभ्यां प्राशित्रं सवितातदा

सवितुस्पृष्टमात्रं सत्तत्प्राशित्रं दुरासदम् ।
तस्य पाणी प्रचिच्छेद पश्यतां सर्वऋत्विजाम् ॥ ३६ ॥

ततःसंछिन्नपाणिःसप्राशित्रेणोग्रतेजसा । किमेतदितिसंत्रस्तोविषण्णवदनोऽभवत्

सविता ऋत्विजः सर्वान्समाहूयेदमब्रवीत् ।

सवितोवाच

पुरोडाशस्य भागोऽयं मम प्राशित्रनामकः ॥ ४१ ॥

दत्तश्चिच्छेदमत्पाणीसिचत्स्वेवभवत्स्वपि । अतोभवन्तःसम्भूयसर्वएवहिऋत्विजः

कल्पयन्तामिमौ पाणी नो चेद्यज्ञं निहन्म्यमुम् ।

सवितुर्वाक्यमाकर्ण्य ते सर्वे समचिन्तयन् ॥ ४३ ॥

तत्र मध्ये मुनीन्द्राणां देवानाञ्चैव सर्वशः । अष्टावक्रो महातेजा ऋत्विजस्तानभाषत

अष्टावक्र उवाच

शृणुध्वमृत्विजःसर्वेममवाक्यंसमाहिताः । मयिजीवतिविप्रेन्द्राविरिञ्चानाशतंगतम्

जायन्ते चम्रियन्ते च चतुराननकोटयः । पश्यन्नेव च तान्सर्वानहं प्राणानधारयम् ॥

तत्र लोकेश्वराभिख्ये वर्तमाने प्रजापतौ । विप्रो हरिहरो नामनिवसञ्छ्यामलापुरे

व्याधेनारण्यवासेन केल्यर्थलक्ष्यवेधिना । छिन्नपादोऽभवद्बाणैर्लक्ष्यमध्यं समागतः

स गन्धमादनं प्राप्य मुनिभिः प्रेरितस्तदा ।

स्नात्वा च मुनितीर्थेऽस्मिन्प्राप्तवांश्चरणौ पुरा ॥ ४६ ॥

तदापुण्यमिदंतीर्थं मुनितीर्थमितीरितम् । इदानीं चक्रतीर्थाख्यं चक्रनाम्नात्वविन्दत

तदत्रक्रियतांस्नानं प्राशित्रच्छिन्नपाणिना । मुनितीर्थे सवित्रापियुष्माकंयदिरोचते

ऋत्विजःकथितास्त्वेवमष्टावक्रमहर्षिणा । सवितारमभाषन्त सर्व एव प्रहर्षिताः

सवितः ! स्नाहि तीर्थेऽस्मिंस्तव पाणी भविष्यतः ।

अष्टावक्रो यथा प्राह तथा कुरु समाहितः ॥ ५३ ॥

ततःससविता गत्वा चक्रतीर्थंमहत्तरम् । सस्नौ पाण्योरवाप्त्यर्थमिष्टदायिनितत्रसः

उत्तिष्ठन्नेव स तदा तत्र स्नात्वा सभक्तिकम् ।

युक्तो हिरण्मयाभ्यान्तु पाणिभ्यां समदृश्यत ॥ ५५ ॥

हिरण्यपाणिं तं दृष्ट्वाजहृषुःसर्वऋत्विजः । ततःसमाप्य तं यज्ञं दैत्यसङ्घान्विजित्यच

इन्द्रादयःसुराःसर्वे सुखिताःस्वर्गमाययुः । तस्मादेतत्समागत्य तीर्थं सर्वैश्च मानवैः

सेवनीयं प्रयत्नेन स्वस्वाभीष्टस्यसिद्धये । अन्धैश्च कुणिभिर्मूकैर्बधिरैःकुब्जकैरपि

खञ्जैःपङ्गुभिरप्येतदङ्गहीनैस्तथापरैः । संछिन्नपाणिचरणैः संछिन्नान्याङ्गसश्रयैः
मनुष्यैश्च तथान्यैश्च विकलाङ्गस्य पूर्तये । सेवनीयमिदं तीर्थं सर्वाभीष्टप्रदायकम्
एवं वःकथितं विप्राश्चक्रतीर्थस्य वैभवम् । यत्रस्नात्वापुराछिन्नौ पाणीप्रापप्रभाकरः
यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः । अङ्गानिविकलान्यस्य पूर्णानिस्युर्नसंशयः
मोक्षकामस्य मर्त्यस्य मुक्तिः स्यान्नात्र संशयः ॥ ६२ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये चक्रतीर्थप्रशंसायामादित्यहिरण्मयपाण्यवाप्तिर्नाम-
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## शिवतीर्थप्रशंसायां भैरवब्रह्महत्याविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा शिवतीर्थंततोव्रजेत् । यत्रहि स्नानमात्रेण महापातककोटयः
तत्संसर्गाश्चनश्यन्ति तत्क्षणादेवतापसाः । अत्रस्नात्वा ब्रह्महत्यांमुमुचे कालभैरवः

ऋषय ऊचुः

कालभैरवरुद्रस्य ब्रह्महत्या महामुने ! । किमर्थमभवत्सूत ! तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥

श्रीसूत उवाच

वक्ष्यामि मुनयःसर्वे पुरावृत्तंविमुक्तिदम् । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते
प्रजापतेश्च विष्णोश्च बभूव कलहःपुरा । किञ्चित्कारणमुद्दिश्य समस्तजनसन्निधौ
अहमेव जगत्कर्ता नान्यःकर्तास्ति कश्चन । अहं सर्वप्रपञ्चानान्निग्रहाऽनुग्रहप्रदः ॥
मत्तोनाऽन्याधिकः कश्चिन्मत्समोवासुरेष्वपि । एवंसमनुतेब्रह्मादेवानांसन्निधौपुरा
तदा नारायणःप्राह प्रहसन्द्विजपुङ्गवाः । किमर्थमेवं ब्रूषेत्वमहङ्कारेण साम्प्रतम् ॥

वाक्यमेवम्विधं भूयोवक्तुंनार्हसि वै विधे । अहमेव जगत्कर्ता यज्ञोनारायणोविभुः
मांविनाऽस्यप्रपञ्चस्यजीवनंदुर्लभंभवेत् । मत्प्रसादाज्जगत्सृष्टं त्वया स्थावरजङ्गमम्
विवादं कुर्वतोरेवं ब्रह्मविष्ण्वोर्जयैषिणोः । देवानां पुरतस्तत्र वेदाश्चत्वार आगताः
प्रोचुर्वाक्यमिदं तथ्यं परमार्थप्रकाशकम् ।

वेदा ऊचुः

न त्वं विष्णो! जगत्कर्ता न त्वं ब्रह्मन्प्रजापते !॥ १२ ॥
किन्त्वीश्वरो जगत्कर्ता परात्परतरो विभुः ।
तन्मायाशक्तिसंक्लृप्तमिदं स्थावरजङ्गमम् ॥ १३ ॥

सर्वदेवाभिवन्द्यो हि साम्बःसत्यादिलक्षणः । स्रष्टा च पालको हर्तासएवजगतांप्रभुः
एवं समीरितं वेदैःश्रुत्वा वाक्यंशुभाक्षरम् । ब्रह्माविष्णुस्तदा तत्र प्रोचतुर्द्विजपुङ्गवाः

ब्रह्माविष्णू ऊचतुः

पार्वत्याऽऽलिङ्गितः शम्भुर्मूर्तिमान्प्रमथाधिपः । कथंभवेत्परम्ब्रह्मसर्वसङ्गविवर्जितम्
ताभ्यामितीरिते तत्र प्रणवःप्राहतौ तदा । अरूपो रूपमादाय महता ध्वनिनाद्विजाः

प्रणव उवाच

असौ शम्भुर्महादेवः पार्वत्या स्वातिरिक्तया ।
संक्रीडते कदाचिन्नो किन्तु स्वात्मस्वरूपया ॥ १८ ॥

असौशम्भुरनीशानः स्वप्रकाशोनिरञ्जनः । विश्वाधिकोमहादेवोविश्वाधिकइतिश्रुतः
सर्वात्मासर्वकर्तासौस्वतन्त्रः सर्वभावनः । ब्रह्मन्नयंसृष्टिकालेत्वान्नियुङ्क्तेरजोगुणैः
सत्त्वेन रक्षणे शम्भुस्त्वां प्रेषयति केशवः !। तमसा कालरुद्राख्यं सम्प्रेरयतिसंहृतौ

अतः स्वतन्त्रता विष्णोर्युवयोर्न कदाचन ।
नाऽपि प्रजापतेरस्ति किन्तु शम्भोः स्वतन्त्रता ॥ २२ ॥
ब्रह्मन्विष्णो युवाभ्यान्तु किमर्थं न महेश्वरः ।
ज्ञायते सर्वलोकानां कर्ता विश्वाधिकस्तथा ॥ २३ ॥

सापिशक्तिरुमादेवी न पृथक्शङ्करात्सदा । शम्भोरानन्दभूतासादेवीनागन्तुकीस्मृता

अतोविश्वाधिकोरुद्रः स्वतन्त्रोनिर्विकल्पकः। सर्वदेवैरयंवन्द्यो युवाभ्यामपिशङ्करः

कर्ता नाऽस्यास्तिरुद्रस्य नाधिकोऽस्माञ्च विद्यते।

न तत्समोऽपि लोकेषु विद्यते सर्वदा तथा ॥ २६ ॥

अतो मोहं नकुरुतं ब्रह्मविष्णू युवां वृथा। इत्युक्तं प्रणवेनाथ श्रुत्वा ब्रह्मा च केशवः मायया मोहितौ शम्भोर्नैवाज्ञानममुञ्चताम्। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रददर्श महाद्भुतम् व्याप्नुवद्गगनं सर्वमनन्तादित्यसन्निभम्। तेजोमण्डलमाकाशमध्यगं विश्वतोमुखम् तन्निरूपयितुं ब्रह्मा ससर्जोर्ध्वगतं मुखम्। तपोबलविसृष्टेन पञ्चमेन मुखेन सः

निरूपयामास विभुस्तत्तेजोमण्डलं मुहुः।

तत्प्रजज्वाल कोपेन मुखं तेजोविलोकनात् ॥ ३१ ॥

अनन्तादित्यसंकाशंज्वलत्तत्पञ्चमं शिरः। दिधक्षुःप्रलये लोकान्वडवाग्निरिवाबभौ व्यदृश्यत च तत्तेजः पुरुषो नीललोहितः। दृष्ट्वा स्रष्टा तदा ब्रह्मा बभाषे परमेश्वरम्

वेदाहं त्वां महादेव! ललाटान्मे पुरा भवान्।

विनिर्गतोऽसि शम्भो! त्वं रुद्रनामा ममाऽऽत्मजः ॥ ३४ ॥

इति गर्वेण संयुक्तं वचःश्रुत्वा महेश्वरः। कालभैरवनामानं पुरुषं प्राहिणोत्तदा अयुद्ध्यत चिरंकालं ब्रह्मणा कालभैरवः। महादेवांशसम्भूतः शूलटङ्कगदाधरः युद्ध्वा तु सुचिरं कालं ब्रह्मणा कालभैरवः। वदनंब्रह्मणःशुभ्रं व्यलोकयत पञ्चमम् विलोक्योर्ध्वगतं वक्त्रं पञ्चमं भारतीपतेः। गर्वेण महतायुक्तं प्रजज्वालातिकोपितः ततस्तत्पञ्चमं वक्त्रं भैरवःप्राच्छिनद्रुषा। ततो ममार ब्रह्माऽसौ कालभैरवहिंसितः ईश्वरस्य प्रसादेन प्रपेदे जीवितं पुनः। ततो विलोकयामास शङ्करं शशिभूषणम् ॥ वासुक्याद्यष्टभोगीन्द्रविभूषणविभूषितम्। दृष्ट्वा वेधामहादेवं पार्वत्यासहशङ्करम् लेभे माहेश्वरं ज्ञानं महादेवप्रसादत.। ततस्तुष्टाव गिरिशं वरेण्यंवरदं शिवम्

ब्रह्मोवाच

मह्यं प्रसीद गिरिश! शशाङ्ककृतशेखर !। यन्मयाऽपकृतंशम्भो! तत्क्षमस्वदयानिधे! क्षमस्व मम गर्वं त्वं शङ्करेति पुनःपुनः। नमश्चकार सोमं तं सोमार्धकृतशेखरम्

अथदेवः प्रसन्नोऽस्मै ब्रह्मणेस्वांशजायतु। मा भैरित्यब्रवीच्छम्भुर्भैरवश्चाभ्यभाषत

ईश्वर उवाच

एष सर्वस्य जगतः पूज्योब्रह्मासनातनः। हतस्यास्यविरिञ्चस्यधारयत्वं शिरोऽधुना ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं लोकसंग्रहकाम्यया। भिक्षामटकपालेन भैरवत्वं ममाज्ञया

उक्त्वैवं शङ्करो विप्रास्तत्रैवान्तरधीयत।

नीलकण्ठो महादेवो गिरिजार्द्धतनुस्ततः॥ ४८॥

भैरवं ग्राहयामास वदनं वेधसो द्विजाः। चरस्व पापशुद्ध्यर्थं लोकसंग्रहणाय वै कपालधारीहस्तेन भिक्षांगृह्णातु भैरव!। इतीरयित्वा गिरिशःकन्यांकांचिद्भयंकरीम् ब्रह्महत्याभिधांक्रूरां वडवानलसन्निभाम्। तांप्रेरयित्वा गिरिशो भैरवं पुनरब्रवीत्

ईश्वर उवाच

भैरवैतद्व्रतं त्वद्द्य ब्रह्महत्याविशुद्धये। चर त्वं सर्वतीर्थेषु स्नाहि शुद्ध्यर्थमात्मनः ततो वाराणसीं गच्छ ब्रह्महत्याप्रशान्तये। वाराणसीप्रवेशेन ब्रह्महत्या तवाऽधमा

पादशेषा विनिष्टा स्याच्चतुर्थांशो न नश्यति।

तस्य नाशं प्रवक्ष्यामि तव भैरव! तच्छृणु॥ ५४॥

दक्षिणाम्भोनिधेस्तीरे गन्धमादनपर्वते। सर्वप्राण्युपकाराय कृतं तीर्थं मया शुभम् शिवसंज्ञं महापुण्यं तत्र याहि त्वमादरात्। तत्प्रवेशनमात्रेण ब्रह्महत्यातवाशुभा

शिवतीर्थस्य माहात्म्यान्निश्शेषं नश्यति ध्रुवम्।

उक्त्वैवंभैरवंरुद्रःकैलासंप्रययौ क्षणात्॥ ५७॥

ततः कपालपाणिस्तु भैरवः शिवचोदितः। देवदानवयक्षादिलोकेषु विचचार सः तं यान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्यातिभीषणा। भैरवःसर्वतीर्थानि पुण्यान्यायतनानिच चरित्वालीलयादेवस्ततो वाराणसींययौ। वाराणसीं प्रविष्टेतु भैरवे शङ्करांशजे चतुर्थांशं विनानष्टा ब्रह्महत्यातिकुत्सिता। चतुर्थांशोऽनुदुद्राव भैरवंशङ्करांशजम् ततः स भैरवो देवः शूलपाणिः कपालधृक्। शिवाज्ञया ययौ पश्चाद्गन्धमादनपर्वतम्

शिवतीर्थं ततो गत्वा भैरवः स्नातवान्द्विजाः।

स्नानमात्रेण तत्राऽस्य शिवतीर्थे महत्तरे ॥ ६३ ॥
निश्शेषं विलयंयाता ब्रह्महत्याऽतिभीषणा । अस्मिन्नवसरेशम्भुः प्रादुरासीत्तदग्रतः
प्रादुर्भूतो महादेवो भैरवं वाक्यमब्रवीत् ।

ईश्वर उवाच

*निश्शेषं ब्रह्महत्या ते शिवतीर्थे निमज्जनात् ॥ ६५ ॥*
नष्टा भैरव! नास्त्यत्रसन्देहस्तवसुव्रत !। इदंकपालंकाश्यांत्वंस्थापयस्वक्वचित्स्थले
इत्युक्त्वाभगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत । भैरवोऽपि तदाविप्राब्रह्महत्याविमोचितः
शिवतीर्थस्य माहात्म्याद्ययौ वाराणसीं पुरीम् ।
कपालं स्थापयामास प्रदेशे कुत्रचिद् द्विजाः !॥ ६८ ॥
कपालतीर्थमित्याख्यामलभत्तत्स्थलन्तदा ।

श्रीसूत उवाच

एवं प्रभावं तत्पुण्यं शिवतीर्थं विमुक्तिदम् ॥ ६६ ॥
महादुःखप्रशमनं महापातकनाशनम् । नरकक्लेशशमनं स्वर्गदं मोक्षदन्तथा ॥ ७० ॥
शिवतीर्थस्य माहात्म्यंमयाप्रोक्तंविमुक्तिदम् । इदंपठन्सदामर्त्योदुःखग्रामाद्विमुच्यते

इति श्रीस्कान्देमहापुराणेएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये शिवतीर्थप्रशंसायां भैरवब्रह्महत्याविमोक्षणंनाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## पञ्चविंशोऽध्यायः

### शङ्खतीर्थप्रशंसायांवत्सनाभकृतघ्नदोषशान्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

शिवतीर्थेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्याविमोक्षणे। स्वपापजालशान्त्यर्थं शङ्खतीर्थं ततोव्रजेत्
यत्रमज्जनमात्रेण कृतघ्नोऽपि विमुच्यते। मातृःपितृन्गुरूंश्चापियेनमन्यन्तिमोहिताः

ये चाप्यन्ये दुरात्मानः कृतघ्ना निरपत्रपाः।

ते सर्वे शङ्खतीर्थेऽस्मिञ्छुद्ध्यन्ति स्नानमात्रतः॥ ३॥

शङ्खनामा मुनिः पूर्वं गन्धमादनपर्वते। अवर्तत तपः कुर्वन्विष्णुं ध्यायन्समाहितः
स तत्र कल्पयामासस्नानार्थंतीर्थमुत्तमम् शङ्खेन निर्मितं तीर्थं शङ्खतीर्थमितीर्यते
तत्रस्नात्वासकृन्मर्त्यःकृतघ्नोपिविमुच्यते। अत्रेतिहासंवक्ष्यामिपुराणंपापनाशनम्
यस्य श्रवणमात्रेण नरो मुक्तिमवाप्नुयात् पुरा बभूव विप्रेन्द्रोवत्सनाभोमहामुनिः
सत्यवाञ्छीलवान्वाग्मीसर्वभूतदयापरः। शत्रुमित्रसमोदान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः
परब्रह्मणि निष्णातस्तत्त्वब्रह्मैकसंश्रयः। एवं प्रभावः स मुनिस्तपस्तेपे निजाश्रमे
स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठंस्तत्रैव भूतले। परमाण्वन्तरं वापि न स्वस्थानाच्चचालसः
स्थित्वैकत्र तपस्यन्तमनेकशतवत्सरान्। तमाचक्राम वल्मीकं छादिताङ्गश्चकार च
वल्मीकाक्रान्तदेहोऽपि वत्सनाभोमहामुनिः। अकरोत्तपउवासौवल्मीकान्तस्थबुद्ध्यत
तस्मिंश्च तप्यति तपो वासवोमुनिपुङ्गवा। विसृज्यमेघजालानिवर्षयामासवेगवान्
एवं दिनानि सप्ताऽयं स ववर्ष निरन्तरम्। आसारेणातिमहता वृष्यमाणोपिवैमुनिः
तं वर्षं प्रतिजग्राह निर्मीलितविलोचनः। महतास्तनितेनाशु तदा बधिरयञ्छ्रुतीः
वल्मीकस्योपरिप्राह्ने निपपात महाशनिः। तस्मिन्वर्षतिपर्जन्ये शीतवातातिदुःसहे

वल्मीकशिखरं ध्वस्त बभूवाऽशनिताडितम्।

विशीर्णशिखरे तस्मिन्वल्मीकेऽशनिताडिते॥ १७॥

सेहेऽति दुःसहां वृष्टिं वत्सनाभोऽविचिन्तयन्।
महर्षौ वर्षधाराभिः पीड्यमाने दिवानिशम् ॥ १८ ॥

धर्मस्य चेतसि कृपा संबभूवातिभूयसी। सधर्मश्चिन्तयामास वत्सनाभेतपस्यति पतत्यत्यतिवर्षेयं तपसो न निवर्तते। अहोऽस्य वत्सनाभस्य धर्मैकायतचित्तता इति चिन्तयतस्तस्य मतिरेवमजायत। अहं वै माहिषंरूपं सुमहान्तं मनोहरम् वर्षधारानिपातानांसोढारंकठिनत्वचम्। स्वीकृत्यमाहिषंरूपंस्थास्याम्युपरियोगिनः न हि बाधिष्यते वर्षं महावेगयुतं त्वपि। धर्म एवं विनिश्चित्य धाराःपृष्ठेन धारयन् वत्सनाभोपरि तद्गात्रमाच्छाद्यतस्थिवान्। ततः सप्तदिनान्ते तु तद्वैवर्षमुपारमत् ततो माहिषरूपी स धर्मोऽति कृपयायुतः। तद्वै वल्मीकमुत्सृज्य नातिदूरे ह्यवर्त्तत ततो निवृत्ते वर्षे तु वत्सनाभोमहामुनिः। निवृत्तस्तपसस्तूर्णंदिशःसर्वाव्यलोकयत् स्थितोऽहं वृष्टिसम्पाते कुर्वन्नयमहत्तपः। पृथिवीसलिलक्लिन्नाद्दृश्यते सर्वतोदिशम् शिखराणि गिरीणाञ्च वनान्युपवनानि च। आश्रमाणिमहर्षीणामाप्लुतानिजलैर्नवैः

एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा प्रमुदितोऽभवत्।
चिन्तयामास धर्मात्मा वत्सनाभो महामुनिः ॥ २६ ॥

अहमस्मिन्महावर्षे नूनं केनापिरक्षितः। वर्षत्यस्मिन्महावर्षे जीवितं त्वन्यथा कुतः विचिन्त्यैवं मुनिश्रेष्ठः सर्वत्रसमलोकयत्। ततोऽपश्यन्महाकायमदूरादग्रतःस्थितम् महिषं नीलवर्णञ्च वत्सनाभस्तपोधनः। महिषं तं समुद्दिश्य मनसासमचिन्तयन् तिर्यग्योनिष्वपिकथं दृश्यते धर्मशीलता। यतो ह्यहं महावर्षान्महिषेणाभिरक्षितम् दीर्घमायुरमुष्यास्तु यन्मां रक्षितवानिह। इत्यादि स विचिन्त्यैवं तपसे पुनरुद्ययौ तं पुनश्च तपस्यन्तं दृष्ट्वा महिषरूपधृक्। रोमाञ्चावृतसर्वाङ्गः प्रमोदमगमद्भृशम्

वत्सनाभस्य हि मुनेः पुनश्चैव तपस्यतः।
मनः पूर्ववदैकाग्र्यं परब्रह्मणि नाऽभवत् ॥ ३६ ॥

स विषण्णमना भूत्वावत्सनाभोव्यचिन्तयत्। नभवेद्यादिनैर्मल्यंतदास्याच्चञ्चलंमनः मनश्च पापबाहुल्ये निर्मलं नैव जायते। पापलेशोऽपि मे नास्तिकथं लोलायते मनः

अचिन्तयद्दोषहेतुं वत्सनाभः पुनः पुनः । सविचिन्त्य विनिश्चित्य निनिन्दात्मानमञ्जसा

धिङ्मामद्य दुरात्मानमहो मूढोऽस्म्यहं भृशम् ।

कृतघ्नता महान्दोषो मामद्य समुपागतः ॥ ४० ॥

यदीदृशान्महावर्षात्त्रातारं महिषोत्तमम् । तिष्ठाम्यपूजयन्नेव ततो मेऽभूत्कृतघ्नता

कृतघ्नता महान्दोषः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।

कृतघ्नस्य न वै लोकाः कृतघ्नस्य न बान्धवाः ॥ ४२ ॥

कृतघ्नतादोषबलान्मम चित्तं मलीमसम् । कृतघ्ना नरकं यान्ति ये च विश्वस्तघातिनः

निष्कृतिं नैव पश्यामि कृतघ्नानां कथञ्चन । ऋतेप्राणपरित्यागाद्धर्मज्ञानां वचो यथा

पित्रोरभरणं कृत्वा ह्यदत्त्वा गुरुदक्षिणाम् । कृतघ्नताञ्च सम्प्राप्य मरणान्ता हि निष्कृतिः

तस्मात्प्राणान्परित्यज्य प्रायश्चित्तं चराम्यहम् ।

इति निश्चित्य मनसा वत्सनाभो महामुनिः ॥ ४८ ॥

तृणीकृत्य निजान्प्राणान्निःसङ्गेनान्तरात्मना । मेरोः शिखरमारूढप्रायश्चित्तचिकीर्षया

सुमेरुशिखरात्तस्मादियेष पतितुं मुनिः । तस्मिन्पतितुमारब्धे मा त्वरिष्ठा इति ब्रुवन्

त्यक्तमाहिषरूपः सन्धर्म एव न्यवारयत् ।

धर्म उवाच

वत्सनाभ! महाप्राज्ञ! जीव त्वं बहुवत्सरान् ॥ ४९ ॥

परितुष्टोऽस्मि भद्रन्ते देहत्यागचिकीर्षया ।

न हि ते धर्मकक्ष्यायां लोके कश्चित्समोऽस्ति वै ॥ ५० ॥

यद्यपि प्राणसंत्यागः कृतघ्ने निष्कृतिर्भवेत् । तथापि धर्मशीलत्वात्तवान्यां निष्कृतिं वदे

शङ्खतीर्थाभिधं तीर्थमस्ति वै गन्धमादने । शान्त्यर्थमस्य पापस्य तत्र स्नाहि समाहितः

प्राप्स्यसे चित्तशुद्धिं त्वमतो विगतकल्मषः । ततश्च लब्धविज्ञानः प्राप्स्यसे शाश्वतं पदम्

अहं धर्मोऽस्मि योगीन्द्र सत्यमेव ब्रवीमि ते । इति धर्मवचः श्रुत्वा वत्सनाभो महामुनिः

स्नातुकामः शङ्खतीर्थे गन्धमादनमन्वगात् । शङ्खतीर्थञ्च सम्प्राप्य तत्र स्नात्वा महामुनिः

ततो विगतपापस्य मनो निर्मलतां गतम् । ततोऽचिरेण कालेन ब्रह्मभूयमगान्मुनिः

एवं वः कथितं विप्राः! शङ्खतीर्थस्य वैभवम् ।
यत्र हि स्नानमात्रेण कृतघ्नोऽपि विमुच्यते ॥ ५७ ॥
मातृद्रोही पितृद्रोही गुरुद्रोही तथैव च । अन्ये कृतघ्ननिवहा मुच्यन्तेऽत्रनिमज्जनात्
अतःकृतघ्नैर्मनुजैः सेवनीयमिदं सदा । अहोतीर्थस्यमाहात्म्यं यत्कृतघ्नोऽपि मुच्यते
अकृत्वा भरणं पित्रोरदत्त्वा गुरुदक्षिणाम् ।
कृतघ्नताञ्च सम्प्राप्य मरणान्ता हि निष्कृतिः ॥ ६० ॥
इह तु स्नानमात्रेण कृतघ्नस्यापि निष्कृतिः । कृतघ्नतापितत्तीर्थेस्नानमात्राद्विनश्यति
अन्येषां तुच्छपापानां सर्वेषां किमुताऽधुना ॥
अध्यायमेनं पठेद्भक्तियुक्तः कृतघ्नोऽपि मर्त्यः स पापाद्विमुक्तः ।
विशुद्धान्तरात्मा गतः सत्यलोकं समं ब्रह्मणा मोक्षमप्याशु गच्छेत् ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये शङ्खतीर्थप्रशंसायांवत्सनाभकृतघ्नदोषशान्तिर्नाम-
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

# षड्विंशोऽध्यायः

## यमुनातीर्थप्रशंसायांजानश्रुतिज्ञानावाप्तिवर्णनम्

### श्रीसूत उवाच

विप्रायाभिषवं मर्त्यः शङ्खतीर्थेद्विजोत्तमाः । यमुनाञ्चैवगङ्गाञ्चगयाञ्चापिक्रमाद्व्रजेत्
यमुनाख्यं महातीर्थं गङ्गातीर्थमनुत्तमम् । गयातीर्थञ्च मर्त्यानां महापातकनाशनम्
एतत्तीर्थत्रयं पुण्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम् । सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥ ३ ॥
एतद्धितीर्थत्रितयं सकलाज्ञाननाशनम् । अविद्यायां विनष्टायां तथाज्ञानप्रदन्नृणाम्
जानश्रुतिर्महाराज एषु तीर्थेषु वै पुरा । स्नात्वारैकाद्द्विजश्रेष्ठात्प्राप्तवाञ्ज्ञानमुत्तमम्

ऋषय ऊचुः

सूत!सर्वार्थतत्त्वज्ञ! व्यासशिष्य महामते । यमुनाचैवगङ्गाच गयाचैवेति विश्रुतम् ॥
एतत्तीर्थत्रयं कस्मादागतं गन्धमादने । जानश्रुतेश्च राजर्षे!स्नानात्तीर्थत्रयेऽपि च ॥
ज्ञानाप्तिः कथं रैकादस्माकं सूत! तद्वद ।

श्रीसूत उवाच

रैकनामा महर्षिस्तु पुरा वै गन्धमादने ॥ ८ ॥
तपस्तुदुश्चरं कुर्वन्न्यवसत्तपसान्निधिः । दीर्घकालं तपःकुर्वन्स वै रैको महामुनिः
तपोबलेन महता दीर्घमायुरवाप्तवान् । जन्मना पङ्गुरेवासीद्रैकनामा महामुनिः ॥
पङ्गुत्वादसमर्थोभूद्गन्तुं तीर्थान्यसौ मुनिः । सन्तियानितुतीर्थानिगन्धमादनपर्वते
तानिगच्छति सामीप्याच्छकटेनैवसञ्चरन् । स यद्रैको मुनिवरो युग्येन सह वर्तते
तपस्वीवैदिकेलोके सयुग्वानभिधीयते । युग्वेतिशकटंप्रोक्तं स तेन सह वर्तते ॥
स खल्वेवं मुनिश्रेष्ठः सयुग्वान्नाम वै मुनिः ।
पूर्णज्ञानस्तपस्तेपे गन्धमादनपर्वते ॥ १४ ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थः सोऽतप्यत महत्तपः । वर्षासुकण्ठदघ्नेषु जलेषु समवर्तत
तपसा शोषिते गात्रे पामातस्य व्यजायत । कण्डूयतस पामानं दिवारात्रं मुनीश्वरः
कण्डूयमान एवायं पामानं न तपोऽत्यजत् । अजायत मनस्त्वेवंतस्यसयुग्वतोमुनेः
यमुनायां च गङ्गायां गयायां चाधुनैव हि ।
अस्मिंस्तीर्थत्रये पुण्ये स्नातव्यं हि मयात्विति ॥ १८ ॥
एवं विचिन्त्य स मुनिरन्यां चिन्तामथाकरोत् । अहं हिजन्मनापङ्गुरतःस्नानंहिदुर्लभम्
अतिदूरं मया गन्तुं शकटेन न शक्यते । किंकरोम्यधुनेत्येवं स वितर्क्यमहामतिः
तीर्थत्रयेषु स्नानार्थं कर्तव्यं निश्चिकाय वै । अप्रसह्यमनाधृष्यं विद्यते मे तपोबलम्
तेनैवाऽऽवाहयिष्यामि तद्धि तीर्थत्रयन्त्विह ।
इति निश्चित्य मनसा प्राङ्मुखो नियतेन्द्रियः ॥ २२ ॥
त्रिराचम्य च सयुग्वान्दध्यौ क्षणमतन्द्रितः । तस्यमन्त्रप्रभावेणयमुना सामहानदी

गङ्गा च जह्नु तनया गया सा पापनाशिनी ।

भूमिं निर्भिद्य तिस्रोऽपि पातालात्सहसोत्थिताः ॥ २४ ॥

मानुषं रूपमास्थाय सयुग्वानमुपेत्य च । ऊचुःपरमसंहृष्टा हर्षयन्त्यश्च तं मुनिम्
सयुग्वन्रैक्कभद्रन्ते ध्यानादस्मादुपारम । त्वन्मन्त्रेणसमाकृष्टा वयमत्र समागताः

किंकर्तव्यं तवाऽस्माभिस्तद्वदस्व मुनीश्वर ।।

इति तासां वचः श्रुत्वा सयुग्वान्हि महामुनिः ॥ २७ ॥

ध्यानादुपारमत्तूर्णं ताश्चापश्यत्पुरःस्थिताः । सताःसम्पूज्यविधिवद्रैक्कोवाचमभाषत
यमुनेदेवि! हे गङ्गे! हे गये! पापनाशिनि !। सन्निधानं कुरुध्वं मे गन्धमादनपर्वते ॥
यत्र भूमिंविनिर्भिद्य भवत्य इह निर्गताः । तानिपुण्यानितीर्थानिभवेयुर्धोऽभिधानतः
सहसान्तरधीयन्तथास्त्वित्येव तत्र ताः । तदा प्रभृतितीर्थानितानित्रीण्यपिभूतले
तेन तेनाभिधानेन गीयन्ते सर्वदा जनैः । यत्र भूमिं विनिर्भिद्ययमुनानिर्गता तदा
यमुनातीर्थमिति वै तज्ज्ञैरभिधीयते । यतो वै पृथिवीरन्ध्राज्जाह्नवीसहसोत्थिता
गङ्गातीर्थमितिख्यातं तल्लोके पापनाशनम् । गया हि मानुषंरूपं यत आस्थायनिर्ययौ
तदेव भूमिविवरं गयातीर्थं प्रचक्ष्यते । एवमेतन्महापुण्यं तीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ३५
रैक्कमन्त्रप्रभावेण पृथिव्याःसहसोत्थितम् । अत्र तीर्थत्रये स्नानंयेकुर्वन्ति नरोत्तमाः
तेषामज्ञाननाशःस्याज्ज्ञानमप्युदयं लभेत् । स्वमन्त्रेण समाकृष्टे तत्र तीर्थत्रये मुनिः

स्नानं समाचरन्नित्यं स कालानत्यवाहयत् ।

एतस्मिन्नेव काले तु राजा जानश्रुतिर्महान् ॥ ३८ ॥

पुत्रसञ्ज्ञस्य राजर्षेः पौत्रो धर्मैकतत्परः । ददावन्नादि स तदा ह्यर्थिभ्यःश्रद्धयैव यत्
तदेनं मुनयो लोके श्रद्धादेयं प्रचक्षते । यतो बहुतरं वाक्यमन्नाद्यस्य महीपतेः ॥
अर्थिनां क्षुधितानान्तु तृप्त्यर्थं वर्तते गृहे । अतोऽयमर्थिभिःसर्वैर्बहुवाक्य इतीर्यते ॥

स वै पौत्रायणो राजा जानश्रुतिसुतो बली ।

प्रियातिथिर्बभूवासौ बहुदायी तथाऽभवत् ॥ ४२ ॥

नगरेषु च राष्ट्रेषु ग्रामेषु च वनेषु च । चतुष्पथेषु सर्वेषु महामार्गेषु सर्वशः ॥ ४३ ॥

बह्वन्नपानसंयुक्तं सूपशाकादि संयुतम् । आतिथ्यं कल्पयामास तृप्तयेऽर्थिजनस्य वै ॥
अन्नपानादिकं सर्वमुपभुङ्ध्वमिहार्थिनः । इत्यसौ घोषयामास तत्र तत्र जनास्पदे
तस्य प्रियातिथेरेव नृपस्य बहुदायिनः । अर्थिभ्योदानशौण्डस्यगुणाःसर्वत्रविश्रुताः

अथ पौत्रायणस्यास्य गुणग्रामेण तोषिताः ।

देवर्षयो महाभागास्तस्याऽनुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ४७ ॥

हंसरूपं समास्थाय निदाघसमये निशि । रमणीयां विधायाशु श्रेणीमाकाशमार्गतः
सौधवातायनस्थस्य तस्योपरि महीपतेः । उड्डीयोड्डीयवेगेन तरसाजग्मुरुत्सुकैः ॥
तरसा पततां तेषां हंसानां पृष्ठतो व्रजन् । एको हंसस्तु सम्बोध्य हंसमग्रेसरन्तदा

सोपहासमिदं वाक्यं प्राह शृण्वति राजनि ।

भो भो भल्लाक्ष! भल्लाक्ष! पुरोगच्छन्मरालक !॥ ५१ ॥

सौधमध्ये पुरस्ताद्वै जानश्रुतिसुतो नृपः । वर्तते पूजनीयोयं न पश्यसिकिमन्धवत्
यस्य तेजो दुराधर्ष माब्रह्मभवनादिदम् । अनन्तादित्यसङ्काशं ज्वलते पुरतो भृशम्

तमतिक्रम्य राजर्षिमा गास्त्वमुपरि द्रुतम् ।

यदि गच्छसि तत्तेजस्साम्प्रतं त्वां प्रधक्ष्यति ॥ ५४ ॥

इत्युक्तवन्तं तं हंसमग्रगःप्रत्यभाषतः । अहो भवानभिज्ञोसि श्लाघनीयोऽसिसूरिभिः
अश्लाघनीयं कितवं यस्त्वमेनं प्रशंससे । प्रशंससे किमर्थन्त्वमल्पसन्तमिमञ्जनम् ॥
भस्त्रावत्पशुवच्चैव केवलंश्वासधारिणम् । न ह्यहं वेत्तिधर्माणां रहस्यंपृथिवीपतिः
तत्त्वज्ञानी यथा रैक्वः सयुग्वान्ब्राह्मणोत्तमः । रैक्वस्यहिमहज्ज्योतिरहस्यं देवतरपि
न ह्यस्य प्राणमात्रस्य तेजस्तादृशमस्ति वै । रैक्वस्यपुण्यराशीनामियत्तानैव विद्यते
गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते दिवि तारकाः । रैक्वपुण्यमहामेरुसमूहो नैव गण्यते

किञ्च तिष्ठन्त्विमे धर्मा नश्वरास्तस्य वै मुनेः ।

ब्रह्मज्ञानमबाध्यं यत्तेन स श्लाघ्यते मुनिः ॥ ६१ ॥

जानश्रुतेस्तु तादृक्षो धर्म एव न विद्यते । दुर्लभयत्तु योगीन्द्रैः कुतस्तज्ज्ञानवैभवम्
परित्यज्य दुरात्मानं तद्वराकमिमञ्जनम् । स एवरैक्वःसयुग्वाञ्श्लाघ्यतांभवतामुनिः

जन्मना पङ्गुरपि यःस्वस्य स्नानचिकीर्षया । गङ्गाञ्च यमुनाञ्चापिगयामपिमुनीश्वरः
आह्वयामास मन्त्रेण निजाश्रमसमीपतः । तस्यब्रह्मविदो रैक्कमहर्षेर्धर्मसञ्चये ॥ ६५

अन्तर्भवन्ति धर्मौघास्त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ।
रैक्कस्य धर्मकक्ष्या तु न हि त्रैलोक्यवर्तिनाम् ॥ ६६ ॥

प्राणिनां धर्मकक्ष्यायामन्तर्भवति कर्हिचित् । एवमग्रेसरे हंसे कथित्वोपरते सति
हंसरूपामुनीन्द्रास्ते ब्रह्मलोकं ययुः पुनः । अथपौत्रायणोराजा जानश्रुतिररिन्दमः
रैक्वंचोत्कर्षकाष्ठायांनिशम्यपरमाद्धिम् । विषण्णोभवदत्यर्थंवराकोऽक्षजितोयथा

चिन्तयामास स नृपः पौनःपुन्येन निःश्वसन् ।
हंस उत्कर्षयन् रैक्वं निकृष्टं मामिहाब्रवीत् ॥ ७० ॥
अहो रैक्कस्य माहात्म्यं यं प्रशंसन्ति पक्षिणः ।
तत्परित्यज्य संसारं सर्वं राज्यमिहाऽधुना ॥ ७१ ॥

सयुग्वानं महात्मानं तमेव शरणं व्रजे । कृपानिधिः स वै रैक्कः शरणंमामुपागतम् ॥
प्रतिगृह्यात्मविज्ञानं मह्यंसमुपदेक्ष्यति । इत्यसौ चिन्तयन्नेव कथं कथमपि द्विजाः
जाग्रन्नेवायमुद्वेलां रात्रिं तामत्यवाहयत् । निशाऽवसानेसम्प्राप्ते वन्दिवृन्दप्रवर्तितम्
अशृणोन्मङ्गलरवं तूर्यघोषसमन्वितम् । तदाकर्ण्य महाराजस्तदातल्पस्थ एव सन्
सारथिं शीघ्रमाहूय बभाषे सादरं वचः । सारथे! सत्वरं गत्वा रथमारुह्य वेगवत् ॥
आश्रमेषु महर्षीणां पुण्येषु विपिनेषु च । विविक्तेषु प्रदेशेषु सतामावासभूमिषु ॥
तीर्थानां च नदीनां च कूलेषु पुलिनेषु च । अन्येषु च प्रदेशेषु यत्रसन्ति मुनीश्वराः
तेषु सर्वेषु योगीन्द्रं पङ्गुंशकटसंस्थितम् । रैक्काभिधानं सर्वेषां धर्माणामेकसंश्रयम्
ब्रह्मज्ञानैकनिलयं सयुग्वानं गवेषय । अन्विष्य तूर्णंमत्प्रीत्यै पुनरागच्छ सारथे !॥
स तथेति विनिर्गत्य वेगवद्रथसंस्थितः । सर्वत्रान्वेषयामास रैक्वंब्रह्मविदंमुनिम्
गुहासु पर्वतानाञ्च मुनीनामाश्रमेषु च । सञ्चचार महीं कृत्स्नां तत्र तत्र गवेषयन्

अन्विष्य विविधान्देशान्सारथिस्त्वरया सह ।
क्रमान्महर्षिसम्बाधं गन्धमादनमन्वगात् ॥ ८३ ॥

मार्गमाणःस तत्रापि तं ददर्श मुनीश्वरम् । कण्डूयमानंपामानंशकटीयस्थलस्थितम्
अद्वैतं निष्कलं ब्रह्म चिन्तयन्तं निरन्तरम् । तं दृष्ट्वासारथिस्तत्रसयुग्वानंमहामुनिम्
रैक्कोऽयमितिसञ्चिन्त्य तमासाद्य प्रणम्यच । विनयान्मुनिमप्राक्षीदुपविश्यतदन्तिके
सयुग्वान् रैक्कनामा च ब्रह्मन्कि वै भवानिति ।
तस्य वाक्यं समाकर्ण्य स मुनिः प्रत्यभाषत ॥ ८७ ॥
अहमेव हि सयुग्वान् रैक्कनामेति वै तदा । इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यमिङ्गितैर्बहुभिस्तथा
कुटुम्बभरणार्थाय धनेच्छामवगम्य च । सर्वं न्यवेदयद्राज्ञे निवृत्तो गन्धमादनात्
जानश्रुतिर्निशम्याथ सारथेर्वाक्यमादरात् । षट्शतानिगवाश्चापिनिष्कभारंधनम्यच
रथं चाश्वतरीयुक्तं समादाय त्वरान्वितः । पौत्रायणःसराजर्षिस्तं रक्वं प्रतिचक्रमे
गत्वा च वचनं प्राह तं रैक्वं स महीपतिः । भगवन्रैक्क सयुग्वन्मद्दत्तं प्रतिगृह्यताम्
षट्शतानि गवाश्चापि निष्कभारं धनस्य च । रथं चाश्वरीयुक्तं प्रतिगृह्णीष्वमामकम्
गृहीत्वा सर्वमेतत्तु भो ब्रह्मन्ननुशाधिमाम् । अद्वतब्रह्मविज्ञानं मह्यं समुपदिश्यताम्
इतितस्यवचःश्रुत्वा सस्पृहश्च ससंभ्रमम् । रैक्कःप्रत्याह सयुग्वाञ्जानश्रुतिमरिन्दमम्

रैक्क उवाच

एता गावस्तवैवास्तुनिष्कभारस्तथा रथः । किमल्पेन ममानेन बहुकल्पेषु जीवतः
न मे कुटुम्बनिर्वाहे पर्याप्तमिदमञ्जसा । एवं शतगुणश्चापि यदि दत्तन्त्वया मम
नालं तदपि राजेन्द्र! कुटुम्बभरणाय वै । इति रैक्कवचःश्रुत्वा जानश्रुतिरभाषत ॥

जानश्रुतिरुवाच

त्वयोपदिश्यमानस्य ब्रह्मज्ञानस्य वै मुने । न हि मूल्यमिदं ब्रह्मन्गोधनं रथ एव च
प्रतिगृह्णीष्व वा नैव ममैतत्तु गवादिकम् । निष्कलाद्वैतविज्ञानं ब्रह्मन्नुपदिशस्व मे
तदाकर्ण्य वचस्तस्य सयुग्वान्वाक्यमब्रवीत् ।

रैक्क उवाच

निर्वेदो यस्य संसारे तथा वै पुण्यपापयोः ॥ १०१ ॥
प्रारब्धयोर्विनाशश्च स वै ज्ञानोपदेशभाक् । तवयद्यपि संसारे निर्वेदःसमजायत ॥

तथापि पुण्यपापानां न हि नाशोऽप्यजायत। पुण्यपापौघसङ्घाश्च पुनर्जन्मनिहेतवः न हि भोगं विना तेषां नाशो भवति भूपते !। तन्नाशोपायमद्याहं तथापि प्रब्रवीमि ते यतो मां शरणंप्राप्तस्तच्छृणुष्व समाहितः। अत्र तीर्थत्रयं पुण्यंवर्ततेऽभीष्टदायकम् मुमुक्षूणां हि सर्वेषां सर्वप्रारब्धनाशनम्। एतद्धि यमुनातीर्थं गङ्गातीर्थं तथैव च गयातीर्थमिदं चापि तदेषु स्नाहि माचिरम्। सर्वप्रारब्धनाशःस्यात्तदा नैवात्रसंशयः ततस्ते शुद्धचित्तस्य ज्ञान तव दिशाम्यहम्। इत्युक्ते रैकमुनिना हर्षसम्फुल्ललोचनः ससंभ्रममुपागम्यसस्नौ तीर्थत्रयेऽपि सः। तत्तीर्थस्नानमात्रेणशुद्धचित्तोऽभवन्नृपः

उपातिष्ठत राजाऽसौ सयुग्वानं गुरुम्पुनः।

सयुग्वान् स च रकोऽपि मुनीन्द्रैरपि दुर्लभम् ॥ ११० ॥

तज्ज्ञानश्रुतये ज्ञानं कृपया समुपादिशत्। तेनोपादिष्टमात्रे तु विज्ञाने ब्रह्मरूपिणि अबाधितानुभववानभवद्राजसत्तमः। ब्रह्मरूप गतस्याऽस्य प्रसादाद्रैकयोगिनः॥ घटकुड्यकुशूलात्मा न प्रपञ्चस्समस्फुरत्। निर्भिद्य सहसा मायामभूद्ब्रह्मैव केवलम् इत्थं तीर्थत्रये स्नानाज्ज्ञानश्रुतिरहो नृपः। दुर्लभं योगिवृन्दैश्च ब्रह्मभूयत्वमाप्तवान् एवं वः कथितं विप्रास्तत्तीर्थत्रयवैभवम्। यस्त्विमं पठतेऽध्यायंतीर्थत्रितयवैभवम्

निर्भिद्याऽज्ञानतिमिरं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ११६ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येयमुनादितीर्थप्रशंसायांज्ञानश्रुतिज्ञानावाप्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

## सप्तविंशोऽध्यायः

### कोटितीर्थप्रशंसायांकृष्णस्यमातुलवधदोषशान्तिवर्णनम्

**श्रीसूत उवाच**

यमुनायां च गङ्गायां गयायां च नरो मुदा ।
स्नानं विधाय विधिवत्कोटितीर्थं ततो व्रजेत् ॥ १ ॥

कोटितीर्थम्महापुण्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम् । सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम्
दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम् । महाविघ्नप्रशमनम्महाशान्तिकरं नृणाम्

स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम् ।
लीलया धनुषःकोट्या स्वयं रामेण निर्मितम् ॥ ४ ॥

पुरा दाशरथी रामो निहत्ययुधि रावणम् । ब्रह्महत्याविमोक्षाय गन्धमादनपर्वते
प्रातिष्ठिपल्लिङ्गमेकं लोकानुग्रहकाम्यया । लिङ्गस्यास्याभिषेकाय शुद्धंवारिगवेषयन्
नाविन्दतजलन्तत्रपार्श्वे दशरथात्मजः । लिङ्गाभिषेकयोग्यं चजलंकिमितिचिन्तयन्
नवेन वारिणा लिङ्गं स्नापनीयं मयेति सः । निश्चित्य मनसातत्रधनुष्कोट्यारघूद्वहः
बिभेदधरणींशीघ्रं मनसा जाह्नवीं स्मरन् । रामकार्मुककोटिःसा तदाप्रापरसातलम्
तत उद्धारयामास तद्धनुर्धन्विनां वरः । धनुष्युद्धृयमाणे तु राघवेण महीतलात्
राघवेणस्मृता गङ्गा निर्ययौ विवरात्ततः । वारिणा तेन तल्लिङ्गमभ्यषिञ्चद्रघूद्वहः
रामकार्मुककोट्यै च यतस्तन्निर्मितम्पुरा । अतः कोटिरितिख्यातं तत्तीर्थं भुवनत्रये
यानि यानीह तीर्थानि सन्ति च गन्धमादने । प्रथमं तेषुतीर्थेषुस्नात्वाविगतकल्मषः

शेषपापविमोक्षाय स्नायात्कोटौ नरस्ततः ।
तीर्थान्तरेषु स्नानेन यः पापौघो न नश्यति ॥ १४ ॥
अनेकजन्मकोटीभिरर्जितो ह्यस्थिसंस्थितः ।
विनश्यति स सर्वोऽपि कोटिस्नानान्न संशयः ॥ १५ ॥

यदि हि प्रथमं स्नायादत्र कोटौ नरो द्विजाः !।
तस्य मुक्तस्य तीर्थानि व्यर्थान्येवापराणि हि ॥ १६ ॥

ऋषय ऊचुः

सूतसर्वार्थतत्त्वज्ञव्यासशिष्यमुनीश्वर! । अस्माकंसंशयंकश्चिच्छिन्धिपौराणिकोत्तम
कोटौ स्नातस्य मर्त्यस्य यदि तीर्थान्तरं वृथा ।
किमर्थं धर्मतीर्थादि तीर्थेषु स्नान्ति मानवाः ॥ १८ ॥
तीर्थानि तानि सर्वाणि समतिक्रम्य मानवाः ।
अत्रैव कोटौ किं स्नानं न कुर्वन्ति हि तद्वद ॥ १९ ॥

श्रीसूत उवाच

अहोरहस्यं युष्माभिः पृष्टमेतन्मुनीश्वराः । नारदायपुराशम्भुःपृच्छतेयत्किलाऽब्रवीत्
तद्ब्रवीमि मुनिश्रेष्ठाःश्रृणुध्वंश्रद्धयासह । गच्छन्यदृच्छयावापितीर्थयात्रापरोऽपिवा
मार्गमध्येद्विजश्रेष्ठास्तीर्थं देवालयं तथा । दृष्ट्वा श्रुत्वापि वा मोहान्नसेवेत नराधमः
निष्कृतिस्तस्यनास्तोतिप्राब्रुवन्परमर्षयः । सेतुंगच्छंस्ततोऽन्येषुनस्नायाद्यदिमानवः
तीर्थादिक्रमदोषैः स बहिष्कार्योऽन्त्यवद् द्विजैः ।
अतः स्नातव्यमेवैषु चक्रतीर्थादिषु द्विजाः ॥ २४ ॥
स्नात्वा चैतेषु तीर्थेषु शेषपापविमुक्तये । प्रयतैर्मनुजैरत्र स्नातव्यं कोटितीर्थके ॥
कोटौ चाभिषवं कृत्वा न तिष्ठेद्गन्धमादने । निवर्तेत्तत्क्षणादेव निष्पापोगन्धमादनात्
रामोऽपि हिपुराकोटितीर्थसम्भूतवारिणा । रामनाथेऽभिषिक्तेतुस्वयंस्नात्वाचतत्रवै
ब्रह्महत्याविमुक्तस्संस्तत्क्षणादेवसानुजः । आरूढपुष्पकोयोध्यांप्रययौकपिभिर्वृतः
अतः कोटौ नरःस्नात्वा पापशेषविमोचितः । निवर्तेत्तत्क्षणादेव रामोदाशरथिर्यथा
एतद्धितीर्थप्रवरं सर्वलोकेषु विश्रुतम् । रामनाथाभिषेकाय निर्मितं राघवेण यत्
स्वयम्भगवती यत्र सन्निधत्ते च जाह्नवी । तारकब्रह्मणा यत्र रामेण स्नातमादरात्
तस्य वै कोटितीर्थस्य महिमा केन कथ्यताम् ।
यत्र स्नात्वा पुरा कृष्णो लोकसङ्ग्रहणेच्छया ॥ ३२ ॥

मातुलस्य तु कंसस्यवधदोषाद्विमोचितः । तस्यवै कोटितीर्थस्य महिमाकेनकथ्यते
ऋषय ऊचुः
किमर्थमवधीत्कंसं मातुलं यदुनन्दनः । यद्दोषशान्तये सूत सस्नौ कोटौ महात्मनः
श्रीसूत उवाच
वसुदेव इति ख्यातः शूरपुत्रो यदोःकुले । आसीत्सदेवकसुतांदेवकीमिति विश्रुताम्
उद्वाह्य रथमारूढः स्वपुरं प्रस्थितः पुरा । अथ सूतोबभूवाऽथ कंसो ह्यानकदुन्दुभेः
अशरीरा तदा वाणी कंसं सारथिमब्रवीत् । भगिनीं च तथा भामं वाहयन्तं रथोत्तमे
यामिमां वाहयस्यत्र रथेन त्वमरिन्दम ।। अस्यास्त्वामष्टमोगर्भोवधिष्यतिनसंशयः
इत्याकर्ण्य वचो दिव्यं कंसः खड्गं प्रगृह्यच । स्वसारंहन्तुमुद्योगंचकारद्विजपुङ्गवाः
ततः प्रोवाच तं कंसं वसुदेवः ससान्त्वयन् ।

वसुदेव उवाच

अस्यां प्रसूतान्दास्यामि तुभ्यं कंस! सुतानहम् ॥ ४० ॥
एनां स्वसारं मा हिंसीर्नाऽस्यास्ते भीतिरस्ति हि ।
श्रुत्वा तद्वचनं कंसो निवृत्तस्तद्वधात्तदा ॥ ४१ ॥

देवकीवसुदेवाभ्यां सहितः स्वपुरं ययौ । पादावसक्तनिगडौ देवकीवसुदेवकौ ॥
स्थापयामास दुष्टात्मा कंसः कारागृहे तदा । ततःकालेन महता वसुदेवाद्धि देवकी
षट्पुत्राञ्जनयामास क्रमेण मुनिपुङ्गवाः ।।
जातांस्तान्वसुदेवेन दत्तान्कंसोऽपि सोऽवधीत् ४४ ॥

हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्युदरजन्मसु । कंसेन क्रूरमतिना निष्कृपेण द्विजोत्तमाः ॥
शेषोऽभूत्सप्तमो गर्भो देवक्या जठरे तदा । मायादेवीततोगर्भं तं वै विष्णुप्रचोदिता
नन्दगोपगृहस्थायां रोहिण्यां समवेशयत् । देवक्याः सप्तमोगर्भःपतितोजठरादिति
लोके प्रसिद्धिरभवन्महतीविष्णुलीलया । देवकी जठरेपश्चाद्विष्णुगर्भत्वमाप्तवान् ॥
ततो दशसु मासेषु गतेषु हरिरव्ययः । देवकी जठराज्जज्ञे कृष्णइत्यभिविश्रुतः ॥
शङ्खचक्रगदाखड्गविराजितचतुर्भुजः । किरीटीवनमाली च पित्रोः शोकविनाशनः

तं दृष्ट्वा हरिमीशानं तुष्टावाऽऽनकदुन्दुभिः ॥ ५१ ॥

वसुदेव उवाच

विश्वं भवान्विश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्य योनिस्त्वयि विश्वमास्ते ।
महान्प्रधानश्च विराट्स्वराट् च सम्राडसि त्वं भगवन्समस्तम् ॥ ५२ ॥
एवं जगत्कारणभूतधाम्ने नारायणायाऽमितविक्रमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोनमः कृत्रिममानुषाय ॥ ५३ ॥

स्तुवन्तमेवं शौरिं तं वसुदेवं हरिस्तदा । अवोचत्प्रीणयन्तश्च देवकीञ्च द्विजोत्तमाः

हरिरुवाच

अहं कंसं वधिष्यामि माभीर्वां पितराविति ।
नन्दगोपस्य गृहिणी यशोदाऽजनयत्सुताम् ॥
मम मायां पूर्वदिने सर्वलोकविमोहिनीम् ॥ ५५ ॥

मां तस्याःशयनेन्यस्ययशोदायाःसुतांतुताम् । आदायदेवकीशय्यांप्रापयस्वयदूत्तम!
एवमुक्तःस कृष्णेन तथैव ह्यकरोद्द्विजाः । रुरोद मायातनया देवकीशयनेस्थिता
अथबालध्वनिंश्रुत्वा कंसःसंकुलमानसः । सूतिकागृहमागम्य तामादाय चदारिकाम्
शिलायां पोथयामास निर्दयो निरपत्रपः । अथतद्धस्तमाच्छिद्य सायुधाष्टमहाभुजा

महादेव्यब्रवीत्कंसं समाहूयाऽतिकोपना ।

मायोवाच

अरे रे कंस ! पापात्मन् ! दुर्बुद्धे ! मूढचेतन ! ॥ ६० ॥

यत्रकुत्राऽपि शत्रुस्ते वर्तते प्राणहारकः । मार्गयस्वात्मनो मृत्युं तंशत्रुकंस!माचिरम्
इतीरयित्वासादेवीदिव्यस्थानान्यवाप्यच । लब्धपूजामनुष्येभ्योबभूवाभीष्टदायिनी
श्रुत्वासदेवीवचनंकंसोऽपिभृशमाकुलः । बालग्रहान्पूतनादीन्स्वान्तकं बाधितुंरिपुम्

प्रेषयामास देशेषु शिशूनन्यांश्च बाधितुम् ।
ते च बालग्रहाः सर्वे प्रययुर्नन्दगोकुलम् ॥ ६४ ॥

हताश्च कृष्णेन तदाप्रययुर्यमसादनम् । ततःकतिपयाहस्सु गतेषु द्विजपुङ्गवाः !॥

रामकृष्णौ व्यवर्द्धेतांगोकुले बालकौ तदा । अनेकबालक्रीडाभिश्चिक्रीडतुररिन्दमौ
कश्चित्कालं वत्सपालौ वेणुनादमकुर्वताम् ।
कश्चित्कालश्च गोपालौ गुञ्जातापिच्छभूषितौ ॥ ६७ ॥
रेमाते बहुकालं तौ गोकुले रामकेशवौ । कंसःकदाचिदक्रूरं गोकुले रामकेशवौ ॥
प्रेषयामासविप्रेन्द्राः समानयितुमञ्जसा । आनयामास चाक्रूरो रामकृष्णौसगोकुलात्
मथुरां कंसनिर्देशात्स्वर्णतोरणराजिताम् ॥ ६६ ॥
ततःसमानीय स रामकेशवौ ययौ पुरीं गान्दिनिजस्तदग्रे ।
दृष्ट्वा च कंसं विनिवेद्य कार्यं तस्मै स्वगेहं प्रविवेश पश्चात् ॥ ७० ॥
अथाऽपराह्णे वसुदेवपुत्रावन्वेयरिष्टैः सहगोपपुत्रैः ।
उपेयतुःसालनिखातयुक्तां सगोपुराढ्यां मथुरापुरीं तौ ॥ ७१ ॥
स्तोत्राणि शृण्वन्पुरयौवतानि कृष्णस्तु रामेण सहैव गत्वा ।
धनुर्निवेशं सहसैव तत्र ददर्श चापञ्च महद् दृढज्यम् ॥ ७२ ॥
विद्राव्य सर्वानपि चापपालान्धनुः समादाय सलीलयाऽऽशु ।
मौर्व्यां नियोक्तुं नमयाञ्चकार तदन्तरे भग्नमभूद् द्विधैव ॥ ७३ ॥
कोदण्डभङ्गोत्थितशब्दमाशु श्रुत्वा भिया तान्बलिनो निहन्तुम् ।
निजघ्नतुस्तौ प्रतिगृह्य खण्डौ चापस्य पालान्बलिनो द्विजेन्द्राः ॥ ७४ ॥
ततःकुवलयापीडं गजं द्वारिस्थितं क्षणात् ॥ ७५ ॥
निहत्य रामकृष्णौतौ महाबलपराक्रमौ । तस्य दन्तौसमुत्पाट्य दधानौकरयोर्द्वयोः
अंसेनिधाय तौदन्तौ रङ्गंप्रययतुःक्षणात् । निहत्य मल्लश्चाणूरंमुष्टिकंतौ बलन्तथा
अन्यांश्च मल्लप्रवराञ्जिन्यतुर्यमसादनम् । समारुरोहतुस्तूर्णं तुङ्गमञ्चञ्च तौ तदा
तत्र तुङ्गे समासीनमासने कंसमेत्य तौ । तस्थतुस्तं तृणीकृत्य सिंहौ क्षुद्रमृगं यथा
ततःकंसंसमाकृष्य कृष्णोमञ्चोपरिस्थितम् । पादौगृहीत्वावेगेनभ्रामयामासचाम्बरे
ततस्तं पातयामास स भूमौ गतजीवितम् ।
कंसभ्रातॄन्बलोऽप्यष्टौ निजघ्नेमुष्टिना द्विजाः ॥ ८१ ॥

एवं निहत्य तं कंसं कृष्णःपरबलार्दनः । पितरौ मोचयामास निगडादतिदुःखितौ
सर्वानाश्वासयामास बलेन सह माधवः । श्रीकृष्णेन हतं कंसं श्रुत्वा प्रापुःपुरीं तदा
बान्धवा मथुरायां ये पूर्वं कंसेन बाधिताः ।
उग्रसेनं तथा राज्ये स्थापयामास केशवः ॥ ८४ ॥
असहिष्णुर्द्विजाःपित्रोरेवं कंसकृतागसम् । जघान मातुलं कंसं देवब्राह्मणकण्टकम्
ततःकदाचित्कृष्णोऽयमात्मानंद्रष्टुमागतान् । नारदादीन्मुनीन्सर्वानिदंपप्रच्छसत्तमः

श्रीकृष्ण उवाच

मयाऽयंमातुलोविप्राहतःकंसोऽतिपापकृत् । मातुलस्यवधेदोषःप्रोच्यतेशास्त्रवित्तमैः
मायश्चित्तमतो ब्रूत तद्दोषविनिवृत्तये । अवोचन्नारदस्तत्र कृष्णमद्भुतविक्रमम्
वाचा मधुरया विप्रा भक्तिप्रणयपूर्वकम् ।

नारद उवाच

नित्यशुद्धश्च मुक्तश्च बुद्धश्चैव भवान्सदा ॥ ८६ ॥
सच्चिदानन्दरूपश्च परमात्मासनातनः । पुण्यंपापञ्च ते नास्ति कृष्ण ! यादवनन्दन!
तथाऽपि लोकशिक्षार्थं भवता गरुडध्वज । प्रायश्चित्तन्तु कर्तव्यंविधिनाऽनेनमाधव
लोकसंग्रहणं तावत्कर्तव्यं भवताऽधुना । रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥
रामेण स्थापितं लिङ्गं रामनाथाभिधंपुरा । तस्याभिषेकतोयार्थं धनुष्कोट्यारघूद्वहः
गांभित्वोत्पादयामासतीर्थंकोटीतिविश्रुतम् । तव पूर्वावतारेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा
ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं निर्मितं स्वयमेवयत् । तत्र स्नानं कुरुष्वत्वं धर्म्यंपापविनाशने
तेनतेमातुलवधाद्दोषः शीघ्रं विनश्यति । कोटितीर्थे हरेःस्नानं ब्रह्महत्यादिशोधकम्
स्वर्गमोक्षप्रदं पुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम् ।
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं नारदस्य स माधवः ॥ ९७ ॥
विसृज्यतानृषीन्सर्वांस्तस्मिन्नेव क्षणे द्विजाः । रामसेतौययौतूर्णं स्वदोषपरिशुद्धये
दिनैःकतिपयैर्गत्वा कोटितीर्थंयदूद्वहः । स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वंच दत्त्वा दानान्यनेकशः
समातुलवधोत्पन्नदोषेभ्यो मुमुचे क्षणात् । निषेव्य रामनाथं च स्वपुरं मथुरां ययौ

श्रीसूत उवाच

एवं प्रभावं पुण्यञ्च कोटितीर्थं मुनीश्वराः। नाऽनेन सदृशंतीर्थमन्यदस्ति महीतले
अत्र स्नानात्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुशिवा द्विजाः !।
प्रीताः स्युरन्ये देवाश्च नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ १०२ ॥
एवंवःकथितंचित्रं कोटितीर्थस्यवैभवम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्योमुच्यतेमानवोभुवि
श्रुत्वेमं पुण्यमध्यायं पठित्वा चमुनीश्वराः। ब्रह्महत्यादिभिः सत्यंमुच्यतेपातकैर्नरः

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येकोटितीर्थप्रशंसायां कृष्णस्यमातुलवधदोषशान्तिर्नाम-सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

## अष्टाविंशोऽध्यायः

### साध्यामृततीर्थप्रशंसायांपुरूरवश्शापविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

कोटितीर्थंमहापुण्यं सेवित्वाकेवलंनरः। स्नातुंजितेन्द्रियस्तीर्थंततःसाध्यामृतंव्रजेत्
साध्यामृतं महातीर्थं महापुण्यफलप्रदम्। महादुःखप्रशमनं गन्धमादनपर्वते ॥ २ ॥
अस्ति पापहरं पुंसां सर्वभीष्टप्रदायकम्।
यत्र स्नात्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात ॥ ३ ॥
तपसाब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वापुनः। गतिं तां न लभेन्मर्त्यो यांसाध्यामृतमज्जनात्
स्पृष्टानि येगामङ्गानि साध्यामृतजलैःशुभैः। तेषां देहगतंपापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
साध्यामृतजले यस्तु मावमर्षणकृन्नरः। स विधूयेहपापानि विष्णुलोके महीयते
पूर्ववयसिपापानिकृत्वाकर्माणियोनरः। पश्चात्साध्यामृतं सेवेत्पश्चात्तापसमन्वितः
अन्तेवयसिमुक्तःस्यात्सनरो नात्रसंशयः। साध्यामृतेनरःस्नात्वा देहबन्धाद्विमुच्यते

साध्यामृतजलेस्नातामनुष्याःपापकर्मिणः । अनेकक्लेशघोराणिनरकाणिनयान्तिहि
साध्यामृतजलेस्नानात्पुंसां याम्याद्गतिर्द्विजाः । नसागतिर्भवेद्यज्ञैर्नवेदैःपुण्यकर्मभिः
यावदस्थि मनुष्याणां साध्यामृतजले स्थितम् ।
तावद्वर्षाणि तिष्ठन्ति शिवलोके सुपूजिताः ॥ ११ ॥
अपहृत्यतमस्तीव्रं यथाभात्युदयेरविः । तथासाध्यामृतस्नायी भित्त्वापापानिराजते
वाञ्छिताँल्लभते कामानत्र स्नातोनरःसदा । यत्रस्नात्वा महापुण्ये पुराराजापुरूरवाः
विप्रयोगं सहोर्वश्या जहौ तुम्बुरुशापजम् ।

ऋषय ऊचुः

कथं सूत! महाभाग! सहोर्वश्याऽमरस्त्रिया ॥ १४ ॥
प्रथमं लब्धवान्योगं मर्त्योराजापुरूरवाः । विप्रयोगं सहोर्वश्या जहौ तुम्बुरुशापजम्
हेतुना केन राजानं शशाप तुम्बुरुर्मुनिः । एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मुनिपुङ्गव

श्रीसूत उवाच

आसीत्पुरूरवा नामशक्रतुल्यपराक्रमः । राजराजसमो राजा पुरा ह्यमरपूजितः ॥ १७॥
धर्मतःपालयामास मेदिनीं सपुरूत्तमः । ईजे स बहुभिर्यज्ञैर्ददौ दानानि सर्वदा
प्रशासति महीं सर्वां राज्ञितस्मिन्महामतौ । मित्रावरुणशापेन भुवंप्रापोर्वशीद्विजाः
सा चचारोर्वशी तत्र राज्ञस्तस्य पुरान्तिके ।
कोकिलालापमधुरवीणयोपवने जगौ ॥ २० ॥
स राज्ञोपवने गन्तुं कदाचिद्धृतकौतुकः । आरूढतुरगः प्रायाल्ललनाशतसंवृतः
तादृशीमुर्वशीं तत्र करसम्मितमध्यमाम् । उवाचवचनंराजाऽसौ भार्यामम भवेति वै
साऽपि कामातुरा तत्र राजानं प्रत्यभाषत । भवत्वेवं नरश्रेष्ठ! समयं यदि मे भवान्
करिष्यतितदाभ्याशेवत्स्यामिधृतकौतुका । करिष्येसमयंसुभ्रूतवाहमितिसोऽब्रवीत्
अथोर्वशी बभाषेतं पुरूरवसमुत्सुका । पुत्रभूतं मम यदि रक्षस्युरणकद्वयम्
न नग्नं दृश्यसे राजन्द्रक्ष्यसे यदि वैतथा । नोच्छिष्टं ममस्याश्चेत्तदा वत्स्येतवान्तिके
घृतमात्राशना चाऽहं भविष्यामि नृपोत्तम !।

एवमस्त्विति राजोक्त्वा तां निनाय निजं गृहम् ॥ २७ ॥
अलकायां स भूपालस्तथा चैत्ररथेवने । रेमे सरस्वतीतीरे पद्मखण्डमनोरमे
एकषष्टिंस वर्षाणि रममाणस्तया नयन् । तेनोर्वशी प्रतिदिनं वर्धमानानुरागिणी
स्पृहां न देवलोकेपि चकार तनुमध्यमा । नाभवद्रमणीयोऽसौदेवलोकस्तया विना
अतस्तामानयिष्यामि देवलोकमिति द्विजाः !।
विश्वावसुर्विचार्यैवं भूर्लोकमगमत्क्षणात् ॥ ३१ ॥
उर्वश्याः समयं राज्ञा विश्वावसुरयंसह । विदित्वा सह गन्धर्वैः समवेतोनिशान्तरे
उर्वश्याःशयनाभ्याशाज्जग्राहोरणकञ्जवात् । आकाशेनीयमानस्यतस्यश्रुत्वोर्वशीतदा
अब्रवीन्मत्सुतः केनगृह्यते त्यज्यतामयम् । अनाथा शरणं यामि कं नरंगतचेतना
पुरूरवाः समाकर्ण्य वाक्यं तस्यानिशान्तरे । मां न नग्नंनिरीक्षेत देवीतिनययौतदा
अथान्यमप्युरणकं गन्धर्वाः प्रतिगृह्यते । ययुस्तयोर्द्वयोश्चापि शब्दंश्रुत्वावचोर्वशी
अनाथाया मम सुतो गृह्यते तस्करैरिति । चुक्रोश देवी परुषं कं यामि शरणं नरम्
अमर्षवशमापन्नं श्रुत्वा तद्वचनं नृपः । तिमिरेणावृतं सर्वमिति मत्वा स खड्गधृक्
दुष्ट दुष्ट कुतोयासीत्यभ्यधावद्वचोवदन् । तावत्सौदामिनीदीप्तागन्धर्वैर्जनिताभृशम्
तत्प्रभामण्डलैर्देवी राजानं विगताम्बरम् । दृष्ट्वा प्रवृत्तसमया तत्क्षणादेव निर्ययौ
त्यक्त्वाह्यरणकौतत्र गन्धर्वाअपिनिर्ययुः । राजामेषौसमादाय हृष्टःस्वशयनान्तिकम्
आगतो नोर्वशी तत्र ददर्शायतलोचनाम् । ताञ्चापश्यद्विवस्त्रश्च बभ्रामोन्मत्तवद्भुवि
कुरुक्षेत्रं गतो राजातटाके पद्मसंकुले । चतुर्भिरप्सरस्त्रीभिः क्रीडमानां ददर्शताम्
हे जाये तिष्ठ मनसा घोरेति व्याहरन्मुहुः । एवं बहु प्रकारं वै ससूक्तं प्रलपन्नृपः
अब्रवीदुर्वशीतञ्च क्रीडन्ती साप्सरोगणैः । महाराजालमेतेन चेष्टितेन तवानघ!
त्वत्तो गर्भिण्यहंपूर्वमब्दान्तेभवतात्र वै । आगन्तव्यंकुमारस्तेभविष्यत्यतिधार्मिकः
एकां विभावरीं राजंस्त्वया वत्स्यामि वै तदा ।
इत्युक्तो नृपतिर्हृष्टः स्वपुरीं प्राविशद् द्विजाः !॥ ४७ ॥
तासामप्सरसां सा तु कथयामास तं नृपम् । अयं स पुरुषोश्रेष्ठोयेनाहं कामरूपिणा

एतावन्तं महाकष्टमनुरागवशातुरा । उषिताऽस्मि सहाऽनेन सख्योमृपतिना चिरम्

एवमुक्तास्ततः सख्यस्तामूचुः साधुसाध्विति ।

अनेन साकं स्थास्यामः सर्वकालं वयं सखि !॥ ५० ॥

इत्यूचुरुर्वशीं तत्रसखीमप्सरसस्तदा । अब्देऽथ पूर्णेराजाऽपि तदाकान्तिकमाययौ
आगतन्नृपतिं दृष्ट्वा पुरूरवसमुर्वशी । कुमारमायुषं तस्मै ददौ सम्प्रीतमानसा
तेन साकं निशामेकामुषिता सानुरागिणी । पञ्चपुत्रप्रदं गर्भं तस्मादापाऽऽशुसोर्वशी
उवाच चैनंराजानमुर्वशी परमाङ्गना । वरं दास्यन्ति गन्धर्वा मत्प्रीत्या तव भूपते!
भवताप्रार्थ्यतान्तेभ्योवरं राजर्षिसत्तम !। इत्युक्तः स तया राजा प्राहगन्धर्वसत्तमान्
अहंसम्पूर्णकोशश्चविजितारातिमण्डलः । सलोकतांविनोर्वश्याःप्राप्तव्यंनान्यदस्तिमे
अतस्तया सहोर्वश्या कालंनेतुमहंवृणे । एवमुक्ते नृपेणाऽथ गन्धर्वास्तुष्टमानसाः

अग्निस्थालीं प्रदायास्मै प्रोचुश्चैनं नृपन्तदा ।

गन्धर्वा ऊचुः

अग्निं वेदानुसारी त्वं त्रिधा कृत्वा नृपोत्तम !॥ ५८ ॥

इष्ट्वा यज्ञेन चोर्वश्याः सालोक्यंयाहिभूपते । इतीरितस्तैरादायस्थालीमग्नेर्ययौनृपः
अहोबतातिमूढोऽहमिति मध्येवनं नृपः । उर्वशीनमयालब्धावह्निस्थाल्यातुकिंफलम्

निधायैव वने स्थालीं स्वपुरं प्रययौ नृपः ।

अर्धरात्रे व्यतीतेऽसौ विनिन्द्रोऽचिन्तयत्स्वयम् ॥ ६१ ॥

उर्वशीलोकसिद्ध्यर्थं ममगन्धर्वपुङ्गवैः । अग्निस्थाली सम्प्रदत्तासात्यक्तामयावने
आहरिष्येपुनस्थालीमित्युत्थाययौवनम् । नाग्निस्थालींददर्शाऽसौवनेतत्रपुरूरवाः
शमीगर्भमथाश्वत्थमग्निस्थानेविलोक्यसः व्यचिन्तयन्मयास्थालीनिक्षिप्तात्रवनेपुरा
सा चाऽश्वत्थः शमीगर्भः समभूदधुनात्विह । तस्मादेनं समादाय वह्निरूपमहंपुरम्

गत्वा कृत्वाऽरणीं सम्यक् तदुत्पन्नाग्निमादरात् ।

उपास्यामीति निश्चित्य स्वपुरं गतवान्नृपः ॥ ६६ ॥

रमणीयारणीं चक्रे स्वाङ्गुलैः प्रमितामसौ । निर्माणसमयेराजागायत्रीमजपद्द्विजाः

गायत्र्याः पठ्यमानाया यानिसन्त्यक्षराणि हि । तावदङ्गुलिमर्यादामकरोदरणींनृपः
तत्रनिर्मथनादाग्निित्रयमुत्पाद्य भूपतिः । उर्वशीलोकसम्प्राप्तिफलमुद्दिश्यकाङ्क्षितम्
वेदानुसारी नृपतिर्जुहावाग्नित्रयंमुदा । तेनैव चाग्निविधिना बहून्यज्ञानथातनोत्
तेन गन्धर्वलोकांश्च सम्प्राप्य जगतीपतिः । सहोर्वश्या चिरंरेमेदेवलोकेद्विजोत्तमाः
अथ सर्वामरोपेतः कदाचिद्बलवृत्रहा । नृत्यं सुराङ्गनानां वै व्यलोकयत संसदि
पुरूरवा नृपोऽप्यायात्तदा देवेन्द्रसंसदम् । द्रष्टुंसुराङ्गनानृत्यंमनोहारिदिवौकसाम्
एकैकशस्ताः शक्रस्य ननृतु. पुरतोऽङ्गनाः । अथोर्वशी समागत्य ननर्त पुरतो हरेः
नृत्याभिनयसामर्थ्यगर्वयुक्ता ततोर्वशी । तं पुरूरवसं दृष्ट्वा जहासाऽतिमनोहरा

जहास तत्र राजाऽपि तां विलोक्य ततोर्वशीम् ।
हासस‌ङ्कुपितस्तत्रनाट्याचार्योऽथ तुम्बुरुः ॥ ७६ ॥
शशाप तावुभौ कोपादुर्वशीञ्च नृपोत्तमम ।

तुम्बुरुरुवाच

अनेकदेवसम्पूर्णसभायामत्र यत्कृतम् ॥ ७७ ॥
युवाभ्यां हसितं नृत्यमध्ये निष्कारणं वृथा ।
तस्माज्झटिति राजेन्द्र! वियोगो युवयोःक्षणात् ॥ ७८ ॥

भूयादिति शशापैनं सर्वदैवतसन्निधौ । अथ शप्तो नृपस्तत्र नाट्याचार्येण दुःखितः
जगाम शरणंतत्र पाहिपाहीतिवज्रिणम् । उवाच दीनया वाचा पुरुहूतं पुरूरवाः

उर्वश्या सह सालोक्यसिद्धयर्थमहमिष्टवान् ।
अतस्तस्य वियोगो मेऽसह्यःस्यात्पाकशासन !॥ ८१ ॥

इत्युक्तवन्तं तं प्राह सहस्राक्षःशचीपतिः । शापमोक्षं प्रवक्ष्यामिमाभैषीस्त्वंनृपोत्तम
दक्षिणाम्भोनिधौ पुण्येगन्धमादनपर्वते । साध्यामृतमितिख्यातंतीर्थमस्तिमहत्तरम्

सेवितं सर्वदेवैश्च सिद्धचारणकिन्नरैः ।
सनकादिमहायोगिमुनिवृन्दनिषेवितम् ॥ ८४ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं पुंसां सर्वपापविमोक्षदम् । अस्तितीर्थं भवांस्तत्र गच्छतुत्वरयानृप

सर्वेषाममृतं स्नानादत्र साध्यं यतस्ततः । साध्यामृतमितिख्यातसर्वलोकेषुविश्रुतम्

तत्र स्नानात्तवोर्वश्याः पुनर्योगो भविष्यति ।

मम लोके निवासश्च भविष्यति न संशयः ॥ ८७ ॥

इतिप्रतिसमादिष्टो नृपःसम्प्रीतमानसः । साध्यामृतं महातीर्थंसमुद्दिश्यययौक्षणात्

सस्नौसाध्यामृते तत्र महापातकनाशने । तत्रस्नानान्नरोविप्राः सद्य:शापेन मोचितः

स्नानानन्तरमेवासावुर्वश्या सह सङ्गतः ।

तया सह विमानस्थः प्रययावमरावतीम् ॥ ६० ॥

रेमे पुनस्तया सार्द्धं देववद्देवमन्दिरे । एवं प्रभावं तत्तीर्थं साध्यामृतमनुत्तमम् ॥

पुरूरवाःसहोर्वश्या यत्रस्नानेन सङ्गतः । अतोऽत्र तीर्थे यःस्नायान्महापातकनाशने

वाञ्छिताँल्लभते कामान् यास्यति स्वर्गमुत्तमम् ।

निष्कामः स्नाति चेद्विप्रा मोक्षमाप्नोति मानवः ॥ ६३ ॥

इमं पवित्रं पापघ्नमध्यायं पठते तु यः । शृणुयाद्वामनुष्योऽसौवैकुण्ठेलभतेस्थितिम्

एवं वः कथितं विप्राभवपापनाशनम् । साध्यामृतस्यतीर्थस्य विस्तराच्छ्रद्धयामया

यत्पुरा सनकादिभ्यः प्रोक्तवांश्चतुराननः ॥ ६६ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्ये साध्यामृततीर्थप्रशंसायां पुरूरवश्शापविमोक्षणंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

# एकोनत्रिंशोऽध्यायः

## सर्वतीर्थप्रशंसायांसुचरितस्यसायुज्यप्राप्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

स्नात्वा साध्यामृतेनोर्थेनृपशापविमोक्षणे । सर्वतीर्थंततोगच्छेन्मनुजोनियमान्वितः
सर्वतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम् । महापातकयुक्तोवा मुक्तोवासर्वपातकः ॥
शुद्ध्येत तत्क्षणादेव सर्वतीर्थनिमज्जनात् । तावन्सर्वाणिपापानिदेहेतिष्ठन्तिसुव्रताः
न यावत्सर्वतीर्थेऽस्मिन्निमज्जेत्पापपूरुषः ।
स्नानार्थं सर्वतीर्थेऽस्मिन्दृष्ट्वा यान्तं द्विजा नरम् ॥ ४ ॥
वेपन्ते सर्वपापानि नाशोऽस्माकंभवेदिति । गर्भवासादिदुःखानितावद्यातिनरोभुवि
न स्नायात्सर्वतीर्थेस्मिन्यावद्ब्राह्मणपुङ्गवाः । अनुष्ठितैर्महायागैस्तथातीर्थनिषेवणैः
गायत्र्यादि महामन्त्रजपैर्नियमपूर्वकम् । चतुर्णामपि वेदानामावृत्त्या शतसङ्ख्यया
शिवविष्ण्वादिदेवाना पूजयाभक्तिपूर्वकम् । एकादश्यादितिथिषु तथैवाऽनशनेन च
यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभेदत्र मज्जनात् ।

ऋषय ऊचुः

सर्वतीर्थमितिख्यातिः सूताऽस्य कथमागता ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्माकमिदं पुण्यं विस्तराद्वच्छृण्वताम्मुने ।

श्रीसूत उवाच

पुरा सुचरितोनाम मुनिर्नियमसंयुतः ॥ १० ॥
भृगुवंशसमुद्भूतो जात्यन्धो जरयातुरः । अशक्तस्तीर्थयात्रायां नेत्राभावेन सद्विजः
सर्वेषामेव तीर्थानां स्नातुकामो महामुनिः । दक्षिणाम्बुनिधौपुण्यंगन्धमादनपर्वतम्
गत्वा शङ्करमुद्दिश्य तपस्तेपे सुदुष्करम् । त्रिकालमर्चयञ्शम्भुमुपवासीजितेन्द्रियः
तथात्रिषवणस्नानात्तथैवाऽतिथिपूजकः । शिशिरेजलमध्यस्थोग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यगः

वर्षास्वासारसहनश्चाभक्षो वायुभोजनः । उद्धूलनन्त्रिपुण्ड्रं च भस्मनाधारयन्सदा
जाबालोपनिषद्रीत्या तथारुद्राक्षधारकः । एवमुग्रं तपश्चक्रे दशसम्वत्सरन्द्विजः ॥
तपसा तस्यसन्तुष्टः शङ्करश्चन्द्रशेखरः । प्रादुरासीन्मुनेस्तस्य द्विजाःसुचरितस्य वै
समारुह्य महोक्षाणं भूतवृन्दनिषेवितः । गिरिजार्धवपुःशूली सूर्यकोटिसमप्रभः ॥

स्वभासाभास यन्सर्वा दिशो वितिमिरास्तदा ।
भस्मपाण्डुसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः ॥ १६ ॥

अनन्तादिमहानागविभूषणविभूषितः । प्रादुर्भूतस्ततःशम्भुः प्रादात्तस्य विलोचने
आत्मावलोकनार्थाय शङ्करो गिरिजापतिः । ततःसुचरितोविप्राःशम्भुनादत्तदृग्द्वयः

आलोक्य परमेशानं प्रतुष्टाव प्रसन्नधीः ।

सुचरित उवाच

जयदेव! महेशान! जय शङ्कर ! धूर्जटे !॥ २२ ॥

जय ब्रह्मादिपूज्य! त्वंत्रिपुरघ्न! यमान्तक !। जयोमेश! महादेव! कामान्तक! जयामल
जय संसारवैद्य! त्वं भूतपाल!शिवाव्यय !। त्रियम्बक! नमस्तुभ्य भक्तरक्षणदीक्षित
व्योमकेश! नमस्तुभ्यं जयकारुण्यविग्रह !। नीलकण्ठ! नमस्तुभ्यंजयसंसारमोचक!
महेश्वर! नमस्तुभ्यं परमानन्दविग्रह !। गङ्गाधर! नमस्तुभ्यं विश्वेश्वर! मृडाव्यय
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शम्भवे । शर्वायोग्राय भर्गाय कैलासपतये नमः
रक्ष मां करुणासिन्धो! कृपादृष्ट्यवलोकनात् । मम वृत्तमनालोच्यत्राहिमांकृपयाहर

श्रीसूत उवाच

इति स्तुतो महादेवस्तमेनमिदमभ्यधात् । मुनिं सुचरितं विप्रा ज्योदन्वानुमापतिः

महादेव उवाच

मुनेसुचरितायत्वं वरंवरयकाङ्क्षितम् । वरंदातुंतवायातः पुण्येऽस्मिन्नाश्रमेशुभे ॥

इतीरितो मुनिःप्राह महादेवं घृणानिधिम्

सुचरित उवाच

भगवंस्त्वं प्रसन्नो मे यदि स्याश्चन्द्रशेखर !॥ ३१ ॥

तर्हि त्वां प्रवृणोम्यद्यावरंमदभिकाङ्क्षितम् । जरापलितदेहोऽहं कुत्रचिद्गन्तुमक्षमः
सर्वतीर्थेषुचस्नातुमाकाङ्क्षा मम विद्यते । तस्मात्सर्वेषु तीर्थेषुस्नानेनमनुजोहियत्
फलं प्राप्नोति मे ब्रूहि तत्फलावाप्तिसाधनम् ।

महादेव उवाच

अहमावाहयिष्यामि तीर्थान्यत्रैव कृत्स्नशः ॥ ३४ ॥

रामस्य सेतुना पूते नगेऽस्मिन्गन्धमादने । इत्युक्त्वा स महादेवः पर्वतेगन्धमादने
तीर्थान्यावाहयामास मुनिप्रीत्यर्थमुत्तमः । ततस्सुचरित प्राह शङ्करःकरुणानिधिः
मुने!सुचरितेदं तु महापातकनाशनम् । सान्निध्यात्सर्वतीर्थानासर्वतीर्थाभिधंस्मृतम्
मयाऽत्र सर्वतीर्थाना मनसाऽऽकर्षणादिदम् ।
मानसं तीर्थमित्याख्यां लप्स्यते भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३८ ॥

अतः सुचरिताऽत्रत्वं स्नाहि सद्यो विमुक्तये । महापातकसङ्घानां दावानलसमद्युतौ
काममोहभयक्रोधलोभरोगादिनाशने । विना वेदान्तविज्ञानं सद्यो निर्वाणकारणे
जन्ममृत्य्वादिनक्रौघसंसारार्णवतारणे । कुम्भीपाकादिसकलनरकाग्निविनाशने ॥
इतीरितःसुचरितःशम्भुना मदनारिणा । सस्नौविप्रःसर्वतीर्थे महादेवस्य सन्निधौ
स्नात्वोत्थितःसुचरितोदहशेऽखिलमानवैः । जरापलितनिर्मुक्तस्तरुणोऽतीवसुन्दरः
दृष्ट्वास्वदेहसौन्दर्यं ततःसुचरितो मुनिः । श्लाघयामास तत्तीर्थं बहुधाऽन्यै श्चतापसाः
महादेवःसुचरित बभाषे तदनन्तरम् । अस्य तीर्थस्य तीरे त्वं! वसन्सुचरितद्विज!
स्नानं कुरुष्व सततं स्मरन्मां मुक्तिदायकम् ।
देशान्तरीयतीर्थेषु मा व्रज ब्राह्मणोत्तम !॥ ४६ ॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मामन्ते प्राप्स्यसि ध्रुवम् ।
अन्येऽपि येऽत्र स्नास्यन्ति तेपि मां प्राप्नुयुर्द्विज ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा भगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत । तस्मिन्नन्तर्हिते रुद्रे ततःसुचरितो मुनिः
अनेककालं निवसन्सर्वतीर्थस्यतीरतः । स्नानंसमाचरंस्तीर्थे मानसे नियमान्वितः
देहान्तेशङ्करं प्राप सर्वबन्धविमोचितः । सायुज्यं चापिसम्प्राप सर्वतीर्थस्यवैभवात्

एवंवःकथितं विप्राःसर्वतीर्थस्य वैभवम् । एतत्पठन्वाशृण्वन्वा मुच्यते सर्वपातकैः

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये सर्वतीर्थप्रशंसायां सुचरितविप्रस्यसायुज्यप्राप्तिवर्णनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

# त्रिंशोऽध्यायः

## धनुष्कोटिप्रशंसायांधनुष्कोटिवैभवकथनम्

श्रीसूत उवाच

विहिताभिषवो मर्त्यः सर्वतीर्थेऽतिपावने । ब्रह्महत्यादिपापघ्नींधनुष्कोटिंततोव्रजेत्
यस्याःस्मरणमात्रेण मुक्तःस्यान्मानवो भुवि ।
धनुष्कोटिं प्रपश्यन्ति स्नान्ति वा कथयन्ति ये ॥ २ ॥
अष्टाविंशति भेदांस्तेनरकान्नोपभुञ्जते । तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥
कुम्भीपाकं कालसूत्रकसिपत्त्रवनं तथा । कृमिभक्षोऽन्धकूपश्च संदंशं शाल्मलीतथा
सूर्मिवैतरणीप्राणरोधो विशसनं तथा । लालाभक्षोप्यवीचिश्च सारमेयादनंतथा
तथैव वज्रकणकं क्षारकर्दमपातनम् । रक्षोगणाशनञ्चापि शूलप्रान्तवितोदनम् ॥
दन्दशूकाशनञ्चापिपर्यावर्तनसञ्ज्ञितम् ।
तिरोधानाभिधं विप्रास्तथा सूचिमुखाभिधम् ॥ ७ ॥
पूयशोणितभक्षश्च विषाग्निपरिपीडनम् । अष्टाविंशतिसंख्याकमेवं नरकसञ्चयम्
न याति मनुजोविप्रा धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।
वित्तापत्यकलत्राणां योऽन्येषामपहारकः ॥ ६ ॥
स कालपाशनिर्बद्धो यमदूतैर्भयानकैः । तामिस्रनरके घोरे पात्यते बहुवत्सरम्
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
यो निहत्य तु भर्तारं भुङ्क्ते तस्य धनादिकान् ॥ ११ ॥

पात्यते सोऽन्धतामिस्रे महादुःखसमाकुले ।
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ १२ ॥
भूतद्रोहेणयोमर्त्यः पुष्णातिस्वकुटुम्बकम् । सतानिह विहायाशुरौरवेपात्यतेध्रुवम्
विषोल्बणमहासर्पसंकुले यमपूरुषैः । स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौ निपात्यते
यः स्वदेहंभरो मर्त्यो भार्यापुत्रादिकंविना । समहारौरवेघोरे पात्यते निजमांसभुक्
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
यः पशून्पक्षिणो वाऽपि सप्राणान्निरुणद्धि वै ॥ १६ ॥
कृपालेशविहीनं तंक्रव्यादैरपि निन्दितम् । कुम्भीपाके तप्ततैले पातयन्ति यमानुगाः
स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौ निपात्यते । मातरंपितरं विप्रान्योद्वेष्टिपुरुषाधमः
स कालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने । अधस्तादग्निसन्तप्त उपर्यर्कमरीचिभिः ॥
खलेताम्रमयेविप्राः पात्यते क्षुधयार्दितः । स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिात्यते
यो वेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्तते कुपथे नरः । सोऽसिपत्त्रवने घोरे पात्यते यमकिङ्करैः ॥
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौ निपात्यते ।
यो राजा राजभृत्यो वा ह्यदण्डे दण्डमाचरेत् ॥ २२ ॥
शरीरदण्डं विप्रे वा स शूकरमुखे द्विजाः । पात्यतेनरके घोरे इक्षुवद्यन्त्रपीडितः ॥
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
ईश्वराधीनवृत्तीनां हिंसां यः प्राणिनां चरेत् ॥ २४ ॥
तैरेव पीड्यमानोऽयं जन्तुभिः स्वेन पीडितः । अन्धकूपेमहाभीमेपात्यतेयमकिङ्करैः
तत्रान्धकारबहुले विनिद्रो निर्वृतश्चरेत् ।
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २६ ॥
योऽश्नातिपङ्क्तिभेदेनसस्यसूपादिकन्नरः । अकृत्वापञ्चयज्ञंवाभुङ्क्तेमोहेनसद्द्विजाः
प्रपात्यते यमभटैर्नरके कृमिभोजने । भक्ष्यमाणःकृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसञ्चयान् ॥
स्वयञ्च कृमिभूतस्संस्तिष्ठेद्यावदघक्षयम् ।
स्नाति चेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥ २९ ॥

योहरेद्विप्रवित्तानिस्तेयेनबलतोऽपि वा । अन्येषामपि वित्तानि राजातत्पुरुषोपिवा
अयोमयाग्निकुण्डेषु संदंशैः सोऽतिपीडितः । संदंशे नरकेघोरे पात्यते यमपूरुषैः

स्नाति चेद्धनुषः कोटौ तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ।
अगम्यां योऽभिगच्छेत स्त्रियं व पुरुषाधमः ॥ ३२ ॥

अगम्यं पुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः । तावयोमयनारीञ्च पुरुषं चाप्ययोमयम्
तप्तावालिङ्ग्य तिष्ठन्तौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ । सूर्म्याख्ये नरकेघोरे पात्यते बहुकण्टके
स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते । बाधते सर्वजन्तून्यो नानोपायैरुपद्रवैः
शाल्मलीनरके घोरेपात्यते बहुकण्टके । स्नाति चेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते
राजा वा राजभृत्यो वा यःपाखण्डमनुव्रतः । भेदको धर्मसेतूनां वैतरण्यां निपात्यते
स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते । वृषलीसङ्गदुष्टोयःशौचाचाराचारवर्जितः
त्यक्तलज्जस्त्यक्तवेदः पशुचर्यारतस्तथा । स पूयविष्ठामूत्रासृक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते
अतिबीभत्सरनके पात्यतेयमकिङ्करैः । स्नाति चेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते
दाम्भिकोयः पशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः । हन्ति स परलोकेषु वैशसेनरके द्विजाः
कृत्यमानो यमभटैः पात्यतेदुःखसंकुले । स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते
आत्मभार्यां सवर्णां यो रेतः पाययतेतुसः । परत्र रेतःपायी सन्रेतः कुण्डेनिपात्यते
स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते । योदस्युमार्गमाश्रित्यगरदोग्रामदाहकः
वणिग्द्रव्यापहारी च सपरत्रद्विजोत्तमाः । वज्रदंष्ट्राहिकाभिख्ये नरके पात्यते चिरम्
स्नातिचेद्धनुषःकोटौतस्मिन्नासौनिपात्यते । विद्यन्तेयानिचान्यानिनरकाणिपरत्रवै
तानिनाप्नोतिमनुजोधनुष्कोटिनिमज्जनात् । धनुष्कोटौसकृत्स्नानादश्वमेधफलंलभेत्
आत्मविद्याभवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा । नपापे रमते बुद्धिर्न भवेद्दुःखमेववा
बुद्धेः प्रीतिर्भवेत्सम्यग्धनुष्कोटौ निमज्जनात् । तुलापुरुषदानेन यत्फलंलभ्यतेनरैः

तत्फलं लभ्यते पुम्भिर्धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।
गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं हि भवेन्नृणाम् ॥ ५० ॥

तत्पुण्यं लभते मर्त्यो धनुष्कोटौनिमज्जनात् । धर्मार्थकाममोक्षेषुयंयमिच्छतिपूरुषः

तं तं सद्यःसमाप्नोतिधनुष्कोटौनिमज्जनात् । महापातकयुक्तोवायुक्तोवासर्वपातकैः
सद्यः पूतोभवेद्विप्राधनुष्कोटौनिमज्जनात् । प्रज्ञालक्ष्मीर्यशःसम्पज्ज्ञानंधर्मोविरक्तता
मनः शुद्धिर्भवेन्नृणां धनुष्कोटौ निमज्जनात् । ब्रह्महत्यायुतं चापिसुरापानायुतंतथा
अयुतं गुरुदाराणां गमनंपापकारणम् । स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः
शीघ्रं विलयमायान्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ब्रह्महत्यासमानानिसुरापानसमानिच

गुरुस्त्रीगमनेनाऽपि यानि तुल्यानि चाऽऽस्तिकाः ।
सुवर्णस्तेयतुल्यानि तत्संसर्गसमानि च ॥ ५७ ॥

तानिसर्वाणि नश्यन्तिधनुष्कोटौनिमज्जनात् । उक्तेष्वेतेषुसन्देहोनकर्तव्यःकदाचन
जिह्वाग्रे परशुं तप्तं धारयामि नसंशयः । अर्थवादमिमंसर्वं ब्रुवन्वै नारकी भवेत्
सङ्करः सहिविज्ञेयःसर्वकर्मबहिष्कृतः । अहोमौर्ख्यमहोमौर्ख्यमहोमौर्ख्य द्विजोत्तमाः
धनुष्कोट्यभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने । अद्वैतज्ञानदे पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि
इष्टकाम्यप्रदे नित्यंतथैवाऽज्ञाननाशने । स्थितेऽपि तद्विहायाऽयं रमतेऽन्यत्र वै जनः
अहोमोहस्यमाहात्म्यंमयावक्तुंनशक्यते । स्नातस्यधनुषःकोटौनान्तकाद्भयमस्तिवै

धनुष्कोटिं प्रपश्यन्ति तत्रस्नान्ति च ये नराः ।
स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च ॥ ६४ ॥
न पिबन्ति हि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः ॥

ऋषय ऊचुः

धनुष्कोट्यभिधा तस्य कथं सूत ! समागता ॥ ६५ ॥

तत्सर्वंब्रूहि तत्वेन विस्तरान्मुनिपुङ्गव ! । इतिपृष्टो नैमिषीयैराह सूतः पुनश्च तान्

श्रीसूत उवाच

रामेण निहते युद्धे रावणे लोककण्टके । विभीषणे च लङ्कायां राजनिस्थापितेततः
वैदेहीलक्ष्मणयुतो रामो दशरथात्मजः । सुग्रीवप्रमुखैर्वीरैर्वानरैरपि सम्वृतः ॥
सिद्धचारणगन्धर्वदेवविद्याधरर्षिभिः । अप्सरोभिश्च सततं स्तूयमाननिजाद्भुतः
लीलाविधृतकोदण्डस्त्रिपुरघ्नो यथाशिवः । सर्वैः परिवृतोरामोगन्धमादनमन्वगात्

तत्र स्थितं महात्मानं राघवं रावणान्तकम् ।
प्राञ्जलिः प्रार्थयामास धर्मज्ञोऽथ विभीषणः ॥ ७१ ॥

सेतुनाऽनेन ते राम ! राजानः सर्वएवहि । बलोद्रिक्ताः समभ्येत्य पीडयेयुः पुरींमम
अतः सेतुमिमंभिन्धिधनुष्कोटयारघूद्वह । इतिसम्प्राथितस्तेनपौलस्त्येनसराघवः
बिभेदधनुषःकोटयास्वसेतुंरघुनन्दनः । अतोद्विजास्ततस्तीर्थंधनुष्कोटिरितिश्रुतम्
श्रीरामधनुषःकोटया योरेखां पश्यते कृताम् । अनेकक्लेशसंयुक्तं गर्भवासंनपश्यति
धनुष्कोटया कृतारेखा रामेण लवणाम्बुधौ । तद्दर्शनाद्भवेन्मुक्तिर्न जानेस्नानजंफलम्
नर्मदारोधसितपो महापातकनाशनम् । गङ्गातीरे तु मरणमपवर्गफलप्रदम्
दानं द्विजाः कुरुक्षेत्रे ब्रह्महत्यादिशोधकम् । तपश्च मरणं दानं धनुष्कोटौ कृतं नरैः
महापातकनाशाय मुक्त्यै चाभीष्टसिद्धये । भवेत्समर्थंविप्रेन्द्रा नात्रकार्याविचारणा
तावत्संपीड्यतेजन्तुः पातकैश्चोपपातकैः । यावन्नालोक्यते रामधनुष्कोटिर्विमुक्तिदा
भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः । क्षीयन्तेपापकर्माणिधनुष्कोटयवलोकिनः

दक्षिणाम्भोनिधौसेतौ रामचन्द्रेण निर्मिता ।
या रेखा धनुषःकोटया विभीषणहिताय वै ॥ ८२ ॥

सैवकैलासपदवी वैकुण्ठब्रह्मलोकयोः । मार्गः स्वर्गस्यलोकस्यनात्रकार्याविचारणा
तुल्यंयज्ञफलैः पुण्यैर्धनुष्कोटयवगाहनम् । सर्वमन्त्राधिकंपुण्यं सर्वदानफलप्रदम्

कायक्लेशकरैः पुंसां किन्तपोभिः किमध्वरैः ।
किंवेदैः किमु वा शास्त्रैर्धष्कोटयवलोकिनः ॥ ८५ ॥
रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानं चेल्लभ्यते नृणाम् ।
सिताऽसितसरित्पुण्यवारिभिः किम्प्रयोजनम् ॥ ८६ ॥

रामचन्द्रधनुष्कोटिदर्शनंलभ्यते यदि । काश्यान्तुमरणान्मुक्तिः प्रार्थ्यतेकिंवृथानरैः
अनिमज्ज्यधनुष्कोटावनुपोष्यदिनत्रयम् । अदत्त्वाकाञ्चनं गाञ्चदरिद्रःस्यान्नसंशयः
धनुष्कोटयवगाहेन यत्फलं लभ्यतेनरैः । अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टयापिबहुदक्षिणैः
नतत्फलमवाप्नोतिसत्यंसत्यंवदाम्यहम् । धनुष्कोटयभिधंतीर्थंसर्वतीर्थाधिकंविदुः

दशकोटिसहस्राणि सन्ति तीर्थानि भूतले ।
तेषां सान्निध्यमस्त्यत्र धनुष्कोटौ द्विजोत्तमाः ॥ ९९ ॥

अष्टौवसव आदित्यारुद्राश्चमरुतस्तथा । साध्याश्चसहगन्धर्वाःसिद्धविद्याधरास्तथा एते चान्ये चयेदेवाः सान्निध्यंकुर्वते सदा । तीर्थेऽत्रधनुषःकोटौ नित्यमेव पितामहः सन्निधत्तेशिवोविष्णुरुमामाचसरस्वती । धनुष्कोटौतपस्तप्त्वादेवाश्चऋषयस्तथा विपुलांसिद्धिमगमंस्तत्फलेन मुनीश्वराः । स्नायात्तत्रनरोयस्तुपितृदेवांश्चतर्पयेत् सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । अत्रैकम्भोजयेद्विप्रं यो नरो भक्तिसंयुतः इहलोके परत्रापि सोऽनन्तसुखमश्नुते । शाकमूलफलैर्वृत्तिं यो न वर्तयते नरः स नरो धनुषः कोटौ स्नायात्तत्फलसिद्धये । अश्वमेधक्रतुं कर्तुं शक्तिर्यस्य नविद्यते धनुष्कोटौसहिस्नायात्तेनतत्फलमश्नुते । ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रोवापिमुनीश्वराः

निन्द्ययोनौ न जायन्ते धनुष्कोट्यवगाहनात् ।
मकरस्थे रवौ माघे धनुष्कोटौ तु यो नरः ॥ १०० ॥
स्नायात्पुण्यं निगदितुं तस्याऽहं न क्षमो द्विजाः ।
माघमासे धनुष्कोटावचगाहेत यो नरः ॥ १०१ ॥

सस्नातःसर्वतीर्थेषुगङ्गादिषुमुनीश्वराः । प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान्मोक्षंचापिलभेतसः जन्मप्रभृतियत्पापं स्त्रियोवा पुरुषस्यवा । तत्सर्वं माघमासेऽत्र मज्जनाद्विलयं व्रजेत् यथासुराणां सर्वेषामुत्तमो रघुनन्दनः । तथैवचधनुष्कोटिः सर्वतीर्थोत्तमास्मृता

तत्र स्नानं माघमासे सर्वाभीष्टप्रदायकम् ।
त्रिशद्दिनं माघमासे नियतोऽपि जितेन्द्रियः ॥ १०५ ॥

धनुष्कोटौनरः स्नायादपुनर्भवसिद्धये । एकभक्तो जितक्रोधो माघमासेऽत्र योनरः स्नानंकरोति विप्रेन्द्रा मुच्यते ब्रह्महत्यया । श्रीरामधनुषःकोटौ माघमासेनरस्तुयः

स्नात्वाऽन्ते शिवरात्रौ च निराहारो जितेन्द्रियः ।
कृत्वा जागरणं रात्रौ प्रतियामं विशेषतः ॥ १०८ ॥

रामनाथंमहादेवमभ्यर्च्य विधिपूर्वकम् । परेद्युरुदिते सूर्ये धनुष्कोटौ निमज्ज्य च

अन्येष्वपिचतीर्थेषुस्नात्वा नियतमानसः । निर्वृत्य नित्यकर्माणि रामनाथंनिषेव्यच

यथाशक्ति द्विजानन्नैर्भोजयित्वा द्विजोत्तमाः !।

भूमिंगाश्च तिलान्धान्यं दत्त्वा वित्तश्च शक्तितः ॥ १११ ॥

ब्राह्मणैरप्यनुज्ञातःस्वयम्भुञ्जीत वाग्यतः । एवं कृतवतःपुंसो रामनाथो महेश्वरः विमोच्यसर्वपापानि भुक्तिमुक्तिम्प्रयच्छति । अतःसर्वप्रयत्नेन माघमासेमुनीश्वराः स्नातव्यं हिधनुष्कोटौ नरैरत्रमुमुक्षुभिः । धनुष्कोटौ नरःस्नानं सेतावर्धोदये तु यः

करोति तस्य पापानि नश्यन्त्येव क्षणाद् द्विजाः ।

स्नानं महोदये चात्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ११५ ॥

यःस्नायाद्धनुषः कोटावर्द्धोदयमहोदये । तस्य वश्यास्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः धनुष्कोटौ द्विजाःस्नानमर्द्धोदयमहोदये । विनाप्यद्वैतविज्ञानं सायुज्यप्राप्तिकारणम् तत्रस्नानं द्विजाःपुंसामर्द्धोदयमहोदये । मन्वाद्युक्तंविना सत्यंप्रायश्चित्तंहिपापिनाम् अत्रसेतौ धनुष्कोटावर्द्धोदयमहोदये । स्नातिचेन्मनुजो विप्राःसत्यंयज्ञं विनाप्ययम् यज्ञानांफलमाप्नोति सम्पूर्णं नात्र संशयः । चन्द्रसूर्योपरागेषु यःस्नायादत्र मानवः तस्य पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापिनगण्यते । चन्द्रसूर्योपरागेषु धनुष्कोट्यवगाहनम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां प्रयश्चित्तमुदीरितम् । श्रीरामधनुषः कोटौचन्द्रसूर्योपरागयोः स्नानं सायुज्यदं प्रोक्तं सर्वतीर्थफलप्रदम् । चन्द्रसूर्योपरागेषु अर्द्धोदयमहोदये स्नातव्यमत्र मनुजैर्भुक्तिमुक्तिफलेच्छुभिः । अतःसर्वं परित्यज्यगच्छध्वंमुनिपुङ्गवाः

धनुष्कोटिं महापुण्यां भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ।

तत्र गत्वा पितृभ्यश्च कुरुध्वं पिण्डदापनम् ॥ १२५ ॥

आकल्पम्पितृतृप्तिःस्यादत्रपिण्डनिवापनात् । पितॄणांतृप्तिदंस्थानत्रयंरामेणनिर्मितम् सेतुमूलेधनुष्कोट्यांगन्धमादनपर्वते । पिण्डंदत्त्वापितृभ्योऽत्रऋणान्मुक्तोभविष्यति सेतुमूलं धनुष्कोटिर्गन्धमादनमेव च । ऋणमोक्ष इतिख्यातं त्रिस्थानंदेवनिर्मितत् अतःसर्वप्रयत्नेन धनुष्कोटिर्निषेव्यताम् । अत्रागत्यधनुष्कोटौस्नात्वानियमपूर्वकम् द्रोणाचार्यसुतः श्रीमानश्वत्थामा मुनीश्वराः । सुप्तमारणदोषेण घोरेणमुमुचेक्षणात्

एवं वः कथितं विप्रा धनुष्कोटेस्तु वैभवम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिबर्हणम्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्त्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांधनुष्कोटिवैभवकथनंनाम-
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## एकत्रिंशोऽध्यायः

### अश्वत्थामसुप्तमारणदोषशान्तिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

अश्वत्थामा कथंसूत!सुप्तमारणमाचरत् । कथं च मुक्तस्तत्पापाद्धनुष्कोटौनिमज्जनात्
एतन्नःश्रद्दधानानांब्रूहिपौराणिकोत्तम !। तृप्तिर्नजायतेऽस्माकंत्वद्वचोऽमृतपायिनाम्
इति पृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभिः । वक्तुं प्रचक्रमे तत्र व्यासं नत्वागुरुंमुदा

श्रीसूत उवाच

राज्यार्थं कलहे जाते पाण्डवानाम्पुराद्विजाः । धार्तराष्ट्रै र्महायुद्धे महदक्षौहिणीयुते
युद्धंदशदिनं कृत्वा भीष्मे शान्तनवे हते । द्रोणे पञ्चदिनं कृत्वा कर्णे च द्विदिनंतथा
तथैवैकदिनं युद्ध्वा शल्ये चनिधनंगते । अष्टादशदिने तत्र रणे दुर्योधने द्विजाः
भग्नोरौ भीमगदया पतिते राजसत्तमे । सर्वे नृपतयो विप्रा निवेशाय कृतत्वराः ॥
युद्धे विरमिते तत्र प्रययुर्हृष्टमानसाः । धृष्टद्युम्नशिखण्ड्याद्याः सृञ्जयाःसर्व एव हि
अन्ये चापि महीपाला जग्मुः स्वशिबिराण्यथ ।
अथ पार्था महावीराः कृष्णसात्यकिसंयुताः ॥ ६ ॥
दुर्योधनस्य शिबिरं प्राविशन्निर्जनं द्विजाः !।
वृद्धैरमात्यैस्तत्रस्थैः षण्ढैःस्त्रीरक्षकैस्तथा ॥ १० ॥
कृताञ्जलिपुटैःप्रह्वैः काषायमलिनाम्बरैः । प्रणम्यमानास्ते पार्थाःकुरुराजस्य वेश्मनि

तत्रत्यद्रव्यजातानि समादाय महाबलाः । सुयोधनस्य शिबिरेन्यवसन्त सुखेन ते ॥

अथ तानब्रवीत्पार्थाञ्छ्रीकृष्णः प्रीणयन्निव ।

मङ्गलार्थाय चाऽस्माभिर्वस्तव्यं शिबिराद् बहिः ॥ १३ ॥

इत्युक्ता वासुदेवेन तथेत्युक्त्वाऽथ पाण्डवाः ।

कृष्णसात्यकिसंयुक्ताः प्रययुः शिबिराद् बहिः ॥ १४ ॥

वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थंहि पाण्डवाः । ओघवत्याःसमासाद्य तीरं नद्यानरोत्तमाः
ऊषुस्तांरजनींतत्र हतशत्रुगणाःसुखम् । कृतवर्माकृपोद्रौणिस्तथादुर्योधनान्तिकम्
आदित्यास्तमयात्पूर्वमपराह्णे समाययुः । सुयोधनं तदा दृष्ट्वा रणपांसुषु रूषितम्
भग्नोरुदण्डंगदया भीमसेनस्य भीमया । रुधिरासिक्तसर्वाङ्गंश्चेष्टमानं महीतले ॥
अशोचन्त तदा तत्र द्रोणपुत्रादयस्त्रयः । शुशोच सोपि तान्दृष्ट्वा रणे दुर्योधनो नृपः
दृष्ट्वातथातुराजानं बाष्पव्याकुललोचनम् । अश्वत्थामा तदाकोपाज्ज्वलन्निवमहानलः

पाणौ पाणिं विनिष्पिष्य क्रोधविस्फारितेक्षणः ।

अश्रुविक्लवया वाचा दुर्योधनमभाषत ॥ २१ ॥

पितामेपातितःक्षुद्रैश्छलेनैव रणाजिरे । न तथा तेन शोचामि यथा निष्पातितेत्वयि
शृणु वाक्यं ममाद्य त्वं यथार्थं वदतो नृप । सुकृतेन शपे चाहं सुयोधन ! महामते
अद्यरात्रौ हनिष्यामि पाण्डवान्सहसृञ्जयैः । पश्यतो वासुदेवस्य त्वमनुज्ञांप्रयच्छमे
तच्छ्रुत्वावचनंश्रुत्वाद्रौणिराजातदाब्रवीत् । तथास्त्वितिपुनःप्राहकृपंराजाद्विजोत्तमाः
आचार्यैनन्द्रोणपुत्रंकलशोत्थेनवारिणा । सेनापत्येऽभिषिञ्चस्वेत्यथसोपितथाकरोत्

सोऽभिषिक्तस्तदा द्रौणिः परिष्वज्य नृपोत्तमम् ।

कृतवर्मकृपाभ्यां च सहितस्त्वरितं ययौ ॥ २७ ॥

ततस्ते तु त्रयो वीराः प्रयाता दक्षिणोन्मुखाः ।

आदित्यास्तमयात्पूर्वं शिबिरान्तिकमासत ॥ २८ ॥

पार्थानांभीषणंशब्दंश्रुत्वातत्रजयैषिणः । पाण्डवानुद्रुता भीतास्तदाद्रौण्यादयस्त्रयः
प्राङ्मुखादुद्रुवुर्भीत्या कियद्दूरं श्रमातुराः । मुहूर्त्तंतेततो भूत्वा क्रोधामर्षवशानुगाः

दुर्योधनवधार्तास्ते क्षणं तत्रावतस्थिरे । ततोपश्यन्नरण्यं वै नानातरुलतावृतम्
अनेकमृगसम्बाधं क्रूरपक्षिगणाकुलम् । समृद्धजलसम्पूर्णतटाकपरिशोभितम् ॥
पद्मेन्दीवरकह्लारसरसीशतसंकुलम् । तत्र पीत्वा जलन्ते तुपाययित्वा हयांस्तथा ॥

अनेकशाखासंबाधं न्यग्रोधं दट्टशुस्ततः ।

सम्प्राप्य तु महावृक्षं न्यग्रोधन्ते त्रयस्तदा ॥ २४ ॥

अवतीर्य रथेभ्यश्च मोचयित्वा तुरङ्गमान् । उपस्पृश्य जलं तत्रसायंसन्ध्यामुपासत
अथ चास्तगिरिं भानुःप्रपेदे च गतप्रभः । ततश्च रजनीघोरा समभृत्तिमिराकुला ॥
रात्रिचराणिसत्त्वानिसञ्चरन्तित्वितस्ततः । दिवाचराणिसत्त्वानिनिद्रावशमुपाययुः
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः प्रदोषसमयेहिते । न्यग्रोधस्योपविविशुरन्तिके शोककर्शिताः
कृपभोजौ तदानिद्रांभेजातेऽतिपराक्रमौ । सुखोचितास्त्वदुःखार्हा निपेतुर्धरणीतले
द्रोणपुत्रस्तु कोपेण कलुषीकृतमानसः । ययौ न निद्रांविप्रेन्द्रा निश्वसन्नुरगोयथा
ततोऽवलोकयाञ्चक्रेतदारण्यं भयानकम् । न्यग्रोधञ्च ततोऽपश्यद्बहुवायससंकुलम्
तत्रवायसवृन्दानि निशायावासमाययुः । सुखंभिन्नासुशाखासुसुषुपुस्ते पृथक्पृथक्
काकेषुनेषुसुप्तेषु विश्वस्तेषुसमन्ततः । ततोऽपश्यत्समायान्तं भासं द्रौणिर्भयङ्करम्
क्रूरशब्दं क्रूरकायंबभ्रुपिङ्गकलेवरम् । स भासोऽथ भृशं शब्दं कृत्वाऽलीयतशाखिनि

उत्प्लुत्य तस्य शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः ।

सुप्तान्काकान्निजघ्नेऽसावनेकान्वायसान्तकः ॥ ४५ ॥

काकानामभिनत्पक्षान्स केषाञ्चिद्विहङ्गमः । इतरेषाञ्च चरणाञ्छिरांसिचरणायुधः
विचकर्त क्षणेनासावुलूको बलवान्द्विजाः । सभिन्नदेहावयवैः काकानाम्बहुभिस्तदा
समन्तादावृतं सर्वं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । वायसांस्तान्निहत्यासावुलूकोमुमुदे तदा
द्रौणिर्दृष्ट्वा तु तत्कर्म भासेनैवं कृतंनिशि । करिष्याम्यहमप्येवं शत्रूणां निधनंनिशि
इत्यचिन्तयदेकःसन्नुपदेशमिमंस्मरन् । जेतुं न शक्याःपार्था हि ऋजुमार्गेण युध्यता
मयातच्छद्मनातेऽद्यहन्तव्याजिनकाङ्क्षिणः । सुयोधनसकाशे च प्रतिज्ञातोमयावधः
ऋजुमार्गेणयुद्धे मे प्राणनाशो भविष्यति । छलेनयुध्यमानस्य जयश्चास्य रिपुक्षयः

यच्च निन्द्यंभवेत्कार्यं लोके सर्वजनैरपि । कार्यमेव हि तत्कर्म क्षत्त्रधर्मानुवर्तिना
पार्थैरपि छलेनैव कृतं कर्म सुयोधने ।
अस्मिन्नर्थे पुराविद्भिः प्रोक्ताः श्लोका भवन्ति हि ॥ ५४ ॥
परिश्रान्ते विकीर्णे च भुञ्जाने च रिपोर्बले । प्रस्थाने च प्रवेशे च प्रहर्तव्यं नसंशयः
निद्रार्तमर्धरात्रे च तथात्यक्तायुधं रणे । भिन्नयोधं मलं सर्वं प्रहर्तव्यमरातिभिः
एवं सनियमं कृत्वा सुप्तमारणकर्मणि । प्रबोधयद्भोजकृपौ सुप्तौ रात्रौ स साहसी
द्रौणिर्ध्यात्वा मुहूर्तन्तु तावुभावभ्य भाषत ।

अश्वत्थामोवाच

मृतःसुयोधनो राजा महाबलपराक्रमः ॥ ५८ ॥
शुद्धकर्मा हतःपार्थैर्बहुभिःक्षुद्रकर्मभिः । भीमेनाऽतिनृशंसेन शिरो राज्ञःपदाहतम् ॥
ततोऽद्यरात्रौ पार्थानां समेत्यपटमण्डपम् । सुखसुप्तान्हनिष्यामःशस्त्रैर्नानाविधैर्वयम्
कृपः प्रोवाच तत्रैनमिति श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥

कृप उवाच

सुप्तानां मारणं लोके न धर्मो न च पूज्यते ॥ ६१ ॥
तथैवत्यक्तशस्त्राणां सन्त्यक्तरथवाजिनाम् । शृणु मेवचनंवत्समुच्यतांसाहसंत्वया
वयन्तु धृतराष्ट्रञ्च गान्धारीं च पतिव्रताम् । पृच्छामो विदुरञ्चापि तदुक्तंकरवामहे
इत्युक्तःस तदा द्रौणिः कृपं प्रोवाच वै पुनः ।

अश्वत्थामोवाच

पाण्डवैश्च पुरा यन्मे छलायुद्धे पिता हतः ॥ ६४ ॥
तन्मेसर्वाणिमर्माणिनिकृन्ततिहि मातुल ! द्रोणहन्ताऽहमित्येतद्धृष्टद्युम्नस्ययद्वचः
कथं जनसमक्षे तद्वचनं संशृणोम्यहम् । तैरेव पाण्डवैःपूर्वं धर्मसेतुर्निराकृतः ॥ ६६
समक्षमेव युष्माकं सर्वेषामेव भूभृताम् । त्यक्तायुधो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः
तथा शान्तनवो भीष्मस्त्यक्तचापो निरायुधः ।
शिखण्डिनं पुरोधाय निहतः सव्यसाचिना ॥ ६८ ॥

एवमन्येऽपिभूपालाश्छलेनैवहतास्तु तैः । तथैवाहं करिष्यामि सुप्तानां मारणंनिशि
एवमुक्त्वातदाद्रौणिः संयुक्ततुरगं रथम् । प्रायादभिमुखः शत्रून्समारुह्य क्रुधाज्वलन्
तं यान्तमन्वगातान्तौ कृतवर्मकृपावुभौ । ययुश्च शिविरे तेषां सम्प्रसुप्तजने तदा
शिविरद्वारमासाद्य द्रोणपुत्रो व्यतिष्ठत । रात्रौ तत्रसमाराध्य महादेवं घृणानिधिम्
अवाप विमलं खड्गं महादेवाद्वरप्रदात् । ततो द्रौणिरवस्थाप्य कृतवर्मकृपावुभौ
द्वारदेशे महावीरः शिविरान्तःप्रविष्टवान् । प्रविष्टे शिविरे द्रौणौ कृतवर्मकृपावुभौ
द्वारदेशे व्यतिष्ठेतां यत्तौ परमधन्विनौ । अथ द्रौणिःसुसंक्रुद्धस्तेजसा प्रज्वलन्निव

खड्गं विमलमादाय व्यचरच्छिविरे निशि ।

ततस्तु धृष्टद्युम्नस्य शिविरं मन्दमाययौ ॥ ७६ ॥

धृष्टद्युम्नादयस्तत्र महायुद्धेन कर्शिताः । सुषुपुर्निशिविश्वस्ताः स्वस्वसैन्यसमावृताः
धृष्टद्युम्नस्य शिविरं प्रविश्य द्रौणिरप्यवित् । तं सुप्तं शयने शुभ्रे ददर्शारान्महाबलम्
पादेनाघ्रातयद्द्रोपात्स्वपन्तं द्रोणनन्दनः । स बुद्धश्चरणाघातादुत्थाय शयनादथ ॥
व्यलोकयत्तदावीरो द्रोणपुत्रं पुरःस्थितम् । तमुत्पतन्तं शयनाद्द्रोणाचार्यसुतोबली
केशेष्वाकृष्य बाहुभ्यां निष्पिपेष धरातले । धृष्टद्युम्नस्तदानेन निष्पिष्टःसभयातुरः

निद्रान्धःपादघातार्तो न शशाक चिचेष्टितुम् ।

द्रौणिस्त्वाक्रम्य तस्योरः कण्ठं बद्ध्वा धनुर्गुणैः ॥ ८२ ॥

नदन्तं विस्फुरन्तन्तं पशुमारममारयत् । तस्य सैन्यनि सर्वाणि न्यवधीच्च तथैवसः
युधामन्युं महावीर्यमुत्तमौजसमेव च । तथैव द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥
शिखण्डिप्रमुखानन्यान्खड्गेनामारयद्बहून् । तद्भयाद्द्वारनिर्यातान्सर्वानेवचसैनिकान्
प्रापयामासतुर्मृत्युं कृतवर्मकृपावुभौ । एवं निहतसैन्यन्तच्छिविरन्तैर्मयावलैः ॥
तत्क्षणेशून्यमभवत्त्रिजगत्प्रलये यथा । एवं हत्वा ततः सर्वान्द्रोणपुत्रादयस्त्रयः ॥
निरगुःशिविरात्तस्मात्पार्थभीताभयातुराः । सर्वेपृथकपृथग्देशान्दुद्रुवुःशीघ्रगामिनः
अथद्रौणिर्ययौ विप्ररेवातीरं मनोरमम् । तत्र ह्यनेकसाहस्रा ऋषयो वेदवादिनः
कथयन्तःकथाःपुण्यास्तपश्चक्रुरनुत्तमम् । तत्रायंप्रययौ द्रौणिर्ऋषीणामाश्रमेष्वथ

प्रविष्टमात्रे तस्मिंस्तु मुनयो ब्रह्मवादिनः । द्रौणेर्दुश्चरितं ज्ञात्वा प्राहुर्योगबलेनतम्
सुप्तमारणकृत्पापी द्रौणे! त्वं ब्राह्मणाधमः । त्वद्दर्शनेन ह्यस्माकंपातित्यंभवतिध्रुवम्
त्वत्सम्भाषणमात्रेण ब्रह्महत्यायुतं भवेत् ।
अतोऽस्मदाश्रमेभ्यस्त्वं निर्गच्छ पुरुषाधम !॥ ९३ ॥
इत्यब्रवंस्तदाद्रौणितत्रत्यामुनयोद्विजाः । इतीरितस्ततो द्रौणिर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः
लज्जितोनिरगात्तस्मादाश्रमान्मुनिसेवितात् । एवं काश्यादितीर्थेषुपुण्येषुप्रययौचसः
तत्र तत्र द्विजैःसर्वैर्निन्दितोऽसौमहात्मभिः । व्यासं शरणमापेदेप्रायश्चित्तचिकीर्षया
ततो बदरिकारण्ये समासीनं महामुनिम् । द्वैपायनं समागम्य प्रणनाम सभक्तिकम्
ततो व्यासोऽब्रवीदेनंद्रोणाचार्यसुतं मुनिः ।
त्वमस्मदाश्रमाद् द्रौणे! निर्याहि त्वरया त्विति ॥ ९८ ॥
सुप्तमारणदोषेण महापातकवान्भवान् । अतो मे भवताऽऽलापान्महत्पापं भविष्यति
इत्युक्तः स तदा द्रौणिः प्रोवाचेदं वचो मुनिम् ।

अश्वत्थामोवाच

भगवन्निन्दितःसर्वैस्त्वामस्मि शरणं गतः ॥ १०० ॥
ब्रवीषिचेत्त्वमप्येवं कोन्यो मेशरणंभवेत् । कृपां कुरु मयिब्रह्मन्साधवोदीनवत्सलाः
सुप्तमारणदोषस्य शान्त्यर्थं भगवन्मम । प्रायश्चित्तं विधेहित्वंसर्वज्ञोऽसिभवान्यतः
इत्युक्तो द्रौणिना व्यासश्चिरं ध्यात्वा तमब्रवीत् ।

व्यास उवाच

एतत्पापस्य शान्त्यर्थं प्रायश्चित्तं स्मृतौ न हि ॥ १०३ ॥
तथाप्युपायं वक्ष्यामि तवैतद्दोषशान्तये । दक्षिणाम्बुनिधौ पुण्येरामसेतौ विमुक्तिदे
धनुष्कोटिरिति ख्यातंतीर्थमस्तिमहत्तरम् । अस्तिपुण्यतमंद्रौणेमहापातकनाशनम्
स्वर्गमोक्षप्रदं पुंसां ब्रह्महत्यादिशोधकम् । सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम्
पवित्राणांपवित्रंचतीर्थानां च तथोत्तमम् । दुःस्वप्ननाशनं पुण्यंनरकक्लेशनाशनम्
अकालमृत्युशमनं पुंसां विजयवर्द्धनम् । दारिद्र्यनाशनं पुंसामायुर्वर्द्धनकारणम् ॥

चित्तशुद्धिप्रदं नृणां शान्तिदान्त्यादिकारणम् ।
तत्र गत्वा धनुष्कोटौ रामसेतौ विमुक्तिदे ॥ १०६ ॥

स्नानंकुरुष्वद्रौणे त्वंमासमात्रं निरन्तरम् । सुप्तमारणदोषात्त्वं सद्यःपूतोभविष्यसि
कुरुष्व वचनं शीघ्रं ममत्थं द्रोणनन्दन । एवमुक्तस्तदा द्रौणिर्व्यासेन :परमर्षिणा
रामसेतुंसमासाद्य धनुष्कोटिं पवित्रदाम् । सस्नौ सङ्कल्पपूर्वन्तु मासमेकंनिरन्तरम्
त्रिसन्ध्यंरामनाथञ्चसिषेवेसदिनेदिने । ततस्त्रिंशद्दिने तोयस्नानाद्द्रोणात्मजस्तदा
जजाप च धनुष्कोटयां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तदा । अकार्षीदुपवासञ्च द्रोणपुत्रस्तु तद्दिने

अकरोज्जागरं रात्रौ रामनाथस्य सन्निधौ ।
अपरेद्युर्धनुष्कोटौ स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ११५ ॥

सिषेवे रामनाथञ्च स्तुत्वा भक्तिपुरःसरम् । ननर्त पुरतः शम्भोरानन्दाश्रुपरिप्लुतः
ततः प्रसन्नो भगवान्प्रादुरासीत्तदग्रतः । दृष्ट्वा तत्र महादेवं तुष्टाव परमेश्वरम्

द्रौणिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश ! करुणाकर ! शङ्कर !। आपदाम्बुधिमग्नाना पोतायितपदाम्बुज!
महादेव! कृपामूर्ते! धूर्जटे! नीललोहित !। उमाकान्त! विरूपाक्ष! चन्द्रशेखर! ते नमः
मृत्युञ्जय! त्रिनेत्र त्वं पाहिमांकृपया दृशा । पार्वतीपतये तुभ्यं त्रिपुरघ्नाय शम्भवे
पिनाकपाणये तुभ्यं त्र्यम्बकाय नमोनमः । अनन्तादिमहानागहारभूषण भूषित!
शूलपाणे! नमस्तुभ्यं गङ्गाधर! मृडाव्यय !। रक्ष मां कृपया देव ! पापसङ्घातपञ्जरात्

इति स्तुतो महादेवो द्रौणिं प्रोवाच हर्षितः ।

महादेव उवाच

सुप्तमारणदोषस्ते धनुष्कोटौ निमज्जनात् ॥ १२३ ॥

अश्वथामन्विनष्टोऽभूद्वरं वरयसुव्रत । मयि प्रसन्ने लोकेषु किमलभ्यं भवेन्नृणाम्
अतोऽभीष्टंवृणीष्वत्वंमत्तोद्रोणात्मजाधुना । इत्युक्तःशम्भुनाद्रौणिःप्राहतंपरमेश्वरम्
तवाद्य दर्शनेनाहं कृतार्थोऽस्मिमहेश्वर !। त्वद्दर्शनमपुण्यानामलभ्यंजन्मकोटिभिः
अतो युष्मत्पदाम्भोजे निश्चलाभक्तिरस्तुमे । इममेव वरंदेहि महांशम्भो नमोऽस्तु ते

उक्त्वा तथास्त्विति द्रौणिं देवदेवोमहेश्वरः । पश्यतो द्रोणपुत्रस्यतत्रैवान्तरधीयत
अश्वत्थामापि विप्रेन्द्राधूतपापोविनिर्मलः । रामचन्द्रधनुष्कोटौस्नानमात्रेणतत्क्षणे
धूतपापमिमन्द्रौणिं सर्वे चापिमहर्षयः । शुद्धं प्रत्यग्रहीषुस्ते तदाप्रभृति निर्मलम्
एवं वः कथितंविप्रा द्रौणिपापविमोक्षणम् । रामचन्द्रधनुष्कोटिस्नानवैभवमात्रतः
यः पठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः । स विधूयेह पापानि शिवलोके महीयते

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायामश्वत्थामसुप्तमारणदोषशान्तिर्ना-
मैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

### धनुष्कोटिप्रशंसायांधर्मगुप्तोन्मादविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भूयोऽपि सम्प्रवक्ष्यामिधनुष्कोटेस्तुवैभवम् । युष्माकमादरेणाहंनैमिषारण्यवासिनः
नन्दो नाममहाराजा सोमवंशसमुद्भवः । धर्मेण पालयामास सागरान्तां धरामिमाम्
तस्य पुत्रः समभवद्धर्मगुप्त इतिश्रुतः । राज्यरक्षाधुरं नन्दो निजपुत्रे निधायसः
जितेन्द्रियो जिताहारः प्रविवेश तपोवनम् । ताते तपोवनं याते धर्मगुप्ताभिधोनृपः
मेदिनीं पालयामास धर्मज्ञो नीतितत्परः । ईजे बहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान्
ब्राह्मणेभ्योददौवित्तंक्षेत्राणिचबहूनि सः । सर्वेस्वधर्मनिरतास्तस्मिन्राजनिशासति

बभूवुर्नाभवन्पीडास्तस्मिंश्चोरादिसम्भवाः ।
कदाचिद्धर्मगुप्तोऽयमारूढस्तुरगोत्तमम् ॥ ७ ॥

वनं विवेश विप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी । तमालतालहिन्तालकुरवाकुलदिङ्मुखे
विचचार वनेतस्मिन् सिंहव्याघ्रभयानके । मत्तालिकुलसन्नादसम्मूर्छितदिगन्तरे

पद्मकह्लारकुमुदनीलोत्पलवनाकुलैः । तटाकैरपि सम्पूर्णे तपस्विजनमण्डिते ॥ १०
तस्मिन्वने सञ्चरतो धर्मगुप्तस्य भूपतेः । अभूद्विभावरी विप्रास्तमसावृतदिङ्मुखा
राजापि पश्चिमां सन्ध्यामुपास्य नियमान्वितः । जजापतत्रचवनेगायत्रींवेदमातरम्
सिंहव्याघ्रादिभीत्यास्मिन्वृक्षमेकं समास्थिते ।
राजपुत्रे तदाभ्यागादृक्षः सिंहभयार्दितः ॥ १३ ॥
अन्वधावत तं ऋक्षमेकसिंहो वनेचरः । अनुद्रुतः स सिंहेन ऋक्षोवृक्षमुपारुहत्
आरुह्य ऋक्षो वृक्षन्तं ददर्श जगतीपतिम् । वृक्षस्थितं महात्मानं महाबलपराक्रमम्
उवाचभूपतिं दृष्ट्वा ऋक्षोऽयं वनगोचरः । मा भीतिं कुरुराजेन्द्र! वत्स्यावोरजनीमिह
महासत्त्वो महाकायो महादंष्ट्रास्समाकुलः । वृक्षमूलं समायातः सिंहोऽयमतिभीषणः
रात्र्यर्धं भजनिद्रांत्वं रक्ष्यमाणो मयानृप । ततः प्रसुप्तं मां रक्ष शर्वर्यर्धं महामते
इति तद्वाक्यमादाय सुप्ते नन्दसुतेहरिः । प्रोवाच ऋक्ष! सुप्तोयं नृपश्चत्यज्यतामिति
तं सिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञो द्विजसत्तमाः । भवान्धर्मं न जानीते मृगराजवनेचर
विश्वासघातिनां लोके महाकष्टा भवन्ति हि । न हि मित्रद्रुहांपापंनश्येद्यज्ञायुतैरपि
ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ।
विश्वस्तघातिना पाप न नश्येज्जन्मकोटिभिः ॥ २२ ॥
नाहं मेरुं महाभारं मन्ये पञ्चास्य! भूतले । महाभारमिमं मन्येलोकेविश्वासघातकम्
एवमुक्तेऽथ ऋक्षेण सिंहस्तूष्णीमभूत्तदा । धर्मगुप्ते प्रबुद्धे तु ऋक्षः सुष्वाप भूरुहे
ततः सिंहोऽब्रवीद्भूपमेनमृक्षन्त्यजस्व मे । एवमुक्तेऽथ सिंहेन राजा सुप्तमशङ्कितः
स्वकन्यस्तशिरस्कन्तमृक्षंतत्याज भूतले । पात्यमानस्ततोराज्ञानखालम्बितपादपः
ऋक्षः पुण्यवशाद्वृक्षान्न पपात महीतले । स ऋक्षो नृपमभ्येत कोपाद्वाक्यमभापत
कामरूपधरो राजन्नाहं भृगुकुलोद्भवः । ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम्
यस्मादनागसं सुप्तमत्याक्षीन्मां भवान्नृप !। मच्छापात्त्वमतः शीघ्रमुन्मत्तश्चरभूपते
इतिशप्त्वा मुनिर्भूपं ततः सिंहमभाषत । नृसिंहस्त्वं महायक्ष कुबेरसचिवः पुरा
हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः । अज्ञानाद्गौतमाभ्याशे विहारमतनोन्मुदा

गौतमोऽप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणाय वै । निर्गतस्त्वांविवसनं दृष्ट्वा शापमुदाहरत्
यस्मान्ममाश्रमेऽद्य त्वं विवस्त्रः स्थितवानसि । अतःसिंहत्वमद्यैवभवितातेनसंशयः
इति गौतमशापेन सिंहत्वमगमत्पुरा । कुबेरसचिवो यक्षो भद्रनामा भवान्पुरा
कुबेरोधर्मशीलो हि तद्भृत्याश्च तथैवहि । अतः किमर्थंत्वंहिंसिमामृषिवनगोचरम्
एतत्सर्वमहं ध्यानाज्ञानामीह मृगाधिप !! इत्युक्तेध्यानकाष्ठेनत्यक्त्वासिंहत्वमाशुसः
यक्षरूपं गतोदिव्यं कुबेरसचिवात्मकम् । ध्यानकाष्ठमसावाहप्राञ्जलिःप्रणतोमुनिम्
अद्य ज्ञातं मयासर्वं पूर्ववृत्तं महामुने !! गौतमः शापकाले मे शापान्तमपिचोक्तवान्
ध्यानकाष्ठेन सम्वादो यक्षरूपेणतेयदा । तदा निर्धूय सिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि
इति मामब्रवीद्ब्रह्मन्गौतमो मुनिपुङ्गवः । अद्य सिंहत्वनाशान्मे जानामित्वांमहामुने
ध्यानकाष्ठाभिधं शुद्धं कामरूपधरंसदा । इत्युक्त्वा तं प्रणम्याथध्यानकाष्ठंसयक्षराट्
विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम् । तस्मिन् गते तु यक्षेशे ध्यानकाष्ठोमहामुनिः
अव्याहतेष्टगमनो यथेष्टं प्रययौमहीम् । ध्यानकाष्ठेगते तस्मिन्कामरूपधरे मुनौ
धर्मगुप्तो मुनेःशापादुन्मत्तः प्रययौ पुरीम् । उन्मत्तरूपं तंदृष्ट्वा मन्त्रिणस्तुनृपोत्तमम्
पितुः सकाशमानिन्यू रेवातीरे मनोरमे । तस्मै निवेदयामासुर्मतिभ्रंशं सुतस्य ते
ज्ञात्वा तु पुत्रवृत्तान्तमादितः स नृपोत्तमः । जगामपुत्रमादाय जैमुनिं त्वरयान्वितः
उवाच वचनं चैव जैमुनिं मुनिपुङ्गवम् । भगवञ्जैमुने! पुत्रोममाद्योन्मत्ततां गतः
अथोन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायं महामुने । इति पृष्टश्चिरं दध्यौ जैमुनिर्मुनिपुङ्गवः
ध्यात्वातु सुचिरंकालंनृपंनन्दमथाब्रवीत् । ध्यानकाष्ठस्यशापेनह्युन्मत्तस्तेसुतोऽभवत्
तस्यशापस्यमोक्षार्थमुपायं प्रब्रवीमिते । दक्षिणाम्बुनिधौ सेतौ पुण्ये पापविनाशने
धनुष्कोटिरिति ख्यातंतीर्थमस्तिमहत्तरम् । पवित्राणांपवित्रञ्चमङ्गलानांचमङ्गलम्
श्रुतिसिद्धंमहापुण्यंब्रह्महत्यादिशोकधकम् । नीत्वातत्रसुतन्तेऽद्यस्नापयस्वमहीपते!
उन्मादस्तत्क्षणादेव तस्य नश्येन्न संशयः । इत्युक्तस्तं प्रणम्यासौजैमुनिंमुनिपुङ्गवम्
नन्दः पुत्रं समादाय धनुष्कोटिं ययौ तदा । तत्र स्व स्नापयामास पुत्रंनियमपूर्वकम्
स्नानमात्रात्ततः सद्यो नष्टोन्मादोभवत्सुतः ।

स्वयं सस्नौ स नन्दोऽपि धनुष्कोटौ सभक्तिकम् ॥ ५५ ॥
उषित्वा दिनमेकन्तुसपुत्रस्तुपिता तदा । सेवित्वारामनाथंचसाम्बमूर्त्तिघृणानिधिम्
पुत्रमापृच्छय नन्दस्तं प्रययौ तपसे वनम् ।
गते पितरि पुत्रोऽपि धर्मगुप्तो नृपो द्विजाः !॥ ५७ ॥
प्रददौ रामनाथाय बहुवित्तानि भक्तितः । ब्राह्मणेभ्योधनंधान्यं क्षेत्राणि च ददौ तदा
प्रययौ मन्त्रिभिः सार्द्धंस्वांपुरींतदनन्तरम् । धर्मेणपालयामासराज्यंनिहतकण्टकम्
पितृपैतामहंविप्रा ! धर्मगुप्तोऽतिधार्मिकः । उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्च ये नराः
ग्रस्ता भवन्ति विप्रेन्द्रास्तेऽपि चाऽत्र निमज्जनात् ।
धनुष्कोटौ विमुक्ताः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६१ ॥
परित्यज्यधनुष्कोटितीर्थमन्यद्व्रजेत्तुयः। सिद्धंसगोपयस्त्यक्त्वास्नुहिक्षीरंप्रयाचते
धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिरिति द्विजाः । त्रिःपठन्तोनरायेतुयत्रक्वापिजलाशये
स्नान्तिसर्वे नरास्ते वै यास्यन्तिब्रह्मणःपदम् । एवंवःकथिताविप्राधर्मगुप्तकथाशुभा
यस्याः श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ।
स्वर्णस्तेयादयश्चान्ये नश्येयुः पापसञ्चयाः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये धनुष्कोटिप्रशंसायांधर्मगुप्तोन्मादविमोक्षणन्नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

# त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

## धनुष्कोटिप्रशंसायांपरावसोर्ब्रह्महत्याविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भूयोऽप्यहं प्रवक्ष्यामि धनुष्कोटेस्तु वैभवम् । अत्यद्भुततरं गुह्यं सर्वलोकैकपावनम्
पुरा परावसुर्नाम ब्राह्मणो वेदवित्तमः । अज्ञानात्पितरं हत्वा ब्रह्महत्यामवाप्तवान्
सोऽपि स्नात्वा धनुष्कोटौ तद्दोषान्मुमुचे क्षणात् ।

ऋषय ऊचुः

पितरं हतवान्पूर्वं कथं सूत! परावसुः ॥ ३ ॥
कथं वा धनुषःकोटौ मुक्तिस्तस्याप्यभून्मुने ! । एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि

श्रीसूत उवाच

आसीद्राजा बृहद्युम्नश्चक्रवर्ती महाबलः । धर्मेणपालयामास सागरान्तां वसुन्धराम्
अयजत्सत्रयागेन देवानिन्द्रपुरोगमान् । याजकस्तस्य रैभ्योऽभूद्विद्वान्परमधार्मिकः
आस्तां पुत्रावुभौ तस्याप्यर्वावसुपरावसू । षडङ्गवेदविदुषौ श्रौतस्मार्तेषु कोविदौ
काणादे जैमिनीयेचसांख्येवैयासिकेतथा । गौतमे योगशास्त्रेचपाणिनीयेचकोविदौ
मन्वादिस्मृतिनिष्णातौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सत्रयागे सहायार्थंबृहद्युम्नेनयाचितौ
भ्रातरौ समनुज्ञातौ पित्रारैभ्येण जग्मतुः । बृहद्युम्नस्य सत्रन्तावश्विनाविवरूपिणौ
अतिष्ठदाश्रमेरैभ्यः स्नुषया ज्येष्ठया सह । तौ गत्वा भ्रातरौतत्र राज्ञः सत्रमनुत्तमम्
याजयामासतुस्सत्रे बृहद्युम्नमहीपतेः । नाभवत्स्खलनं भ्रात्रोः सत्रेसाङ्गेषु कर्मसु
सत्रेसन्तन्यमानेऽस्मिन् बृहद्युम्नस्यभूपतेः । मुनयोभ्यागमन्सर्वेराज्ञाहूतानिरीक्षितुम्
वसिष्ठो गौतमश्चात्रिर्जाबालिरथकश्यपः । क्रतुर्दक्षःपुलस्तिश्च पुलहो नारदो मुनिः
मार्कण्डेयः शतानन्दो विश्वामित्रः पराशरः ।
भृगुः कुत्सोऽथ वाल्मीकिर्व्यासधौम्यादयोऽपरे ॥ १५ ॥

शिष्यैःप्रशिष्यैर्बहुभिरसंख्यातैःसमावृताः। तानागतान्समालोक्यबृहद्युम्नोमहीपतिः

अर्घ्यादिना मुनीन्सर्वान्पूजयामास सादरम्।
नानादिग्भ्यः समायाताश्चतुरङ्गबलैर्युताः ॥ १७ ॥
उपहूतास्तदा भूपास्सत्रं वीक्षितुमादरात्।
वैश्याः शूद्रास्तथा वर्णाश्चत्वारोऽपि समागताः ॥ १८ ॥

वर्णिनोऽथगृहस्थाश्च वानप्रस्थाश्चभिक्षवः। सत्रंनिरीक्षितुंतस्यबृहद्युम्नस्यधाययुः तान्सर्वान्पूजयामास यथार्हंराजसत्तमः। ददौधान्नानि सर्वेभ्यो घृतसूपादिकांस्तथा वस्त्राणि च सुवर्णानि हाररत्नान्यनेकशः। एवंसत्कारयामास राजासत्रे समागतान् रैभ्यपुत्रौ तदा विप्रा अर्वावसुपरावसू। अध्वरादीनि कर्माणिचक्रतुस्स्खलितंविना तद्दृष्ट्वा मुनयस्सर्वे कौशलं रैभ्यपुत्रयोः। श्लाघन्ते सशिरःकम्पंवसिष्ठप्रमुखास्तदा कर्माणिकानि चित्तत्रकारयित्वापरावसुः। तृतीयसवनस्यान्तेगृहकृत्यंनिरीक्षितुम् प्रययौ स्वाश्रमंसायंविनैवार्वावसुंद्विजाः। तस्मिन्नवसरेरैभ्यं कृष्णाजिनसमावृतम् वनेचरन्तं पितरं दृष्ट्वा स मृगशङ्कया। निद्राकलुषितो रात्रौ अन्धे तमसिसंकुले आत्मानं हन्तुमायाति मृगोऽयमितिचिन्तयन्। जघानपितरंसोऽयंमहारण्येपरावसुः रिरक्षुणा शरीरं स्वं तेनाकामनयापिता। रजन्यांहिसितोविप्रामहापातककारिणा अन्तिकंससमागत्यव्यलोकयततं हतम्। ज्ञात्वास्वपितरंरात्रौशुशोचव्यथितेन्द्रियः प्रेतकार्यं ततः कृत्वा पितुः सर्वं परावसुः। भूयोऽपि नृपतेः सत्रं परावसुरुपाययौ स्वचेष्टितन्तुतत्सर्वमनुजायततोब्रवीत्। मृतंस्वपितरंश्रुत्वासोपिशोकाकुलोऽभवत् ज्येष्ठोनुजं ततः प्राह वचनं द्विजसत्तमाः। महत्सत्रं समारब्धं बृहद्युम्नस्य भूपतेः वोढृत्वशक्तिर्नास्त्यस्य कर्मणोबालकस्यते। जनकश्च हतोरात्रौ मयापिमृगशङ्कया प्रायश्चित्तं च कर्त्तव्यं ब्रह्महत्याविशुद्धये। मदर्थं व्रतचर्यां त्वं चर तात कनिष्ठक! एकाकी धुरमुद्वोढुं शक्तोऽहंसत्रकर्मणः। अर्वावसुरिति प्रोक्तो ज्येष्ठेन सतमभ्यधात् तथा भवत्वहं ज्येष्ठ! चरिष्ये व्रतमुत्तमम्। ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं त्वं सत्रधुरमावह

इत्युक्त्वा सोऽनुजो ज्येष्ठं तस्मात्सत्राद्विनिर्ययौ।

कारयामास कर्माणि ज्येष्ठस्तस्मिन्गते क्रतौ ॥ ३७ ॥
द्वादशाब्दं कनिष्ठोऽपिब्रह्महत्याव्रतं द्विजाः । चरित्वासत्रयागेऽस्मिन्नाजगाम पुनर्मुदा
तंदृष्ट्वा भ्रातरं ज्येष्ठो बृहद्युम्नमुवाचह । अयन्ते ब्रह्महा सत्रमर्वावसुरुपागतः ॥ ३६ ॥
एनमुत्सारयाशु त्वमस्मात्सत्रान्नृपोत्तम । अन्यथासत्रयागस्य फलहानिर्भविष्यति
इतीरितःस स्वप्रेष्यैर्यागात्तमुदवासयत् । उद्वास्यमानो राजानमर्वावसुरथाब्रवीत्
न मया ब्रह्महत्येयंबृहद्युम्नकृतानघ !। किन्तु ज्येष्ठेन मे सा हि ब्रह्महत्या कृता विभो
ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं तदर्थं च मयाऽधुना । एवमुक्तोऽपि राजाऽसौवचसासपरावसोः
अर्वावसुं निजात्सत्रादुदवासयदाशु वै । धिक्कृतो ब्राह्मणैश्चायं ययौ तूर्णींवनंतदा
मुनिवृन्दसमाकीर्णं तपोवनमुपेत्य सः । अर्वावसुस्तपश्चक्रे देवैरपि सुदुष्करम् ॥
तपःकुर्वंस्तथादित्यमुपतस्थे समाहितः । मूर्त्तिमांस्तपसातस्यमहतातुष्टधीःस्वयम्
आविरासीत्स्वया दीप्त्या भासयञ्जगतीतलम् ।
कर्मसाक्षीजगच्चक्षुर्भास्करो देवताग्रणीः ॥ ४७ ॥
आविर्बभूवुर्देवाश्च पुरस्कृत्य शर्वापतिम् । इन्द्रादयस्ततोदेवाः प्रोचुरर्वावसुं द्विजाः
अर्वावसो! त्वं प्रवरस्तपसा ब्रह्मचर्यतः । आचारेण श्रुतेनाऽपि वेदशास्त्रादिशिक्षया
निराकृतोवमानेन त्वं परावसुना बहु । तथापि क्षमया युक्तो न कुप्यति भवान्यतः
यस्माज्ज्येष्ठोऽवधीत्तातंन हिंसित्वं महामते । ब्रह्महत्याव्रतं यस्मात्तदर्थं चरितंत्वया
अतःस्वीकुर्महे त्वान्तु पराकुर्मःपरावसुम् । उक्त्वैवंबलभिन्मुख्याःसर्वेचत्रिदिवालयाः
तन्तेप्रवरयामासुर्निरासुश्चपरावसुम् । पुनरिन्द्रादयो देवाः पुरोधाय दिवाकरम् ॥
अर्वावसुं प्रोचुरिदंवरं त्वं वरयेति वै । स चापि प्रार्थयामास जनकस्योत्थितंपुनः
वधे चास्मरणंदेवा नात्मजो जनकस्यवै । तथास्त्विति सुराःप्रोचुपुं नरूचुरिदं वचः
वरं चान्यं प्रदास्यामो वरय त्वं महामते ! । एवमुक्तःसुरैःसोऽयमर्वावसुरभाषत
मम भ्रातुरदुष्टत्वं भवतु त्रिदशालयाः । अर्वावसोर्वचः श्रुत्वा त्रिदशाःपुनरब्रुवन् ॥
ब्राह्मणस्य पितुर्घातान्महान्दोषःपरावसोः । न ह्यन्यकृतपापस्य परेणाऽनुष्ठितेन वै
प्रायश्चित्तेन शान्तिःस्यान्महापातकपञ्चके ।

पितुर्ब्राह्मणहन्तुस्तु सुतरां नास्ति निष्कृतिः ॥ ५६ ॥
आत्मनानुष्ठितेनापि व्रतेननहिनिष्कृतिः । परावसोस्तव भ्रातुरतो नैवास्तिनिष्कृतिः
अतोऽस्माभिरदुष्टत्वमस्मै दातुं न शक्यते । अर्वावसुःपुनःप्राह देवानिन्द्रपुरोगमान्
तथापि युष्मन्माहात्म्यात्प्रसादाद्भवतान्तथा । पितुर्ब्राह्मणहन्तुर्मे भ्रातुस्त्रिदशसत्तमाः
यथास्यान्निष्कृतिर्ब्रूत तथैव कृपयायुताः । एवमर्वावसोःश्रुत्वा वचस्तेत्रिदशालयाः
ध्यात्वातुसुचिरंकालंविनिश्चित्येदमब्रुवन् । उपायन्तेप्रवक्ष्यामस्तत्पातकनिवारणम्
दक्षिणाम्बुनिधौ पुण्ये रामसेतौ विमुक्तिदे ।
धनुष्कोटिरिति ख्यातं तीर्थमस्ति विमुक्तिदम् ॥ ६५ ॥
ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयविनाशनम् । गुरुतल्पगसंसर्गदोषाणामपि नाशनम् ॥
अकामेनापि यःस्नायादपवर्गफलप्रदम् । दुःस्वप्ननाशनं धन्यं नरकक्लेशनाशनम् ॥
कैलाशादिपदप्राप्तिकारणं परमार्थदम् । सर्वकाममिदं पुंसां ऋणदारिद्र्यनाशनम्
धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिरितीरणात् । स्वर्गापवर्गदं पुंसांमहापुण्यफलप्रदम्
तत्रगत्वातवभ्रातास्नायाद्यदि परावसुः । तत्क्षणादेव ते ज्येष्ठो मुच्यते ब्रह्महत्यया
इदंरहस्यंसुमहत्प्रायश्चित्तमुदीरितम् । उक्त्वेत्यर्वावसुं देवाः प्रययुः स्वपुरींप्रति
ततश्चार्वावसुर्ज्येष्ठं समादायपरावसुम् । रामचन्द्रधनुष्कोटिं प्रययौमुक्तिदायिनीम्
सेतौसंकल्पमुक्त्वा तु नियमेन परावसुः । सह भ्रात्राधनुष्कोटौ सस्नौपातकशुद्धये
स्नात्वोत्थितं धनुष्कोटौ तम्प्रोवाचाऽशरीरिणी ।
परावसो विनष्टा ते पितुर्ब्राह्मणघातजा ॥ ७४ ॥
ब्रह्महत्यामहाघोरा नरकक्लेशकारिणी । इत्युक्त्वाविररामाथ सापिवागशरीरिणी
परावसुस्तदाविप्राः कनिष्ठेनसमन्वितः । रामचन्द्रधनुष्कोटिं प्रणम्य च सभक्तिकम्
रामनाथं महादेवं नत्वा भक्तिपुरःसरम् । विमुक्तपातको विप्राः प्रययौ पितुराश्रमम्
मृत्वोत्थितस्तदारैभ्योदृष्ट्वापुत्रौसमागतौ । सन्तुष्टहृदयोह्यास्तेपुत्राभ्यांस्वाश्रमेतदा
रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानेन हतपातकम् । एनं परावसुं सर्वे स्वीचक्रुर्मुनयस्तदा ॥
एवं परावसोरुक्तं ब्रह्महत्याविमोक्षणम् । स्नानमात्राद्धनुष्कोटौयुष्माकं मुनिपुङ्गवाः

सुरापानादयोऽप्यत्रनश्यन्त्येवात्र मज्जनात् । सत्यंसत्यंपुनः सत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते
महापातकसंबाश्च नश्येयुर्मज्जनादिह ।
य इमं पठतेऽध्यायं ब्रह्महत्याविमोक्षणम् ॥ ८२ ॥
ब्रह्महत्याविनश्येतत्क्षणान्नास्तिसंशयः । सुरापानादयोप्यस्य शान्तिगच्छेयुरञ्जसा
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये धनुष्कोटिप्रशंसायां परावसोर्ब्रह्महत्याविमोक्षणन्नाम-
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

# चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

## धनुष्कोटिप्रशंसायांशृगालवानरसम्वादेसुमतिमहापातकविमोक्षणोपायवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

इतिहासं पुनर्वक्ष्ये धनुष्कोटिप्रशंसनम् । शृगालस्य च संवादं वानरस्य च सत्तमाः
शृगालवानरौ पूर्वमास्तां जातिस्मरावुभौ । पुरापिमानुषे भावे सहायौ तावभूवतुः
अन्यां योनिं समापन्नौ शार्गाली वानरीं तथा ।
सख्यं समीयतुरुभौ शृगालो वानरो द्विजाः ॥ ३ ॥
कदाचिद्द्रुमभूमिष्ठं शृगालं वानरोऽब्रवीत । श्मशानमध्ये सम्प्रेक्ष्यपूर्वजातिमनुस्मरन्

वानर उवाच

शृगाल! पातकं पूर्वं किमकार्षीः सुदारुणम् ।
यस्त्वं श्मशाने मृतकान्पूतिगन्धांश्च कुत्सितान् ॥ ५ ॥
अत्सीत्युक्तोऽथ कपिना शृगालस्तमभाषत ।

शृगाल उवाच

अहं पूर्वभवे ह्यासं ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ६ ॥

वेदशर्माभिधो विद्वान्सर्वकर्मकलापवित् । ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य न मया तत्र जन्मनि कपेधनंतदादत्तं शृगालोऽहं ततोऽभवम् । तस्मादेवंविधंभक्ष्यंभक्षयाम्यतिकुत्सितम्

प्रतिश्रुत्य दुरात्मानो न प्रयच्छन्ति ये नराः ।

कपे ! शृगालयोनिन्ते प्राप्नुवन्त्यतिकुत्सिताम् ॥ ६ ॥

योनदद्यात्प्रतिश्रुत्यस्वल्पंवायदिवाबहु । सर्वाशास्तस्यनश्यन्त्युःषण्ढस्येवप्रजोद्भवः प्रतिश्रुत्याप्रदाने तु ब्राह्मणाय प्लवङ्गम !। दशजन्मार्जितं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति॥ प्रतिश्रुत्याप्रदानेन यत्पापमुपजायते । नाश्वमेधशतेनापि तत्पापं परिशुध्यति न जानेऽहमिदं पापं कदा नष्टं भवेदिति । तस्मात्प्रतिश्रुतं द्रव्यंदातव्यंविदुषासदा प्रतिश्रुत्याऽप्रदानेन शृगालोभवति ध्रुवम् । तस्मात्प्राज्ञेनविदुषा दातव्यंहिप्रतिश्रुतम् इत्युक्त्वा स शृगालस्तं वानरंपुनरब्रवीत् । त्वयाहि किं कृतं पापं येन वानरतामगात् अनागसो वनचरान्पक्षिणो हिंसि वानर !। तत्पातकं वदस्वाद्य वानरत्वप्रदम्मम

इत्युक्तः स शृगालेन शृगालं वानरोऽब्रवीत् ।

वानर उवाच

पुरा जन्मन्यहं विप्रो वेदनाथ इति स्मृतः ॥ १७ ॥

विश्वनाथोमम पिता ममाम्बाकमलालया । शृगालसख्यमभवदावयोःप्राग्भवेऽपिहि त्वं न जानासि तत्सर्वंवेद्म्यहंपुण्यगौरवात् । तपसाराध्य गिरिशंतत्प्रसादात्पुरामम अतीतभाविविज्ञानमस्तिजन्मान्तरेऽपिच । गोमायो तद्भवे शाकं ब्राह्मणस्य हृतंमया तत्पापाद्वानरो भूत्वा नरकानुभवात्ततः । नाऽऽहर्तव्यं विप्रधनं हरणान्नरक भवेत् अनन्तरं वानरत्वं भविष्यति न संशयः । तस्मान्न ब्राह्मणस्वन्तु हर्तव्यं विदुषासदा ब्रह्मस्वहरणात्पापमधिकं नैव विद्यते । पीतवन्तं विषं हन्ति ब्रह्मस्वं सकुलं दहेत् ब्रह्मस्वहरणात्पापी कुम्भीपाकेषु पच्यते । पश्चान्नरकशेषेण वानरीं योनिमश्नुते विप्रद्रव्यं न हर्तव्यंक्षन्तव्यन्तेष्वतःसदा । बाला दरिद्राःकृपणा वेदशास्त्रादिवर्जिताः ब्राह्मणा नावमन्तव्याः क्रुद्धाश्चेदनलोपमाः । अतीतानागतं ज्ञानं शृगालाखिलमस्तिमे ज्ञानमस्ति नमेत्वेकमेतत्पापविशोधने । जातिस्मरोऽपिहि भवान्माविकार्यंनबुध्यते

अतीतेष्वपि किञ्चिज्ज्ञः प्रतिबन्धवशाद्भवान् ।

अतो भवान्नाजानीते भाव्यतीतं तथाऽखिलम् ॥ २८ ॥

कियत्कालंशृगालातोभुजोर्व्यसनमीदृशम् । आवयोरस्यपापस्यकोवामोचयिताभवेत्

एवंप्रब्रुवतोस्तत्र प्लवङ्गमशृगालयोः । यदृच्छया दैवयोगात्पूर्वपुण्यवशाद्द्विजाः

आययौ स महातेजाः सिन्धुद्वीपाह्वयो मुनिः ।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३१ ॥

रुद्राक्षमालाभरणः शिवनामानि कीर्तयन् । शृगालवानरौ दृष्ट्वासिन्धुद्वीपाभिधंमुनिम्

प्रणम्य मुदितौ भूत्वा पप्रच्छ तुरिदन्तदा ।

शृगालवानरावूचतुः

भगवन्सर्वधर्मज्ञ ! सिन्धुद्वीप ! महामुने !॥ ३३ ॥

आवां रक्ष कृपादृष्ट्या विलोकय मुहुर्मुदा । कपित्वञ्च शृगालत्वमावयोर्येन नश्यति

तमुपायं वदस्वाद्य त्वंहिपुण्यवतांवरः । अनाथान्कृपणानज्ञानबालान्रोगातुराञ्जनान्

रक्षन्ति साधवो नित्यं कृपया निरपेक्षकाः ।

ताभ्यामितीरितः प्राज्ञः सिन्धुद्वीपो महामुनिः ॥ ३६ ॥

प्राह तौ कपिगोमायू ध्यात्वा तु मनसा चिरम् ।

सिन्धुद्वीप उवाच

जानाम्यहं युवां सम्यग् हेशृगालप्लवङ्गमौ !॥ ३७ ॥

शृगालप्राग्भवेत्वं वै वेदशर्माभिधोद्विजः । ब्राह्मणायप्रतिश्रुत्यधान्यानामाढकन्त्वया

न दत्तन्तेन पापेनशार्गालीं योनिमाप्तवान् । त्वञ्च वानरपूर्वस्मिन्वेदनाथाभिधोद्विजः

ब्राह्मणस्य गृहाच्छाकं हृतं चौर्यात्त्वया ततः ।

प्राप्तोऽसि वानरीं योनिं सर्वपक्षिभयंकरीम् ॥ ४० ॥

युवयोः पापशान्त्यर्थमुपायंप्रवदाम्यहम् । दक्षिणाम्बुनिधौरामधनुष्कोटौयुवामरम्

गत्वाऽत्रकुरुतस्नानंतेनपापाद्विमोक्ष्यथः । पुराकिरातिसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणःसुराम्

पीतवान्स धनुष्कोटौ स्नात्वा पापाद्विमोचितः ।

शृगालवानरावूचतुः

सुमतिः कस्य पुत्रोऽसौ कथञ्च स सुराम्पपौ ।
कथं किरात्यांसक्तोऽभून्सिन्धुद्वीप महामते !। आवयोर्विस्तरादेतद्वदत्वंकृपयाऽधुना

सिन्धुद्वीप उवाच

महाराष्ट्राभिधेदेशे ब्राह्मणः कश्चिदास्तिकः । यज्ञदेव इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः । सुमतिर्नामपुत्रोऽभूद्यज्ञदेवस्य तस्यवै पितरौ स परित्यज्य भार्य्यामपि पतिव्रताम् । प्रययावुत्कलेदेशेविटगोष्ठीपरायणः काचित्किराती तद्देशेवसन्तीयुवमोहिनी । यूनांसमस्तद्रव्याणिप्रलोभ्यजगृहेचिरम् तस्या गृहं स प्रययौसुमतिर्ब्राह्मणाधमः । सुमतिं सा न जग्राह किरातिर्निर्धनंद्विजम् तयात्यक्तोऽथसुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः । इतस्ततश्चोरयित्वाबहुद्रव्याणिसन्ततम् दत्त्वातयाचिरंरेमे तद्गृहे बुभुजे चमः । एकेन चषकेनासौ तयासह सुरां पपौ एवं स बहुकालं वै रममाणस्तया सह । पितरौ निजपत्नीं च नास्मरद्विषयातुरः स कदाचित्किरातैस्तु चौर्यं कर्तुं ययौसह । द्रव्यं हर्तुंकिरातास्तेलाटानांविषयंययुः विप्रस्यकस्यचिद्गेहेसोऽपिकिंरातवेषधृक् । ययौचोरयितुंद्रव्यंसाहस्रीखड्गहस्तवान् तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वाखड्गेनसाहसी । समादाय बहुद्रव्यं किरातिभवनं ययौ तं यान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्याभयङ्करी । नीलवस्त्रधराभीमा भृशंरक्तशिरोरुहा गर्जंती साट्टहासंसा कम्पयन्ती च रोदसी । अनुद्रुतस्तयासोऽयं बभ्राम जगतीतले एवंभ्रमन्भुवं सर्वांकदाचित्सुमतिः स्वयम् । स्वग्रामंप्रययौभीत्याहेशृगालप्लवङ्गमौ अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वगृहम्प्रति । ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्यनेन साकंगृहं ययौ पितरं रक्षरक्षेति सुमतिः शरणंययौ । मा भैषीरिरि तं प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः

तदानीं ब्रह्महत्येयं तत्तातं प्रत्यभाषत ।

ब्रह्महत्योवाच

मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेव! द्विजोत्तम !॥ ६१ ॥
असौसुरापीस्तेयीचब्रह्महाचातिपातकी । मातृद्रोहीपितृद्रोहीभार्य्यात्यागीचपापकृत्

किरातीसङ्गदुष्टश्च नैनं मुञ्चाम्यहं द्विज !। गृह्णासि चेदिमं विप्र! महापातकिनंसुतम्
त्वद्भार्य्यामस्य भार्य्यांश्च त्वां च पुत्रमिमं द्विज !।
भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च सुतं त्विमम् ॥ ६४ ॥
इमन्त्यजसिचेत्पुत्रंयुष्मान्मोक्ष्यामिसाम्प्रतम् । नैकस्यार्थेकुलंहन्तुमर्हसित्वंमहामते
इत्युक्तः स तया तत्र यज्ञदेवोऽब्रवीच्च ताम् ।

यज्ञदेव उवाच

बाधते मां सुतस्नेहः कथमेनं परित्यजे ॥ ६६ ॥
ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य द्विजोक्तं तमभाषत ।

ब्रह्महत्योवाच

अयं हि पतितो भ्रत्ते वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ ६७ ॥
पुत्रेऽस्मिन्माकुरु स्नेहंनिन्दितंतस्य दर्शनम् । इत्युक्त्वाब्रह्महत्यासायज्ञदेवस्यपश्यतः
तलेन प्रजहारास्य पुत्रं सुमतिनामकम् । रुरोद तानतानेति पितरं प्रब्रुवन्मुहुः ॥
रुरुदुर्जनको माता भार्यापि सुमतेस्तदा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासाशङ्करांशजः
दिष्ट्या समाययौ योगी हे शृगालप्लवङ्गमौ !। यज्ञदेवोऽथ तं दृष्ट्वा मुनिरुद्रावतारकम्
स्तुत्वाप्रणम्यशरणं ययाचेपुत्रकारणात् । दुर्वासस्त्वंमहायोगी साक्षाद्वैशङ्करांशजः
त्वद्दर्शनमपुण्यानां भवितानकदाचन । ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाऽभूत्सुतो मम
एनं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या विवर्तते । भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः ॥
घोरा च ब्रह्महत्येयं यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् । तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु
अयमेवहिपुत्रो मेनान्योऽस्ति तनयोमुने !। अस्मिन्मृतेतुवंशोमेसमुच्छिद्येत्समूलतः
ततः पितृभ्यः पिण्डानां दाताऽपि न भवेद्ध्रुवम् ।
अतः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने !॥ ७७ ॥
इत्युक्तःस तदोवाच दुर्वासाःशङ्करांशजः । ध्यात्वातुसुचिरंकालं यज्ञदेवंद्विजोत्तमम्

दुर्वासा उवाच

यज्ञदेव! कृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते । नास्यपापस्य शान्तिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि

अथापितेसुतस्याहमस्य पापस्यशान्तये । प्रायश्चित्तंवदिष्यामिश्टणुनान्यमताद्विज!
श्रीरामधनुषःकोटौदक्षिणेसलिलार्णवे । स्नातिचेत्तवपुत्रोयंपातकान्मोक्ष्यतेक्षणात्
दुर्विनीताभिधो विप्रो यत्र स्नानाद् द्विजोत्तमाः !।
गुरुस्त्रीगमपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मोचितः ॥ ८२ ॥
सैषाश्रीधनुषःकोटी राघवस्य स्वयंहरेः । स्नानमात्रेण पापौघं नाशयेत्त्वत्सुतस्यसा
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांशृगालवानरसंवादेसुमतिमहा-
पातकविमोक्षोपायकथनन्नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

## पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

### धनुष्कोटिप्रशंसायांशृगालवानरविमोक्षणवर्णनम्

यज्ञदेव उवाच

दुर्वासर्षे महाप्राज्ञ! परावरविचक्षण !। दुर्विनीताभिधःकोऽयं योऽस्मौगुर्वङ्गनामगात्
तस्य पुत्रोधनुष्कोटौस्नानेनसकथंद्विजः । तत्क्षणान्मुमुचे पापाद्गुरुस्त्रीगमसंभवात्
एतन्मे श्रद्दधानस्य विस्तराद्वक्तुमर्हसि ।

दुर्वासा उवाच

पाण्ड्यदेशे पुरा कश्चिद् ब्राह्मणोऽभूद् बहुश्रुतः ॥ ३ ॥
इध्मवाहाभिधोनाम्ना तस्यभार्यारुचिस्तथा । बभूवतस्यतनयोदुर्विनीताभिधोद्विजः
बाल्ये वयसि पुत्रस्य ममार जनकोऽस्य वै ।
दुर्विनीतःपितुस्तस्य स कृत्वा चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ५ ॥
कश्चित्कालंगृहेऽवात्सीन्मात्राविधवयासह । ततोदुर्भिक्षमभवद्द्वादशाब्दमवर्षणात्
ततो देशान्तरमगान्मात्रा साकंद्विजोत्तम! । गोकर्णंससमासाद्यसुभिक्षंधान्यसञ्चयैः

उवास सुचिरंकालं मात्राविधवया सह । ततो बहुतिथे काले दुर्विनीतो गते'सति
पूर्वदुष्कर्मपाकेन मूढबुद्धिरहो बत । अनङ्गशरविद्धाङ्गो रागाद्विकृतमानसः ॥ ६ ॥
मा मेति वादिनीमम्बां बलादाकृष्य पातकी । बुभुजेकाममोहात्मा मैथुनेनद्विजोत्तम!
स खिन्नोदुर्विनीतोऽयं रेतःसेकादनन्तरम् । मनसा चिन्तयन्पापं रुरोदमृशदुःखितः
अहोऽतिपापकृदहं महापातकिनांवरः । अगमं जननीं[यस्मात्कामबाणवशानुनः]
इति सञ्चिन्त्य मनसास तत्र मुनिसन्निधौ । जुगुप्समानश्चात्मानंतान्मुनीनिदमब्रवीत्
गुरुस्त्रीगमपापस्य प्रायश्चित्तं मम द्विजाः । वदध्वं शास्त्रतत्त्वज्ञाःकृपयामयिवेवलम्

मरणान्निष्कृतिःस्याच्चेन्मरिष्यामि न संशयः ।

भवद्भिरुच्यते यत्त प्रायश्चित्तं ममाऽधुना ॥ १५ ॥

करिष्येतद्द्विजाः सत्यं मरणंवान्यदेववा । तच्छ्रुत्वावचनंतस्य केचित्तत्रमुनीश्वराः
अनेनसाकंवार्तातु दोषायेति विनिश्चिताः । मौनित्वंभेजिरेकेचिन्मुनयःकेचिदाभृशम्
दुष्टात्मा मातृगामीत्वं महापातकिनाम्वरः । गच्छगच्छेतिबहुशोवाचमूचुर्द्विजोत्तमाः
तान्निवार्यकृपाशीलः सर्वज्ञःकरुणानिधिः । कृष्णद्वैपायनस्तत्र दुर्विनीतमभाषत
गच्छाशुरामसेतौत्वं धनुष्कोटौसहाम्बया । मकरस्थेरवौमाघे मासमेकंनिरन्तरम्
जितेन्द्रियोजितक्रोधः परद्रोहविवर्जितः । एकमासंनिराहारः कुरुस्नानं सहाम्बया
पूतोभविष्यस्यद्यात्वं गुरुस्त्रीगमदोषतः । यत्पातकं न नश्येत सेतुस्नानेन तन्नहि
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धनुष्कोटिप्रशंसनम् । बहुधाभण्यते पञ्चमहापातकनाशनम्
तस्मात्त्वंत्वरयागच्छ धनुष्कोटिसहाम्बया । प्रमाणंकुरुमद्वाक्यं वेदवाक्यमिवद्विज

श्रीरामधनुषःकोटौ स्नातस्य द्विजपुत्रक! ।

महापातककोट्योऽपि नैव लक्ष्या इतीव हि ॥ २५ ॥

प्रायश्चित्तान्तरं प्रोक्तं मन्वादिस्मृतिभिःस्मृतौ ।

तद्गच्छत्वं धनुष्कोटिं महापातकनाशिनीम् ॥ २६ ॥

इतीरितोऽथ व्यासेन दुर्विनीतो द्विजोत्तमाः ।

मात्रा साकं धनुष्कोटिं नत्वा व्यासं च निर्ययौ ॥ २७ ॥

मकरस्थे रवौमाघे मासमात्रं निरन्तरम् । मात्रा सह निराहारोजितक्रोधोजितेन्द्रियः
श्रीरामधनुषःकोटौ सस्नौ सङ्कल्पपूर्वकम् । रामनाथं नमस्कुर्वंस्त्रिकालंभक्तिपूर्वकम्

मासान्ते पारणांकृत्वा मात्रा सह विशुद्धधीः ।
व्यासान्तिकं पुनःप्रायात्तस्मै वृत्तं निवेदितुम् ॥ ३० ॥
स प्रणम्य पुनर्व्यासं दुर्विनीतोऽब्रवीद्वचः ।

दुर्विनीत उवाच

भगवन्करुणासिन्धो! द्वैपायन महत्तम ! ॥ ३१ ॥

भवतः कृपयाराम धनुष्कोटौ सहाम्बया । माघमासेनिराहारोमासमात्रमतन्द्रितः
अहं त्वकरवंस्नानं नमस्कुर्वन्महेश्वरम् । इतः परंमयाव्यास भगवन्भक्तवत्सल! ॥
यत्कर्त्तव्यं मुने तत्त्वं ममोपदिशतत्त्वतः । इतितस्यवचःश्रुत्वा दुर्विनीतस्य वै मुनिः

बभाषे दुर्विनीतं तं व्यासो नारायणांशकः ।

व्यास उवाच

दुर्विनीत! गतं तेऽद्य पातकं मातृसङ्गजम् ॥ ३५ ॥

मातुश्चपातकं नष्टं त्वत्सङ्गतनिमित्तजम् । सन्देहोनात्र कर्तव्यः सत्यमुक्तं मया तव
बान्धवाःस्वजनाःसर्वेतथाऽन्येब्रह्मणाश्रये । सर्वेत्वासंग्रहीष्यन्तिदुर्विनीताम्बयासह

मत्प्रसादाद्धनुष्कोटौ विशुद्धस्त्वं निमज्जनात् ।
दारसंग्रहणं कृत्वा गार्हस्थं धर्ममाचर ॥ ३८ ॥
त्यज त्वं प्राणिहिंसां च धर्मं भज सनातनम् ।
सेवस्व सज्जनान्नित्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ३६ ॥

सन्ध्योपासनमुख्यानि नित्यकर्माणिन त्यज । निगृहीष्वेन्द्रियग्राममर्चयस्वहरंहरिम्
परापवादं माब्रूया माऽसूयांभजकर्हिचित् । अन्यस्याभ्युदयं दृष्ट्वा सन्तापंकुरुमावृथा
मातृवत्परदारांश्च त्वन्नित्यमवलोकय । अधीतवेदानखिलान्माविस्मर कदाचन ॥

अतिथीन्माऽवमन्यस्व श्राद्धं पितृदिने कुरु ।
पैशुन्यं मा वदस्व त्वं स्वप्नेऽप्यन्यस्य कर्हिचित् ॥ ४३ ॥

इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि संततम् । अवलोकय वेदान्तं वेदाङ्गानि तथा पुनः
हरिशङ्करनामानि मुक्तलज्जोऽनुकीर्त्तय । जाबालोपनिषन्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनं कुरु
रुद्राक्षान् धारय सदा शौचाचारपरो भव । तुलस्याबिल्वपत्रैश्चनारायणहरावुभौ ॥

एकं कालं द्विकालं वा त्रिकालं चार्चयस्व भोः ।
तुलसीदलसम्मिश्रं सिक्तंपादोदकेन च ॥ ४७ ॥
नैवेद्यान्नं सदा भुङ्क्ष्व शम्भुनारायणाग्रतः ।
कुरु त्वं वैश्वदेवाख्यं बलिमन्नविशुद्धये ॥ ४८ ॥

यतीश्वरान्ब्रह्मनिष्ठांस्तर्पयान्नैर्गृहागतान् । वृद्धानन्यानानाथांश्चरोगिणोब्रह्मचारिणः
कुरुत्वं मातृशुश्रूषामौपासनपरो भव । पञ्चाक्षरं महामन्त्रं प्रणवेन समन्वितम् ॥
तथैवाष्टाक्षरं मन्त्रमन्यमन्त्रानपि द्विज! । जप त्वंप्रयतोभूत्वाध्यायन्मन्त्राधिदेवताः
एवमन्यांस्तथाधर्मान् स्मृत्युक्तान्सर्वदाकुरु । एवंकृतवतस्तेस्याद्देहान्तेमुक्तिरप्यलम्
इत्युक्तो व्यासमुनिना दुर्विनीतःप्रणम्य तम् । तदुक्तमखिलंकृत्वादेहान्तेमुक्तिमाप्तवान्
तन्मातापि मृताकाले धनुष्कोटिनिमज्जनात् । अवाप परमांमुक्तिमपुनर्भवदायिनीम्

दुर्वासा उवाच

एवं ते दुर्विनीतस्य तन्मातुश्च विमोक्षणम् । धनुष्कोट्यभिषेकेणयज्ञदेव मयेरितम्
पुत्रमेनं त्वमप्याशु ब्रह्महत्याविशुद्धये । समादाय व्रजब्रह्मन्धनुष्कोटिं विमुक्तिदाम्

सिन्धुद्वीप उवाच

इति दुर्वाससा प्रोक्तो यज्ञदेवो निजं सुतम् ।
समादाय ययौ रामधनुष्कोटिं विमुक्तिदाम् ॥ ५७ ॥

गत्वानिवासमकरोत्षाण्मासं तत्र सद्विजः । पुत्रेण साकं नियतोहेश्शृगालप्लवङ्गमौ

स सस्नौ च धनुष्कोटौ षण्मासं वै स पुत्रकम् ।
षाण्मासान्ते यज्ञदेवं प्राह वागशरीरिणी ॥ ५६ ॥

विमुक्तो यज्ञदेवास्यब्रह्महत्यासुतस्यते । स्वर्णस्तेयात्सुरापानात्किरातीसङ्गमात्तथा

अन्येभ्योऽपि हि पापेभ्यो विमुक्तोऽयं सुतस्तव ।

संशयं मा कुरुष्व त्वं यज्ञदेव! द्विजोत्तम !॥ ६१

इत्युक्त्वा विररामाऽथ सातुवागशरीरिणी । यदाशरीरिणीवाक्यंयज्ञदेवःसशुश्रुवान् सन्तुष्टःपुत्रसहितो रामनाथं निषेव्य च । धनुष्कोटिं नमस्कृत्य पुत्रेण सहितस्तदा स्वदेशं प्रययौ हृष्टः स्वग्रामं स्वगृहं तथा । सपुत्रदारःसुचिरं सुखमास्ते सुनिर्वृतः

सिन्धुद्वीप उवाच

गोमायुवानरावेवं युवयोः कथितं मया । यज्ञदेवसुतस्यास्य सुमतेःपरिमोक्षणम् पातकेभ्योमहद्भ्यश्चधनुष्कोटौ निमज्जनात् । युवामतोधनुष्कोटिं गच्छतःपापशुद्धये

नाऽन्यथा पापशुद्धिःस्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ।

श्रीसूत उवाच

सिन्धुद्वीपस्य वचनमिति श्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥

शृगालवानरावाशु विलङ्घितमहापथौ । धनुष्कोटिं प्रयासेन गत्वा स्नात्वाच तज्जले विमुक्तौ सर्वपापेभ्यो विमानवरसंस्थितौ । देवैःकुसुमवर्षेण कीर्यमाणौ सुतेजसौ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितौ । देवस्त्रीध्रियमानाभ्या चामराभ्यां विराजितौ

गत्वा देवपुरीं रम्यामिन्द्रस्यार्द्धासनं गतौ ।

श्रीसूत उवाच

युष्माकमेवं कथितं शृगालस्य कपेरपि ॥ ७१ ॥

पापाद्विमोक्षणंविप्राधनुष्कोटौनिमज्जनात् । भक्त्यायइममध्यायंशृणोतिपठतेऽपिवा स्नानजफलमाप्नोतिधनुष्कोटौसमानवः । योगिवृन्दैरसुलभांमुक्तिमप्याशुविन्दति

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांशृगालवानरविमोक्षणंनाम- पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

# षट्त्रिंशोऽध्यायः

## धनुष्कोटिप्रशंसायां दुराचारसंसर्गदोषशान्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

धनुष्कोटेस्तु माहात्म्यं भूयोऽपि प्रब्रवीम्यहम् ।
दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद् द्विजाः ॥ १ ॥

मुनय ऊचुः

दुराचाराभिधःकोऽसौसूत ! तत्त्वार्थकोविद !! किं च पापंकृतं तेन दुराचारेणवैमुने!
कथंवापातकान्मुक्तो धनुष्कोटौनिमज्जनात् । एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वदनोमुने

श्रीसूत उवाच

मुनयःश्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम् । स्नानेन धनुषःकोटौ यथामुक्तश्चपातकात्
दुराचाराभिधोविप्रो गौतमीतीरमाश्रितः । कश्चिदस्ति द्विजाः! पापीक्रूरकर्मरतःसदा
ब्रह्मघ्नैश्चसुरापैश्च स्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः । सदासंसर्गदुष्टोऽसौतैःसाकंन्यवसद्द्विजाः
महापातकिसंसर्गदोषेणास्यद्विजस्य वै । ब्राह्मण्यं सकल नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः
महापातकिभिःसार्द्धं दिनमेकन्तुयोद्विजः । निवसेत्सादरंतस्य तत्क्षणार्द्धंद्विजन्मनः
ब्राह्मण्यस्यतुरीयांशो नश्यत्येव न संशयः । द्विदिनंसेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तथा
भोजनात्सह पङ्क्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः ।
द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मणस्य न संशयः ॥ १० ॥
त्रिदिनाच्चतृतीयांशो नश्यत्येव न संशयः । चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयंयातिहिध्रुवम्
अतःपरन्तु तैःसाकं शयनासनभोजनैः । तत्तुल्यपातकी भूयान्महापातकसंभवात्
तेनब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजाः । ग्रस्तोऽभवद्भीषणेन वेतालेन बलीयसा
असौ परवशस्तेन वेतालेनाऽतिपीडितः । देशाद्देशंभ्रमन्विप्रा वनाच्चैव वनान्तरम्
पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः । रामचन्द्रधनुष्कोटिं महापातकनाशिनीम्

अनुद्रुतःपिशाचेन तेनाविष्टोयर्योद्विजाः। न्यमज्जयत्स वेतालो धनुष्कोटिजलेत्वमुम्
धनुष्कोटिजले सोऽयं वेतालेनप्रवेशितः। उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोचितः

उत्थितोऽसौ द्विजो विप्रा! धनुष्कोटिजलात्तदा।
स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं देशो जलधितीरतः॥ १८॥
कथं मयाऽऽगतमिह गौतमीतीरवासिना।
इतिचिन्ताकुलःसोऽयं धनुष्कोटिनिवासिनम्॥ १९॥

दत्तात्रेयंमहात्मानं योगिप्रवरमुत्तमम्। समागम्य प्रणम्याऽसौ दुराचारोऽभ्यभाषत
न जाने भगवन्! देशः कतमोऽयं वदाधुना। गौतमीतीरनिलयोदुराचाराभिधोह्यहम्
कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयात्र कथमागतम्। इति पृष्टो मुनिस्तेन दुराचारेण सुव्रतः॥
ध्यात्वा मुहूर्त्तमवदद्दुराचारं घृणानिधिः। महापातकिसंसर्गाद्दुराचारकृते पुरा

ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेतालस्त्वां ततोऽग्रहीत्।
तेनाविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः॥ २४॥

न्यमज्जयत्त्वांवेतालो धनुष्कोटिजलेऽत्रतु। तत्र मज्जनमात्रेण विमुक्तःपातकाद्भवान्
धनुष्कोटौतुयैस्नानं पुण्यंकुर्वन्तिमानवाः। तेषांनश्यन्ति वैसत्यं पञ्चपातकसञ्चयाः
रामचन्द्रधनुष्कोटावत्र मज्जनमात्रतः। महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं ययौ॥

तन्नाशादेव वेतालस्त्वां मुक्त्वा विलयंगतः।
त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुराऽयं ब्राह्मणोऽभवत्॥ २८॥

सोऽयम्भाद्रपदे मासे कृष्णपक्षे महालयम्। पार्वणेन विधानेनपितृणां नाकरोन्मुदा
तेनस्वपितृभिःशप्तो वेतालत्वमगादयम्। सोऽपि चास्य धनुष्कोटेरवलोकनमात्रतः
वेतालत्वं विहायेह विष्णुलोकमवाप्तवान्। अतो भाद्रपदे मासे कृष्णपक्षेमहालयम्
उद्दिश्य स्वपितॄन्येतुनकुर्वन्त्यतिलोभतः। महालोभयुतास्तेद्धा वेतालाःस्युर्नसंशयः
तस्माद्भाद्रपदे मासे कृष्णपक्षेमहालयम्। पितॄनुद्दिश्यशक्त्या ये ब्राह्मणान्वेदपारगान्
भोजयेयुर्महान्नेन न तेविन्दन्ति दुर्गतिम्। यस्तु भाद्रपदे मासे कृष्णपक्षे महालयम्
स्वशक्त्यानुगुणं विप्रमेकं द्वौत्रीनकिञ्चनः। भोजयेन्नहि दौर्गत्यं भवेत्तस्य कदाचन

अयम्भाद्रपदेमासे पितृणामनुपासनात् । ययौ वेतालतांविप्रो यस्त्वांजग्राहपापिनम्
कालो भाद्रपदंमासमारभ्यवृश्चिकावधि । महालयस्यकथितो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
मासोभाद्रपदःकालस्तत्रापिहिविशिष्यते । कृष्णपक्षोविशिष्टःस्याद्दुराचारक!तत्रवै
तस्मिञ्छुभेकृष्णपक्षे प्रथमायांतथातिथौ । श्राद्धंमहालयं कुर्याद्यो नरोभक्तिपूर्वकम्
तस्य प्रीणाति भगवान्पावकःसर्वपावनः । सवह्निलोकमाप्नोति वह्निना सह मोदते

तस्मै च ज्वलनो देवः सर्वैश्वर्यं ददात्यपि ।
प्रथमाया तिथौ मर्त्यो यो न कुर्यान्महालयम् ॥ ४१ ॥

वह्निर्गृहं दहेत्तस्य श्रियं क्षेत्रादिकं तथा । वेदविद्ब्राह्मणे भुक्ते प्रथमायां महालये

दशकल्पसहस्राणि पितरो यान्ति तृप्तताम् ।
द्वितीयायां तु यो भक्त्या कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ४३ ॥

तस्य प्रीणाति भगवान्भवानीपतिरीश्वरः । स कैलासमवाप्नोति शिवेन सहमोदते

विपुलां सम्पदं तस्मै प्रीतो दद्यान्महेश्वरः ।
द्वितीयायां तिथौ मर्त्यो यो न कुर्यान्महालयम् ॥ ४५ ॥

तस्य वंकुपितःशम्भुर्नाशयेद्ब्रह्मवर्चसम् । रौरवं कालसूत्राख्यं नरकं चास्यदास्यति
वेदविद्ब्राह्मणेभुक्तेद्वितीयायांमहालये । विंशत्कल्पसहस्राणि पितरोयान्तितृप्तताम्

अनुग्रहात्पितृणां च सन्ततिश्चास्य वर्द्धते ।
तृतीयायां नरोभक्त्या कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ४८ ॥

तस्यप्रीणाति भगवाँल्लोकपालो धनाधिपः । महापद्मादिनिधयो वर्तन्तेतस्यवैवशे
तस्यानुग्राह्ययोदेवाब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तृतीयायांतिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम्
धनदो भगवांस्तस्य सम्पदंहरतिक्षणात् । दारिद्र्यंचददात्यस्मैबहुदुःखसमाकुलम्

तृतीयायां तिथौ मर्त्यो यः करोति महालयम् ।
तृप्यन्ति पितरस्तस्य त्रिंशत्कल्पसहस्रकम् ॥ ५२ ॥
चतुर्थ्यान्तु नरो भक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ।
तस्य प्रीणाति भगवान्हेरम्बः पार्वतीसुतः ॥ ५३ ॥

तस्य विघ्नाश्च नश्यन्ति गजवक्त्रप्रसादतः ।
चतुर्थ्यान्तु तिथौमर्त्यो यो न कुर्यान्महालयम् ॥ ५४ ॥
विघ्नेशो भगवांस्तस्यसदाविघ्नंकरोतिहि । चण्डकोलाहलाभिख्ये नरकेचपतत्यथ
चतुर्थ्यांचैतिथौमर्त्यो यःकरोतिमहालयम् । पितरःकल्पसाहस्रंचत्वारिंशत्प्रहर्षिताः
बहून्पुत्रान्प्रदास्यन्ति श्राद्धकर्तुर्निरन्तरम् ।
पञ्चम्यां तु तिथौ भक्त्या यो न कुर्यान्महालयम् ॥ ५७ ॥
तस्यलक्ष्मीर्भगवती परित्यजतिमन्दिरम् । अलक्ष्मीः कलहाधारातस्यप्रादुर्भवेद्गृहे
पञ्चम्यांतु तिथौमर्त्योयःकरोतिमहालयम् । तस्यतृप्यन्तिपितरःपञ्चकल्पसहस्रके
सन्ततिं चाप्यविच्छिन्नामस्मै दास्यन्ति तर्पिताः ।
पार्वती च प्रसन्ना स्यान्महदैश्वर्यदायिनी ॥ ६० ॥
षष्ठ्यां तिथौ नरो भक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ।
तस्य प्रीणाति भगवान्षण्मुखः पार्वतीसुतः ॥ ६१ ॥
तस्यपुत्राश्चपौत्राश्च षण्मुखस्य प्रसादतः । ग्रहैर्बालग्रहैश्चैव न बाध्यन्ते कदाचन
षष्ठ्यां तिथौ नरो भक्त्या यो न कुर्यान्महालयम् ।
तस्य स्कन्दो महासेनो विमुखः स्यान्न संशयः ॥ ६३ ॥
गर्भान्निर्गतमात्रैव प्रजा तस्य विनश्यति । पूतनादि ग्रहकुलैर्बाध्यते च निरन्तरम्
वह्निज्वाला प्रवेशाख्ये नरके च पतत्यधः ।
षष्ठ्यां तिथौ यः श्रद्धावान्कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ६५ ॥
षष्टिकल्पसहस्रन्तु पितरोयान्ति तृप्तताम् । पुत्रानपिप्रदास्यन्तिसम्पदं विपुलांतथा
सप्तम्यां तु तिथौ मर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ।
हिरण्यपाणिर्भगवानादित्यस्तस्य तुष्यति ॥ ६७ ॥
अरोगो दृढगात्रःस्याद्भास्करस्य प्रसादतः ।
हिरण्यपाणिर्भगवान्हिरण्यं पाणिना स्वयम् ॥ ६८ ॥
महालयश्राद्धकर्त्रे ददाति प्रीतमानसः । सप्तम्यांतुतिथौ भक्त्यायोनकुर्यान्महालयम्

व्याधिभिः क्षयरोगाद्यैर्बाध्यते स दिवानिशम्।
तीक्ष्णधाराख्यशय्याख्ये नरके च पतत्यधः ॥ ७० ॥
सप्तम्यांयोनरोभक्त्याश्राद्धंकुर्यान्महालयम्। सप्ततिकल्पसाहस्रंप्रीणन्तिपितरोस्यवै
सन्ततिं चाप्यविच्छिन्नां दद्युः पितृगणाःसदा।
अष्टम्यां तु तिथौ मर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ॥ ७२ ॥
मृत्युञ्जयः कृत्तिवासास्तस्यप्रीणातिशङ्करः। करस्थं तस्यकैवल्यंशङ्करस्यप्रसादतः
महालयेन श्राद्धेन तुष्टे साक्षात्त्रियम्बके। चतुर्दशसुलोकेषु दुर्लभं तस्य किम्भवेत्
महालयं न कुर्याद्वै योऽष्टम्यांमूढचेतनः। संसारसागरेघोरे सदा मज्जति दुःखितः
कदाचिदपितस्येष्टं नैवसिद्ध्यति भूतले। वैतरिण्याख्यनरके पतत्याचन्द्रतारकम्
योऽष्टम्यांश्रद्धयाश्राद्धंनरःकुर्यान्महालयम्। अशीतिकल्पसाहस्रंतृप्यन्तिपितरोस्यवै
आशीर्भिर्वर्द्धयन्त्येनं विघ्नश्चास्य व्यपोहति।
सन्ततिं चाप्यविच्छिन्नां दद्यु·पितृगणाः सदा ॥ ७८ ॥
नवम्यांतुतिथौमर्त्यःश्राद्धंकुर्यान्महालयम्। दुर्गादेवीभगवतीतस्यप्रीणातिशाम्भवी
क्षयापस्मारकुष्ठादीन्क्षुद्रप्रेतपिशाचकान्। नाशयेत्तस्य सन्तुष्टा दुर्गामहिषमर्दिनी
नवम्यां तु तिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम्। अपस्मारेणपीड्येत तथैवब्रह्मरक्षसा
अभिचारार्थकृत्याभिर्बाध्येत च निरन्तरम्।
नवम्यां यस्तिथौमर्त्यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ॥ ८२ ॥
नवतिंकल्पसाहस्रंतृप्यन्तिपितरोस्यवै। सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नांदद्युःपितृगणाःसदा
दशम्यान्तुतिथौमर्त्यःश्राद्धंकुर्यान्महालयम्। तस्यामृतकलश्चन्द्रःषोडशात्माप्रसीदति
औषधीनामधीशे ऽस्मिञ्छ्राद्धेनाऽनेन तोषिते।
व्रीह्यादीनि तु धान्यानि दद्युरोषधयः सदा ॥ ८५ ॥
यो न कुर्याद्दशम्यां तु महालयमनुत्तमम्।
औषध्यो निष्फलास्तस्य कृषिश्चाप्यस्य निष्फला ॥ ८६ ॥
दशम्यांयस्तिथौमर्त्यःश्राद्धंकुर्यान्महालयम्। शतकल्पसहस्राणितृप्यन्तिपितरोस्यवै

सन्तति चाप्यविच्छिन्नां दद्युः पितृगणाः सदा ।
एकादश्यां नरो भक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ॥ ८८ ॥

संहर्ता सर्वलोकस्य तस्यरुद्रः प्रसीदति । रुद्रस्य सर्वसंहर्तुः प्रसादेन जगत्पतेः शत्रून्पराजयत्येष श्राद्धकर्तानिरन्तरम् । ब्रह्महत्यायुतंचापि तस्य नश्यतितत्क्षणात्

अग्निष्टोमादियज्ञानां फलमाप्नोति पुष्कलम् ।
एकादश्यां नरो भक्त्या यो न कुर्यान्महालयम् ॥ ९१ ॥

तस्यवै विमुखोरुद्रोनप्रसीदतिकर्हिचित । सर्वतो वर्धमानाश्च बाधन्ते शत्रवोह्यमुम्

अग्निष्टोमादिका यज्ञाः कृताश्च बहुदक्षिणाः ।
निष्फला एव तस्य स्युर्भस्मनि न्यस्तहव्यवत ॥ ९३ ॥
ब्रह्मघातकतुल्यः स्याच्छ्राद्धाकरणदोषतः ।
एकादश्यां तिथौ यस्तु श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ॥ ९४ ॥

द्विशतंकल्पसाहस्रंतृप्यन्तिपितरोऽस्यवै । सन्ततिंचाप्यविच्छन्नांदद्युःपितृगणाःसदा

द्वादश्यां तु तिथौ मर्त्यः कुर्याच्छ्राद्धं महालमम् ।
तस्य लक्ष्मीपतिः साक्षात्प्रसीदति जनार्दनः ॥ ९६ ॥

प्रसन्ने सति देवेशे देवदेवे जनार्दने । चराचरंजगत्सर्वं प्रीतमेव न संशयः ॥ भूमिर्हरिप्रिया चास्यसस्यं संवर्द्धयत्यपि । लक्ष्मीश्चवर्द्धतेतस्यमन्दिरेहरिवल्लभा गदाकौमोदकीनाम नारायणकरस्थिता । अपस्मारादिभूतानि नाशयत्येव सर्वदा तीक्ष्णधारं तथाचक्रंशत्रूनस्यदहत्यपि । यातुधानपिशाचादीञ्छङ्खश्चास्यव्यपोहति एवं सर्वात्मना पीडां वारयत्यस्य केशवः । महालयं न कुर्याद्यो द्वादश्यांमनुजाधमः तस्यक्षेत्राणि सम्पद्य विनश्यन्तिनसंशयः । अपस्मारादिभूतानि शत्रवश्चमहावलाः यातुधानाश्च बाधन्ते तंवै विष्णुपराङ्मुखम् । पात्यते नरकेचापि अस्थिभेदननामके

द्वादश्यां भक्तियुक्तो यः श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ।
षट्शतं कल्पसाहस्रं प्रीणन्ति पितरोऽस्य वै ॥ १०४ ॥
सन्तति चाप्यविच्छिन्नां पितरोऽस्मै ददत्यपि ।

त्रयोदश्यां नरो भक्त्या श्राद्धं कुर्यान्महालयम् ॥ १०५ ॥
प्रसीदत्यस्य भगवान्कन्दर्पो रतिनायकः । स्रक्चन्दनादयोभोगा ललनाश्चमनोरमाः
कामदेवप्रसादेन तस्यसिद्ध्यन्तिसर्वदा । आजन्म मरणान्तंच सुखमेव सविन्दते
यो न कुर्यात्त्रयोदश्यां भक्त्या श्राद्धम्महालयम् ।
कामदेवोऽस्य विमुखः स्त्रियो भोगांश्च नाशयेत् ॥ १०८ ॥
अङ्गारशय्याभ्रमणे नरके पातयत्यमुम् । पितॄनुद्दिश्ययः कुर्यात्त्रयोदश्यां महालयम्
सहस्रकल्पसाहस्रं प्रीणन्ति पितरोऽस्य वै ।
सन्तति चाप्यविच्छिन्नां दद्युः पितृगणास्तदा ॥ ११० ॥
चतुर्दश्यांनरोभक्त्याश्राद्धंकुर्यान्महालयम् । तस्याभीष्टप्रदानायजागर्तिभगवाञ्छिवः
उपदिश्य शिवज्ञानं सायुज्यं च ददात्यपि । सुरापानायुतंचापिस्वर्णस्तेयायुतंतथा
नश्यन्ति तत्क्षणादेव चतुर्दश्यांमहालयात् । चण्डालवृषलस्त्रीणांसङ्गदोषोपिनश्यति
अश्वमेधसहस्रस्यपौण्डरीकायुतस्यच । पुष्कलाफलसिद्धिःस्याच्चतुर्दश्यांमहालयात्
यो न कुर्याच्चतुर्दश्यां श्राद्धमेतन्महालयम् । सकल्पकोटिसाहस्रंकल्पकोटिशतन्तथा
संसारान्धमहाकूपे पतितःस्यादनिष्कृतिः । अचोरयित्वाकनकमर्पात्वाऽपिसुरांतथा
सुरापानादिभिर्दोषैर्लिप्यते स विमूढधीः ।
कृता अपि विधानेन यज्ञास्स्युर्निष्फलास्तथा ॥ ११७ ॥
चतुर्दश्यांतिथौयस्तुकुर्याच्छ्राद्धंमहालयम् । लक्षकोटिसहस्राणिलक्षकोटिशतानिच
कल्पानि पितरस्तस्य तृप्यन्त्येवनसंशयः । नरकस्थाश्चपितरःस्वर्गंयान्तिप्रहर्षिताः
सन्तति चाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणास्सदा ।
अमायान्तु नरो भक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ १२० ॥
पितॄणांतस्य तृप्तिःस्यादनन्तानात्रसंशयः । सुधामास्वाद्ययातृप्तिर्देवानादिविवैभवेत्
अनन्ता तादृशीतृप्तिरमावास्यां महालयात् । अमावास्यामहापुण्यापितृदेवनमस्कृता
शान्ता ह्येषा तु परमा शिवस्यचमहाप्रिया । तस्यांमहालयैश्राद्धेभोजयेद्वेदवित्तमान्
तेन तृप्तिःपितॄणां स्यादनन्ता तुष्यते शिवः । ब्रह्महत्यादयःपञ्चपातकानाशमाप्नुयुः

कृताश्चस्युर्विधानेनसर्वेयज्ञाःसदक्षिणाः । अनुष्ठितास्स्युर्विधिवत्सर्वेधर्माःसनातनाः
अमावास्यादिने येन कृतंश्राद्धंमहालयम् । प्रत्यग्ब्रह्मैकतांज्ञात्वासायुज्यंयात्यसंशयम्
यो न कुर्यादमावास्यां महालयमचेतनः । ब्रह्मलोकगताश्चास्यपितरोयान्तिनारकम्

सन्ततिश्चास्य मूढस्य विच्छिद्येतैव तत्क्षणात् ।

स एव हि महाऽनर्थो ( महानर्थो ) यदमायान्तिथौ नरः ॥ १२८ ॥

महालयार्थेविप्रेन्द्राविधिवच्चैव(नैव)भोजिताः । मासिभाद्रपदेप्राप्तेनृत्यन्तिपितृदेवताः
अस्मानुद्दिश्य मत्पुत्रा भोजयेयुर्द्विजोत्तमान् । तेननोनरकक्लेशोनभविष्यतिदारुणः
वासश्चस्वर्गलोकेस्याद्यावदाचन्द्रतारकम् । मासि भाद्रपदेप्राप्ते पितॄणांतृप्तिदायिनि
एकैकं भोजयेद्विप्रं प्रत्यहं भक्तिपूर्वकम् । पितृमातृकुलोद्भूताः पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः
कृष्णपक्षेविशेषेण ब्राह्मणान्भोजयेन्सुधीः । घृतसूपादिसस्यैश्च तैलाभ्यङ्गपुरःसरम्
सुधां पास्यन्तिपितरस्तस्याकल्पं प्रहर्षिताः । सप्तमीकृष्णपक्षस्य प्रारभ्यप्रत्यहंनरः

विप्रान्यावदमावास्या त्रींस्त्रीनभ्यर्च्य भोजयेत् ।

आरभ्य द्वादशीं विप्रांस्त्रींनवश्यन्तु भोजयेत् ॥ १३५ ॥

अन्यथैश्वर्यहानिः स्यान्महादारिद्र्यभाग्भवेत् ।

वित्तलोभं परित्यज्य विप्रान्सूपघृतादिभिः ॥ १३६ ॥

पयसा पयसान्नेन दध्नाऽपूपादिभिस्तथा । पेयैर्लेह्यैश्चचोष्यैश्च भक्ष्यैश्चविविधैरपि

भोजयेद्वेदविन्मुख्यांस्तृप्तिस्तेषां यथा भवेत् ।

तेन ब्रह्मा हरिः शम्भुस्तृप्तास्स्युर्नात्र संशयः ॥ १३८ ॥

अग्निष्वात्तादि पितरस्तथैवेन्द्राधिदेवताः । बहुनाऽत्रकिमुक्तेन तुष्टन्तेन जगत्त्रयम्
पार्वणेन विधानेन कुर्याच्छ्राद्धंमहालयम् । नरो महालयश्राद्धे पितृवंश्यान्पितॄनिव
मातृवंश्यानपि पितॄन्भोजयेच्छ्रेयसेमुदा । दक्षिणां च यथाशक्तिदद्याद्वित्तानुसारतः
तस्मिन्महालयेश्राद्धेवित्तशाठ्यं न कारयेत् । दक्षिणा खलुयज्ञानांकथितेयंपुरोगवा
अनः पुरोगवैर्हीनं नरिष्यतियथाध्वनि । अदक्षिणंतथासोयं पितृयज्ञोऽपिरिष्यति
तस्माद्यज्ञेषु दातव्या दक्षिणाल्पापि जानता । विधवाभिरपिस्त्रीभिरपुत्राभिर्महालयः

भर्त्तुरुद्दिश्य कर्तव्यो भूरिभोजनकर्मणा। अन्यथा धर्महानिः स्यान्नरकं च महद्भवेत्
मासिभाद्रपदेप्राप्ते योनकुर्यान्महालयम्। तत्कुलंनाशमाप्नोति ब्रह्महत्याञ्च विन्दति
महालयं प्रकुर्वन्ति श्रद्धावन्तः पितृन्प्रति। न तेषां सन्ततिच्छेदो भवेत्सम्पदभङ्गुरा
आलयं ह्यास्पदं प्रोक्तं महःकल्याणमुच्यते। कल्याणानामास्पदत्वान्महालयमुदीर्यते
तस्मान्महालयं मर्त्यःकुर्यात्कल्याणसिद्धये। अमङ्गलं भवेत्तस्यनकुर्याच्चेन्महालयम्
न कुर्याद्यद्यपि श्राद्धंमातापित्रोर्मृतेऽहनि। कुर्यान्महालयश्राद्धमस्मरन्नेवबुद्धिमान्
कर्तुं महालयश्राद्धं यदिशक्तिर्न विद्यते। याचित्वापिनरः कुर्यात्पितृणांतन्महालयम्
ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो याचेतधनधान्यकम्। पतितेभ्योनगृह्णीयाद्धनधान्यंकदाचन
ब्राह्मणेभ्यो न लभ्येतयदि धान्यधनादिकम्। याचेतक्षत्रियश्रेष्ठान्महालयचिकीर्षया
दातारश्चेन्न भूपाला वैश्येभ्योपिचयाचयेत्। वैश्याअपिहिदातारोयदिलोकेनसन्तिवै
दद्याद्भाद्रपदे मासे गोग्रासं पितृतृप्तये। अथवा रोदनं कुर्याद्बहिर्निर्गत्य कानने
पाणिभ्यामुदरं स्वीयमोहत्याश्रूणि वर्तयन्। तेष्वरण्यप्रदेशेषु उच्चैरेवं वदेन्नरः
शृण्वन्तु पितरःसर्वे मत्कुलीनावचोमम। अहं दरिद्रः कृपणो निर्ल्लज्जः क्रूरकर्मकृत्
प्राप्तो भाद्रपदोमासः पितृणांप्रीतिवर्द्धनः। कर्त्तुं महालयश्राद्धं नचमेशक्तिरस्तिवै
भ्रमित्वापिमहींकृत्स्नांनमेकिञ्चनलभ्यते। अतोमहालयंश्राद्धंनयुष्माकंकरोम्यहम्
क्षमध्वं मम तद्यूयं भवन्तो हि दयापराः। दरिद्रो रोदनं कुर्यादेवं काननभूमिषु
तस्यरोदनमाकर्ण्य पितरस्तत्कुलोद्भवाः। हृष्टास्तृप्तिं प्रयान्त्येव सुधांपीत्वैवनिर्जराः
महालयार्थे विप्रौघे भुक्ते तृप्तिर्यथाभवेत्। गोग्रासारण्यरुदितैः पितृतृप्तिस्तथाभवेत्
मासिभाद्रपदेविघ्नो यदिस्यात्सूतकादिना। यातेषु सूतकाहस्सुकुर्यादावृश्चिकावधि
बुधो महालयस्यार्थे ब्राह्मणान्वृणुयान्नव। पित्रर्थमेकं वृणुयात्पितामहकृते तथा
प्रपितामहमुद्दिश्य तथैकं वृणुयाद्द्विजम्। तथामातामहार्थन्तु एकंवैवृणुयाद्द्विजम्
मातुः पितामहार्थञ्च वृणुयाद्द्विजमेककम्। वृणुयादेकमुद्दिश्यमातुश्च प्रपितामहम्
तथैव विश्वेदेवार्थे वृणुयाद्द्वौ द्विजोत्तमौ। विष्ण्वर्थब्राह्मणंत्वेकं वृणुयाद्वेदवित्तमम्
एवं महालयश्राद्धे ब्राह्मणान्वृणुयान्नव। अथवा पितृवर्गार्थं वरयेद्विप्रमेककम्

मातामहादीन्वोद्दिश्य वरयेद्विप्रमेककम् । विश्वेदेवार्थमेकञ्च विष्णवर्थञ्चतथापरम्
एवंवैवरयेद्विप्रांश्चचतुरस्तु महालये । ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्सुशीलान्वरयेत्सुधीः
दुःशीलान्वरयेद्यस्तु सर्वश्राद्धम्यघातकः । मासि भाद्रपदेप्राप्ते कृष्णपक्षेविशेषतः
कुर्यान्महालयश्राद्धं यो नरः श्रद्धयासह । सस्नातःसर्वतीर्थेषु दुराधार ! महामते!
अग्निष्टोमादयो यज्ञाः शतमप्यमुनाकृताः । तुलापुरुषमुख्यानि दानान्यपि कृतानि वै
चान्द्रायणादिकृच्छ्राणि कृतान्येव न संशयः । चतुर्णांसाङ्गवेदानांपारायणफलंलभेत्
गायत्र्यादिमहामन्त्रजपपुण्यंलभेत्तथा । इतिहासपुराणानां पारायणफलंलभेत्
महालयसमं पुण्यं वृत्त नास्ति महीतले । ब्रह्मविष्णुमहेशानलोकप्राप्तिर्महालयात्
महालयादिकंश्राद्धं नित्यं काम्यमपीष्यते । तस्मादकरणेतस्य प्रत्यवायो महान्भवेत्
करणादिष्टसिद्धिश्च भविष्यति न संशयः । महालयस्य करणाद्भूतवेतालकादयः

अपस्मारग्रहाश्चापि शाकिनीडाकिनीगणाः ।

यातुधानाः पिशाचाश्च वेतालाश्च भयानकाः ॥ १७६ ॥

नश्यन्ति तत्क्षणादेव भूतान्यन्यानि वै तथा । महालयस्य करणाद्विपुलांश्रियमश्नुते
पुरा दशरथो राजा वसिष्ठस्योपदेशतः । मासिभाद्रपदे प्राप्ते कृत्वा श्राद्धं महालयम्

रामादींश्चतुरः पुत्रान्प्राप्तवाँल्लोकसम्मतान् ।

विश्वातिशायिनीं लक्ष्मीं प्रपेदे कीर्तिमुत्तमाम् ॥ १८२ ॥

महालयस्य करणाद्ययातीराजसत्तमः । यदुमुख्यान्महापुत्रान्प्रपेदे वंशवर्द्धनान्
अनन्यदुर्लभं स्वर्गं प्रपेदे श्राद्धपुण्यतः । दुष्यन्तो भरतं लेभे महालयविधानतः
महालयविधानेन दमयन्ती पतिर्नलः । कृच्छ्रं महत्तरं तीर्त्वा पुनर्लेभेमहीमिमाम्
निजग्राहकलिघोरंपुष्करंचाप्यरातिनम् । इन्द्रसेनाभिधानञ्च पुत्रं लेभेऽतिधार्मिकम्
हरिश्चन्द्रोमहाराजो महालयविधानतः । विश्वामित्रकृताद्दुःखान्मुक्तःसत्यवतांवरः
लेभे चन्द्रवतीं भार्यां लो(रो)हिताश्वंसुतं पुनः । महालयविधानेनकृतवीर्यसुतोबली
अष्टादशानां द्वीपानामाधिपत्यमवाप्तवान् । रामोऽपि दण्डकारण्ये महालयविधानतः
हत्वा तु रावणं संख्ये सीतां पुनरवाप्तवान् । महालयस्य करणाद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः

दुःखसागरमुत्तीर्य धार्तराष्ट्राञ्जघान च । महालयस्य करणाद्वसिष्ठो मुनिसत्तमः
अत्रिर्भृगुश्चकुत्सश्चगौतमश्चाङ्गिरास्तथा । काश्यपश्चभरद्वाजोविश्वामित्रश्चकुम्भजः
पराशरो मृकण्डश्च ये चान्ये मुनिसत्तमाः । विधाय विधिवच्छ्राद्धं महालयमनुत्तमम्

अणिमाद्यष्टसिद्धीनांव्रतानां तपसां तथा ।
निवासभूताःसञ्जातास्तथा विश्वातिशायिनः ॥ १६४ ॥

जीवन्मुक्ताश्च तेसर्वे ह्यभवन्मुनिसत्तमाः । अतो महालयश्राद्धं कर्तव्यं भूतिमिच्छता
अतोऽद्यापिदुराचार! नकुर्याद्योमहालयम् । भूतवेतालकादिभ्यो भूयात्तस्य महद्भयम्
महालयस्याकरणाद्वेतालत्वमवाप्नुयात् । त्वयाऽऽविष्टमिदं भूतंविप्रःसन्पूर्वजन्मनि

नाम्ना वेदनिधिःपुण्यो भरद्वाजस्य चात्मजः ।
कुशस्थल्यभिधाने च वसन्ग्रामे महामनाः ॥ १६८ ॥

न चकार विधानेनश्राद्धमेतन्महालयम् । ततोऽयं पितॄणां शापाद्वेतालत्वमवाप्तवान्
तस्माद्भाद्रपदे मासे दुराचार! पितॄन्प्रति । ब्राह्मणान्भोजयान्नेन षड्रसेन सभक्तिकम्
दारिद्र्य तेन तेनस्यात्सुखी चैवभवान्भवेत् । महापातकिसंसर्गं माकुरुत्वमितःपरम्

त्वयाऽनुभूतं यद्दुःखं वेतालग्रहणोद्भवम् ।
गच्छत्वमनजानामि स्वदेशं प्रति मा चिरम् ॥ २०२ ॥

इतीरितःस मुनिना दत्तात्रेयेण योगिना । तं प्रणम्य ययौ देशं कृतार्थेनान्तरात्मना
गत्वाचस्वगृहंविप्रो दुराचारोद्विजोत्तमाः । विमुक्तवेतालभयो गतपातककञ्चुकः
दत्तात्रेयेरितेनासौ मार्गेण प्रीतमानसः । त्यक्तपातकिसंसर्गः स्वाश्रमाचारतत्परः ॥
रामचन्द्रधनुष्कोटितीर्थमज्जनगौरवात् । देहान्ते परमां मुक्तिं दुराचारो ययौ तदा

श्रीसूत उवाच

एवं वःकथितं पुण्यं दुराचारविमोक्षणम् ।
सेयं पुण्या धनुष्कोटिर्महापातकनाशिनी ॥ २०७ ॥

यत्र हिस्नानमात्रेण दुराचारो विमोचितः । अथवा धनुषःकोटेरियत्ता किंहिवैभवेत्

या निष्कृतिविहीनानि पापान्यपि विनाशयेत् ।

प्रायश्चित्तविहीनानि यानि पापानि सन्ति वै ॥ २०९ ॥
तान्यप्यत्र विनश्यन्ति धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।
शूद्रेण पूजितं लिङ्गं विष्णुं वा यो नमेद् द्विजः ॥ २१० ॥
प्रायश्चित्तं न तस्योक्तं स्मृतिभिः परमर्षिभिः ।
नश्येत्तस्यापि तत्पापं धनुष्कोटिनिमज्जनात् ॥ २११ ॥

विप्रनिन्दाकृतांनृणां प्रायश्चित्तंनविद्यते । विश्वासघातकानाञ्च कृतघ्नानांननिष्कृतिः
भ्रातृभार्यारतानाञ्च प्रायश्चित्तंनविद्यते । शूद्रान्नेनियतानाञ्च श्रुतिनिन्दारतात्मनाम्
कन्याविक्रयिणांविप्राहयविक्रयिणां तथा । देवविक्रयिणांवेदविक्रयेनिरतात्मनाम्
धर्मविक्रयिणांपुंसांवृत्तविक्रयिणान्तथा । तीर्थविक्रयिणांपुंसांप्रायश्चित्तंनविद्यते
तेषां पापानिनश्यन्तिधनुष्कोटौनिमज्जनात् । मातृद्रोहपितृद्रोहयतिद्रोहरतात्मनाम्

गुरुनिन्दापराणाञ्च शिवनिन्दारतात्मनाम् ।
विष्णुनिन्दापराणाञ्च यतिनिन्दारतात्मनाम् ॥ २१७ ॥

सत्कथादूषकाणाञ्चप्रायश्चित्तंनविद्यते । तेषांचात्रधनुष्कोटौस्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति
एवंवःकथितंविप्रा धनुष्कोटेस्तुवैभवम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि

श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांदुराचारसंसर्गदोषशान्तिर्नाम-
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

# सप्तत्रिंशोऽध्यायः

## क्षीरकुण्डप्रशंसायांक्षीरकुण्डस्वरूपकथनम्

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाःसर्वे नैमिषारण्यवासिनः । यावद्रामधनुष्कोटिचक्रतीर्थमुखानिवः
चतुर्विंशतितीर्थानि कथितानि मयाऽधुना । इतोन्यदद्भुतं यूयं किंभूयःश्रोतुमिच्छथ

मुनय ऊचुः

क्षीरकुण्डस्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेमुने ।। यत्समीपेत्वयाचक्रतीर्थमित्युदितंपुरा
क्षीरकुण्डश्चतत्कुत्रकीदृशंतस्यवैभवम् । क्षीरकुण्डमितिख्यातिःकथंवास्यसमागता
एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि ।

श्रीसूत उवाच

ब्रवीमि मुनयः! सर्वे शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ५ ॥

देवीपुरान्महापुण्यात्प्रतीचरां दिश्यदूरतः । फुल्लग्राममितिख्यातंस्थानमस्तिमहत्तरम्
यत आरभ्य रामेण सेतुबन्धो महार्णवे । तद्धि पुण्यतमं क्षेत्रं फुल्लग्रामाभिधं पुरम्
क्षीरकुण्डन्तु तत्रैव महापातकनाशनम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाच्चापि मोक्षदम् ॥ ८ ॥

तस्यतीर्थस्यपुण्यस्य क्षीरकुण्डमितिप्रथाम् । भवतांसादरं वक्ष्येशृणुध्वंश्रद्धयासह
पुरा हि मुद्गलोनाम मुनिर्वेदोक्तमार्गकृत् । दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे फुल्लग्रामेऽतिपावने
नरायणप्रीतिकरममरोद्यज्ञमुत्तमम् । तस्य विष्णुःप्रसन्नात्मा यागेन परितोषितः
प्रादुर्बभूवपुरतोयज्ञवाटे द्विजोत्तमाः । तं दृष्ट्वामुद्गगलो विष्णुं लक्ष्मीशोभितविग्रहम्
कालमेघतनुं कान्त्यापीताम्बरविराजितम् । विनतानन्दनारूढं कौस्तुभालंकृतोरसम्
शङ्खचक्रगदापद्मराजद्बाहुचतुष्टयम् । भक्त्या परवशो दृष्ट्वा पुलकाङ्कुरमण्डितः ॥
मुद्गलःपरितुष्टाव शब्दैः श्रोत्रसुखावहैः ।

मुद्गल उवाच

प्रथमं जगतःस्रष्ट्रे पालकाय ततःपरम् ॥ १९ ॥
संहर्त्रे च ततःपश्चान्नमो नारायणाय ते । नमःशफररूपाय कमठाय चिदात्मने
नमो वराहवपुषे नमःपञ्चास्यरूपिने । वामनाय नमस्तुभ्यं जमदग्निसुताय ते
राघवायनमस्तुभ्यंबलभद्राय ते नमः । कृष्णाय कल्कये तुभ्यं नमो विज्ञानरूपिणे
रक्ष मां करुणासिन्धो! नारायणजगत्पते !। निर्लज्जंकृपणंक्रूरंपिशुनंदाम्भिकंकृशम्
परदारपरद्रव्यपरक्षेत्रंकलोलुपम् । असूयाविष्टमनसं मां रक्ष कृपया हरे !॥ २० ॥
इति स्तुतो हरिःसाक्षान्मुद्गलेन द्विजोत्तमाः । तमाह मुद्गलमुनिं मेघगम्भीरया गिरा

श्रीहरिरुवाच

प्रीतोऽस्म्यनेन स्तोत्रेण मुद्गल! क्रतुनाधुना । प्रत्यक्षेणहविर्भोक्तुमहन्ते क्रतुमागतः
इत्युक्तो हरिणा तत्र मुद्गलस्तुष्टमानसः । उवाचाधोक्षजं विप्रो भक्त्या परमयायुतः

मुद्गल उवाच

कृतार्थोऽस्मि हृषीकेश! पत्नी मे धन्यतांययौ । अद्यमेसफलं जन्म ह्यद्यमेसफलं तपः
अद्य मे सफलो वंशो ह्यद्य मे सफलास्सुताः । आश्रमःसफलोऽद्यैव सर्वंसफलमद्य मे
यद्भवान्यज्ञवाटम्मे हविर्भोक्तुमिहागतः । योगिनो योगनिरता हृदये मृगयन्ति यम्
तमद्य साक्षात्त्वां पश्ये सफलोऽयं मम क्रतुः ।
इतीरयित्वा तं विष्णुमर्चयित्वाऽऽसनादिभिः ॥ २७ ॥
चन्दनैःकुसुमैरर्घ्यैर्दत्त्वाचार्घ्यंसविष्णवे । प्रददौविष्णवे प्रीत्या पुरोडाशादिकंहविः
स्वयमेव समादाय पाणिना लोकभावनः । हविस्तद्ब्रह्मभुजे विष्णुर्मुद्गलेन समर्पितम्
तस्मिन्हविषिभुक्तेतुविष्णुनाप्रभविष्णुना। सागरास्त्रिदशाःसर्वेतृप्ताःसमभवन्द्विजाः
ऋत्विजो यजमानश्च तत्रत्या ब्राह्मणास्तथा ।
यत्किञ्चित्प्राणिलोकेऽस्मिश्चरं वा यदि वाऽचरम् ॥ ३१ ॥
सर्वमेव जगत्तृप्तं भुक्ते हविषि विष्णुना । ततो हरिःप्रसन्नात्मा मुद्गलं प्रत्यभाषत
प्रीतोऽहं वरदोऽस्म्येष वरं वरय सुव्रत !। इत्युक्ते केशवेनाऽथ महर्षिस्तमभाषत

यस्त्वयामेहविभुक्तं यागे प्रत्यक्षरूपिणा । अनेनैवकृतार्थोऽस्मि किमस्मादधिकंवरम्
तथापि भगवन्विष्णो! त्वयिमेनिश्चलासदा । भक्तिर्निष्कपटा भूयादिदं मेप्रथमंवरम्
माधवाहं प्रतिदिनं सायं प्रातरिहाग्नये । त्वद्रूपाय नवप्रीत्यै सुरभेःपयसा हरे!
होतुमिच्छामिवरद! तन्मेदेहिवरान्तरम् । पयसानित्यहोमोहि द्विकालंश्रुतिचोदितः
न मे सुरभयःसन्ति तापसस्याधनस्य च । इत्युक्ते मुद्गलेनाथदेवो नारायणो हरिः
आहूयविश्वकर्माणं त्वष्टारममृताशिनम् । एकंसरःकारयित्वा शिल्पिना तेनशोभनम्

स्फटिकादिशिलाभेदैस्तेनासौ विश्वकर्मणा ।
समीचकार च पुनस्तत्प्राकाराद्यलंकृतम् ॥ ४० ॥
तत आहूय भगवान्सुरभिं वाक्यमब्रवीत् ।

श्रीहरिरुवाच

मुद्गलो मम भक्तोऽयं सुरभे! प्रत्यहं मुदा ॥ ४१ ॥
मत्प्रीत्यर्थं पयोहोमं कर्तुमिच्छति साम्प्रतम् ।
मत्प्रीत्यर्थमितो देवि त्वमतो मत्प्रचोदिता ॥ ४२ ॥

सायंप्रातरिहागत्य प्रत्यहं सुरभे शुभे । पयसा त्वत्प्रसूतेन सर एतत्प्रपूरय ॥ ४३ ॥
तेनासौपयसानित्यं सायंप्रातश्चहोष्यति । ओमित्युक्त्वाथ सुरभिरेवंनारायणेरिता
अथ नारायणो देवो मुद्गलं प्रत्यभाषत । सुरभेःपयसा नित्यमस्मिन्सरसितिष्ठता
सायंप्रातःप्रतिदिनं मत्प्रीत्यर्थमिहाग्नये । जुहुधित्वं महाभाग! तेनप्रीणाम्यहन्तव
मत्प्रीत्या तेखिलासिद्धिर्भविष्यतिचमुद्गल! । इदंक्षीरसरोनाम तीर्थंख्यातंभविष्यति

अस्मिन्क्षीरसरस्तीर्थे स्नातानां पञ्चपातकम् ।
अन्यान्यपि च पापनि नाशं यास्यन्ति तत्क्षणात् ॥ ४८ ॥
मुद्गल! त्वञ्च मां याहि देहान्ते मुक्तबन्धनः ।
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तं समालिङ्गय मुद्गलम् ॥ ४६ ॥

नमस्कृतश्च तेनायं तत्रैवान्तरधीयत । मुद्गलोऽपिगते विष्णावनेकशतवत्सरम् ॥
सुरभेःपयसा जुह्वन्नग्नये हरितुष्टये । उवास प्रयतो नित्यं फुल्लग्रामे विमुक्तिदे

देहान्ते मुक्तिमगमद्विष्णुसायुज्यरूपिणीम् ।

श्रीसूत उवाच

एवमेतद्द्विजवरा! युष्माकं कथितं मया ॥ ५२ ॥

यथा क्षीरसरोनामतीर्थस्यास्य पुराभवत् । इदं क्षीरसरःपुण्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम्

कश्यपस्य मुनेःपत्नी कद्रूर्यत्र द्विजोत्तमाः ।

स्नात्वा स्वभर्तृवाक्येन नोदिता नियमान्विता ॥ ५४ ॥

छलेन मुमुचे सद्यः सपत्नीजयदोषतः । अतोऽत्रतीर्थे ये स्नान्ति मानवाःशुद्धमानसाः

तेषांविमुक्तबन्धानांयुक्तानांपुण्यकर्मिणाम् । किंयागैःकिमुवावेदैःकिंवातीर्थनिषेवणैः

जपैर्वा नियमैर्वापिक्षीरकुण्डविलोकिनाम् । क्षीरकुण्डस्यवातेनस्पृष्टदेहोनरोद्विजाः

ब्रह्मलोकमनुप्राप्यतत्रैव परिमुच्यते । निमग्नाःक्षीरकुण्डेऽस्मिन्नवमत्यापिभास्करिम्

तस्य मूर्द्धनि तिष्ठेयुर्ज्वलन्तः पावकोपमाः ।

मग्नाना क्षीरकुण्डेऽस्मिञ्छीता वैतरणी नदी ॥ ५६ ॥

सर्वाणि नरकाण्यद्धा व्यर्थानि च भवन्ति हि ।

कामधेनुसमे तस्मिन्क्षीरकुण्डे स्थितेऽप्यहो ॥ ६० ॥

योऽन्यत्रभ्रमतेस्नातुं सनरोविप्रसत्तमाः । गोक्षीरेविद्यमानेऽपि ह्यर्कक्षीरायगच्छति

स्नातानां क्षीरकुण्डेऽस्मिन्नालभ्यं किञ्चिदस्ति हि ।

करप्राप्तैव मुक्तिःस्यात्किमन्यैर्बहुभाषणैः ॥ ६२ ॥

ब्रवीमि भुजमुद्धृत्य सत्यंसत्यं ब्रवीमि वः । यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः

सक्षीरकुण्डस्नानस्य लभते फलमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे

सेतुमाहात्म्ये क्षीरकुण्डप्रशंसायांक्षीरकुण्डस्वरूपकथनन्नाम-

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

# अष्टत्रिंशोऽध्यायः

## क्षीरकुण्डप्रशंसायांकद्रूछलनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत! कद्रूःकथं मुक्ता क्षीरकुण्डनिमज्जनात् । छलंकथंकृतवती सपत्न्यांपापनिश्चया
कस्य पुत्री चसाकद्रूः सपत्नी साचकस्यवै । किमर्थमजयत्कद्रूः स्वमपत्नीं छलेनतु
एतन्नःश्रद्दधानानां ब्रूहि सूत! कृपानिधे! ।

श्रीसूत उवाच

पुरा कृतयुगे विप्राः! प्रजापतिसुते उभे ॥ ३ ॥
कद्रूश्च विनताचेति भगिन्यौ संबभूवतु. । भार्ये तेकश्यपस्यास्तां कद्रूश्चविनतातथा
विनता सुषुवे पुत्रावरुणं गरुडं तथा । भर्त्तुःसकाशात्कद्रूश्च लेभे सर्पान्बहून्सुतान्
अनन्तवासुकिमुखान्विषदर्पसमन्वितान् । एकदा तु भगिन्यौ ते कद्रूश्चविनता तथा
अपश्यतासमायान्तमुच्चैःश्रवसमन्तिकात् । विलोक्यकद्रूस्तुरगंविनतामिदमब्रवीत्
श्वेतोऽश्वबालो नीलो वा विनते ब्रूहि तत्त्वतः ।
इत्युक्ता विनता विप्राः कद्रूंतामिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
तुरङ्गःश्वेतबालोमे प्रतिभातिसुमध्यमे! । किंवात्वंमन्यसेकद्रूमितितांविनताऽब्रवीत्
पृष्ट्वैवं विनतां कद्रूर्बभाषे स्वमतञ्च सा । कृष्णबालमहं मन्ये हयमेनमनिन्दिते
ततःपराजयेकृत्वा दासीभावंपणंमिथः । व्यतिष्ठेतां महाभागेसपत्न्यौतेद्विजोत्तमाः
ततःकद्रूर्निजसुतान्वासुकिप्रमुखानहीन् । तस्या नाहं यथादासी तथाकुरुत पुत्रकाः!
तदभीप्सितसिद्ध्यर्थमित्यवोचद्भृशातुरा ।
युष्माभिरुच्चैःश्रवसो बालः प्रच्छाद्यतामिति ॥ १२ ॥
नाङ्गीचक्रुर्मतं तस्या नागाःकद्रूरुषातदा । अशपत्कुपितापुत्रान्ज्वलन्तीरोषमूर्च्छिता
पारीक्षितस्य सर्वेऽद्धा यूयं सत्रे मरिष्यथ । इतिशापे कृतेमात्रात्रस्तःकर्कोटकस्तदा

प्रणम्यपादयोःकद्रूं दीनो वचनमब्रवीत् । अहमुच्चैःश्रवोबालं विधास्याम्यञ्जनप्रभम्
माभीरम्बत्वयाकार्येत्यवादीच्छापविल्कवः । श्वेतमुच्चैःश्रवोबालंततःकर्कोटकोरगः
छादयित्वा स्वभोगेन व्यतनोदञ्जनद्युतिम् । अथ तेविनताकद्रूर्दास्यैकृतपणे उभे
देवराजहयं द्रष्टुं संरम्भादभ्यगच्छताम् । शशाङ्कशङ्खमाणिक्यमुक्तैरावतकारणम्
युगान्तकालशयनं योगनिद्राकृतेहरेः । अतीत्य कद्रूविनते समुद्रं सरितांपतिम् ॥
दद्दृशतुर्हयं गत्वा देवराजस्य वाहनम् । कृष्णबालं हयं दृष्ट्वा विनतादुःखिताऽभवत्

दुःखितां वनितां कद्रूर्दासीकृत्यै न्ययुङ्क्त सा ।

एतस्मिन्नन्तरे ताक्ष्योंऽप्यण्डमुद्भिद्य वह्निवत् ॥ २२ ॥

प्रादुर्बभूव विप्रेन्द्रा गिरिमात्रशरीरवान् । दृष्ट्वा तद्देहमाहात्म्यमभूत्त्रस्तं जगत्त्रयम्
ततस्तन्तुष्टुवुर्देवा गरुडं पक्षिणांवरम् । दृष्ट्वामद्देहमाहात्म्यं त्रस्तंस्याद्भुवनत्रयम्
इत्यालोच्योपसंहृत्य देहमत्यन्तभीषणम् । अरुणंपृष्ठमारोप्यमातुरन्तिकमभ्यगात्
अथाह विनतां कद्रूः प्रणतामतिविह्वलाम् । चेटि! नागालयं गन्तुमुद्योगो मम वर्तते

त्वत्पुत्रो गरुडोऽतो मां मत्पुत्रांश्च वहत्विति ।

ततश्च विनता पुत्रं गरुडं प्रत्यभाषत ॥ २७ ॥

अहं कद्रूमिमां वक्ष्ये त्वं सर्वान्वहतत्सुतान् । तथेतिगरुडोमातुःप्रत्यगृह्णाद्वचोद्विजाः
अवहद्विनताकद्रूं सर्वांस्तान्गरुडोऽवहत् । रविसामीप्यगाःसर्पास्तत्करैराहतास्तदा
अस्तौषीद्वज्रिणं कद्रूः सुतानां तापशान्तये । सर्वतापंजलासारैर्देवराजोऽप्यशामयत्
नीयमानास्तदासर्पा गरुडेनबलीयसा । गत्वा तं देशमचिरादवदन्विनतासुतम् ॥
वयंद्वीपान्तरं गन्तुंसर्वंद्रष्टुं कृतत्वराः । वहत्वमस्मान्गरुड! चेटीसुत! ततःक्षणात्
ततोमातरमप्राक्षीद्विनतां गरुडो द्विजाः । अहं कस्माद्वहामीमास्त्वंचेमां वहसेसदा
चेटीपुत्रेति मामेते किंभणन्ति सरीसृपाः । सर्वमेतद्वद त्वं मे मातस्तत्त्वेन पृच्छतः
पृष्टैवं जननी तेन गरुडं प्राब्रवीत्सुतम् । भगिन्याक्रूरया पुत्र ! छलेनाहं पराजिता
तस्या दासीभवाम्यद्य चेटीपुत्रस्ततो भवान् । अतस्त्वंवहसेसर्पान्वहाम्येनामहंसदा

इत्यादिसर्ववृत्तान्तमादितोऽस्मै न्यवेदयत् ।

अथ तां गरुडोऽवादीन्मातरं विनतासुतः ॥ ३७ ॥
अस्माद्दास्याद्विमोक्षार्थं किं कार्यन्ते मयाऽधुना । इतिपृष्टा सुतेनाथविनतातमभाषत
सर्पान्पृच्छस्व गरुड! मम मातृविमोक्षणे । युष्माकं मातुःकिंकार्यमयेतिवदताधुना
इति मात्रा समुदितो गरुडःपन्नगान्प्रति । गत्वाऽपृच्छद्द्विजश्रेष्ठास्तेप्येनमवदंस्तदा
यदाहरिष्यसे शीघ्रं सुधां त्वममरालयात् । दास्यान्मुक्ताभवेन्मातावैनतेय!भवानपि
ततो मातरमागम्य गरुडःप्रणतोऽब्रवीत् । सुधामम्ब ! ममानेतुं गच्छतोभक्ष्यमर्पय
इतीरिता सुतं प्राह माता तं विनता सुतम् । समुद्रमध्ये वर्तन्ते शबराःकतिचित्सुत!
तान्भक्षयित्वा शबरानमृतं त्वमिहानय । तत्रकश्चिद्द्विजःकामी शबरीसङ्गकौतुकी
त्यज तं ब्राह्मणं कण्ठं दहन्तं ब्रह्मतेजसा । पक्षादीनि तवाङ्गानिपान्तुदेवा मरुन्मुखाः
इतिस्वमातुराशीर्भिर्गरुडो वर्धितो ययौ । शबरालयमभ्येत्य तस्य भक्षयतो मुखम्
आवृतं प्राविशन्व्याधा वयांसीव दरीगिरेः ।
अथ स ब्राह्मणोऽप्यागात्तत्कण्ठं मुनिपुङ्गवाः ॥ ४७ ॥
कण्ठंदहन्तं विप्रं तमुवाचविनतासुतः । विप्रःपापोऽप्यवध्योहिनिर्याहित्वमतोबहिः
एवमुक्तस्तदा विप्रो गरुडंप्रत्यभाषत । किरातिर्मम भार्यापि निर्गन्तव्या मया सह
एवमस्त्विति तं विप्रमुवाच पतगेश्वरः । ततः सगरुडोविप्रमुज्जगार सभार्यकम् ॥
विप्रोप्यभीप्सितान्देशान्निषाद्या सहनिर्ययौ । शबरान्भक्षयित्वाथगरुडःपक्षिणांवरः
आत्मनः पितरंवेगात्कश्यपं समुपेयिवान् । कुत्रयासीति तत्पृष्टो गरुडस्तमभाषत
मातुर्दास्यविमोक्षाय सुधामाहर्तुमागमम् । बहून्किराताञ्जग्ध्वाऽपितृप्तिर्मेऽभन जायते
अपर्यन्तक्षुधा ब्रह्मन्बाधते मामहर्निशम् । तन्निवृत्तिप्रदं भक्ष्यं समार्पय तपोधन! ॥५४॥
येनाहं शक्नुयां तात ! सुधामाहर्तुमोजसा । इतीरितःसुतंप्राह कश्यपो विनतोद्भवम्

कश्यप उवाच

मुनिर्विभावसुर्नाम्ना पुरासीत्तस्य चानुजः । सुप्रतीक इतिभ्राता तावुभौ वंशवैरिणौ
अन्योन्यं शेपतुर्विप्रामहाक्रोधसमाकुलौ । गजोऽभवत्सुप्रतीकःकूर्मोऽभूच्चविभावसु
एवंवित्तविवादार्त्तौ शेपतुर्भ्रातरौ मिथः । गजःषड्योजनोच्छ्रायोद्विगुणायामसंयुतः

कूर्मस्त्रियोजनोच्छ्रायो दशयोजनविस्तृतः । बद्धवैरावुभावेतौ सरस्यस्मिन्विहङ्गम!
पूर्ववैरमनुस्मृत्य युध्येते जेतुमिच्छया । उभौ तौ भक्षयित्वात्वंसुधामाहरतृप्तिमान्
एवं पित्रेरितःपक्षी गत्वातद्गजकच्छपौ । समुद्धृत्य महाकायौ महाबलपराक्रमौ

वहन्नखाभ्यां संतीर्थं विलम्बाभिधमभ्यगात् ।

तत्रागतं समालोक्य पक्षिराजं द्विजोत्तमाः ॥ ६२ ॥

तत्तीरजोमहावृक्षो रोहिणाख्यो महोच्छ्रयः । वैनतेयमिदंप्राह महाबलपराक्रमम् ॥
एनामारुह मच्छाखांशतयोजनमायताम् । स्थित्वाऽत्रगजकूर्मौत्वंभक्षयस्वखगोत्तम
इत्युक्तस्तरुणापक्षी सतत्रास्तेमनोजवः । तद्भारात्सातरोःशाखाभग्नाभूद्द्विजसत्तमाः

बालखिल्यमुनींस्तस्मिँल्लम्बमानानधोमुखान् ।

दृष्ट्वा तत्पातशङ्कावांस्तां शाखां गरुडोऽग्रहीत् ॥ ६६ ॥

गजकूर्मौ च तां शाखां गृहीत्वायान्तमम्बरे । पितातस्याब्रवीत्तत्रगरुडंविनतासुतम्
त्यजेमां निर्जनेशैले शाखा त्वंविनतोद्भव !। इत्युक्तःसतथागत्वा शाखांनिष्पुरुषेनगे
विन्यस्याभक्षयत्पक्षी तौ तदागजकच्छपौ । अथोत्पातःसमभवत्तस्मिन्नवसरेदिवि
दृष्ट्वोत्पातं बलारातिः पप्रच्छ स्वपुरोहितम् । उत्पातकारणं जीव! किमत्रेतिपुनःपुनः

बृहस्पतिस्तदा शक्रं प्रोवाच द्विजसत्तमाः !।

बृहस्पतिरुवाच

काश्यपो हि मुनिः पूर्वमयजत्क्रतुना हरे !॥ ७१ ॥
सर्वानृषीन्सुरान्सिद्धान्यक्षान्गन्धर्वकिन्नरान् ।
यज्ञसम्भारसिद्ध्यर्थं प्रेषयामास स द्विजाः !॥ ७२ ॥
बालखिल्यान्ससम्भारान्ह्रस्वानङ्गुष्ठमात्रकान् ।
मज्जतो गोष्पदजले दृष्ट्वा हसितवान्भवान् ॥ ७३ ॥

भवताऽवमताःक्रुद्धा बालखिल्यास्तदा हरे! । जुहुवुर्यज्ञवह्नौ ते क्रोधेन ज्वलिताननाः
देवेन्द्रभयदःशत्रुः काश्यपस्य सुतोऽस्त्विति । तस्यपुत्रोऽद्यगरुडःसुधाहरणकौतुकी
समागच्छति तद्धेतुरयमुत्पातआगतः । इत्युक्तःसोऽब्रवीदिन्द्रोदेवानग्निपुरोगमान्

सुधामाहर्तुमायाति पक्षीसा रक्ष्यतामिति । इतीन्द्रप्रेरितादेवा ररक्षुःसायुधाः सुधाम् पक्षिराजस्तदाभ्यागाद्देवानायुधधारिणः । महाबलन्तेगरुडं दृष्ट्वाकम्पन्त वै सुराः ॥ गरुडस्य सुराणाञ्च ततोयुद्धमभून्महत् । अखण्डिपक्षितुण्डेन भौवनोऽमृतपालकः तदा निजघ्नुर्गरुडं देवाःशस्त्रैरनेकशः । वीपतिर्गरुडोदेवैर्बाधितःशस्त्रपाणिभिः ॥ पक्षाभ्यामाक्षिपद्दूरे देवानग्निपुरोगमान् । तत्पक्षविक्षितादेवास्तदापरमकोपनाः ॥

नाराचान्भिण्डिपालांश्च नानाशस्त्राणि चाक्षिपन्

ततस्तु गरुडो वेगाद्देवदृष्टिविलोपिनीम् ॥ ८२ ॥

धूलिमुत्थापयामास पक्षाभ्यां विनतासुतः ।

वायुना शमयामासुस्तान्पांसूंस्त्रिदशोत्तमाः ॥ ८३ ॥

रुद्रान्वसूंस्तथादित्यान्मरुतोऽन्यान्सुरांस्तथा ।

गरुडः पक्षतुण्डाभ्यां व्यथितानकरोद् द्विजाः ॥ ८४ ॥

पलायितेषु देवेषु सोऽद्राक्षीज्ज्वलनं पुरः । ज्वलन्तंपरितस्त्वग्निंशमापयितुमुद्ययौ ससहस्रमुखो भूत्वातैःपिबञ्छतशो नदीः । तमग्निनाशयामासतैःपयोभिस्त्वरान्वितः सितधारं भ्रमच्चक्रं सुधारक्षकमन्तिके । दृष्ट्वा नदरिरन्ध्रेण संक्षिप्ताङ्गोऽन्तराविशत्

ततो ददर्श द्वौ सर्पौ व्यात्तास्यौ भीषणाकृती ।

याभ्यां दृष्टो ऽपि भस्म स्यात्तौ सर्पौ गरुडस्तदा ॥ ८८ ॥

आच्छिद्यपक्षतुण्डाभ्यांगृहीत्वामृतमुद्ययौ । यन्त्रमुत्पाट्यचोद्यन्तंगरुडंप्राहमाधवः तव तुष्टोऽस्मिपक्षीश! वरं वरय सुव्रत । अथ पक्षी तमाहस्म कमलानायकं हरिम् तवोपरिस्थितिर्मे स्यान्माभूतां च जरामृती । तथास्त्वितिहरिःप्राहवरंदत्तंमयातव इत्युक्त्वा तं हरिः प्राह ममत्वं वाहनंभव । स्यन्दनोपरिकेतुश्च मम त्वं विनतासुत!

तथास्त्विति खगोऽप्याह कमलापतिमच्युतम् ।

हृतामृतं खगं श्रुत्वा तत आखण्डलो जवात् ॥ ६३ ॥

अभिद्रुत्याशु कुलिशं पक्षे चिक्षेप पक्षिणः । ततो विहस्यगरुडः पाकशासनमब्रवीत् कुलिशस्य निपातान्मे न हरेकापिवेदना । सफलो वज्रपातस्ते भूयाच्च सुरनायक!

इतीरयत्पत्रमेकं व्यसृजत्पक्षतस्तदा। शोभनं पर्णमस्येति सुपर्ण इतिसोऽभवत् तस्मिन्सुपर्णेहेमाभे सर्वे विस्मयमाययुः। ततस्तु गरुडः शक्रमब्रवीद्द्विजपुङ्गवाः भवतासाकमखिलं जगदेतच्चराचरम् । देवेन्द्रमततं वोढुममोघा शक्तिरस्ति मे नाखण्डलसहस्रं मे रणे लभ्यं हरे भवेत् । इति ब्रुवाणं गरुडमब्रवीत्पाकशासनः किन्तेऽमृतेन कार्यंस्याद्दीयतामममृतंमम। इमांसुधां भवान्दद्याद्येभ्योहिविनतोद्भव!

नेऽधुनाऽमृतपानेन जरामरणवर्जिताः।

अस्मद्व्योऽधिकवीर्याः स्युर्बाधेरंस्त्रिदशांस्तथा ॥ १०१ ॥

इतिब्रुवन्तंदेवेन्द्रंगरुडोऽप्यब्रवीद्द्विजाः। यत्रैतत्स्थापयिष्यामितत्रागत्यभवानिदम् गृह्णातु झटितीत्युक्तो गरुडं प्राह वृत्रहा। प्रीतोऽहन्तव दास्यामिवरं वृणु महामते! इत्युक्तवन्तं गरुडः पाकशासनमब्रवीत्। दास्येच्छलप्रयोक्तारो मम मातुः सरीसृपाः भक्ष्याभवन्तु नित्यं मेपाकशासनवृत्रहन्!। इतितेनेरितःशक्रस्तथास्त्वित्यवदच्चतम् अथायं गरुडो विप्रा धारयन्नमृतंययौ। यान्तं तमनुयातिस्म गरुडं पाकशासनः वेगेन स द्विजश्रेष्ठाः सुधाहरणकौतकी। मातुरभ्याशमागत्य स्पर्पान्प्राह सपक्षिराट् कुशेषुन्यस्यतेसर्पास्सुधैवमधुनामया। स्नात्वातद्भुङ्ध्वममृतंशुचयःसुसमाहिताः

मोक्षोऽपि मम मातुः स्याद्दासीभावाद्धि पन्नगाः।

तथाऽस्त्वित्यवदन्सर्पा गरुडं विनतासुतम् ॥ १०६ ॥

मुक्तातदैव विनतादासीभावाद्द्विजोत्तमाः। सर्पास्तेऽमृतभक्षार्थंस्नातुंसर्वेययुस्तदा तस्मिन्नवसरेशक्रस्तामादायसुधांययौ । स्नात्वागत्यभुजङ्गास्तेतत्राद्दृष्ट्वातदासुधाम् जिह्वाभिर्लिलिहुर्दर्भानेषुन्यस्ता सुधेति हि। तदाप्रभृतिसर्पाणाजिह्वादर्भाग्रपाटिता द्विधाभवन्मुनिश्रेष्ठाद्विजिह्वास्तेनतेस्मृताः। सुधासंयोगतोदर्भाःप्रययुश्चपवित्रताम् मोचयित्वा चगरुडोदासीभावात्स्वमातरम्। शशापकुपितःकद्रूं छद्मनाजितमातरम् कद्रु! त्वं जननीं यन्मे छलेनजितवत्यसि। भर्तुस्त्वं परिचर्यायामतोनार्हाभविष्यसि शप्त्वैवं गरुडः कद्रूं प्रययौ स यथेच्छया। कद्रूश्च विनताचोभे ययतुर्भर्तुरन्तिकम् कश्यपोविमुखस्तत्रकद्रूंकोपादथाब्रवीत्। यस्माच्छलेनविनतांकद्रु!निर्जितवत्यसि

अतोमत्परिचर्यायां न योग्यासि दुरात्मिके !। स्त्रियं वापुरुषंवापिनारीवापुरुषोपिवा
छलाद्विजयतेयोऽसौसमहापातकीभवेत् । छलाद्विजयिनासार्धं सम्भाष्यब्रह्महाभवेत्
स्तेयी सुरापी विज्ञेयो गुरुदाररतश्च सः । संसर्गदोषदुष्टश्च मुनिभिः परिकीर्त्यते
त्वया संभाषणाद्दोषो ममस्यान्नरकप्रदः । तस्मात्प्रयाहिकद्रु!त्वंमत्समीपाद्विदारुणे
छलजेत्रा सपङ्क्तौ यो भुञ्जीत मनुजोभुवि । तेन सम्भाषणात्सद्यःपतेद्विनरकार्णवे
विलोक्यछलजेतारंतस्यपापस्यशान्तये । आदित्यंवाजलं वापिपावकंवाविलोकयेत्
छलजेता यत्र तिष्ठेदाश्रमेऽपि गृहेऽपि वा । वस्तव्यं नहि तत्रान्यैर्वसन्नरकमश्नुते

अतो निर्याहि निर्याहि मम त्वं दृष्टिमार्गतः ।
स्वाश्रमात्कुटिले! त्वेनां विनतां जितवत्यसि ॥ १२५ ॥
इति धिक्कृत्य सहसा कद्रूं तां कश्यपस्तदा ।
विनतां स्वच्छशीलां तां स्वीचकार महामतिः ॥ १२६ ॥

कद्रूरित्थं सपरुषं कथिता कश्यपेन सा । रुदन्ती भृशदुःखार्तापादयोस्तस्यचापतत्
पतितां पादयोर्दृष्ट्वा कश्यपो मुनिपुङ्गवः । न जग्राहैव कद्रूं तां स्मरन्पापंतया कृतम्
ततः प्रणम्य विनता कश्यपं वाक्यमब्रवीत् । भगवन्भगिनीमेनांस्वीकुरुष्वकृपानिधे
अज्ञानान्मुग्धया पापं कद्रवा यदधुनाकृतम् । क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वंदयाशीलाहिसाधवः
जनन्या गरुडस्यैवंकथितः कश्यपोमुनिः । उवाचविनतेनैनांविनापापस्यनिष्कृतिम्
ग्रहीष्यामिदुराचारांत्रिसत्वांशपथयाम्यहम् । कश्यपस्यवचःश्रुत्वाविनतापुनरब्रवीत्
भगिन्याममपापस्यब्रह्मंस्त्वंब्रूहिनिष्कृतिम् । येनेयं परिचर्यायांतवयोग्याभविष्यति
तथैव मुदितो विप्रा मारीचः कश्यपस्तदा । ध्यात्वा मुहूर्तंमनसा पश्चादिदमभाषत
दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे फुल्लग्रामे विमुक्तिदे । अस्तिक्षीरसरोनाम तीर्थंपापविनाशनम्
तत्तीर्थस्नानमात्रेण दोषश्चास्याविनश्यति । प्रायश्चित्तायुतेनापितत्तीर्थे मज्जनंविना
ननश्यत्येषदोषोऽस्यास्तदेषा यातुतत्सरः । भत्रैवमुदितेकद्रूस्तंप्रणम्यद्विजोत्तमम्
तत्क्षणात्प्रययौ क्षीरसरःपुत्रसहायिनी । साकद्रूःपुत्रसहिता गत्वाकतिपयैर्दिनैः ॥
प्राप्यक्षीरसरः पुण्यं प्रयताविजितेन्द्रिया । सस्नौ नियमपूर्वंच संकल्प्यक्षीरकुण्डके

उपोष्य त्रिदिनं सस्नौ तस्मिन्क्षीरसरोजले ।
चतुर्थे दिवसे तस्यां कुर्वत्यां स्नानमादरात् ॥ १४० ॥
अदेहा व्योमगा वाणी समुत्तस्थौ द्विजोत्तमाः ॥

अशरीरिण्युवाच

कद्रु! त्वं मज्जनादत्र छलजेतृत्वदोषतः ॥ १४१ ॥
विमुक्ताभर्तृशुश्रूषायोग्याचासितनसंशयः। शापोऽपिगरुडोक्तस्तेलयंयात्रोऽत्रमज्जनात्
गच्छ भर्तृसकाशं त्वं सोऽपि त्वां स्वीकरिष्यति ।
इत्युक्त्वा विरराामाऽथ व्योमवागशरीरिणी ॥ १४३ ॥
तस्यैवाचे नमस्कृत्य कद्रूःसाप्रीतमानसा । तीर्थं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वापुत्रसमन्विता
प्रययौ भर्तुरभ्याशं तच्छुश्रूषणकौतुकात् ।
आगतान्तां समालोक्य स्नातां क्षीरसरोजले ॥ १४५ ॥
ज्ञात्वाविधूतपापाञ्च कश्यपःसमाधिना । अङ्गीचकारपत्नींतामात्मशुश्रूषणोचिताम्
एवं वःकथितंविप्राः कद्रूपापविमोक्षणम् । मज्जनान्मुक्तिदं पुंसां पुण्येक्षीरसरोजले
यश्शृणोतीममध्यायं पठते वापि मानवः । सक्षीरकुण्डस्नानस्य लभतेफलमुत्तमम्
अश्वमेधादियज्ञानां समग्रं फलमश्नुते । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु सस्नातो भवति ध्रुवम् ॥
यःपठेदिममध्यायं क्षीरकुण्डप्रशंसनम् । गोसहस्रप्रदातृणा प्राप्नोत्यविकलंफलम् ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येक्षीरकुण्डप्रशंसायांकद्रूछलनन्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

# एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

## कपितीर्थप्रशंसायांरम्भाशापविमोक्षणवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथातःसंप्रवक्ष्यामि कपितीर्थस्य वैभवम् । तत्तीर्थं कपिभिःपूर्वं गन्धमादनपर्वते ॥
सर्वेषामुपकाराय कपिभिर्निर्मितं द्विजाः । रावणादिषु रक्षःसु हतेषु तदनन्तरम् ॥
तीर्थं निर्माय तत्रैव सस्नुस्ते कपयो मुदा । तीर्थाय च वरंप्रादुः कपयःकामरूपिणः
अस्मिंस्तीर्थेनिमग्नाये भक्तिप्रवणचेतसः । तेसर्वे मुक्तिभाजःस्युर्महापातकमोचिताः
अत्रतीर्थेनिमग्नाना नस्यान्नरकजंभयम् । अत्रस्नातानराःसर्वेदारिद्र्यंनाप्नुवन्तिहि
अत्र तीर्थेनिमग्नानां यमपीडाऽपिनोभवेत् । कपितीर्थं प्रयास्येऽहमितियःसततंब्रुवन्
व्रजेच्छतपदंविप्राः स यायात्परमंपदम् । एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥
एवं वरन्तु ते दत्त्वा तीर्थायास्मै कपीश्वराः । रामं दाशरथिंसर्वे प्रणम्याथ ययाचिरे

स्वामिंस्त्वयाऽस्मै तीर्थाय दीयतां वरमद्भुतम् ।
कपिभिःप्रार्थितो विप्रा! रामचन्द्रोऽतिहर्षितः ॥ ६ ॥

तत्तीर्थायवरंप्रादात्कपीनांप्रीतिकारणात । अत्रतीर्थेनिमग्नानां गङ्गास्नानफलंभवेत्
प्रयागस्नानजंपुण्यं सर्वतीर्थफलं तथा । अग्निष्टोमादियागानां फलं भूयादनुत्तमम् ॥
गायत्र्यादिमहामन्त्रजपपुण्यंतथाभवेत् । गोसहस्रप्रदातॄणां प्राप्नोत्यविकलं फलम्
चतुर्णामपि वेदानां पारायणफलं लभेत् । ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवपूजाफलं लभेत् ॥
कपितीर्थाय रामोऽयं प्रादादेवं वरंद्विजाः । एवं रामेणदत्ते तु वरे तत्र कुतूहलात् ॥
षडर्धनयनो ब्रह्मा सहस्राक्षो यमस्तथा । वरुणाग्निस्तथा वायुः कुबेरश्चन्द्रमा अपि

आदित्योनिरृतिश्चैव साध्याश्च वसवस्तथा ।
अन्येऽपि त्रिदशाः सर्वे विश्वेदेवादयस्तथा ॥ १६ ॥
अत्रिर्भृगुस्तथा कुत्सो गौतमश्चपराशरः ।

कण्वोऽगस्त्यःसुतीक्ष्णश्च विश्वामित्रादयोऽपरे ॥ १७ ॥
योगिनःसनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः । रामदत्तवरंतीर्थंश्लाघन्ते बहुधा तदा ॥
सस्नुश्च तत्र तीर्थे ते सर्वाभीष्टप्रदायिनि । कपिभिर्निर्मितं यस्मादेतत्तीर्थमनुत्तमम्
कपितीर्थमितिख्यातिमतो लोकेप्रयास्यति । इत्यप्यवोचंस्ते सर्वे देवाश्चमुनयस्तथा
तस्मादवश्यं गन्तव्यं कपितीर्थंमुमुक्षुभिः । रम्भाकौशिकशापेन शिलाभूतापुराद्विजाः
तत्र स्नात्वा निजंरूपंप्रपेदेघदिवं ययौ । अस्य तीर्थस्यमाहात्म्यं मया वक्तुं नशक्यते

मुनय ऊचुः

रम्भां किमर्थमशपत्कौशिकःसूतनन्दन !। कथं गता शिलाभूता कपितीर्थं सुराङ्गना
एतन्नःसर्वमाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम !।

श्रीसूत उवाच

विश्वामित्राभिधो राजा प्रागभूत्कुशिकान्वये ॥ २४ ॥
सकदाचिन्महाराजः सेनापरिवृतो बली । मेदिनीं परिचक्राम राज्यवीक्षणकौतुकी॥
अटित्वासबहून्देशान्वसिष्ठस्याश्रमंययौ । आतिथ्यायवृतःसोऽयं वशिष्ठेनमहात्मना
तथास्त्वित्यब्रवीत्सोऽयं दण्डवत्प्रणतोनृपः । कामधेनुप्रभावेण विश्वामित्रायभूभुजे
आतिथ्यमकरोद्विप्रा वसिष्ठो ब्रह्मनन्दनः । कामधेनुप्रभावं वै ज्ञात्वा कुशिकनन्दनः
वसिष्ठं प्रार्थयामास कामधेनुमभीष्टदाम् ।
प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन प्रचकर्ष च तां बलात् ॥ २९ ॥
कामधेनुविसृष्टैस्तुम्लेच्छाद्यैः सपराजितः । महादेवं समाराध्यतस्मादस्त्राण्यवाप्यच
वसिष्ठस्याश्रमंगत्वा व्यसृजच्छरसञ्चयान् । सर्वाण्यस्त्राणिमुमुचेब्रह्मास्त्रंचनृपोत्तमः
तानिसर्वाणि चास्त्राणि वसिष्ठोब्रह्मनन्दनः । एकेनब्रह्मदण्डेन निजघ्नेस्वतपोबलात्
ततःपराजितो विप्रा विश्वामित्रोऽतिलज्जितः ।
ब्राह्मण्यावाप्तये स्वस्य तपःकर्तुं वनं ययौ ॥ ३३ ॥
पूर्वादिपश्चिमान्तासु त्रिषुदिक्षुतपोऽचरत् । प्रादुर्भूतमहाविघ्नस्तत्तद्दिक्ष्वस्मकौशिकः
उत्तरांदिशमासाद्य हिमवत्पर्वतेऽमले । कौशिक्यास्सरितस्तीरेपुण्येपापविनाशिनि

दिव्यंवर्षसहस्रन्तुनिराहारोजितेन्द्रियः। निरालोकोजितश्वासोजितक्रोधःसनिश्चलः
ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थः शिशिरे वारिषु स्थितः।
वर्षास्वाकाशगो नित्यमूर्ध्वबाहुर्निराश्रयः॥ ३७॥
ब्राह्मण्यसिद्धयेऽत्युग्रं चचार सुमहत्तपः। उद्विग्नमनसस्तस्य त्रिदशास्त्रिदिवालयाः
जम्भारिणा च सहिता रम्भाम्प्रोचुरिदम्वचः।

देवा ऊचुः

रम्भे! त्वं हिमवच्छैले कौशिकीतीरगम्मुनिम्॥ ३६॥
विश्वामित्रंतपस्यन्तं विलोभयविचेष्टितैः। यथातत्तपसो विघ्नो भविष्यतितथाकुरु
एवमुक्ता यदा रम्भा देवैरिन्द्रपुरोगमैः। प्रत्युवाच सुरान्सर्वान्प्राञ्जलिःप्रणता तदा॥

रम्भोवाच

अतिक्रूरोमहाक्रोधोविश्वामित्रोमहामुनिः। सशप्स्यतेमांक्रोधेनबिभेम्यस्मादहंसुराः
त्रायध्वंकृपयायूयं मांयुष्मत्परिचारिकाम्। इत्युक्तोरम्भयातत्र जम्भारिस्तामभाषत

इन्द्र उवाच

रम्भे! त्वया न भीः कार्या विश्वामित्रात्तपोधनात्।
अहमप्यागमिष्यामि त्वत्सहायःसमन्मथः॥ ४४॥
कोकिलालापमधुरो वसन्तोप्यागमिष्यति। अतिसुन्दररूपात्वं प्रलोभय महामुनिम्
इतीन्द्रकथिता रम्भा विश्वामित्राश्रमं ययौ।
तद्दृष्टिगोचरा स्थित्वा ललितं रूपमास्थिता॥ ४६॥
सामुनिंलोभयामास मनोहरविचेष्टितैः। पिकोऽपि तस्मिन्समयेचुकूजानन्दयन्मनः
श्रुत्वापिकस्वरंरम्भां दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवः। संशयाविष्टहृदयो विदित्वा शक्रकर्म तत्
शशाप रम्भां क्रोधेन विश्वामित्रस्तपोधनः।

विश्वामित्र उवाच

यस्मात्कोपयसे रम्भे! मान्त्वं कोपजयैषिणम्॥ ४६॥
शिलाभवाऽत्र तस्मात्त्वं रम्भे!वर्षशतायुतम्। तदन्तरेब्राह्मणेनरक्षितामोक्षमाप्स्यसि

विश्वामित्रस्य शापेन तदन्ते सा शिलाऽभवद् ।
बहुकालं शिलाभूता तस्थौ तस्याश्रमे द्विजाः !॥ ५१ ॥
विश्वामित्रोऽपिधर्मात्मापुनस्तप्त्वामहत्तपः । लेभेवसिष्ठवाक्येनब्राह्मण्यंदुर्लभंनृपैः
बहुकालं शिलाभूता रम्भाप्यासीत्तदाश्रमे ।
तस्मिन्नेवाश्रमे पुण्ये शिष्योऽगस्त्यस्य संमतः ॥ ५३ ॥
श्वेतो नाममुनिश्चक्रे मुमुक्षुः परमं तपः । चिरकालं तपस्तस्मिन्प्रकुर्वति महामुनौ
अङ्गारकेतिविख्याता राक्षसी काचिदागता । तस्याश्रममतिक्रूरा मेघस्वनमहाध्वना
मूत्ररक्तपुरीषाद्यैर्दूषयामास भीषणा । उपद्रवैस्तथा चान्यैर्बाधयामास तं मुनिम् ॥
अथ क्रुद्धो मुनिः श्वेतो वायव्यास्त्रेण योजयन् ।
शप्तां कुशिकपुत्रेण राक्षस्यै प्राक्षिपच्छिलाम् ॥ ५७ ॥
राक्षसीं सा प्रदुद्राव वायव्यास्त्रेण योजिता । वायव्यास्त्रप्रयुक्तेन दृषतानुद्रुता च सा
दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरं धावतिस्म भयार्दिताम् ।
धावन्तीमनुधावन्ती सा शिलाऽस्त्रप्रयोजिता ॥ ५६ ॥
पपातोपरिराक्षस्यामज्जन्त्याःकपितीर्थके । मृतासाराक्षसीतत्रशिलापातात्स्वमूर्द्धनि
विश्वामित्रेण शप्ता सा कपितीर्थेनिमज्जनात् ।
शिलारूपं परित्यज्य रम्भारूपमुपेयुषी ॥ ६१ ॥
देवैः कुसुमधाराभिरभिवृष्टा मनोरमा । दिव्यं विमानमारूढा दिव्याम्बरविराजिता ॥
हारकेयूरकटकनासाभरणभूषिता । उर्वश्याद्यप्सरोभिश्च सखिभिः परिवारिता ॥
कपितीर्थस्य माहात्म्यं प्रशंसन्ती पुनः पुनः । निषेव्यगमनार्थंच शङ्करंशशिभूषणम्
आखण्डलपुरीं रम्यांप्रययावमरावतीम् । राक्षसी सापि शापेन कुम्भजस्य महौजसः
घृताचीदेववेश्याहिराक्षसीरूपमागता । साप्यत्रकपितीर्थाप्सुस्नानात्स्वंरूपमाययौ
एवं रम्भाघृताच्यौ ते कपितीर्थे निमज्जनात् ।
अगस्त्यशिष्यश्वेतस्य प्रसादाद् द्विजसत्तमाः !॥ ६७ ॥
राक्षसीत्वंशिलात्वञ्चहित्वास्वंरूपमागते । तस्मिन्सर्वप्रयत्नेन स्नातव्यंकपितीर्थके

यः शृणोतीममध्यायं पठते वापि मानवः । प्राप्नोतिकपितीर्थस्यस्नानजंफलमुत्तमम्
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये रम्भाशापविमोक्षणन्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

# चत्वारिंशोऽध्यायः

## गायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांगन्धमादनेगायत्रीसरस्वतीसन्निधानकथनम्

श्रीसूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
गायत्र्या च सरस्वत्या माहात्म्यं मुक्तिदं नृणाम् ॥ १ ॥
शृण्वतां पठता चैव महापातकनाशनम् । महापुण्यप्रदं पुंसां नरकक्लेशनाशनम्
गायत्र्या च सरस्वत्यां ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
न तेषां गर्भवासःस्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥
सरस्वत्याश्च गायत्र्या गन्धमादनपर्वते । ब्रह्मपत्न्योः सन्निधानात्तन्नाम्ना कथिते इमे

ऋषय ऊचुः

गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपर्वते । किमर्थं सन्निधानं वै सूताभूत्तद्वदस्व नः

सूत उवाच

प्रजापतिः पुराविप्राःस्वांवैदुहितरंमुदा । वाङ्नाम्नींकामुकोभूत्वास्पृहयामासमोहनः
अथ प्रजापतेः पुत्री स्वस्मिन्वै तस्य कामिताम् ।
विलोक्य लज्जिता भूत्वा रोहिद्रूपं दधार सा ॥ ७ ॥
ब्रह्माऽपि हरिणो भूत्वा तया रन्तुमनास्तदा ।
गच्छन्तीमनुयातिस्म हरिणीरूपधारिणीम् ॥ ८ ॥
तं दृष्ट्वा देवताः सर्वाः पुत्रीगमनसादरम् । करोत्यकार्यं ब्रह्माऽयं पुत्रीगमनलक्षणम्

इतिनिन्दन्ति तं विप्राः स्रष्टारं जगतां पतिम् । निषिद्धकृत्यनिरतंतं दृष्ट्वापरमेष्ठिनम्
हरः पिनाकमादाय व्याधरूपधरः प्रभुः । आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषा शरम् ॥
संयोज्य वेधसन्तेन विव्याध निशितेन सः । त्रिपुरान्तकबाणेन विद्धोऽसौन्यपद्भुवि
तस्य देहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् । आकाशेमृगशीर्षाख्यंनक्षत्रमभवत्तदा
आर्द्रानक्षत्ररूपी सन्हरोऽप्यनुजगामतम् । पीडयन्मृगशीर्षाख्यं नक्षत्रं ब्रह्मरूपिणम्
अधुनाऽपि मृगव्याधरूपेणत्रिपुरान्तकः । अम्बरे दृश्यते स्पष्टं मृगशीर्षान्तिकेद्विजाः
एवं विनिहितेतस्मिञ्छम्भुना परमेष्ठिनि । अनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्यौशुचार्दिते
भर्तृहीनेमुनिश्रेष्ठाभर्तृजीवनकाङ्क्षया । किंकरिष्यावहेह्यावामित्यन्योन्यंविचार्यतु
स्वपतिप्राणसिद्ध्यर्थं गायत्रीचसरस्वती । सर्वोत्कृष्टंशिवस्थानंगन्धमादनपर्वतम्
सर्वाभीष्टप्रदं पुंसां तपः कर्तुंसमुद्यते । जग्मतुर्नियमोपेतं तपः कर्तुं शिवं प्रति ॥
स्नानार्थमात्मनोविप्रा गायत्री च सरस्वती । तीर्थद्वयंस्वनाम्नावैचक्रतुःपापनाशनम्
तत्र त्रिषवणस्नानं प्रत्यहं चक्रतुर्मुदा । बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते ॥
अत्युग्रनियमोपेते शिवध्यानपरायणे । पञ्चाक्षरमहामन्त्रं जपंकनियते शुभे ॥ २२ ॥
स्वपतेर्जीवनार्थंवै गायत्री च सरस्वती । महादेवं समुद्दिश्य तप एवं प्रचक्रतुः ॥
तयोरथ तपस्तुष्टो महादेवो महेश्वरः । सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसां फलदित्सया ॥
ततःसन्निहितंशम्भुंपार्वतीरमणंशिवम् । गणेशकार्त्तिकेयाभ्यांपार्श्वयोःपरिसेवितम्
दृष्ट्वासन्तुष्टचित्ते तेगायत्रीचसरस्वती । स्तोत्रैस्तुष्टुवतुश्शम्भुंमहादेवंघृणानिधिम्

गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः

नमोदुर्वारसंसारध्वान्तध्वंसैकहेतवे । ज्वलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने
जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशैकहेतवे । जगदन्तकरक्रूर! यमान्तक! नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
गङ्गातरङ्गसम्पृक्तजटामण्डलधारिणे । नमस्तेऽस्तु विरूपाक्ष ! बालशीतांशुधारिणे!
पिनाकभीमटङ्कारत्रासितत्रिपुरौकसे । नमस्तेविविधाकार! जगत्स्रष्टृशिरश्छिदे ॥
शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षितमृकण्डुज !। नमस्ते गिरिजानाथ! रक्षाऽऽवां शरणागते
महादेव! जगन्नाथ! त्रिपुरान्तक! शङ्कर !। वामदेवमहादेव! रक्षाऽऽवां शरणागते ॥

इति ताभ्यां स्तुतःशम्भुर्देवदेवोमहेश्वरः । अब्रवीत्प्रीतिसंयुक्तोगायत्रींचसरस्वतीम्

महादेव उवाच

भोःसरस्वति! गायत्रि !प्रीतोऽस्मियुवयोरहम् । वरं वरयतं मत्तोयद्वांमनसि वर्तत

इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वत्यौ हरेण वै । अब्रूतां पार्वतीकान्तं महादेवंघृणानिधिम्

गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः

भगवन्नावयोर्देव! भर्त्तारं चतुराननम् । स प्राणं कुरुसर्वेश! कृपया करुणाकर !॥ ३६

त्वमावयोः पितादेव! तवाप्यावां सुते उभे । रक्षावांपतिदानेनतस्मात्त्वंत्रिपुरान्तक

स एवं प्रार्थितः शम्भुस्ताभ्यां ब्राह्मणपुङ्गवाः ।

एवमस्त्विति संप्रोच्य गायत्रीं च सरस्वतीम् ॥ ॥ ३८ ॥

तदेव वेधसःकायं शिरसायोक्तुमुत्सुकः । तत्रैववेधसःकायं शिरोभिः सह सुव्रताः

भूतैरानाययामास नन्दिभृङ्गिमुखैस्तदा । शिरांसि तान्यानीतानि कायेनसह शङ्करः

क्षणात्सन्धारयामास वाणीगायत्रिसन्निधौ ।

सन्धितोऽथ हरेणाऽसौ चतुर्वक्त्रो जगत्पतिः ॥ ४१ ॥

उत्तस्थौ तत्क्षणादेव सुप्तोत्थित इव द्विजाः । ततःप्रजापतिर्दृष्ट्वाशङ्करंशशिभूषणम्

तुष्टाव वाग्भिरग्र्याभिर्भार्याभ्यां च समन्वितः ।

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश ! करुणाकर! शङ्कर !॥ ४३ ॥

पाहि मां करुणासिन्धो! निषिद्धाचरणात्प्रभो !

मम त्वत्कृपया शम्भो ! निषिद्धाचरणे क्वचित् ॥ ४४ ॥

माप्रवृत्तिर्भवेद्भूयोरक्षमान्त्वंतथासदा । तथैवास्त्विति सम्प्राहब्रह्माणंगिरिजापतिः

इतःपरंप्रमादं त्वं माकुरुष्व विधे!पुनः । उत्पथप्रतिपन्नानां पुंसांशास्तास्मिसर्वदा

एवमुक्त्वा चतुर्वक्त्रं महादेवो द्विजोत्तमाः । सरस्वतींचगायत्रीं प्रोवाचप्रीणयन्गिरा

महादेव उवाच

युवयोर्मत्प्रसादेन हेगायत्रिसरस्वति !। अयंभर्तासमायातः सप्राणश्चतुराननः ॥ ४८॥

सहानेनब्रह्मलोकं यातं मा भूद्विलम्बता । युवयोःसन्निधानेन सदाकुण्डद्वयेऽत्र वै ॥

भविष्यति नृणां मुक्तिः स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।

युष्मन्नाम्ना च गायत्रीसरस्वत्याचिति द्वयम् ॥ ५० ॥

इदंतीर्थं सर्वलोके ख्यातिं यास्यतिशाश्वतीम् । सर्वेषामपितीर्थानामिदंतीर्थद्वयंसदा
शुद्धिप्रदन्तथा भूयान्महापातकनाशनम् । महाशान्तिकरं पुसां सर्वाभीष्टप्रदायकम्
ममप्रसादजननं विष्णुप्रीतिकरन्तथा । एतत्तीर्थद्वयसमं न भूतं न भविष्यति ॥ ५३
अत्रस्नानाद्धि सर्वेषां सर्वाभीष्टं भविष्यति । इदंकुण्डद्वयंलोके भवतीभ्यां कृतंमहत्

युष्मन्नाम्ना प्रसिद्धञ्च भविष्यति विमुक्तिदम् ।

गायत्र्युपास्तिरहिता वेदाभ्यासविवर्जिताः ॥ ५५ ॥

औपासनविहीनाश्च पञ्चयज्ञविवर्जिताः । युष्मत्कुण्डद्वये स्नानात्तत्तत्फलमवाप्नुयुः
अन्येवयेपातकिनोनित्यानुष्ठानवर्जिताः । स्नात्वाकुण्डद्वयेतत्रशुद्धाःस्युर्द्विजसत्तमाः
सरस्वतीं च गायत्रीमेवमुक्त्वा महेश्वरः । क्षणादन्तरधात्तत्र सर्वेषामेव पश्यताम्
पतिलब्ध्वाऽथगायत्रीसरस्वत्यौ मुदान्विते । तेनसाकंब्रह्मलोकं जग्मतुर्द्विजसत्तमाः

श्रीसूत उवाच

एवम्वः कथितं विप्रा गन्धमादनपर्वते । सन्निधानं सरस्वत्या गायत्र्याश्चसहेतुकम्
यःशृणोतीममध्यायं पठते वा सभक्तिकम् । एतत्तीर्थद्वयस्नानफलमाप्नोत्यसंशयः

इति श्रीस्कान्दंमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येगायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांगन्धमादनेगायत्री
सरस्वतीसन्निधानकथनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

# एकचत्वारिंशोऽध्यायः

## गायत्रीसरस्वतीतीरप्रशंसायांकाश्यपपापशान्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गायत्रीं च सरस्वतीम् ।
लक्षीकृत्य कथामेकां पवित्रां द्विजसत्तमाः ! ॥ १ ॥

कश्यपाख्योद्विजःपूर्वमस्मिस्तीर्थद्वयेशुभे । स्नात्वातिमहतःपापाद्विमुक्तोनरकप्रदात्

ऋषय ऊचुः

मुने! कश्यपनामासावकरोत्कि हि पातकम् ।
स्नात्वा तीर्थद्वयेऽप्यत्र यस्मान्मुक्तोऽभवत्क्षणात् ॥ ३ ॥

एतन्नःश्रद्दधानानां ब्रूहिसूत! कृपाबलात् । त्वद्वचोमृततृप्तानां न पिपासाऽपि विद्यते

श्रीसूत उवाच

गायत्र्याश्चसरस्वत्यामाहात्म्यप्रतिपादकम् । इतिहासंप्रवक्ष्यामिशृण्वतांपापनाशनम्
अभिमन्युसुतोराजा परीक्षिन्नामनामतः । अध्यास्ते हास्तिनपुरं पालयन्धर्मतोमहीम्
स राजा जातुविपिने चचारमृगयारतः । षष्टिवर्षवयाभूपः क्षुत्तृषापरिपीडितः ॥
नष्टमेकं स विपिने मार्गयन्मृगमादरात् । ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा प्राह चीवरवाससम्
मयाबाणेन विपिने मृगोविद्धोऽधुना मुने! । दृष्टः सकिंत्वयाविद्धन्विद्रुतोभयकातरः

समाधिनिष्ठो मौनित्वान्नकिञ्चिदपि सोऽब्रवीत् ।
ततो धनुरटन्याऽसौ स्कन्धे तस्य महामुनेः ॥ १० ॥

निधाय मृतसर्पन्तु कुपितःस्वपुरं ययौ । मुनेस्तस्य सुतःकश्चिच्छृङ्गीनाम बभूव वै

सखा तस्य कृशाख्योऽभूच्छृङ्गिणो द्विजसत्तमाः ।
सखायं शृङ्गिणम्प्राह कृशाख्यः स सखा ततः ॥ १२ ॥

पिता तव मृतं सर्पं स्कन्धेन वहतेऽधुना । मा भूद्दर्पस्तव सखे मा कुथास्त्वंमदंवृथा

सोऽवदत्कुपितःश्रृङ्गी दित्सुश्शापं नृपायवै । मत्तातेशवसर्पयो न्यस्तवान्मूढचेतनः
ससप्तरात्रान्म्रियतां मंदष्टस्तक्षकाहिना । शशापैवं मुनिसुतः सौभद्रेयं परीक्षितम्
शमीकाख्यःपिता तस्य श्रुत्वा शप्तं सुतेनतम् । नृपंप्रोवाचतनयं श्रृङ्गिणं मुनिपुङ्गवः
रक्षकं सर्वलोकानां नृपं किं शप्तवानसि । अराजके वयं लोके स्थास्यामःकथमञ्जसा
क्रोधेन पातकमभूद्येन नो प्राप्यते सुखम् । यःसमुत्पादितं कोपं क्षमयैवनिरस्यति

इह लोके परत्रासावत्यन्तं सुखमेधते ।

क्षमायुक्ता हि पुरुषा लभन्ते श्रेय उत्तमम् ॥ १६ ॥

ततःशमीकःस्वंशिष्यं प्राहगौरमुखाभिधम् । भोगौरमुखगत्वात्वं वदभूपंपरीक्षितम्
इमं शापं मत्सुतोक्तं तक्षकाहिविदंशनम् । पुनरायाहि शीघ्रंत्वं मत्समीपं महामते ! ॥
एवमुक्तःशमीकेन ययौ गौरमुखो नृपम् । समेत्य चाब्रवीद्भूपं सौभद्रेयं परीक्षितम्

दृष्ट्वा सर्पं पितुःस्कन्धे त्वया विनिहतं मृतम् ।

शमीकस्य सुतः श्रृङ्गी शशाप त्वां रुषान्वितः ॥ २३ ॥

एतद्दिनात्सप्तमेऽह्नितक्षकेण महाहिना । दष्टो विषाग्निना दग्धो भूयादाशवभिमन्युजः

एवं शशाप त्वां राजञ्छृङ्गी तस्य मुनेःसुतः ।

एतद्वक्तुं पिता तस्य प्राहिणोन्मान्त्वदन्तिकम् ॥ २५ ॥

इतीरयित्वा तं भूपमाशुगौरमुखो ययौ । गते गौरमुखे पश्चाद्राजा शोकपरायणः ॥
अभ्रंलिहमथोत्तुङ्गमेकस्तम्भंसुविस्तृतम् । मध्येगङ्गां व्यतनुतं मण्डपं नृपपुङ्गवः ॥
महागरुडमन्त्रज्ञैरौषधज्ञैश्चिकित्सकैः । तक्षकस्य विषं हन्तुं यत्नं कुर्वन्समाहितः ॥
अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः । आस्ते तस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपे विष्णुभक्तिमान्
तस्मिन्नवसरेविप्रःकाश्यपोमान्त्रिकोत्तमः । राजानंरक्षितुंप्रायात्तक्षकस्यमहाविषात्
सप्तमेऽहनि विप्रेन्द्रो दरिद्रो धनकामुकः । अत्रान्तरेतक्षकोऽपि विप्ररूपी समाययौ
मध्येमार्गं विलोक्याऽथ काश्यपं प्रत्यभाषत । ब्राह्मणत्वंकुत्रयासिवदमेऽद्य महामुने!

इति पृष्टस्तदावादीत्काश्यपस्तक्षकं द्विजाः ।

परीक्षितं महाराजं तक्षकोऽद्य विषाग्निना ॥ ३३ ॥

धक्ष्यते तं शमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम् । इत्युक्तवन्तं तं विप्रं तक्षकःपुनरब्रवीत् ॥
तक्षकोऽहं द्विजश्रेष्ठमयादष्टंचिकित्सितुम् । न शक्तोऽब्दशतुनापि महामन्त्रायुतैरपि
चिकित्सितुं चेन्मद्दष्टं शक्तिरस्ति तवाधुना । अनेकयोजनोच्छ्रायमिमं वटतरुंत्वहम्
दशाम्युज्जीवयैनंत्वं समर्थोऽस्तिततोभवान् । इतीरयित्वातंवृक्षमदंशत्तक्षकस्तदा
अभवद्भस्मसात्सोपि वृक्षोत्यन्तंसमूर्च्छितः । पूर्वमेव नरः कश्चित्तंवृक्षमधिरूढवान्

तक्षकस्य विषोल्काभिः सोऽपि दग्धोऽभवत्तदा ।

तं नरं न विजिज्ञाते तौच काश्यपतक्षकौ ॥ ३६ ॥

काश्यपःप्रतिजज्ञेथतक्षकस्यापिशृण्वतः । तन्मन्त्रशक्तिंपश्यन्तुसर्वेविप्राहिनोऽधुना

इतीरयित्वा तं वृक्षं भस्मीभूतं विषाग्निना ।

अजीवयन्मन्त्रशक्त्या काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥ ४१ ॥

नरोऽपितेनवृक्षेणसाकमुज्जीवितोऽभवत् । अथाब्रवीत्तक्षकस्तंकाश्यपंमन्त्रकोविदम्
यथानमुनिवाङ्मिथ्या भवेदेवं कुरुद्विज । यत्तेराजाधनं दद्यात्ततोपिद्विगुणं धनम्
ददाम्यहंनिवर्तस्व शीघ्रमेव द्विजोत्तम !। इत्युक्त्वानर्घ्यरत्नानि तस्मैदत्त्वासतक्षकः
न्यवर्तयत्काश्यपंतंब्राह्मणंमन्त्रकोविदम् । अल्पायुषं नृपंमत्वाज्ञानदृष्ट्यासकाश्यपः

स्वाश्रमं प्रययौ तूष्णीं लब्धरत्नश्च तक्षकात् ।

सोऽब्रवीत्तक्षकःसर्वान्सर्पानाहूय तत्क्षणे ॥ ४६ ॥

यूयं तं नृपतिं प्राप्य मुनीनां वेषधारिणः । उपहारफलान्याशु प्रयच्छत परीक्षिते ॥
तथेत्युक्त्वा सर्वसर्पाददूराज्ञे फलान्यमी । तक्षकोऽपितदातत्र कस्मिंश्चिद्बदरीफले
कृमीवेषधरो भूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुं नृपम् । अथ राजाप्रदत्तानि सर्पैर्ब्राह्मणरूपकैः ॥
परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वा सर्वफलान्यपि । कौतूहलेन जग्राह स्थूलमेकं फलंकरे
अस्मिन्नवसरे सूर्योप्यस्ताचलमगाहत । मिथ्याऽभूत्पिवचो माभूदितितत्रत्यमानवाः
अन्योन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्च नृपास्तथा । एवं वदत्सु सर्वेषु फले तस्मिन्नदृश्यत
फलेरक्तकृमिःसर्वै राज्ञा चापि परीक्षिता । अयंकिंमां दशेदद्य कृमिरित्युक्तवान्नृपः
निदधेतत्फलंकर्णे सकृमिर्द्विजसत्तमाः । तक्षकोऽस्मिन्स्थितःपूर्वं कृमिरूपीफलेतदा

निर्गत्य तत्फलादाशु नृपदेहमवेष्टयत् ।
तक्षकावेष्टिते भूपे पार्श्वस्था दुद्रुवुर्भयात् ॥ ५५ ॥
अनन्तरं नृपो विप्रास्तक्षकस्य विषाग्निना ।
दग्धोऽभूद्भस्मसादाशु स प्रासादो बलीयसा ॥ ५६ ॥
कृत्वौर्ध्वदैहिकंतस्य नृपस्यसपुरोहिताः । मन्त्रिणस्तत्सुतं राज्यैजनमेजयनामकम्
राजानमभ्यषिञ्चन्वै जगद्रक्षणवाञ्छया । तक्षकाद्रक्षितुंभूपमायातःकाश्यपाभिधः
योब्राह्मणोमुनिश्रेष्ठाः ससर्वैर्निन्दितोजनैः । बभ्रामसकलान्देशाञ्छिष्टैःसर्वैश्चदूषितः
अवस्थानंनलेभेऽसौग्रामेवाप्याश्रमेपिवा । यान्यान्देशानसौयातस्तत्रतत्रमहाजनैः
तत्तद्देशान्निरस्तःसशाकल्यंशरणंययौ । प्रणम्यशाकल्यमुनिं काश्यपोनिन्दितोजनैः
इदं विज्ञापयामास शाकल्याय महात्मने ।

काश्यप उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ! शाकल्यहरिवल्लभ! ॥ ६२ ॥
मुनयो ब्राह्मणाश्चान्ये मां निन्दन्ति सुहृज्जनाः ।
नास्त्याऽहं कारणं जाने किं मां निन्दन्ति मानवाः ॥ ६३ ॥
ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुस्त्रीगमनं तथा । स्तेयं संसर्गदोषोवा मया नाचरितःक्वचित्
अन्यान्यपि हि पापानि न कृतानि मया मुने !।
तथाऽपि निन्दन्ति जना वृथा मां बान्धवादयः ॥ ६५ ॥
जानासिचेत्त्वंशाकल्यमयादोषंकृतंवद । उक्तोऽथकाश्यपेनैवंशाकल्याख्योमहामुनिः
क्षणं ध्यात्वा बभाषे तं काश्यपं द्विजसत्तमाः ।

शाकल्य उवाच

परीक्षितं महाराजं तक्षकाद्रक्षितुं भवान् ॥ ६७ ॥
अयासीदर्द्धमार्गेतुतक्षकेणनिवारितः । चिकित्सितुंसमर्थोपि विषरोगादिपीडितम्
यो न रक्षति लोभेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ।
क्रोधात्कामाद्भयाल्लोभान्मात्सर्यान्मोहतोऽपि वा ॥ ६६ ॥

योनरक्षति विप्रेन्द्रा! विषरोगातुरं नरम् । ब्रह्महा स सुरापी च स्तेयीचगुरुतल्पगः
संसर्गदोषदुष्टश्चनाऽपितस्यहिनिष्कृतिः । कन्याविक्रयिणश्चापिहयविक्रयिणस्तथा
कृतघ्नस्यापि शास्त्रेषु प्रायश्चित्तं हि विद्यते ।
विषरोगातुरं यस्तु समर्थोऽपि न रक्षति ॥ ७२ ॥
नतस्य निष्कृतिःप्रोक्ता प्रायश्चित्तायुतैरपि । नतेनसहपङ्क्तौ च भुञ्जीतसुकृतीजनः
न तेन सह भाषेत न पश्येत्तं नरं क्वचित् । तत्संभाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत् ॥
परीक्षित्समहाराजः पुण्यश्लोकश्च धार्मिकः ।
विष्णुभक्तो महायोगी चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ ७९ ॥
व्यासपुत्राद्धरिकथांश्रुतवान्भक्तिपूर्वकम् । अरक्षित्वानृपं तन्त्वं वचसातक्षकस्ययत्
निवृत्तस्तेन विप्रेन्द्रैर्बान्धवैरपि दूष्यसे । सपरीक्षिन्महाराजो यद्यपि क्षणजीवितः
तथापियावन्मरणंबुधैःकार्यंचिकित्सनम् । यावत्कण्ठगताःप्राणा मुमूर्षोर्मानवस्यहि
तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला गतिः ।
इति प्राहुःपुरा श्लोकं भिषग्विद्याब्धिपारगाः ॥ ७६ ॥
अतश्चिकित्साशक्तोऽपि यस्मादकृतभेषजः । अर्धमार्गेनिवृत्तस्त्वन्तेन तं हतवानसि
शाकल्येनैवमुदितः काश्यपः प्रत्यभाषत ।

काश्यप उवाच

ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायं वद सुव्रत !॥ ८१ ॥
येन मां प्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाःससुहृज्जनाः ॥ ८२ ॥
कृपां मयि कुरुष्वत्वं शाकल्य! हरिवल्लभ । काश्यपेनैवमुक्तस्तुशाकल्योऽपिमुनीश्वरः
क्षणं ध्यात्वा जगादेवं काश्यपं कृपया तदा ।

शाकल्य उवाच

अस्य पापस्य शान्त्यर्थमुपायं प्रवदामि ते ॥ ८४ ॥
तत्कर्त्तव्यंत्वयाशीघ्रं विलम्बंमाकृथाद्विज । दक्षिणाम्बुनिधौ सेतौगन्धमादनपर्वते
अस्ति तीर्थद्वयं विप्र गायत्रीचसरस्वती । तत्रत्वं स्नानमात्रेण शुद्धोभूयाश्चतत्क्षणे

गायत्र्याश्चसरस्वत्याजलवातस्पृशोनरः । विधूयसर्वपापानिस्वर्गंयास्यन्तिनिर्मलाः
तथाहिशीघ्रंविप्रत्वंगायत्रींचसरस्वतीम् । इत्युक्त:काश्यपस्तेनशाकल्येनद्विजोत्तमाः
नत्वा मुनिं च शाकल्यं तमापृच्छय मुनीश्वरम् ।
तेन चैवाभ्यनुज्ञातः प्रययौ गन्धमादनम् ॥ ८६ ॥
तत्रगत्वात्रगायत्रीसरस्वत्यौचकाश्यपः । नत्वातीर्थद्वयंभक्त्या दण्डपाणिंचभैरवम्
सङ्कल्पपूर्वं तत्तीर्थे सस्नौ नियमसंयुतः । तीर्थद्वयेस्नानमात्रान्मुक्तपापोऽथकाश्यपः
तीर्थद्वयस्य तीरेऽसौ किञ्चित्कालन्तु तस्थिवान् ।
तस्मिन्काले च गायत्रीसरस्वत्यौ मुनीश्वराः ॥ ६२ ॥
प्रादुर्बभूवतुर्मूर्ते सर्वाभरणभूषिते । देव्यौ ते स नमस्कृत्य काश्यपो भक्तिपूर्वकम्
के युवांरूपसम्पन्ने सर्वालंकारसंयुते । इति पप्रच्छ दृष्ट्वा ते काश्यपो हृष्टमानसः ॥
तेन पृष्टे च गायत्रीसरस्वत्यौ तमूचतुः ।

गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः

काश्यपावां हि गायत्रीसरस्वत्यौ विधिप्रिये ॥ ६५ ॥
एतत्तीर्थस्वरूपेण नित्यं वर्तावहेऽत्र तु । अत्र तीर्थद्वये स्नानादावां तुष्टे तवाधुना
वरं मत्तो वृणीष्व त्वं यदिष्टं काश्यपद्विज! ।
स्नान्ति तीर्थद्वये येऽत्र दास्यावस्तदभीप्सितम् ॥ ६७ ॥
श्रुत्वा वचस्तद्गायत्रीसरस्वत्योः स काश्यपः ।
तुष्टाव वाग्भिरग्र्याभिस्ते देव्यौ वेधसःप्रिये ॥ ६८ ॥

काश्यप उवाच

चतुराननगेहिन्यौ जगद्धात्र्यौ नमाम्यहम् । विद्यास्वरूपेगायत्रीसरस्वत्यौ शुभे उभे
सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यौजगतांवेदमातरौ । हव्यकव्यस्वरूपेचचन्द्रादित्यविलोचने
सर्वदेवाधिपे वाणीगायत्र्यौसततं भजे । गिरिजाकमलाचापि युवामेव जगद्धिते ॥
युष्मद्दर्शनमात्रेण जगत्सृष्ट्यादिकल्पनम् । युष्मन्निमेषे सततं जगतां प्रलयोऽभवत्
उन्मेषे सृष्टिरभवद्धोगायत्रि! सरस्वति ! । युवयोर्दर्शनादद्य कृतार्थोऽभवमाशुवै १०२

मामद्य पातकान्मुक्तं स्नानत्तीर्थद्वयेऽत्र तु ।
स्वीकुर्वन्तु मुनिश्रेष्ठा ब्राह्मणाबान्धवास्तथा ॥ १०४ ॥
इतः परंपापकृत्ये मा मे बुद्धिःप्रवर्तताम् । धर्मे प्रवर्ततां नित्यमयमेव वरो मम
दीयताम्भोमहादेव्यौ! नान्यदिच्छाम्यहं वरम् ।
इति ते प्रार्थिते तेन काश्यपेन द्विजोत्तमाः !॥ १०६ ॥
सरस्वतीचगायत्रीद्वेदेव्यौ ब्रह्मणःप्रिये । काश्यपं प्रोचतुःप्रीते जनन्यौ जगतां सदा
काश्यपतद्वरं सर्वं प्रार्थितं यत्त्वयाऽधुना । अनुग्रहादावयोस्तदचिरेण तवास्तु हि
इत्युक्त्वातंतुगायत्रीसरस्वत्यौ क्षणेनवं । तिरोधानंगतेविप्रास्तस्मिंस्तीर्थद्वयेतदा
काश्यपोऽपि कृतार्थःसन्स्वदेशं प्रतिनिर्ययौ ।
बान्धवा ब्राह्मणाः सर्वे काश्यपं गतकिल्बिषम् ॥ ११० ॥
प्रत्यगृह्णंश्च गायत्रीसरस्वत्योर्निमज्जनात् ।
एवम्वःकथितं विप्राः काश्यपस्य विमोक्षणम् ॥ १११ ॥
पातकेभ्योहिगायत्रीसरस्वत्योर्निमज्जनात् । पठतेत्विममध्यायं शृणुतेवासमाहितः
यो गायत्र्यांसरस्वत्यां स स्नातफलमश्नुते ॥ ११३ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्येगायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांकाश्यपपापशान्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

# द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

## सकलतीर्थप्रशंसायांरामनाथमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथातःसर्वतीर्थानां वैभवं प्रवदाम्यहम् । सेतुमध्यनिविष्टानामनुक्तानां मुनीश्वराः !
अस्तितीर्थम्महापुण्यंनाम्नातुऋणमोचनम् । ऋणानित्रीणिनश्यन्तिनराणाममज्जनात्

द्विजस्य जायमानस्य ऋणानि त्रीणि सन्ति हि ।

ऋषीणां देवतानांच पितृणां च द्विजोत्तमाः !॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्याननुष्ठानादृषीणां ऋणवान्भवेत् । यज्ञादीनामकरणाद्देवानां च ऋणीभवेत्
पुत्रानुत्पादनाच्चैव पितृणामृणवान्भवेत् । विनापि ब्रह्मचर्येण विनायागं विनासुतम्
ऋणमोक्षाभिधेतीर्थेस्नानमात्रेणमानवाः । ऋषिदेवपितृणान्तु ऋणेभ्योमुक्तिमाप्नुयुः
ब्रह्मचर्येण यज्ञेन तथा पुत्रोद्भवेनच । नंचतुष्यन्ति ऋषयो देवाःपितृगणास्तथा ॥ ७
ऋणमोक्षे यथास्नानादतुलां तुष्टिमाप्नुयुः । किञ्चात्र मज्जानात्तीर्थेदरिद्राअधमर्णिनः
मुक्ता ऋणेभ्यःसर्वेभ्यो धनिनःस्युर्न संशयः । यदत्र मज्जनात्पुंसामृणमुक्तिःप्रजायते
तस्मादुक्तमिदं तीर्थमृणमोचनसंज्ञया । अतोऽत्र ऋणिभिःसर्वैःस्नातव्यंतद्विमुक्तये
एतत्तीर्थसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति । पाण्डवैःकृतमप्यत्र तीर्थमस्त्यपरं महत् ॥
यत्रेष्टं धर्मपुत्राद्यैः पाण्डवैः पञ्चभिःपुरा । तदेतत्तीर्थमुद्दिश्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥

दशकोटिसहस्राणि तीर्थान्यनुत्तमानि हि ।

पञ्चपाण्डवतीर्थेऽस्मिन्सान्निध्यं कुर्वते सदा ॥ १३ ॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।

पाण्डवानां महातीर्थे नित्यं सन्निहितास्तथा ॥ १४ ॥

अत्राभिषेकं यःकुर्यात्पितृदेवांश्च तर्पयेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके स पूज्यते ॥
अप्येकं भोजयेद्विप्रमेतत्तीर्थतटेऽमले । तेनासौ कर्मणा तत्र परत्राऽपि च मोदते ॥१६

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यःशूद्रो वाप्यन्य एव वा ।
अस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा वियोनिं न प्रयाति वै ॥ १७ ॥
पाण्डवानां महातीर्थे पुण्ययोगेषु यो नरः । स्नायात्स मनुजःश्रेष्ठो नरकंनैवपश्यति
पाण्डवानां महातीर्थं सायंप्रातश्चयःस्मरेत् । सुस्नातःसर्वतीर्थेषुगङ्गादिषु न संशयः
इन्द्रादिदेवताभिश्च यत्रेष्टं दैत्यशान्तये । तदन्यद्देवतीर्थाख्यं विद्यते गन्धमादने ॥
देवतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापविमोचितः ।
प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान्सर्वकामसमन्वितान् ॥ २१ ॥
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रिया वा पुरुषेण वा ।
कृतन्तद्देवकुण्डेऽस्मिन् स्नानात्सद्यो विनश्यति ॥ २२ ॥
यथा सुराणां सर्वेषामादिर्वै मधुसूदनः । तथादिःसर्वतीर्थानां देवकुण्डमनुत्तमम् ॥
यस्तुवर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते । यस्त्वेकोदेवकुण्डेऽस्मिन्कदाचित्स्नानमाचरेत्
सममेवं तयोःपुण्यं नात्र सन्देहकारणम् । दुर्लभं देवतीर्थेऽस्मिन्दानं वासश्च दुर्लभः
देवतीर्थाभिगमनं स्नानं चाप्यतिदुर्लभम् । देवतीर्थं समासाद्य देवर्षिपितृसेवितम्
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं सगच्छति । द्विदिनं त्रिदिनंवापि पञ्चवाथ षडेववा
उषित्वा देवकुण्डस्थतीरे नरकनाशने ।
न मातृयोनिमाप्नोति सिद्धिं चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ २८ ॥
त्रिरात्रस्नानतो ह्यत्र वाजपेयफलं लभेत् । देवतीर्थस्मृते सद्यः पापेभ्योमुच्यते नरः
अर्चयित्वा पितृन्देवानेतत्तीर्थतटे नरः । सर्वकामसमृद्धःस्यात्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥
एतत्तीर्थसमं पुण्यं न भूतं न भविष्यति । तस्मादवश्यं स्नातव्यं देवतीर्थे मुमुक्षुभिः
ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकामैश्चमानवैः । देवतीर्थस्यमाहात्म्यं संक्षिप्यकथितंद्विजाः
विस्तरेणास्यमाहात्म्यंमयावक्तुंनपार्यते । सुग्रीवतीर्थंवक्ष्यामि रामसेतौविमुक्तिदे
अत्र स्नात्वा नरोभक्त्या सूर्यलोकं समश्नुते । सुग्रीवतीर्थेस्नानेनहयमेधफलंभवेत्
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिश्चापि जायते ।
सुग्रीवतीर्थगमनाद्गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३५ ॥

स्मरणात्तस्यवेदानां पारायणफलंभवेत् । दिनोपवासमात्रेण तस्यतीर्थस्यतीरतः ॥
महापातकनाशःस्यात्प्रायश्चित्तंविनाद्विजाः । अत्राभिषेकं कुर्वाणःपितृदेवांश्चतर्पयेत्
आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणंभवेत् । सुग्रीवतीर्थस्नानेन नरमेधफलं लभेत् ॥
सुग्रीवतीर्थस्नानेन नरोजातिस्मरो भवेत् । सुग्रीवतीर्थं भोविप्राःप्रयाताभीष्टसिद्धये
सुग्रीवतीर्थमहात्म्यमेवं वःकथितं द्विजाः । वैभवं नलतीर्थस्य त्विदानीं प्रब्रवीमिवः
नलतीर्थे नरःस्नानात्स्वर्गलोकं समश्नुते । नलतीर्थेसकृत्स्नानात्सर्वपापविमोचितः
अग्निष्टोमातिरात्रादिफलमाप्नोत्यनुत्तमम् । त्रिरात्रमुषितस्तस्मिंस्तर्पयन्पितृदेवताः
सूर्यवद्भासते विप्रा वाजिमेधफलं लभेत् । नीलतीर्थंप्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम् ॥
अग्निपुत्रेण नीलेन कृतंसेतौ विमुक्तिदम् । नीलतीर्थेनरः स्नानात्सर्वपापविमोचितः
बहुवर्णस्य यागस्य फलं शतगुणं लभेत् । नीलतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वाभीष्टप्रदायिनि
अग्निलोकमवाप्नोति सर्वकामसमृद्धिमान् । गवाक्षेण कृतं तीर्थं गन्धमादनपर्वते ॥
विद्यते स्नानमात्रेण नरकं नैव याति सः । अङ्गदेन कृतं तीर्थमस्ति सेतौ विमुक्तिदे
अत्रस्नानेन मनुजो देवेन्द्रत्वं समश्नुते । गजेन गवयेनात्र शारणेन महौजसा ॥ ४८
कुमुदेन हरेणापि पनसेन बलीयसा । कृतानि यानि तीर्थानि तथाऽन्यैःसर्ववानरैः

रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ।
तेषु तीर्थेषु यःस्नाति सोऽमृतत्वं समश्नुते ॥ ५० ॥

विभीषणकृतं तीर्थमस्ति पापविमोचनम् । महादुःखप्रशमनं महारोगनिबर्हणम् ॥
महापातकसङ्घानामनलोपममुत्तमम् । कुम्भीपाकादिनरकक्लेशनाशनकारणम् ॥ ५२
दुःस्वप्ननाशनंधन्यंमहादारिद्र्यबाधनम् । तत्रयोमनुजःस्नायात्तस्यनास्तीहपातकम्
स वैकुण्ठमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् । विभीषणस्य सचिवैःकृतं तीर्थचतुष्टयम्
तत्रस्नानेनमनुजः सर्वपापैःप्रमुच्यते । सरयूश्च नदी विप्रा! गन्धमादनपर्वते ॥ ५५ ॥
रामनाथं महादेवं सेवितुं वर्तते सदा । तत्रस्नात्वा नराःसर्वे सर्वपातकवर्जिताः ॥
सर्वयज्ञतपस्तीर्थसेवाफलमवाप्नुयुः । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानि द्विजसत्तमाः !॥
वसन्त्यस्मिन्महापुण्ये गन्धमादनपर्वते । गङ्गाद्याःसरितःसर्वास्तथा वै सप्तसागराः

ऋष्याश्रमानिपुण्यानि तथा पुण्यवनानिच । अनुत्तमानिक्षेत्राणि हरिशङ्करयोस्तथा
सान्निध्यं कुर्वते नित्यं गन्धमादनपर्वते । उपवीतान्तरं तीर्थं प्रोक्तवांश्चतुराननः ॥
त्रयस्त्रिंशत्कोटयोऽत्र दैवाःपितृगणैःसह । सर्वैश्चमुनिभिस्सार्द्धं यक्षसिद्धैश्चकिन्नरैः
वसन्ति सेतौ देवस्य रामचन्द्रस्य चाज्ञया ।

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तं द्विजश्रेष्ठास्तीर्थानां वैभवं मया ॥ ६२ ॥
इदंपठन्वाश्रृण्वन्वादुःखसङ्घाद्विमुच्यते । कैवल्यं च समाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येसकलतीर्थप्रशंसायांरामनाथमाहात्म्यवर्णनंनाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

# त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

## रामनाथप्रशंसनवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि रामनाथस्यवैभम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि
रामप्रतिष्ठितंलिङ्गंयःपश्यतिनरःसकृत् । सनरोमुक्तिमाप्नोतिशिवसायुज्यरूपिणीम्
दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे । त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः
द्वापरे तच्चमासेन तद्दिनेन कलौयुगे । तत्फलं कोटिगुणितं निमिषेनिमिषे नृणाम्
निस्सन्देहं भवेदेवं रामनाथविलोकिनाम् । रामेश्वरमहालिङ्गे तीर्थानि सकलान्यपि
विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयःपितरस्तथा । एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैववा ॥
ये स्मरन्ति महादेवं रामनाथं विमुक्तिदम् ।
कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते विमुक्ताऽघपञ्जराः ॥ ७ ॥
सच्चिदानन्दमद्वैतं साम्बं रुद्रं प्रयान्ति वै । रामेश्वराख्यं यल्लिङ्गं रामचन्द्रेण पूजितम्

तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत् । रामेश्वरमहालिङ्गं येऽर्चयन्तिसकृन्नराः न मानुषास्ते विज्ञेयाः किन्तु रुद्रा न संशयः । रामेश्वरमहालिङ्गं नार्चितं येनभक्तितः चिरकालं स संसारे संसरेद्दुःखसंकुले । रामेश्वरमहालिङ्गं ये पश्यन्ति सकृन्नराः ॥ किंदानैःकिंव्रतैस्तेषां किंतपोभिःकिमध्वरैः । रामेश्वरमहालिङ्गंयोनचिन्तयतिक्षणम्

अज्ञानी स च पापीस्यात्समूको बधिरस्तथा ।

स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रन्तस्य सदा भवेत् ॥ १३ ॥

धनक्षेत्रसुतादीनां तस्यहानिस्तथाभवेत् । रामेश्वरमहालिङ्गे सकृद्दृष्टे मुनीश्वराः ॥ किं काश्या गययाकिंवाप्रयागेणापिकिंफलम् । दुर्लभंप्राप्यमानुष्यंमानवायेऽत्र भूतले रामनाथमहालिङ्गं नमस्यन्त्यर्चयन्ति च । जन्मतेषां हि सफलं ते कृतार्थाश्चनेतरे रामेश्वरमहालिङ्गे पूजितेवास्मृतेऽपिवा । विष्णुनाब्रह्मणाकिंवाशक्रेणाप्यखिलामरैः रामनाथमहालिङ्गं भक्तियुक्ताश्च ये नराः । तेषा प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः न ते पश्यन्तिदुःखानिनैवयान्ति यमालयम् । ब्रह्महत्यासहस्राणिसुरापानायुतानिच दृष्टे रामेश्वरे देवेविलयं यान्तिकृत्स्नशः । ये वाञ्छन्तिसदाभोगंराज्यंचत्रिदशालये रामेश्वरमहालिङ्गं ते नमन्तु सकृन्मुदा । यानिकानि च पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि तानिरामेश्वरेदृष्टेविलयंयान्तिसद्गतिम् । सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापिचसंस्मरन् रामेश्वरमहालिङ्गं नेहामुत्र च दुःखभाक् । रामेश्वरमहालिङ्गं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ॥ २३॥ अवश्यं रुद्रसारूप्यंलभतेनात्रसंशयः । यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेक्षणात् तथा पापानिसर्वाणि रामेश्वरविलोकिनाम् । रामेश्वरमहालिङ्गभक्तिरष्टविधास्मृता तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् । स्वयंतत्पूजनं भक्त्या तदर्थं देहचेष्टितम् तन्माहात्म्यकथानांच श्रवणेष्वादरस्तथा । स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा रामेश्वरमहालिङ्गस्मरणं सन्ततं तथा । रामेश्वरमहालिङ्गमाश्रित्यैवोपजीवनम् ॥ एवमष्टविधाभक्तिर्यस्मिन्म्लेच्छेऽपिविद्यते । सएवमुक्तिक्षेत्राणांदायभाक्परिकीर्त्यते भक्त्या त्वनन्ययामुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेननिश्चिता । वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् सा च मुक्तिर्विनाज्ञानं दर्शनश्रवणोद्भवम् । यत्राश्रमंविना विप्राविरक्तिं च विना तथा

सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि । रामेश्वरमहालिङ्गदर्शनादेव केवलात्
अपुनर्भवदामुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बिता । कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥
तुल्यारामेश्वरक्षेत्रे रामनाथप्रसादतः । पापं कृतं मयानेकमिति माक्रियतां भयम् ॥
मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाकारीति वा जनैः । रामेश्वरमहालिङ्गेसाम्बरुद्रेविलोकिते

न न्यूना नाधिकाश्च स्युः किन्तु सर्वे जनाः समाः ।
रामेश्वरमहालिङ्गं यः पश्यति स भक्तिकम् ॥ ३६ ॥

न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले । रामेश्वरमहालिङ्गे भक्तोयः श्वपचोऽपि सन्
तस्मै दानानिदेयानिनान्यस्मैचत्रयीविदे । या गतिर्योगयुक्तानांमुनीनामूर्ध्वरेतसाम्
सा गतिः सर्वजन्तूना रामेश्वरविलोकिनाम् । रामनाथशिवक्षेत्रेयेवसन्तिनराद्विजाः
ते सर्वे पञ्चवक्त्राःस्युश्चन्द्रालङ्कृतमस्तकाः । नागाभरणसंयुक्तस्तथैववृषभध्वजाः
त्रिनेत्रा भस्मदिग्धाङ्गाः कपालकृतशेखराः । साक्षात्साम्बमहादेवा भवेयुर्नात्रसंशयः
रामनाथशिवक्षेत्रं ये व्रजन्ति नरा मुदा । पदेपदेऽश्वमेधानां प्राप्नुयुः सुकृतानि ते
रामसेतु समाश्रित्य रामनाथस्यतुष्टये । ददाति ग्राममेकं यो ब्राह्मणाय सभक्तिकम्
तेन भूः सकलादत्ता सशैलवनकानना । पत्रं पुष्पंफलं तोयं रामनाथाय यो नरः ॥
भक्त्या ददातितं रक्षेद्रामनाथो ह्यहर्निशम् । रामनाथमहालिङ्गे साम्बेकारुणिकेशिवे
अत्यन्तदुर्लभा भक्तिस्तत्पूजाप्यतिदुर्लभा । स्तोत्रंचदुर्लभंप्रोक्तंस्मरणंचातिदुर्लभम्
रामनाथेश्वरं लिङ्गं महादेवं त्रिलोचनम् । शरणं ये प्रपद्यन्ते भक्तियुक्तेन चेतसा ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषामिहलोके परत्रच । रामनाथमहालिङ्गविषया यस्य शेमुषी ॥
दिवारात्रं च भवति स वै धन्यतरो भुवि । रामनाथेश्वरं लिङ्गं यो न पूजयते शिवम्
नायं भुक्तेश्चमुक्तेश्च राज्यानामपि भाजनम् । रामेश्वरमहालिङ्गं यः पूजयतिभक्तितः
भुक्तिमुक्त्योश्च राज्यानामसौ परमभाजनः । रामनाथार्चनसमं नाधिकपुण्यमस्तिवै
रामनाथेश्वरं लिङ्गं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः । ब्रह्महत्यायुतंतेन कृतंनरककारणम् ॥
तत्संभाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत् । रामनाथपरादेवा रामनाथपरामखाः ॥
रामनाथपराः सर्वे तस्माद्न्यन्नविद्यते । अतः सर्वंपरित्यज्य रामनाथं समाश्रयेत् ॥

रामनाथमहालिङ्गं शरणं याति चेन्नरः । दौर्मत्यं तस्यनास्त्येवशिवलोकंच यास्यति
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नानेषु यत्फलम् । तत्फलंकोटिगुणितं रामनाथस्य सेवया ॥
रामनाथेश्वरंलिङ्गं चिन्तयन्घटिकाद्वयम् । कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥
दिनमेकं तु यः पश्येद्रामनाथं महेश्वरम् । इहैव धनवान्भूत्वा सोऽन्ते रुद्रश्चजायते ॥
यः स्मरेत्प्रातरुत्थाय रामनाथं महेश्वरम् । अनेनैव शरीरेण सशिवो वर्तते भुवि ॥
रामनाथमहालिङ्गद्रष्टुर्दर्शनमात्रतः । अन्येषां प्राणिनांपापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥
रामनाथेश्वरंलिङ्गंमध्याह्वेयस्तुपश्यति । सुरापानसहस्राणितस्यनश्यन्तितत्क्षणात्
सायंकाले पश्यति यो रामनाथंसभक्तिकम् । गुरुस्त्रीगमनोत्पन्नपातकंतस्यनश्यति

सायं कालेमहास्तोत्रैः स्तौति रामेश्वरं तु यः ।
स्वर्णस्तेयसहस्राणि तस्य नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥ ६३ ॥

स्नानं च धनुषः कोटौ रामनाथस्य दर्शनम् । इतिलभ्येतवैपुंसांकिंगङ्गाजलसेवया
रामनाथमहालिङ्गसेवयायन्नलभ्यते । तदन्यद्धर्मजालेन नैवलभ्येत कर्हिचित् ॥
रामनाथंमहालिङ्गं यः कदापि न पश्यति । संकरः स तु विज्ञेयो नपितुर्बीजसम्भवः
रामनाथेतिशब्दं यस्त्रिःपठेत्प्रातरुत्थितः । तस्यपूर्वदिनोत्पन्नपातकनश्यतिक्षणात्
रामनाथेमहालिङ्गे भक्तरक्षणदीक्षिते । भोजनाविद्यमानेऽपि याचनाः किंप्रयास्यथ ॥
रामनाथमहालिङ्गे प्रसन्ने करुणानिधौ । नश्यन्ति सकलाःक्लेशायथासूर्योदयेहिमाः
प्राणोत्क्रमणवेलायां रामनाथंस्मरेद्यदि । जन्मनेऽसौ न कल्पेतभूयःशङ्करतामियात्
रामनाथमहादेव! मां रक्षकरुणानिधे !। इति यः सततं ब्रूयात्कलिनासौ न बाध्यते
रामनाथजगन्नाथ! धूर्जटे! नीललोहित !। इति यःसततंब्रूयाद्बाध्यतेऽसौ न मायया
नीलकण्ठमहादेव! रामेश्वरसदाशिव !। इति ब्रुवन्सदाजन्तुर्नैवकामेन बाध्यते ॥ ७३
रामेश्वर ! यमाराते ! कालकूटविषादन ! । इतीरयञ्जनोनित्यं न क्रोधेन प्रपीड्यते ॥
रामनाथालयं यस्तु दारुभिः कुरुतेनरः। सपुमान्स्वर्गं माप्नोति त्रिकोटिकुलसंयुतः

इष्टकाभिस्तु यः कुर्यात्स वैकुण्ठमवाप्नुयात् ।
शिलाभिः कुरुते यस्तु स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ॥ ७६ ॥

स्फटिकादिशिलाभेदैः कुर्वन्नस्यालयञ्जनः । शिवलोकमवाप्नोतिविमानवरमास्थितः
रामनाथालयं ताम्रैः कुर्वन्भक्तिपुरःसरम् ।
शिवसामीप्यमाप्नोति शिवस्यार्द्धासनस्थितः ॥ ७८ ॥
रामेश्वरालयं रूप्यैःकुर्वन्वैमानवो मुदा । शिवसारूप्यमाप्नोति शिववन्मोदते सदा
रामनाथालयंहेम्नायःकरोति सभक्तिकम् । सनरोमुक्तिमाप्नोतिशिवसायुज्यरूपिणीम्
रामनाथालयंहेम्ना धनाढ्यःकुरुते नरः । मृदा दरिद्रःकुरुते तयोः पुण्यंसमंस्मृतम्
रामनाथमहालिङ्गस्नानकालेद्विजोत्तमाः । त्रिसन्ध्यं गेयनृत्तेच मुखवाद्यैश्च काहलम्
वाद्यान्यन्यानिकुरुते यःपुमान्भक्तिपूर्वकम् । समहापातकैर्मुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥
योऽभिषेकस्य समये रामनाथस्य शूलिनः । रुद्राध्यायं च चमकं तथापुरुषसूक्तकम्
त्रिसुपर्णं पञ्चशान्तिं पावमान्यादिकं तथा । जपेत्प्रीतियुतो विप्रा नरकंन समश्नुते
गवांक्षीरेण दध्ना च पञ्चगव्यैर्घृतैस्तथा । रामनाथमहालिङ्गस्नानं नरकनाशनम्
रामनाथमहालिङ्गं घृतेनस्नापयेच्च यः । कल्पजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति
रामनाथमहालिङ्गं गोक्षीरैः स्नापयन्नरः । कुलैकविंशमुत्तीर्य शिवलोके महीयते ॥
रामनाथमहालिङ्गं दध्नासंस्नापयन्नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥
अभ्यङ्गन्तिलतैलेन रामेश्वरशिवस्य यः । करोति हि सकृद्भक्त्या स कुबेरगृहेवसेत्
रामनाथमहालिङ्गे स्नानमिक्षुरसेन यः । सकृदप्याचरेद्भक्त्या चन्द्रलोकं समश्नुते ॥
लिकुचाम्ररसोत्पन्नसारेण स्नापयन्नरः । रामनाथमहालिङ्गं पितृलोकं समश्नुते ॥
नालिकेरजलैस्नानं रामनाथमहेश्वरे । ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनं परिकीर्तितम् ॥
रामनाथमहालिङ्गं रम्भापक्वैर्विमर्दयन् । विनाश्यसकलं पापं वायुलोके महीयते ॥
वस्त्रपूतेन तोयेन रामनाथं महेश्वरम् । स्नापयन्वारुणं लोकमाप्नोति द्विजसत्तमाः
चन्दनोदकधाराभी रामनाथं महेश्वरम् । स्नापयेत्पुरुषो विप्रा गन्धर्वलोकमाप्नुयात्
पुष्पवासिततोयेन हेमसंपृक्तवारिणा । दुग्धसम्पृक्ततोयेन स्नानाद्रामेश्वरस्य तु ॥६७
महेन्द्रासनमारुह्य तेनैव सह मोदते । पाटलोत्पलकह्लारपुन्नागकरवीरकैः ॥ ६८ ॥
वासितैर्वारिभिर्विप्रा रामेश्वरमहेश्वरम् । अभिषिच्य महद्भिश्च पातकैःस विमुच्यते

यानि चान्यानि पुष्पाणि सुरभीणि महान्ति च ।
तद्गन्धवासितैस्तोयैरभिषिच्य दयानिधिम् ॥ १०० ॥
रामेश्वरमहालिङ्गं शिवलोकेमहीयते । एलाकर्पूरलामज्जवासितैःशुद्धवारिभिः ॥
रामेश्वरमहालिङ्गमभिषिच्यविशुद्धधीः । आग्नेयंलोकमासाद्यसर्वान्कामान्समश्नुते
रामनाथाभिषेकार्थं मृद्घटान्यःप्रयच्छति । इहलोके शतायुःस्यात्सर्वकामसमृद्धिमान्
ताम्रकुम्भप्रदानेन देवेन्द्रत्वमवाप्नुयात् । रौप्यकुम्भप्रदानेन ब्रह्मलोकंसमश्नुते ॥
हेमकुम्भप्रदानेन शिवलोकेमहीयते । रत्नकुम्भप्रदानेन शिवसामीप्यमश्नुते ॥ १०५
रामनाथाभिषेकार्थं नैवेद्यार्थमपि द्विजाः ।
यो गां पयस्विनी दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १०६ ॥
प्राप्नोति शिवलोकं च देहान्तेशिववेषभाक् । रामसेतौधनुष्कोटौरामनाथेत्युदीर्ययः
यत्रक्काप्याचरेत्स्नानं सेतुस्नानफलंलभेत् । सुधाप्रलिप्तं यःकुर्याद्रामनाथशिवालयम्
तत्पुण्यं गदितुं नाऽहं शक्तोवर्षशतादपि । नवीकरोति योमर्त्योरामनाथशिवालयम्
कर्तुःशतगुणं ज्ञेयंयस्यपुण्यफलंद्विजाः । छिन्नभिन्नंचयःसम्यक् रामनाथशिवालयम्
करोतिभक्त्या पुरुषो ब्रह्महत्यायुतंदहेत् । रामनाथस्य पुरतो दीपानारोपयन्मुदा ॥
अविद्यापटलं भित्त्वायाति ब्रह्मसनातनम् । घृतंतैलं तथामुद्गंशर्करास्तण्डुलान्गुडान्
प्रयच्छन् रामनाथाय देवेन्द्रपदमश्नुते । रामनाथमहालिङ्गदर्शनादर्चनात्स्मृतेः ॥ ११३
स्पर्शनादपि पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ।
रामनाथाय योदद्यान्महाघण्टां च दर्पणम् ॥ ११४ ॥
विमानशतसंभोगैश्चिरं शिवपुरे वसेत् । भेरीमृदङ्गपटहनिस्साणरमुरजादिकम् ॥
वंशकांस्यादिवादित्रं तथावाद्यान्तराणि च ।
प्रयच्छन् रामनाथाय महादेवाय सादरम् ॥ ११६ ॥
सविमानैर्महाभोगैर्वाद्यघोषसमन्वितैः । अनेकयुगपर्यन्तं शिवलोके महीयते ॥ ११७
रामनाथं समुद्दिश्य यद्दत्तं स्वल्पमादरात् । तदनन्तफलं दातुः परत्र भवति ध्रुवम्
रामेश्वरे महाक्षेत्रे रामनाथस्य सन्निधौ । वसन्मुक्तिमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जिताम्

आयुःप्रयाति त्वरितं त्वरितं याति यौवनम् ।
त्वरितं सम्पदो यान्ति दारपुत्रादयस्तथा ॥ १२० ॥

राजादिभिर्धनं बाध्यं गृहक्षेत्रादिकं तथा । सर्वं च क्षणिकं विप्रागृहोपकरणादिकम्
तस्मात्सर्वं परित्यज्य संसारस्योपलालनम् । रामेश्वरमहालिङ्गमापन्नार्तिहरंनृणाम्

श्रोतव्यं कीर्तितव्यं च स्मर्तव्यं च मनीषिभिः ।
रामेश्वराय देवाय यो वै ग्रामान्प्रयच्छति ॥ १२३ ॥

सहिप्रारब्धदेहान्ते शिव एव प्रजायते । पात्राणामुत्तमं पात्रं रामनाथो महेश्वरः ॥
तस्मैदत्त्वा द्विजाःसत्यमनन्तं सुखमश्नुते । रामनाथमहालिङ्गदर्शनावधिपातकम् ॥
दत्त्वा तस्मै जनःकिञ्चित्सार्वभौमोभवेद्ध्रुवम् । तालवृन्तंध्वजंछत्रंचन्दनंगुग्गुलंतथा
ताम्रकास्यादिरजतहेमरत्नमयान्घटान् । प्रयच्छन्त्यभिषेकार्थं रामनाथस्य ये नराः
भूमण्डलाधिपतयो जायन्ते ते भवान्तरे । रामनाथस्यपूजार्थं पुष्पाण्युत्पादयन्ति ये
अश्वमेधादियागाना फलान्यद्धाप्नुवन्तिते । रामेश्वरे महालिङ्गे पूजिते नमितेस्मृते
श्रुतेदृष्टे च विप्रेन्द्रा दुर्लभं नास्ति किञ्चन । रामनाथमहालिङ्गंसेवितुंयःपुमान्व्रजेत्
तं दृष्ट्वाभयमाप्नोति तस्यपापौघमाशुवै । रामनाथो महादेवो दृष्टो यदि भवेन्नृभिः ॥
किं वेदैःकिमु वाशास्त्रैःकिंवा तीर्थनिषेवणैः । चन्दनंकुङ्कुमंकोष्ठंकस्तूरींगुग्गुलंतथा
मृगनाभिंचसरलं दद्याद्रामेश्वराय यः । सभूमाविह जायेत धनाढ्यो वेदपारगः ॥१३३
मुक्ताभरणवस्त्राणि महार्हाणिददातियः । रामनाथायदेवाय नासौ दौर्गत्यमाप्नुयात्

रामनाथमहालिङ्गं गङ्गातोयैःसमाहृतैः ।
योऽभिषिञ्चत्यसौ पूज्यः शिवस्यापि न संशयः ॥ १३५ ॥

यावन्नयाति मरणं यावन्नाक्रमतेजरा । यावन्नेन्द्रियवैकल्यंभवत्येव द्विजोत्तमाः ॥
तावदेव महादेवो रामनाथोमुमुक्षुभिः । वन्द्यःपूज्यश्च मन्तव्यः स्तुत्यश्चसततं शिवः
रामेश्वरमहालिङ्गपूजातुल्यो न विद्यते । धर्मःसर्वपुराणेषु धर्मशास्त्रेषु वै तथा ॥१३८

रामनाथेश्वरं देवं महाकारुणिकं प्रभुम् ।
भक्त्या भजन्ति ये नित्यं ते भूलोके सुखान्विताः ॥ १३६ ॥

भुक्त्वा भोगान्बहुसुखान्पुत्रदारयुता भृशम् ।
एतच्छरीरपातान्ते मुक्तिं यास्यन्ति शाश्वतीम् ॥ १४० ॥

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितं विप्रा रामनाथस्य वैभवम् । यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यं पठतेचसभक्तिकम्
स रामनाथसेवायाः फलमाप्नोत्यनुत्तमम् । धनुष्कोटिमहातीर्थस्नानपुण्यञ्चयास्यति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये रामनाथप्रशंसानामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

# चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

## रामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाविधिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञ! पुराणार्णवपारग !। व्यासपादाम्बुजद्वन्द्वनमस्कारहृताशुभ !॥ १ ॥
पुराणार्थोपदेशेन सर्वप्राण्युपकारक । त्वयाह्यनुगृहीताःस्म पुराणकथनाद्वयम् ॥ २
अधुनासेतुमाहात्म्यकथनात्सुतरा मुने !। वयं कृतार्थाःसञ्जाता व्यासशिष्यमहामते!
यथा प्रातिष्ठिपल्लिङ्गं रामोदशरथात्मजः । तच्छ्रोतुंवयमिच्छामस्त्वमिदानींवदस्वनः

श्रीसूत उवाच

यदर्थं स्थापितंलिङ्गं गन्धमादनपर्वते । रामचन्द्रेण विप्रेन्द्रास्तदिदानीं ब्रवीमि वः ॥५
हृतभार्यो वनाद्रामो रावणेन बलीयसा । कपिसेनायुतोवीरः ससौमित्रिर्महाबलः ॥
महेन्द्रं गिरिमासाद्य व्यलोकयत वारिधिम् । तस्मिन्नपारे जलधौकृत्वासेतुंरघूद्वहः
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां रावणेनाभिरक्षिताम् ।
अस्तङ्गते सहस्रांशौ पौर्णमास्यां निशामुखे ॥ ८ ॥
रामःससैनिकोविप्राः सुवेलागिरिमारुहत् । ततःसौधस्थितं रात्रौ दृष्ट्वालङ्केश्वरं बली

सूर्यपुत्रोऽस्य मुकुटं पातयामासभूतले । राक्षसो भग्नमुकुटः प्रविवेश गृहोदरम् ॥
गृहं प्रविष्टेलङ्केशे रामःसुग्रीवसंयुतः । सानुजःसेनयासार्द्धमवरुह्य गिरेस्तटात् ॥
सेनां न्यवेशयद्वीरो रामोलङ्कासमीपतः । ततो निवेशमानांस्तान्वानरान्रावणानुगाः

अभिजग्मुर्महाकायाः सायुधाःसहसैनिकाः ।

पर्वणः पूतनाजृम्भः खरःक्रोधवशोहरिः ॥ १३ ॥

प्रारुजश्चारुजश्चैव प्रहस्तश्चेतरे तथा । ततोऽभिपततां तेषामदृश्यानां दुरात्मनाम्
अन्तर्धानवधंतत्र चकारस्म विभीषणः । तेदृश्यमाना बलिभिर्हरिभिर्दूरपातिभिः ॥
निहतासर्वतश्चैते न्यपतन्वै गतासवः । अमृष्यमाणःसबलो रावणो निर्ययावथ ॥
व्यूह्यतान्वानरान्सर्वान्न्यवारयत सायकैः । राघवस्त्वथ निर्यायव्यूढानीकोदशाननम्
प्रत्ययुध्यतवेगेन द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा । युयुधेलक्ष्मणेनाथ इन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ १८
विरूपाक्षेणसुग्रीवस्तारेयेणापि खर्वटः । पौण्ड्रेणच नलस्तत्र पुढशः पनसेन च ॥
अन्येऽपि कपयो वीरा राक्षसैर्द्वन्द्वमेन्यतु । चक्रुर्युद्धं सतुमुलं वीराणां भयवर्द्धनम् ॥
अथरक्षांसि भिन्नानि वानरैर्भीमविक्रमैः । प्रदुद्रुवूरणादाशु लङ्कां रावणपालिताम्
भग्नेषु सर्वसैन्येषु रावणप्रेरितेनवै । पुत्रेणेन्द्रजितायुद्धे नागास्त्रैरतिदारुणैः ॥ २२॥
बद्धौदाशरथीविप्रा उभौ तौ रामलक्ष्मणौ । मोचितौ वैनतेयेन गरुडेन महात्मना ॥
तत्रप्रहस्तस्तरसा समभ्येत्य विभीषणम् । गदया ताडयामास विनद्यरणकर्कशः ॥
सतयाभिहतो धीमान्गदया भीमवेगया । नाकम्पत महाबाहुर्हिमवानिवसुस्थितः
ततः प्रगृह्यविपुलामष्टघण्टांविभीषणः । अभिमन्त्र्य महाशक्तिं चिक्षेपास्यशिरःप्रति
पतन्त्या स तयावेगाद्राक्षसोऽशनिनायथा । हृतोत्तमाङ्गो ददृशे वातरुग्णइवद्रुमः ॥
तं दृष्ट्वा निहतं संख्ये प्रहस्तं क्षणदाचरम् । अभिदुद्रावधूम्राक्षो वेगेन महताकपीन्
कपिसैन्यं समालोक्य विद्रुतं पवनात्मजः । धूम्राक्षमाजघानाशु शरेण रणमूर्धनि
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषानिशाचराः । सर्वं राज्ञेयथावृत्तं रावणाय न्यवेदयन् ॥
ततःशयानं लङ्केशः कुम्भकर्णमबोधयत् । प्रबुद्धं प्रेषयामास युद्धाय स च रावणः ॥
आगतं कुम्भकर्णं तं ब्रह्मास्त्रेण तु लक्ष्मणः । जघान समरेक्रुद्धो गतासुर्न्यपतच्चसः

दूषणस्यानुजौ तत्र वज्रवेगप्रमाथिनौ । हनुमन्नीलनिहतौ रावणप्रतिमौ रणे ॥३३ ॥
वज्रदंष्ट्रं समवधीद्विश्वकर्मसुतोनलः । अकम्पनं चान्यहनत्कुमुदो वानरर्षभः ॥ ३४ ॥
षष्ठ्यां पराजितो राजा प्राविशच्च पुरीं ततः ।
अतिकायो लक्ष्मणेन हतश्च त्रिशिरास्तथा ॥ ३५ ॥
सुग्रीवेण हतौ युद्धे देवान्तकनरान्तकौ । हनूमता हतौयुद्धे कुम्भकर्णसुतावुभौ
विभीषणेन निहतो मकराक्षःखरात्मजः । ततइन्द्रजितंपुत्रं चोदयामास रावणः ॥३७
इन्द्रजिन्मोहयित्वातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । घोरैःशरैरङ्गदेन हतवाहोदिविस्थितः
कुमुदाङ्गदसुग्रीवनलजाम्बवदादिभिः । सहितावानराःसर्वे न्यपतंस्तेन घातिताः ॥
एवं निहत्य समरे ससैन्यौ रामलक्ष्मणौ । अन्तर्दधे तदाव्योम्नि मेघनादो महाबलः
ततो विभीषणो राममिक्ष्वाकुकुलभूषणम् । उवाचप्राञ्जलिर्वाक्यं प्रणम्य च पुनःपुनः
अयमम्भोगृहीत्वा तु राजराजस्य शासनात् ।
गुह्यकोऽभ्यागतो राम त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ ४२ ॥
इदमम्भः कुबेरस्ते महाराज प्रयच्छति । अन्तर्हितानां भूतानां दर्शनार्थं परंतप ॥ ४३
अनेन स्पृष्टनयनो भूतान्यन्तर्हितान्यपि । भवान्द्रक्ष्यति यस्मैच भवानेतत्प्रदास्यति
सोऽपि द्रक्ष्यति भूतानि वियत्यन्तर्हितानि वै ।
तथेतिरामस्तद्वारि प्रतिगृह्याथ सत्कृतम् ॥ ४५ ॥
चकारनेत्रयोःशौचं लक्ष्मणश्चमहाबलः । सुग्रीवजाम्बवन्तौच हनुमानङ्गदस्तथा ॥
मैन्दद्विविदनीलाश्च ये चान्ये वानरास्तथा । ते सर्वे रामदत्तेन वारिणाशुद्धचक्षुषः
आकाशेऽन्तर्हितं वीरमपश्यन् रावणात्मजम् ।
ततस्तमभिदुद्राव सौमित्रिर्दृष्टिगोचरम् ॥ ४८ ॥
ततोजघान संक्रुद्धो लक्ष्मणःकृतलक्षणः । कुबेरमिश्रितजलैः पवित्रीकृतलोचनः ॥
ततः समभवद्युद्धं लक्ष्मणेन्द्रजितोर्महत् । अतीवचित्रमाश्चर्यं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥
ततस्तृतीयदिवसे यत्नेनमहताद्विजाः । इन्द्रजिन्निहतोयुद्धे लक्ष्मणेन बलीयसा ॥
ततोमूलबलंसर्वं हतं रामेणधीमता । अथक्रुद्धो दशग्रीवःप्रियपुत्रे निपातिते ॥ ५२ ॥

निर्ययौ रथमास्थाय नगराद्बहुसैनिकः । रावणोजानकींहन्तुमुद्युक्तोविन्ध्यवारितः
ततोहर्यश्वयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा । उपतस्थे रणेरामं मातलिःशक्रसारथिः ॥ ५४
ऐन्द्रं रथं समारुह्य रामो धर्मभृतां वरः । शिरांसि राक्षसेन्द्रस्यब्रह्मास्त्रेणावधीद्रणे
ततो हतदशग्रीवं रामंदशरथात्मजम् । आशीर्भिर्जययुक्ताभिर्देवाः सर्षिपुरोगमाः ॥
तुष्टुवुः परिसन्तुष्टाः सिद्धविद्याधरास्तथा । रामं कमलपत्राक्षं पुष्पवर्षैरवाकिरन्
रामस्तैः सुरसंघातैःसहितः सैनिकैवृतः । सीतासौमित्रिसहितःसमारुह्यचपुष्पकम्

तथाभिषिच्य राजानं लङ्कायां च विभीषणम् ।
कपिसेनावृतो रामो गन्धमादनमन्वगात् ॥ ५६ ॥

परिशोध्य च वैदेहीं गन्धमादनपर्वते । रामं कमलपत्राक्षं स्थितवानरसंवृतम् ॥
हतलङ्केश्वरं वीरं सानुजं स विभीषणम् । सभार्यं देववृन्दैश्च सेवितं मुनिपुङ्गवैः ॥
मुनयोऽभ्यागतंद्रष्टुंदण्डकारण्यवासिनः । अगस्त्यन्तेपुरस्कृत्यतुष्टुवुर्मैथिलीपतिम्

मुनय ऊचुः

नमस्तेरामचन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे । अरावणजगत्कर्तुमवतीर्णाय भूतले ॥ ६३॥
ताटिकादेहसंहर्त्रे गाधिजाध्वररक्षिणे । नमस्तेजितमारीच! सुबाहुप्राणहारिणे ॥
अहल्यामुक्तिसंदायिपादपङ्कजरेणवे । नमस्ते हरकोदण्डलीलाभञ्जनकारिणे ॥
नमस्तेमैथिलीपाणिग्रहणोत्सवशालिने । नमस्ते रेणुकापुत्रपराजयविधायिने ॥
सहलक्ष्मणसीताभ्यां कैकेय्यास्तु वरद्वयात् । सत्यं पितृवचः कर्तुंनमोवनमुपेयुषे ॥
भरतप्रार्थनादत्तपादुकायुगलाय ते । नमस्ते शरभङ्गस्य स्वर्गप्राप्त्यैकहेतवे ॥ ६८ ॥
नमोविराधसंहर्त्रे गृध्रराजसखाय ते । मायामृगमहाक्रूरमारीचाङ्गविदारिणे ॥ ६९ ॥
रावणापहृतासीता युद्धत्यक्तकलेवरम् । जटायुषं तु संदह्य तत्कैवल्यप्रदायिने ॥
नमः कबन्धसंहर्त्रे शबरीपूजिताङ्घ्रये । प्राप्तसुग्रीवसख्याय कृतबालिवधाय ते ॥
नमः कृतवतेसेतुं समुद्रे वरुणालये । सर्वराक्षससंहर्त्रे रावणप्राणहारिणे ॥
संसाराम्बुधिसंतारपोतपादाम्बुजायते । नमोभक्तार्तिसंहर्त्रे सच्चिदानन्दरूपिणे ॥
नमस्तेरामभद्राय जगतामृद्धिहेतवे । रामादिपुण्यनामानि जपताम्पापहारिणे ॥ ७४ ॥

नमस्ते सर्वलोकानांसृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । नमस्तेकरुणामूर्ते ! भक्तरक्षणदीक्षित!
ससीताय नमस्तुभ्यं विभीषणसुखप्रद ! । लङ्केश्वरवधाद्राम! पालितं हि जगत्त्वया
रक्षरक्ष जगन्नाथ! पाह्यस्माञ्जानकीपते! । स्तुत्वैवंमुनयःसर्वेतूष्णींतस्थुर्द्विजोत्तमाः

श्रीसूत उवाच

य इमंरामचन्द्रस्यस्तोत्रंमुनिभिरीतम् । त्रिसन्ध्यंपठते भक्त्याभुक्तिमुक्तिंचविन्दति
प्रयाणकाले पठतो न भीतिरुपजायते । एतत्स्तोत्रस्य पठनाद्भूतवेतालकाइह ॥
नश्यन्ति रोगानश्यन्तिनश्यतेपापसञ्चयः । पुत्रकामोलभेत्पुत्रंकन्याविन्दतिसत्पतिम्

मोक्षकामो लभेन्मोक्षं धन कामोधनं लभेत् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति पठन्भक्त्या त्विमं स्तवम् ॥ ८१ ॥

ततो रामो मुनीन्प्राह प्रणम्य च कृताञ्जलिः । अहं विशुद्धयेप्राप्यःसकलैरपिमानवैः
मद्दृष्टिगोचरोजन्तुर्नित्यं मोक्षस्यभाजनम् । तथापि मुनयोनित्यंभक्तियुक्तेनचेतसा

स्वात्मलाभेन सन्तुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ।
निरहंकारिणः शान्तान्नमस्याम्यूर्ध्वरेतसः ॥ ८४ ॥
यस्माद् ब्रह्मण्यदेवोऽहमतो विप्रान्भजे सदा ।
युष्मान्पृच्छाम्यहं किञ्चित्तद्वदध्वं विचार्य तु ॥ ८५ ॥

रावणस्यवधाद्विप्रा यत्पापममवर्तते । तस्यमेनिष्कृतिंब्रूत पौलस्त्यवधजस्य हि

यत्कृत्वा तेन पापेन मुच्येऽहम्मुनिपुङ्गवाः ।

मुनय ऊचुः

सत्यव्रतजगन्नाथ ! जगद्रक्षाधुरन्धर !॥ ८७ ॥

सर्वलोकोपकारार्थं कुरु राम शिवार्चनम् । गन्धमादनशृङ्गेऽस्मिन्महापुण्येविमुक्तिदे
शिवलिङ्गप्रतिष्ठां त्वं लोकसंग्रहकाम्यया । कुरु राम दशग्रीववधदोषापनुत्तये ॥
लिङ्गस्थापनजम्पुण्यंचतुर्वक्त्रोऽपिभाषितुम् । न शक्नोतिनरोवक्तुंकिम्पुनर्मनुजेश्वर
यत्त्वयास्थाप्यते लिङ्गंगन्धमादनपर्वते । अस्यसंदर्शनम्पुंसांकाशीलिङ्गावलोकनात्

अधिकं कोटिगुणितम्फलवत्स्यान्न संशयः ।

तव नाम्नात्विदं लिङ्गं लोके ख्यातिं समश्नुताम् ॥ ९२ ॥

नाशकन्पुण्यपापाख्यकाष्ठानां दहनोपमम् । इदं रामेश्वरं लिङ्गं ख्यातंलोकेभविष्यति
मा विलम्बं कुरुष्वातो लिङ्गस्थापनकर्मणि । रामचन्द्र! महालिङ्ग! करुणापूर्णविग्रह

श्रीसूत उवाच

इति श्रुत्वा वचोरामो मुनीनान्तुमुनीश्वराः । पुण्यकालंविचार्याथद्विमुहूर्तंजगत्पतिः
कैलासम्प्रेषयामास हनुमन्तं शिवालयम् । शिवलिङ्गं समानेतुं स्थापनार्थं रघूद्वहः

राम उवाच

हनूमन्नञ्जनासूनो! वायुपुत्र महाबल! । कैलासन्त्वरितो गत्वा लिङ्गमानय माचिरम्
इत्याज्ञप्तस्सरामेणभुजावास्फोट्य वीर्यवान् । मुहूर्तद्वितयंज्ञात्वापुण्यकालंकपीश्वरः
पश्यतां सर्वदेवानामृषीणां च महात्मनाम् । उत्पपात महावेगश्चालयन्गन्धमादनम्
लङ्घयन्सवियन्मार्गं कैलासम्पर्वतं ययौ । नददर्श महादेवं लिङ्गरूपधरं कपिः ॥
कैलासे पर्वते तस्मिन्पुण्ये शङ्करपालिते । आञ्जनेयस्तपस्तेपे लिङ्गप्राप्त्यर्थमादरात्
प्रागग्रेषु समासीनःकुशेषुमुनिपुङ्गवाः । ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बो निरुच्छ्वासोजितेन्द्रियः
प्रसादयन्महादेवं लिङ्गं लेभे समारुतिः । एतस्मिन्ननरेविप्रामुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
अनागतं हनूमन्तं कालं स्वल्पावशेषितम् । ज्ञात्वा प्रकथितं तत्ररामम्प्रतिमहामतिम्

राम ! राम ! महाबाहो ! कालो ह्यत्येति साम्प्रतम् ।
जानक्या यत्कृतं लिङ्गं सैकतं लीलया विभो !॥ १०५ ॥

तल्लिङ्गंस्थापयस्वाद्यमहालिङ्गमनुत्तमम् । श्रुत्वैतद्वचनंरामोजानक्यासहसत्वरम्
मुनिभिः सहितःप्रीत्याकृतकौतुकमङ्गलः । ज्येष्ठेमासेसितेपक्षेदशम्याम्बुधहस्तयोः
गरानन्देव्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे रवौ । दशयोगे महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥
सेतुमध्ये महादेवं लिङ्गरूपधरं हरम् । ईशानं कृत्तिवसनं गङ्गाचन्द्रकलाधरम् ॥

रामो वै स्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम् ।
लिङ्गस्थम्पूजयामास राघवः साम्बमीश्वरम् ॥ ११० ॥

लिङ्गस्थः समहादेवः पार्वत्या सह शङ्करः । प्रत्यक्षमेव भगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम् ॥

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने । त्वयात्रस्थापितंलिङ्गं ये पश्यन्ति रघूद्वह!
महापातकयुक्ताश्च तेषाम्पापम्प्रणश्यति ।
सर्वाण्यपि हि पापानि धनुष्कोटौ निमज्जनात ॥ ११३ ॥
दर्शनाद्रामलिङ्गस्य पातकानि महान्त्यपि । विलयं यान्ति राजेद्र! रामचन्द्रन संशयः
प्रादाद्वेवं हि रामाय वरंदेवोऽम्बिकापतिः । तदग्रे नन्दिकेशं च स्थापयामासराघवः
ईश्वरस्याभिषेकार्थं धनुष्कोटयाथराघव । एकंकूपन्धराम्भित्त्वाजनयामासवैद्विजाः
तस्माज्जलमुपादय स्नापयामास्मशङ्करम् । कोटितीर्थमितिप्रोक्तं तत्तीर्थं पुण्यमुत्तमम्
उक्तंतद्वैभवं पूर्वमस्माभिर्मुनिपुङ्गवाः । देवाश्च मुनयो नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥
सर्वेऽपि वानरा लिङ्गमेकेकं चक्रुरादरात् ।

श्रीसूत उवाच

एवं वःकथितं विप्रा यथा रामेण धीमता ॥ ११६ ॥
स्थापितंशिवलिङ्गंवै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । इमांलिङ्गप्रतिष्ठांयः शृणोतिपठतेऽथवा
स रामेश्वरलिङ्गस्य सेवाफलमवाप्नुयात् ।
सायुज्यं च समाप्नोति रामनाथस्य वैभवात् ॥ १२१ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये रामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाविधिर्नाम-
चतुश्चत्वरिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

---

## पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

### रामचन्द्रतत्त्वज्ञानोपदेशवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

एवं प्रतिष्ठिते लिङ्गे रामेणाक्लिष्टकारिणा। लिङ्गं वरं समादाय मारुतिःसहसाययौ
रामं दाशरथिं वीरमभिवाद्य समारुतिः। वैदेहीलक्ष्मणौ पश्चात्सुग्रीवं प्रणनाम च॥
सीतामैकतलिङ्गं तत्पूजयन्तं रघूद्वहम्। दृष्ट्वाथ मुनिभिःसार्द्धं चुकोपपवनात्मजः॥
अत्यन्तं खेदखिन्नःसन्वृथाकृतपरिश्रमः। उवाच रामं धर्मज्ञं हनूमानञ्जनात्मजः॥ ४

हनूमानुवाच

दुर्जातोऽहं वृथा राम! लोके क्लेशाय केवलम्।
खिन्नोऽस्मि बहुशो देव! राक्षसैः क्रूरकर्मभिः॥ ५॥

मास्मसीमन्तिनीकाचिज्जनयेन्मादृशं सुतम्। यतोऽनुभूयतेदुःखमनन्तंभवसागरे॥
खिन्नोऽस्मिसेवयापूर्वंयुद्धेनाऽपिततोऽधिकम्। अनन्तदुःखमधुना यतोमामवमन्यसे
सुग्रीवेण स्वभार्यार्थं राज्यार्थं राक्षसेनच। रावणावरजेन त्वं सेवितोऽसिरघूद्वह!॥
मया निर्हेतुकं राम! सेवितोऽसि महामते!। वानराणामनेकेषु त्वयाऽऽज्ञप्तोऽहमद्यवै

शिवलिङ्गं समानेतुं कैलासात्पर्वतोत्तमात्।
कैलासं त्वरितो गत्वा न चापश्यम्पिनाकिनम्॥ १०॥

तपसा प्रीणयित्वा तं साम्बं वृषभवाहनम्। प्राप्तलिङ्गो रघुपते! त्वरितःसमुपागतः
अन्यलिङ्गं त्वमधुना प्रतिष्ठाप्य तुसैकतम्। मुनिभिर्देवगन्धर्वैः साकं पूजयसेविभो!
मया नीतमिदं लिङ्गं कैलासात्पर्वताद्वृथा। अहोभारायमेदेहो मन्दभाग्यस्य जायते
भूतलस्य महाराज! जानकीरमणप्रभो!। इदं दुःखमहं सोढुं न शक्नोमि रघूद्वह!॥

अधुना किं करिष्यामि न मे भवति सद्गतिः।
अतः शरीरं त्यक्ष्यामि त्वयाऽहमवमानितः॥ १५॥

श्रीसूत उवाच

एवंसबहुशोविप्राःक्रुशित्वापवनात्मजः । दण्डवत्प्रणतोभूमौ क्रोधशोकाकुलोऽभवत्
तं दृष्ट्वा रघुनाथोऽपि प्रहसन्निदमब्रवीत् । पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां कपिरक्षसाम्
सान्त्वयन्मारुतिं तत्र दुःखं चास्य प्रमार्जयन् ।

श्रीराम उवाच

सर्वं जानाम्यहं कार्यमात्मनोऽपि परस्य च ॥ १८ ॥

जातस्य जायमानस्य मृतस्यापि सदाकपे! । जायते म्रियतेजन्तुरेक एव स्वकर्मणा
प्रयातिनरकं चापि परमात्मा तु निर्गुणः । एवं तत्त्वं विनिश्चित्य शोकंमाकुरुवानर!
लिङ्गत्रयविनिर्मुक्तं ज्योतिरेकं निरञ्जनम् । निराश्रयं निर्विकारमात्मानं पश्यनित्यशः
किमर्थं कुरुषे शोकं तत्त्वज्ञानस्य बाधकम् । तत्त्वज्ञाने सदानिष्ठां कुरु वानरसत्तम!
स्वयंप्रकाशमात्मानं ध्यायस्वसततंकपे! । देहादौ ममतांमुञ्च तत्त्वज्ञानविरोधिनीम्
धर्मं भजस्वसततं प्राणिहिंसां परित्यज । सेवस्वसाधुपुरुषाञ्जहि सर्वेन्द्रियाणि च
परित्यजस्व सततमन्येषा दोषकीर्तनम् । शिवविष्णवादिदेवानामर्चां कुरु सदा कपे!
सत्यं वदस्व सततं परित्यज्य शुचं कपे! । प्रत्यग्ब्रह्मैकताज्ञानं मोहवस्तुसमुद्भतम्
शोभनाऽशोभनाभ्रान्तिः कल्पितास्मिन्यथार्थवत् ।
अध्यास्ते शोभनत्वेन पदार्थे मोहवैभवात् ॥ २७ ॥

रोगो विजायते नृणां भ्रान्तानां कपिसत्तम । रागद्वेषबलाद्बद्ध्वाधर्माधर्मवशंगताः
देवतिर्यङ्मनुष्यादिनिरयं यान्ति मानवाः । चन्दनागरुकर्पूरप्रमुखा अतिशोभनाः ॥
मलंभवन्तियत्स्पर्शात्तच्छरीरंकथंसुखम् । भक्ष्यभोज्यादयःसर्वे पदार्थाअतिशोभनाः
विष्ठाभवन्ति यत्सङ्गात्तच्छरीरं कथंसुखम् । सुगन्धिशीतलंतोयंमूत्रंयत्सङ्गमाद्भवेत्
तत्कथं शोभनं पिण्डं भवेद्ब्रूहिकपेऽधुना । अतीव धवलाःशुद्धाःपटायत्सङ्गमेन हि
भवन्ति मलिनाःस्वेदात्तत्कथं शोभनंभवेत् । श्रूयतां परमार्थोमे हनूमन्वायुनन्दन!
अस्मिन्संसारगर्तेतु किञ्चित्सौख्यंनविद्यते । प्रथमंजन्तुराप्नोतिजन्मबाल्यंततःपरम्
पश्चाद्यौवनमाप्नोति ततो वार्द्धक्यमश्नुते ।

पश्चान्मृत्युमवाप्नोति पुनर्जन्मतदश्नुते ॥ ३५ ॥

अज्ञानवैभवादेव दुःखमाप्नोति मानवः । तदज्ञाननिवृत्तौ तु प्राप्नोति सुखमुत्तमम् ॥
अज्ञानस्य निवृत्तिस्तु ज्ञानादेव न कर्मणा । ज्ञानं नाम परंब्रह्म ज्ञानं वेदान्तवाक्यजम्
तज्ज्ञानंचविरक्तस्य जायते नेतरस्यहि । मुख्याधिकारिणः सत्यमाचार्यस्यप्रसादतः
यदासर्वे प्रमुच्यन्ते कामायस्य हृदिस्थिताः । तदा मर्त्योऽमृतोऽत्रैवपरंब्रह्मसमश्नुते

जाग्रतं चस्वपन्तञ्च भुञ्जन्तञ्च स्थितं तथा ।
इमं जनं सदा क्रूरः कृतान्तः परिकर्षति ॥ ४० ॥
सर्वे क्षयान्तानिचयाः पतनान्ताःसमुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ४१ ॥

यथा फलानां पक्वानांनान्यत्र पतनाद्भयम् । तथानराणां जातानां नान्यत्तमरणाद्भयम्
यथा गृहदृढस्तम्भं जीर्णकाले विनश्यति । एवं विनश्यन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः
अहोरात्रस्यगमनान्नृणामायुर्विनश्यति । आत्मानमनुशोचत्वं किमन्यमनुशोचसि ॥

नश्यत्यायुःस्थितस्यापि धावतोऽपि कपीश्वर ! ।
सहैव मृत्युर्व्रजति सहमृत्युर्निषीदति ॥ ४५ ॥

चरित्वा दूरदेशं च सहमृत्युर्निवर्तते । शरीरे वलयो जाताः श्वेता जाताः शिरोरुहाः
जीर्यते जरया देहः श्वासकासादिनातथा । यथाकाष्ठं च काष्ठं च समेयातामहोदधौ
समेत्य च व्यपेयातां कालयोगेन वानर ! । एवं भार्या च पुत्रश्च बन्धुक्षेत्रधनानिच॥

क्वचित्सम्भूय गच्छन्ति पुनरन्यत्र वानर ! ।
यथा हि पान्थं गच्छन्तं पथि कश्चित्पथिस्थितः ॥ ४६ ॥

अहमप्यागमिष्यामि भवद्भिःसाकमित्यथ । कश्चित्कालंसमेतौतौ पुनरन्यत्रगच्छतः
एवंभार्यासुतादीनां सङ्गमो नश्वरःकपे । शरीरजन्मना साकं मृत्युःसञ्जायते ध्रुवम्
अवश्यम्भाविमरणे न हि जातु प्रतिक्रिया । एतच्छरीरपाते तु देही कर्मगतिं गतः

प्राप्य पिण्डान्तरं वत्स! पूर्वपिण्डं त्यजत्यसौ ।
प्राणिनां न सदैकत्र वासो भवति वानर ! ॥ ५२ ॥

स्वस्वकर्मवशात्सर्वे वियुज्यन्ते पृथक् पृथक् ।
यथा प्राणिशरीराणि नश्यन्ति च भवन्ति च ॥ ५४ ॥
आत्मनो जन्ममरणे नैवस्तःकपिसत्तम! । अतस्त्वमञ्जनासूनो! विशोकं ज्ञानमद्वयम्
सद्रूपममलम्ब्रह्म चिन्तयस्व दिवानिशम् । त्वत्कृतम्मत्कृतंकर्ममत्कृतन्त्वत्कृतन्तथा
मल्लिङ्गस्थापनंतस्मात्त्वल्लिङ्गस्थापनं कपे! । मुहूर्तातिक्रमाल्लिङ्गं सैकतं सीतयाकृतम्
मयाऽत्र स्थापितन्तस्मात्कोपं दुःखं च मा कुरु ।
कैलासादागतं लिङ्गं स्थापयास्मिञ्छुभेदिने ॥ ५८ ॥
तवनाम्नात्विदंलिङ्गं यातुलोकत्रये प्रथाम् । हनूमदीश्वरं दृष्ट्वा द्रष्टव्योराघवेश्वरः ॥
ब्रह्मराक्षसयूथानि हतानिभवताकपे! । अतःस्वनाम्ना लिङ्गस्य स्थापनात्त्वम्प्रमोक्षसे
स्वयं हरेण दत्तन्तु हनूमन्नामकं शिवम् । सम्पश्यन्रामनाथञ्च कृतकृत्यो भवेन्नरः
योजनाना सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिङ्गं हनूमतः ।
रामनाथेश्वरञ्चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥
तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारिकृत्स्नशः । येन दृष्टौ महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ ॥ ६३॥
हनूमता कृतंलिङ्गं यच्चलिङ्गंमयाकृतम् । जानकीयं च यल्लिङ्गं यल्लिङ्गं लक्ष्मणेश्वरम्
सुग्रीवेण कृतं यच्च सेतुकर्त्रा नलेन च । अङ्गदेन च नीलेन तथाजाम्बवताकृतम् ॥
विभीषणेन यच्चापि रत्नलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।
इन्द्राद्यैश्च कृतं लिङ्गं यच्छेषाद्यैःप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥
इत्येकादशरूपोऽयं शिवःसाक्षाद्विभासते । सदाह्येतेषु लिङ्गेषु सन्निधत्ते महेश्वरः ॥
तत्स्वपापौघशुद्ध्यर्थं स्थापयस्व महेश्वरम् ।
अथचेत्त्वम्महाभाग! लिङ्गमुत्सादयिष्यसि ॥ ६८ ॥
मयाऽत्र स्थापितं वत्स! सीतया सैकतं कृतम् ।
स्थापयिष्यामि च ततो लिङ्गमेतत्त्वया कृतम् ॥ ६६ ॥
पातालंसुतलम्प्राप्य वितलञ्च रसातलम् । तलातलञ्च तदिदं भेदयित्वातु तिष्ठति
प्रतिष्ठितम्मया लिङ्गं भेत्तुंकस्य बलम्भवेत् ।

उत्तिष्ठ लिङ्गमुद्वास्य मयैतत्स्थापितं कपे ! ॥ ७१ ॥
त्वया समाहृतं लिङ्गं स्थापयस्वाऽऽशु मा शुचः ।
इत्युक्तस्तम्प्रणम्याह ज्ञानसत्त्वोऽथ वानरः ॥ ७२ ॥
उद्वासयामि वेगेन सैकतं लिङ्गमुत्तमम् । संस्थापयामि कैलासादानीतं लिङ्गमादरात्
उद्वासने सैकतस्य कियान्भारो भवेन्मम । चेतसैवं विचार्याऽयं हनूमान्मारुतात्मजः
पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां कपिरक्षसाम् । पश्यतो रामचन्द्रस्य लक्ष्मणस्यापि पश्यतः
पश्यन्त्या अपि वैदेह्या लिङ्गं तत्सैकतं बलात् । पाणिना सर्वयत्नेन जग्राहैतरसा बली
यत्नेन महता चाऽयं चालयन्नपि मारुतिः । नालञ्चालयितुं ह्यासीत्सैकतं लिङ्गमोजसा
ततः किलकिलाशब्दं कुर्वन्वानरपुङ्गवः ।
पुच्छमुद्यम्य पाणिभ्यां निरास्थत्तं निजौजसा ॥ ७८ ॥
इत्यनेकप्रकारेण चालयन्नपि वानरः । नैव चालयितुं शक्तो बभूव पवनात्मजः ॥ ७९॥
तद्वेष्टयित्वा पुच्छेन पाणिभ्यां धरणीं स्पृशन् ।
उत्पपाताथ तरसा व्योम्नि वायुसुतः कपिः ॥ ८० ॥
कम्पयन्सधरां सर्वां सप्तद्वीपां सपर्वताम् । लिङ्गस्य क्रोशमात्रे तु मूर्च्छितो रुधिरं वमन्
पपात हनुमान्विप्राः कम्पिताङ्गो धरातले । पततो वायुपुत्रस्य वक्त्राच्च नयनद्वयात् ॥
नासापुटाच्छ्रोत्ररन्ध्रादपानाच्च द्विजोत्तमाः । रुधिरौघान्ससुस्रावरक्तकुण्डमभूच्च तत्
ततो हाहाकृतं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
धावन्तौ कपिभिः सार्द्धमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ८४ ॥
जानकीसहितौ विप्रा ह्यास्तां शोकाकुलौ तदा ।
सीतया सहितौ वीरौ वानरैश्च महाबलौ ॥ ८५ ॥
रुरुदाते तदा विप्रा गन्धमादनपर्वते । यथा तारागणयुतौ रजन्यां शशिभास्करौ ॥
ददृशतुर्हनूमन्तं घूर्णीकृतकलेवरम् । मूर्च्छितम्पतितं भूमौ वमन्तं रुधिरम्मुखात् ॥
विलोक्य कपयः सर्वे हाहाकृत्वापतन्भुवि । कराभ्यां सदयं सीता हनूमन्तं मरुत्सुतम्
तात तातेति पस्पर्श पतितं धरणीतले । रामोऽपि दृष्ट्वा पतितं हनूमन्तं कपीश्वरम् ॥

आरोप्याङ्कं स्वपाणिभ्यामाममर्श कलेवरम् ।
विमुञ्चन्नेत्रजं वारि वायुजं चाब्रवीद् द्विजाः !॥ ६० ॥
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे सेतुमाहात्म्ये रामचन्द्रतत्त्वज्ञानोपदेशोनाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

## षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

### रामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनम्

श्रीराम उवाच

पम्पारण्ये वयं दीनास्त्वया वानरपुङ्गव! ।
आश्वासिताः कारयित्वा सख्यमादित्यसूनुना ॥ १ ॥
त्वां दृष्ट्वा पितरन्बन्धून्कौशल्यांजननीमपि । न स्मरामो वयंसर्वान्मेत्वयोपकृतम्बहुः
मदर्थं सागरस्तीर्णो भवताबहुयोजनः । तलप्रहाराभिहतो मैनाकोऽपि नगोत्तमः ॥
नागमाता च सुरसा मदर्थम्भवता जिता । छायाग्राहमहाक्रूरामवधीद्राक्षसीम्भवान्
सायं सुवेलमासाद्य लङ्कामाहत्य पाणिना । अयासीरावणगृहम्मदर्थन्त्वम्महाकपे!
सीतामन्विष्य लङ्कायां रात्रौ गतभयो भवान् ।
अदृष्ट्वा जानकीम्पश्चादशोकवनिकां ययौ ॥ ६ ॥
नमस्कृत्य च वैदेहीमभिज्ञानंप्रदाय च । चूडामणिं समादाय मदर्थंजानकीकरात् ॥
अशोकवनिकावृक्षानभाङ्क्षीस्त्वम्महाकपे ! ।
ततस्त्वशीतिसाहस्रान्किङ्करान्नामराक्षसान् ॥ ८ ॥
रावणप्रतिमान्युद्धे पत्त्यश्वेभरथाकुलान् । अवधीस्त्वम्मदर्थे वै महाबलपराक्रमान्
ततःप्रहस्ततनयं जम्बुमालिनमागतम् । अवधीन्मन्त्रितनयान्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥१०

पञ्चसेनापतीन्पश्चादनयस्त्वं यमालयम् । कुमारमक्षमवधीस्ततस्त्वं रणमूर्धनि ॥
ततइन्द्रजितानीतो राक्षसेन्द्रसभांशुभाम् । तत्रलङ्केश्वरंवाचा तृणीकृत्यावमन्य च
अभाङ्क्षीस्त्वम्पुरीं लङ्काम्मदर्थंवायुनन्दन! । पुनःप्रतिनिवृत्तस्त्वमृष्यमूकम्महागिरिम्
एवमादिमहादुःखम्मदर्थम्प्राप्तवानसि । त्वमत्र भूतले शेषे मम शोकमुदीरयन् ॥ १४

अहम्प्राणान्परित्यक्ष्ये मृतोऽसि यदि वायुज! ।
सीतया मम किं कार्यं लक्ष्मणेनानुजेन वा ॥ १५ ॥

भरतेनापि किं कार्यं शत्रुघ्नेन श्रियापि वा । राज्येनापि न मेकार्यं परेतस्त्वंकपे!यदि
उत्तिष्ठ हनुमन्वत्स! किं शेषेऽद्यमहीतले । शय्यां कुरुमहाबाहो! निद्रार्थम्मम वानर
कन्दमूलफलानि त्वमाहारार्थम्ममाहर । स्नातुमद्य गमिष्यामि द्रुतं कलशमानय ॥
अजिनानि च वासांसि दर्भांश्च समुपाहर । ब्रह्मास्त्रेणावबद्धोऽहं मोचितश्चत्वयाहरे
लक्ष्मणेन सहभ्रात्रा ह्यौषधानयनेनवै । लक्ष्मणप्राणदाता त्वं पौलस्त्यमदनाशन !॥
सहायेन त्वयायुद्धेराक्षसान्रावणादिकान् । निहत्यातिबलान्वीरानवापमैथिलीगृहम्
हनूमन्नञ्जनासूनो!सीताशोकविनाशन! । कथमेवम्परित्यज्यलक्ष्मणम्माञ्चजानकीम्
अप्रापयित्वाऽयोध्यान्त्वंकिमर्थङ्गतवानसि । क्वगतोऽसिमहावीर!महाराक्षसकण्टक
इति पश्यन्मुखन्तस्य निर्वाक्यं रघुनन्दनः । प्ररुदन्नश्रुजालेन सेचयामास वायुजम्
वायुपुत्रस्ततो मूर्च्छामपहाय शनैर्द्विजाः । पौलस्त्यभयसन्त्रस्तलोकरक्षार्थमागतम्
आश्रित्य मानुषम्भावंनारायणमजंविभुम् । जानकीलक्ष्मणयुतंकपिभिःपरिवारितम्
कालाम्भोधरसङ्काशंरणधूलिसमुक्षितम् । जटामण्डलशोभाढ्यं पुण्डरीकायतेक्षणम्
खिन्नञ्च बहुशोयुद्धे ददर्श रघुनन्दनम् । स्तूयमानममित्रघ्नं देवर्षिपितृकिन्नरैः ॥
दृष्ट्वा दाशरथिं रामं कृपाबहुलचेतसम् । रघुनाथकरस्पर्शपूर्णगात्रः स वानरः ॥

पतित्वा दण्डवद्भूमौ कृताञ्जलिपुटो द्विजाः !।
अस्तौषीज्जानकीनाथं स्तोत्रैः श्रुतिमनोहरैः ॥ ३० ॥

## हनूमानुवाच

नमोरामाय हरये विष्णवे प्रभविष्णवे । आदिदेवाय देवाय पुराणायगदाभृते ॥३१॥

विष्टरे पुष्पकेनित्यं निविष्टाय महात्मने । प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजायते ॥ ३२ ॥
निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने । नमः सहस्रशिरसे सहस्रचरणाय च ॥
सहस्राक्षायशुद्धाय राघवायच विष्णवे । भक्तार्तिहारिणे तुभ्यं सीतायाः पतये नमः
हरयेनारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे । नमस्तुभ्यं वराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर! ॥
त्रिविक्रमायभवते बलियज्ञविभेदिने । नमोवामनरूपाय महामन्दरधारिणे ॥ ३६ ॥
नमस्तेमत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे । नमः परशुरामाय क्षत्रियान्तकरायते ॥
नमस्तेराक्षसघ्नाय नमोराघवरूपिणे । महादेवमहाभीम! महाकोदण्डभेदिने ॥ ३८ ॥
क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे । नमोऽस्त्वहल्यासन्तापहारिणे चापहारिणे ॥
नागायुतबलोपेतताटकादेहहारिणे । शिलाकठिनविस्तारवालिवक्षोविभेदिने॥४०॥

नमोमायामृगोन्माथकारिणे ज्ञानहारिणे ।

दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषणागस्त्यरूपिणे ॥ ४१ ॥

अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे । मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे ॥
राजेन्द्राय नमस्तुभ्यं जानकीपतये हरे ! । तारकब्रह्मणेतुभ्यं नमोराजीवलोचन ॥
रामाय रामचन्द्राय वरेण्याय सुखात्मने । विश्वामित्रप्रियायेदं नमः खरविदारिणे
प्रसीददेव देवेश! भक्तानामभयप्रद! । रक्ष मां करुणासिन्धो! रामचन्द्रनमोऽस्तुते
रक्ष मां वेदवचसामप्य गोचर राघव! । पाहि मां कृपया राम! शरणं त्वामुपैम्यहम्
रघुवीर! महामोहमपाकुरु ममाधुना । स्नाने चाचमने भुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥
सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहि मां रघुनन्दन! । महिमानन्तवस्तोतु कः समर्थोजगत्त्रये
त्वमेवत्वन्महत्त्वंवै जानासि रघुनन्दन !। इति स्तुत्वावायुपुत्रोरामचन्द्रंघृणानिधिम्

सीतामप्यभितुष्टाव भक्तियुक्तेन चेतसा ।

जानकि! त्वान्नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ५० ॥

दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम् । विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम्

भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम् ।

पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रींभक्ताभीष्टां सरस्वतीम् ॥ ५२ ॥

पतिव्रताधुरीणांत्वां नमामि जनकात्मजाम् । अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम्
आत्मविद्यात्रयीरूपामुमारूपां नमाम्यहम् ।
प्रसादाभिमुखीं लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम् ॥ ५४ ॥
नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम् । नमामिधर्मनिलयांकरुणांवेदमातरम्
पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षस्थलालयाम् ।
नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम् ॥ ५६ ॥
आह्लादरूपिणीं सिद्धिं शिवां शिवकरीं सतीम् ।
नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम् ॥ ५७ ॥
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा ।

श्रीसूत उवाच

स्तुत्वैवं हनूमान्सीतारामचन्द्रौ सभक्तिकम् ॥ ५८ ॥
आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नस्तूष्णीमास्ते द्विजोत्तमाः । यइदंवायुपुत्रेणकथितम्पापनाशनम्
स्तोत्रं श्रीरामचन्द्रस्य सीतायाःपठतेऽन्वहम् । सनरोमहदैश्वर्यमश्नुतेवाञ्छितंसदा
अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्च दोग्ध्रीः पयस्विनीः ।
आयुर्विद्याश्च पुत्रांश्च भार्यामपि मनोरमाम् ॥ ६१ ॥
एतत्स्तोत्रं सकृद्विप्राः पठन्नाप्नोत्यसंशयः । एतत्स्तोत्रस्यपाठेन नरकंनैव यास्यति
ब्रह्महत्यादिपापानिनश्यन्तिसुमहान्त्यपि । सर्वपापविनिर्मुक्तोदेहान्तेमुक्तिमाप्नुयात्
इतिस्तुतो जगन्नाथो वायुपुत्रेण राघवः । सीतया सहितोविप्रा हनूमन्तमथाब्रवीत्

श्रीराम उवाच

अज्ञानाद्वानरश्रेष्ठ! त्वयेदं साहसं कृतम् । ब्रह्मणाविष्णुना वापि शक्रादित्रिदशैरपि
नेदं लिङ्गं समुद्धर्तुं शक्यत स्थापितम्मया । महादेवापराधेनपतितोऽस्यद्य मूर्च्छितः
इतः परं माक्रियतान्द्रोहः साम्बस्यशूलिनः । अद्यारभ्य त्विदंकुण्डंतवनाम्नाजगत्त्रये
ख्यातिं प्रयातु यत्र त्वं पतितोवानरोत्तम । महापातकसङ्घानांनाशःस्यादत्रमज्जनात्
महादेवजटाज्जाता गौतमीसरितांवरा । अश्वमेधसहस्रस्य फलदा स्नायिनान्नृणाम्

ततः शतगुणा गङ्गा यमुना च सरस्वती । एतन्नदीत्रयं यत्र स्थले प्रवहते कपे !॥ ७० ॥

मिलित्वा तत्र तु स्नानं सहस्रगुणितं स्मृतम् ।

नदीष्वेतासु यत्स्नानात्फलम्पुंसां भवेत्कपे !॥ ७१ ॥

तत्फलन्तवकुण्डेऽस्मिन्स्नानात्प्राप्नोत्यसंशयम् ।

दुर्लभम्प्राप्य मानुष्यं हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ ७२ ॥

श्राद्धन्नकुरुते यस्तु भक्तियुक्तेन चेतसा । निराशास्तस्य पितरःप्रयान्तिकुपिताःकपे!
कुप्यन्ति मुनयोऽप्यस्मै देवाःसेन्द्राःसचारणाः । न दत्तम्हुतं येन हनूमत्कुण्डतीरतः
वृथाजीवित एवासाविहामुत्र चतुःखभाक् । हनूमत्कुण्डसन्निधे येनदत्तन्तिलोदकम्

मोदन्ते पितरस्तस्य घृतकुल्याःपिबन्ति च ।

श्रीसूत उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं विप्रा! रामेणोक्तं स वायुजः ॥ ७६ ॥

उत्तरेरामनाथस्य लिङ्गंस्वेनाहृतम्मुदा । आज्ञया रामचन्द्रस्य स्थापयामास वायुजः
प्रत्यक्षमेवसर्वेषांकपिलाङ्गूलवेष्टितम् । हरोऽपितत्पुच्छजातम्बिभर्तिच वलित्रयम्

तदुत्तरायां ककुभि गौरीं संस्थापयेन्मुदा ॥ ७९ ॥

श्रीसूत उवाच

एवं वःकथितं विप्रा यदर्थंराघवेणतु । लिङ्गं प्रतिष्ठितं सेतौ भुक्तिमुक्तिप्रदन्नृणाम्
यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः । सविधूयेहपापानि शिवलोके महीयते ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनन्नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

# सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

## रामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

राक्षसस्य वधात्सूत! रावणस्य महामुने! । ब्रह्महत्या कथमभूद्राघवस्य महात्मनः ॥
ब्राह्मणस्य वधात्सूत! ब्रह्महत्याऽभिजायते । न ब्राह्मणो दशग्रीवः कथं तद्वदनो मुने!
ब्रह्महत्याऽभवत्क्रूरा रामचन्द्रस्य धीमतः । एतन्नःश्रद्दधानानां वद कारुण्यतोऽधुना
इतिपृष्टस्ततःसूतो नैमिषारण्यवासिभिः । वक्तुम्प्रचक्रमे तेषां प्रश्नस्योत्तरमुत्तमम्

श्रीसूत उवाच

ब्रह्मपुत्रोमहातेजाः पुलस्त्यो नामवैद्विजाः । बभूवतस्य पुत्रोऽभूद्विश्रवा इतिविश्रुतः
तस्य पुत्रःपुलस्त्यस्य विश्रवामुनिपुङ्गवाः । चिरकालं तपस्तेपे दैवैरपि सुदुष्करम्
तपःकुर्वति तस्मिंस्तु सुमालीनामराक्षसः । पतालोकाद्भूलोकं सर्वंवैविचचारह
हेमनिष्काङ्गदधरःकालमेघनिभच्छविः । समादाय सुतां कन्यां पद्महीनामिवश्रियम्
विचरन्समहीपृष्ठे कदाचित्पुष्पकस्थितम् । दृष्ट्वा विश्रवसःपुत्रं कुबेरंवै धनेश्वरम्
चिन्तयामासविप्रेन्द्राः सुमालीसतुराक्षसः । कुबेरसदृशःपुत्रो यद्यस्माकम्भविष्यति
वयंवर्द्धामहेसर्वे राक्षसा ह्यकुतोभयाः । विचार्यैवं निजसुतामब्रवीद्राक्षसेश्वरः ॥ ११
सुते! प्रदानकालोऽद्य तव कैकसि! शोभने! । अद्यते यौवनम्प्राप्तं तद्भेया त्वं वरायहि

अप्रदानेन पुत्रीणां पितरो दुःखमाप्नुयुः ।
किञ्च सर्वगुणोत्कृष्टा लक्ष्मीरिव सुते! शुभे! ॥ १३ ॥
प्रत्याख्यानभयात्पुम्भिर्न च त्वं प्रार्थ्यसे शुभे! ।
कन्या पितॄणां दुःखाय सर्वेषां मानकाङ्क्षिणाम् ॥ १४ ॥

नजानेऽहंवरःको वा वरयेदितिकन्यके! । सात्वम्पौलस्त्यतनयं मुनिविश्रवसंद्विजम्
पितामहकुलोद्भूतं वरयस्व स्वयंगता । कुबेरतुल्यास्तनया भवेयुस्ते न संशयः ॥

कैकसी तद्वचः श्रुत्वा सा कन्या पितृगौरवात् ।
अङ्गीचकार तद्वाक्यं तथास्त्विति शुचिस्मिता ॥ १७ ॥
पर्णशालांमुनिश्रेष्ठा गत्वाविश्रवसोमुनेः । अतिष्ठदन्तिके तस्य लज्जमानाह्यधोमुखा
तस्मिन्नवसरे विप्राः पौलस्त्यतनयः सुधीः ।
अग्निहोत्रमुपास्तेस्म ज्वलत्पावकसन्निभः ॥ १६ ॥
सन्ध्याकालमतिक्रूरमविचिन्त्य तुकैकसी । अभ्येत्यतंमुनिंसुभ्रूः पितुर्वचनगौरवात्
तस्थावधोमुखी भूमिं लिखत्यङ्गुष्ठकोटिना ।
विश्रवास्तां विलोक्याऽथ कैकसीं तनुमध्यमाम् ॥ २१ ॥
उवाच सस्मितो विप्राः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।

विश्रवा उवाच

शोभने! कस्य पुत्री त्वं कुतो वा त्वमिहागता ॥ २२ ॥
कार्यंकिंवात्वमुद्दिश्य वर्तसेऽत्रशुचिस्मिते! । यथार्थतोवदस्वाद्य ममसर्वमनिन्दिते!
इतीरिताकैकसीसा कन्या बद्धाञ्जलिर्द्विजाः । उवाच तम्मुनिं प्रह्वविनयेन समन्विता
तपःप्रभावेण मुने! मदभिप्रायमद्य तु । वेत्तुमर्हसि सम्यक्त्वं पौलस्त्यकुलदीपन! ॥
अहं तु कैकसीनाम सुमालीदुहितामुने! । मत्तातस्याज्ञया ब्रह्मंस्तवान्तिकमुपागता
शेषं त्वं ज्ञानदृष्ट्याऽद्य ज्ञातुमर्हस्यसंशयः ।
क्षणं ध्यात्वा मुनिःप्राह विश्रवाः स तुकैकसीम् ॥ २७ ॥
मया ते विदितं सुभ्रू! मनोगतमभीप्सितम् ।
पुत्राभिलाषिणी सा त्वं मामगात्साम्प्रतं शुभे! ॥ २८ ॥
सायङ्कालेऽधुना क्रूरे! यस्मान्मां त्वमुपागता ।
पुत्राभिलाषिणी भूत्वा तस्मात्त्वाम्प्रब्रवीम्यहम् ॥ २६ ॥
शृणुष्वावहितारामे! कैकसि! त्वमनिन्दिते! ।
दारुणान् दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान् ॥ ३० ॥
जनयिष्यसिपुत्रांस्त्वं राक्षसान्क्रूरकर्मणः । श्रुततद्वचनासातु कैकसीप्रणिपत्यतम्

पुलस्त्यतनयं प्राह कृताञ्जलिपुटाद्विजाः । भगवन्नीदृशाःपुत्रास्त्वत्तःप्राप्तुंनयुज्यते
इत्युक्तःसमुनिःप्राहकैकसींतांसुमध्यमाम् । मद्वंशानुगुणःपुत्रः पश्चिमस्तेभविष्यति
धार्मिकः शास्त्रविच्छान्तो न तु राक्षसचेष्टितः ।
इत्युक्ता कैकसी विप्राः! काले कतिपये गते ॥ ३४ ॥
सुषुवे तनयं क्रूरं रक्षोरूपं भयङ्करम् । द्विपञ्चशीर्षं कुमतिं विंशद्बाहुंभयानकम् ॥
ताम्रोष्ठं कृष्णवदनं रक्तश्मश्रुशिरोरुहम् । महादंष्ट्रं महाकायं लोकत्रासकरं सदा
दशग्रीवाभिधोऽसौऽभूत्तथा रावणनामवान् ।
रावणानन्तरं जातः कुम्भकर्णाभिधः सुतः ॥ ३७ ॥
ततःशूर्पणखानाम्ना क्रूराजज्ञे च राक्षसी । ततो बभूवकैकस्या विभीषण इति श्रुतः
पश्चिमस्तनयोश्रीमान्धार्मिकोवेदशास्त्रवित् । एतेविश्रवसःपुत्रादशग्रीवादयोद्विजाः
अतो दशग्रीववधात्कुम्भकर्णवधादपि । ब्रह्महत्या समभवद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
अतस्तच्छान्तये रामो लिङ्गं रामेश्वराभिधम् ।
स्थापयामास विधिना वैदिकेन द्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥
एवं रावणघातेन ब्रह्महत्यासमुद्भवः । समभूद्रामचन्द्रस्यलोककान्तस्य धीमतः ॥
तत्सहैतुकमाख्यातंभवताम्ब्रह्मघातजम् । पापंयच्छान्तयेरामोलिङ्गस्प्रातिष्ठिपत्स्वयम्
एवंलिङ्गं प्रतिष्ठाप्य रामचन्द्रोऽतिधार्मिकः । मेनेकृतार्थमात्मानं ससीतावरजोद्विजाः
ब्रह्महत्या गता यत्र रामचन्द्रस्य भूपतेः । तत्र तीर्थमभूत्किञ्चिद्ब्रह्महत्याविमोचनम्
तत्रस्नानं महापुण्यंब्रह्महत्याविनाशनम् । दृश्यते रावणोऽद्यापि छायारूपेण तत्र वै
तदग्रे नागलोकस्य बिलमस्ति महत्तरम् । दशग्रीववधोत्पन्नां ब्रह्महत्याम्बलीयसीम्
तद् बिलं प्रापयामास जानकीरमणो द्विजाः !।
तस्योपरि बिलस्याथ कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ ४८ ॥
भैरवं स्थापयामास रक्षार्थं तत्र राघवः । भैरवाज्ञापरित्रस्ता ब्रह्महत्याभयङ्करी ॥
नाऽशक्नोत्तद्बलादूर्ध्वं निर्गन्तुं द्विजसत्तमाः !।
तस्मिन्नेव बिले तस्थौ ब्रह्महत्या निरुद्यमा ॥ ५० ॥

रामनाथमहालिङ्गद्दक्षिणेगिरिजा मुदा । वर्तते परमानन्दशिवस्यार्धशरीरिणी ॥५१
आदित्यसोमौ वर्तेते पार्श्वयोस्तत्रशूलिनः । देवस्यपुरतोवह्नी रामनाथस्य वर्तते

आस्ते शतक्रतुः प्राच्यामाग्नेय्यां च तथाऽनलः ।

आस्ते यमो दक्षिणस्यां रामनाथस्य सेवकः ॥ ५३ ॥

नैर्ऋते निर्ऋतिर्विप्रा वर्तते शङ्करस्य तु । वारुण्यां वरुणोभक्त्यासेवतेराघवेश्वरम्
वायव्ये तु दिशो भागे वायुरास्ते शिवस्य तु । उत्तरस्याञ्चधनदो रामनाथस्यवर्तते
ईशान्यस्य च दिग्भागे महेशो वर्ततेद्विजाः । विनायककुमारौ च महादेवसुतावुभौ
यथाप्रदेशं वर्तेते रामनाथालयेऽधुना । वीरभद्रादयःसर्वे महेश्वरगणेश्वराः ॥ ५७ ॥
यथाप्रदेशंवर्तन्ते रामनाथालये सदा । मुनयःपन्नगाःसिद्धा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥
सन्तुष्यमाणहृदया यथेष्टं शिवसन्निधौ । वर्तन्तेरामनाथस्य सेवार्थं भक्तिपूर्वकम्
रामनाथस्य पूजार्थं श्रोत्रियान्ब्राह्मणान्बहून् । रामेश्वरेरघुपतिःस्थापयामासपूजकान्

रामप्रतिष्ठितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनार्चयेत् ।

तुष्टास्ते तोषिताःसर्वाःपितृभिःसहदेवताः ॥ ६१ ॥

तेभ्यो बहुधनान्ग्रामान्प्रददौ जानकीपतिः । रामनाथमहादेवनैवेद्यार्थमपिद्विजाः ॥
बहून्ग्रामान्बहुधनं प्रददौ लक्ष्मणाग्रजः । हारकेयूरकटकनिष्काद्याभरणानि च ॥
अनेकपटवस्त्राणि क्षौमाणि विविधानि च । रामनाथायदेवाय ददौ दशरथात्मजः
गङ्गा च यमुनापुण्या सरयू च सरस्वती । सेतौ रामेश्वरं देवं भजन्तेस्वावशान्तये
एतदध्यायपठनाच्छ्रवणादपि मानवः । विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सायुज्यं लभते हरेः ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येरामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणंनाम-
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

# अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

## रामनाथप्रशंसायांशाकल्यदुर्मणशान्तिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

रामनाथं समुद्दिश्य कथाम्पापविनाशिनीम् ।
प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥
पाण्ड्यदेशाधिपो राजा पुराऽऽसीच्छङ्कराभिधः ।
ब्रह्मण्यःसत्यसन्धश्च यायजूकश्च धार्मिकः ॥ २ ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः परसैन्यविदारणः । चतुरोऽप्याश्रमान्वर्णान्धर्मतःपरिपालयन् ॥ ३
वैदिकाचारनिरतः पुराणस्मृतिपारगः । शिवविष्णवर्चको नित्यमन्यदैवतपूजकः ॥
महादानप्रदो नित्यं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
मृगयार्थं ययौ धीमान्स कदाचित्तपोवनम् ॥ ५ ॥
सिंहव्याघ्रेभमहिषक्रूरसत्त्वं भयङ्करम् । झिल्लिकाभीषणरवं सरीसृपसमाकुलम् ॥
भीमश्वापदसम्पूर्णं दावानलभयङ्करम् । महारण्यम्प्रविश्याथ शङ्करोराजशेखरः ॥
अनेकसैनिकोपेत आखेटिकुलसङ्कुलः । पादुकागूढचरणो रक्तोष्णीषो हरिच्छदः ॥
बद्धगोधांगुलित्राणो धृतकोदण्डसायकः । कक्ष्याबद्धमहाखड्गःश्वेताश्ववरमास्थितः
सुवेषधारी सन्नद्धः पत्तिसङ्घसमावृतः । कान्तारेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥१०
समुत्तीर्णमहास्रोतो युवासिंहपराक्रमः । विचचार बलैःसाकं दरीषु मृगयन्मृगान् ॥
वध्यतां वध्यतामेष यातिवेगान्मृगोवने । एवंवदत्सुसैन्येषु स्वयमुत्प्लुत्य शङ्करः
मृगं हन्ति महाराजो विगाह्य विपिनस्थलीम् ।
सिंहान्वराहान्महिषान्कुञ्जराञ्छरभांस्तथा ॥ १३ ॥
विनिघ्नन्स मृगानन्यान्वन्याञ्छङ्करभूपतिः । कुत्रचिद्विपिनोद्देशेदरीमध्यनिवासिनम्
व्याघ्रचर्मधरंशान्तं मुनिं नियतमानसम् । व्याघ्रबुद्ध्या जघानाशु शरेणानतपर्वणा

अतिवेगेन विप्रेन्द्रास्तत्पत्नीं च ससायकः । निजबाणपतिप्राणांनिविष्टांपत्युरन्तिके
विलोक्य मातापितरौ तत्पुत्रोनिहतौ वने । रुरोदभृशदुःखार्तो विललाप च कातरः

भोस्तात! मातर्मां हित्वा युवां यातौ कवाऽधुना ।
अहं कुत्र गमिष्यामि को वा मे शरणम्भवेत् ॥ १८ ॥
को मामध्यापयेद्वेदाञ्छास्त्रं वा पाठयेत्पितः ! ।
अम्ब! मे भोजनं का वा दास्यते सोपदेशकम् ॥ १९ ॥
आचाराञ्छिक्षयेत्कोवा तात! त्वयि मृतेऽधुना ।
अम्ब! बालं प्रकुपितं का वा मामुपलालयेत् ॥ २० ॥

युवां निरागसावद्य केन पापेन सायकैः । निहतौ वै तपोनिष्ठौमत्प्राणौमद्गुरू वने
एवं तयोः सुतोविप्रा मुक्तकण्ठं रुरोद वै । अथप्रलपितं श्रुत्वा शङ्करोविपिने चरन्

तच्छब्दाभिमुखःसद्यः प्रययौ स दरीमुखम् ।
तत्रन्या मुनयोऽप्याशु समागच्छंस्तमाश्रमम् ॥ २३ ॥

ते दृष्ट्वा मुनयः सर्वे शरेण निहतंमुनिम् । तत्पत्नीं त्रहतां विप्रा राजानं च धनुर्धरम्
विलपन्तं सुतं चापिविलोक्यभृशविह्वलाः । पुत्रमाश्वासयामासुर्मारोदीरितिकातरम्

मुनय ऊचुः

आढ्ये वाऽपि दरिद्रे वा मूर्खे वा पण्डितेऽपि वा
पीने वाऽथ कृशे वापि समवर्ती परेतराट् ॥ २६ ॥

वने वा नगरे ग्रामे पर्वते वा स्थलान्तरे । मृत्योर्वशे प्रयातव्यं सर्वैरपि हि जन्तुभिः
वत्स! नित्यं च गर्भस्थैर्जातैरपिचजन्तुभिः । युवभिःस्थविरैःसर्वैर्यातव्यंयमपत्तनम्
वर्णिभिश्चगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः । कालेप्राप्तेत्वयंदेहस्त्यक्तव्योद्विजपुत्रक!
ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः । यातव्यः प्रेतनिलये द्विजपुत्रमहामते! ॥
देवाश्चमुनयो यक्षा गन्धर्वोरगराक्षसा । अन्ये च जन्तवःसर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥
सर्वे यास्यन्ति विलयं न त्वंशोचितुमर्हसि । अद्वयं सच्चिदानन्दंयद्ब्रह्मोपनिषद्गतम्
न तस्यविलयो जन्म वर्धनंचापिसत्तम ! । मलभाण्डे नवद्वारेपूयासृक्शोणितालये

देहेऽस्मिन्बुद्बुदाकारे क्रमियूथसमाकुले । कामक्रोधभयद्रोहमोहमात्सर्यकारिणि
परदारपरक्षेत्रपरद्रव्यैकलोलुपे । हिंसाऽसूयाशुम्भिव्याप्ते विष्ठामूत्रैकभाजने ॥ ३५ ॥
यःकुर्याच्छोभनधियं समूढःसचदुर्मतिः । बहुच्छिद्रघटाकारे देहेऽस्मिन्नशुचौ सदा
वायोरवस्थितिः किंस्यात्प्राणाख्यस्य चिरं द्विज! ।
अतो मा कुरु शोकं त्वं जननीं पितरं प्रति ॥ ३७ ॥
तौ स्वकर्मवशाद्यातौ गृहं त्यक्त्वा त्विदं क्वचित् ।
तव कर्मवशात्त्वं च तिष्ठस्यस्मिन्महीतले ॥ ३८ ॥
यदाकर्मक्षयस्तेस्यात्तदात्वं च मरिष्यसि । मरिष्यमाणप्रेतो हि मृतप्रेतस्य शोचति
यस्मिन्काले समुत्पन्नौ तव माता पिता तथा ।
न तस्मिंस्त्वं समुत्पन्नस्ततो भिन्ना गतिर्हि वः ॥ ४० ॥
यदितुल्यागतिस्तेस्यात्ताभ्यांसहमहामते !। तर्हित्वयापियातव्यंमृतौयत्रहितौगतौ
मृतानां बान्धवायेतुमुञ्चन्त्यश्रूणिभूतले । पास्यन्त्यश्रूणि तान्यद्धामृताःप्रेताःपरत्रवै
अतः शोकंपरित्यज्य धृतिं कृत्वासमाहितः । अनयोःप्रेतकार्याणिकुरुत्वंवैदिकानितु
शस्त्रघातान्मृतावेतौ यस्मात्ते जननीपिता । अतस्तद्दोषशान्त्यर्थमस्थीन्यादायवैतयोः
रामनाथशिवक्षेत्रे रामसेतौविमुक्तिदे । स्थापयस्व ,तथाश्राद्धंसपिण्डीकरणादिकम्
तत्रैव कुलशुद्ध्यर्थं तयोर्ब्राह्मणपुत्रक! । तेन दुर्मृत्युदोषस्य शान्तिर्भवतिनान्यथा

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तः समुनिभिः शाकल्यस्यसुतोद्विजाः । जाङ्गलाख्यस्तयोःसर्वंपितृमेधंचकारवै
अन्येद्युरस्थीन्यादाय हालास्यं प्रययौ च सः ।
तस्माद्रामेश्वरं सद्यो गत्वाऽयं जाङ्गलोद्विजः ॥ ४८ ॥
मुनिप्रोक्तप्रकारेणतस्मिन्रामेश्वरेस्थले । निधायपित्रोरस्थीनिश्राद्धादीन्यकरोत्तथा
प्रथमाब्दिकपर्यन्तं कार्यंतत्राकरोच्च सः । स्थित्वाब्दं समुनेः पुत्र एकोजाङ्गलसंज्ञकः
आब्दिकान्ते दिनेविप्रो रात्रौस्वप्नेविलोक्यतु । स्वमातरंचपितरंशङ्खचक्रगदाधरौ
गरुडोपरिसंविष्टौ पद्ममालाविभूषितौ । शोभितौ तुलसीदाम्ना स्फुरन्मकरकुण्डलौ

कौस्तुभालंकृतोरस्कौ पीताम्बरविराजितौ । एवं दृष्ट्वामुनिसुतोजाङ्गलःसुप्रसन्नधीः
स्वाश्रमं पुनरागत्य सुखेनन्यवसद्द्विजाः । स्वप्नदृष्टं च वृत्तान्तंमातापित्रोःसजाङ्गलः
तेभ्योन्यवेदयत्सर्वंब्राह्मणेभ्योऽतिहर्षितः । श्रुत्वा तेमुनयो वृत्तमासन्संप्रीतमानसाः
अथ राजनमालोक्यसर्वेतेऽपिमहर्षयः । अवदन्कुपिताविप्राः शपन्तः शङ्करं नृपम् ॥

पाण्ड्यभूप महामूर्ख! क्रौर्याद् ब्राह्मणघातक! ।

स्त्रीहत्या ब्रह्महत्या च कृता यस्मात्त्वयाऽधुना ॥ ५७ ॥

अतः शरीरसंत्यागं कुरु त्वं हव्यवाहने । नो चेत्तव न शुद्धिः स्यात्प्रायश्चित्तशतैरपि

त्वत्संभाषणमात्रेण ब्रह्महत्यायुतं भवेत् ।

अस्मत्सकाशाद्गच्छ त्वं पाण्ड्यानां कुलपांसन! ॥ ५६ ॥

इत्युक्तो मुनिभिः पाण्ड्यःशङ्करोद्विजपुङ्गवाः । तथास्तुदेहसंत्यागंकरिष्येहव्यवाहने
ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं भवतां सन्निधावहम् । अनुग्रहं मे कुर्वन्तु भवन्तो मुनिसत्तमाः

यथा शरीरसंत्यागात्पातकं मेऽलयं व्रजेत् ।

एवमुक्त्वा मुनीन्सर्वाञ्छङ्करः पाण्ड्यभूपतिः ॥ ६२ ॥

स्वान्मन्त्रिणःसमाहूयवचःप्रोवाचनंत्विदम् । भोमन्त्रिणोब्रह्महत्यामयाकार्यविचारतः
स्त्रीहत्या च तथाक्रूरा महानरकदायिनी । एतत्पातकशुद्ध्यर्थं मुनीनांवचनादहम्
प्रदीप्तेऽग्नौमहाज्वालेपरित्यक्ष्येकलेवरम् । काष्ठान्यानयतक्षिप्रंतत्रग्निश्चसमिध्यताम्
मम पुत्रं च सुरुचिंराज्ये स्थापयताचिरात् । मा शोकंकुरुतामात्यादैवंतंदुरतिक्रमम्
इतीरितां नृपतिना मन्त्रिणोरुरुदुस्तदा । पाण्ड्यनाथमहाराज!रिपूणामपिवत्सल!
वयं हि भवता नित्यं पुत्रवत्परिपालिताः । त्वां विनानप्रवेक्ष्यामःपुरींदेवपुरोपमाम्
हव्यवाहं प्रवेक्ष्यामो महाकाष्ठसमेधितम् । तेषांप्रलपितंश्रुत्वापाण्ड्यःशङ्करभूपतिः

प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वान्वचनं सान्त्वपूर्वकम् ।

शङ्कर उवाच

किं करिष्यथ भोऽमात्या महापातकिना मया ॥ ७० ॥

सिंहासनं समारुह्य न कर्तुं युज्यते बत । चतुरर्णवपर्यन्तधरापालनमञ्जसा ॥ ७१ ॥

मत्पुत्रं सुरुचिं शीघ्रमतः स्थापयतासने। काष्ठान्यानयत क्षिप्रं प्रवेष्टुं हव्यवाहनम्
मम मन्त्रिवरा यूयं विलम्बन्त्यजताधुना। इत्युक्ता मन्त्रिणः काष्ठंसमानिन्युःक्षणेनते
अग्निप्रज्वलितंकाष्ठैर्दृष्ट्वाशङ्करभूपतिः। स्नात्वाऽऽचम्यविशुद्धात्मामुनीनांसन्निधौतदा

अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य तान्मुनीनपि सत्वरम्।
अग्निं मुनीन्नमस्कृत्य ध्यात्वा देवमुमापतिम् ॥ ७९ ॥

अग्नौ पतितुमारेभे धैर्यमालम्ब्य भूपतिः। तस्मिन्नवसरेविप्रामुनीनामपिशृण्वताम्
अशरीरासमुद्भूद्वाणी भैरवनादिनी। भोः! शङ्करमहीपाल!माऽनलं प्रविशाधुना॥
ब्रह्महत्या निमित्तन्ते भयं माभून्महामते!। तवोपदेशं वक्ष्यामि रहस्यंवेदसम्मितम्
शृणुष्वावहितो राजन्मदुक्तं क्रियातान्त्वया। दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरेगन्धमादनपर्वते
रामसेतौ महापुण्ये महापातकनाशने। रामप्रतिष्ठितं लिङ्गं रामनाथं महेश्वरम्॥
सेवस्व वर्षमेकं त्वं त्रिकालं भक्तिपूर्वकम्। प्रदक्षिणप्रक्रमणं नमस्कारं चवं कुरु
महाभिषेकः क्रियतां रामनाथस्यवैत्वया। नैवेद्यं विविधं राजन् क्रियतांचदिनेदिने
चन्दनागरुकर्पूरै रामलिङ्गं प्रपूजय। भारद्वयेन गव्येन ह्याज्येन त्वभिषेचय ॥ ८३॥
प्रत्यहं च गवांक्षीरैर्द्विभारपरिसम्मितैः। मधुद्रोणेन तल्लिङ्गं प्रत्यहं स्नापय प्रभो!
प्रत्यहं पायसान्नेन नैवेद्यं कुरु भूपते!। प्रत्यहं तिलतैलेन दीपाराधनमाचर ॥ ८५ ॥
एतेनतवराजेन्द्र! रामनाथस्य शूलिनः। स्त्रीहत्याब्रह्महत्याश्च तत्क्षणादेव नश्यतः॥
दर्शनाद्रामनाथस्य भ्रूणहत्याशतानि च। अयुतंब्रह्महत्यानां सुरापानायुतं तथा॥

स्वर्णस्तेयायुतं राजन्! गुरुस्त्रीगमनायुतम्।
एतत्संसर्गदोषाश्च विनश्यन्ति क्षणाद्विभो! ॥ ८८ ॥

महापातकतुल्यानियानिपापानिसन्तिवै। तानिसर्वाणि नश्यन्तिरामनाथस्यसेवया
महती रामनाथस्य सेवा लभ्येतचेन्नृणाम्। किंगङ्गया च गयया प्रयागेणाध्वरेणवा
तद्गच्छ रामसेतुं त्वं रामनाथं भजाऽनिशम्। विलम्बं माकुरुविभो!गमनेत्वरांकुरु
इत्युक्त्वा विररामाथसापि वागशरीरिणी। तच्छ्रुत्वामुनयःसर्वेत्वरयन्तिस्मभूपतिम्

गच्छ शीघ्रं महाराज! रामसेतुं विमुक्तिदम्।

रामनाथस्य माहात्म्यमज्ञात्वाऽस्माभिरीरितम् ॥ ९३ ॥
देहत्यागं कुरुष्वेति वह्नौप्रज्वलितेऽधुना । अनुज्ञातो मुनिवरैरिति राजा सशङ्करः ॥
चतुरङ्गबलंपुर्यां प्रापयित्वा त्वरान्वितः । नमस्कृत्य मुनीन्सर्वान्प्रहृष्टेनान्तरात्मना
वृतः कतिपयैः सैन्यैः समादाय धनंबहु । रामनाथस्य सेवार्थमायासीद्गन्धमादनम्
उवासवर्षमेकं च रामसेतौ विशुद्धिदे । एवभुक्तो जितक्रोधो विजितेन्द्रियसञ्चयः ॥
त्रिसन्ध्यं रामनाथं च सेवमानः सभक्तिकम् । प्रददौ रामनाथाय दशभारं धनंमुदा
प्रत्यहं रामनाथस्य महापूजामकारयत् । अकरोच्च धनुष्कोटौ प्रत्यहं भक्तिपूर्वकम्
स्नानं प्रतिदिनं चान्नं ब्राह्मणेभ्यो ददौमुदा । अशरीरावचः प्रोक्तमखिलं पूजनं तथा
एवं कृतवतस्तस्य वर्षमेकं गतं द्विजाः । वर्षान्ते स शुचिर्भूत्वा शङ्करस्तुष्टमानसः
तुष्टाव परमेशानं रामनाथं घृणानिधिम् ।

शङ्कर उवाच

नमामि रुद्रमीशानं रामनाथमुमापतिम् ॥ १०२ ॥
पाहिमांकृपयादेव! ब्रह्महत्यां दहाशु मे । त्रिपुघ्न महादेव! कालकूटविषादन ! ॥
रक्ष मां त्वं दयासिन्धो ! स्त्रीहत्यां मे विमोचय ।
गङ्गाधर! विरूपाक्ष ! रामनाथ! त्रिलोचन !॥ १०४ ॥
मांपालयकृपादृष्ट्याछिन्धिमत्पातकंविभो !। कामारे!कामसंदायिन्भक्तानांराघवेश्वर!
कटाक्षं पातय मयि शुद्धं मांकुरु धूर्जटे! । मार्कण्डेयभयत्राण! मृत्युञ्जयशिवाव्यय !
नमस्ते गिरिजार्धाय निष्पापं कुरुमां सदा । रुद्राक्षमालाभरण! चन्द्रशेखरशङ्कर!
वेदोक्तमय्यगाचारयोग्यं मां कुरु ते नमः । सूर्यदन्तभिदे तुभ्यं भारतीनासिकाछिदे
रामेश्वरायदेवाय नमो मे शुद्धिदो भव । आनन्दं सच्चिदानन्दं रामनाथवृषध्वजम् ॥
भूयोभूयोनमस्यामि पातकं मे विनश्यतु । भक्त्यैवं स्तुवतस्तस्यरामनाथंमहेश्वरम्
निर्जगाम मुखाद्राज्ञो ब्रह्महत्यातिभीषणा । नीलवस्त्रधराक्रूरा महारक्तशिरोरुहा ॥
तां ब्रह्महत्यां बीभत्सां नृपवक्त्राद्विनिर्गताम् ।
निजघान त्रिशूलेन भैरवो रुद्रशासनात् ॥ ११२ ॥

हतायां ब्रह्महत्यायां भैरवेण शिवाज्ञया । रामनाथो नृपंप्राहस्तुत्या तस्य प्रसन्नधीः

श्रीरामनाथ उवाच

पाण्ड्यभूपमहाराज! स्तोत्रेणानेन तेऽनघ !। प्रसन्नोऽहंवरंदास्ये तुभ्यंवरयचेप्सितम्
स्त्रीहत्याब्रह्महत्याभ्यांयस्तेदोषःसनिर्गतः । शुद्धोविधूतपापोऽसिराज्यंपालयपूर्ववत्
येमामत्र निषेवन्ते भक्तियुक्तेन चेतसा । नाशयामिनृणांतेषां ब्रह्महत्यायुतान्यपि
सुरापानायुतंभूप! गुरुस्त्रीगमनायुतम् । स्वर्णस्तेयायुतमपि तत्संसर्गायुतं तथा ॥
अन्यान्यपि च पापानि नाशयामि न संशयः । मत्सेविनोनराराजन्नभूय:संसरन्ति ते
किन्तु सायुज्यरूपां मे मुक्तिं यास्यन्त्यसंशयम् ।
स्तुवन्त्यनेन स्तोत्रेण ये मां भक्तिपुरःसरम् ॥ ११६ ॥
नाशयाम्यहमेतेषां महापातकसञ्चयम् । प्रीतोऽहं तव भक्त्याच स्तोत्रेण मनुजेश्वर!
यथेष्टं प्रार्थयवरं मत्तस्त्वं वरदान्नृप! । एवमुक्तःशिवेनाऽथ शङ्करो नृपपुङ्गवः ॥१२१
रामनाथं बभाषेतं शङ्करं करुणानिधिम् ।

नृप उवाच

तव संदर्शनेनाहं कृतार्थोऽस्मि महेश्वर! ॥ १२२ ॥
इतःपरंप्रार्थनीयं ममनास्त्यऽधुनाधिकम् । मृकण्डुभयसन्तापहारिपादयुगं तव ॥
दृष्टं मया महादेव! नातःप्राथ्यंविभोऽस्ति वै । त्वत्पादपद्मयुगलेनिश्चलाभक्तिरस्तुमे
न पुनर्जन्म मे भूयान्मातृणामुदरेऽशुचौ । ये मत्कृतमिदं स्तोत्र कीर्तयन्तितव प्रभो!
ते नराःपापनिर्मुक्तास्त्वत्सेवाफलमाप्नुयुः ।

श्रीसूत उवाच

तथास्त्वित्यनुगृह्यैनं रामनाथो द्विजोत्तमाः !॥ १२६ ॥
नीलकण्ठो विरूपाक्षो लिङ्गरूपेतिरोहितः । राजापिरामनाथेन विहितानुग्रहस्ततः
रामनाथं नमस्कृत्य कृतार्थेनान्तरात्मना । स्वसेनासम्वृतःप्रीतः प्रययावात्मनःपुरीम्
वृत्तान्तमेतदवदन्मुनीनां वनवासिनाम् । तेऽभ्यषिञ्चन्नृपं राज्ये मुनयःप्रीतमानसाः
पुत्रदारयुतो राजा प्राप्यराज्यमकण्टकम् । मन्त्रिभिःसहितोविप्रारक्षत्पृथिवींचिरम्

ततोऽन्तकालेसम्प्राप्तेध्यायन्रामेश्वरंशिवम् । देहान्तेरामनाथस्यसायुज्यंप्रययौशुभम्
एवम्वःकथितंविप्रा रामनाथस्यवैभवम् । चरितं पुण्यमाख्यानं शङ्कराख्य नृपस्य च
शृण्वन्पठन्वामनुजस्त्विममध्यायमादरात् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रामनाथं समश्नुते

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये रामनाथप्रसंशायांशाकल्यदुर्मरणदोषशान्तिशङ्करस्त्री-
हत्याब्रह्महत्यादोषशान्तिर्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

# एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## रामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनम्

### श्रीसूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि रामनाथस्य शूलिनः ।
स्तोत्राध्यायं महापुण्यं शृणुत श्रद्धया द्विजाः ! ॥ १ ॥

रामःप्रतिष्ठिते लिङ्गे तुष्टावपरमेश्वरम् । लक्ष्मणोजानकीसीता सुग्रीवाद्याःकपीश्वराः
ब्रह्मप्रभृतयो देवाः कुम्भजाद्या महर्षयः । अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः प्रत्येकं राघवेश्वरम्
तद्वक्ष्याम्यानुपूर्व्येण शृणुतादरपूर्वकम् । एतच्छ्रवणमात्रेण मुक्तःस्यान्मानवो द्विजाः

### श्रीराम उवाच

नमो महात्मने तुभ्यं महाभागायशूलिने । स्वपदाम्बुजभक्तार्तिहारिणे सर्पहारिणे ॥
नमोदेवादिदेवाय रामनाथाय साक्षिणे । नमो वेदान्तवेद्याय योगिनां तत्त्वदायिने
सर्वदानन्दपूर्णाय विश्वनाथाय शम्भवे । नमो भक्तभयच्छेदहेतुपादाब्जरेणवे ॥ ७ ॥
नमस्तेऽखिलनाथाय नमःसाक्षात्परात्मने । नमस्तेऽद्भुतवीर्याय महापातकनाशिने
कालकालायकालाय कालातीताय ते नमः । नमोविद्यानिहन्त्रे ते नमःपापहराय च
नमःसंसारतप्तानां तापनाशैकहेतवे । नमो मद्ब्रह्महत्याविनाशिने च विनाशिने ॥

नमस्ते पार्वतीनाथ! कैलासनिलयाव्यय! । गङ्गाधरविरूपाक्ष ! मां रक्ष सकलापदः
तुभ्यं पिनाकहस्ताय नमोमदनहारिणे । भूयोभूयोनमस्तुभ्यं सर्वावस्थासु सर्वदा

लक्ष्मण उवाच

नमस्ते रामनाथाय त्रिपुरघ्नाय शम्भवे । पार्वतीजीवितेशाय गणेशस्कन्दसूनवे ॥
नमस्ते सूर्यचन्द्राग्निलोचनाय कपर्दिने । नमःशिवायसोमाय मार्कण्डेयभयच्छिदे ॥
नमःसर्वप्रपञ्चस्य सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे । नमउग्राय भीमाय महादेवाय साक्षिणे ॥
सर्वज्ञायवरेण्याय वरदाय वराय ते । श्रीकण्ठाय नमस्तुभ्यं पञ्चपातकभेदिने ॥
नमस्तेऽस्तु परानन्दसत्यविज्ञानरूपिणे । नमस्तेभवरोगघ्न ! स्तायूनांपतयेनमः ॥
पतये तस्कराणान्ते वनानांपतयेनमः । गणानां पतयेतुभ्यं विश्वरूपाय साक्षिणे ॥
कर्मणाप्रेरितःशम्भो! जनिष्ये यत्र यत्र तु । तत्रतत्रपदद्वन्द्वे भवतोभक्तिरस्तु मे ॥
असन्मार्गेरतिर्माभूद्भवतः कृपया मम । वैदिकाचारमार्गे च रतिःस्याद्भवते नमः ॥२०

सीतोवाच

परमकारण! शङ्कर! धूर्जटे! गिरिसुतास्तनकुङ्कुमशोभित! ।
मम पतौ परिदेहि मतिं सदा न विषमां परपूरुषगोचराम् ॥ २१ ॥

गङ्गाधर!विरूपाक्ष! नीललोहित ! शङ्कर! । रामनाथ नमस्तुभ्यं रक्ष मां करुणाकर!
नमस्तेदेवदेवेश! नमस्तेकरुणालय! । नमस्तेभवभीतानां भवभीतिविमर्दन! ॥ २३ ॥

नाथ! त्वदीयचरणाम्बुजचिन्तनेन निर्द्धूय भास्करसुताद्भयमाशु शम्भो! ।
नित्यत्वमाशुगतवान्सभृमण्डुपुत्रः किं वा न सिद्ध्यति तवाश्रयणात्परेश!

परेशपरमानन्द! शरणागतपालक! । पातिव्रत्यं मम सदा देहि तुभ्यं नमोनमः ॥ २५

हनूमानुवाच

देवदेवजगन्नाथ! रामनाथ! कृपानिधे! । त्वत्पादाम्भोरुहगता निश्चलाभक्तिरस्तु मे ॥
यं विना न जगत्सत्ता तद्भानमपि नो भवेत् । नमःसद्भानरूपाय रामनाथाय शम्भवे ॥

अङ्गद उवाच

यस्य भासाजगद्भानं यत्प्रकाशं विना जगत् । नभासते नमस्तस्मै रामनाथायशम्भवे

जाम्बवानुवाच

सर्वानन्दो यदानन्दो भासते परमार्थतः । नमो रामेश्वरायाऽस्मै परमानन्दरूपिणे ॥

नील उवाच

यद्देशकालदिग्भेदैरभिन्नं सर्वदाद्वयम् । तस्मै रामेश्वरायास्मै नमोऽभिन्नस्वरूपिणे ॥

नल उवाच

ब्रह्मविष्णुमहेशाना यदविद्याविजृम्भिताः । नमोऽविद्याविहीनाय तस्मै रामेश्वरायते

कुमुद उवाच

यत्स्वरूपापरिज्ञानात्प्रधानं कारणत्वतः । कल्पितं कारणायास्मै रामनाथाय शम्भवे

पनस उवाच

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि यदविद्याविजृम्भितम् ।
जागृतादिविहीनाय नमोऽस्मै ज्ञानरूपिणे ॥ ३३ ॥

गज उवाच

यत्स्वरूपापरिज्ञानात्कार्याणां परमाणवः ।
कल्पिताःकारणत्वेन तार्किकापसदैर्वृथा ॥ ३४ ॥

तमहं परमानन्दंरामनाथंमहेश्वरम् । आत्मरूपतया नित्यमुपास्ये सर्वसाक्षिणम् ॥

गवाक्ष उवाच

अज्ञानपाशबद्धानां पशूनां पाशमोचकम् । रामेश्वरं शिवं शान्तमुपैमि शरणं सदा ॥

गवय उवाच

स्वाध्यस्तं जगदाधारं चन्द्रचूडमुमापतिम् । रामनाथशिवंवन्दे संसारामयभेषजम्

शरभ उवाच

अन्तःकरणमात्मेति यदज्ञानाद्विमोहितैः । भण्यते रामनाथं तमात्मानं प्रणमाम्यहम्

गन्धमादन उवाच

रामनाथमुमानाथं गणनाथं च त्र्यम्बकम् । सर्वपातकशुद्ध्यर्थमुपास्ये जगदीश्वरम्

सुग्रीव उवाच

संसाराम्भोधिमध्ये मां जन्ममृत्युजलेभये । पुत्रदारधनक्षेत्रवीचिमालासमाकुले ॥
मज्जद्ब्रह्माण्डखण्डेच पतितं नाप्तपारकम् । क्रोशन्तमवशं दीनं विषयव्यालकातरम्
व्याधिनक्रसमुद्विग्नंतापत्रयझषार्दितम् । मां रक्ष गिरिजानाथ! रामनाथनमोऽस्तुते

विभीषण उवाच

संसारवनमध्येमां विनष्टनिजमार्गके । व्याधिचौरेऽग्रसिंहे च जन्मव्याघ्रे लयोरगे ॥
बाल्ययौवनवार्धक्यमहाभीमान्धकूपके । क्रोधेर्ष्यालोभवह्नौच विषयक्रूरपर्वते ॥ ४४
त्रासभूमण्टकाढ्येच सीदन्तं रामनाथक! । शोभनां पदवीं शम्भो! नय रामेश्वराधुना

सर्वे वानरा ऊचुः

निन्द्यानिन्द्येषुसर्वत्रजनिन्वायोनिषुप्रभो! । कुम्भीपाकादिनरके पतित्वाचपुनस्तथा
जनित्वा चपुनर्योनौ कर्मशेषेण कुत्सिते । संसारे पतितानस्मान् रामनाथदयानिधे!
अनाथान्विवशान्दीनान्क्रोशतः पाहि शङ्कर! ।
नमस्तेऽस्तु दयासिन्धो! रामनाथ! महेश्वर !॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते लोकनाथाय रामनाथायशम्भवे । प्रसीद मम सर्वेश! मदविद्यांविनाशय ॥

इन्द्र उवाच

यस्यशक्तिरुमादेवी जगन्मातात्रयीमयी । तमहं शङ्करं वन्दे रामनाथमुमापतिम् ॥

यम उवाच

पुत्रौगणेश्वरस्कन्दौवृषो यस्य च वाहनम् । तं वै रामेश्वरं सेवे सर्वाज्ञाननिवृत्तये ॥

वरुण उवाच

यस्य पूजाप्रभावेण जितमृत्युर्मृकण्डुजः । मृत्युञ्जयमुपास्येऽहंरामनाथं हृदातु तम्

कुबेर उवाच

ईश्वराय लसत्कर्णकुण्डलाभरणाय ते । लाक्षारुणशरीराय नमो रामेश्वराय वै ॥५३॥

आदित्य उवाच

नमस्तेऽस्तुमहादेव! रामनाथत्रियम्बक! । दक्षाध्वरविनाशायनमस्ते पाहि मां शिव!

सोम उवाच

नमस्तेभस्मदिग्धाय शूलिनेसर्पमालिने । रामनाथदयाम्भोधे! श्मशाननिलयाय ते ॥

अग्निरुवाच

इन्द्रायखिलदिक्पालसंसेवितपदाम्बुज ! । रामनाथायशुद्धाय नमोदिग्वाससेसदा ॥

वायुरुवाच

हराय हरिरूपाय व्याघ्रचर्माम्बरायच । रामनाथ! नमस्तुभ्यं ममाभीष्टप्रदो भव ॥५७

बृहस्पतिरुवाच

अहन्तासाक्षिणे नित्यं प्रत्यगद्वयवस्तुने । रामनाथ ! ममाज्ञानमाशु नाशय ते नमः ॥

शुक्र उवाच

वञ्चकानामलभ्याय महामन्त्रार्थरूपिणे । नमोद्वैतविहीनाय रामनाथाय शम्भवे ॥५६

अश्विनावूचतुः

आत्मरूपतयानित्यं योगिनां भासतेहृदि । अनन्यभानवेद्याय नमस्तेराघवेश्वर! ॥

अगस्त्य उवाच

आदिदेवमहादेव! विश्वेश्वरशिवाव्यय! । रामनाथाम्बिका नाथ! प्रसीद वृषभध्वज!॥

अपराधसहस्रंमे क्षमस्व विधुशेखर! । ममाहमितिपुत्रादावहन्तां मम मोचय ॥६२॥

सुतीक्ष्ण उवाच

क्षेत्राणि रत्नानि धनानि दारामित्राणि वस्त्राणि गवाश्वपुत्राः ।
नैवोपकाराय हि रामनाथ! मह्यं प्रयच्छत्वमतो विरक्तिम् ॥ ६३ ॥

विश्वामित्र उवाच

श्रुतानि शास्त्राण्यपि निष्फलानि त्रय्यप्यधीताविफलैव नूनम् ।
त्वयीश्वरे चेन्न भवेद्धि भक्तिः श्रीरामनाथे शिवमानुषस्य ॥ ६४ ॥

गालव उवाच

दानानि यज्ञानि यमास्तपांसि गङ्गादितीर्थेषु निमज्जनानि ।
रामेश्वरं त्वां न नमन्ति ये तु व्यर्थानि तेषामिति निश्चयोऽत्र ॥ ६५ ॥

वसिष्ठ उवाच

कृत्वाऽपि पापान्यखिलानि लोकस्त्वामेत्य रामेश्वर! भक्तियुक्तः ।
नमेत चेत्तानि लयं व्रजेयुर्यथान्धकारा रवितेजसाऽद्धा ॥ ६६ ॥

अत्रिरुवाच

दृष्ट्वा तु रामेश्वरमेकदाऽपि स्पृष्ट्वा नमस्कृत्य भवन्तमीशत् ।
पुनर्न गर्भं स नरः प्रयायात्किन्त्वद्वयन्ते लभते स्वरूपम् ॥ ६७ ॥

अङ्गिरा उवाच

यो रामनाथं मनुजो भवन्तमुपेत्य बन्धून्प्रणमन्स्मरेत ।
सन्तारयेत्तानपि सर्वपापात्किमद्भुतं तस्य कृतार्थतायाम् ॥ ६८ ॥

गौतम उवाच

श्रीरामनाथेश्वरगूढमेतद्रहस्यभूतं परमं विशोकम् ।
त्वत्पादमूलं भजतां नृणां ये सेवां प्रकुर्वन्ति हि तेऽपि धन्याः ॥ ६६ ॥

शतानन्द उवाच

वेदान्तविज्ञानरहस्यविद्भिर्विज्ञेयमेतद्धि मुमुक्षुभिस्तु ।
शास्त्राणि सर्वाणि विहाय देव! त्वत्सेवनं यद्रघुवीरनाथ! ॥ ७० ॥

भृगुरुवाच

रामनाथ! तवपादपङ्कजद्वन्द्वचिन्तनविधूतकल्मषः ।
निर्भयं व्रजति सत्सुखाद्वयं त्वां स्वयं प्रथममोहचिद्घनम् ॥ ७१ ॥

कुत्स उवाच

रामनाथ! तवपादसेवनं भोगमोक्षवरदं नृणां सदा ।
रौरवादिनरकप्रणाशनं कःपुमान्न भजते रसग्रहः ॥ ७२ ॥

काश्यप उवाच

रामनाथ! तव पादसेविनां किं व्रतैरुत तपोभिरध्वरैः ।
वेदशास्त्रजपचिन्तया च किं स्वर्गसिन्धुपयसाऽपि किम्फलम् ॥ ७३ ॥

श्रीरामनाथ! त्वमागत्यशीघ्रं ममोत्क्रान्तिकाले भवान्या च साकम् ।
मां प्रापयस्वात्मपादारविन्दं विशोकं विमोहं सुखं चित्स्वरूपम् ॥ ७४ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

रामनाथ! त्वमस्माकं मज्जतांभवसागरे । अपारदुःखकल्लोले नत्वत्तोऽन्यागतिर्हिनः

किन्नरा ऊचुः

रामनाथ! भवारण्ये व्याधिव्याघ्रभयानके । त्वामन्तरेणनास्माकं पदवीदर्शकोभवेत्

यक्षा ऊचुः

रामनाथेन्द्रियारातिबाधानोदुःसहा सदा । तान्विजेतुंसहायस्त्वमस्माकं भव धूर्जटे!

नागा ऊचुः

अचिन्त्यमहिमानं त्वां रामनाथ! वयं कथम् ।
स्तोतुमल्पधियःशक्ता भविष्यामोऽम्बिकापते! ॥ ७८ ॥

किम्पुरुषा ऊचुः

नानायोनौ च जननं मरणं चाप्यनेकशः । विनाशय तथाऽज्ञानं रामनाथनमोऽस्तुते

विद्याधरा ऊचुः

अम्बिकापतये तुभ्यमसङ्गाय महात्मने । नमस्ते रामनाथाय प्रसीद वृषभध्वज!॥८०

वसव ऊचुः

रामनाथगणेशाय गणवृन्दार्चिताङ्घ्रये । गङ्गाधरायगुह्याय नमस्ते पाहि नःसदा ॥

विश्वेदेवा ऊचुः

ज्ञप्तिमात्रैकनिष्ठानांमुक्तिदायसुयोगिनाम् । रामनाथायसाम्बायनमोऽस्मान्रक्षशङ्कर!

मरुत ऊचुः

परतत्त्वायतत्त्वानां तत्त्वभूतायवस्तुतः । नमस्ते रामनाथाय स्वयंभानायशम्भवे ॥

साध्या ऊचुः

स्वातिरिक्तविहीनाय जगत्सत्ताप्रदायिने । रामेश्वरायदेवाय नमो विद्याविभेदिने ॥

सर्वे देवा ऊचुः

सच्चिदानन्दसम्पूर्णद्वैतवस्तुविवर्जितम् । ब्रह्मात्मानंस्वयंभानमादिमध्यान्तवर्जितम्
अविक्रियमसङ्गञ्च परिशुद्धं सनातनम् । आकाशादिप्रपञ्चानां साक्षिभूतं परामृतम् ॥
प्रमातीतं प्रमाणानामपि बोधप्रदायिनम् । आविर्भावतिरोभवसंकोचरहितंसदा ॥

स्वस्मिन्नध्यस्तरूपस्य प्रपञ्चास्यस्यसाक्षिणम् ।
निर्लेपं परमानन्दं निरस्तसकलक्रियम् ॥ ८८ ॥

भूमानन्दं महात्मानं चिद्रूपं भोगवर्जितम् । रामनाथं वयं सर्वे स्वपातकविशुद्धये ॥

चिन्तयामःसदाचित्ते स्वात्मानन्दबुभुत्सवः ।
रक्षाऽस्मान्करुणासिन्धो! रामनाथ! नमोऽस्तुते ॥ ९० ॥

रामनाथायरुद्राय नमःसंसारहारिणे । ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण विभिन्नायस्वमायया

विभीषणसचिवा ऊचुः

वरदाय वरेण्याय त्रिनेत्रायत्रिशूलिने । योगिध्येयाय नित्याय रामनाथाय ते नमः

इति रामादिभिः सर्वैः स्तुतो रामेश्वरः शिवः ।
प्राह सर्वान्समाहूय रामादीन्द्विजसत्तमाः ॥ ९३ ॥

रामराममहाभाग! जानकीरमणप्रभो! । सौमित्रेजानकिशुभे! हेसुग्रीवमुखास्तदा ॥

अन्ये ब्रह्ममुखा यूयं शृणुध्वं सुसमास्थिताः ।
स्तोत्राध्यायमिमं पुण्यं युष्माभिःकृतमादरात् ॥ ९५ ॥

येपठन्ति च शृण्वन्ति श्रावयन्ति च मानवाः । मद्दर्शनफलंतेषां भविष्यतिनसंशयः
रामचन्द्रधनुष्कोटिस्नानपुण्यं च वैभवेत् । वर्षमेकंरामसेतौ वासपुण्यं भविष्यति
गन्धमादनमध्यस्थसर्वतीर्थाभिमज्जनात् । यत्पुण्यं तद्भवेत्तेननात्रसंशयकारणम् ॥
उत्तवैवंरामनाथोऽपिस्वात्मलिङ्गेतिरोदधे । स्तोत्राध्यायमिमंपुण्यंनित्यंसङ्कीर्तयन्नरः
जरामरणनिर्मुक्तो जन्मदुःखविवर्जितः । रामनाथस्यसायुज्यमुक्तिप्राप्नोत्यसंशयः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्येरामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनन्नामैकोन-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

# पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## सेतुमाधवप्रशंसायांपुण्यनिधिचरितवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सेतुमाधववैभवम् । शृणुध्वंमुनयोभक्त्यापुण्यंपापहरंशुभम्
पुरापुण्यनिधिर्नामराजासोमकुलोद्भवः । मथुरांपालयामास हालास्येश्वरभूषिताम्
कदाचित्समहीपालश्चतुरङ्गबलान्वितः । सोऽन्तःपुरपरीवारो मथुरायां निजंसुतम्

स्थापयित्वा रामसेतुं प्रययौ स्नानकौतुकी ।

तत्र गत्वा धनुष्कोटौ स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ४ ॥

अन्येष्वपि च तीर्थेषु तत्रत्येषु नृपोत्तमः । सस्नौ रामेश्वरंदेवं सिषेवेच सभक्तिकम्
एवं स बहुकालं वै तत्रैवन्यवसत्सुखम् । रामसेतौ वसन्पुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥६॥
विष्णुप्रीतिकरंयज्ञं कदाचिदकरोन्नृपः । यज्ञावमाने राजाऽसौमुदावभृथकौतुकी
सस्नौरामधनुष्कोटौसदारःसपरिच्छदः । सेवित्वारामनाथंचसवेश्मप्रययौद्विजाः

एवं निवसमानेऽस्मिन् राज्ञि पुण्यनिधौ तदा ।

कदाचिद्धरिणा लक्ष्मीर्विनोदकलहाकुलात् ॥ ६ ॥

हरिणा समयंकृत्वा नृपभक्तिं परीक्षितुम् ।

विष्णुना प्रेषिता लक्ष्मीर्वैकुण्ठात्कमलालया ॥ १० ॥

अष्टवर्षवयोरूपा प्रययौ गन्धमादने । तत्रागत्य धनुष्कोटौ तस्थौसाकमलालया
तस्मिन्नवसरेराजाययौपुण्यनिधिर्द्विजाः । स्नातुंरामधनुष्कोटौसदारःसहसैनिकः

तत्र गत्वा स राजाऽयं स्नात्वा नियमपूर्वकम् ।

तुलापुरुषमुख्यानि कृत्वा दानानि कृत्स्नशः ॥ १३ ॥

प्रयातुकामोभवनं कन्यांकाञ्चिद्ददर्शसः । अतीवरूपसम्पन्नामष्टवर्षां शुचिस्मिताम्

दृष्ट्वा नृपस्तां पप्रच्छ कन्यां चारुविलोचनाम् ।

चारुस्मितां चारुदतीं बिम्बोष्ठीं तनुमध्यमाम् ॥ १५ ॥

पुण्यनिधिरुवाच

कात्वंकन्येसुताकस्यकुतोवात्वमिहागता । अत्रागमनेकिंकार्यं तववत्से'शुचिस्मिते!
एवं नृपस्तां पप्रच्छ कन्यामुत्पललोचनाम् । एवं पृष्टातदाकन्या नृपं तमवदद्द्विजाः
नमेमातापितानास्ति नचमेबान्धवास्तथा । अनाथाऽहंमहाराज! भविष्यामिचतेसुता

त्वद्गृहेऽहं निवत्स्यामि तात! त्वां पश्यती सदा ।

हठात्कृष्यति यो वा मां ग्रहीष्यति करेण तम् ॥ १६ ॥

यदिशासिष्यसेभूप!तदाऽहंतवमन्दिरे । वत्स्यामितेसुताभूत्वापितुर्गुणनिधे!चिरम्
एवमुक्तस्तदा प्राह कन्यां पुण्यनिधिर्नृपः । अहंसर्वं करिष्यामित्वदुक्तंकन्यकेशुभे!

ममापि दुहिता नास्ति पुत्रोऽस्त्येकःकुलोद्वहः ।

तव यस्मिन्रुचिर्भद्रे! त्वां तस्मै प्रददाम्यहम् ॥ २२ ॥

आगच्छमद्गृहं कन्ये! ममचान्तःपुरेवस । मद्भार्यायाःसुताभूत्वा यथाकाममनिन्दिते!
इत्युक्तास्मान्नृपेणाथकन्या कमललोचना । तथास्त्वितिनृपंप्रोच्य तेनसाकंययौगृहम्

राजा स्वभार्याहस्ते तां प्रददौ कन्यकां शुभाम् ।

अब्रवीच्च स्वकां भार्यां राजा विन्ध्यावलिं तदा ॥ २५ ॥

आवयोःकन्यका चेयं राज्ञिविन्ध्यावलेशुभे! । रक्षेमां सर्वथात्वं वै पुरुषान्तरतःप्रिये

इतीरिता नृपेणाऽसौ भार्या विन्ध्यवलिस्तदा ।

ओमित्युक्त्वाथ तां कन्यां पुत्रीं जग्राह पाणिना ॥ २७ ॥

पोषिता पालिता राज्ञा सुतवत्कन्यका च सा ।

न्यवात्सीत्ससुखं राज्ञो भवने लालितासदा ॥ २८ ॥

अथ विष्णुर्जगन्नाथो लक्ष्मीमन्वेष्टुमादरात् ।

आरूढविनतानन्दो वैकुण्ठान्निर्ययौ द्विजाः ॥ २६ ॥

विनिर्गत्य सवैकुण्ठाद्विलङ्घितवियत्पथः । बभ्राम च बहून्देशाँल्लक्ष्मीं तत्रनदृष्टवान्
रामसेतुमथागच्छद्गन्धमादन पर्वते । अन्विष्य सर्वतो रामसेतुं बभ्राम चेन्दिराम् ॥

एतस्मिन्नेव काले सा पुष्पावचयकौतुकात् ।
सखीभिः कन्यकाऽयासीद्भवनोद्यानपादपान् ॥ ३२ ॥

पुष्पाण्यवचिनोति स्मसखीभिःसहकानने । तत्रागत्यततोविष्णुर्विप्ररूपधरोद्विजाः गङ्गाम्भो विदधत्स्कन्धेवहञ्छत्रं करेण च । गङ्गाम्नायीद्विजस्येवरचयन्वेपमात्मनः

धारयन्दक्षिणे पाणौ कुशग्रन्थिपवित्रकम् ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्रावलिशोभितः ॥ ३५ ॥

प्रजपञ्छिवनामानि धृतरुद्राक्षमालिकः । सोत्तरीयः शुचिर्विप्रः समायातो जनार्दनः तमागतं द्विजं दृष्ट्वास्तब्धाऽतिष्ठत कन्यका । पश्यन्पुष्पवर्गान्तांवल्लभांपुष्पहारिणीम् दृष्ट्वा स त्वरया विप्रःकन्यांमधुरभाषिणीम् । हठात्कृष्यकरेणासौ जग्राहगरुडध्वजः तदा चुक्रोश सा कन्या सखीभिः सहकानने । तदाक्रोशंसमाकर्ण्यराजासतुसमागतः प्रययौ भवनोद्यानं वृतः कतिपयैर्भटैः । गत्वा पप्रच्छ ताकन्यांतत्सखीरपिभूपतिः किमर्थमधुनाक्रुष्टंसखीभिः सहकन्यके !। त्वया तु भवनोद्याने तत्र कारणमुच्यताम् केनत्वं परिभूतासि हठात्कृष्य सुते!मम । इति पृष्टा तमाचष्टकन्या गुणनिधिं नृपम्

बाष्पपूर्णानना खिन्ना रुपिता भृशकातरा ।

कन्योवाच

अयं विप्रो हठात्कृष्य जगृहे पाण्ड्यनाथ! माम् ॥ ४३ ॥

तातात्रवृक्षमूलेऽस्तीमतिष्ठत्यकुतोभयः । तदाकर्ण्यवचस्तस्याराजागुणनिधिःसुधीः जग्राहतरसा विप्रमविद्वांस्तद्बलं हठात् । रामनाथालयं नीत्वा निगृह्य च हठात्तदा बद्ध्वानिगडपाशाभ्यामनयन्मण्डपंचतम् । आत्मपुत्रींसमाश्वास्यशुद्धान्तमनयन्नृपः स्वयं च प्रययौ रम्यं भवनं नृपपुङ्गवः । ततो रात्रौ स्वपन् राजास्वप्नेविप्रंददर्शतम् शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् । कौस्तुभालंकृतोरस्कं पीताम्बरधरं हरिम् ॥ कालमेघच्छविकान्तंगरुडोपरिसंस्थितम् । चारुस्मितंचारुदन्तंलसन्मकरकुण्डलम् विष्वक्सेनप्रभृतिभिः किङ्करैरुपसेवितम् । शेषपर्यङ्कशयनं नारदादि मुनिस्तुतम् ॥ ददर्शचस्वकांकन्यांविकासिकमलस्थिताम् ।धृतपङ्कजहस्तांतांनीलकुञ्चितमूर्धजाम्

विष्णुवक्षस्थलावासां समुन्नतपयोधराम् ।
दिग्गजैरभिषिक्ताङ्गीं श्यामां पीताम्बरावृताम् ॥ ५२ ॥
स्वर्णपङ्कजसंक्लृप्तमालालङ्कृतमूर्धजाम् ।
दिव्याभरणशोभाढ्यां चारुहारविभूषिताम् ॥ ५३ ॥

अनर्घरत्नसंक्लृप्तनासाभरणशोभिताम् । सुवर्णनिष्काभरणांकाञ्चीनूपुरराजिताम्
महालक्ष्मींददर्शासौराजारात्रौस्वकां सुताम् । एवं दृष्ट्वानृपःस्वप्नेविप्रंतंस्वसुतामपि
उत्थितः सहसातल्पात्कन्यागृहमवाप च । तथैव दृष्ट्वाकन्यां यथास्वप्नेददर्शताम्
अथोदिते सवितरि कन्यामादाय भूमिपः । रामनाथालयं प्राप ब्राह्मणंन्यस्तवान्यनः
समण्डपवरे विप्रं ददर्श हरिरूपिणम् । यथा ददर्श स्वप्ने तं वनमालादिचिह्नितम्
विष्णुं विज्ञाय तुष्टाव नृपतिर्नृपतिं हरिम् ( हरिमीश्वरम् ) ।

पुण्यनिधिरुवाच

नमस्ते कमलाकान्त!प्रसीद गरुडध्वज! ॥ ५६ ॥

शार्ङ्गपाणे नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्वमे । नमस्ते पुण्डरीकाक्ष! चक्रपाणेश्रियःपते!
कौस्तुभालङ्कृताङ्गाय नमः श्रीवत्सलक्ष्मणे । नमस्ते ब्रह्मपुत्रायदैत्यसंघविदारिणे
अशेषभुवनावास नाभिपङ्कज शालिने । मधुकैटभसंहर्त्रे रावणान्तकराय ते ॥ ६२ ॥
प्रह्लादरक्षिणे तुभ्यं धरित्रीपतये नमः । निर्गुणायाप्रमेयाय विष्णवे बुद्धिसाक्षिणे
नमस्ते श्रीनिवासाय जगद्धात्रेपरात्मने !। नारायणायदेवाय कृष्णायमधुविद्विषे ॥
नमःपङ्कजनाभाय नमः पङ्कजचक्षुषे । नमः पङ्कजहस्तायाः पतयेपङ्कजाङ्घ्रये ॥
भूयोभूयो जगन्नाथ! नमः पङ्कजमालिने । दयामूर्ते नमस्तुभ्यमपराधं क्षमस्व मे ॥
मया निगडपाशाभ्यांयः कृतोमधुसूदन! । अनयस्त्वंस्वरूपन्ते दैत्यांस्त्वदपराधिनः
अतोमदपराधोऽयंक्षन्तव्योमधुसूदन! । एवंस्तुत्वामहाविष्णुं राजापुण्यनिधिर्द्विजाः
लक्ष्मीं तुष्टावजननीं सर्वेषांप्राणिनांमुदा । नमोदेविजगद्धात्रि! विष्णुवक्षस्थलालये
नमोऽब्धिसंभवेतुभ्यंमहालक्ष्मिहरिप्रिये । सिद्ध्यैपुष्ट्यै स्वधायैचस्वाहायैसततंनमः
सन्ध्यायै च प्रभायै च धात्र्यै भूत्यैनमोनमः । श्रद्धायैचैवमेधायै सरस्वत्यैनमोनमः

यज्ञविद्ये! महाविद्ये! गुह्यविद्येतिशोभने । आत्मविद्ये च देवेशि मुक्तिदे सर्वदेहिनाम्
त्रयीरूपे!जगन्मातर्जगद्रक्षाविधायिनि । रक्षमांत्वंकृपादृष्ट्यासृष्टिस्थित्यंतकारिणि
भूयोभूयो नमस्तुभ्यं ब्रह्ममात्रेमहेश्वरि । इति स्तुत्वामहालक्ष्मींप्रार्थयामासमाधवम्
यदज्ञानान्मया विष्णोत्वयिदोषःकृतोऽधुना । पादेनिगडबन्धेनसद्रोहःक्षम्यतांत्वया
लोकास्ते शिशवःसर्वे त्वंपिताजगतांहरे! । सुताऽपराधःपितृभिःक्षन्तव्योमधुसूदन!
अपराधिनां चदैत्यानांस्वरूपमपिदत्तवान् । भवान्विष्णो!ममापीममपराधंक्षमस्ववै
जिघांसयापि भगवन्नागतां पूतनांभवेत् । अनयत्स्वपदाम्भोजं तन्मां रक्षकृपानिधे!

लक्ष्मीकान्त! कृपादृष्टिं मयि पातय केशव !।

श्रीसूत उवाच

इति सम्प्रार्थितो विष्णू राज्ञा तेन द्विजोत्तमाः ॥ ७९ ॥
प्राह गम्भीरया वाचा नृपं पुण्यनिधिं ततः ।

विष्णुरुवाच

राजन्न भीस्त्वया कार्या मद्बन्धननिमित्तजा ॥ ८० ॥

भक्तवश्यत्वमधुना तव प्रतिहितम्मया । ममप्रीतिकरं यज्ञमकरोद्भवानिह ॥
अतस्त्वंममभक्तोऽसिराजन्पुण्यनिधेधुना । तेनाहंतववश्योऽस्मिभक्तिपाशेनयन्त्रितः
भक्तापराधं सततं क्षमाम्यहमरिन्दम! । त्वद्भक्तिंज्ञातुकामेन मया संप्रेरितात्वियम् ॥

लक्ष्मीर्ममप्रिया राजंस्त्वया संरक्षिताऽधुना ।
तेनाहं तव तुष्टोऽस्मि मत्स्वरूपा त्वियं सदा ॥ ८४ ॥
अस्यां यो भक्तिमाल्लोके स मद्भक्तोऽभिधीयते ।
अस्यां यो विमुखो राजन्स मद्द्वेषी स्मृतःसदा ॥ ८५ ॥
त्वमिमां भक्तिसंयुक्तो यस्मात्पूजितवानसि ।
मत्पूजापि कृता तस्मान्मदभिन्ना त्वियं यतः ॥ ८६ ॥

अतस्त्वया नापराधः कृतो मयिनरेश्वर! । किन्तुपूजैव विहिता तांत्वयाऽर्चयता मम
त्वयामद्भार्ययासाकं सङ्केतोऽकारियत्पुरा । तत्सङ्केताभिगुप्तार्थंमांयद्बन्धितवानसि

तेन प्रीतोऽस्मि ते राजँल्लक्ष्मीःसंरक्षिताऽधुना।
मत्स्वरूपा च सा लक्ष्मीर्जगन्माता त्रयीमयी ॥ ८६ ॥

तद्रक्षां कुर्वताभूप! त्वया यद्बन्धनंमम । तत्प्रियं ममराजेन्द्र! मा भयंक्रियतां त्वया
इयंलक्ष्मीस्तवसुता सत्यमेवनसंशयः । इतीरितेऽथ हरिणा लक्ष्मीःप्रोवाचभूपतिम्

लक्ष्मीरुवाच

राजन्प्रीताऽस्मिमते चाहंरक्षितायद्गृहेत्वया । त्वद्भक्तिशोधनार्थवै अहंविष्णुरुभावपि
विनोदकलहव्याजादागताविह भूपते! । तवयोगेन भक्तयाच तुष्टावावां परंतप! ॥
आवयोःकृपया राजन्सुखन्ते भवतात्सदा । सर्वभूमण्डलैश्वर्यं सदा ते भवतु ध्रुवम् ॥
आवयोःपादयुगले भक्तिर्भवतु ते ध्रुवा । देहान्ते मम सायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥

नित्यं भवतु ते राजन्माभूत्ते पापधीस्तथा।
सदा धर्मे भवतु धीर्विष्णुभक्तियुता तव ॥ ९६ ॥

एवमुक्त्वा नृपंलक्ष्मीर्विष्णोर्वक्षस्थलं ययौ । अथविष्णुरुवाचेदं राजानं द्विजपुङ्गवाः
यथात्वयात्रबद्धोऽहं निगडेन नृपोत्तम! । तद्रूपेणैव वत्स्यामि सेतुमाधवसञ्ज्ञितः ॥
मयैव कारितःसेतुस्तद्रक्षार्थमहं नृप! । भूतराक्षससङ्घेभ्यो भयानामुपशान्तये ॥
ब्रह्मापिसेतुरक्षार्थं वसत्यत्रदिवानिशम् । शङ्करो रामनाथाख्यो नित्यंसेतौ वसत्यथ

इन्द्रादिलोकपालाश्च वसन्त्यत्र मुदान्विताः।
अतोऽहमत्र वत्स्यामि सेतुमाधवसञ्ज्ञया ॥ १०१ ॥

सेतुसंरक्षणार्थवै सर्वोपद्रवशान्तये । सर्वेषामिष्टसिद्ध्यर्थं सर्वपापोपशान्तये ॥१०२
त्वयानिगडबद्धं मां सेवन्ते येऽत्रमानवाः । तेयान्तिममसायुज्यं सर्वाभीष्टंतथा नृप!

मम लक्ष्म्यास्तव तथा चरितं ये पठन्ति वै।
न ते यास्यन्ति दारिद्र्यं किंत्वैश्वर्यं व्रजन्ति ते ॥ १०४ ॥
त्वत्कृतं यदिदं स्तोत्रं मम लक्ष्म्या विशाम्पते! ।
ये पठन्ति च शृण्वन्ति लिखन्ति च मुदान्विताः ॥ १०५ ॥

न तेषां पुनरावृत्तिर्ममलोकात्कदाचन । इत्युक्त्वा सहरिस्तत्र नृपं पुण्यनिधिंतदा

तत्रैव पूर्णरूपेण संनिधत्तेस्मसर्वदा । नृपःपुण्यनिधिर्विप्राः सेतुमाधवरूपिणम् ॥
विष्णुं प्रणम्यभक्त्यातु महापूजांविधायच । सेवित्वा रामनाथञ्च स्वमेवभवनंययौ
यावज्जीवमसौ तत्र सेतौ न्यवसदुत्तमे । मधुरायां निजं पुत्रंस्थापयामास पालकम्
तत्रैव निवसन्राजादेहान्ते मुक्तिमाप्तवान् । विन्ध्यावलिश्च तत्पत्नी तमेवानुममारसा
पतिव्रता पतिप्राणा प्रययौ सापि सद्गतिम् ॥ ११० ॥

श्रीसूत उवाच

येऽत्र भक्तियुता नित्यं सेवन्ते सेतुमाधवम् ॥ १११ ॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कैलासाज्जातु जायते । सेतुमाधवसेवां ये न कुर्वन्त्यत्र मानवाः
नतेषां रामनाथस्य सेवा फलवतीभवेत् । गृहीत्वासैकतं सेतोर्गङ्गायां निक्षिपेद्यदि
प्रेत्य वै माधवपुरे वैकुण्ठे स वसेन्नरः । गङ्गां जिगमिषुर्विप्राः सेतुमाधवसन्निधौ ॥
संकल्प्य गङ्गां निर्गच्छेत्सा यात्रा सफला भवेत् ।
आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥ ११५ ॥
सेतौनिक्षिप्य तद्वारं ब्रह्मप्राप्नोत्यसंशयः । इतिवःकथितं विप्राः सेतुमाधववैभवम्
एतत्पठन्वा शृण्वन्वावैकुण्ठे लभते गतिम् ॥ ११७ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये सेतुमाधवप्रशंसायां पुण्यनिधिचरितकथनंनाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

---

# एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## सेतुयात्राक्रमविधिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

अथातःसंप्रवक्ष्यामिसेतुयात्राक्रमंद्विजाः। यंश्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवःक्षणात्

स्नात्वाऽऽचम्य विशुद्धात्मा कृतनित्यविधिः सुधीः।

रामनाथस्य तुष्ट्यर्थं प्रीत्यर्थं राघवस्य च ॥ २ ॥

भोजयित्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान्वेदपारगान्।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३ ॥

गोपीचन्दनलिप्तो वा स्वभालेऽप्यूर्ध्वपुण्ड्रकः। रुद्राक्षमालाभरणःसपवित्रकरःशुचिः

सेतुयात्रांकरिष्येऽहमिति संकल्प्यभक्तितः। स्वगृहात्प्रव्रजेन्मौनीजपन्नष्टाक्षरंमनुम्

पञ्चाक्षरंनाममन्त्रं जपेन्नियतमानसः। एकवारं हविष्याशी जितक्रोधो जितेन्द्रियः

पादुकाछत्ररहितस्ताम्बूलपरिवर्जितः। तैलाभ्यङ्गविहीनश्चस्त्रीसङ्गादिविवर्जितः॥

शौचाद्याचारसंयुक्तः सन्ध्योपास्तिपरायणः।

गायत्र्युपास्तिं कुर्वाणस्त्रिसन्ध्यं रामचिन्तकः ॥ ८ ॥

मध्येमार्गं पठन्नित्यं सेतुमाहात्म्यमादरात्। पठन्रामायणं वापि पुराणान्तरमेव वा॥

व्यर्थवाक्यानि सन्त्यज्य सेतुंगच्छेद्विशुद्धये। प्रतिग्रहंनगृह्णीयान्नाचारांश्चपरित्यजेत्

कुर्यान्मार्गे यथाशक्ति शिवविष्ण्वादिपूजनम्।

वैश्वदेवादिकर्माणि यथाशक्ति समाचरेत् ॥ ११ ॥

ब्रह्मयज्ञमुखान्धर्मान्प्रकुर्याच्चाग्निपूजनम्। अतिथिभ्योऽन्नपानादिसम्प्रदद्याद्यथाबलम्

दद्याद्भिक्षां यतिभ्योऽपि वित्तशाठ्यं परित्यजन्।

शिवविष्ण्वादि नामानि स्तोत्राणि च पठेत्पथि ॥ १३ ॥

धर्ममेव सदा कुर्यान्निषिद्धानिपरित्यजेत्। इत्यादिनियमोपेतः सेतुमूलं ततो व्रजेत्

पाषाणं प्रथमं दद्यात्तत्र गत्वा समाहितः । तत्रावाह्य समुद्रं च प्रणमेत्तदनन्तरम् ॥
अर्घ्यं दद्यात्समुद्राय प्रार्थयेत्तदनन्तरम् । अनुज्ञां च ततः कुर्यात्ततःस्नायान्महोदधौ
मुनीनामथ देवानां ऋषीनां पितृणां तथा । प्रकुर्यात्तर्पणं विप्रा मनसा संस्मरन्हरिम्
पाषाणसप्तकं दद्यादेकं वा विप्रपुङ्गवाः । पाषाणदानात्सफलं स्नानं भवति नान्यथा
पिप्लादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे । पषाण ते मया दत्तमाहारार्थं प्रकल्प्यताम् ॥
विश्वार्चि! त्वंघृतार्चि!त्वंविश्वयोनेविशांपते । सान्निध्यंकुरुमेदेवसागरेलवणाम्भसि
नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपाम्पते । नमो हिरण्यशृङ्गाय नदीनां पतये नमः
समुद्राय वयूनाय प्रोच्चार्य प्रणमेत्तथा ॥ २१ ॥
सर्वरत्नमय श्रीमन्सर्वरत्नाकराकर । सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे !॥ २२ ॥
अशेषजगदाधार! शङ्खचक्रगदाधर !। देहि देव! ममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे ॥ २३ ॥
प्राच्यां दिशि च सुग्रीवं दक्षिणस्यां नलं स्मरेत् ॥ २४ ॥
प्रतीच्यां मैंदनामानमुदीच्यांद्विविदंतथा । रामंचलक्ष्मणंचैवसीतामपियशस्विनीम्
अङ्गदं वायुतनयंस्मरेन्मध्येविभीषणम् । पृथिव्यांयानितीर्थानिप्राविशंस्त्वामहोदधे
स्नानस्य मे फलं देहि सर्वस्मात्त्राहि मांऽहसः ।
हिरण्यशृङ्गमित्याभ्यां नाभ्यां नारायणं स्मरेत् ॥ २७ ॥
ध्यायन्नारायणं देवं स्नानादिषु च कर्मसु । ब्रह्मलोकमवाप्नोति जायते नेह वै पुनः ॥
सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तं भवेत्ततः । प्रह्लादं नारदं व्यासमम्बरीषं शुकं तथा
अन्यांश्च भगवद्भक्तांश्चिन्तयेदेकमानसः ॥ २९ ॥
वेदादिर्यो वेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिः सागररत्नयोनिः ।
अग्निश्च तेजश्च इला च तेजो रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः ॥ ३० ॥
इदं ते अन्याभिरसमानमद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रविशन्त्यापः ।
सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहामि पापं शरीरात्सशिरस्कोऽभ्युपेत्य ॥ ३१ ॥
समुद्राय वयूनाय नमस्कुर्यात्पुनर्द्विजाः । सर्वतीर्थमयं शुद्धं नदीनां पतिमम्बुधिम्
द्वौ समुद्राविति पुनः प्रोच्चार्यस्नानमाचरेत् । ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करस्पृष्टानितेरवे!

तेन सत्येन मे सेतौतीर्थंदेहिदिवाकर ! । प्राच्यां दिशिवसुग्रीवमित्यादिकमयोगतः स्मृत्वा भूयो द्विजाः सेतौतृतीयं स्नानमाचरेत् । देवीपत्तनमारभ्य प्रव्रजेद्यदिमानवः तदा तु नवपाशाणमध्ये सेतौ विमुक्तिदे । स्नानमम्बुनिधौ कुर्यात्स्वपापौघापनुत्तये दर्भशय्यापदव्या चेद्गच्छेत्सेतुं विमुक्तिदम् । तदा तत्रोदधावेव स्नानं कुर्याद्विमुक्तये पिप्पलादंकविकण्वंकृतान्तंर्जावितेश्वरम् । मन्युश्च कालरात्रिश्चविद्याश्चाहर्गणेश्वरम् वसिष्ठं वामदेवं चपराशरमुमापतिम् । वाल्मीकिंनारदं चैववालखिल्यान्मुनींस्तथा नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् । मैन्दं च द्विविदं चैव शरभं चर्षभं तथा ॥ सुग्रीवञ्चहनूमन्तं वेगदर्शनमेव च । रामं च लक्ष्मणं सीतां महाभागां यशस्विनीम्

त्रिः कृत्वा तर्पयेदेतान्मन्त्रानुक्त्वा यथाक्रमम् ।

विभोश्च तत्तन्नामानि चतुर्थ्यन्तानि वै द्विजाः ॥ ४२ ॥

देवानृषीन्पितृंश्चैवविधिवच्चतिलोदकैः । द्वितीयांतानिनामानिचोक्त्वावातर्पयेद्द्विजाः तर्पयेत्सपवित्रस्तु जलेस्थित्वाप्रसन्नधीः । तर्पणात्सर्वतीर्थेषु स्नानस्यफलमाप्नुयात् एवमेतांस्तर्पयित्वा नमस्कृत्योत्तरेज्जलात् । आर्द्रवस्त्रंपरित्यज्यशुष्कवासःसमावृतः

आचम्य सपवित्रश्च विधिवच्छ्राद्धमाचरेत् ।

पिण्डान्पितृभ्यो दद्याच्च तिलतण्डुलकैस्तथा ॥ ४६ ॥

एतच्छ्राद्धमशक्तस्यमयाप्रोक्तं द्विजोत्तमाः । धनाढ्योऽन्नेन वै श्राद्धंपड्रसेनसमाचरेत् गोभूतिलहिरण्यादिदानं कुर्यात्समृद्धधिमान् । रामचन्द्रधनुष्कोटावेवमेव समाचरेत् पाषाणदानपूर्वाणितर्पणांतानिचैद्विजाः । सेतुमूलेयथैतानि विधिवद्व्यतनोद्द्विजाः चक्रतीर्थं ततो गत्वा तत्रापि स्नानमाचरेत् । पश्येच्च सेत्वधिपतिंदेवंनारायणंहरिम् गच्छन्पश्चिममार्गेण तत्रत्ये चक्रतीर्थके । स्नात्वा दर्भशयं देवं प्रपश्येद्भक्तिपूर्वकम् ॥ कपितीर्थं ततःप्राप्यतत्रापिस्नानमाचरेत् । सीताकुण्डं ततःप्राप्यतत्रापिस्नानमाचरेत् ऋणमोचनतीर्थं तु ततः प्राप्यमहाफलम् । स्नात्वा प्रणम्य रामंचजानकीरमणंप्रभुम्

गच्छेल्लक्ष्मणतीर्थं तु कण्ठादुपरि वापनम् ।

कृत्वा स्नायाच्च तत्राऽपि दुष्कृतान्यपि चिन्तयन् ॥५४ ॥

ततःस्नात्वारामतीर्थेततोदेवालयंव्रजेत् । स्नात्वापापविनाशेनचगङ्गायमुनायोस्तथा
सावित्र्यां च सरस्वत्यां गायत्र्यां च द्विजोत्तमाः ॥
स्नात्वा च हनुमत्कुण्डे ततः स्नायान्महाफले ॥
ब्रह्मकुण्डं ततः प्राप्य स्नायाद्धिधिपुरः सरम् ॥ ५६ ॥
नागकुण्डं ततः प्राप्य सर्वपापविनाशनम् । स्नानं कुर्यान्नरो विप्रानरकक्लेशनाशनम्
गंगाद्याः सरितः सर्वास्तीर्थानि सकलान्यपि ॥ ५७ ॥
सर्वदा नागकुण्डेतु वसन्ति स्वाघशान्तये । अनंतादिमहानागैरष्टाभिरिदमुत्तमम् ॥
कल्पितं मुक्तिदंतीर्थंरामसेतौशिवङ्करम् । अगस्त्यकुण्डंसंप्राप्यततःस्नायादनुत्तमम्
अथाग्नितीर्थमासाद्य सर्वदुष्कर्मनाशनम् ।
स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवच्छ्राद्धं कुर्यात्पितृन्स्मरन् ॥ ६० ॥
गोभूहिरण्यधान्यानिब्राह्मणेभ्यःस्वशक्तितः । दत्त्वाग्नितीर्थतीरेतुसर्वपापैःप्रमुच्यते
अथवा यानि तीर्थानि चक्रतीर्थमुखानि वै । अनुक्रान्तानि विप्रेन्द्राःसर्वपापहराणितु
स्नायात्तदनुपूर्वेणस्नायाद्वापि यथारुचि । स्नात्वैवंसर्वतीर्थेषु श्राद्धादीनिसमाचरेत्
पश्चाद्रामेश्वरं प्राप्य निषेव्य परमेश्वरम् । सेतुमाधवमागम्य तथा रामं च लक्ष्मणम्
सीतां प्रभञ्जनसुतं तथान्यान्कपिसत्तमान् । तत्रत्यसर्वतीर्थेषु स्नात्वा नियमपूर्वकम्
प्रणम्य रामनाथं च रामचन्द्रं तथापरान् । नमस्कृत्यधनुष्कोटिं ततः स्नातुम्व्रजेन्नरः
तत्र पाषाणदानादिपूर्वोक्तनियमं चरेत् । धनुष्कोटौ च दानानिदद्याद्वित्तानुसारतः
क्षेत्रं गाश्च तथाऽन्यानि वस्त्राण्यन्यानि चादरात् ।
ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्भ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ६८ ॥
कोटितीर्थं ततः प्राप्य स्नायान्नियमपूर्वकम् । ततोरामेश्वरंदेवं प्रणमेद्वृषभध्वजम्
विभवे सति विप्रेभ्यो दद्यात्सौवर्णदक्षिणाम् ।
तिलान्धान्यं च गां क्षेत्रं वस्त्राण्यन्यानि तण्डुलान् ॥ ७० ॥
दद्याद्वित्तानुसारेण वित्तलोभविवर्जितः । धूपं दीपं च नैवेद्यं पूजोपकरणानि च
रामेश्वराय देवाय दद्याद्वित्तानुसारतः । स्तुत्वा रामेश्वरं देवं प्रणम्य च सभक्तिकम्

अनुज्ञाप्य ततो गच्छेत्सेतुमाधवसन्निधिम् । तस्मैदत्त्वाचधूपादीननुज्ञाप्यच माधवम्
पूर्वोक्तनियमोपेतः पुनरायात्स्वकं गृहम् । ब्राह्मणान्भोजयेदन्नैः षड्रसैः परिपूरितैः
तेनैव रामनाथोऽस्मै प्रीतोऽभीष्टं प्रयच्छति ।
नारकं चास्य नास्त्येव दारिद्र्यं च विनश्यति ॥ ७५ ॥
सन्ततिर्वर्धते तस्य पुरुषस्य द्विजोत्तमाः । संसारमवधूयाशु सायुज्यमपि यास्यति
अत्रागन्तुमशक्तश्चेच्छ्रुतिस्मृत्यागमेषु यत् । ग्रन्थजातंमहापुण्यं सेतुमाहात्म्यसूचकम्
तं ग्रन्थं पाठयेद्विप्रा महापातकनाशनम् । इदं वा सेतुमाहात्म्यं पठेद्भक्तिपुरःसरम्
सेतुस्नानफलं पुण्यं तेनाप्नोतिनसंशयः । अन्धपङ्ग्वादिविषयमेतत्प्रोक्तं मनीषिभिः

श्रीसूत उवाच

एवं वःकथितोविप्राःसेतुयात्राक्रमोद्विजाः । एतत्पठन्वाशृण्वन्वासर्वदुःखाद्विमुच्यते
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये यात्राक्रमवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

---

# द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## सेतुवैभववर्णनम्

श्रीसूत उवाच

भूयोऽप्यहं प्रवक्ष्यामि सेतुमुद्दिश्य वैभवम् । युष्माकमादरेणाहंशृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः
स्थानानामपि सर्वेषामेतत्स्थानं महत्तरम् । अत्र जप्तं हुतं तप्तं दत्तं चाऽक्षयमुच्यते ॥
अस्मिन्नेव महास्थाने धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।
वाराणस्यां दशसमावासपुण्यफलं भवेत् ॥ ३ ॥
तस्मिन्स्थले धनुष्कोटौ स्नात्वा रामेश्वरं शिवम् ।
दृष्ट्वा नरो भक्तियुक्तस्त्रिदिनानि वसेद्द्विजाः ॥ ४ ॥

पुण्डरीकपुरे तेन दशवत्सरवासजम् । पुण्यंभवतिविप्रेन्द्रा महापातकनाशनम् ॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु मन्त्रमाद्यं षडक्षरम् । अत्रजप्त्वानरोभक्त्याशिवसायुज्यमाप्नुयात्
मध्यार्जुने कुम्भकोणे मायूरे श्वेतकानने । हालास्ये च गजारण्येवेदारण्ये च नैमिषे
श्रीपर्वते च श्रीरङ्गे श्रीमद्वृद्धगिरौ तथा । चिदम्बरे चवल्मीके शोणाद्रावरुणाचले
श्रीमद्दक्षिणकैलासे वेङ्कटाद्रौ हरिस्थले । काञ्चीपुरे ब्रह्मपुरे वैद्येश्वरपुरे तथा ॥ ६॥
अन्यत्रापि शिवस्थाने विष्णुस्थानेच सत्तमाः । वर्षवासभवंपुण्यंधनुष्कोटौनरोमुदा
माघमासे यदिस्नायादाप्नोत्येव न संशयः । इमं सेतुं समुद्दिश्य द्वौसमुद्राविति श्रुतिः
विद्यते ब्राह्मणश्रेष्ठा मातृभूता सनातनी । अदोयद्दारुरित्यन्या यत्रास्ति मुनिपुङ्गवाः

विष्णोःकर्माणि पश्यन्ती सेतुवैभवशंसिनी ।
श्रुतिरस्ति तथाऽन्याऽपि तद्विष्णोरिति चापरा ॥ १३ ॥

इतिहासपुराणानि स्मृतयश्च तपोधनाः । एकवाक्यतया सेतुमाहात्म्यंप्रब्रवन्ति हि
चन्द्रसूर्योपरागेषु कुर्वन्सेत्ववगाहनम् । अविमुक्ते दशाब्दं तु गङ्गास्नानफलं लभेत्
कोटिजन्मकृतंपापं तत्क्षणेनैव नश्यति । अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम्
विषुवायनसङ्क्रान्तौ शशिवारे च पर्वणि । सेतुदर्शनमात्रेण सप्तजन्मार्जितंशुभम्
नश्यते स्वर्गतिं चैव प्रयाति द्विजपुङ्गवाः । मकरस्थे रवौमाघे किञ्चिदभ्युदिते रवौ

स्नात्वा दिनत्रयं मर्त्यो धनुष्कोटौ विपातकः ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानपुण्यमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥
धनुष्कोटौ नरः कुर्यात्स्नानं पञ्चदिनेषु यः ।
अश्वमेधादिपुण्यं च प्राप्नुयाद् ब्राह्मणोत्तमाः ॥ २० ॥

चान्द्रायणादिकृच्छ्राणामनुष्ठानफलं लभेत् । चतुर्णामपिवेदानां पारायणफलं तथा
माघमासे दशाहःसु धनुष्कोटौ निमज्जनात् । ब्रह्महत्यायुतंनश्येन्नात्रकार्याविचारणा
माघमासे धनुष्कोटौ दशपञ्चदिनानि यः । स्नानं करोतिमनुजःसवैकुण्ठमवाप्नुयात्
माघमासे रामसेतौ स्नानंविंशद्दिनं चरन् । शिवसामीप्यमाप्नोति शिवेनसह मोदते

पञ्चविंशद्दिनं स्नानं कुर्वन्सारूप्यमाप्नुयात् ।

स्नानं त्रिंशद्दिनं कुर्वन्सायुज्यं लभते ध्रुवम् ॥ २५ ॥

अतोऽवश्यं रामसेतौमाघमासेद्विजोत्तमाः । स्नानंसमाचरेद्विद्वान्किञ्चिदभ्युदितेरवौ चन्द्रसूर्योपरागे च तथैवार्द्धोदये द्विजाः । महोदये रामसेतौ स्नानं कुर्वन्द्विजोत्तमाः अनेकक्लेशसंयुक्तं गर्भवासं न पश्यति । ब्रह्महत्यादिपापानां नाशकं च प्रकीर्तितम् सर्वेषां नरकाणां च बाधकं परिकीर्तितम् । सम्पदामपिसर्वासांनिदानंपरिकीर्तितम्

इन्द्रादिसर्वलोकानां सालोक्यादिप्रदं तथा ।

चन्द्रसूर्योपरागे च तथैवार्द्धोदये द्विजाः ॥ ३० ॥

महोदये धनुष्कोटौ मज्जनं त्वतिनिश्चितम् । रावणस्यविनाशार्थंपुरारामेणनिर्मितम् सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् । ब्रह्मदेवर्षिराजर्षिपितृसङ्घनिषेवितम् ॥ ३२ ब्रह्मादिदेवतावृन्दैस्सेवितं भक्तिपूर्वकम् । पुण्यं यो रामसेतुं वै संस्मरन्पुरुषोद्विजाः स्नायाच्च यत्र कुत्रापि तटाकादौ जलाशये । न तस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्भविष्यतिकदाचन सेतुमध्यस्थतीर्थेषु मुष्टिमात्रप्रदानतः । नश्यन्ति सकला रोगा भ्रूणहत्यादयस्तथा

रामेण धनुषः पुण्यां यो रेखां पश्यते कृताम् ।

न तस्य पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठात्स्यात्कदाचन ॥ ३६ ॥

धनुष्कोटिरिति ख्याता या लोके पापनाशिनी ।

विभीषणप्रार्थनया कृता रामेण धीमता ॥ ३७ ॥

धनुष्कोटिर्महापुण्या तस्यांस्नात्वा सभक्तिकम् ।

दद्याद्दानानि वित्तानां क्षेत्राणां च गवां तथा ॥ ३८ ॥

तिलानांतण्डुलानांचधान्यानांपयसांतथा । वस्त्राणांभूषणानांचमाषाणामोदनस्यच

दध्नां घृतानां वारीणां शाकानामप्युदश्विताम् ।

शुद्धानां शर्कराणां च सस्यानां मधुनां तथा ॥ ४० ॥

मोदकानामपूपानामन्येषां दानमेव च । रामसेतौद्विजाः प्रोक्तं सर्वाभीष्टप्रदायकम् अतोदद्याद्रामसेतौ वित्तलोभविवर्जितः । दत्तं हुतं च तप्तंच जपश्च नियमादिकम् श्रीरामधनुषः कोटावनन्तफलदं भवेत् । तेन देवाश्चतुष्यन्ति तुष्यन्तिपितरस्तथा

तुष्यन्ति मुनयः सर्वे ब्रह्मा विष्णुः शिवस्तथा।
नागाः किम्पुरुषाः यक्षाः सर्वे तुष्यन्ति निश्चितम् ॥ ४४ ॥
स्वयं च पूतो भवति धनुष्कोट्यऽवलोकनात्।
स्ववंशजान्नरान्सर्वान्पावयेच्च पितामहान् ॥ ४५ ॥
तारयेच्च कुलं सर्वं धनुष्कोट्यवलोकनात्। रामस्यधनुषःकोट्याकृतरेखावगाहनात्
पञ्चपातककोटीनां नाशः स्यात्तत्क्षणे ध्रुवम्।
श्रीरामधनुषः कोट्या रेखां यः पश्यते कृताम् ॥ ४७ ॥
अनेकक्लेशसम्पूर्णगर्भवासंन पश्यति। यत्रसीताऽनलंप्राप्तातस्मिन्कुण्डेनिमज्जनात्
भ्रूणहत्याशतं विप्रा नश्यन्ति क्षणमात्रतः। यथारामस्तथासेतुर्यथा गङ्गातथाहरिः
गङ्गे! हरे! रामसेतो!त्विति सङ्कीर्तयन्नरः। यत्रक्वापिबहिःस्नायात्तेनयातिपरांगतिम्
सेतावर्धोदये स्नात्वा गन्धमादनपर्वते। पितॄनुद्दिश्ययःपिण्डान्दद्यात्सर्षपमात्रकान्
पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ। शमीपत्रप्रमाणं तुपितॄनुद्दिश्य भक्तितः
द्विजेन पिण्डं दत्तं चेत्सर्वपापविमोचितः।
स्वर्गस्थो मुक्तिमायाति नरकस्थो दिवं व्रजेत् ॥ ५३ ॥
सेतौ च पद्मनाभे चगोकर्णेपुरुषोत्तमे। उदन्वदम्भसिस्नानं सार्वकालिकमीप्सितम्
शुक्राङ्गारकसौरीणां वारेषु लवणाम्भसि।
सन्तानकामी न स्नायात्सेतोरन्यत्र कर्हिचित् ॥ ५५ ॥
अकृतप्रेतकार्योवा गर्भिणीपतिरेव वा। न स्नायादुदधौविद्वान्सेतोरन्यत्रकर्हिचित्
नकालापेक्षणंसेतोर्नित्यस्नानं प्रशस्यते। वारतिथ्यृक्षनियमाःसेतोरन्यत्र हि द्विजाः
उद्दिश्य जीवतः स्नायान्न तु स्नायान्मृतान्प्रति।
कुशैः प्रतिकृतिं कृत्वा स्नापयेत्तीर्थवारिभिः ॥ ५८ ॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्यप्रसन्नेन्द्रियमानसः। कुशोऽसित्वंपवित्रोऽसिविष्णुनाविधृतःपुरा
त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्यैतद् ग्रन्थिबन्धनम्।
सर्वत्र सागरः पुण्यः सदा पर्वणि पर्वणि ॥ ६० ॥

सेतौ सिन्ध्वब्धिसंयोगे गङ्गासागरसङ्गमे । नित्यस्नानंहिनिर्दिष्टंगोकर्णेपुरुषोत्तमे
नाऽपर्वणिसरिन्नाथंस्पृशेदन्यत्रकर्हिचित् । पितॄणांसर्वदेवानांमुनीनामपिशृण्वताम्
प्रतिज्ञामकरोद्रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः । मयाह्यत्रकृते सेतौ स्नानंकुर्वन्ति ये नराः
मत्प्रसादेन ते सर्वे नयास्यन्ति पुनर्भवम् । नश्यन्तिसर्वपापानिमत्सेतोरवलोकनात्

रामनाथस्य माहात्म्यं मत्सेतोरपि वैभवम् ।
नाऽहं वर्णयितुं शक्तो वर्षकोटिशतैरपि ॥ ६५ ॥

इति रामस्य वचनं श्रुत्वा देवमहर्षयः । साधुसाध्विति सन्तुष्टाः प्रशशंसुश्च तद्वचः
सेतुमध्ये चतुर्वक्त्रः सर्वदेवसमन्वितः । अध्यास्ते तस्य रक्षार्थमीश्वरस्याज्ञयासदा
रक्षार्थं रामसेतौ हि सेतुमाधवसञ्ज्ञया । महाविष्णुः समध्यास्ते निबद्धोनिगडेनवै
महर्षयश्च पितरो धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः । देवाश्च सहगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥
विद्याधराश्चारणाश्चयक्षाःकिंपुरुषास्तथा । अन्यानिसर्वभूतानिवसन्त्यस्मिन्नहर्निशम्

सोऽयं दृष्टः श्रुतो वापि स्मृतःस्पृष्टोऽवगाहितः ।
सर्वस्माद् दुरितात्पाति रामसेतुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७१ ॥

सेतावर्धोदये स्नानमानन्दप्राप्तिकारणम् । मुक्तिप्रदं महापुण्यं महानरकनाशनम् ॥

पौषे मासे विष्णुभस्थे दिनेशे भानोर्वारे किञ्चिदुद्यद्दिनेशे ।
युक्ताऽमा चेन्नागहीना तु पाते विष्णोर्ऋक्षे पुण्यमर्धोदयं स्यात् ॥ ७३ ॥

तस्मिन्नर्धोदयेसेतौ स्नानंसायुज्यकारणम् । व्यतीपातसहस्रेण दर्शमेकंसमंस्मृतम्
दर्शायुतसमं पुण्यं भानुवारो भवेद्यदि । श्रवणर्क्षं यदि भवेद्भानुवारेण संयुतम् ॥
पुण्यमेव नु विज्ञेयमन्योन्यस्यैव योगतः । एकैकमप्यमृतदं स्नानदानजपार्चनात् ॥
पञ्चस्वपि चयुक्तेषु किमुवक्तव्यमत्रहि । श्रवणंज्योतिषां श्रेष्ठममा श्रेष्ठातिथिष्वपि
व्यतीपातं तुयोगानां वारंवारेषु वै रवेः । चतुर्णामपि यो योगो मकरस्थेरवौभवेत्

तस्मिन्काले रामसेतौ यदि स्नायात्तु मानवः ।
गर्भं न मातुराप्नोति किन्तु सायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥

अर्धोदयसमः कालो न भूतो न भविष्यति । एवंमहोदयः कालो धर्मकालःप्रकीर्तितः

एतेषु पुण्यकालेषु सेतौ दानं प्रकीर्तितम् । आचारश्च तपो वेदो वेदान्तश्रवणं तथा
शिवविष्णवादिपूजापि पुराणार्थप्रवक्तृता । यस्मिन्विप्रे न विद्येते दानपात्रंतदुच्यते
पात्राय तस्मै दानानिसेतौ दद्याद्विजातये । यदि पात्रंनलभ्येत सेतावाचारसंयुतम्
संकल्प्योद्दिश्यसत्पात्रंप्रदद्याद्ग्राममागतः । अतोनाधमपात्रायदातव्यंफलकांक्षिभिः
उत्तमं सेतुमाहात्म्यं वक्तुर्देयं न चान्यतः ॥ ८४ ॥
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि वसिष्ठोक्तमनुत्तमम् । दिलीपायमहाराज्ञे दानपात्रविवित्सवे

दिलीप उवाच

दानानि कस्मै देयानि ब्रह्मपुत्रपुरोहित !। एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहित्वच्छिष्यस्यमहामुने!

वसिष्ठ उवाच

पात्राणामुत्तमं पात्रं वेदाचारपरायण ! । तस्मादप्यधिकं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥
वेदाः पुराणमन्त्राश्चशिवविष्णवादिपूजनम् । वर्णाश्रमाद्यनुष्ठानं वर्तते यस्यसंततम्
दरिद्रश्च कुटुम्बी च तत्पात्रं श्रेष्ठमुच्यते । तस्मिन्पात्रे प्रदत्तं वै धर्मकामार्थमोक्षदम्
पुण्यस्थले विशेषेण दानंसत्पात्रगर्हितम् । अन्यथादशजन्मानिक्ककलासोभविष्यति
जन्मत्रयंरासभःस्यान्मण्डूकश्चद्विजन्मनि । एकजन्मनिचण्डालस्ततः शूद्रोभविष्यति
ततश्च क्षत्रियो वैश्यः क्रमाद्विप्रश्च जायते । दरिद्रश्च भवेत्तत्र बहुरोगसमन्वितः ॥
एवं बहुविधा दोषा दुष्टपात्रप्रदानतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्पात्रेषु प्रदापयेत् ॥
न लभ्यते चेत्सत्पात्रं तदासंकल्पपूर्वकम् । एकं सत्पात्रमुद्दिश्य प्रक्षिपेदुदकं भुवि
उद्दिष्टपात्रस्य मृतौ तत्पुत्राय समर्पयेत् । तस्यापि मरणे प्राप्ते महादेवे समर्पयेत् ॥
अतो नाधमपात्राय दद्यात्तीर्थे विशेषतः ॥ ८५ ॥

श्रीसूत उवाच

एवमुक्तो वसिष्ठेन दिलीपः स द्विजोत्तमाः ॥ ८६ ॥
तदाप्रभृतिसत्पात्रे प्रायच्छद्दानमुत्तमम् । अतःपुण्यस्थले सेतावत्रापि मुनिपुङ्गवाः
यदिलभ्येत सत्पात्रं तदादद्याद्धनादिकम् । नोचेत्सङ्कल्पपूर्वं तु विशिष्टं पात्रमुत्तमम्
समुद्दिश्य जलंभूमौ प्रक्षिपेद्भक्तिसंयुतः । स्वग्राममागतः पश्चात्तस्मिन्पात्रे समर्पयेत्

पूर्वं संकल्पितं वित्तं धर्मलोपोऽन्यथा भवेत् ।

न दुःखं पुनराप्नोति किं तु सायुज्यमाप्नुयात् ॥ १०० ॥

अर्धोदयसमः कालो न भूतो न भविष्यति । कुम्भकोणं सेतुमूलं गोकर्णं नैमिषंतथा
अयोध्यादण्डकारण्यं विरूपाक्षं च वेङ्कटम् । शालिग्रामंप्रयागं चकाञ्चीद्वारावतीतथा
मथुरापद्मनाभं च काशी विश्वेश्वरालया । नद्यःसर्वाःसमुद्राश्च पर्वतंभास्करं स्मृतम्
मुण्डनंचोपवासश्च क्षेत्रेष्वेषुप्रकीर्तितम् । लोभान्मोहादकृत्वायःस्वगृहंयाति मानवः
सहैव यान्ति तद्गेहे पातकानि च तेनवै । चतुर्विंशतितीर्थानि पर्वते गन्धमादने ॥
तत्रलक्ष्मणतीर्थे तु वपनंमुनिभिःस्मृतम् । तीरेलक्ष्मणतीर्थस्य लोमवर्ज्यंशिवाज्ञया

शिरोमात्रस्य वपनं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् ।

स्नात्वा लक्ष्मणतीर्थे च दृष्ट्वा लक्ष्मणशङ्करम् ॥ १०७ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शङ्करं याति मानवः । अर्धोदये सदा स्नानं सेतावेवं समाचरेत्
नास्तिसेतुसमंतीर्थं नास्तिसेतुसमंतपः । नास्तिसेतुसमं पुण्यं नास्तिसेतुसमागतिः
उपरागसहस्रेण सममर्धोदय स्मृतम् । अर्धोदयसमः कालो नास्ति संसारमोचकः
तस्मिन्नर्धोदये रामसेतौ स्नानं तु यद्भवेत् । न तत्तुल्यं भवेत्पुण्यं सर्वशास्त्रेषु सर्वदा
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनात् । यत्पुण्यमृषिनिर्दिष्टं तत्पुण्यं मुनिपुङ्गवाः ॥
एकवारं रामसेतौ स्नानात्सिध्यति निश्चितम् । अर्द्धोदये विशेषेण तथैव च महोदये
मकरस्थे रवौ माघे प्रयागे पापमोचने । माघस्नानसहस्रेण यत्पुण्यं लभते नरः ॥
तस्मिन्नर्धोदये विप्रा रामसेतौ निमज्जनात् । एकवारेण तत्पुण्यं लभते नात्र संशयः

त्रैलोक्यस्थेषु तीर्थेषु स्नातानां यत्फलं भवेत् ।

सकृदर्द्धोदये सेतौ स्नात्वा तत्पुण्यभाग्भवेत् ॥ ११६ ॥

ब्रह्मज्ञानविहीनानां कृतघ्नानां दुरात्मनाम् । पापिनामितरेषां च महापातकिनां तथा

सेतावर्द्धोदये स्नानाद्विशुद्धिरिति निश्चिता ।

स्थलान्तरे कृतघ्नानां निष्कृतिर्नास्ति कर्हिचित् ॥ ११८ ॥

सेतावर्द्धोदये स्नानात्तेषामपि हि निष्कृतिः । सेतावर्द्धोदये स्नानंये नकुर्वन्तिमोहतः

संसारेषु निमज्जन्ति ते यथान्धाः पतन्त्यधः ।
सेतावर्धोदये स्नात्वा भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १२० ॥

ब्रह्मलोकंप्रयास्यंतिनात्र कार्याविचारणा । अर्द्धोदयेतुसम्प्राप्तेस्नात्वा सेतौविमुक्तिदे स्नात्वासम्यग्जगन्नाथं राघवं सीतया सह । रामेश्वरं महादेवं सुग्रीवादिमुखान्कपीन् ध्यात्वा देवानृषींश्चापितथापितृगणानपि । तर्पयेदपि तान्सर्वान्स्वदारिद्र्यविमुक्तये अर्द्धोदयाख्यममलं जगन्नाथंसमर्चयेत् । सेतावर्द्धोदये काले तेन प्रीणाति केशवः ॥ दिवाकर! नमस्तेऽस्तु तेजोराशे जगत्पते !। अत्रिगोत्रसमुत्पन्नलक्ष्मीदेव्याः सहोदर अर्घंगृहाणभगवन्सुधाकुम्भ! नमोऽस्तु ते । व्यतीपात! महायोगिन्महापातकनाशन सहस्रबाहो सर्वात्मन्गृहाणार्घ्यं नमस्तु ते । तिथिनक्षत्रवाराणामधीश! परमेश्वर !॥ मासरूप! गृहाणार्घ्यंकालरूपनमोऽस्तु ते । इति दत्त्वा पृथङ्मन्त्रैरर्घ्यमर्द्धोदयेनरः उपायनानिविप्रेभ्योदद्याद्वित्तानुसारतः । चतुर्दशद्वादशार्णौस्मनपट् पञ्च वा द्विजान् यथाशक्त्यन्नपानाद्यैः पृथङ्मन्त्रैः समर्चयेत् । कांस्यपात्रं समादायनूतनं दारवं तु वा विप्राणांपुरतःस्थाप्य पयसापरिपूरितम् । सफलंसगुडंसाज्यं सताम्बूलंसदक्षिणम् दद्याद्यज्ञोपवीतंचगांसवत्सांपयस्विनीम् । अलंकृतेभ्योविप्रेभ्यो यथाशक्तिवदेदिदम् श्रवणर्क्षे जगन्नाथ! जन्मर्क्षे तव केशव । यन्मया दत्तमर्थिभ्यस्तदक्षयमिहास्तु मे नक्षत्राणामधिपतेदेवानाममृतप्रद । त्राहि मां रोहिणीकान्त! कलाशेष! नमोऽस्तु ते दीननाथ! जगन्नाथ! कलानाथ! कृपाकर !। त्वत्पादपद्मयुगलभक्तिरस्त्वचला मम ॥ व्यतीपातनमस्तेऽस्तु सोमसूर्याग्निसंनिभ । यद्दानादिकृतं किञ्चित्तदक्षयमिहास्तु ते अर्थिनां कल्पवृक्षोऽसि वासुदेव! जनार्दन !। मासर्त्वयनकालेश पापं शमय मे हरे इत्यर्चयित्वा विप्रेन्द्रास्ततःश्राद्धं समाचरेत् । हिरण्यश्राद्धमामंवापाकश्राद्धमथापिवा पार्वणं च ततः कुर्याद्वित्तशाठ्यं नकारयेत् । आचार्यंपूजयेत्पश्चाद्वस्त्रभूषणकुण्डलैः प्रतिमामर्पयेत्तस्मै गां च छत्रमुपानहम् । एवमर्द्धोदये सेतौ व्रतं कुर्याद्द्विजोत्तमः तेनैव कृतकृत्यः स्यात्कर्तव्यं नास्तिकिञ्चन । स्थलान्तरेऽप्येवमेतद्व्रतमर्धोदयेचरेत् सेतुः समुद्रे रामेण निर्मितोगन्धमादने । सेतुःसेतुरितिप्रोच्चैस्तस्य नाम्नःप्रकीर्तनात्

स्नानकालेमनुष्याणांपातकानांतुकोटयः । तत्क्षणादेवनश्यंतियास्यंत्यप्यच्युतंपदम्
निमिषं निमिषार्द्धंवासेतौतिष्ठति यो नरः । तद्दृष्टिगोचरं गन्तुं न शक्तायमकिङ्कराः
रामसेतुं धनुष्कोटिंरामंसीतां चलक्ष्मणम् । रामनाथं हनूमन्तंसुग्रीवादिमुखान्कपीन्
विभीषणंनारदंच विश्वामित्रं घटोद्भवम् । वसिष्ठंवामदेवंचजाबालिमथकाश्यपम्
रामभक्तांस्तथा चान्यांश्चिन्तयन्मनसा तदा । भवदुःखाद्विमुच्येत प्रयातिपरमंपदम्
सत्यक्षेत्रे हरिक्षेत्रे कृष्णक्षेत्रे च नैमिषे । शालग्रामे बदर्यां च हस्तिशैले वृषाचले
शेषाद्रौ चित्रकूटे च लक्ष्मीक्षेत्रे कुरङ्गके । काञ्चिके कुम्भकोणे च मोहिनीपुरएवच
ऐन्द्रे श्वेताचले पुण्ये पद्मनाभे महास्थले । फुल्लाख्येघटिकाद्रौच सारक्षेत्रेहरिस्थले
श्रीनिवासे महाक्षेत्रे भक्तनाथमहास्थले । अलिन्दाख्ये महाक्षेत्रे शुकक्षेत्रे च वारुणे
मधुरायांहरिक्षेत्रे श्रीगोष्ठ्या पुरुषोत्तमे । श्रीरङ्गे पुण्डरीकाक्षे तथान्यत्र हरिस्थले

स्नानेन यानि पापानि विनश्यन्ति द्विजोत्तमाः ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति सेतुस्नानेन निश्चितम् ॥ १५३ ॥

रघुनाथकृते सेतौ महामुनि निषेविते । न स्नान्ति ये नरास्तेषां न संसारनिवर्तनम्
येवानमःशिवायेतिमन्त्रं पञ्चाक्षरं शुभम् । नवदन्तिनशृण्वन्ति न स्मरन्ति मुनीश्वराः
नमो नारायणायेति प्रणवेन समन्वितम् । मन्त्रमष्टाक्षरंवापिन जपन्ति स्मरन्ति वा
एवं श्रीरामचन्द्रस्य षडक्षरमनुं तथा । न जपन्ति न शृण्वन्तिनस्मरंति च सत्तमाः
तेषां पापानि नश्यन्ति रामसेतौ निमज्जनात् । उपोषणंनकुर्वन्ति ये वा हरिदिनेशुभे
नधारयन्तियेभस्मत्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिना । जाबालोपनिषन्मन्त्रैस्सत्तभिर्मस्तकादिके
शिवं वा केशवं वापि तथान्यानपिवै सुरान् । न पूजयन्ति वेदोक्तमार्गेणद्विजपुङ्गवाः
तेषांपापानिनश्यन्तिरामसेतौनिमज्जनात् । शिवविष्ण्वादिदेवेभ्योधूपंदीपञ्चचन्दनम्

पुष्पाणि न प्रयच्छन्ति भक्तिपूर्वं द्विजोत्तमाः ।

शिव विष्ण्वादिदेवानां श्रीरुद्रैश्चमकैस्तथा ॥ १६२ ॥

श्रीमत्पुरुषसूक्तेन पावमान्यादिसूक्तकैः । त्रिमधुत्रिसुपर्णैश्च पञ्चशान्त्यादिना तथा॥
नाभिषेकं प्रकुर्वंति येनराःपापचेतसः । तेषां पापानि नश्यन्तिधनुष्कोटौनिमज्जनात्

शिवविष्ण्वादिदेवानां नमस्कारप्रदक्षिणे । न प्रकुर्वन्ति भक्त्या ये पापोपहतबुद्धयः
धनुर्मासेऽप्युषः काले न पूजां च प्रकुर्वते । शिवविष्ण्वादिदेवानांमहानैवेद्यपूर्वकम्
तेषांपापानिनश्यन्तिरामसेतौनिमज्जनात् । कीर्तयन्तिनयेविष्णोर्नामानितु हरस्यवा
शालिग्रामशिलाचक्रं शिवनाभं च ये नराः । न पूजयन्ति मोहेन द्वारकाचक्रमेव वा
गङ्गा मृदंचतुलसीमृत्तिकां गोपिचंदनम् । न धारयन्तियेमूढाललाटे चोरसि द्विजाः
दोर्द्वंद्वे च गले सम्यक्सर्वपापौघशान्तये । रुद्राक्षं तुलसीकाष्ठं यो न धारयते नरः

तस्य पापानि नश्यन्ति धनुष्कोटौ निमज्जनात ।

ब्राह्मे मुहूर्ते सम्प्राप्ते निद्रां त्यक्त्वा प्रसन्नधीः ॥ १७१ ॥

हरिशंकरनामानितत्स्तोत्राण्यथवाद्विजाः । योहिचिन्तयतेनित्यं विशिष्टंमन्त्रमेववा

तस्य पापानि नश्यन्ति धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।

प्रातर्जलाशयं गत्वा स्नात्वाऽऽचम्य विशुद्धधीः ॥ १७३ ॥

प्रसन्नात्मा मुनिश्रेष्ठाः सन्ध्योपासनपूर्वकम् । नोपास्तेचनरोयस्तुगायत्रीवेदमातरम्
नोपासनं वाकुर्वन्ति सायंप्रातरतन्द्रिताः । माध्याह्निकं न कुर्वन्तियेवापापहताशयाः
ब्रह्मयज्ञं वैश्वदेवं मध्याह्नेऽतिथिपूजनम् । नाचरन्ति च सायंयेपूजामतिथिसम्मताम्

तेषां पापानि नश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ।

भिक्षां यतीनां मध्याह्ने न प्रयच्छन्ति ये नराः ॥ १७७ ॥

येऽप्यधीतां त्रयींविप्राविस्मरन्तिकुबुद्धयः । नाधीयतेत्रयीवापिवेदाङ्गानितथापुनः

प्रत्याब्दिकं मातृपित्रोः श्राद्धं ये नाचरन्ति वै ।

श्राद्धं महालयं नित्यमष्टकाश्राद्धमेव वा ॥ १७६ ॥

अन्यन्नैमित्तिकं श्राद्धं ये न कुर्वन्तिलोभतः । येचैत्रेतुपौर्णमास्यांचित्रगुप्तस्यतुप्रये
पानकंकदलीपक्वं पायसान्नं सशर्करम् । सगुडं साम्रफलकं पनसादिफलैर्युतम्
ताम्बूलं पादुके छत्रं वस्त्रपुष्पाणि चन्दनम् । विप्रेभ्योनप्रयच्छन्तिलोभोपहतबुद्धयः

तेषां पापानि नश्यन्ति धनुष्कोटौ निमज्जनात् ।

दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा यो धनुष्कोटिसेवकः ॥ १८३ ॥

तस्यसंसारविच्छित्तिः पुनर्जन्म विना भवेत् । संसारसागरंतर्तुं यदृच्छेन्मुनिपुङ्गवाः
रामचन्द्रधनुष्कोटिं सगच्छेद्विलम्बितम् ।
सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि हितं पुनः ॥ १८५ ॥
रामचन्द्रधनुष्कोटिंगच्छध्वंमुक्तिसिद्धये । रामचन्द्रधनुष्कोटौकुर्यात्स्नानंविमुक्तये
नास्त्युपायान्तरं विप्रा भूयोभूयो वदाम्यहम् ।
रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानं कुर्वन्ति ये नराः ॥ १८७ ॥
तेषामयत्नतः सिद्ध्येत्संसारभयनाशनम् । सत्यंज्ञानमनन्तं यत्पूर्णं ब्रह्मसनातनम्
तत्प्राप्तिः स्याद्धनुष्कोटौ मज्जनान्नात्र संशयः ।

श्रीसूत उवाच

एवं वः कथितं विप्राः सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १८६ ॥
महादुःखप्रशमनं महारोगनिबर्हणम् । दुःस्वप्ननाशनं पुण्यमपमृत्युनिवारणम् ॥
महाशान्तिकरं पुंसां पठतांश्रृण्वतामपि । स्वर्गापवर्गदंपुण्यं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
कीर्तयेद्य इदं पुण्यं श्रृणुयाद्वा समाहितः ।
सोऽग्निष्टोमादियज्ञानां फलमाप्नोति पुष्कलम् ॥ १६२ ॥
चतुर्णां साङ्गवेदानां शतावृत्त्या तु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति ह्येतन्माहात्म्यकीर्तनात् ॥ १६३ ॥
अत्रैकाध्यायपठनाच्छ्रवणाद्वामुनीश्वराः । अश्वमेधस्य यज्ञस्यप्राप्नोत्यविकलं फलम्
अध्यायद्वयपाठेन श्रवणेन तथैव च । गोमेधाख्यस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम्
दशाध्यायान्पठेद्यस्तु श्रृणुयाद्वा सभक्तिकम् । स्वर्गलोकमवाप्नोति शक्रेणसहमोदते
विंशत्यध्यायपठनाच्छ्रवणाच्च मुनीश्वराः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते
त्रिंशदध्यायपठनाच्छ्रवणाच्चमुनीश्वराः । विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुनासह मोदते
चत्वारिंशत्तमाध्यायान्पठेद्वा श्रृणुयादपि । रुद्रलोकमवाप्नोति रुद्रेण सह मोदते ॥
यः पञ्चाशत्तमाध्यायान्पठते श्रृणुतेऽपिवा । ससाम्बंहरमाप्नोतिशिवंचन्द्रार्धशेखरम्
यः पठेच्छृणुयाच्चेदं कृत्स्नं माहात्म्यमुत्तमम् ।

स साम्बशिवसालोक्यमाप्नोत्येव न संशयः ॥ २०१ ॥
यः पठेच्छृणुयाच्चेदंद्विवारंमुनिसत्तमाः । सयातिशिवसामीप्यंविमानवरसंस्थितः
यस्त्रिवारं पठेदेतच्छृणुयाद्वासमाहितः । शिवसारूप्यमाप्नोति शिवस्यप्रीतिमावहन्
चतुर्वारं पठेद्यस्तुश्रृणुयाद्वेदमुत्तमम् । ससायुज्यमवाप्नोतिशिवस्यगिरिजापतेः
दिने दिने पठेन्मर्त्यः श्लोकं श्लोकार्धमेव वा ।
पादं वा पादमात्रं वा अक्षरं वर्णमेव वा ॥ २०५ ॥
तत्तद्दिनकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
कृत्स्नेऽस्मिन्सेतुमाहात्म्ये पठितेऽपि श्रुतेऽपि वा ॥ २०६ ॥
श्लोकेष्वत्रैव वर्तन्ते वर्णायावन्त एव हि । तावन्त्यो ब्रह्महत्याश्चतावन्मद्यनिषेवणम्
तावत्सुवर्णस्तेयं च तावान्गुर्वङ्गनागमः । तावत्संसर्गदोषाश्चनश्यन्त्येवहितत्क्षणात्
यावन्तोऽस्मिन्महापुण्ये वर्तन्तेवर्णराशयः । तावत्कृत्वश्चतुर्विंशत्तीर्थेषुस्नानजंफलम्
तथान्येष्वपि तीर्थेषु सेतुमध्यगतेषु वै । तत्फलं समवाप्नोति पाठेन श्रवणेन वा
येनेदं लिखितं भक्त्या सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
विनष्टाज्ञानसन्तानः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २११ ॥
यस्यैदं वर्ततेगेहे माहात्म्यं लिखितंशुभम् । भूतवेतालकादिभ्योभीतिस्तत्रनविद्यते
व्याधिपीडा न तत्रास्ति नास्ति चोरभयं तथा ।
शन्यङ्गारकमुख्यानां ग्रहाणां नास्ति पीडनम् ॥ २१३ ॥
यद्गृहे वर्ततेपुण्यमिदं माहात्म्यमुत्तमम् । रामसेतुं विजानीत तद्गृहं मुनिपुङ्गवाः
चतुर्विंशतितीर्थानि तत्रैव निवसन्ति हि । तत्रैव वर्ततेपुण्यो गन्धमादनपर्वतः ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च वर्तन्ते तत्र सादरम् । लिखित्वासेतुमाहात्म्यंब्राह्मणायनिवेदयेत्
चतुःसागरपर्यन्ता तेन दत्ता वसुन्धरा ॥ २१६ ॥

सेतुमाहात्म्यदानमन्त्रः

सेतुमाहात्म्यदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दानान्यन्यानि सर्वाणि ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।

किं पुनर्बहुनोक्तेन वसत्यत्र जगत्त्रयम् ॥ २१७ ॥

श्रावयेच्छ्राद्धकालेयोह्येकमध्यायमत्रवै । नश्येच्छ्राद्धस्यवैकल्यं पितरोऽप्यतिहर्षिताः यः पर्वकाले सम्प्राप्तेब्राह्मणाच्छ्रावयेदिदम् । अध्यायमेकंश्लोकंवागावोस्यनिरुपद्रवाः बहुक्षीराः सवत्साश्च महिष्योऽस्यभवन्ति हि । पठनीयमिदंपुण्यंमठेदेवालयेऽपिवा नदीतटाकतीरेषु पुण्ये वारण्यभूतले । श्रोत्रियाणांगृहेवापि नैवान्यत्र तु कर्हिचित् विषुवायनकालेषु पुण्ये च हरिवासरे । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पठनीयं विशेषतः ॥ इदं हिपाठ्यंश्रावण्यांमासिभाद्रपदेतथा । धनुर्मासे चपाठ्यंस्यात्पाठ्यंचैवोत्तरायणे नियमेनैव माहात्म्यं पठनीयमिदं द्विजाः । श्रोतारो नियमैर्युक्ताःशृणुयुश्चेदमुत्तमम्

कीर्त्यन्ते पुण्यतीर्थानि माहात्म्येऽस्मिन्बहूनि वै ।

कीर्त्यन्ते पुण्यशीलाश्च तथा राजर्षिसत्तमाः ॥ २२५ ॥

ऋषयश्च महाभागाः कीर्त्यन्तेऽस्मिन्ननुत्तमे ।

धर्माधर्मौ च कीर्त्येते पुण्येऽस्मिन्द्विजपुङ्गवाः ॥ २२६ ॥

ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च कीर्त्यन्तेऽत्रत्रिमूर्तयः । इदं पवित्रं पापघ्नं श्रुत्यर्थैरुपबृंहितम् ॥ सम्मतं स्मृतिकर्तॄणांद्वैपायनमुनिप्रियम् । श्रोतव्यं पठितव्यंच आत्मनःश्रेयइच्छता

श्रावकाय च दातव्यं यत्किञ्चित्काञ्चनादिकम् ।

स्वस्वशक्त्यनुरोधेन वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ २२९ ॥

वस्त्रंहिरण्यंधान्यंवाभूमिंगांचयथाबलम् । दत्त्वासम्भावनीयोऽयंश्रावकः श्रोतृभिर्जनैः पूजिते श्रावकेतस्मिन्पूजिताःस्युस्त्रिमूर्तयः । जगत्त्रयंपूजितंस्यात्पूजितासुत्रिमूर्तिषु अवतीर्णोमहीं साक्षाद्रामोदाशरथिर्हरिः । ससीतालक्ष्मणोनित्यंश्रोतृभ्यःश्रावकायच दत्त्वेहलोके भोगांश्च मुक्तिचान्ते प्रयच्छति । द्वैपायनमुखाम्भोजान्निःसृतं शुभदंपरम् इदं वै सेतुमाहात्म्यं धर्मराजो युधिष्ठिरः । भीमसेनादिभिः सर्वैरनुजैरपिसंवृतः नियताचारसंयुक्तः ससैन्यश्च दिनेदिने । शृणोतिपठतो धौम्यमहर्षेःस्वपुरोधसः

श्रीसूत उवाच

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ।

मत्सकाशादिदं गुह्यं माहात्म्यं श्रुतिसम्मितम् ॥ २३९ ॥
श्रुतंभवद्भिर्नियतैर्नित्यं पठतसादरम् । पाठयध्वं स्वशिष्येभ्यो नियतेभ्योनिरन्तरम्
इत्युक्त्वा तान्मुनीन्सूतो रोमाञ्चितकलेवरः । गुरुंहृदास्मरन्व्यासं ननर्ताश्रूणिवर्तयन्
अत्रान्तरे महाविद्वान्पाराशर्यो महामुनिः । आशुप्रादुरभूत्तत्र शिष्यानुग्रहकाङ्क्षया
तमागतं विलोक्याथमुनिंसत्यवतीसुतम् । सूतःसर्वैश्चसहितो नैमिषारण्यवासिभिः
व्यासस्य चरणाम्भोजे दण्डवत्प्रणिपत्यतु । जलमानन्दजंतत्रनेत्राभ्यांपर्यवर्तयत्
प्रणतं प्रियशिष्यं तं दोर्भ्यामुत्थाप्य वै मुनिः ।
आशीर्भिरभिनन्द्यैनमालिङ्ग्य च मुहुर्मुहुः ॥ २४२ ॥
नैमिषारण्यमुनिभिरानीते परमासने । द्वैपायनोमहातेजा निषसाद तपोधनः ॥ २४३
मुनिष्वप्युपविष्टेषु सूतेऽपि च निजाज्ञया ।
शौनकादीन्मुनीन्सर्वाञ्छक्तेः पौत्रोऽभ्यभाषत ॥ २४४ ॥
मयाज्ञातमिदं सर्वं नैमिषारण्यवासिनः । ममशिष्येणसूतेन सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
कथितं भवतामद्य महापातकनाशनम् ॥ २४५ ॥
श्रुतीनां च स्मृतीनां च पुराणानां तथैव च ।
शास्त्राणां चेतिहासानामन्येषामपि कृत्स्नशः ॥ २४६ ॥
एष पर्यवसन्नोऽर्थो माहात्म्यं यत्त्विदं महत् । सर्वेष्वपिपुराणेषुइदं बहुमतं मम
शृणोति धर्मजो धौम्यादिदं नित्यं ममाज्ञया ।
अतो भवन्तोऽपि सदा सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १४७ ॥
पठन्तु शृण्वन्तु तथा शिष्याणांपाठयन्तु च । तच्छ्रुत्वावचनंतस्यतेप्राहुर्बाढमित्यपि
ततो व्यासोऽपि सूतेन शिष्येणचसमन्वितः । अनुज्ञाप्यमुनीन्सर्वान्कैलासंपर्वतंययौ
ऋषयो नैमिषारण्यनिलयास्तुष्टिमागताः । प्रत्यहं सेतुमाहात्म्यंशृण्वन्तिचपठन्तिच
श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये सेतुवैभववर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥
श्रीरामेश्वरार्पणमस्तु ॥

* श्रीगणेशायनमः *

* ॐ नमोभगवतेवासुदेवाय *

# स्कन्दपुराणस्थब्रह्मखण्डेद्वितीयं धर्मारण्यमाहात्म्यम्

---

## प्रथमोऽध्यायः

### धर्मराजनब्रह्मसंसदिगमनवर्णनम्

तत्तुं संसृतिवारिधि त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभो-

येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम् ।

यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभु-

स्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् ॥ १ ॥

दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा,

माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्य्यवित्ते ।

विद्या रूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा,

सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः ॥ २ ॥

नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः । सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥

एकदा सूतमायान्तं दृष्ट्वा तं शौनकादयः। परं हर्षं समाविष्टाः पपुर्नेत्रैः सुचेतसा
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥ २ ॥
अथ तेषूपविष्टेषु तपस्विषु महात्मसु । निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥
सुखासीनंचतंदृष्ट्वाविश्रांतमुपलक्ष्यच। अथापृच्छंस्तमृषयःकाश्चित्प्रास्ताविकीःकथाः
पुराणमखिलं तात पुरा तेऽधीतवान्पिता।। कच्चित्त्वयापि तत्सर्वमधीतलोमहर्षणे!
कथयस्व कथा सूत! पुण्यां पापनिषूदिनीम्।
श्रुत्वा यां याति विलयं पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ ६ ॥

श्रीसूत उवाच

आभारत्यङ्घ्रियुगलं गणनाथपदद्वयम्। सर्वेषां चैव देवानां नमस्कृत्य वदाम्यहम्
शक्तींश्चैव वसूंश्चैव ग्रहान्यज्ञादिदेवताः। नमस्कृत्यशुभान्विप्रान्कविमुख्यांश्चसर्वशः
अभीष्टदेवताश्चैव प्रणम्य गुरुसत्तमम्। नमस्कृत्य शुभान्देवान्ग्रामादींश्च विशेषतः ॥
तान्स्मृत्वात्रिविधैःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः। तेषांप्रसादाद्वक्ष्येऽहंतीर्थानांफलमुत्तमम्
सर्वेषां च नियन्तारं धर्मात्मानं प्रणम्य च ॥ १० ॥

धर्मारण्यपतिस्त्रिविष्टपपतिर्नित्यंभवानीपतिः,
पापाद्यःस्थिरभोगयोगसुलभो देवः स धर्मेश्वरः।
सर्वेषां हृदयानि जीवकलया व्याप्य स्थितः सर्वदा,
ध्यात्वा यं न पुनर्विशन्ति मनुजाः संसारकारागृहम् ॥ ११

सूत उवाच

एकदा तु स धर्मो वै जगाम ब्रह्मसंसदि। तां सभांससमालोक्यज्ञाननिष्ठोऽभवत्तदा
देवैर्मुनिवरैः क्रांतांसभामालोक्यविस्मितः। देवैर्यक्षैस्तथा नागैःपन्नगैश्चतथाऽसुरैः
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैःसमाक्रान्तोचितासना। ससुखासासभाब्रह्मन्नशीतानचघर्मदा
न क्षुधं न पिपासांवनग्लानिंप्राप्नुवन्त्युत । नानारूपैरिवकृतामणिभिःसासभावरैः
स्तम्भैश्च विधृतासातुशाश्वती न चसक्षया। दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभा
अति चन्द्रं चसूर्यंचशिखिनंचस्वयंप्रभा। दीप्यतेनाकपृष्ठस्थाभर्त्सयन्तीवभास्करम्

तस्यां स भगवाञ्छास्ति विविधान्देवमानुषान् ।
स्वयमेकोऽनिशं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १८ ॥

उपतिष्ठन्ति चाप्येन प्रजानांपतयः प्रभुम् । दक्षः प्रचेताः पुलहोमरीचिःकश्यपःप्रभुः भृगुरत्रिवसिष्ठश्च गौतमोऽथ तथाऽङ्गिराः । पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादःकर्दमस्तथा अथर्वाङ्गिरसश्चैव बालखिल्यामरीचिपाः । मनोऽन्तरिक्षंविद्याश्चवायुस्तेजोजलंमही शब्दस्पर्शौ तथा रूप रसो गन्धस्तथैव च । प्रकृतिश्च विकारश्चसदसत्कारणं तथा अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान् । जमदग्निर्भरद्वाजःसम्वर्त्तश्चच्यवनस्तथा दुर्वासाश्च महाभागऋष्यशृङ्गश्चधार्मिकः । सनत्कुमारोभगवान्योगाचार्योमहातपाः असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् । आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो गान्धर्वश्चैव तत्रहि चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् । वायवस्तन्तवश्चैवसंकल्पःप्राण एव च मूर्तिमन्तो महात्मानो महाव्रतपरायणाः । एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपासिरे अर्थोधर्मश्च कामश्चहर्षोद्वेषःशमोदमः । आयान्तितस्यांसहितागन्धर्वाप्सरसांगणाः शुक्राद्याश्च ग्रहाश्चैव ये चान्ये तत्समीपगाः । मन्त्रा रथन्तरं चैव हरिमान्वसुमानपि महितो विश्वकर्मा च वसश्चैव सर्वशः । तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथैव च । अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः । मेधा धृतिः स्मृतिश्चैवप्रज्ञाबुद्धिर्यशःसमाः कालचक्रं च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् । यावन्त्यो देवपत्न्यश्च सर्वाएवमनोजवाः गार्हपत्या नाकचराः पितरोलोकविश्रुताः । सोमपाएकशृङ्गाश्च तथा सर्वे तपस्विनः नागाःसुपर्णाः पशवः पितामहमुपासते । स्थावराजङ्गमाश्चापि महाभूतास्तथा परे पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदस्तथा । महादेवः सहोमोऽत्र सदागच्छति सर्वदः ॥

गच्छन्ति सर्वदा देवा नारायणस्तथर्षयः ।
ऋषयो बालखिल्याश्च योनिजायोनिजास्तथा ॥ ३७ ॥
यत्किञ्चित्त्रिषु लोकेषु दृश्यते स्थाणुजङ्गमम् ।
तस्यां सहोपविष्टायां तत्र ज्ञात्वा स धर्मवित् ॥ ३८ ॥

देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां समालोक्यातिविस्मितः । हर्षेणमहता युक्तोरोमाञ्चिततनूरुहः
तत्रधर्मोमहातेजाः कथां पापप्रणाशिनीम् । वाच्यमानांतुशुश्राव व्यासेनामिततेजसा
धर्मारण्यकथां दिव्यां तथैव सुमनोहराम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदात्रींतथैवच
पुत्रपौत्रप्रपौत्रादिफलदात्रीं तथैव च । धारणाच्छ्रवणाच्चापि पठनाच्चाऽवलोकनात्

तां निशम्य सुविस्तीर्णां कथां ब्रह्माण्डसम्भवाम् ।
प्रमोदोत्फुल्लनयनो ब्रह्माणमनुमत्य च ॥ ४३ ॥

कृतकार्योऽपिधर्मात्मा गन्तुकामस्तदाभवत् । नमस्कृत्यतदाधर्माब्रह्माणंसपितामहम्
अनुज्ञातस्तदातेन गतोऽसौ यमशासनम् । पितामहप्रसादाच्चश्रुत्वा पुण्यप्रदायिनीम्

धर्मारण्यकथां दिव्यां पवित्रां पापनाशिनीम् ।
स गतोऽनुचरैः सार्द्धं ततः संयमिनीं प्रति ॥ ४६ ॥

अमात्यानुचरैः सार्धं प्रविष्टः स्वपुरं यमः । तत्रान्तरे महातेजानारदो मुनिपुङ्गवः ॥
दुर्निरीक्ष्यःकृपायुक्तः समदर्शी तपोनिधिः । तपसा दग्धदेहोपि विष्णुभक्तिपरायणः
सर्वगः सर्वविच्चैव नारदः सर्वदा शुचिः । वेदाध्ययनशीलश्च त्वागतस्तत्र संसदि
तं दृष्ट्वा सहसा धर्मो भार्यया सेवकैः सह । सम्मुखो हर्षसंयुक्तो गच्छन्नेवस सत्वरः
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मेसफलंकुलम् । अद्य मे सफलो धर्मस्त्वय्यायातेतपोधने
अर्घ्यपाद्यादिविधिना पूजांकृत्वा विधानतः । दण्डवत्तंप्रणम्याथविधिनाचोपवेशितः
आसनेस्वे महादिव्ये रत्नकाञ्चनभूषिते । चित्रार्पिता सभासर्वा दीपा निर्वातगा इव
विधाय कुशलप्रश्नं स्वागतेनाभिनन्द्य तम् । प्रहर्षमतुलं लेभे धर्मारण्यकथां स्मरन्
नारदं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना । हर्षितं तु यमं दृष्ट्वा नारदो विस्मिताननः ॥
चिन्तयामास मनसा किमिदं हर्षितो हरिः । अतिहर्षं च तं दृष्ट्वा यमराजस्वरूपिणम्

आश्चर्यमनसं चैव नारदः पृष्टवांस्तदा ॥ ५६ ॥

नारद उवाच

किं दृष्टं भवताऽऽश्चर्यं किं वा लब्धं महत्पदम् ।
दुष्टस्त्वं दुष्टकर्मा च दुष्टात्मा क्रोधरूपधृक् ॥ ५७ ॥

पापिनां यमनं चैवमेतद्रूपं महत्तरम् । सौम्यरूपं कथं जातमेतन्मे संशयः प्रभो!॥ ५८
अद्य त्वं हर्षसंयुक्तो दृश्यसे केन हेतुना । कथयस्य महाकाय हर्षस्यैवहि कारणम्

धर्मराज उवाच

श्रूयतां ब्रह्मपुत्रैतत्कथयामि न संशयः । पुराऽहं ब्रह्मसदनं गतवानभिवन्दितुम् ॥६०
तत्रासीनः सभामध्ये सर्वलोकैकपूजिते । नानाकथाः श्रुतास्तत्र धर्म्मवर्गासमन्विताः

कथाः पुण्या धर्मयुता रम्या व्यासमुखाच्छ्रुताः ।
धर्मकामार्थसंयुक्ताः सर्वाघौघविनाशिनीः ॥ ६२ ॥

याः श्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यन्तेब्रह्महत्यया । तारयन्तिपितृगणाञ्छतमेकोत्तरंमुने!

नारद उवाच

कीदृशी तत्कथा मे तां प्रशंस भवता श्रुताम् ।
कथां यम महाबाहो! श्रोतुकामोऽस्म्यहं च ताम् ॥ ६४ ॥

यम उवाच

एकदा ब्रह्मलोकेऽहं नमस्कर्तुं पितामहम् । गतवानस्मि तं देशं कार्याकार्यविचारणे
मया तत्राद्भुतं दृष्टं श्रुतंच मुनिसत्तम । धर्म्मारण्यकथां दिव्यां कृष्णद्वैपायनेरिताम्

श्रुत्वा कथां महापुण्यां ब्रह्मन्ब्रह्माण्डगां शुभाम् ।
गुणपूर्णां सत्ययुक्तां तेन हर्षेण हर्षितः ॥ ६७ ॥

अन्यच्चैव मुनिश्रेष्ठ! तवागमनकारणम् । शुभाय च सुखायैव क्षेमाय च जयाय हि
अद्यास्मि कृतकृत्योऽहमद्याहं सुकृतीमुने !। धर्मोनामाद्य जातोऽहंतव पद्युग्मदर्शनात्
पूज्योऽहंच कृतार्थोऽहंधन्योऽहंचाद्यनारद । युष्मत्पादप्रसादाच्च पूज्योऽहंभुवनत्रये

सूत उवाच

एवंविधैर्वचोभिश्च तोषितोमुनिसत्तमः । पप्रच्छपरयाभक्त्या धर्मारण्यकथांशुभाम्

नारद उवाच

श्रुता व्यासमुखाद्धर्म्म! धर्मारण्यकथा शुभा ।
तत्सर्वं हि कथय मे विस्तीर्णं च यथातथम् ॥ ७२ ॥

यम उवाच

व्यग्रोऽहंसततंब्रह्मन्प्राणिनांसुखदुःखिनाम् । तत्तत्कर्मानुसारेणगतिंदातुंसुखेतराम्
तथापि साधुसङ्गो हि धर्मायैवप्रजायते । इह लोके परत्रापि क्षेमाय च सुखाय च
ब्रह्मणःसन्निधौयच्चश्रुतंव्यासमुखेरितम् । तत्सर्वंकथयिष्यामि मानुषाणांहितायवै

सूत उवाच

यमेन कथितं सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मसंसदि । आदिमध्यावसानं च सर्वं नैवात्र संशयः
कलिद्वापरयोर्मध्ये धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् । गतोऽसौनारदो मर्त्ये राज्यं धर्मसुतस्यवै
आगतः श्रीहरेरंशो नारदः प्रत्यदृश्यत । ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः
सव्यापवृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् । चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषणः

वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ।

कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ॥ ८० ॥

दण्डीकमण्डलुकरः साक्षाद्वह्निरिवापरः । भेत्ताजगतिगुह्यानां विग्रहाणां गुहोपमः
महर्षिगणसंसिद्धोविद्वान्गान्धर्ववेदवित् । वैरिकेलिकलो विप्रोब्राह्मःकलिरिवापरः
देवगन्धर्वलोकानामादिवक्तामुनिग्रहः । गन्ताचतुर्णांवेदानामुद्गाताहरिसद्गुणान्
सनारदोऽथ विप्रर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः । आगतोऽथ पुरींहर्षाद्धर्मराजेन पालिताम्
अथतत्रोपविष्टेषु राजन्येषु महात्मसु । महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च तत्र वै ॥ ८५
लोकाननुचरन्सर्वानागतः समहर्षिराट् । नारदःसुमहातेजाऋषिभिः सहितस्तदा
तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित् । सिंहासनात्समुत्थाय प्रययौ सम्मुखस्तदा
अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा । तदर्हमासनं तस्मै सम्प्रदाय यथाविधि
गां चैव मधुपर्कं च सम्प्रदायार्घमेव च । अर्चयामासरत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥

तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य च धर्मवित् ।

कुशली त्वं महाभाग! तपसः कुशलं तव ॥ ९० ॥

नकश्चिद्बाधतेदुष्टोदैत्योहिस्वर्गभूपतिम् । मुने!कल्याणरूपस्त्वंनमस्कृतःसुरासुरैः

सर्व्वगः सर्व्ववेत्ता च ब्रह्मपुत्र! कृपानिधे !॥ ९१ ॥

नारद उवाच

सर्वतः कुशलं मेऽद्यप्रसादाद्ब्रह्मणः सदा । कुशलीत्वंमहाभाग! धर्मपुत्र! युधिष्ठिर!
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र! धर्मेषु रमते मनः । दारैः पुत्रैश्च भृत्यैश्च कुशलैर्गजवाजिभिः
औरसानिव पुत्रांश्चप्रजाधर्मेण धर्मज । पालयसि किमाश्चर्यंत्वया धन्याहिसाप्रजा
पालनात्पोषणान्नृणां धर्मोभवतिवैध्रुवम् । तत्तद्धर्मस्य भोक्तात्वमित्येवंमनुरब्रवीत्

युधिष्ठिर उवाच

कुशलं ममराष्ट्रं चभवतामङ्घ्रिस्पर्शनात् । दर्शनेनमहाभागजातोऽहं गतकिल्बिषः
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं धरातले ।
अद्याऽहं सुकृती जातो ब्रह्मपुत्रे गृहागते ॥ ६७ ॥
कुत्र आगमनं ब्रह्मन्नद्य ते मुनिसत्तम । अनुग्रहार्थं साधूनां किं वा कार्येण केन च ॥

नारद उवाच

आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ! सकाशाच्छमनस्य च ।
व्यसेनोक्तां ब्रह्मणोग्रे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ६६ ॥
धर्मारण्याश्रितां दिव्यां सर्वसन्तापहारिणीम् ।
यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १०० ॥
हत्यायुतप्रशमनीं तापत्रयविनाशिनीम् । यां वैश्रुत्वातिभक्त्याचकठिनोमृदुतां भजेत्
धर्मराजेनतां श्रुत्वाममाग्रेचनिवेदिताम् । तमपृच्छदमेयात्मा कथांधर्मविनोदिनीम्

युधिष्ठिर उवाच

धर्मारण्याश्रितांपुण्यांकथांमेद्विजसत्तम !! कथयस्वप्रसादेन लोकानांहितकाम्यया

नारद उवाच

स्नानकालोऽयमस्माकं न कथावसरो मम । परन्तु श्रूयतां राजन्नुपदेशं ददाम्यहम्
मासानामुत्तमोमाघः स्नानदानादिकेतथा । तस्मिन्माघेचयःस्नातिसर्वपापैःप्रमुच्यते
स्नानार्थंयाहिशीघ्रं त्वंगङ्गायांनृपतेऽधुना । व्यासस्यागमनंचाद्य भविष्यतिनृपोत्तम!
तं पृच्छस्व महाभाग श्रावयिष्यति ते शुभम् ।

तीर्थानां चैव सर्वेषां फलं पुण्यं यदद्भुतम् ॥ १०७ ॥

भूतंभव्यं भविष्यं च उत्तमाधममध्यमाः । वाचयिष्यति तत्सर्वमितिहाससमुद्भवम्
धर्मारण्यस्यसकलं वृत्तंयद्यत्पुरातनम् । व्यासःसत्यवतीपुत्रोवदिष्यतिचतेऽखिलम्

सूत उवाच

एवमुक्त्वा विधेः पुत्रस्तत्रैवान्तरधीयत । तस्मिन्गतेस नृपतिः क्रीडते सचिवैःसह
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तः सत्यवतीसुतः । विज्ञापयामास तदा विदुरःपाण्डवस्य हि

सूत उवाच

अगातं तु मुनिं श्रुत्वा सर्वे हर्षसमाकुलाः । समुत्तस्थुर्हि भीमाद्याःसह धर्मेण सर्वशः
तदा हि सन्मुखो भूत्वा मुमुदे नतकन्धरः । दण्डवत्तंप्रणम्याथ भ्रातृभिःसहितस्तदा
मधुपर्केण विधिना पूजां कृत्वा सुशोभनाम् । सिंहासनेसमावेश्यपप्रच्छानामयं तदा
ततः पुण्यांकथांदिव्यांश्रावयामासधर्मवित् । कथान्ते मुनिशार्दूलं वचनंचेदमब्रवीत्

युधिष्ठिर उवाच

त्वत्प्रसादान्मयाब्रह्मञ्छ्रुतास्तुप्रवराःकथाः । आपद्धर्म्माराजधर्मामोक्षधर्म्मा ह्यनेकशः
पुराणानांचधर्माश्च व्रतानि बहुशस्तथा । तीर्थान्यनेकरूपाणि सर्वाण्यायतनानि च

इदानीं श्रोतुमिच्छामि धर्मारण्यकथां शुभाम् ।
श्रुत्वा यां हि विनश्येत पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ ११८ ॥
धर्म्मारण्यस्थतीर्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कस्येदं स्थापितं स्थानं कस्मादेतद्विनिर्मितम् ॥ ११९ ॥
रक्षितं पालितं केन कस्मिन्कालेऽथ निर्मितम् ।
किंकिं त्वत्राऽभवत्पूर्वं शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ १२० ॥

भूतंभव्यंभविष्यञ्चतस्मिन्स्थानेचयद्भवेत् । तत्सर्वंकथयस्वाद्यतीर्थानांचयथास्थितिः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीये ब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

# द्वितीयोऽध्यायः

## धर्मारण्यमाहात्म्यविषयेयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनम्

व्यास उवाच

पृथ्वीपुरन्ध्र्यास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम्
वाग्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माटवीं संप्रति वर्णयामि ॥ १ ॥
साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ।
धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ! शृणुष्वाऽवहितो भृशम् ॥ २ ॥
सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊयरं तेन कथ्यते । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम्
लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः ।
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥ ४ ॥

शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदैवतैः । ऋतुभिर्लासपक्षैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः तदाद्यं च नृप! स्थानं सर्वसौख्यप्रदं तथा । यज्ञैश्चबहुभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः सिंहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधैस्तथा । गोमहिष्यादिभिश्चैव सारसैर्मृगशूकरैः सेवितं नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि । तत्र ये निधनं प्राप्ताः पक्षिणः कीटकादयः पशवः श्वापदाश्चैवजलस्थलचराश्च ये । खेचरा भूचराश्चैवडाकिन्यो राक्षसास्तथा एकोत्तरशतःसार्द्धंमुक्तिस्तेषांहिशाश्वती । तेसर्वेविष्णुलोकाँश्चप्रायान्त्येव नसंशयः सन्तारयति पूर्वजान्दश पूर्वान्दशापरान् । यवव्रीहितिलैः सर्पिर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वया गुडैश्चैवोदकैर्नाथ तत्र पिण्डं करोति यः । उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् वृक्षैरनेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् । सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् निर्वैरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते । गोव्याघ्रैः क्रीडयते तत्र तथा मार्जारमूषकैः भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह । निर्भयं वसते तत्र धर्मारण्यं चभूतले महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम् । कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः

ध्यानस्थः श्रोष्यति तदा पारावत्येति वार्य्यते ।
कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ॥ १७ ॥
चकोरश्चंद्रिकाभोक्तानक्त व्रतमिवस्थितः । पठन्ति सरिकाःसारंशुकंसम्बोधयन्त्यहो
अपारवारसंसार सिन्धुपारप्रदः शिवः । आलस्येनापि यो यायाद्गृहाद्धर्मवनं प्रति
अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्चपदेपदे । शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वै
अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः ।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥ २१ ॥
द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते त्वयोनिजाः ।
पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ।
स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

धर्मारण्येति त्रिदशैःकदा नामप्रतिष्ठितम् । पावनंभूतलेजातंकस्मात्तेन विनिर्मितम्
तीर्थभूतंहिकस्माच्चकारणात्तद्वदस्वमे । ब्राह्मणाःकतिसङ्ख्याकाःकेनवैस्थापिताःपुरा
अष्टादशसहस्राणि किमर्थंस्थापितानिवै । कस्मिन्वंशेसमुत्पन्ना ब्रह्मणाब्रह्मसत्तमाः
सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः । ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥
सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः । तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥
मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥
तत्सर्वमादितः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदताम्वर ॥ २८ ॥
दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसंभवाः । राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
सेतुमाहात्म्ये पूर्वार्धे धर्मारण्यमाहात्म्ये युधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनाम-
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

# तृतीयोऽध्यायः

## इन्द्रभयकथनम्

व्यास उवाच

श्रूयतांनृपशार्दूल!कथां पौराणिकींशुभाम् । यांश्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः
एकदा धर्मराजो वै तपस्तेपे सुदुष्करम् । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्जलवर्षातपादिषाट् ॥
आदौ त्रेतायुगे राजन्वर्षाणामयुतत्रयम् । मध्येवनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलकम् ॥
शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसंचयं निश्चलाकृतिम् ।
वल्मीककीटिकाकोटिशोषिताशेषशोणितम् ॥ ४ ॥
निर्मांसकीकसचयंस्फटिकोपलनिश्चलम् । शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥
सत्त्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेणरक्षितम् । निश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम्
निमेषोन्मेषसंचारपिशुनीकृतजन्तुकम् । पिशङ्गितस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम् ॥
तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् । तच्छांत्युदसुधावर्षसंसिक्ताखिलभूरुहम्
साक्षात्तपस्यंतमिवतपोधृत्वानराकृतिम् । निराकृतिंनिराकांक्षं कृत्वाभक्तिंचकाञ्चनम्
कुरङ्गशावैर्गणशो भ्रमद्भिः परिवारितम् । निनादभीषणास्यैश्च वनजैः परिरक्षितम् ॥
एतादृशं महाभीमं दृष्ट्वादेवाः सवासवाः । ध्यायन्तं च महादेवं सर्वेषां चाभयप्रदम् ॥
ब्रह्माद्या दैवताः सर्वे कैलासं प्रतिजग्मिरे । पारिजाततरुच्छायामासीनं च सहोमया
नन्दिभृङ्गिर्महाकालस्तथान्ये च महागणाः । स्कन्दस्वामीचभगवान्गणपश्चतथैवच
तत्र देवाः सब्रह्माद्याः स्वस्वस्थानेषु तस्थिरे ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच

नमोऽस्त्वनन्तरूपायनीलकण्ठ नमोऽस्तुते । अविज्ञातस्वरूपायकैवल्यायामृताय च
नान्तंदेवाविजानन्ति यस्यतस्मैनमोनमः । यंनवाचःप्रशंसन्ति नमस्तस्मैचिदात्मने
योगिनोयंहृदःकोशे प्रणिधानेननिश्चलाः । ज्योतीरूपंप्रपश्यन्ति तस्मैश्रीब्रह्मणेनमः

कालात्पराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च । गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे
विष्णवे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय वेधसे । तमोरूपाय रुद्राय स्थितिसर्गान्तकारिणे॥

नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाऽहंकाररूपिणे ।
पञ्चतन्मात्ररूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १६ ॥

नमो नमः स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने । क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने
नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः । अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥२१
अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः । नमस्ते भक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह! ॥
तवविश्वसितं वेदास्तव वेदोऽखिलंजगत् । विश्वभूतानितेपादः शिरो द्यौसमवर्तत
नाभ्याआसीदन्तरिक्षं लोमानिचवनस्पतिः । चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्यस्तवप्रभो

त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं सर्वस्तुतिस्तव्य इह त्वमेव ।
ईश! त्वया वास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ २५ ॥

इतिस्तुत्वा महादेवं निपेतुर्दंडवत्क्षितौ । प्रत्युवाचतदा शम्भुर्वरदोऽस्मिकिमिच्छथ

महादेव उवाच

कथंव्यग्राःसुराःसर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः । तत्समाचक्ष्वमां ब्रह्मन्भवतां दुःखकारणम्

ब्रह्मोवाच

नीलकण्ठ! महादेव! दुःखनाशाभयप्रद । श्रृणु त्वं दुःखमस्माकं भवतो यद्वदाम्यहम्

धर्मराजोऽपि धर्मात्मा तपस्तेपे सुदुःसहम् ।
न जानेऽसौ किमिच्छति देवानां पदमुत्तमम् ॥ २९ ॥

तेन त्रस्तास्तत्तपसा सर्वे इन्द्रपुरोगमाः । भवतोङ्घ्रौ चिरेणैव मनस्तेन समर्पितम्

तमुत्थापय देवेश! किमिच्छति स धर्मराट् ॥ ३० ॥

ईश्वर उवाच

भवतां नास्ति तु भयं धर्मात्सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३१ ॥

तत उत्थाय ते सर्वे देवाः सह दिवौकसः । रुद्रं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्वापुनःपुनः
इन्द्रेण सहिताःसर्वेकैलासात्पुनरागताः । स्व स्वस्थानेतदाशीघ्रंगताःसर्वेदिवौकसः

इन्द्रोऽपिवैसुधर्मायां गतवान्प्रभुरीश्वरः । ननिद्रांलब्धवांस्तत्र नसुखंनच निर्वृतिम्
मनसा चिन्तयामास विघ्नंमेसमुपस्थितम् । अवापमहतींचिन्तांतदा देवःशचीपतिः
मम स्थानं पराहर्तुं तपस्तेपे सुदुश्चरम् । सर्वान्देवान्समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥

इन्द्र उवाच

शृण्वन्तुदेवताःसर्वा मम दुःखस्यकारणम् । दुःखेन ममयत्लब्धंतत्किं वा प्रार्थयेद्यमः
बृहस्पतिः समालोक्य सर्वान्देवानथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥

बृहस्पतिरुवाच

तपसेनास्ति सामर्थ्यविघ्नंकर्तुं दिवौकसः । उर्वश्याद्याः समाहूय संप्रेष्यंतांचतत्रवै
तासामाकारणार्थाय प्रतिहारःप्र तस्थिवान ।
स गत्वा ताः समादाय सभायां शीघ्रमाययौ ॥ ३९ ॥
आगतास्ता हरिः प्राह महत्कार्यमुपस्थितम् ।
गच्छन्तु त्वरिताः सर्वा धर्मारण्यं प्रति द्रुतम् ॥ ४० ॥

यत्र वै धर्मराजोऽसौतपश्चक्रेसुदुष्करम् । हास्यभावकटाक्षैश्चगीतनृत्यादिभिस्तथा
तं लोभयत्वं यमिनंतपःस्थानाच्च्युतिर्भवेत् । देवस्यवचनंश्रुत्वातथाअप्सरसांगणा
मिथः संरेभिरे कर्तुं विचार्य च परस्परम् । धर्मारण्यं प्रतस्थेसावुर्वशीस्ववराङ्गना
तुष्टुवुः पुष्पवर्षाश्च ससृजुस्तच्छिरस्यमी । ततस्तुदेवैर्विप्रैश्च स्तूयमानासमन्ततः
निर्ययौ परमप्रीत्या वनं परमपावनम् । बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसङ्कुलम्
न सूर्यो भाति तत्रैव महान्धकारसंयुतम् । निर्जनं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम्
मृगैः सिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः । पुष्पितैः पादपैः कीर्णं सुमनोहरशाद्वलम्
विपुलं मधुरानादैर्नादितंविहगैस्तथा । पुंस्कोकिलनिनादाढ्यं झिल्लीकगणनादितम्
प्रवृद्धविकटैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् । वृक्षैराच्छादिततलं लक्ष्म्यापरमयायुतम्
नापुष्पःपादपःकश्चिन्नाफलोनापिकण्टकी । षट्पदैरप्यनाकीर्णनास्मिन्वैकाननेभवेत्
विहंगैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव हि । सर्वर्तुकुसमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥
मारुताकम्पितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः । पुष्पवृष्टिंविचित्रांतुविसृजन्तिचपादपाः

दिषसपृशोऽथ संपुष्टाःपक्षिभिर्मधुरस्वनैः । विरेजुः पादपास्तत्र सुगन्धकुसुमैर्वृताः
तिष्ठन्ति च प्रवालेषु पुष्पभारावनादिषु । रुवन्ति मधुरालापाः षट्पदामधुलिप्सवः
तत्र प्रदेशांश्च बहूनामोदाङ्कुरमण्डितान् । लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्द्धनान् ॥
सम्पश्यन्तीमहातेजा बभूव मुदिता तदा । परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैःकुसमाचितैः
अशोभत वनं तत्तु महेंद्रध्वजसन्निभैः । सुखशीतसुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ॥
एवंगुणसमायुक्तं ददर्श सा वनं तदा । तदा सूर्योद्भवां तत्र पवित्रां परिशोभिताम्
आश्रमप्रवरं तत्र ददर्श च मनोरमम् । यतिभिर्बालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणावृतम् ॥
अग्न्यगारैश्चबहुभिर्वृक्षशाखावलम्बितैः । धूम्रपानकणैस्तत्र दिग्वासोयतिभिस्तथा
पाल्या वन्या मृगास्तत्रसौम्याभूयोबभूविरे । मार्जारामूषकैस्तत्रसर्पैश्चनकुलास्तथा
मृगशावैस्तथा सिंहाः सत्त्वरूपा बभूविरे । परस्परं चिक्रीडुस्तेयथावैव सहोदराः
दूराद्ददर्श च वनं तत्र देवोऽब्रवीत्तदा ॥ ६२ ॥

इन्द्र उवाच

अयं च खलुधर्मराट् तपस्युग्रेऽवतिष्ठते । मम राज्याभिकांक्षोऽसावतोर्थयत्यतामिह
तपोविघ्नं प्रकुर्वंतु ममाज्ञा तत्र गम्यताम् । इन्द्रस्य वचनंश्रुत्वाउर्वशीचतिलोत्तमा
सुकेशी मञ्जुघोषा चघृताची मेनकातथा । विश्वाचीचैवरंभाचप्रम्लोचाचारुभाषिणी
पूर्वचित्तिः सुरूपाच अनुम्लोचायशस्विनी ।
एताश्चान्याश्च बहुशस्तत्र संस्था व्यचिन्तयन् ॥ ६६ ॥

परस्परं विलोक्यै शंकमाना भयेन हि । यमश्चैव तथा शक्र उभौ वायतनं हि वः
एवं विचार्य बहुधा वर्द्धनीनाम भारत । सर्वासामप्सरसां श्रेष्ठा सर्वाभरणभूषिता
उवाचैवोर्वशी तत्र किं खिद्यसि शुभानने !। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मायारूपबलेनच
वर्णधर्मौ यथा भूयात्करिष्ये पाकशासन !॥ ६६ ॥

इन्द्र उवाच

साधु साधु महाभागे वर्द्धनीनाम सुव्रता । शीघ्रं गच्छ स्वयं भद्रे कुरुकार्यं कृशोदरि
धीराणामवने शक्ता नान्या सुभ्रु! त्वयाविना । वर्द्धनीवतथेत्युक्त्वागतायत्रसधर्मराट्

महता भूषणेनैव रूपं कृत्वा मनोरमम् । कुङ्कुमैः कज्जलैर्वस्त्रैर्भूषणैश्चैव भूषिता ॥
कुसुमं च तथा वस्त्रं किंकिणीकटिराजिता । झणत्कारैस्तथा कष्टैर्भूषिताचपदद्वये
नानाभूषणभूषाढ्या नानाचन्दनचर्चिता । नानाकुसुममालाढ्या दुकूलेनावृता शुभा
प्रगृह्य वीणां संशुद्धां करे सर्वाङ्गसुन्दरी । नर्तनं त्रिविधं तत्र चक्रे लोकमनोरमम्
तारस्वरेण मधुरैर्वंशनादेन मिश्रितम् ॥ ७६ ॥
मूर्च्छनातालसंयुक्तं तंत्रीलयसमन्वितम् । क्षणेन सहसा देवोधर्मराजोजितात्मवान्
विमनाः स तदा जातो धर्मराजो नृपात्मजः ॥ ७७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यं परमं ब्रह्मञ्जातं मे ब्रह्मसत्तम । कथं ब्रह्मोपपन्नस्य तपश्छेदो बभूवह ॥ ७८ ॥
धर्मे धरा च नाकश्च धर्मे पातालमेव च । धर्मे चन्द्रार्कमापश्च धर्मे च पवनोऽनलः ॥
धर्मेचैवचाखिलंविश्वंसधर्मोव्यग्रतांकथम् । गतःस्वामिंस्तद्वैयग्र्यं तथ्यंकथयसुव्रत

व्यास उवाच

पतनं साहसानां च नरकस्यैव कारणम् । योनिकुण्डमिदं सृष्टं कुम्भीपाकसमं भुवि
नेत्ररज्ज्वा दृढं बद्ध्वा धर्षयन्तिमनस्विनः । कुचरूपैर्महादण्डैस्ताड्यमानमचेतसम्
कृत्वा वै पातयन्त्याशु नरकं नृपसत्तम ।। मोहनं सर्वभूतानां नारी चैवं विनिर्मिता॥
तावद्धैर्यं मनः स्थैर्यं श्रुतं सत्यमनाकुलम् । यावन्मत्ताङ्गनाग्रे न वागुरेव सुचेतसाम्
तावत्तपोभिवृद्धिस्तु तावद्दानं दयादमः । तावत्स्वाध्यायवृत्तं च तावच्छौचंधृतंव्रतम्
यावत्त्रस्तमृगीदृष्टिचपलानविलोकयेत् । तावन्माता पितातावद्भ्रातातावत्सुहृज्जनः
तावल्लज्जा भयं तावत्स्वाचारस्तथदेव हि । ज्ञानमौदार्यमैश्वर्यं तावदेव हि भासते
यावन्मत्ताङ्गनापाशैः पातितो नैव बन्धनैः ॥ ८७ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
धर्मारण्यमाहात्म्ये इन्द्रभयकथनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

### क्षेत्रस्थापनवर्णनम्

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मराजस्य चेष्टितम्। यच्छ्रुत्वा यमदूतानांनभयंविद्यतेक्वचित्
धर्मराजेन सा दृष्टा वर्द्धनी च वराप्सरा। महत्यरण्ये का ह्येषासुन्दराङ्ग्यतिसुन्दरी
निर्मानुषवनं चेदं सिंहव्याघ्रभयानकम्। आश्चर्यं परमं ज्ञात्वा धर्मराजोऽब्रवीदिदम्

धर्मराज उवाच

कस्मात्त्वं मानिनि! ह्येका वने चरसि निर्जने।

कस्मात्स्थानात्समायाता कस्य पत्नी सुशोभने !॥ ४॥

सुतात्वं कस्य वामोरु अतिरूपवती शुभा। मानुषी वाथ गन्धर्वी अमरीवाथकिन्नरी
अप्सरा पक्षिणीवाथ अथवा वनदेवता। राक्षसी वा खेचरी वाकस्य भार्याच तद्वद
सत्यं च वदमेसुभ्रूरित्याहार्कसुतस्तदा। किमिच्छसि त्वयाभद्रे! किंकार्यवावदात्रवै

यदिच्छसि त्वं वामोरु! ददामि तव वाञ्छितम्॥ ८॥

वर्द्धन्युवाच

धर्मेतिष्ठति सर्वं वै स्थावरं जङ्गमंविभो। स धर्मोदुष्करं कर्म कस्मात्त्वं कुरुषेऽनघ

यम उवाच

ईशानस्य च यद्रूपं द्रष्टुमिच्छामि भामिनि। तेनाहं तपसायुक्तः शिवयासहशङ्करम्

यशः प्राप्स्ये सुखं प्राप्स्ये करोमि च सुदुष्करम्।

युगे युगे मम ख्यातिर्भवेदिति मतिर्मम॥ ११॥

कल्पेकल्पे महाकल्पे भूयःख्यातिर्भवेदिति। एतस्मात्कारणात्सुभ्रूस्तप्यते परमंतपः
कस्मात्त्वमागताभद्रे! कथयस्वयथातथा। किंकार्यंकस्यहेतुश्च सत्यमाख्यातुमर्हसि

वर्द्धन्युवाच

तपसैव त्वयाधर्म! भयभीतोदिवस्पतिः । तेनाहंनोदिताचात्र तपोविघ्नस्यकाङ्क्षया
इन्द्रासनभयाद्भीता हरिणा हरिसन्निधौ । प्रेषिताहं महाभाग! सत्यं हि प्रवदाम्यहम्

सूत उवाच

सत्यवाक्येन च तदा तोषितो रविनन्दनः । उवाचैनां महाभागो वरदोऽहं प्रयच्छ मे
यमोऽहं सर्वभूतानां दुष्टानां कर्मकारिणाम् ।
धर्मरूपो हि सर्वेषां मनुजानां जितात्मनाम् ॥ १७ ॥
स धर्मोऽहं वरारोहे! ददामि तवदुर्लभम् । तत्सर्वं प्रार्थय त्वं मे शीघ्रं चाप्सरसां वरे

वर्द्धन्युवाच

इन्द्रस्थानेसदारम्ये सुस्थिरत्वंप्रयच्छमे । स्वामिन्धर्मभृतांश्रेष्ठ लोकानांचहितायवै

यम उवाच

एवमस्त्वितितां प्राहचान्यंवरयसत्वरम् । ददाम वरमुत्कृष्टंगानेन तोषितोस्म्यहम्

वर्द्धन्युवाच

अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे ममतीर्थमहामते । भूयाच्च सर्वपापघ्नं मन्नाम्नेति चविश्रुतम्
तत्र दत्तं हुतं तप्तं पठितं वाऽक्षयं भवेत् । पञ्चरात्रं निषेवेत वर्द्धमानं सरोवरम् ॥
पूर्वजास्तस्यतुष्येरंस्तर्प्यमाणादिनेदिने । तथेत्युक्त्वातुतांधर्मामौनमावष्टसंस्थितः
त्रिः परिक्रम्य तं धर्मं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ २३ ॥

वर्द्धन्युवाच

मा भयं कुरु देवेश! यमस्यार्कसुतस्य च । अयं स्वार्थपरो धर्म! यशसेच समाचरेत्

व्यास उवाच

वर्द्धनी पूजिता तेन शक्रेण च शुभानना । साधुसाधु महाभागे! देवकार्यं कृतं त्वया ॥
निर्भयत्वं वरारोहे! सुखवासश्चतेसदा । यशःसौख्यं श्रियंरम्यांप्राप्स्यसित्वंशुभानने
तथेति देवास्तामूचुर्निर्भयानन्दचेतसा । नमस्कृत्य च शक्रंसा गतास्थानंस्वकंशुभम्

सूत उवाच

गतेप्सरसिराजेन्द्र धर्मस्तस्थौयथाविधि । तपस्तेपेमहाघोरं विश्वस्योद्वेगदायकम्

पञ्चाग्निसाधनं शुक्रे मासि सूर्येण तापिते । चक्रे सुदुःसहं राजन्देवैरपि दुरासदम् ॥
ततो वर्षशते पूर्णेअन्तको मौनमास्थितः । काष्ठभूत इमवातस्थौवल्मीकशतसंवृतः
नानापक्षिगणैस्तत्र कृतनीडैः स धर्मराट् । उपविष्टे व्रतं राजन्दृश्यते नैव कुत्रचित्
संस्मरन्तोऽथ देवेशमुमापतिमनिन्दितम् । ततोदेवाःसगन्धर्वायक्षाश्चोद्विग्नमानसाः
कैलासशिखरं भूय आजग्मुः शिवसन्निधौ ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः

त्राहित्राहि महादेव! श्रीकण्ठ! जगतःपते !। त्राहि नो भूतभव्येशत्राहि नोवृषभध्वज
दयालुस्त्वं कृपानाथ! निर्विघ्नं कुरु शङ्कर !॥ ३३ ॥

ईश्वर उवाच

केनापराधिता देवाःकेन वा मानमर्द्दिताः । मर्त्येस्वर्गेऽथवा नागेशीघ्रं कथयताचिरम्
अनेनैव त्रिशूलेन खट्वाङ्गेनाथवा पुनः । अथ पाशुपतेनैव निहनिष्यामि तं रणे ॥
शीघ्रं वै वदतास्माकमत्रागमनकारणम् ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

कृपासिन्धो! हि देवेश जगदानन्दकारक !। न भयं मानुषादद्य न नागाद्देवदानवात्
मर्त्यलोके महादेव ! प्रेतनाथो महाकृतिः ।
आत्मकार्यं महाघोरं क्लेशयेदिति निश्चयः ॥ ३७ ॥
उग्रेण तपसाकृत्वा क्लिश्यदात्मानमात्मना । तेनात्र वयमुद्विग्नादेवाः सर्वे सदाशिव!
शरणं त्वामनुप्राप्ता यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ३८ ॥

सूत उवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा वृषारूढो वृषध्वजः । आयुधान्परिसंगृह्य कवचं सुमनोहरम् ॥
गतवानथ तं देशं यत्र धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥

ईश्वर उवाच

अनेन तपसा धर्म संतुष्टं मम मानसम् । वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥
इच्छसेत्वंयथा कामान्यथातेमनसिस्थितान् । यंयं प्रार्थयसेभद्रददामितवसाम्प्रतम्

सूत ( व्यास ) उवाच

एवं संभाषमाणं तु दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् । वल्मीकादुत्थितो राजन्गृहीत्वा करसंपुटम्
तुष्टाव वचनैः शुद्धैर्लोकनाथमरिन्दमम् ॥ ४२ ॥

धर्म उवाच

ईश्वराय नमस्तुभ्यं नमस्तेयोगरूपिणे । नमस्ते तेजोरूपाय नीलकण्ठ! नमोऽस्तु ते
ध्यातृणामनुरूपाय भक्तिगम्याय ते नमः । नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप! नमोऽस्तुते
नमःस्थूलाय सूक्ष्मायअणुरूपाय वै नमः । नमस्तेकामरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे
नमो नित्याय सौम्यायमृडाय हरये नमः । आतपाय नमस्तुभ्यं नमः शीतकराय च
सृष्टिरूप! नमस्तुभ्यंलोकपाल! नमोऽस्तु ते । नमउग्रायभीमाय शान्तरूपायते नमः
नमश्चानन्तरूपाय विश्वरूपाय ते नमः । नमो भस्माङ्गलिप्ताय नमस्ते चन्द्रशेखर! ॥
नमोऽस्तु पञ्चवक्त्राय त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते ॥ ४८ ॥

नमस्तेव्यालभूषायकक्षा (काष्ठा) पटधरायच । नमोऽन्धकविनाशायदक्षपापापहारिणे
कामनिर्दाहिने तुभ्यं त्रिपुरारे! नमोऽस्तु ते ॥ ४६ ॥

चत्वारिंशच्चनामानि मयोक्तानियःपटेत् । शुचिर्भूत्वा त्रिकालं तुपठेद्वाशृणुयादपि
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः । ब्रह्महा हेमहारी च ह्यथवा वृषलीपतिः ॥
स्त्रीबालघातकश्चैव पापी चानृतभाषणः । अनाचारी तथा स्तेयी परदाराभिगस्तथा
परापवादी द्वेषी च वृत्तिलोपकरस्तथा । अकार्यकारी कृत्यघ्नो ब्रह्मद्विड्वाडवाधमः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः कैलासं स च गच्छति ॥ ५३ ॥

सूत उवाच

इत्येवं बहुभिर्वाक्यैर्धर्मराजेन वैमुहुः । ईडितोऽपि महद्भक्त्या प्रणम्यशिरसाव्ययम्
तुष्टः शम्भुस्तदा तस्मा उवाचेदं वचः शुभम् । वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते

यम उवाच

यदितुष्टोऽसि देवेश! दयांकृत्वा ममोपरि । तत्कुरुष्वमहाभाग! त्रैलोक्यंसचराचरम्
मन्नाम्ना स्थानमेतद्विख्यातं लोकेभवेदिति । अच्छेद्यंचाप्यभेद्यं चपुण्यंपापप्रणाशनम्

स्थानंकुरुमहादेव! यदि तुष्टोऽसिमेभव !। शिवेन स्थानकं दत्तं काशीतुल्यंतदा नृप!
तद्दत्त्वा च पुनः प्राह अन्यं वरय सत्तम !॥ ५८ ॥

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश दयांकृत्वाममोपरि । तंकुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम्
वरेणैवं यथा ख्याति गमिष्यामि युगे युगे ॥ ५६ ॥

ईश्वर उवाच

ब्रूहि कीनाश!तत्सर्वं प्रकरोमितवेप्सितम् । तपसातोषितोऽहंवेददामिवरमीप्सितम्

यम उवाच

यदि मे वाञ्छितं देव! ददासितर्हि शङ्कर !। अस्मिन्स्थानेमहाक्षेत्रेमन्नाम्नाभवसर्वदा
धर्मारण्यमिति ख्यातिस्त्रैलोक्ये सचराचरे । यथा सञ्जायते देव ! तथाकुरु महेश्वर !

ईश्वर उवाच

धर्मारण्यमिदं ख्यातंसदाभूयाद्युगेयुगे । त्वन्नाम्नास्थापितंदेव ख्यातिमेतद्गमिष्यति
अथाऽन्यदपि यत्किञ्चित्करोम्येव वदस्व तत् ॥ ६३ ॥

यम उवाच

योजनद्वयविस्तीर्णं मन्नाम्ना तीर्थमुत्तमम् । मुक्तेश्चशाश्वतंस्थानं पावनंसर्वदेहिनाम्
मक्षिकाः कीटकाश्चैव पशुपक्षिमृगादयः । पतङ्गा भूतवेताला पिशाचोरगराक्षसाः ॥
नारी वाथ नरो वाथ मत्क्षेत्रे धर्मसञ्ज्ञके । त्यजतेय प्रियान्प्राणान्मुक्तिर्भवतुशाश्वती
एवमस्त्विति शर्वोऽपि देवा ब्रह्मादयस्तथा । पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः परंहर्षमवाप्नुयुः
देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वपतयो जगुः । ववुः पुण्यास्तथा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥

सूत उवाच

यमेन तपसा भक्त्यातोषितो हि सदाशिवः । उवाच वचनंदेवं रम्यं साधुमनोरमम्
अनुज्ञां देहि मे तात! यथागच्छामि सत्वरम् । कैलासं पर्वतश्रेष्ठंदेवानांहितकाम्यया

यम उवाच

न मे स्थानं परित्यक्तुं त्वयायुक्तं महेश्वर !। कैलासादधिकं देव! जायतेवचनादिदम्

शिव उवाच

साधु प्रोक्तं त्वया युक्तमेकांशेनात्र मे स्थितिः ।

न मया त्यजितं साधु स्थानं तव सुनिर्मलम् ॥ ७२ ॥

विश्वेश्वरं महालिङ्गं मन्नाम्नात्र भविष्यति । एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत
शिवस्य वचनात्तत्र तदा लिङ्गं तदद्भुतम् । तं दृष्ट्वा च सुरैस्तत्र यथानामानुकीर्त्तनम्
स्वंस्वंलिङ्गंतदा सृष्टंधर्मारण्येसुरोत्तमैः । यस्यदेवस्य यल्लिङ्गंतन्नाम्ना परिकीर्तितम्

सूत उवाच

धर्मेण स्थापितं लिङ्गं धर्मेश्वरमुपस्थितम् । स्मरणात्पूजनात्तस्य सर्वपापैःप्रमुच्यते

यद्ब्रह्म योगिनांगम्यं सर्वेषां हृदये स्थितम्

तिष्ठते यस्य लिङ्गं तु स्वयंभुवमिति स्थितम् ॥ ७७ ॥

भूतनाथं च सम्पूज्य व्याधिभिर्मुच्यते जनः । धर्मवापींततश्चैव चक्रे तत्र मनोरमाम्॥
आहृत्यकोटितीर्थानां जलं वाप्या मुमोचह । यमतीर्थस्वरूपेचस्नानं कृत्वामनोरमम्

स्नानार्थं देवतानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८० ॥

धर्मवाप्यांनरःस्नात्वादृष्ट्वा धर्मेश्वरं शिवम् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो नमातुर्गर्भमाविशेत्

तत्र स्नात्वा नरो यस्तु करोति यमतर्पणम् ।

व्याधिदोषविनाशार्थं क्लेशदोषोपशान्तये ॥ ८२ ॥

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।

वैवस्वताय कालाय दध्नाय परमेष्ठिने ॥ ८३ ॥

वृकोदराय वृकाय दक्षिणेशाय ते नमः । नीलायचित्रगुप्ताय चित्र वैचित्र ते नमः ॥
यमार्थं तर्पणं योवैधर्मवाप्यां करिष्यति । साक्षतैर्नामभिश्चैतैस्तस्य नोपद्रवो भवेत्
एकान्तरस्तृतीय स्तुज्वरश्चातुर्थिकस्तथा । वेलायांजायतेयस्तुज्वरःशीतज्वरस्तथा
पीडयन्तितन्नैतस्य यस्यैव मतिरीदृशी । रेवत्यादिग्रहादोषा डाकिनीशाकिनीतथा
धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सन्ततिर्वर्धतेसदा । भूतेश्वरंतुसंपूज्यसुस्नातोविजितेन्द्रियः

साङ्गंरुद्रजपंकृत्वा व्यधिदोषात्प्रमुच्यते । अमावास्यां सोमदिने व्यतीपातेथवैधृतौ
संक्रान्तौ ग्रहणे चैव तत्र श्राद्धं स्मृतं नृणाम् ॥ ८८ ॥
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं निरस्य चैतत्पितरस्त्वदन्ति ।
पानीयमेवापि तिलैर्विमिश्रितं ददाति यो वै प्रथितो मनुष्यः ॥ ८६ ॥
एकविंशतिवारैस्तुगयायां पिण्डदानतः । धर्मेश्वरे सकृद्दत्तं पितॄणां चाक्षयं भवेत् ॥
धर्मेशात्पश्चिमेभागेविश्वेश्वरान्तरेपिवा । धर्मवापीति विख्यातास्वर्गसोपानदायिना
धर्मेण निर्मिता पूर्वं शिवार्थं धर्मबुद्धिना ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च तर्पिताः पितृदेवताः ॥ ६२ ॥
शमीपत्रप्रमाणं तु पिण्डंदद्याच्च यो नरः । धर्मवाप्यां महापुण्यांगर्भवासंनचाप्नुयात्
कुम्भीपाकान्महारौद्राद्रौरवान्नरकात्पुनः । अन्धता मिस्रकाद्राजन्मुच्यतेनात्र संशयः

सूत उवाच

एकवर्षं तर्पणीयं धर्मवाप्यां नरोत्तमः । ऋतौ मासे च पक्षे च विपरीतं च जायते ॥
बर्हिषदोऽग्निष्वात्ताश्च आज्यपाः सोमपास्तथा ।
तृप्तिं प्रयान्ति परमां वाप्यां वै तर्पणेन तु ॥ ६६ ॥
कुरुक्षेत्रादि क्षेत्राणिअयोध्यादिपुरस्तथा । पुष्करगयानिसर्वाणिमुक्तिनामानिसंतिवै
तानि सर्वाणि तुल्यानि धर्मकूपोऽधिको भवेत् ।
मन्त्रो वेदास्तथा यज्ञा दानानि च व्रतानि च ॥ ६८ ॥
अक्षयाणि प्रजायन्तेदत्त्वाजप्त्वा नरेश्वर ! । अभिचाराश्रये चान्येसुसिद्धाथर्ववेदजाः
तेसर्वेसिद्धिमायान्तितस्मिन्स्थानेकृताअपि । आदितीर्थं नृपश्रेष्ठकाजेशैरुपसेवितम्
सिद्धिस्थानं सुसौम्यं चब्रह्माद्यैरपि सेवितम् । कृतेतुयुगपर्यन्तंत्रेतायां लक्षपञ्चकम्
द्वापरे लक्षमेकं तु दिनैकेन फलं कलौ । एतदुक्तं मया ब्रह्मन्धर्मारण्यस्य वर्णनम्
फलं चैवात्र सर्वं हि उक्तं द्वैपायनेन तु ॥ १०२ ॥

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामिधर्मवाक्यं मनोरमम् । देवानां हितकामाय आज्ञाप्यचयदुक्तवान्

धर्म उवाच

अस्मिन्क्षेत्रे प्रकुर्वन्तिविष्णुमायाविमोहिताः । पारदार्यमहादुष्टंस्वर्णस्तेयादिकंतथा
अन्यच्च विकृतं सर्वं कुर्वाणो नरकंव्रजेत् । अन्यक्षेत्रे कृतंपापं धर्मारण्ये विनश्यति ॥
धर्मारण्ये कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति । यथा पुण्यं तथापापंयत्किञ्चिच्छुभाशुभम्
तत्सर्वं वर्द्धते नित्यवर्षाणिशतमित्युत । कामिनांकामदंपुण्यंयोगिनांमुक्तिदायकम्
सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा । अपुत्रोलभते पुत्रान्निर्धनोधनवान्भवेत्
एतदाख्यानकं पुण्यं धर्मेण कथितं पुरा । यः शृणोति नरोभक्त्यानारीवाश्रावयेत्तुयः
गोसहस्रफलं तस्य अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ॥ १०६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये क्षेत्रस्थापनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः

### सदाचारवर्णनम्

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना । यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥
धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः । अष्टादशसहस्राश्चकाजेशैश्च विनिर्मिताः
सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः । तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते

युधिष्ठिर उवाच

पाराशर्य! समाख्याहिसदाचारं च वैप्रभो !। आचाराद्धर्ममाप्नोतिआचाराल्लभतेफलम्
आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचारं वदस्व मे ॥ ४ ॥

व्यास उवाच

स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।

क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ ५ ॥
सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा । सर्व एतेमहाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः
चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोऽतीव चोत्तमाः ।
प्राणिभ्योऽपि मुनि ( नृप ) श्रेष्ठाः सर्वे बुद्ध्युपजीवनः ॥ ७ ॥
मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तेभ्य श्रेष्ठास्तु वाडवाः ।
विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ ८ ॥
कृतधीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ।
न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत !॥ ६ ॥
अन्योन्यपूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषतः । ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरोयतः
अतो जगत्स्थितंसर्वंब्राह्मणोऽर्हतिनापरः । सदाचारोहिसर्वार्होनाचाराद्विच्युतःपुनः
तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना । विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने!॥
सिद्धयस्तं सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः । लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः
श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समाः शतम् । श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंस्वेषुस्वेषुचकर्मसु
सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः । दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ॥
व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ।
त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥ १६ ॥
दुःखी यतः पराधीनःसदैवात्मवशःसुखी । यस्मिन्कर्मण्यंतरात्माक्रियमाणेप्रसीदति
तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् । प्रथमंधर्मसर्वस्वं प्रोक्तं यन्नियमा यमाः ॥
अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्त्तव्योधर्ममिच्छता । सत्यंक्षमार्जवंध्यानमानृशंस्यमहिंसनम्
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश । शौचं स्नानंतपोदानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम्
उपोषणोपस्थदण्डो दशैतेनियमाः स्मृताः । कामं क्रोधं दमं मोहंमात्सर्यंलोभमेवच
अमून्षड्वैरिणोजित्वासर्वत्रविजयी भवेत् । शनैःसञ्चिनुयाद्धर्मंवल्मीकंशृङ्गवान्यथा
परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम् । धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥
पितृमातृसुतभ्रातृयाषिद्बन्धुजनाधिकः । जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः

एकलः सुकृतंभुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः। देहे पञ्चत्वमापन्नेत्यक्त्वैकंकाष्ठलोष्ठवत्
बान्धवाविमुखायान्तिधर्मोयान्तमनुव्रजेत्। अतःसञ्चिनुयाद्धर्म्ममत्राऽमुत्रसहायिनम्
धर्मसहायिनंलब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तरं तमः। सम्बन्धानाचारेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः
अधमानधमांस्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत्। उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीमांश्चवर्जयेत्

ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २८ ॥

अनध्ययनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम्। सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेऽन्तकः

अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः।

तीर्थान्यप्यभिलस्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥ ३० ॥

रजनीप्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मःसमयउच्यते। स्वहितंचिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थायसर्वदा
गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहाम्बया। श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम्

इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि।

गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ३३ ॥

क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च। वनानि नन्दनादीनिधेनूः कामदुघादयः

कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून्काञ्चनमुख्यतः।

दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥ ३५ ॥

जननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ। पितरंचगुरूंश्चापिहृदिध्यात्वा प्रसन्नधीः
ततश्चावश्यकं कर्तुं नैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत्। ग्रामाद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम्

तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा।

कर्णोपवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥ ३८ ॥

विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः।

न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ ३९ ॥

न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेव्यभूतले।

नाऽऽलोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ॥ ४० ॥

वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान्।

अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकर्कररवर्जिताम् ॥ ४१ ॥

विहायमूषकोत्खातांचोच्छिष्टांकेशसंकुलाम् । गुह्येदद्यान्मृदंचैकांप्रक्षाल्यचांबुनाततः पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् । एकैकपादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृदस्तथा इत्थं शौचं गृही कुर्यादगन्धलेपक्षयावधि । क्रमाद्द्वैगुण्यतःकुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु दिवाविहितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् । परग्रामे तदर्धं च पथि तस्यार्धमेव च तदर्धंरोगिणां चापिसुस्थैन्यूनं नकारयेत् । अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चाप्यगोपमैः

आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।

आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥

सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ।

प्रागास्य उदगास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ॥ ४८ ॥

उपस्पृशेद्विहीनाभिस्तुषांगारास्थिभस्मभिः ।

अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च यावदधृद्गाभिरत्वरः ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणोब्रह्मतीर्थेणदृष्टिपूताभिराचमेत् । कण्ठगाभिर्नृपः शुध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः

स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यतः ।

शिरः शब्दं सकण्ठं वा जले मुक्तशिखोऽपि वा ॥ ५१ ॥

अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोऽप्यशुचिर्मतः ।

त्रिः पीत्वाऽम्बु विशुद्धयर्थं ततः खानि विशोधयेत् ॥ ५२ ॥

अङ्गुष्ठमूलदेशेन ह्यधरोष्ठौ परिमृजेत् । स्पृष्टाजलेन हृदयं समस्ताभिः शिरःस्पृशेत्

अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्व्वत्र संस्पृशेत् ।

आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ॥ ५४ ॥

स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।

सुप्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥ ५५ ॥

प्रमादादशुचिःस्मृत्वाद्विराचान्तःशुचिर्भवेत् । दन्तधावनं प्रकुर्वीतयथोक्तंधर्मशास्त्रतः

आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे। दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम्॥
अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे। गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये
कनिष्ठाग्रपरीमाणंसत्वचं निर्व्रणारुजम्। द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्रं स्याद्दंतधावनम्
एकैकांगुलमानंतच्चर्वयेद्दन्तधावनम्। प्रातः स्नानं चरित्वाथशुद्धयै तीर्थे विशेषतः

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत्कायोऽयं मलिनः सदा।
यन्मलं नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम्॥ ६१॥

उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम्। प्राजापत्यसमंप्राहुस्तन्महाघविनाशकृत॥
प्रातः स्नानंहरेत्पापमलक्ष्मींग्लानिमेव च। अशुचित्वंचदुःस्वप्नंतुष्टिंपुष्टिंप्रयच्छति

नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित्।
दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नानं समाचरेत्॥ ६४॥
प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम!।
विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम्॥ ६५॥
विशुद्धां मृदमादाय बर्हिषस्तिलगोमयम्।
शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत्॥ ६६॥

उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत्। स्वशाखोक्तविधानेनस्नानं कुर्याद्यथाविधि

स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी।
आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्वितः॥ ६८॥

प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियम्यमानसंदृढम्। अहोरात्रकृतैःपापैर्मुक्तो भवतितत्क्षणात्
दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि। नियम्य मानसं तेन तदा तप्तंमहत्तपः
सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश। अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहःकृताः

यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः।
तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसंयमात्॥ ७२॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः। गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम
कर्मणा मनसावाचायद्रात्रौकुरुते त्वघम्। उत्तिष्ठन्पूर्वसंध्यायांप्राणायामैर्विशोधयेत्

यदह्ना कुरुतेपापंमनोवाक्कायकर्मभिः। आसीनः पश्चिमांसंध्यांप्राणायामैर्व्यपोहति

पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ ७५ ॥

नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।

स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ७६ ॥

अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत्। तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनुपूर्वशः॥

आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जनंतु ततश्चरेत्। भूमौ शिरसिचाकाश आकाशेभुवि मस्तके

मस्तकेच तथाकाशेभूमौ च नवधाक्षिपेत्। भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयंस्मृतम्

शिरस्यैव शिरःशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम्॥ ७६ ॥

वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यदपि चेन्द्रतः। मन्त्रस्नानादपिपरं ब्राह्मंस्नानमिदं परम्

ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ ८० ॥

सर्वत्र चार्हतामेति देवपूजादिकर्मणि। नक्तंदिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमुपावनाः

शतशोऽपितथास्नातानशुद्धाभावदूषिताः। अन्तःकरणशुद्धांश्चतान्विभूतिःपवित्रयेत्

किम्पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः। सस्नानःसर्वतीर्थेषुमलैःसर्वैर्विवर्जितः

तेन क्रतुशतैरिष्टं चेतो यस्येह निर्मलम्।

तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने! शृणु ॥ ८४ ॥

विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदा स्यान्नान्यथा क्वचित्।

तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थं काशीनाथं समाश्रयेत्॥ ८५ ॥

इदं शरीरमुत्सृज्यपरं ब्रह्माधिगच्छति। द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना

कुर्याद्दृतंचमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम्। निमज्ज्याप्सुत्रयोविद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम्

जले वापिस्थले वापि यःकुर्यादघमर्षणम्। तस्याघौघो विनश्येत यथासूर्योदयेतमः

गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम्।

प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोऽञ्जलित्रयम् ॥ ८६ ॥

तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः। सूर्यतेजः प्रलीयन्ते शैला इव विवस्वतः॥

सहायार्थंचसूर्यस्ययोद्विजोनाञ्जलित्रयम्। क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपिमन्देहतांव्रजेत्

प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् । उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात्
काललोपोनकर्त्तव्यो द्विजेनस्वहितेप्सुना । अर्द्धोदयान्तसमये तस्माद्वज्रोदकंक्षिपेत्

विधिनाऽपि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्तो वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ ६४ ॥

जलेवामकरंकृत्वा यासन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः । वृषलीसापरिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा
उपस्थानंततःकुर्याच्छाखोक्तविधिनाततः । सहस्रकृत्वोगायत्र्याःशतकृत्वोऽथवापुनः
दशकृत्वोऽथदेव्यैवकुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् । सहस्रपरमां देवींशतमध्यांदशावराम्
गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते । रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैःकुशैः
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् । अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्चितम् ॥
अर्चितःसविता दत्ते सुतान्पशुवसूनि च । व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि

अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेव दिवाकरः ।
रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥ १०१ ॥
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतः ।
ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ १०२ ॥

चन्दनागुरुकर्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि । तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत्
सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवैः । अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विजः

कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्पयेत् ।
प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥ १०५ ॥
रवौ शुक्ले त्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ।
श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ १०६ ॥

यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेव तिलैः कृती । चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥
ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वान्पितॄन्मुदा । सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः
एकैकमञ्जलिंदेवा द्वौद्वौतुसनकादिकाः । पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमञ्जलिम्
मङ्गुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् । ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥

मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥
तृप्यंतुसर्व्वे पितरोमातृमातामहादयः । अन्येचमन्त्राः प्रोक्तायेवेदोक्ताःपुराणसम्भवाः
साङ्गंचतर्प्पणं कुर्यात्पितृणांचसुखप्रदम् । अग्निकार्यंततः कृत्वावेदाभ्यासं ततश्चरेत्

श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ।
अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ॥ ११४ ॥

लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्यच लब्धये । प्रातःकृत्यमिदंप्रोक्तं द्विजातीनांनृपोत्तम!
अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वावश्यकमेव च । शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥

विशोध्य सर्वगात्राणि प्रातःसन्ध्यां समाचरेत् ।
वेदार्थानधिगच्छेद्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ ११७ ॥
अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ।
उपेयादीश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥ ११८ ॥
ततो मध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥ ११९ ॥

देवतां परिपूज्याथ विधिंनैमित्तिकं चरेत् । पवनाग्निं समुज्ज्वाल्यवैश्वदेवंसमाचरेत्

निष्पावान्कोद्रवान्माषान्यलापांश्चणकांस्त्यजेत् ।
तैलपक्वमपक्वान्नं सर्वं लवणयुक्त्यजेत् ॥ १२१ ॥

आढक्यन्नं मसूरान्नं वर्तुलधान्यसंभवम् । भुक्तशेषं पर्युषितं वैश्वदेवे चिवर्जयेत् ॥
दर्भपाणिःसमाचम्य प्राणायामंविधायच । पृगोदिवीति मन्त्रेण पर्युक्षणमथाचरेत्
प्रदक्षिणंचपर्युक्ष्य द्विःपरिस्तीर्यवैकुशान् । रापोर्द्ध देवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निस्वसन्मुखे
वैश्वानरं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा । स्वशाखोक्तप्रकारेण होमंकुर्याद्विचक्षणः
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः । यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेतेधर्मभिक्षुकाः

अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ।
मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ १२७ ॥

अपिश्वपाकेशुनिवा नैवान्नं निष्फलंभवेत् । अन्नार्थिनि समायातेपात्रापात्रंनचिन्तयेत्

शुनांच पतितानाञ्चश्वपचां पापरोगिणाम् । काकानांचकृमीणांचबहिरन्नं किरेद्भुवि
ऐन्द्रवारुणवायव्याःसौम्यावैनैर्ऋताश्चये । प्रतिगृह्णंत्विमंपिंडंकाकाभूमौमयार्पितम्
इत्थं भूतबलिंकृत्वाकालंगोदोहमात्रकम् । प्रतीक्ष्यातिथिमायातं विशेद्वोज्यगृहंततः
अदत्त्वा वायसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत् ।
नित्यश्राद्धे स्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥ १३२ ॥
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च । नित्यश्राद्धं दैवहीनंनियमादिविवर्जितम्
दक्षिणारहितं त्वेतद्दातृभोक्तृसुतृप्तिकृत् । पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।
सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ १३५ ॥
प्रागास्य उदगास्यो वाभुञ्जीतपितृसेवितम् । विधायान्नमनग्नंतदुपरिष्टादधस्तथा
आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्नीयात्सुधीर्द्विजः । भूमौ बलित्रयं कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि
सकृच्चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् । दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदर्भपाणिः प्रसन्नधीः
दर्भपाणिस्तुयो भुङ्क्तेतस्यदोषो नविद्यते । केशकीटादिसंभूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः
ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् । प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः॥
रौरवेऽपुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ १४१ ॥
पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः । मुखशुद्धिं ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः
अतिवाह्य दिवाशेषं ततःसन्ध्यांसमाचरेत् । गृहेषुप्राकृतासन्ध्यागोष्ठेदशगुणास्मृता
नद्यामयुतसंख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ । अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥ १४४ ॥
उद्देशतः समाख्यातएष नित्यतनोविधिः । इत्थं समाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये सदाचारवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

# षष्ठोऽध्यायः

## सदाचारलक्षणम्

### व्यास उवाच

उपकाराय साधूनां गृहस्थाश्रमवासिनाम् । यथा च क्रियतेधर्मा यथावत्कथयामिते

वत्स! गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ।

पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ २ ॥

पितरो मुनयो देवा भूतानिमनुजास्तथा । कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसिपितरोऽसुराः
गृहस्थ मुपजीवन्ति ततस्तृप्तिंप्रयान्तिच । मुखंवास्यनिरीक्षन्ते अपोनोदास्यतीतिच
सर्वस्याधारभूता ये वत्स धेनुस्त्रयीमयी । अस्यां प्रतिष्ठितं विश्वंविश्वहेतुश्चयामाता
ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा । इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता । उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः ॥

स्वाहाकारस्वधाकारौ वषट्कारश्च पुत्रक !।

हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ॥ ८ ॥

स्वाहाकारस्तनं देवा पितरश्च स्वधामयम् । मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेश्वराः ॥
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततंस्तनम् । एवमध्यापयेदेव वेदानां प्रत्यहं त्रयीम्
तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽनन्तपापकृत् । स तमस्यन्धतामिस्रे नरकेहिनिमज्जति
यस्त्वेनां मानवो धेनुं स्ववर्त्सैरमरादिभिः । पूजयत्युचिते कालेसम्वर्गायोपपद्यते
तस्मात्पुत्र! मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः । भूतानिचानुदिवसम्पोष्याणिम्वतनुर्यथा

तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ।

यज्ञस्यान्ते तथैवाऽद्भिः काले कुर्यात्समाहितः ॥ १४ ॥

सुमनोगन्धपुष्पैश्चदेवानभ्यर्च्य मानवः । ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्याद्द्याच्चापिवलींस्तथा
नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतोहरेत् । पितृणांनिर्वपेत्तद्वद्दक्षिणाभिमुखस्ततः

गृहस्थस्तत्परो भूत्वासुसमाहितमानसः । ततस्तोयमुपादायतेष्वेवार्पणसत्क्रियाम्
स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञोनाम्ना तूद्दिश्यदेवताः । एवं बलिं गृहे दत्वागृहेगृहपतिःशुचिः
आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् । मुहूर्तस्याष्टमंभागमुदीक्षेतातिथिंततः
अतिथिं तत्र संप्राप्तमर्घ्यपाद्योदकेन च । बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम्
ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसम्पूज्यशक्तितो बुधैः । नपृच्छेत्तत्राचरणंस्वाध्यायंचापिपण्डितः

शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २२ ॥

तस्मै दत्वातुयोभुङ्क्ते सतुभुङ्क्तेऽमृतंनरः । अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति । अपि वा शाकदानेन यद्वातोयप्रदानतः

पूजयेत्तं नरः शक्त्या तेनैवाऽतो विमुच्यते ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

विवाहा ब्राह्मदैवार्षाःप्राजापत्यासुरौतथा । गान्धर्वो राक्षसश्चापिपैशाचोऽष्टमउच्यते
एतेषां च विधिं ब्रूहि तथाकार्यंच तत्त्वतः । गृहस्थानांतथाधर्मान्ब्रूहिमेत्वंविशेषतः

पराशर उवाच

स ब्राह्मो वरमाहूय यत्र कन्या स्वलङ्कृता । दायते तत्सुतःपूयात्पुरुषानेकविंशतिम्
यज्ञस्थायर्त्विजे दैवस्तज्जः पाति चतुर्दश । वरादादाय गोद्वन्द्वमार्षस्तज्जः पुनातिषट्
सहोभौचरतांधर्मप्राजापत्यःसईरितः । वरवध्वोःस्वेच्छयाचगान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः

प्रसह्य कन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितः सताम् ॥ २६ ॥

छलेन कन्याहरणात्पैशाचो गर्हितोऽष्टमः । प्रायःक्षत्रविशोरुक्ता गान्धर्वासुरराक्षसाः
अष्टमस्त्वेषपापिष्ठःपापिष्ठानाञ्च सम्भवः । सवर्णया करोग्राह्यो धार्यः क्षत्रिययाशरः
प्रतोदोवैश्ययाधार्योवासोन्तःशूद्रयातथा । असवर्णास्वेष विधिः स्मृतौहृष्टश्चवेदने

सवर्णाभिस्तु सर्वाभिः पाणिर्ग्राह्यस्त्वयं विधिः ।

धर्म्ये विवाहे जायन्ते धर्म्याः पुत्राः शतायुषः ॥ ३२ ॥

अधर्म्याद्धर्मरहिता मन्दभाग्यधनायुषः । कृतकालाभिगमने धर्मोऽयं गृहिणः परः ॥

स्त्रीणांवरमनुस्मृत्यगथाकाम्यथवाभवेत् । दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यं परं मतम्
श्राद्धाहःसर्वपर्वाणि न गन्तव्यानिधीमता । तत्रगच्छन्स्त्रियंमोहाद्धर्मात्प्रच्यवतेपरात्
ऋतुकालाभिगामीयःस्वदारनिरतश्चयः । स सदाब्रह्मचारी हि विज्ञेयः सगृहाश्रमी
आर्षेविवाहेगोद्वन्द्वंयदुक्तं तत्र शस्यते । शुल्कमण्वपि कन्यायाः कन्याविक्रयपापकृत्
अपत्यविक्रयात्कल्पंवसेद्विट्कृमिभोजने । अतो नाण्वपि कन्यायाउपजीव्यंनरैर्धनम्
तत्र तुष्टा महालक्ष्मीर्निवसेद्दानवारिणा । वाणिज्यं नीचसेवा च वेदानध्ययनं तथा
कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः । कुर्याद्वैवाहिके चाग्नौगृह्यकर्मान्वहं गृही
पञ्चयज्ञक्रियां चापि पक्तिं दैनन्दिनीमपि । गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने
कुण्डनी पेषणी चुल्ली ह्रदकुम्भी तु मार्जनी । तासां च पञ्चसूनानांनिराकरणहेतवः

क्रतवः पञ्च निर्दिष्टा गृहिश्रेयोभिवर्द्धनाः ॥ ४३ ॥

पठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणं च पितृक्रतुः । होमो दैवोबलिर्भौत आतिथ्यंनृक्रतुः क्रमात्

वैश्वदेवान्तरे प्राप्तः सूर्योढो वाऽतिथिः स्मृतः ।

अतिथेरादितोऽप्येते भोज्या नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥

पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतंगृही । अदत्त्वान्नंचयो भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः
वैश्वदेवेन ये हीना अतिथ्येन विवर्जिताः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाःप्राप्तवेदा अपिद्विजाः
अकृत्वा वैश्वदेवंतु भुञ्जन्तेयेद्विजाधमाः । इहलोकेऽन्नहीनाःस्युः काकयोनिंव्रजंत्यथो

वेदोक्तं विदितं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।

यदि कुर्याद्यथाशक्ति प्राप्नुयात्सद्गतिं पराम् ॥ ४६ ॥

षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तैले मांसे सदैव हि । चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां तथैव च क्षुरे भगे
उदयन्तंन वीक्षेत नास्तं यान्तं न मस्तके । नराद्गुणोपम्पृष्टं चनाण्डस्थंवीक्षयेद्रविम्
न वीक्षेतात्मनो रूपमप्सुधावेक्षकर्दमे । न नग्नां स्त्रियमीक्षेत न नग्नो जलमाविशेत्
देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं तथा । जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तथैव च ॥

अश्वत्थं चैत्यवृक्षं च गुरुं जलभृतं घटम् ।

सिद्धान्नं दधि सिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ५४ ॥

रजस्वलांनसेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया । एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने
नाशुचिस्त्रियमीक्षेत तेजस्कामोद्विजोत्तमः । असन्तर्प्य पितृन्देवान्नाद्यादन्नंचकुत्रचित्

पक्वान्नं चापि नो मांसं दीर्घकालं जिजीविषुः ।

न मूत्रणं व्रजे कुर्यान्न वल्मीके न भस्मनि ॥ ५७ ॥

न गर्त्तेषु ससत्त्वेषु न तिष्ठन्न व्रजन्नपि । ब्राह्मणं सूर्यमग्निं च चन्द्रमृक्षगुरूनपि ॥
अभिपश्यन्न कुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् । मुखेनोपधमेन्नाग्निं नग्नां नेक्षेत योषितम्

नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्तु अशुचि क्षिपेत् ।

प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ६० ॥

न संविशेन्नसन्ध्यायांप्रातःसायंकचिद्बुधः । नावक्षीतधयन्तींगांनेन्द्रचापं प्रदर्शयेत्

नैकः सुप्यात्कचिच्छून्ये न शयानं प्रबोधयेत् ।

पन्थानं नैकलो यायान्न वार्य्यञ्जलिना पिबेत् ॥ ६२ ॥

न दिवोद्धृतसारं च भक्षयेद्दधिनोनिशि । स्त्रीधर्मिणीं नाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु

तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ।

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ ६४ ॥

दातुः श्राद्धफलंनास्तिभोक्ताकिल्बिषभुग्भवेत् । न धारयेदन्यभुक्तंवासश्चोपानहावपि
न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते । आरोहणंगवांपृष्ठे प्रेतधूमं सरित्तटम्
बालातपंदिवास्वापंत्यजेद्दीर्घजिजीविषुः । स्नात्वानमार्जयेद्गात्रंविसृजेन्न शिखांपथि
हस्तौ शिरो न धुनुयान्नाकर्षेदासनं पदा । करेण नोमृजेद्गात्रं स्नानवस्त्रेण वापुनः
शुनोच्छिष्टं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति । नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन ॥
करजैः करजच्छेदं विवर्जयेच्छुभाय तु । यदापरयां त्यजेत्तन्न कुर्यात्कर्म प्रयत्नतः ॥
अद्वारेणनगन्तव्यं स्ववेश्मापि कदाचन । क्रीडेन्नाक्षैःसहासीतनधर्म्मघ्नैर्न रोगिभिः

न शयीत क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च ।

आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालं न जीवति ॥७२ ॥

सम्विशेन्नार्द्रचरणोनोच्छिष्टःक्वचिदाव्रजेत् । शयनस्थोनचाश्नीयान्नपिबेच्चजलंद्विजः

सोपानत्को नोपविशेन्न जलं चोत्थितः पिबेत् ।
सर्व्वमम्लम्मतं नाद्यादारोग्यस्याभिलाषुकः ॥७४ ॥
न निरीक्षेत विण्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ।
नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥७५ ॥

पतितैः सह संवासः पतनायैव जायते । दद्यादूर्ध्वासनं मञ्चं न शूद्राय कदाचन ॥
ब्राह्मण्याद्धीयतेविप्रःशूद्रो धर्माच्च हीयते । धर्मोपदेशः शूद्राणांस्वश्रेयः प्रतिघातयेत्
द्विजशुश्रूषणंधर्म्मःशूद्राणां हि परोमतः । कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यां न शुभंमतम्
आदिशेद्वैदिकंमन्त्रंन शूद्राय कदाचन । ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रःशूद्रो धर्म्माच्चहीयते
आताडनंकराभ्यां च क्रोशनंकेशलुञ्चनम् । अशास्त्रवर्तनंभूयो लुब्धात्कृत्वाप्रतिग्रहम्
ब्राह्मणः स च वै याति नरकानेकविंशतिम् । अकालमेघस्तनिते वर्षर्तौ पांसुवर्षणे
महावालध्वनौ रात्रावनध्यायाःप्रकीर्तिताः । उल्कापातेच भूकम्पे दिग्दाहेमध्यरात्रिषु
सन्ध्ययोर्वृषलोपान्ते राज्यहारे च सूतके । दशाष्टकासु भूतायां श्राद्धाहेप्रतिपद्यपि
पूर्णिमायां तथाष्टम्यां विड्वरेराष्ट्रविप्लवे । उपाकर्मणि चोत्सर्गेकल्पादिषु युगादिषु
आरण्यकमधीत्यापि बाणसाम्नोरपिध्वनौ । अनध्यायेषुचैतेषु चाधीयीतनचैक्वचित्
भूताष्टम्योःपञ्चदश्योर्ब्रह्मचारी सदा भवेत् । अनायुष्यकरं चेह परदारोपसर्पणम् ॥
तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यं वैरिणां चोपसेवनम् ॥ ८६ ॥

पूर्वर्द्धिभिःपरित्यक्तमात्मानंनावमानयेत् । सदोद्यमवतां यस्माच्छ्रियोविद्यानदुर्लभाः
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते ॥ ८८ ॥

वाचोवेगंमनोवेगं जिह्वावेगं च वर्जयेत् । गुह्यजान्यपि लोमानि तत्स्पर्शादशुचिर्भवेत्
पादधौतोदकंमूत्रमुच्छिष्टान्युदकानिच । निष्ठीवनंचश्लेष्माणंगृहाद्दूरं विनिःक्षिपेत्
अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात् ।
अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्वजन्म स्मरेद् द्विजः ॥ ९१ ॥

वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देत दद्यात्तेषांस्वमासनम् । विनम्रकन्धरो भूयादनुयायात्ततश्च तान्

श्रुतिभूदेवदेवानां नृपसाधुतपस्विनाम् । पतिव्रतानांनारीणां निन्दांकुर्यान्नकर्हिचित्
उद्धृत्य पञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये । श्रद्धया पात्रमासाद्य यत्किञ्चिद्दीयतेवसु
देशेकाले च विधिनातदानन्त्यायकल्पते । भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्रसुखितोऽन्नदः
तोयदातासुरूपः स्यात्पुष्टश्चान्नप्रदोभवेत् । प्रदीपदोनिर्मलाक्षोगोदाताऽर्यमलोकभाक्

स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याच्च सुप्रजः ।

वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् ॥ ९७ ॥

हयप्रदो दिव्यदेहो लक्ष्मीवान्वृषभप्रदः । सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च
श्रद्धयाप्रतिगृह्णातिश्रद्धयायःप्रयच्छति । स्वर्गिणौतावुभौस्यातांपततोऽश्रद्धयात्वधः
अनृतेन क्षरेद्यज्ञस्तपो विस्मयतः क्षरेत् । क्षरेत्कीर्तिर्विना दानमायुर्विप्रापमानतः ॥

गन्धं पुष्पं कुशागावः शाकं मांसं पयो दधि ।

मणिमत्स्यगृहंधान्यं ग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ १०१ ॥

मधूदकं फलं मूलमेधांस्यभयदक्षिणा । अभ्युद्यतानि ग्राह्याणि त्वेतान्यपि निकृष्टतः
दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः । भोज्यान्नाः शूद्रवर्गेऽमी तथात्मविनिवेदकः

इत्थमाचारधर्मोऽयं धर्मारण्यनिवासिनाम् ।

श्रुतिस्मृत्युक्तधर्मोऽयं युधिष्ठिर! निवेदितः ॥ १०४ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्येसदाचारलक्षणवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः

### धर्माचारवर्णनम्

व्यास उवाच

सम्प्राप्य धर्मवाप्यांश्चयःकुर्यात्पितृतर्पणम् । तृप्तिंप्रयान्तिपितरो यावदिन्द्राश्चतुर्दश
पितरश्चात्रपूज्याश्चस्वर्गतायेचपूर्वजाः । पिण्डांश्चनिर्वपेत्तेषांप्राप्येमांमुक्तिदायिकाम्
त्रेतायां पञ्चदिवसैर्द्वापरे त्रिदिनेन तु । एकचित्तेन यो विप्राः पिण्डंदद्यात्कलौ युगे

लोलुपा मानवा लोके सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ।
परदाररता लोकाः स्त्रियोऽतिचपलाः पुनः ॥ ४ ॥

परद्रोहरताः सर्वे नरनारीनपुंसकाः । परनिन्दापरा नित्यं परच्छिद्रोपदर्शकाः ॥ ५
परोद्वेगकरा नूनं कलहा मित्रभेदिनः । सर्वे ते शुद्धतां यान्ति काजेशाः स्वयमब्रुवन्
एतदुक्तं महाभाग धर्मारण्यस्य वर्णनम् । फलं चैवात्र सर्वं हि यदुक्तं शूलपाणिना ॥
वाङ्मनःकायशुद्धाश्च परदारपराङ्मुखाः । अद्रोहाश्च समाःक्रुद्धा मातापितृपरायणाः
अलौल्यालोभरहिता दानधर्मपरायणाः । आस्तिकाश्चैवधर्मज्ञाः स्वामिभक्तिरताश्चये

पतिव्रता तु या नारी पतिशुश्रूषणे रता ।
अहिंसका आतिथेयाः स्वधर्मनिरताः सदा ॥ १० ॥

शौनक उवाच

शृणु सूत! महाभाग सर्वधर्मविदाम्वर । गृहस्थानां सदाचारः श्रुतश्च त्वन्मुखान्मया
एकं मनेप्सितं मेऽद्य तत्कथयस्व सूतज !। पतिव्रतानां सर्वासां लक्षणं कीदृशं वद

सूत उवाच

पतिव्रतागृहेयस्यसफलंतस्यजीवनम् । यस्याङ्गच्छाययातुल्यायत्कथापुण्यकारिणी

पतिव्रतास्त्वरुन्धत्या सावित्र्याऽप्यनसूयया ।
शाण्डिल्या चैव सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ १४ ॥

मेनयाचसुनीत्याचलज्ञया स्वाहयासमाः । पतिव्रतानां धर्माहिमुनिनाच प्रकीर्तिताः
भुङ्क्तेभुक्तेस्वामिनिच तिष्ठति त्वनुतिष्ठति । चिनिद्रितेयानिद्रातिप्रथमंपरिबुध्यति
अनलङ्कृतमात्मानं देशान्तेभर्तरि स्थिते । कार्यार्थं प्रोषिते कापि सर्वमण्डनवर्जिता
भर्तुर्नाम न गृह्णाति ह्यायुषोऽस्य हि वृद्धये । पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन॥
आक्रुष्टापि च नाक्रोशेत्ताडितापिप्रसीदति । इदंकुरुकृतं स्वामिन्मन्यतामितिवक्तिच

आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ।
किमर्थं व्याहृता नाथ ! स प्रसादो विधीयताम् ॥ २० ॥

न चिरं तिष्ठति द्वारि न द्वारमुपसेवते । अदातव्यं स्वयंकिञ्चित्कर्हिचिन्न ददात्यपि
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् । नियमोदकबर्हींषि पत्रपुष्पाक्षतादिकम् ॥
प्रतीक्षमाणा च वरं यथाकालोचितंहि यत् । तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत्
सेवते भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् । दूरतो वर्जयेदेषा समाजोत्सवदर्शनम् ॥
न गच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु । सुखसुप्तं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥

अन्तरायेऽपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ।
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ २६ ॥
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नात्वा न शुध्यति ।
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ २७ ॥

हरिद्रां कुङ्कुमंचैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम्
केशसंस्कारकं चैव करकर्णादिभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ॥
भर्तृविद्वेषिणींनारींनैषासंभाषतेक्वचित् । नैकाकिनीक्वचिद्भूयान्ननग्नास्नातिचक्वचित्
नोलूखले न मुशले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि । न यन्त्रके न देहल्यांसतीचोपविशेत्क्वचित्
विना व्यवायसमयात्प्रागल्भ्यं न क्वचिच्चरेत् । यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती सदा
इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः । इयमेव च पूजा च भर्तुर्वाक्यं न लङ्घयेत् ॥
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा । सुस्थिरंदुःस्थिरंवापिपतिमेकंनलङ्घयेत्

सर्पिर्लवणहिंग्वादिक्षयेऽपि च पतिव्रता । पतिं नास्तीतिन ब्रूयादायसीषुन भोजयेत्
तीर्थस्नानार्थिनीचैवपतिपादोदकं पिबेत् । शङ्करादपिवाविष्णोःपतिरेवाधिकःस्त्रियः
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् । आयुष्यं हरतेभर्तुर्मृता निरयमृच्छति
उक्ताप्रत्युत्तरं दद्यान्नारी या क्रोधतत्परा । सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥
स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमः समुदाहृतः । अभ्यर्च्य चरणौ भर्तुर्भोक्तव्यंकृतनिश्चया
उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु । तत्र पारुष्यवाक्यानि ब्रूयान्नैव कदाचन ॥
गुरूणां सन्निधौ वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वाहयेत् ॥ ४१ ॥
या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः । उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥
ताडिता ताडयेच्चेत्तंसाव्याघ्रीवृषदंशिका । कटाक्षयतियाऽन्यंवैकेकराक्षीतुसाभवेत्
या भर्तारंपरित्यज्यमिष्टमश्नातिकेवलम् । ग्रामेसा सूकरीभूयाद्वल्गुलीवाथविड्भुजा
हुन्त्वंकृत्याप्रियं ब्रूते मूका सा जायते खलु । या सपत्नीसदेर्ष्येत दुर्भगासापुनःपुनः
दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ॥ ४५ ॥
काणा च विमुखावापि कुरूपापिचजायते । बाह्यादायांतमालोक्यत्वरिताचजलासनैः
ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पादसंवाहनादिभिः ॥ ४६ ॥
तथैव चारुवचनैः स्वेदसन्नोदनैः परैः । या प्रियं प्रीणयेत्प्रीतात्रिलोकीप्रीणितातया
मितं ददाति हि पिता मितं भ्रातामितं सुतः ॥ ४७ ॥
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् । भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानिच
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ४८ ॥
जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताऽप्यशुचिः सदा ॥४९ ॥
अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्योविधवास्यादमङ्गला । विधवादर्शनात्सिद्धिःक्वापिजातुनजायते
विहाय मातरं चैकां सर्वामङ्गलवर्जिताः । तदाशिषमपिप्राज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम्
कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः । भर्तुःसहचरीभूयाज्जीवतोऽजीवतोपिवा
अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

व्यालग्राही यथाव्यालं बलादुद्धरतेबिलात् । एवमुत्क्रम्यदूतेभ्यःपतिस्वर्गंव्रजेत्सती
यमदूताः पलायन्ते तमालोक्य पतिव्रताम् । तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥
कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः ।
यावत्स्वलोमसंख्याऽस्तितावत्कोट्ययुतानि च ॥ ५६ ॥
भर्त्रास्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणापतिव्रता । धन्यासाजननीलोकेधन्योऽसौजनकःपुनः
धन्यः स च पतिःश्रीमान्येषांगेहेपतिव्रता । पितृवंश्यामातृवंश्याःपतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ५८ ॥
शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् । पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रचदुःखिताः
पतिव्रतायाश्चरणो यत्रयत्रस्पृशेद्भुवम् । सातीर्थभूमिर्मान्येतिनात्रभारोऽस्तिपावनः
बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शं कुरुतेभानुमानपि । सोमो गन्धर्वदवापिस्वपावित्र्यायनान्यथा
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
गायत्र्यघविनाशो नो पातिव्रत्येन साऽद्यनुत् ॥ ६२ ॥
गृहेगृहे न किंनार्य्योरूपलावण्यगर्विताः । परंविश्वेश्वरभक्त्यैवलभ्यतेस्त्रीपतिव्रता
भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्यामूलंसुखस्यच । भार्या धर्मफलायैव भार्यासन्तानवृद्धये
परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् । देवपित्रतिथीनांचतृप्तिःस्याद्भार्ययागृहे
गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता ॥ ६५ ॥
यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् । तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत् ॥
पर्यङ्कशायिनी नारीविधवापातयेत्पतिम् । तस्माद्भूशयनंकार्य्यंपतिसौख्यसमीहया
नैवाङ्गोद्वर्त्तनं कार्य्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ।
गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्य्यस्तया क्वचित् ॥ ६८ ॥
तर्प्पणं प्रत्यहं कार्य्यंभर्तुःकुशतिलोदकैः । तत्पितुस्तत्पितुश्चापिनामगोत्रादिपूर्वकम्
विष्णोःसम्पूजनंकार्यंपतिबुद्ध्यानचान्यथा । पतिमेवसदाध्यायेद्विष्णुरूपधरंहरिम्
यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत्पत्युः समीहितम् । तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया
वैशाखे कार्त्तिकेमासे विशेषनियमांश्चरेत् । स्नानं दानं तीर्थयात्रां पुराणश्रवणंमुहुः

वैशाखे जलकुम्भाश्च कार्त्तिके घृतदीपिकाः ।
माघे धान्यतिलोत्सर्गः स्वर्गलोके विशिष्यते ॥ ७३ ॥
प्रपाकार्या च वैशाखे देवेदेया गलन्तिका । उशीरं व्यजनंछत्रंसूक्ष्मवासांसिचन्दनम्
सकर्पूरञ्चताम्बूलं पुष्पदानं तथैव च । जलपात्राण्यनेकानि तथा पुष्पगृहाणि च
पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानि च ।
देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ७६ ॥
ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः । वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिम्बीं च वर्जयेत्
कार्त्तिकेवर्ज्जयेत्तैलं कांस्यं चापिविवर्जयेत् । कार्त्तिकेमौननियमेचारुघण्टाप्रदापयेत्
पत्रभोजी कांस्यपात्रं घृतपूर्णं प्रयच्छति ।
भूमिशय्याव्रते देया शय्या श्लक्ष्णा सतूलिका ॥ ७९ ॥
फलत्यागे फलं देयं रसत्यागे च तद्रसः । धान्यत्यागेचतद्धान्यमथवाशालयःस्मृताः
धेनुं दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्कारां सकाञ्चनाम् ॥ ८० ॥
एकतःसर्वदानानि दीपदानं तथैकतः । कार्त्तिके दीपदानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम्
इत्यादिविधवानां च नियमाः सम्प्रकीर्तिताः ।
तेषां फलमिदं राजन्नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ८२ ॥
धर्मवापीं समासाद्य दानंदद्याद्विचक्षणः । कोटिधा वर्द्धतेनित्यं ब्रह्मणो वचनं यथा
तिलधेनुं च योदद्याद्धर्मेश्वरपुरः स्थितः । तिलसङ्ख्यानिवर्षाणिस्वर्गलोकेमहीयते
धर्मक्षेत्रे तु सम्प्राप्य श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः ।
तस्य सम्वत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥
येचान्ये पूर्वजाः स्वर्गेयेचान्येनरकौकसः । येचतिर्यक्त्वमापन्नायेचभूतादिसंस्थिताः
तान्सर्वान्धर्मकूपे वै श्राद्धंकुर्याद्यथाविधि । अत्र प्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि
तेन ते तृप्तिमायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८७ ॥
येषां तु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौपतति पुत्रक !। तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषांतृप्तिः प्रजायते
या वै यवानां कणिकाः पतन्ति धरणीतले । ताभिराप्यायनंतेषांये तुदेवत्वमागताः

उद्धृतेष्वथपिण्डेषु यवान्नकणिका भुवि । ताभिराप्यायनंतेषां येचपातालमागताः
ये वा वर्णाश्रमाचार क्रियालोपा ह्यसंस्कृताः ।
विपन्नास्तेभवन्त्यत्र सम्मार्जनजलाशिनः ॥ ६१ ॥
भुक्त्वा वाऽऽचमनं यच्च जलं पततिभूतले । ब्राह्मणानां तथैवान्यैतेनतृप्तिप्रयान्ति वै
एवं यो यजमानश्च यश्चतेषां द्विजन्मनाम् । कश्चिज्जलान्नविक्षेपःशुचिरस्पृष्ट एव च
ये चान्ये नरके जातास्तत्र योन्यन्तरं गताः ।
प्रयान्त्याप्यायनं वत्स ! सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ ६४ ॥
अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैः श्राद्धं यत्क्रियतेनरैः । तृप्यन्तितेनचाण्डालपुल्कसादिषुयोनिषु
एवमाप्यायिता वत्स! तेन चानेकबान्धवाः । श्राद्धंकर्तुमशक्तिश्चेच्छाकैरपिहिजायते
तस्माच्छ्राद्धं नरोभक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।
कुरुते कुर्वतः श्राद्धं कुलं कश्चिन्न सीदति ॥ ६७ ॥
पापं यदिकृतं सर्वं पापश्चवर्द्धते ध्रुवम् । कुर्वाणोनरकेघोरे पच्यते नात्र संशयः ॥
यथापुण्यं तथा पापं कृतं कर्म शुभाशुभम् । तत्सर्वं वर्द्धतेनूनं धर्मारण्ये नृपोत्तम !॥
कामिकं कामदं देवं योगिनांमुक्तिदायकम् । सिद्धानांसिद्धिदंप्रोक्तंधर्मारण्यंतुसर्वदा
इतिश्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यक्षेत्रमाहात्म्ये धर्माचारवर्णनंनाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

# अष्टमोऽध्यायः

## शिवस्कन्दसम्वादेविष्णुसमागमवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

धर्मारण्यकथां पुण्यां श्रुत्वातृप्तिर्न मे विभो !। यदायदा कथयसि तदाप्रोत्सहतेमनः
अतः परं किमभवत्परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

व्यास उवाच

शृणु पार्थ! महापुण्यां कथां स्कन्दपुराणजाम् ।
स्थाणुनोक्तां च स्कन्दाय धर्मारण्योद्भवां शुभाम् ॥ २ ॥
सर्वतीर्थस्यफलदां सर्वोपद्रवनाशिनीम् । कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ३ ॥
कपालखट्वाङ्गकरं नागयज्ञोपवीतिनम् । गणैःपरिवृतं तत्रसुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥
नानारूपगुणैर्गीतं नारदप्रमुखैर्युतम् । गन्धर्वैश्चाऽप्सरोभिश्च सेवितं तमुमापतिम्
तत्रस्थं च महादेवं प्रणिपत्याऽब्रवीत्सुतः ॥ ५ ॥

स्कन्द उवाच

स्वामिन्निन्द्रादयोदेवा ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः । तव द्वारेसमायातास्त्वद्दर्शनकलालसाः
किमाज्ञापयसे देव! करवाणि तवाग्रतः ॥ ६ ॥

व्यास उवाच

स्कन्दस्य वचनं श्रुत्वा आसनादुत्थितो हरः । वृषभंनसमारूढोगन्तुकामोऽभवत्तदा
गन्तुकामं शिवं दृष्ट्वा स्कन्दो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ७ ॥

स्कन्द उवाच

किं कार्यं देव! देवानां यत्त्वमाहूयसे त्वरम् ।
वृषं त्यक्त्वा कृपासिन्धो! कृपाऽस्ति यदि मे वद ॥ ८ ॥

देवदानवयुद्धं वा किं कार्यं वा महत्तरम् ॥ १० ॥

शिव उवाच

श्रृणुष्वैकाग्रमनसा येनाहं व्यग्रचेतसः । अस्तिस्थानं महापुण्यं धर्म्मारण्यंचभूतले

तत्रापि गन्तुकामोऽहं देवै:सह षडानन ! ॥ १२ ॥

स्कन्द उवाच

तत्रगत्वामहादेव किं करिष्यसिसाम्प्रतम् । तन्मेब्रूहि जगन्नाथ कृत्यंसर्वमशेषतः ॥

शिव उवाच

श्रूयतां वचनंपुत्र ! मनसोल्हादकारणम् । आदितःसर्ववृत्तानांसृष्टिस्थितिकरंमहत्

परन्तु प्रलये जाते सर्वतस्तमसा वृतम् । आसीदेकं तदा ब्रह्मनिर्गुणं बीजमव्ययम्

निर्मितं वै गुणैरादौ महद्द्रव्यं प्रचक्ष्यते ॥ १६ ॥

महाकल्पे च सम्प्राप्ते चराचरे क्षयं गते । जलरूपी जगन्नाथो रममाणस्तुलीलया

चिरकाले गतेसोऽपिपृथिव्यादिसुतत्त्वकैः । वृक्षमुत्पादयामासायुतशाखामनोरमम्

फलैर्विशालैराकीर्णं स्कन्धकाण्डादिशोभितम् ।

फलौघाढ्यो जटायुक्तो न्यग्रोधो विटपो महान् ॥ १९ ॥

बालभावं ततः कृत्वा वासुदेवो जनार्द्दनः । शेतेऽसौ वटपत्रेषुविश्वं निर्मातुमुत्सुकः

सनाभिकमले विष्णोर्जातोब्रह्माहि लोककृत् । सर्वंजलमयं पश्यन्नानाकारमरूपकम्

तं दृष्ट्वा सहसोद्वेगाद्ब्रह्मा लोकपितामहः । इदमाहतदापुत्र किं करोमीतिनिश्चितम्

खेजजान ततो वाणी दैवात्सा चाशरीरिणी । तपस्तप विधे धातर्यथा मेदर्शनंभवेत्

तच्छ्रुत्वा वचनं तत्रब्रह्मा लोकपितामहः । प्रातप्यत तपो घोरं परमं दुष्करं महत्

प्रहसन्स तदा बालरूपेण कमलापतिः । उवाच मधुरां वाचं कृपालुर्बाललीलया ॥

श्रीविष्णुरुवाच

पुत्र! त्वं विधिना चाद्य कुरु ब्रह्माण्डगोलके । पातालं भूतलंचैव सिन्धुसागरकाननम्

वृक्षाश्च गिरयो येचैद्विपदाः पशवस्तथा । पक्षिणश्चैवगन्धर्वाःसिद्धायक्षाश्चराक्षसाः

श्वापदाद्याश्च ये जीवाश्चतुराशीतियोनयः ।

उद्भिज्जाः स्वेदजाश्चैव जरायुजास्तथाण्डजाः ॥ २८ ॥
एकविंशतिलक्षाणि एकैकस्य च योनयः । कुरुत्वंसकलं चाशु इत्युक्त्वान्तरधीयत
ब्रह्मणा निर्मितं सर्वं ब्रह्माण्डं च यथोदितम् ॥ २९ ॥
यस्मिन्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः । स्थाणुः सुरगुरुर्भानुः प्रचेताः परमेष्ठिनः
यथा दक्षो दक्षपुत्रास्तथा सप्तर्षयश्च ये । ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥
पुरुषश्चाप्रमेयश्च एवं वंश्यर्षयो विदुः । विश्वेदेवास्तथादित्या वसवश्चाश्विनावपि
यक्षाः पिशाचाः साध्याश्च पितरो गुह्यकास्तथा ।
ततः प्रसूता विद्वांसो ह्यष्टौ ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३३ ॥
राजर्षयश्च बहवः सर्वे समुदिता गुणैः । द्यौरापःपृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥
सम्वत्सरार्तवोमासाःपक्षाहोरात्रयःक्रमात् । कलाकाष्ठामुहूर्तादिनिमेषादिलवास्तथा
ग्रहचक्रं सनक्षत्रं युगा मन्वन्तरादयः । यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम्
यदिदं दृश्यते चक्रं किञ्चित्स्थावरजङ्गमम् । पुनः संक्षिप्यते पुत्र जगत्प्राप्ते युगक्षये
यथर्तावृतुलिङ्गानि नामरूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा वत्सयुगादिकम् ॥ ३८ ॥

शिव उवाच

अतःपरंप्रवक्ष्यामि कथा पौराणिकींशुभाम् । ब्रह्मणश्चनथा पुत्रवंशस्यैवानुकीर्तनम्
ब्रह्मणोमानसाः पुत्रा विदिताःषण्महर्षयः । मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपाच्चरमाः प्रजाः । प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश
अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ।
क्रोधा प्रोवा वसिष्ठा च विनता कपिला तथा ॥ ४२ ॥
कण्डूश्चैवसुनेत्रा चकश्यपाय ददौतदा । अदित्यांद्वादशादित्याः सञ्जाताहिशुभाननाः
सूर्याद्वै धर्मराड् यज्ञे तेनेदं निर्मितं पुरा । धर्मेण निर्मितं दृष्ट्वा धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥
धर्मारण्यमिति प्रोक्तं यन्मया स्कन्द! पुण्यदम् ॥ ४४ ॥

स्कन्द उवाच

धर्मारण्यस्य चाख्यानं परमं पावनं तथा। श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कथयस्व महेश्वर!

ईश्वर उवाच

इन्द्राद्याः सकलादेवा अन्वयुर्ब्रह्मणा सह। अहं वै तत्र यास्यामि क्षेत्रं पापनिषूदनम्

स्कन्द उवाच

अहमप्यागमिष्यामि तं द्रष्टुं शशिशेखर !॥ ४७ ॥

सूत उवाच

ततः स्कन्दस्तथा रुद्रः सूर्यश्चैवानिलोऽनलः।

सिद्धाश्चैव सगन्धर्वास्तथैवाप्सरसः शुभाः ॥ ४८ ॥

पिशाचागुह्यकाःसर्वइन्द्रोवरुणएव च। नागाःसर्वाःसमाजग्मुः शुक्रोवाचस्पतिस्तथा

ग्रहाःसर्वे सनक्षत्रा वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः। अन्तरिक्षचराः सर्वे ये चान्ये नगवासिनः

ब्रह्मादयःसुराःसर्वेवैकुण्ठंपरयामुदा। मन्त्रणार्थंतदाब्रह्मा(राजन्) विष्णवेऽमिततेजसे

गत्वा तस्मिंश्च वैकुण्ठे ब्रह्मा लोकपितामहः।

ध्यात्वा मुहूर्तमाचाष्ट विष्णुं प्रति सुहर्षितः ॥ ५२ ॥

ब्रह्मोवाच

कृष्णकृष्ण! महाबाहोकृपालो! परमेश्वर !॥ स्रष्टा त्वं चैव हर्ता त्वं त्वमेवजगतः पिता

नमस्ते विष्णवे सौम्य नमस्ते गरुडध्वज। नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते ब्रह्मरूपिणे

नमस्ते मत्स्यरूपाय विश्वरूपाय वै नमः। नमस्ते दैत्यनाशाय भक्तानामभयाय च॥

कंसघ्नायनमस्तेऽस्तु बलदैत्यजितेनमः। ब्रह्मणैवं स्तुतश्चासीत्प्रत्यक्षोऽसौजनार्दनः

पीताम्बरो घनश्यामो नागारिकृतवाहनः। चतुर्भुजो महातेजाः शङ्खचक्रगदाधरः॥

स्तूयमानःसुरैः सर्वैःसदेवोऽमितविक्रमः। विद्याधरैस्तथा नागैःस्तूयमानश्च सर्वशः

उत्तस्थौ स तदा देवो भास्करामितदीप्तिमान्।

कोटिरत्नप्रभाभास्वन्मुकुटादिविभूषितः ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे

पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये विष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

# नवमोऽध्यायः

## गोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनम्

व्यास उवाच

श्रूयतां राजशार्दूल! पुण्यमाख्यानमुत्तमम् । स्तूयमानो जगन्नाथ इदं वचनमब्रवीत्

विष्णुरुवाच

किमर्थमागताःसर्वेब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः । पृथिव्यांकुशलं कच्चित्कुतो वोभयमागतम्
ततः प्रोवाच वै हृष्टो ब्रह्मातं केशवं वचः । नभयं विद्यतेऽस्माकं त्रैलोक्येसचराचरे
एकविज्ञापनार्थाय आगतोऽहं तवान्तिके । तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तदेतच्छृणु मे वचः
परं तु पूर्वं धर्मेण स्थापितं तीर्थमुत्तमम् । तद्द्रष्टुकामोऽहं देव!त्वत्प्रसादाज्जनार्दन

तत्र त्वं देवदेवेश! गमने कुरु मानसम् ।
यथा सत्तीर्थतां याति धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ६ ॥

विष्णुरुवाच

साधुसाधु महाभाग! त्वच्यतांतत्रमाचिरम् । ममापिचित्तंतत्रैवतद्दर्शनेऽस्तिलालसम्

व्यास उवाच

तार्क्ष्यमारुह्यगोविन्दस्तत्रागाच्छीघ्रमेवहि । ततोधर्मेणतेदेवाःसेन्द्राःसर्षिगणास्तथा
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या दृष्टा दूरान्मुमोद च । धर्मराजोपि तान्दृष्ट्वा देवान्विष्णुपुरोगमान्
आगतः स्वाश्रमात्तत्र पूजां प्रगृह्य तत्पुरः । आसनादुत्थितः शीघ्रं सपर्यार्घं प्रगृह्य च

एकैकस्य चकाराथ पूजां चैव पृथक्पृथक् ॥ १० ॥

चकार पूजां विधिवत्तेषां तत्रार्कनन्दनः । आसनेषूपवेश्याथ पूजां कृत्वा गरीयसीम्

यम उवाच

तीर्थरूपमिदं क्षेत्रं प्रसादाद्देवकीसुत !। त्वत्तोषविधिना चाद्य कृपया च शिवस्य च
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलंतपः । अद्यमेसफलंस्थानं काजेशानां समागमात्

व्यास उवाच

एवंस्तुतस्तदा विष्णुःप्रोवाचमधुरंवचः । तुष्टोऽस्मिधर्मराजेन्द्र अहंस्तोत्रेणतेविभो
किञ्चित्प्रार्थय मत्तोऽहं करोमि तव वाञ्छितम् ।
यत्तेऽस्त्यभीप्सितं तुभ्यं तद्ददामि न संशयः ॥ १५ ॥

यम उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश वाञ्छितंकुरुषे यदि । धर्मारण्ये महापुण्ये ऋषीणामाश्रमान्कुरु
वसन्ति वाडवा यत्र यजन्ति चैवयाज्ञिकाः । वेदनिर्घोषसंयुक्तं भाति तत्तीर्थमुत्तमम्
अब्राह्मणमिदंतीर्थं पीडयिष्यन्तिजन्तवः । तस्मात्त्वंवाडवाञ्छौरेसमानयऋषीन्बहून्
धर्मारण्यं यथा भाति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १८ ॥

ततोविष्णुः सहस्राक्षःसहस्रशीर्षःसहस्रपात् । सहस्रशस्तदा रूपंकृतवान्धर्मवत्सलः
यस्मिन्स्थाने च ये विप्राः सदाचाराः शुभव्रताः ॥ १९ ॥

अशेषधर्मकुशलाः सर्वशास्त्रविशारदाः । तपोज्ञाने महाख्याता ब्रह्मयज्ञपरायणाः ॥
स्थापिता ऋषयः सर्वे सहस्राण्यष्टादशैव तु ॥ २० ॥

नानादेशात्समानीय स्थापितास्तत्र तैः सुरैः ।
आश्रमांश्च बहून्स्तत्र काजेशैरपि निर्मितान् ॥ २१ ॥

धर्मोपदेशात्कृष्णेन ब्रह्मणाचशिवेनच । स्वेस्वेस्थानेयथायोग्ये स्थापयामासकेशवः

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन्वंशेसमुत्पन्ना ब्राह्मणावेदपारगाः । स्थापिताःसपरीवाराः पुत्रपौत्रसमावृताः
शिष्यैश्च बहुभिर्युक्ताअग्निहोत्रपरायणाः । तेषां स्थानानि नामानि यथावद्वद्स्वमे

व्यास उवाच

श्रूयतां नृपशार्दूल ! धर्म्मारण्यनिवासिनाम् ।
महात्मनां ब्राह्मणानामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् । तेषांवैपुत्रपौत्राणां नामानिवचदाम्यहम्
चतुर्विंशतिगोत्राणि द्विजानां पाण्डवर्षभ !।
तेषां शाखाः प्रशाखाश्च पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ २६ ॥

जज्ञिरे बहवः पुत्राः शतशोऽथसहस्रशः । चतुर्विंशतिमुख्यानां नामानि प्रवदामि ते

द्विजानामृषयः प्रोक्ताः प्रवराणि तथा शृणु ॥ २७ ॥

भारद्वाजस्तथा वत्सःकौशिकः कुश एव च ।

शाण्डिल्यः काश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ २८ ॥

जातूकर्ण्यस्तथा वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ।

आत्रेयो भाण्डिलश्चैव लौकिकाश्च इतः परम् ॥ २६ ॥

कृष्णायनोपमन्युश्च गार्ग्यमुद्गलमौषकाः । पुण्यासनःपराशरः कौण्डिन्यश्च ततःपरम्
तथागाङ्गासनश्चैव प्रवराणि चतुर्विंशतिः । जामदग्न्यस्य गोत्रस्य प्रवराःपञ्च एवहि
भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः । पञ्चैते प्रवरा राजन्विख्याता लोकविश्रुताः
एवं गोत्रसमुत्पन्ना वाडवा वेदपारगाः । द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानाक्रतुक्रियापराः ॥
गुणेनसहिता आसन् षट्कर्मनिरताश्च ये । एवंविधा महाभागा नानादेशभवाद्विजाः
भामेषसं तृतीयं च प्रवराः पञ्चएव हि । भार्गवच्यवनाप्नुवानौर्वजामदग्न्य संयुताः

आत्रेयोऽर्चनानसश्च श्यावास्येति तृतीयकः ॥ ३५ ॥

अस्मिन्गोत्रे भवा विप्रा दुष्टाः कुटिलागामिनः ।

धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३६ ॥

दानभोगरताःसर्वे श्रौतस्मार्तेषुसंमताः । माण्डव्यगोत्रे विज्ञेयाः प्रवरैःपञ्चभिर्युताः

भार्गवश्च्यावनोऽत्रिश्चाप्नुवानौर्वस्तथैव च ।

अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३८ ॥

रोगिणो लोभिनोदुष्टायजने याजने रताः । ब्रह्मक्रियापराः सर्वे माण्डव्याःकुरुसत्तम
गार्ग्यस्य गोत्रेयेजातास्तेषांतु प्रवरास्त्रयः । अङ्गिराश्चाम्बरीषश्चयौवनाश्वस्तृतीयकः

अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्नाः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ।

शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्द्धनाश्च कुचैलिनः ॥ ४१ ॥

सङ्गवात्सल्ययुक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः । वत्सगोत्रे द्विजा भूप! प्रवराःपञ्चएवहि
भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्चजमदग्निकः । एभिस्तुपञ्चविख्याताद्विजाःब्रह्मस्वरूपिणः

शान्ता दान्ताःसुशीलाश्च धर्मपुत्रैःसुसंयुताः । वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाःसर्वकर्मसु
सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः । दानधर्मरताः सर्वे अन्नदा जलदा द्विजाः
दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः । काश्यपा ब्राह्मणा राजन्प्रवरत्रयसंयुताः ॥
काश्यपश्चापवत्सारो नैध्रुवश्च तृतीयकः । वेदज्ञा गौरवर्णाश्च नैष्ठिका यज्ञकारकाः ॥
प्रियवासा महादक्षा गुरुभक्तिरताः सदा । प्रतिष्ठामानवन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥

यजन्ते च महायज्ञान्काश्यपेया द्विजातयः ।
धारीणसगोत्रजाश्च प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ४६ ॥

अगस्तिदर्विश्वेताश्चदध्यवाहनसंज्ञकाः । अस्मिन्गोत्रे च येजाता धर्मकर्मसमाश्रिताः
कर्मक्रूराश्च ते सर्वे तथैवोदरिणस्तु ते । लम्बकर्णा महादंष्ट्राद्विजा धनपरायणाः ॥
क्रोधिनो द्वेषिणश्चैव सर्वसत्त्वभयङ्कराः । लौगाक्षसोद्भवा ये वैवाडवाः सत्यसंश्रिताः
प्रवराश्च त्रयस्तेषां तत्त्वज्ञानस्वरूकाः । कश्यपश्चैव वत्सश्च वसिष्ठश्च तृतीयकः ॥

सदाचारास्तु विख्याता वैष्णवा बहुवृत्तयः ।
रोमभिर्बहुभिर्व्याप्ताः कृष्णवर्णास्तु वाडवाः ॥ ५४ ॥
शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च स्वदारनिरताः सदा ।
कुशिकसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५५ ॥

विश्वामित्रो देवरात औदलश्च त्रयश्च ये । अस्मिन्गोत्रे तुयेजाता दुर्बलादीनमानसाः
असत्यभाषिणो विप्राः सुरूपानृपसत्तमाः । सर्व्वविद्याकुशलिनोब्राह्मणाब्रह्मसत्तमाः
उपमन्युसगोत्रेयाः प्रवरत्रयसंयुताः । वसिष्ठश्च भरद्वाजस्त्विद्रप्रमद एव वा ॥ ५८ ॥
अस्मिन्गोत्रेतुयेविप्राःक्रूराःकुटिलगामिनः । दूषणाद्वेषिणस्तुच्छाः सर्वसंग्रहतत्पराः
कलहोत्पादने दक्षा धनिनो मानिनस्तथा । सर्वदैव प्रदुष्टाश्च दुष्टसंगरतास्तथा ॥
रोगिणो दुर्बलाश्चैव वृत्त्युपकल्पवर्जिताः । वात्स्यगोत्रेभवाविप्राःप्रवरैःपञ्चभिर्युताः
भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः । अस्मिन्गोत्रेभवाविप्राः स्थूलाश्चबहुवुद्धयः
सर्वकर्मरताश्चैव सर्वधर्मेषु निश्चलाः । वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥ ६३
सदाचाराः सुरूपाश्च बुद्धितोदीर्घदर्शिनः । वात्स्यायनसगोत्रेयाः प्रवरैःपञ्चभिर्युताः

भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः । पूर्वोक्ताः प्रवराश्चास्य कथितास्तवभारत
अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता पाकयज्ञरताः सदा । लोभिनःक्रोधिनश्चैवप्रजायन्ते बहुप्रजाः
स्नानदानादिनिरताः सर्वदाच जितेन्द्रियाः । वापीकूपतडागानां कर्तारश्च सहस्रशः

व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ६७ ॥

कौशिकवंशे ये जाताःप्रवरत्रयसंयुताः । विश्वामित्रोऽथमर्षश्च कौशिकश्चतृतीयकः
अस्मिन्गोत्रेच येजाताब्राह्मणाब्रह्मवेदिनः । शान्तादान्ताःसुशीलाश्चसर्वधर्मपरायणाः
अपुत्रिणस्तथारूक्षास्तेजोहीनाद्विजोत्तमाः । भारद्वाजसगोत्रेयाःप्रवरैःपञ्चभिर्युताः
आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तु सैन्यसः । गार्ग्यश्चैवेति विज्ञेयाःप्रवराःपञ्चएवच
अस्मिन्गोत्रे च ये जातावाडवाधनिनःशुभाः । वस्त्रालङ्करणोपेताद्विजभक्तिपरायणाः
ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वधर्मपरायणाः । काश्यपगोत्रे ये जाता प्रवरत्रयसंयुताः ॥७३
काश्यपश्चापवत्सारोरैभ्येतिविश्रुतास्त्रयः । अस्मिन्गोत्रेभवाविप्रारक्ताक्षाःक्रूरदृष्टयः
जिह्वालौल्यरताः सर्वे सर्वे ते पारमार्थिनः । निर्धना रोगिणश्चैतेतस्करानृतभाषिणः
शास्त्रार्थवेदिनः सर्वे वेदस्मृतिविवर्जिताः । शुनकेषु च येजाताविप्राध्यानपरायणाः
तपस्विनो योगिनश्च वेदवेदाङ्गपारगाः । साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः
ह्रस्वकाया भिन्नवर्णाबहुरामाद्विजोत्तमाः । दयालाःसरलाःशांताब्रह्मभोज्यपरायणाः
शौनकसेषु ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः । भार्गवशौनहोत्रेति गात्स्यप्रमद इति त्रयः
अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहानृप । महोत्कटा महाकायाःप्रलंबाश्चमदोद्धताः
क्लेशरूपाःकृष्णवर्णाःसर्वशास्त्रविशारदाः । बहुभुजोमानिनोदक्षारागद्वेषोपवर्जिताः
सुवस्त्रभूषारूपा वै ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । वसिष्ठगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥
वसिष्ठो भारद्वाजश्च इन्द्रप्रमद एव च । तस्मिन्गोत्रे भवा विप्रा वेदवेदांगपारगाः

याज्ञिका यज्ञशीलाश्च सुस्वराः सुखिनस्तथा ।

द्वेषिणो धनवन्तश्च पुत्रिणो गुणिनस्तथा ॥ ८४ ॥

विशालहृदया राजञ्शूराः शत्रुनिवर्हणाः । गौतमसगोत्रे ये जाताःप्रवराः पञ्च एवहि
कौत्सगार्ग्यप्रवाहाश्च असितोदेवलस्तथा । अस्मिन्गोत्रेचयेजाताविप्राःपरमपावनाः

परोपकारिणः सर्वेश्रुतिस्मृतिपरायणाः । बकासनाश्च कुटिलाश्छद्मवृत्तिपरास्तथा
नानाशास्त्रार्थनिपुणा नानाभरणभूषिताः । वृक्षादिकर्मकुशला दीर्घरोषाश्च रोगिणः ॥
आङ्गिरसगोत्रे ये जाताःप्रवरत्रयसंयुताः । आङ्गिरसोम्बरीषश्चयौवनाश्वस्तृतीयकः

अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यसम्भाषिणस्तथा ।

जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ ६० ॥

महाव्रताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः । निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः
दीर्घदर्शिमहातेजोमहामायाविमोहिताः । शाण्डिलसगोत्रे ये जाताःप्रवरत्रयसंयुताः

असितो देवलश्चैव शांडिलस्तु तृतीयकः ।

अस्मिन्गोत्रे महाभागाः कुब्जाश्च द्विजसत्तमाः ६३ ॥

नेत्ररोगी महादुष्टा महात्यागा अनायुषः । कलहोत्पादने दक्षाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥
मलिना मानिनश्चवज्योतिः शास्त्रविशारदाः । आत्रेयसगोत्रेयेजाताःपञ्चप्रवरसंयुताः
आत्रेयोऽर्चनानसश्यावाश्वोऽङ्गिरसोऽत्रिकः। अस्मिन्वंशेचयेजाताद्विजास्तेसूर्यवर्चसः
चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्येऽव्यवस्थिताः । सदाचारमहादक्षाःश्रुतिशास्त्रपरायणाः
याज्ञिकाश्च शुभाचाराःसत्यशौचपरायणाः । धर्मज्ञा दानशीलाश्चनिर्मलाश्चमहोत्सुकाः

तपः स्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपराय णाः ॥ ६६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथयस्व महाबाहो! धर्मारण्यकथामृतम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यतेपापाद्घोराद्ब्रह्मवधादपि

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथामेतां सुदुर्ल्लभाम् ॥ १०१ ॥

यक्षरक्षःपिशाचाद्या उद्वेजयन्ति वाडवान् ।

जृम्भको नाम यक्षोऽभूद् धर्म्मारण्यसमीपतः ॥ १०२ ॥

उद्वेजयति नित्यं स धर्मारण्यनिवासिनः ।

ततस्तैश्च द्विजाग्र्यैस्तु देवेभ्यो विनिवेदितम् ॥ १०३ ॥

यक्षरक्षादिनाचैव परिभूता वयं सुराः । त्यक्ष्यामोऽद्य वरं स्थानं तद्भयान्नात्रसंशयः

ततो देवैः सगन्धर्वैः स्थापितास्तत्र भूमिषु ।
सिद्धाश्च वरयोगिन्यः श्रीमातृप्रभृतयस्तथा ॥ १०५ ॥
रक्षणार्थं हि विप्राणां लोकानां हितकाम्यया ।
गोत्रान्प्रति तथैकैका स्थापिता योगिनी तदा ॥ १०६ ॥
यस्य गोत्रस्य या शक्ती रक्षणेपालने क्षमा । सा तस्य कुलदेवीतिसाक्षात्तत्रबभूवह
श्रीमातातारणीदेवीआशापूरीचगोत्रपा ।इच्छाऽऽर्तिनाशिनीचैवपिप्पलीविकरावशा
जगन्माता महामाता सिद्धा भट्टारिका तथा ।
कदम्बा विकरा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ १०९ ॥
मातङ्गी च महादेवी वाणी च मुकुटेश्वरी । भद्री चैव महाशक्तिः संहारीच महाबला
चामुण्डा च महादेवी इत्यैतागोत्रमातरः । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैःस्थापिताम्तत्ररक्षणे
ताः पूजयन्ति विप्रेन्द्राः स्वधर्मनिरताः सदा ।
ततः प्रभृति योगिन्यः स्वेस्वे काले सुरक्षिताः ॥ ११२ ॥
वाडवाः स्वस्थतां जग्मुःपुत्रपौत्रैःसमावृताः । ततोदेवाःसगन्धर्वाःहर्षनिर्भरमानसाः
विमानवरमारूढा जग्मुर्नाकेऽमृताशनाः ॥ ११३ ॥
गते वर्षशते राजन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । स्मृत्वा तु धर्मारण्यस्य प्रेक्षणार्थं कुतूहलात्
समाजग्मुस्तदा राजन्प्रभाते उदिते रवौ । विमानवरमारूढा अप्सरोगणसेविताः ॥
गन्धर्वैर्गीयमानास्ते स्तूयमानाः प्रबोधकैः ।
तत्र स्थाने द्विजा राजन्समित्पुष्पकुशान्बहून् ॥ ११६ ॥
आश्रमांस्तान्परित्यज्य गताः सर्वे दिशो दश । तमाश्रमपदं दृष्ट्वा शून्यंचैव महेश्वरः
उवाच वाक्यं धर्मज्ञो वाडवान्क्विशतेविभो । शुशूषार्थंहिशुश्रूषून्कल्पयेदितिमेमतिः
श्रुत्वा तु वचनं शम्भोर्देवदेवो जनार्दनः । सत्यंसत्यमितिप्रोच्यब्रह्माणमिदमब्रवीत्
भोभो ब्रह्मन्द्विजातीनां शुश्रूषार्थं प्रकल्पय ।
सृष्टिर्हि शाश्वतीचाद्य द्विजोवोऽपि सुखी भवेत् ।
विष्णोर्वाक्यमभिश्रुत्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १२० ॥

संस्मरन्कामधेनुं वै स्मरणेनैव तत्क्षणे । आगता तत्र सा धेनुर्धर्मारण्ये पवित्रके ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशातिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वार्द्धे धर्मारण्यमाहात्म्ये गोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनंनाम
नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## दशमोऽध्यायः

### वणिक्परिग्रहवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्यथावृत्तं धर्मारण्ये शुभं मतम् । यदिदं कथयिष्यामि अशेषाघौघनाशनम्
अजेशेन तदा राजन्प्रेरितेन स्वयम्भुवा । कामधेनुः समाहूता कथयामास तां प्रति
विप्रेभ्योऽनुचरान्देहि एकैकस्मै द्विजातये । द्वौ द्वौशुद्धात्मकौचैवंदेहिमातःप्रसीदमे
तथेत्युक्त्वा महाधेनुः क्षीरेणोल्लेखयद्धराम् ।
हुङ्कारात्तस्य निष्क्रान्ताः शिखासूत्रधरा नराः ॥ ४ ॥
षट्त्रिंशच्च सहस्राणिवणिजश्चमहाबलाः । सोपवीतामहादक्षाःसर्वशास्त्रविशारदाः
द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते तपोन्विताः ।
पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिका ब्रह्मभोजकाः ॥ ६ ॥
स्वर्गे देवाःप्रशंसन्तिधर्मारण्यनिवासिनः । तपोऽध्ययनदानेषुसर्वकालेष्यतीन्द्रियाः
एकैकस्मै द्विजायैव दत्तं जातु चरद्वयम् । वाडवस्य च यद्गोत्रं पुरा प्रोक्तं महीपते
परस्परं च तद्गोत्रंतस्यचानुचरस्य च । इति कृत्वाव्यवस्थां चन्यवसंस्तत्रभूमिषु
ततश्च शिष्यता देवैर्दत्ता चानुचरान्भुवि । ब्रह्मणा कथितं सर्वं तेषामनुहिताय वै ॥
कुरुध्वं वचनंचैषांदद्ध्वंच यदिच्छितम् । समित्पुष्पकुशादीनिआनयध्वं दिनेदिने
अनुज्ञयैषां वर्तध्वं मावज्ञां कुरुत कर्हिचित् । जातकं नामकरणं तथाऽन्नप्राशनं शुभम्

क्षौरं चैवोपनयनं महानाम्न्याह्निकं तथा। क्रियाकर्मादिकं यच्च व्रतं दानोपवासकम्
अनुज्ञयैषां कर्तव्यं कांजेशा इदमब्रुवन्। अनुज्ञया विनैषां यः कार्यमारभते यदि ॥
दर्शं वा श्राद्धकार्यं वाशुभं वायदिवाऽशुभम्। दारिद्र्यं पुत्रशोकंचकीर्तिनाशंतथैवच
रोगैर्निपीड्यते नित्यंनक्वचित्सुखमाप्नुयुः। तथेतिचततोदेवाःशक्राद्याःसुरसत्तमाः

स्तुतिं कुर्वंति ते सर्वे कामधेनोः पुरः स्थिताः।
कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १७ ॥

त्वं मातासर्वदेवानां त्वंचयज्ञस्यकारणम्। त्वं तीर्थंसर्वतीर्थानांनमस्तेऽस्तुसदानघे
शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः। सरस्वती च हुङ्कारे सर्वे नागाश्चकम्बले
खुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च। मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणिचराणि च
एवंविधैश्च बहुशो वचनैस्तोषिताचसा। सुप्रसन्नातदाधेनुःकिंकरोमीतिचाब्रवीत्

देवा ऊचुः

सृष्टाः सर्वे त्वया मातर्देव्यंतेऽनुचराः शुभाः।
त्वत्प्रसादान्महाभागे ब्राह्मणाः सुखिनोऽभवन् ॥ २२ ॥

ततोऽसौ सुरभीराजन्गतानाकंयशस्विनी। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तत्रैवान्तरधुस्ततः

युधिष्ठिर उवाच

अभार्यास्ते महातेजा गोजा अनुचरास्तथा।
उद्वाहिताः कथं ब्रह्मन्सुतास्तेषां कदाऽभवन् ॥ २४ ॥

व्यास उवाच

परिग्रहार्थं वै तेषां रुद्रेण च यमेन च। गन्धर्वकन्या आहृत्य दारास्तत्रोपकल्पिताः

युधिष्ठिर उवाच

को वा गन्धर्वराजाऽसौ किंनामा कुत्र वा स्थितः।
कियन्मात्रास्तस्य कन्याः किमाचारा ब्रवीहि मे ॥ २६ ॥

व्यास उवाच

विश्वावसुरितिख्यातोगन्धर्वाधिपतिर्नृप। षष्टिकन्यासहस्राणिआसंतेतस्यवेश्मनि

अन्तरिक्षे गृहं तस्य गधर्वनगरं शुभम् । यौवनस्थाः सुरूपाश्चकन्यागन्धर्वजाःशुभाः रुद्रस्यानुचरौ राजन्नन्दी भृङ्गीशुभाननौ । पूर्वदृष्टाश्चताःकन्याःकथयामासतुःशिवम् दृष्टाः पुरा महादेव गन्धर्वनगरे विभो !। विश्वावसुगृहे कन्या असंख्याताः सहस्रशः ता आनीय बलादेव गोभुजेभ्यः प्रयच्छ भो । एवं श्रुत्वाततोदेवस्त्रिपुरघ्नःसदाशिवः प्रेषयामास दूतं तु विजयं नाम भारत । स तत्र गत्वा यत्रास्ते विश्ववसुररिन्दमः ॥ उवाच वचनं चैव पथ्यं चैव शिवेरितम् । धर्मारण्ये महाभाग काशेशेन विनिर्मिताः स्थापिता वाडवास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः । तेषां वै परिचर्यार्थं कामधेनुश्च प्रार्थिता

तया कृताः शुभाचारा वणिजस्ते त्वयोनिजाः ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारास्तेःमहाबलाः ॥ ३५ ॥

शिवेन प्रेषितोऽहं वै त्वत्समीपमुपागतः । कन्यार्थं हि महाभाग देहिदेहीत्युवाचह

गन्धर्व उवाच

देवानां चैव सर्वेषां गन्धर्वाणां महामते । परित्यज्य कथंलोके मानुषाणां ददामि वै श्रुत्वातुवचनंतस्य निवृत्तो विजयस्तदा । कथयामास तत्सर्वं गन्धर्वचरितं महत्

व्यास उवाच

ततः कोपसमाविष्टो भगवाँल्लोकशङ्करः । वृषभे च समारूढः शूलहस्तः सदाशिवः॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सहस्रैरावृतः प्रभुः । ततो देवास्तथा नागा भूतवेतालखेचराः क्रोधेनमहताविष्टाःसमाजग्मुः सहस्रशः । हाहाकारोमहानासीत्तस्मिन्सैन्येविसर्पति

प्रकम्पिता धरादेवी दिशापाला भयाऽऽतुराः ।
घोरा वातास्तदाऽशान्ताःशब्दं कुर्वन्ति दिग्गजाः ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच

तदागतं महासैन्यं दृष्ट्वा भयविलोलितम् । गन्धर्वनगरात्सर्वे विनेशुस्ते दिशो दश ॥ गन्धर्वराजो नगरंत्यक्त्वामेरुंगतोनृप !। ताः कन्या यौवनोपेतारूपौदार्यसमन्विताः गृहीत्वा प्रददौसर्वावणिग्भ्यश्च तदा नृप !। वेदोक्तेन विधानेन तथा वै देवसन्निधौ

आज्यभागं तदा दत्त्वा गन्धर्वाय गवात्मजाः ।

देवानां पूर्वजानां च सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ४६

यमाय मृत्यवे चैव आज्यभागं तदा ददुः । दत्त्वाज्यभागान्विधिवद्वव्रिरे ते शुभव्रताः
ततः प्रभृतिगान्धर्वविवाहेसमुपस्थिते । आज्यभागंप्रगृह्णन्तिअद्यापि सर्वतो भृशम्
षट्त्रिंशच्च सहस्राणिकुमारायेनिवेदिताः । तेषां पुत्राश्चपौत्राश्चशतशोऽथ सहस्रशः

अत एव हि ताः ( ते ) सर्वा ( सर्वे ) दासत्वे हि विनिर्मिताः ।

क्षत्रियाश्च महावीरा किङ्करत्वे हि निर्मिताः ॥ ५० ॥

ततोदेवास्तदाराजञ्जग्मुःसर्वेयथातथा । गते देवे द्विजाःसर्वेस्थानेऽस्मिन्निवसन्तिते
पुत्रपौत्रयुता राजन्निवसंत्यकुतोभयाः । पठन्ति वेदान्वेदज्ञाःक्वचिच्छास्त्रार्थमुद्गिरन्
केचिद्विष्णुंजपन्तीहशिवंकेचिज्जपन्तिहि । ब्रह्माणं च जपन्त्येके यमसूक्तंहि केचन
यजन्ति याजकाश्चैव अग्निहोत्रमुपासते । स्वाहाकारस्वधाकार वषट्कारैश्च सुव्रत
शब्दैरापूर्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । वणिजश्च महादक्षाद्विजशुश्रूषणोत्सुकाः
धर्मारण्येशुभेदिव्येतेवसन्तिसुनिश्चिताः । अन्नपानादिकं सर्वं समित्कुशफलादिकम्

आपूरयन्द्विजातीनां वणिजस्ते गवात्मजाः ॥ ५७ ॥

पुष्पोपहारनिचयं स्नानवस्त्रादिधावनम् । उपलादिकनिर्माणं मार्जनादिशुभक्रियाः ॥
वणिक्स्त्रियःप्रकुर्वन्तिकण्डनंपेषणादिकम् । शुश्रूषन्तिच तान्विप्रान्काजेशवचनेनहि
स्वस्थाजातास्तदासर्वेद्विजाहर्षपरायणाः । काजेशादीनुपासन्तेदिवारात्रौहि सन्ध्ययोः

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये वणिक्परिग्रहवर्णनंनाम
दशमोऽध्यायः ॥ १ ॥

# एकादशोऽध्यायः

## लोलजिह्वासुरवधपूर्वकंमन्दिरसंस्थापनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

अतः परं किमभवद्ब्रवीतु द्विजसत्तम । त्वद्वचनामृतं पीत्वातृप्तिर्नास्ति मम प्रभो!

व्यास उवाच

अथ किञ्चिद्गते काले युगान्तसमये सति । त्रेतादौ लोलजिह्वाख्य अभवद्राक्षसेश्वरः
तेनविद्रावितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् । जित्वाससकलाँल्लोकान्धर्मारण्ये समागतः
तद्दृष्ट्वा सकलं पुण्यंरम्यं द्विजनिषेवितम् । ब्रह्मद्वेषाच्च तेनैव दाहितं च पुरं शुभम्
दह्यमानं पुरं दृष्ट्वा प्रणष्टा द्विजसत्तमाः । यथागतं प्रजग्मुस्ते धर्मारण्यनिवासिनः ॥
श्रीमाताद्यास्तदादेव्यःकोपितারাक्षसेन वै । घातयन्त्येवशब्देनतर्जयित्वा च राक्षसम्
समुत्थितास्तदा देव्यः शतशोऽथ सहस्रशः । त्रिशूलवरधारिण्यःशङ्खचक्रगदाधराः
कमण्डलुधराःकाश्चित्कशाखड्गधराः पराः । पाशाङ्कुशधरा काचित्खड्गखेटकधारिणी
काचित्परशुहस्ता च दिव्यायुधधरा परा । नानाभरणभूषाढ्यानानारत्नाभिशोभिता

राक्षसाणां विनाशाय ब्राह्मणानां हिताय च ।

आजग्मुस्तत्र यत्रास्ते लोलजिह्वो हि राक्षसः ॥१०॥

महादंष्ट्रो महाकायो विद्युज्जिह्वो भयङ्करः । दृष्ट्वा ता राक्षसो घोरं सिंहनादमथाकरोत्
तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् । आपूरिता दिश सर्वाः क्षुभितानेकसागराः
कोलाहलो महानासीद्धर्मारण्ये तदा नृप । तच्छ्रुत्वा वासवेनाथ प्रेषितो नलकूबरः
किमिदं पश्य गत्वा त्वं दृष्ट्वामह्यंनिवेदय । ततस्य वचनंश्रुत्वा गतो वै नलकूबरः
दृष्ट्वा तत्र महायुद्धं श्रीमातालोलजिह्वयोः । यथादृष्टं यथाजातं शक्राग्रे स न्यवेदयत्॥

उद्वेजयति लोकांस्त्रीन्धर्मारण्यमितो गतः ।

तच्छ्रुत्वा वासवो विष्णुं निवेद्य क्षितिमागमत् ॥१६॥

दाहितं तत्पुरं रम्यं देवानामपि दुर्लभम् । न दृष्टावाडवास्तत्र गताः सर्वे दिशोदश
श्रीमातायोगिनी तत्र कुरुते युद्धमुत्तमम् । हाहाभूता प्रजा सर्वा इतश्चेतश्च धावति ॥
तच्छ्रुत्वावासुदेवोहिगृहीत्वाचसुदर्शनम् । सत्यलोकात्तदा राजन्समागच्छन्महीतले
धर्मारण्यं ततो गत्वातच्चक्रंप्रमुमोचह । लोलजिह्वस्तदा रक्षो मूर्च्छितो निपपातह

त्रिशूलेन ततो भिन्नः शक्तिभिः क्रोधमूर्च्छितः ।
हन्यमानस्तदा रक्षः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ॥२१॥

ततो देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः । तुष्टुवुस्तं जगन्नाथं सत्यलोकात्समागताः
उद्वसं तत्समालोक्य विष्णुर्वचनमब्रवीत् । क्व ते ब्राह्मणाः सर्वे ऋषीणामाश्रमेपुनः
ततो देवाःसगन्धर्वाइतस्ततः पलायिनान् । संशोध्यतरसा राजन्ब्राह्मणानिदमब्रुवन्
श्रूयतां नो वचो विप्रा निहतो राक्षसाधमः । वासुदेवेन देवेनचक्रेण निरकुन्तत

तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ।
समाजग्मुस्तदा राजन्स्वस्वस्थाने समाविशन् ॥ २६ ॥
श्रीकान्ताय तदा राजन्वाक्यमुक्तं मनोरमम् ।
यस्मात्त्वं सत्यलोकाच्च आगतोऽसि जगत्प्रभुः ॥
स्थापितं च पुरं चेदं हिताय च द्विजात्मनाम् ॥ २७ ॥

सत्यमन्दिरमितिख्यानंतद्वालोकेभविष्यति । कृतेयुगेधर्मारण्यंत्रेतायांसत्यमन्दिरम्
तच्छ्रुत्वा वासुदेवेन तथेति प्रतिपद्य च । ततस्ते वाडवाः सर्वे पुत्रपौत्रसमन्विताः
सपत्नीकाः सानुचरा यथापूर्वं न्यवात्सिपुः । तपोयज्ञक्रियाद्येषुवर्तन्तेऽध्ययनादिपु

एवं ते सर्वमाख्यातं धर्म ! वै सत्यमन्दिरे ॥ ३१ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये लोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिर-
संस्थापनवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः
### गणेशप्रस्थापनावर्णनम्

व्यास उवाच

ततो देवैर्नृपश्रेष्ठ रक्षार्थंसत्यमन्दिरम् । स्थापितं तत्तदार्थैवसत्याभिख्याहिसा पुरी
पूर्वं धर्मेश्वरो देवो दक्षिणेन गणाधिपः । पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयंभुवः

युधिष्ठिर उवाच

गणेशः स्थापितः केन कस्मात्स्थापितवानसौ ।
किं नामासौ महाभाग! तन्मे कथय मा चिरम् ॥ ३ ॥

व्यास उवाच

अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिकारणम् ॥ ४ ॥

समयेमिलिताः सर्वेदेवता मातरस्तथा । धर्मारण्ये महाराज स्थापितश्चण्डिकासुतः
आदौ देवैर्नृपश्रेष्ठ भूमौवैसत्ययोषिताम् । प्राकारश्चाभवत्तत्र पताकाध्वजशोभितः
ब्राह्मणायतने तत्र प्राकारमण्डलान्तरे । तन्मध्ये रचितं पीठमिष्टकाभिः सुशोभितम्
प्रतोल्यश्च चतस्रो वै शुद्धा एव सतोरणाः । पूर्वे धर्मेश्वरोदेवो दक्षिणे गणनायकः
पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरेच स्वयम्भुवः । धर्मेश्वरोत्पत्तिवृत्तमाख्यातं तत्तवाग्रतः
अधुनाहं प्रवक्ष्यामिगणेशोत्पत्तिहेतुकम् । कदाचित्पार्वती गात्रोद्वर्त्तनं कृतवत्यभूत्
मलं तज्जनितं दृष्ट्वा हस्ते धृत्वा स्वगात्रजम् । प्रतिमां च ततः कृत्वासुरूपंचददर्श ह
जीवं तस्यां च संचार्य उदतिष्ठत्तदग्रतः । मातरं स तदोवाच किं करोमि तवाज्ञया

पार्वत्युवाच

यावत्स्नानंकरिष्यामितावत्त्वंद्वारितिष्ठ मे । आयुधानिचसर्वाणि परश्वादीनियानितु
त्वयितिष्ठतिमद्द्वारे कोऽपिविघ्नंकरोतुन । एवमुक्तोमहादेव्याद्वारेऽतिष्ठत्ससायुधः
एतस्मिन्नन्तरे देवो महादेवो जगाम ह ।

आभ्यन्तरे प्रवेष्टुं च मतिं दध्रे महेश्वरः ॥ १९ ॥

द्वारस्थेन गणेशेन प्रवेशोदायि तस्य न । ततः क्रुद्धो महादेवः परस्परमयुध्यत ॥
युद्धं कृत्वा ततश्चोभौ परस्परवधैषिणौ । परशुं जघ्निवान्देवललाटे परमे शुभम् ॥
ततो देवो महादेवः शूलमुद्यम्य चाहनत् । शिरश्चिच्छेद शूलेन तद्भूमौ निपपात ह
तंदृष्ट्वापतितं पुत्रं पार्वती प्ररुरोद ह । हाहाकारो महानासीत्तदा तत्र निपातिते ॥
पार्वतीं विकलांदृष्ट्वा देवदेवोमहेश्वरः । चिन्तयामास देवोऽपि किं कृतं वा मुधामया
एतस्मिन्नन्तरे तत्र गजासुरमपश्यत । तं दृष्ट्वा च महादैत्यं सर्वलोकैकपूजितः ॥ २१

जघ्निवांस्तच्छिरोगृह्य पार्वत्याकृतमर्भकम् ।
उत्तस्थौ सगणस्तत्र महादेवस्य सन्निधौ ॥ २२ ॥

ततोनाम चकारास्य गजानन इतिस्फुटम् । सुराःसर्वे च संपृक्ता हर्षिता मुनयस्तथा

स्तुवन्ति स्तुतिभिः शश्वत्कुटुम्बकुशलङ्करम् ।
विक्रीणाति ( विपुष्णाति ) कुटुम्बं यो मोदकार्थं समर्चके ॥ २४ ॥

दक्षिणस्यां प्रतोल्यां तमेकदन्तं च पीवरम् । आर्चयच्च महादेवं स्वयंभूः सुरपूजितम्
जटिलं वामनं चैव नागयज्ञोपवीतकम् । त्र्यक्षं चैव महाकायं करध्वजकुठारकम् ॥

दधानं कमलं हस्ते सर्वविघ्नविनाशनम् ।
रक्षणाय च लोकानां नगराद्दक्षिणाश्रितम् ॥ २७ ॥

सुप्रसन्नं गणाध्यक्षंसिद्धिबुद्धिनमस्कृतम् । सिन्दूराभं सुरश्रेष्ठं तीव्रांकुशधरं शुभम्॥
शतपुष्पैः शुभैः पुष्पैरर्चितं ह्यमराधिपः । प्रणम्य च महाभक्त्या तुष्टुवुस्तं सुरास्ततः

देवा ऊचुः

नमस्तेऽस्तु सुरेशाय गणानां पतये नमः । गजानन! नमस्तुभ्यं महादेवाधिदेवत !॥
भक्तिप्रियायदेवायगणाध्यक्ष!नमोऽस्तुते । इत्येवैश्चशुभैःस्तोत्रैःस्तूयमानोगणाधिपः

सुप्रीतश्च गणाध्यक्षः तदाऽसौ वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

गणाध्यक्ष उवाच

तुष्टोऽहं वः सुरा! ब्रूत वाञ्छितं च ददामि वः ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः

त्वमत्रस्थोमहाभाग कुरुकार्यंचनःप्रभो । धर्मारण्येचविप्राणांवणिग्जननिवासिनाम्
ब्रह्मचर्यादियुक्तानां धार्मिकाणां गणेश्वर । वर्णाश्रमेतराणां च रक्षिता भव सर्वदा ॥
त्वत्प्रसादान्महाभाग धनसौख्ययुता द्विजाः । भवन्तुसर्वे सततंवणिजश्च महाबलाः
रक्षितव्यास्त्वयादेवयावच्चन्द्रार्कमेदिनी । एवमस्त्विति सोऽवादीद्गणनाथोमहेश्वरः

देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ।
ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥
ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं च ( ह्य ) पूजयन् ॥ ३८ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् । धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नो भव सर्वदा

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे गणेशप्रस्थापनावर्णनंनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

# त्रयोदशोऽध्यायः

## बकुलार्कमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ।
तत्राऽस्ति तन्महाभाग! रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥

तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौरूपयौवनसंयुतौ । नासत्यावश्विनौदेवौ विख्यातौगदनाशनौ

युधिष्ठिर उवाच

पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः । उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम्
रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः । एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥
यच्छ्रुत्वा हि महाभाग! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

व्यास उवाच

साधु पृष्टं त्वया भूप! ऊर्ध्वलोककथानकम् । यच्छ्रुत्वा नरशार्दूलसर्वरोगात्प्रमुच्यते॥
विश्वकर्म्मसुता सञ्ज्ञा अंशुमद्रविणा वृता ॥ ६ ॥
सूर्यंदृष्ट्वासदासंज्ञा स्वाक्षिसंयमनंव्यधात् । यतस्ततः सरोषोऽर्कःसंज्ञांवचनमब्रवीत्

सूर्य उवाच

मयिदृष्टेसदा यस्मात्कुरुषे स्वाक्षिसंयमम् । तस्माज्जनिष्यते मूढे प्रजासंयमनोयमः
ततःसा चपलं देवी ददर्श च भयाकुलम् । विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः
यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाऽधुना ।
तस्माद्विलोलितां सञ्ज्ञे ! तनयां प्रसविष्यसि ॥ १० ॥

व्यास उवाच

ततस्तस्यास्तु सञ्जज्ञे भर्तृशापेन तेन वै । यमश्चयमुना येयं विख्याता सुमहानदी
साच संज्ञारवेस्तेजोमहद्दुःखेन भामिनी । असहन्तीवसा चित्तेचिन्तयामासवै तदा
किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृतिः । भवेन्ममकथंभर्तुःकोपमर्कस्यनश्यति
इति संचिन्त्य बहुधाप्रजापतिसुता तदा । साधु मेने महाभागा पितृसंश्रयमाप सा
ततः पितृगृहं गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी । छायामाहूयात्मनस्तु सा देवी दयिता रवेः
तां चोवाचत्वया स्थेयमत्रभानोर्यथा मया । तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यंतथारवौ
न दुष्टमपि वाच्यं ते यथा बहुमतं मम । सैवास्मि संज्ञाहमिति वाच्यमेवं त्वयानघे

छायासंज्ञोवाच

आकेशग्रहणाच्चाहमाशापाच्च वचस्तथा । करिष्ये कथयिष्यामि यावत्केशापकर्षणात्
इत्युक्ता सा तदा देवी जगामभवनं पितुः । ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकिल्बिषम्
बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा ।
तस्थौपितृगृहे सा तु किञ्चित्कालमनिन्दिता ॥ २० ॥
ततः प्राह स धर्मज्ञः पिता नातिचिरोषिताम् ।
विश्वकर्मा सुतां प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥ २१ ॥

त्वांतुमेपश्यतोवत्से दिनानि सुबहून्यपि । मुहूर्तेन समानिस्युः किंतुधर्मोविलुप्यते
बान्धवेषुचिरंवासोन नारीणांयशस्करः । मनोरथोबान्धवानांभार्यापितृगृहेस्थिता
सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्येणसङ्गता । पितुर्गृहे चिरं कालंवस्तुंनार्हसिपुत्रिके!
अतो भर्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजिता च मे । पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभेक्षणे ॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा क्षिप्रं तथेत्युक्त्वा च वै मुने !।
पूजयित्वा तु पितरं सा जगामोत्तरान्कुरून् ॥ २६ ॥

सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती । तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी
सञ्ज्ञामित्येव मन्वानो द्वितीयायां दिवस्पतिः ।
जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥ २८ ॥

छाया स्वतनयेष्वेव यथा प्रेम्णाऽध्यवर्तत । तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चाप्यवर्तत
लालनासु च भोज्येषु विशेषमनुवासरम् ॥ २६ ॥

मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचाक्षमन् । ताडनायततःकोपात्पादस्तेनसमुद्यतः
तस्याः पुनः क्षान्तमना न तु देहे न्यपातयत् ॥ ३० ॥

ततः शशापतंकोपाच्छायासंज्ञायमंनृप । किंचित्प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा
पत्न्याःपितुर्मयियदि पादमुद्यच्छसेबलात् । भुवितस्मादयंपादस्तवाद्यैवपतिष्यति
इत्याकर्ण्य यमः शापं मातर्यतिविशङ्कितः । अभ्येत्य पितरं प्राहप्रणिपातपुरस्सरम्
तातैतन्महदाश्चर्यमदृष्टमिति च क्वचित् । मातावात्सल्यरूपेण शापं पुत्रे प्रयच्छति
यथा माता ममाचष्ट नेयंमाता तथा मम । निर्गुणेष्वपि पुत्रेषु न मातानिर्गुणाभवेत्
यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः । छायासञ्ज्ञामथाहूय पप्रच्छक्वगतेति च
सा चाहतनया त्वष्टुरहं संज्ञाविभावसो !। पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे
इत्थं विवस्वतस्तां तु बहुशः पृच्छतो यदा ।
नाचचक्षे तदा क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥

ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वते । विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम्

ततः सम्पूजयामास त्वष्टा त्रैलोक्यपूजितम् ।

भास्वन्कि रहिता शक्त्या निजगेहमुपागतः ॥ ४० ॥

संज्ञां पप्रच्छ तं तस्मैकथयामास तत्त्ववित् । आगता सेह मे वेश्म भवतःप्रेषिता रवे
दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् । तपश्चरंतीं ददृशे उत्तरेषुकुरुष्वथ ॥
असह्यमाना सूर्यस्य तेजस्तेनातिपीडिता । वह्न्याभनिजरूपंतु च्छायारूपंविमुच्यच
धर्मारण्ये समागत्य तपस्तेपे सुदुष्करम् । छायापुत्रं शनिं दृष्ट्वा यमं चान्यं च भूपते

तदैव विस्मितः सूर्यो दुष्टपुत्रौ समीक्ष्य च ।

ज्ञातुं दध्यौ क्षणं ध्यात्वा विदित्वा तच्च कारणम् ॥ ४५ ॥

घृण्यौष्ण्याद्दग्धदेहा सा तपस्तेपेपतिव्रता । येन मां तेजसासह्यं द्रष्टुं नेवशशाकह
पश्चाशद्वायनेतीते गत्वा को तप आचरत् । प्रद्योतनो विचार्यवंगत्वाशीघ्रंमनोजवः
धर्मारण्ये वरे पुण्ये यत्र संज्ञास्थिता तपः । आगतं तं रविं दृष्ट्वा वडवा समजायत

सूर्यपत्नी यदा सञ्ज्ञा सूर्यश्चाश्वस्ततोऽभवत् ।

ताभ्यां सहाऽभूत्संयोगो घ्राणे लिङ्गं निवेश्य च ॥ ४६ ॥

तदा तौ च समुत्पन्नौ युगलावश्विनौ भुवि । प्रादुर्भूतं जलं तत्रदक्षिणेन खुरेण च
विदलिते भूमिभागे तत्रकुण्डं समुद्बभौ । द्वितीयं तु पुनः कुण्डंपश्चार्धचरणोद्भवम्
उत्तरवाहिन्याः काश्याःकुरुक्षेत्रादिवं तथा । गङ्गापुरीसमफलंकुण्डेऽत्रमुनिनोदितम्
तत्फलं समवाप्नोति तत्रकुण्डे न संशयः । स्नानं विधाय तत्रैवसर्वपापैः प्रमुच्यते
न पुनर्जायते देहः कुष्ठादिव्याधिपीडितः । एतत्ते कथितं भूपदस्रांशोत्पत्तिकारणम्
तदा ब्रह्मादयो देवा आगतास्तत्र भूपते । दत्त्वासञ्ज्ञावरंशुभ्रं चिन्तितादधिकंहि तैः
स्थापयित्वा रविं तत्र बकुलाख्यवनाधिपम् । आनर्चुस्तेतदासञ्ज्ञांपूर्वरूपाभवत्तदा
स्थापिता तत्र राज्ञी च कुमारौ युगलौ तदा । एतत्तीर्थफलं वक्ष्ये शृणुराजन्महामते
आदिस्थानं कुरुश्रेष्ठदेवैरपिसुदुर्ल्लभम् । रविकुण्डेनरःस्नात्वाश्रद्धायुक्तोजितेन्द्रियः
तारयेत्स पितृन्सर्वान्महानरकगानपि । श्रद्धया यः पिबेत्तोयं संतर्प्य पितृदेवताः ॥
स्वल्पं वापि बहुवापि सर्वं कोटिगुणं भवेत् । सतम्यांरविवारेणग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः

रविकुण्डे च ये स्नाताःनते वै गर्भगामिनः । सङ्क्रान्तौ चव्यतीपातेवैधृतेषुचपर्वसु
पूर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्यां सितासिते ।
रविकुण्डे च यः स्नातः क्रतुकोटिफलं लभेत् ॥ ६२ ॥

पूजयेद्बकुलार्कं च एकचित्तेन मानवः । स याति परमं धाम स यावत्तपते रविः
तस्य लक्ष्मीः स्थिरानूनंलभतेसंततिसुखम् । अरिवर्गःक्षयंयातिप्रसादाद्धिवस्पतेः
नाग्नेर्भयं हि तस्य स्याच्च व्याघ्राच्चदन्तिनः । नचसर्प्पभयंक्वापिभूतप्रेतादिभीर्नहि
बालग्रहाश्च सर्वेऽपि रेवती वृद्धरेवती । ते सर्वे नाशमायान्तिबकुलार्कनमोऽस्तुते
गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनं धान्यं तथैव च । अविच्छेदो भवेद्वंशो बकुलार्केनमस्कृते
काकवन्ध्याचयानारीअनपत्यामृतप्रजा । वन्ध्याविरूपिताचैवविषकन्याश्चयाःस्त्रियः
एवं दोषैः प्रमुच्यन्तेस्नात्वाकुण्डेचभूपते । सौभाग्यश्रीसुतांश्चैवरूपंचाप्नोतिसर्वशः
व्याधिग्रस्तोऽपियोमर्त्यःषण्मासाच्चैवमानवः । रविकुण्डेचसुस्नातःसर्वरोगात्प्रमुच्यते
नीलोत्सर्गविधिं यस्तुरविक्षेत्रेकरोति वै । पितरस्तृप्तिमायान्ति यावदाभूतसंप्लवम्
कन्यादानं च यः कुर्यादस्मिन्क्षेत्रे च पुत्रक !। उद्वाहपरिपूतात्मा ब्रह्मलोके महीयते
धेनुदानं च शय्यां च विद्रुमं च हयं तथा । दासीमहिषीघण्टाश्चतिलंकाञ्चनसंयुतम्
धेनुं तिलमयीं दद्यादस्मिन्क्षेत्रे च भारत !। उपानहौच छत्रं च शीतत्राणादिकंतथा
लक्षहोमं तथा रुद्रंरुद्रातिरुद्रमेव च । तस्मिन्स्थानेचयत्किंचिद्ददातिश्रद्धयान्वितः
एकैकस्य फलं तात! वक्ष्यामि शृणुतत्त्वतः । दानेन लभते भोगानिह लोके परत्र च
राज्यं च लभतेमर्त्यःकृत्वोद्वाहंतुमानुषाः । जायातोधर्मकामार्थाःप्राप्यन्तेनात्रसंशयः
पूजया लभते सौख्यं भवेज्जन्मनिजन्मनि । सप्तम्यां रवियुक्तायांबकुलार्कंस्मरेत्तुयः
ज्वरादेः शत्रुतश्चैव व्याधेस्तस्य भयं नहि ॥ ७६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

बकुलार्केति वै नाम कथं जातं रवेर्मुने !। एतन्मे वदतां श्रेष्ठ! तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥

व्यास उवाच

यदा सञ्ज्ञा च राजेन्द्र सूर्यार्थं चैकचेतसा । तेपे बकुलवृक्षाधः पत्युस्तेजः प्रशान्तये

प्रादुर्भावं रवेर्दृष्ट्वा वडवा समजायत। अत्यन्तं गोपतिः शान्तो वकुलस्यसमीपतः
सुषुवे च तदा राज्ञी सुतौ दिव्यौ मनोहरौ। तेनास्य प्रथितं नामवकुलार्केतिवैरवेः
यस्तत्र कुरुते स्नानं व्याधिस्तस्य न पीडयेत्। धर्ममर्थं चकामंचलभतेनात्रसंशयः
षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति मोक्षं च लभते नरः। एतदुक्तं महाराज वकुलार्कस्यवैभवम्

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्योपाख्याने वकुलार्कमाहात्म्यकथनंनाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः

### वश्रीकृतगुणभक्षणपूर्वकंविष्णुशिरोनाशवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

कृपासिन्धो महाभाग सर्वव्यापिन्सुरेश्वर। कदा ह्यत्र तपस्तप्तं विष्णुनामिततेजसा
स्कन्दाय कथितं चैव शर्वेण च महात्मना। आनुपूर्व्येण सर्वं हि कथयस्वत्वमेवहि

व्यास उवाच

शृणुवत्स प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्ये नृपोत्तम!। एकदात्रतपस्तप्तंविष्णुनाऽमिततेजसा

स्कन्द उवाच

कथं देवसरोनाम पम्पा चम्पा गया तथा। वाराणस्यधिका चैवकथमश्वमुखोहरिः

ईश्वर उवाच

अत्रनारायणो देवस्तपस्तेपे सुदुष्करम्। दिव्यवर्षशतं त्रीणि जातःसुश्वाननश्च सः
तपस्तेपे महाविष्णुः सुरूपार्थश्चपुत्रक!। वाजिमुखो हरिस्तत्र सिद्धस्थानेमहाद्युते

स्कन्द उवाच

कारणं ब्रूहि नोद्य त्वमश्वाननः कथं हरिः। महारिपोश्चहन्ता च देवदेवो जगत्पतिः

यस्य नाम्नामहाभाग पातकानि बहून्यपि । विलीयन्ते तु वेगेन तमः सूर्योदये यथा
श्रूयन्ते यस्य कर्माणि अद्भुतान्यद्भुतानि वै । सर्वेषामेव जीवानां कारणं परमेश्वरः
प्राणरूपेण यो देवो हयरूपः कथं भवेत् । सर्वेषामपि तन्त्राणमेकरूपः प्रकीर्तितः ॥

भक्तिगम्यो धर्मभाजां सुखरूपः सदा शुचिः ।
गुणातीतोऽपि नित्योऽसौ सर्वगो निर्गुणस्तथा ॥ ११ ॥
स्रष्टाऽसौ पालको हन्ता अव्यक्तःसर्वदेहिनाम् ।
अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥

यस्यरोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः । कल्पेकल्पे जगत्सर्वं जायतेयस्य देहतः
स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् । येनानीताःपुनर्विद्यायज्ञाश्चप्रलयं गताः
घातितो दुष्टदैत्योऽसौवेदार्थंकृतउद्यमः । एवमासीन्महाविष्णुःकथमश्वमुखोऽभवत्
रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया । कृत्वा व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्

स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ।
हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥

सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे । उद्धृता च महीसर्वा ससागरमहीधरा ॥
उद्धृता च महीनूनं दंष्ट्राग्रेयेन लीलया । कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम्
स देवःकथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः । प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम्
नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् । पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥
हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे । इन्द्रासने च संस्थाप्यप्रह्लादस्य सुखप्रदम्
प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः । विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा
यज्ञेचैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः । हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥
विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः । त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥
हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा । घातितो हैहयो राजा येनैव जननीहृता

येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ।
राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥

विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येनलीलानृदेहिना । चतुर्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात्
हताशूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः । सुग्रीवं वालिनं हत्वासुग्रीवेणसहायवान्
कृत्वासेतुं समुद्रस्य रणेहत्वा दशाननम् । धर्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत्
शासनं द्विजवर्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ।
स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां सुदानान्यददाद्गवाम् ॥ ३१ ॥
साधूनां पालनं कृत्वा निग्रहाय दुरात्मनाम् । एवमन्यानिकर्म्माणिश्रुतानिचधरातले
स देवो लीलया कृत्वा कथंचाश्वमुखोऽभवत् ।
यो जातो यादवे वंशे पूतनाशकटादिकम् ॥ ३३ ॥
अरिष्टदैत्यः केशी च वृकासुरबकासुरौ । शकटासुरो महासुरस्तृणावर्तश्च धेनुकः ॥
मल्लश्चैव तथा कंसो जरासन्धस्तथैव च । कालयवनस्य हन्ता च कथं चैसहयाननः
तारकासुरं रणे जित्वा अद्भुतषट्पुरं तथा ॥ ३५ ॥
कन्याश्चोद्वाहिता येनसहस्राणि च षड्दश ।
अमानुषाणि कृत्वेत्थं कथं सोऽश्वमुखोऽभवत् ॥ ३६ ॥
त्राता यः सर्वभक्तानां हन्ता सर्वदुरात्मनाम् ।
धर्मस्थापनकृत्सोऽपि कल्किर्विष्णुपदे स्थितः ॥ ३७ ॥
एतद्वै महदाश्चर्यं भवता यत्प्रकाशितम् । एतदाचक्ष्व मे सर्वं कारणं त्रिपुरान्तक !॥

श्रीरुद्र उवाच

साधुपृष्टं महाबाहो कारणं तस्यवच्म्यहम् । हयग्रीवस्यकृष्णस्यश्रृणुष्वैकाग्रमानसः

व्यास उवाच

पुरा देवैः समारब्धो यज्ञोनूनं धरातले । वेदमन्त्रैराह्वयितुं सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ ४०॥
वैकुण्ठे च गताः सर्वे क्षीराब्धौ च निजालये ।
पातालेऽपि पुनर्गत्वा न विदुः कृष्णदर्शनम् ॥ ४१ ॥
मोहाविष्टास्ततः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः । नैवदृष्टस्तदातैस्तु ब्रह्मरूपो जनार्दनः ॥
विचारयन्तितेसर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । क गतोऽसौमहाविष्णुःकेनोपायेन दृश्यते

प्रणम्य शिरसा देवं वागीशं प्रोचुरादरात् । देवदेव! महाविष्णुं कथयस्व प्रसादतः

बृहस्पतिरुवाच

न जाने केन कार्येणयोगारूढोमहात्मवान् । योगरूपोऽभवद्विष्णुर्योगीशोहरिरच्युतः

क्षणं ध्यात्वा स्वमात्मानं धिषणेन रूयापितो हरिः ।

तत्र सर्वे गता देवा यत्र देवो जगत्पतिः ॥ ४६ ॥

तदा दृष्टो महाविष्णुर्ध्यानस्थोऽसौ जनार्दनः ।

ध्यात्वा कृत्यसमाकारं सशरं दैत्यसूदनम् ॥ ४७ ॥

समाधिस्थं ततोदृष्ट्वा बोधोपायं प्रचक्रमे । आह तांश्च तदा वम्रयोधनुर्गुणं प्रयत्नतः

छेत्स्यन्ति चेत्तच्छब्देन प्रबुध्येत हरिःस्वयम् ॥ ४८ ॥

देवा ऊचुः

गुणभक्षं कुरुध्वं वै येनासौ बुध्यते हरिः ।कृत्वर्थिनो वयंवम्रयः प्रभुं विज्ञापयामहे

वम्रय ऊचुः

निद्राभङ्गं कथाच्छेदं दम्पत्योर्मित्रभेदनम् । शिशुमातृविभेदं वा कुर्वाणो नरकं व्रजेत्

योगारूढो जगन्नाथः समाधिस्थो महाबलः । तस्यश्रीजगदीशस्यविघ्नंनैव तुकुर्महे

ब्रह्मोवाच

भवतां सर्वभक्षत्वं देवकार्यं क्रियेतचेन । कर्त्तव्यं स ततोवम्रयोयज्ञसिद्धिर्यथाभवेत्

वम्रीशा सा तदा वत्स पुनरेवमुवाच ह ॥ ५२ ॥

वम्र्युवाच

दुःखसाध्यो जगन्नाथोमलयानिलसन्निभः । कथंवाबोध्यतांब्रह्मन्नस्याभिःसुरपूजितः

नवयज्ञेन मे कार्यं सुरैश्चैव तथैव च । सर्वेषु यज्ञकार्येषु भागं ददतु मे सुराः ॥ ५४॥

देवा ऊचुः

प्रदास्यामो वयं वम्रयै भागंयज्ञेषुसर्वदा । यज्ञाय दत्तमस्माभिःकुरुष्वैवं वचोहि नः

तथेति विधिनाप्युक्तं वम्रीचोद्यममाश्रिता । गुणभक्षादिकं कर्म तया सर्वं कृतं नृप

युधिष्ठिर उवाच

अशक्या बोधनेदेवा गुणभङ्गे समाधिषु । एतदाश्चर्यविप्रर्षे! सत्यं सत्यवतीसुत

व्यास उवाच

व्यग्रचित्ताःसुराः सर्वेआकृष्टंहरिकार्मुकम् । नजानेकेनकार्येण विष्णुमायाविमोहिताः
मुदितास्ताः प्रमुञ्चन्ति वल्मीकं चाग्रतो हरेः ।
कोटिपार्श्वे ततो नीतं वल्मीकं पर्वतोपमम् ॥ ५९ ॥
गुणे च भक्षिते तस्मिंस्तत्क्षणादेवदूषिते ।
ज्याघातकोटिभिः सार्द्धं शीर्षं छित्त्वा दिवंगतम् ॥ ६० ॥
गते शीर्षे च ते देवा भृशमुद्विग्नमानसाः । धावन्ति सर्वतः सर्वे शिरआलोकनाय ते

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्रयांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये विष्णुशिरोनाशोनाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## पञ्चदशोऽध्यायः

### हयग्रीवाख्यानवर्णनम्

व्यास उवाच

नपश्यन्तियदाशीर्षंब्रह्माद्यास्तुसुरास्तदा। किंकुर्मइतिहेत्युक्त्वाज्ञानिनस्तेव्यचिन्तयन्
उवाच विश्वकर्माणं तदा ब्रह्मा सुरान्वितः ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

विश्वकर्मंस्त्वमेवासि कार्यकर्तासदाविभो । शीघ्रमेवकुरु त्वंवैवक्त्रंसान्द्रंचधन्विनः
नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसौदेववर्द्धकिः । उवाचपरयाभक्त्या ब्रह्माणंकमलोद्भवम्
यज्ञकार्यं (अश्वकायं) निवृत्याशु (निकृन्ताऽऽशु) वदन्ति विविधाः सुराः ॥ ४ ॥
यज्ञभागविहीनं मां किं पुनर्वच्मि तेऽग्रतः । यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥ ५

ब्रह्मोवाच

दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके !। सोमे त्वं प्रथमं वीर पूज्यसेश्रुतिकोविदैः

तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वाऽमरवर्द्धके !।

विश्वकर्माऽब्रवीद्देवानानयध्वं शिरस्त्विति ॥ ७ ॥

तन्नास्तीति सुराः सर्वेवदन्तिनृपसत्तम । मध्याह्नेतुसमुद्भूते रथस्थोदिविवांशुमान्

दृष्टं तदा सुरैः सर्वै रथादश्वमथानयन् । छित्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनोहरेः ॥

कबन्धे योजयामास विश्वकर्मातिचातुरः । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥

देवा ऊचुः

नमस्तेऽस्तु जगद्बीज! नमस्तेकमलापते । नमस्तेऽस्तुसुरेशान! नमस्तेकमलेक्षण!

त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ।

त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव! नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥

त्वमोङ्कारोवषट्कारःस्वाहास्वधा चतुर्विधा । आद्यस्त्वं वसुरेशानत्वमेवशरणंसदा

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा । त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥

कालःकरालरूपस्त्वंत्वं वार्कःशीतदीधितिः । त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वंचकालक्षयङ्करः

गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि । गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥

स्त्रीपुंसोश्चद्विधात्वं चपशुपक्ष्यादिमानवैः । चतुर्विधं कुलं त्वंहिचतुराशीतिलक्षणः

दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ।

कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे !॥ १८ ॥

एवंविधैर्महादिव्यैः स्तूयमानः सुरैर्नृप । सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥

श्रीभगवानुवाच

किमर्थमिह सम्प्राप्ताःसर्वे देवगणाभुवि । किमेतत्कारणं देवाःकिंतु दैत्यप्रपीडिताः

देवा ऊचुः

न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् । त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामोवैदिशोदश

त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ।

योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥
वम्री च तोदिताऽस्माभिर्जागराय तवेश्वर । ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्नं बभूव ते ॥
सूर्याश्वशीर्षमानीयविश्वकर्मातिचातुरः । समधत्तशिरोविष्णोर्हयग्रीवोऽस्यतःप्रभो!

विष्णुरुवाच

तुष्टोऽहंनाकिनःसर्वेददामिवरमीप्सितम् । हयग्रीवोऽस्म्यहं जातोदेवदेवोजगत्पतिः
न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् । जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषितः

व्यास उवाच

कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ।
यज्ञभागं ततो दत्त्वा वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥ २७ ॥
यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठंनमस्कृत्य दिवं ययौ । एतच्च कारणं विद्धि हयननो यतो हरिः॥

युधिष्ठिर उवाच

येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वतः । विवरे विवरे रोम्णांवर्तन्तेचपृथक्पृथक्
ब्रह्माण्डानिसहस्राणि दृश्यन्तेचमहाद्युते । नवेत्तिवेदोयत्पारं शीर्षघातोहिवैकथम्

व्यास उवाच

शृणु त्वं पाण्डवश्रेष्ठ कथां पौराणिकीं शुभाम् । ईश्वरस्यचरित्रंहिनैववेत्तिचराचरे
एकदा ब्रह्मसभायां गता देवाः सवासवाः ।
भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥ ३२ ॥
देवाब्रह्मर्षयःसर्वे नमस्कर्तुं पितामहम् । विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायांमन्त्रकारणात्
ब्रह्मापि विगर्विष्ठ उवाचेदंवचस्तदा । भोभोदेवाःशृणुध्वं कल्याणांकारणंमहत्
सत्यं ब्रुवन्तुवै देवा ब्रह्मेशविष्णुमध्यतः । तांवाचं चसमाकर्ण्यदेवा विस्मयमागताः
ऊचुश्चैव ततो देवा न जानीमोवयं सुराः । ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रतिसुरेश्वरम्
त्रयाणामपि देवानां महान्तं च वदस्व मे ॥ ३६ ॥

विष्णुरुवाच

विष्णुमायाबलेनैव मोहितं भुवनत्रयम् ।

ततो ब्रह्मोवाच चेदं न त्वं जानासि भो विभोः ॥ ३७ ॥
नैव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च । गर्वहिंसापरो देवो जगद्धर्ता जगत्प्रभुः ॥
ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः खिलाः ।
ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धःप्रस्फुरिताननः ॥ ३६ ॥
उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणुमेवचः । येन वक्त्रेण सभायां वचनंसमुदीरितम्
तच्छीर्षं पततादाशु चाल्पकालेन वै पुनः । ततो हाहाकृतं सर्वं सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः
ब्रह्माणं क्षमयामासुर्विष्णुं प्रति सुरोत्तमाः ।
विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भविष्यति ॥ ४२ ॥
ततो विष्णुर्महातेजास्तीर्थस्योत्पादनेन च । तपस्तेपेतु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः
अश्वशीर्षमुखं दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्द्दनः ॥ ४३ ॥
तपस्तेपे महाभाग! विधिनासह भारत । न शक्यं केनचित्कर्त्तुमात्मनात्मैवतुष्टवान्
ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् । तिष्ठन्नेवपुरोविष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः
यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः । ब्रह्मंस्ते मुक्तताद्यास्ति ममभायाप्यदुःसहा
ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्द्दनः । उवाचमधुरां वाचं सर्वेषां हितकारणात्
अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यंपापप्रणाशनम् । विधिविष्णुमयं चैतद्भवत्वेतन्न संशयः ॥
तीर्थस्य महिमाराजन्हयशीर्षस्तदा हरिः । शुभाननो हि सञ्जातःपूर्वेणैवाननेन तु ॥
कन्दर्पकोटिलावण्यो जातःकृष्णस्तदा नृप ।
ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्यं वर्षशतत्रयम् ॥ ५० ॥
सावित्र्या च कृतं यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
मायया तु कृतं शीर्षं पञ्चमं शार्दुलस्य वा ॥ ५१ ॥
धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदितं पुरा । तस्मै दत्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शनं ततः
स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थञ्चैवत्रिलोचनम् । मुक्तेशंनामदेवस्यमोक्षतीर्थमरिन्दम
गतःसोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरसेवितम् । तत्रप्रेतादिवं यान्तितर्पणेनप्रतर्पिताः
अश्वमेधफलंस्नाने पानेगोदानजं फलम् । पुष्कराद्यानितीर्थानिगङ्गाद्याःसरितस्तथा

स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवताःपितरस्तथा । कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेमुकेशंपूजयेत्तुयः

स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्द्दनम् ।

यः करोति नरो भक्त्या सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ।

अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥ ५८ ॥

एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि । तद्दोषंनाशयेन्नूनंप्रजाप्तिप्रतिबन्धकम्

मोक्षेश्वरप्रसादेन पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् । दद्याद्वैकेन चित्तेन फलानि सत्यसंयुता ॥

निधाय वंशपात्रेऽपि नारीदोषात्प्रमुच्यते ।

प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफलं नृप ॥ ६१ ॥

वेधाहरिर्हरश्चैव तप्यन्ते परमं तपः । धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वादेवसरस्यथ ॥

तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ।

तत्र साङ्गं जपं कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ६३ ॥

एवं क्षेत्रं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये । यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितृणां श्रद्धयान्वितः

उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् । देवसरो महारम्यं नानापुष्पैः समन्वितम्

श्यामं सकलकल्हारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः ॥ ६५ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुषैः । सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम्

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ।

तस्य रूपं प्रकारञ्च कथयस्व यथातथम् ॥ ६७ ॥

व्यास उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ! धर्मपुत्र! युधिष्ठिर !। यस्यसङ्कीर्तनान्नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम् । पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तम !

महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् । लहर्यादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम्

झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ।

शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ॥ ७१ ॥
वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाद्यैश्च वेष्टितम् । चक्रवाकसमोपेतंबकसारसटिट्टिभैः ॥ ७२
कमनीयप्रगन्धाच्छच्छत्रपत्रैः सुशोभितम् ।
सेव्यमानं द्विजैःसर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥ ७३ ॥
सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप । सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७४
अनादिनिधनोपेतं सेवितं सिद्धमण्डलैः । स्नानादिभिः सर्वदैवतत्सरोनृपसत्तम !
विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गञ्च तत्तटे । प्रेता नैव कुले तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश
कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्रभूपते !। ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोकेयावदाभूतसम्प्लवम्
महिषीं गृहदासीं च सुरभीं सुतसंयुताम् । हेमविद्यां तथा भूमिं रथांश्चगजवाससी
ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षयंस्वर्गमश्नुते । देवखातस्यमाहात्म्यंयःपठेच्छिवसन्निधौ
दीर्घमायुस्तथा सौख्यं लभते नात्र संशयः ॥ ७६ ॥
यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ।
कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर !॥ ८० ॥
एतत्सर्वं मयाख्यातं हयग्रीवस्य कारणम् । प्रभावस्तस्यतीर्थस्यसर्वपापापनुत्तये
इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये हयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

# षोडशोऽध्यायः

## नानाशक्तिस्थापनपूर्वकमानन्दास्थापनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

रक्षसां चैव दैत्यानां यक्षाणामथ पक्षिणाम् ।
भयनाशाय काजेशैर्धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ १ ॥
शक्तीः संस्थापिता नूनं नाना रूपा ह्यनेकशः ।
तासां स्थानानि नामानि यथारूपाणि मे वद ॥ २ ॥

व्यास उवाच

शृणुपार्थ! महाबाहोधर्ममूर्तेनृपोत्तम !। स्थाने वैस्थापिताशक्तिःकाजेशैश्चैवगोत्रपा
श्रीमाता मदारिकायां शान्ता नन्दापुरे वरे ।
रक्षार्थं द्विजमुख्यानां चतुर्दिक्षु स्थिताश्च ताः ॥ ४ ॥
युक्ताश्चैवसुरैःसर्वैःस्वस्वस्थाने नृपोत्तम । वनमध्येस्थिताःसर्वाद्विजानांरक्षणायवै
सा बभूव महाराज ! सावित्रीति प्रथाशिवा ।
असुराणां वधार्थाय ज्ञानजा स्थापिता सुरैः ॥ ६ ॥
गायत्री पक्षिणी देवी छत्रजा द्वारवासिनी । शीहोरी चूटसंज्ञायापिपलाशापुरीतथा
अन्याश्च बहवश्चैव स्थापिता भयरक्षणे ॥ ७ ॥
प्रतीच्योदीच्यां याम्यां वै विबुधैः स्थापिता हि सा ।
नानायुधधरा सा च नानाभरणभूषिता ॥ ८ ॥
नानावाहनमारूढा नानारूपधरा च सा । नानाकोपसमायुक्ता नानाभयविनाशिनी ॥
स्थाप्या मातर्यथास्थाने यथायोग्या दिशोदश । गरुडेन समारूढात्रिशूलवरधारिणी
सिंहारूढा शुद्धरूपा वारुणी पानदर्पिता । खड्गखेटकबाणाढ्यैः करैर्भाति शुभानना
रक्तवस्त्रावृता चैव पीनोन्नतपयोधरा । उद्यदादित्यबिम्बाभा मदाघूर्णितलोचना ॥

एवमेषा महाविद्याकाजेशैःस्थापितातदा । रक्षार्थंसर्वजन्तूनांसत्यमन्दिरवासिनाम्
सादेवीनृपशार्दूल!स्तुतासम्पूजितासदा। ददातिसकलान्कामान्वाञ्छितान्नृपसत्तम
धर्मारण्यात्पश्चिमतः स्थापिता छत्रजा शुभा ।
तत्रस्था रक्षते विप्रान्क्रियच्छक्तिसमन्विता ॥ १५ ॥
भैरवं रूपमास्थाय राक्षसानां वधाय च । धारयन्त्यायुधानीत्थं विप्राणामभयायच
सरश्चकार तस्याग्रे उत्तमंजलपूरितम् । सरस्यस्मिन्महाभाग कृत्वास्नानादितर्पणम्
पिण्डदानादिकंसर्वमक्षयं चैव जायते । भूमौ क्षिप्ताञ्जलीन्दिव्यान्धूपदीपादिकं सदा
तस्य नोबाधनेव्याधिःशत्रूणांनाशएव च । बलिदानादिकंतत्रकुर्याद्भूयःस्वशक्तितः
शत्रवो नाशमायान्तिधनंधान्यं विवर्धते । आनन्दास्थापिताराजञ्छक्त्यंशाचमनोरमा
रक्षणार्थं द्विजातीनां माहात्म्यं शृणुभूपते !। शुक्लांबरधरा दिव्या हेमभूषणभूषिता
सिंहारूढा चतुर्हस्ता शशाङ्ककृतशेखरा । मुक्ताहारलतोपेता पीनोन्नतपयोधरा ॥ २२
अक्षमालासिहस्ता च गुणतोमधारिणी । दिव्यगन्धाम्बरधरादिव्यमालाविभूषिता
सात्त्विकी शक्तिरानन्दास्थिनातस्मिन्पुरे पुरा । पूजयेत्तांचवैराजन्कर्पूरारक्तचन्दनैः
भोजयेत्पायसैः शुभ्रैर्मध्वाज्यसितया सह । भवान्याः प्रीतयेराजन्कुमार्याःपूजनंतथा
तत्र जप्तं हुतं दत्तं ध्यानं च नृपसत्तम !। तत्सर्वं चाक्षयं तत्र जायते नात्र संशयः ॥
त्रिगुणेत्रिगुणावृद्धिस्तस्मिन्स्थानेनृपोत्तम !। साधकस्यभवेन्नूनंधनदारादिसम्पदः
न हानिर्न च रोगश्चन शत्रुर्नच दुष्कृतम् । गावस्तस्यविवर्द्धन्तेधनधान्यादिसङ्कुलम्
न शाकिन्या भयं तस्य न च राज्ञश्च वैरिणः । नचव्याधिभयंचैवसर्वत्रविजयीभवेत्
विद्याश्चतुर्दशास्यैव भासन्ते पठिता इव । सूर्यवद्द्योतते भूमावानन्दामाश्रितो नरः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वार्धे धर्मारण्यमाहात्म्य आनन्दास्थापनवर्णनं नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः

### श्रीमातामाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

दक्षिणेस्थापिताराजञ्छान्तादेवीमहाबला । साविचित्राम्बरधरावनमालाविभूषिता
तामसी सा महाराज मधुकैटभनाशिनी । विष्णुनातत्र वै न्यस्ताशिवपत्नीनृपोत्तम
सा चैवाष्टभुजा रम्या मेघश्यामा मनोरमा । कृष्णाम्बरधरादेवीव्याघ्रवाहनसंस्थिता
द्वीपिचर्मपरीधाना दिव्याभरणभूषिता । घण्टात्रिशूलाक्षमालाकमण्डलुधरा शुभा
अलङ्कृतभुजा देवीसर्वदेवनमस्कृता । धनं धान्यंसुतान्भोगान्स्वभक्तेभ्यःप्रयच्छति
पूजयेत्कमलैर्दिव्यैः कर्पूरागरुचन्दनैः । तदुद्देशेन तत्रैव पूजयेद्द्विजसत्तमान् ॥६॥
कुमारीर्भोजयेदन्नैर्विविधैर्भक्तिभावतः । धूपैर्दीपैः फलैः रम्यैः पूजयेच्च सुरादिभिः
मांसैस्तुविविधैर्दिव्यैरथवाधान्यपिष्टजैः । अन्यैश्चविविधैर्धान्यैःपायसैर्वटकैस्तथा
ओदनैः कृशरापूपैः पूजयेत्सुसमाहितः । स्तुतिपाठेन तत्रैव शक्तिस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥
रिपवस्तस्य नश्यन्ति सर्वत्र विजयीभवेत् । रणे राजकुले द्यूते लभते जयमङ्गलम्

सौम्या शान्ता महाराज स्थापिता कुलमातृका ।
श्रीमाता सा प्रसिद्धा च माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ ११ ॥

कुलमाता महाशक्तिस्तत्रास्ते नृपसत्तम । कुमारी ब्रह्मपुत्री सारक्षार्थं विधिनाकृता

स्थानमाता च सा देवी श्रीमाता सान्निधानतः ।
त्रिरूपा सा द्विजातीनां निर्मिता रक्षणाय च ॥ १३ ॥

कमण्डलुधरा देवी घण्टाभरणभूषिता । अक्षमालायुता राजञ्छुभ्रा सा शुभरूपिणी
कुमारी चादिमाता च स्थानत्राणकरापि च । दैत्यघ्नीकामदाचैवमहामोहविनाशिनी

भक्तिगम्या च सा देवी कुमारी ब्रह्मणः सुता ।
रक्ताम्बरधरा साधुरक्तचन्दनचर्चिता ॥ १६ ॥

रकमाल्या दशभुजा पञ्चवक्त्रा सुरेश्वरी । चन्द्रावतंसिका माता सुरासुरनमस्कृता
साक्षात्सरस्वतीरूपा रक्षार्थं विधिना कृता ।
ॐकारा सा महापुण्या काजेशेन विनिर्मिता ॥ १८ ॥
ऋषिभिः सिद्धयक्षादिसुरपन्नगमानवैः । प्रणम्याङ्घ्रियुगातेभ्योददातिमनसेप्सितम्
पालयन्ती च संस्थानं द्विजातीनां हिताय वै ।
यथौरसान्सुतान्माता पालयन्तीह सद्गुणैः ॥ २० ॥
अथपालयती देवी श्रीमाता कुलदेवता । उपद्रवाणि सर्वाणि नाशयेत्सततं स्तुता
सर्वविघ्नोपशमनी श्रीमाता स्मरणेन हि । विवाहे चोपवीते च सीमन्ते शुभकर्मणि
सर्वेषु भक्तकार्येषु श्रीमाता पूज्यते सदा । यथा लम्बोदरं देवं पूजयित्वा समारभेत्
कार्यं शुभं सर्वमपि तथा श्रीमातरं नृप ।। यत्किञ्चिद्भोजनंतत्रब्राह्मणेभ्यःप्रयच्छति
अथवा विनिवेद्यं च क्रियतेयत्परस्परम् । अनिवेद्यच तां राजन्कुर्वाणोविघ्नमेष्यति
तस्मात्तस्यै निवेद्याथ ततः कर्म समारभेत् ।
तद्वरेणाखिलं कर्म अविघ्नेन हि सिद्ध्यति ॥
हेमन्ते शिशिरे प्राप्ते पूजयेद्धर्मपुत्रिकाम् ॥ २६ ॥
हेमपत्रे समालिख्य राजते वाथकारयेत् । पादुकांचोत्तमां राजञ्छ्रीमातायै निवेदयेत्
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा तिलामलकमिश्रितैः ।
वासोभिः सुमनोभिश्च दुकूलैः सुमनोहरैः ॥ २८ ॥
लेपयेच्चन्दनैः शुभ्रैःकुङ्कुमैः सिन्दुरादिकैः । कर्पूरागुरुकस्तूरीमिश्रितैः कर्दमैस्तथा॥
कर्णिकारैश्च कह्लारैःकरवीरैः सितारुणैः । चम्पकैः केतकीभिश्च जपाकुसुमकैस्तथा
यक्षकर्दमकैश्चैव बिल्वपत्रैरखण्डितैः । पालाशजातिपुष्पैश्च वटकैर्मासम्भवैः ॥
पूपभक्तादिदालीभिस्तोषयेच्छाकसञ्चयैः ॥ ३१ ॥
धूपदीपादिपूर्वं तु पूजयेज्जगदम्बिकाम् । तद्दिने च कुमारीर्वै विप्रानपि च भोजयेत् ॥
पायसैर्घृतयुक्तैश्च शर्करामिश्रितैर्नृप ॥ ३२ ॥
पक्वान्नैर्मोदकाद्यैश्च तर्पयेद्भक्तिभावतः । तर्प्यमाणे द्विजैकस्मिन्सहस्रफलमश्नुते ॥

दैत्यानांघातकंस्तोत्रंवाचयेच्चपुनःपुनः । एकाग्रमानसोभूत्वास्तौतिश्रीमातरंतुयः
तस्यतुष्टावरं दद्यात्स्नापितापूजितास्तुता । अनिष्टानिचसर्वाणिनाशयेद्धर्मपुत्रिका
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनवान्भवेत् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं विद्यार्थी लभते च ताम् ॥ ३६ ॥
श्रियोर्थीलभतेलक्ष्मींभार्यार्थीलभतेचताम् । प्रसादाच्चसरस्वत्यालभतेनात्रसंशयः
अन्ते च परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं सरस्वत्याः प्रसादतः ॥ ३८ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्रयांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये श्रीमातामाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

## अष्टादशोऽध्यायः

### मातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनम्

रुद्र उवाच

श्रृणु स्कन्द! महाप्राज्ञ ह्यद्भुतं यत्कृतंमया । धर्मारण्ये महादुष्टोदैत्यःकर्णाटकाभिधः
निभृतं हि समागत्यदम्पत्योर्विघ्नमाचरत् । तं दृष्ट्वा तद्भयाल्लोकः प्रदुद्राव निरन्तरम्
त्यक्त्वा स्थानं गताः सर्वे वणिजो वाडवादयः ।
मातङ्गीरूपमास्थाय श्रीमात्रा त्वनया सुत !॥ ३ ॥
हतः कर्णाटकोनामराक्षसो द्विजघातकः । तदासर्वेऽपि वै विप्राहृष्टास्ते तेनकर्मणा
स्तुवन्तिपूजयन्तिस्म वणिजो भक्तितत्पराः । वर्षेवर्षेप्रकुर्वन्ति श्रीमातापूजनंशुभम्
शुभकार्येषु सर्वेषु प्रथमं पूजयेत्तु ताम् । न स विघ्नं प्रपश्येत तदाप्रभृतिपुत्रक ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच

कोऽसौ दुष्टो महादैत्यः कस्मिन्वंशो समुद्भवः ।
किं किं तेन कृतं तात! सर्वं कथय सुव्रत !॥ ७ ॥

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कर्णाटकविचेष्टितम् । देवानांदानवानांयोदुःसहोवीर्यदर्पितः
दुष्टकर्मादुराचारो महाराष्ट्रोमहाभुजः । जित्वाचसकलाँल्लोकांस्त्रैलोक्येचगतागतः
यत्र देवाश्च ऋषयस्तत्र गत्वा महासुरः । छद्मना वा बलेनैव विघ्नं प्रकुरुते नृप !॥
न वेदाध्ययनं लोके भवेत्तस्य भयेन च । कुर्वते वाडवा देवा न च सन्ध्याद्युपासनम्
न क्रतुर्वर्तते तत्र न चैव सुरपूजनम् । देशेदेशे च सर्वत्र ग्रामेग्रामे पुरेपुरे ॥ १२ ॥
तीर्थेतीर्थे च सर्वत्र विघ्नं प्रकुरुतेऽसुरः । परन्तु शक्यते नैव धर्मारण्ये प्रवेशितम् ॥
भयाच्छक्त्याश्च श्रीमातुर्दानवोविकृवस्तदा । केनोपायेनतत्रैवगम्यतेत्विवतिचिन्तयन्
विघ्नंकरिष्येहिकथंब्राह्मणानांमहात्मनाम् । वेदाध्ययनकर्तॄणां यज्ञकर्माधितिष्ठताम्
वेदाध्ययनजं शब्दं श्रुत्वा दूरात्स दानवः । विव्यथे स यथा राजन्वज्राहत इव द्विपः

निःश्वासान्मुमुचे रोषाद्दन्तैर्दन्तांश्च घर्षयन् ।
दशमानो निजावोष्ठौ पेषयंश्च करावुभौ ॥ १७ ॥

उन्मत्तवद्विचरत इतश्चेतश्च मारिष । सन्निपातस्य दोषेण यथा भवति मानवः ॥ १८
तथैव दानवो घोरो धर्मारण्यसमीपगः । भ्रमते द्रवते चैव दूरादेव भयान्वितः ॥ १९
विवाहकालेविप्राणां रूपंकृत्वाद्विजन्मनः । तत्रागत्यदुराधर्षोनीत्वा दाम्पत्यमुत्तमम्
उत्पपात महीपृष्ठाद्गगने सोऽसुराधमः । स्वयं च रमतेपापो द्वेषाज्जातिस्वभावतः ॥
एवं च बहुशःसोऽथ धर्मारण्याच्च दम्पती । गृहीत्वा कुरुते पापं देवानामपिदुःसहम्
विघ्नंकरोतिदुष्टोऽसौ दम्पत्योः सततं भुवि । महाघोरतरं कर्म कुर्वंस्तस्मिन्पुरेवरे

तत्रोद्विग्ना द्विजाः सर्वे पलायन्ते दिशो दश ।
गताः सर्वे भूमिदेवास्त्यक्त्वा स्थानं मनोरमम् ॥ २४ ॥

यत्रयत्र महातीर्थं तत्रतत्र गता द्विजाः । उद्वसं तत्पुरं जातं तस्मिन्काले नृपोत्तम
न वेदाध्ययनं तत्र न च यज्ञः प्रवर्तते । मनुजास्तत्र तिष्ठन्ति न कर्णाटभयार्दिताः ॥

द्विजाःसर्वेततो राजन्वणिजश्चमहायशाः । एकत्रमिलिताः सर्वेवक्तुंमन्त्रंयथोचितम्
कर्णाटस्यवधोपायं मन्त्रयन्तिद्विजर्षभाः । विचार्यमाणेतैर्दैवाद्वाग्जाताचाशरीरिणी
आराधयत श्रीमातांसर्वदुःखापहारिणीम् । सर्वदैत्यक्षयकारीं सर्वोपद्रवनाशनाम् ॥

तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे हर्षव्याकुललोचनाः ।
श्रीमातां तु समागत्य गृहीत्वा बलिमुत्तमम् ॥ ३० ॥

मधु क्षीरं दधि घृतं शर्करा पञ्चधारया । धूपं दीपं तथा चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥
फलानिविविधान्येव गृहीत्वावाडवानृप । धान्यंतुविविधं राजन्भक्तापूपाघृताचिताः
कुल्माषावटकाश्चैवपायसंघृतमिश्रितम् । सोहालिकादीपिकाश्चसार्द्राश्च वटकास्तथा

राजिकाभिश्च संलिप्ता नवच्छिद्रसमन्विताः ।
चन्द्रबिम्बप्रतीकाशा मण्डकास्तत्र कल्पिताः ॥ ३४ ॥

पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा गन्धोदकेन च । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्तोषयामासुरीश्वरीम् ॥
नाराजनैः सकर्पूरैः पुष्पैर्दीपैः सुचन्दनैः । श्रीमातातोषिता राजन्सर्वोपद्रवनाशिनी

श्रीमाता च जगन्माता ब्राह्मी सौम्या वरप्रदा ।
रूपत्रयं समास्थाय पालयेत्सा जगत्त्रयम् ॥ ३७ ॥
त्रयीरूपेण धर्मात्मन्रक्षते सत्यमन्दिरम् ।
जितेन्द्रिया जितात्मानो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥

तैः सर्वैरर्चिता माता चन्दनाद्येन तोषिता । स्तुतिमारेभिरेतत्र वाङ्मनःकायकर्मभिः

एकचित्तेन भावेन ब्रह्मपुत्र्याः पुरः स्थिताः ॥ ३९ ॥

विप्रा ऊचुः

नमस्तेब्रह्मपुत्र्यास्तु! नमस्ते ब्रह्मचारिणि! । नमस्तेजगतां मातर्नमस्ते सर्वगे! सदा

क्षुन्निद्रा त्वं तृषा त्वं च क्रोधतन्द्रादयस्तथा ।
त्वं शान्तिस्त्वं रतिश्चैव त्वं जया विजया तथा ॥ ४१ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्वंप्रपन्ना सुरेश्वरि !। सावित्रीश्रीरुमाचैवत्वंचमाताव्यवस्थिता

ब्रह्मविष्णुसुरेशानास्त्वदाधारे व्यवस्थिताः ।

नमस्तुभ्यं जगन्मातर्धृतिपुष्टिस्वरूपिणि !॥ ४३ ॥
रतिःक्रोधा महामाया छायाज्योतिः स्वरूपिणि !।
सृष्टिस्थित्यन्तकृद्देवि! कार्यकारणदा सदा ॥ ४४ ॥
धरातेजस्तथावायुः सलिलाकाशमेव च । नमस्तेऽस्तु महाविद्ये! महाज्ञानमयेऽनघे!
ह्रीङ्कारीदेवरूपा त्वं क्लीङ्कारी त्वं महाद्युते !।
आदिमध्यावसाना त्वं त्राहि चास्मान्महाभयात् ॥ ४६ ॥
महापापोहि दुष्टात्मा दैत्योऽयंबाधतेऽधुना । त्राणरूपात्वमेकाचअस्माकं कुलदेवता
त्राहित्राहि महादेवि! रक्षरक्षमहेश्वरि! । हन हन दानवं दुष्टं द्विजानां विघ्नकारकम्
एवंस्तुता तदादेवी महामाया द्विजन्मभिः । कर्णाटस्यवधार्थायद्विजातीनांहितायच
प्रत्यक्षा साऽभवत्तत्र वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४९ ॥

श्रीमातोवाच

केन वै त्रासिताविप्राःकेनत्रोद्वेजिताःपुनः । तस्याहंकुपिताविप्राः!नयिष्येयमसादनम्
क्षीणायुषं नरं वित्तयेन यूयं निपीडिताः । ददामि वो द्विजातिभ्योयथेष्टंवक्तुमर्हथ
भक्त्याहि भवता विप्राः! करिष्ये नात्र संशयः ॥ ५२ ॥

द्विजा ऊचुः

कर्णाटाख्यो महारौद्रोदानवोमदगर्वितः । विघ्नंप्रकुरुतेनित्यं सत्यमन्दिरवासिनाम्
ब्राह्मणान्सत्यशीलांश्च वेदाध्ययनतत्परान् । द्वेषाद्द्वेष्टिद्वेषणस्तान्नित्यमेव महामते
वेदविद्वेषणो दुष्टो घातयैनं महाद्युते !॥ ५४ ॥

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा तु सादेवीप्रहस्यकुलदेवता । वधोपायंविचिन्त्यास्यभक्तानांरक्षणायवै
ततः कोपपरा जाता श्रीमाता नृपसत्तम । कोपेन भृकुटींकृत्वा रक्तनेत्रान्तलोचनाम्
कोपेन महताऽऽविष्टा वमन्तीपावकंयथा । महाज्वालामुखाक्षित्रानासाकर्णाश्चभारत
तत्तेजसा समुद्भूता मातङ्गी कामरूपिणी । कालीकरालवदनादुर्दर्शवदनोज्ज्वला
रक्तशलयाम्बरधरा मदाघूर्णितलोचना । न्यग्रोधस्यसमीपेसा श्रीमातासंश्रिता तदा

अष्टादशभुजा सा तु शुभमाता सुशोभना। धनुर्बाणधरा देवी खड्गखेटकधारिणी
कुठारं क्षुरिकां बिभ्रत्त्रिशूलं पानपात्रकम्। गदां सर्पञ्च परिघं पिनाकं चैवपाशकम्
अक्षमालाधरा राजन्मधुकुम्भानुधारिणी। शक्तिं च मुसलं घोरं कर्त्तरीं खर्परं तथा
कण्टकाढ्यां च बदरीं बिभ्रती तु महानना। तत्राभवन्महायुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्॥
मातङ्ग्याः सह कर्णाटदानवेन नृपोत्तम!॥ ६४॥

युधिष्ठिर उवाच

कथं युद्धं समभवत्कथं चैवाऽपवर्तत। जितं केनैव धर्मज्ञ! तन्ममाचक्ष्व मारिष!॥

व्यास उवाच

एकदा शृणु राजेन्द्र! यज्जातं दैत्यसङ्करे। तत्सर्वं कथयाम्याशु यथावृत्तं हि तत्पुरा
प्रणष्टयोषा ये विप्रा वणिजश्चैव भारत। चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते धर्मारण्ये नृपोत्तम!
गौरीमुद्वाहयामासुर्विप्रास्ते संशितव्रताः। स्वस्थानंसुशुभंज्ञात्वातीर्थराजंतथोत्तमम्
विवाहं तत्र कुर्वन्तो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः।
कोटिकन्याकुलं तत्र एकत्रासीन्महोत्सवे॥
धर्मारण्ये महाप्राज्ञ! सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ६६॥
चतुर्थ्यामपरात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमादधुः। आसनं ब्रह्मणे दत्त्वाअग्निकृत्वाप्रदक्षिणम्
स्थालीपाकं च कृत्वाऽथ कृत्वा वेदीः शुभास्तदा।
चतुर्हस्ताः सकलशा नागपाशसमन्विताः॥ ७१॥
वेदमन्त्रेण शुभ्रेण मन्त्रयन्ते ततो द्विजाः। चरतांदम्पतीनांहि परिवेश्ययथोचितम्
ब्रह्मणा सहितास्तत्र वाडवास्ते सुहर्षिताः। कुर्वते वेदनिर्घोषं तारस्वरनिनादितम्
तेन शब्देन महता कृत्स्नमापूरितं नभः। तं श्रुत्वादानवो घोरो वेदध्वनिं द्विजेरितम्
उत्पपातासनात्तूर्णं ससैन्यो गतचेतनः। धावतः सर्वभृत्यांस्तु ये चान्येतानुवाचसः
श्रूयतां कुत्र शब्दोऽयं वाडवानां समुत्थितः। तस्य तद्वचनंश्रुत्वादैतेयाःसत्वरंययुः
विभ्रान्तचेतसः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः। धर्मारण्येगताःकेचित्तत्र दृष्ट्वा द्विजातयः
उद्गिरन्तो हि निगमान्विवाहसमये नृप!। सर्वं निवेदयामासुः कर्णाटाय दुरात्मने

तच्छ्रुत्वा रक्तताम्राक्षो द्विजद्विट् कोपपूरितः ।
अभ्यधावन्महाभाग यत्र ते दम्पती नृप ॥ ७६ ॥

खमाश्रित्य तदा दैत्यमायां कुर्वन्स राक्षसः । अहरद्दम्पतीराजन्सर्वालङ्कारसंयुतान्
ततस्ते वाडवाः सर्वे सङ्गता भुवनेश्वरीम् । बुम्बारवंप्रकुर्वाणास्त्राहित्राहीतिचोचिरे
तच्छ्रुत्वा विश्वजननी मातङ्गी भुवनेश्वरी । सिंहनादं प्रकुर्वाणात्रिशूलवरधारिणी
ततः प्रववृते युद्धं देवीकर्णाटयोस्तथा । ऋषीणां पश्यतांतत्रवणिजांचद्विजन्मनाम्
पश्यतामभवयुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । अस्त्रैश्चिच्छेद मातङ्गीमदविह्वलितं रिपुम् ॥

सोऽपि दैत्यस्ततस्तस्य बाणेनैकेन वक्षसि ।
असावपि त्रिशूलेन घातितःकश्मलं गतः ॥ ८५ ॥
मुष्टिभिश्चैव तां देवीं सोऽपि ताडयतेऽसुरः ।
सोऽपि देव्या ततः शीघ्रं नागपाशेन यन्त्रितः ॥ ८६ ॥

ततस्तेनैव दैत्येन गरुडास्त्रं समादधे । तया नारायणास्त्रं तु मन्दधे शरपातनम् ॥
एवमन्योन्यमाकृष्य युध्यमानौ जयेच्छया । ततः परिघमादाय आयसं दैत्यपुङ्गवः
मातङ्गीं प्रति सक्रुद्धो जघान परवीरहा । देवी क्रुद्धा मुष्टिपातैश्चूर्णयामास दानवम् ॥
तेन मुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो निपपात ह । ततस्तु सहसोत्थाय शक्तिं धृत्वा करेमुदा
शतघ्नीं पातयामास तस्याउपरिदानवः । शक्तिं चिच्छेदसादेवी मातङ्गीचशुभानना
जहासोच्चैस्तुसासुभ्रःशतघ्नींवज्रसन्निभाम् । एवमन्योन्यशस्त्रौघैर्दयन्तौपरस्परम्

ततस्त्रिशूलेन हतो हृदये निपपात ह ।
मूर्च्छां विहाय दैत्योऽसौ मायां कृत्वा च राक्षसीम् ॥ ९३ ॥

पश्यतां तत्र तेषां तु अदृश्योऽभून्महासुरः । पपौ पानंततो देवी जहासारुणलोचना

सर्वत्रगं तं सा देवी त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ९५ ॥

क्वयास्यसीतिब्रूतेसाब्रूहित्वंसाम्प्रतंहि मे । कर्णाटकमहादुष्ट एहिशीघ्रंहियुध्यताम्
ततोऽभवन्महायुद्ध दारुणं च भयानकम् । पपौ देवी तु मैरेयं वधार्थं सुमहाबला ॥
मातङ्गी अततःक्रुद्धावक्त्रेचिक्षेपदानवम् । ततोऽपि दानवोरौद्रोनासारन्ध्रेणनिर्गतः

युध्यते स पुनर्दैत्यः कर्णाटो मदपूरितः । ततो देवी प्रकुपिता मातङ्गी मदपूरिता ॥
दशनैर्मथयित्वा च चर्वयित्वा पुनःपुनः । शवास्थिमेदसायुक्तं मज्जामांसादिपूरितम्
नखरोमाभिसंयुक्तं प्रक्षिप्य चोदरेऽसुरम् । करैकेण मुखं रुद्धं करेणैकेन नासिकाम् ॥
ततोमहाबलो दैत्यः कर्णरंध्रेण निर्गतः । ततस्तया महादेव्या नाम चक्रे तदाभुवि ॥
कर्णरन्ध्रप्रसूतोऽयं कर्णाटेति विदुर्बुधाः । पुनर्युद्धार्थमायातोदैत्यो हि बलदर्पितः॥
गर्जमानोसुरस्तत्र सायुधो युधि संस्थितः । तं दृष्ट्वादुःसहं दैत्यंविमृश्यच पुनःपुनः
वधोपायंहि मातङ्गी चिन्तयामास भारत । यदा चिन्तयते देवी मातङ्गी मदपूरिता

मायारूपं समास्थाय कर्णाटः कुसुमायुधः ।
गौरश्चाम्बुजपत्राक्षस्तथा षोडशवार्षिकः ॥ १०६ ॥
अभ्येत्य देवीं ब्रूते स्म मां त्वं वरय शोभने !॥ १०७॥

श्रीमातोवाच

साधु चेदं त्वया प्रोक्तं दैत्यराजसुनिश्चितम् । रूपेण सदृशो नान्योविद्यते भुवनत्रये
प्रतिज्ञा मे कृता पूर्वंश्रुता किमसुरोत्तम !। ममानुजाशुभाश्यामा विवाहे विघ्नकारिणी

पित्रा मे स्थापिता दैत्य रक्षार्थं हि द्विजन्मनाम् ।
केवलं श्यामलाङ्गी सा सर्वलोकहितावहा ॥ ११० ॥
न कश्चिद्वरयेत्कन्यामित्युक्त्वा स्थापिता तु सा ।
कथयाशु तव शुभं श्रुत्वोपायं करोम्यहम् ॥ १११ ॥

भगिनी मेऽस्ति दैत्येन्द्र श्यामलाह्यपरिग्रहा । त्वयार्थं रक्षिता शूर तां च पूर्वेणचोद्वह

स पिता तां महावीर! दास्यते वै शुभामिमाम् ।
गच्छ त्वं म्रियतां ह्येव श्यामला कोपसंयुता ॥ ११३ ॥
ततः कर्णाटकः क्रुद्धो गृहीत्वा शक्तिमूर्जिताम् ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा श्यामलानिधनेच्छया ॥ ११४ ॥

आगतं चासुरं दृष्ट्वा श्यामला सुमहामनाः । विवाहार्थं परं ज्ञात्वाऽभिप्रायं दुष्टचेतसः
महायुद्धमभूत्तत्र श्यामलाऽसुरवर्ययोः । मासत्रयं ततो राजंश्चाभवत्तुमुलं क्षितौ ॥

माघेकृष्णतृतीयायां धर्मारण्ये महारणे । मध्याह्नसमये भूप कर्णाटाख्यो निपातितः
कर्णाटः पतितस्तत्र यत्र देव्या निपातितः । तच्छैलशृङ्गप्रतिमं पपातशिरउत्तमम्
चचाल सकला पृथ्वीसाब्धिद्वीपासपर्वता । ततो विप्राःप्रहृष्टास्ते जयमातरुदैरयन्
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ततोत्सवं प्रकुर्वन्तो गीतं नृत्यं शुभप्रदम् ॥
पायसैर्वटकैश्चैव नैवेद्यैर्मोदकैस्तथा । तुष्टवुःशुभवाण्याते स्थाने मोटेरके वरे ॥

श्रीमती पूजिता सा च सुतसौख्यधनप्रदा ।
महोत्सवे च सम्प्राप्ते मातङ्गीपूजनं हितम् ॥ १२२ ॥

येऽर्चयन्तिस्थापयित्वा धनपुत्रार्थसिद्धये । सुखंकीर्तितथायुष्यंयशःपुण्यंसमाप्नुयुः

व्याधयो नाशमायान्ति चादित्याद्याग्रहाः शुभाः ।
भूतवेतालशाकिन्यो जम्भाद्याः पीडयन्ति न ॥ १२४ ॥

न जायते तथा क्वापि प्रेतादीनांप्रपीडनम् । ततोविप्राःप्रहृष्टाश्च स्तुतिकर्तुंसमुद्यताः
श्रीमातां चैव शक्तीश्च मातङ्गीमस्तुवंस्तदा । श्यामलां च महादेवींहर्षेणमहतायुताः

विप्रा ऊचुः

मातस्त्वमेवमस्माकं रक्षिका स्थानके भव ।
दम्पतीनां हितार्थाय ( स्थातव्यं स्थानकेसदा ) यथा नोद्विजते द्विजाः ॥ १२७ ॥

मातंग्युवाच

तुष्टाऽहंवो महाभागाः स्तवेनानेनवोद्विजाः । वरयध्वं वरंयद्वोमनसासमभीप्सितम्

ब्राह्मणा ऊचुः

दास्यामहे बलिं देवि!यस्तेमनसिवर्तते । अस्माकंचैव दम्पत्यो रक्षार्थंत्वंस्थिरा भव

देव्युवाच

स्वस्थाः सन्तु द्विजाः सर्वे न च पीडा भविष्यति ।
मयि स्थितायां दुर्धर्षा दैत्या येऽन्ये च राक्षसाः ॥ १३० ॥

शाकिनीभूतप्रेताश्चजम्भाद्याश्चग्रहास्तथा । शाकिन्यादिग्रहाश्चैवसर्पाव्याघ्रादयस्तथा
पीडयिष्यन्ति न क्वापि स्थितायां (स्थितानां) मयि ( मम )शासने ।

महोत्सवं यः कुरुते विवाहे समुपस्थिते ॥ १३२ ॥

दम्पत्योश्चहितार्थंहिपूजयेन्मांमुदानरः । तस्याहंसकलां बाधांनाशयिष्याम्यसंशयम्
नाधयो व्याधयश्चैव न क्लेशो नचसम्भ्रमः । प्राप्यतेपरमं सौख्यं यशःपुण्यंधनंसदा
नाकाले मरणं तस्य वातापित्तादिकं नहि ॥ १३४ ॥

विप्रा ऊचुः

केन वा विधिना पूजा नैवेद्यं कीदृशं भवेत् । धूपंच कीदृशं मातःकथं पूजांप्रकल्पयेत्

श्रीदेव्युवाच

श्रूयतां मे वचो विप्राःपत्रे चैव हिरण्मये । लिखित्वापूजयेद्यस्तु चिरायुर्दम्पतीभवेत्
अथवा राजते पत्रे कांस्यपत्रेऽथवा पुनः । अष्टादशभुजा देवी चन्दनेन विचर्चिता
शूर्पं शरैः करे श्वानं पद्मं तु परमं पुनः । कर्त्तरीं कारयेदेकां तूणीरं च धनूंषि च
चर्म पाशं मुद्गरं च कांसालं तोमरं तथा । शङ्खं चक्रं गदांशुभ्रां मुशलं परिघंशुभम्
खट्वाङ्गं बदरीश्चैव अङ्कुशश्च मनोरमम् । अष्टादशायुधैरेभिः संयुता भुवनेश्वरी ॥
लिखेत्सकुण्डलां देवीं बहुनूपुरभूषिताम् । केयूरमुक्तापद्मैश्चमुण्डमालाभिरन्विताम्
मातृकाक्षरपरिवृतामङ्गुलीयकसंयुताम् । नानाभरणशोभाढ्यांलिखित्वाभुवनेश्वरीम्
मातङ्गीमिति विख्यातां प्रतिष्ठार्थं द्विजोत्तमाः ।
चन्दनेन च हृद्येन पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत ॥ १४३ ॥

यक्षकर्दममानीय मातङ्गींपूजयेत्सुधीः । घृतेनबोधयेद्दीपं सप्तवर्तियुतं शुभम् ॥ १४४
धूपयेद्गुग्गुलेनाथ साज्येनाति सुगन्धिना । नालिकेरेणशुभ्रेण दद्यादर्घं च दम्पती
प्रदक्षिणाः प्रकुर्वीत चतुरः सुमनोरमम् । वस्त्रांशुकं गुण्ठयित्वा अग्रेकृत्वाचदम्पती
प्रोक्षिणीकृत्य मातङ्ग्याः प्राश्य माध्वीकमुत्तमम् ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ १४७ ॥

सुवासिनीस्तु तद्रूपा मातङ्गी सम्भवाइति । नृत्यन्तीदम्पतीचाग्रेसर्वोपद्रवशान्तये
नैवेद्यं विविधान्नेन अष्टादशविधं शुभम् । वटकापूपिकाः शुभ्राःक्षीरं शर्करया युतम्
बह्लाकरं वरं पूपा क्षिप्तकुल्माषकं तथा । सोहालिकाभिन्नवटालाप्सिकापद्मचूर्णकम्

शैखेया विमलास्तत्र पर्पटाः शालकादयः। पूरणं तस्य मांसस्य कुर्याच्छुभ्रंमनोरमम्

राजमाषाः सूपचिताः कल्पयेत्तत्र दम्पती।

फेणिका रोपिकास्तत्र कुर्याच्चैव मनोरमाः ॥ १५२ ॥

एतान्यष्टादशान्यानि पक्वान्नानिप्रकल्पयेत्। आज्यशर्करायुक्तानियुक्तानिशाकसञ्चयैः रात्रौ जागरणं कार्यं पूजयेच्च सुवासिनीम्। मुखावलोकनंचाज्येकुर्वीयातांचदम्पती परस्परं हि कुर्वीत उत्पातपरिशान्तये। एवम्विधं मयाऽऽख्यातं मातङ्गीपूजनं शुभम् न पूजयति यो मूढस्तस्य विघ्नं करोति सा। दम्पत्योर्मरणंचाथधननाशंमहाभयम्

क्लेशं रोगं तथा वह्नेः प्रादुर्भावं प्रपश्यति।

एतस्मात्कारणाद्विप्रा मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ १५७ ॥

दम्पतीनाञ्च सर्वेषां द्विजातीनाञ्च शासने। वणिजां च महादेवीनिर्विघ्नंकुरुते सदा तथेति चैव तैरुक्ते पुनर्वचनमब्रवीत्। श्रूयतां ब्राह्मणाः सर्वे विवाहादिमहोत्सवे मदीयवचनं श्रुत्वा तथाकुरुत वै विधिम्। विवाहकालेसम्प्राप्तेदम्पत्योःसौख्यहेतवे निर्विघ्नार्थं तु कर्त्तव्यं निजैश्च सहसेवकैः। अञ्जनं नयनेकुर्यात्सम्बन्धिनां च सर्वशः भ्रूमध्यात्तु प्रकर्त्तव्यमर्द्धचन्द्रसमाकृति। बिन्दुं तु कारयेद्विप्रास्तस्योपरिमनोहरम् एवं कृते तदा विप्राः शान्तिर्भवतिनान्यथा। पुत्रवृद्धिकरं चैतत्तिलकं चार्द्धबिम्बकम्

सर्वविघ्नहरं सर्वदौःस्थ्यव्याधिविनाशनम्।

व्यास उवाच

ततः शान्ताः प्रजाः सर्वा धर्मारण्ये नराधिप !।

प्रसादाच्चैव मातङ्ग्या देव्या वै सत्यमन्दिरे ॥ १६४ ॥

ततोहृष्टहृदा विप्राः पुपूजुस्ते विधेः सुताम्। मातङ्ग्याश्चप्रकर्त्तव्यं वर्षेवर्षेचपूजनम्

माघासिते तृतीयायां भक्ष्यभोज्यादिभिस्तथा।

कर्णाटस्य तथोत्पत्तिः पुनर्जाता तु भूतले ॥ १६६ ॥

भयाच्चैव हि तत्स्थानं त्यक्त्वा याम्यमगात्ततः।

गच्छमानस्तदा दैत्यो यक्षरूपो ह्यभाषत ॥ १६७ ॥

श्रूयताम्भोद्विजाःसर्वेधर्मारण्यनिवासिनः । वणिजश्चमहच्चेदंमद्वाक्यंपरिपाल्यताम्
माघमासे हि मत्प्रीत्या निर्विघ्नार्थं सदा भुवि । त्रिदलेनचधान्येनमूलकेन विशेषतः
तिलतैलेन वा कुर्यात्पुरुषो नियतव्रतः । एकाशनं हिकुरुतेयक्षमप्रीत्यै निरन्तरम् ॥
आबाल्यौवनेनैव वृद्धेनापीह सर्वदा । वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं यक्षमणो व्रतमुत्तमम् १७१
यस्मिन्गृहे हि यावञ्च पुरुषाकाररूपिणः । तस्यव्रतं प्रकुर्युस्त एकभक्तरताः सदा
बालस्यार्थे तु जननी कुरुते व्रतमुत्तमम् । पिता वाप्यथवा भ्राता यन्निमित्तंव्रतं चरेत्
न च तस्य भयं क्वापि न व्याधिर्नच बन्धनम् । भर्तुर्निमित्तेस्त्रीकुर्यादशक्तेत्वितरेणच
एवं समादिशन्दैत्यः सत्यमन्दिरमुत्सृजन् । गतोऽसौयाम्यदिग्भागउदधेस्तीरउत्तमे
विपुलंदेहमासाद्य कर्णाटः स नराधिप! । स्वनाम्ना चैवतंदेशं स्थापयामासचोत्तमम्
यस्मिंश्च सर्ववस्तूनि धनधान्यानि भूरिशः । कर्णाटदेशंतंराजन्परिवार्यचिरंस्थितः

धर्मारण्यकथां पुण्यां कथितां नरसत्तम !।
श्रीमातुश्चैव माहात्म्यं श्रृण्वन्ति श्रावयन्ति ये ॥ १७८ ॥
तेषांकुले कदाचित्तु अरिष्टं नैव जायते । अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनस्तु सम्पदः ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीमातुश्च प्रसादतः ॥ १७६ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये मातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनंनामाऽ-
ष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

## एकोनविंशोऽध्यायः 

### इन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनम्

व्यास उवाच

नरइन्द्रसरे स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्रेश्वरं शिवम् । सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्र संशयः

युधिष्ठिर उवाच

केनचादौ निर्मितं तत्तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् । यथावद्वर्णय त्वं मे भगवन्द्विजसत्तम ॥

व्यास उवाच

इन्द्रेणैव महाराज तपस्तप्तं सुदुष्करम् । ग्रामादुत्तरदिग्भागे शतवर्षाणि तत्र वै ॥
शिवोद्देशं महाघोरमेकाङ्गुष्ठेन भारत !। उर्द्ध्वबाहुर्महातेजाः सूर्यस्याभिमुखोऽभवत् ॥
वृत्रस्य वधतो ज्ञातं यत्पापं तस्य नुत्तये । एकाग्रः प्रयतो भूत्वाशिवस्याराधनेरतः
तपसाच तदाशम्भुस्तोषितःशशिशेखरः । तत्राऽऽजगामजटिलोभस्माङ्गोवृषभध्वजः
खट्वाङ्गी पञ्चवक्त्रश्च दशबाहुस्त्रिलोचनः । गङ्गाधरोवृषारूढो भूतप्रेतादिवेष्टितः
सुप्रसन्नः सुरश्रेष्ठः कृपालुर्वरदायकः । तदा हृष्टमना देवो देवेन्द्रमिदमूचिवान् ॥ ८ ॥

हर उवाच

यत्त्वं याचयसे देव ! तदहं प्रददामि ते ॥ ९ ॥

इन्द्र उवाच

यदि तुष्टोसि देवेश! कृपासिन्धोमहेश्वर !। ब्रह्महत्या हि मां देव उद्वेजयतिनित्यशः
वृत्रासुरस्य हनने जातं पापं सुरोत्तम !। तत्पापं नाशय विभो मम दुःखप्रदं सदा ॥

हर उवाच

धर्मारण्ये सुरपते ब्रह्महत्या न पीडयेत् । हत्या गवांद्विजातीनां बालस्ययोषितामपि
वचनान्मम देवेन्द्र ब्रह्मणः केशवस्य च । यमस्य वचनाज्जिष्णोहत्यानैवात्र तिष्ठति
प्रविश्य त्वं महाराज! अतोऽत्र स्नानमाचर ॥ १३ ॥

इन्द्र उवाच

यदित्वं मम तुष्टोऽसि कृपासिन्धो महेश्वर !! मन्नाम्नाचमहादेवस्थापितोभवशङ्कर!
तथेत्युक्त्वा महादेवः सुप्रसन्नो हरस्तदा । दर्शयामास तत्रैव लिङ्गं पापप्रणाशनम्
कूर्मपृष्ठात्समुत्पाद्य आत्मयोगेन शम्भुना । स्थितस्तत्रैवश्रीकण्ठःकालत्रयविदोविदुः
वृत्रहत्यासमुत्त्रस्तदेवराजस्य सन्निधौ । इन्द्रेश्वरस्तदा तत्र धर्मारण्ये स्थितोनृप
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं लोकानां हितकाम्यया । इन्द्रेश्वरं तु राजेन्द्रपुष्पधूपादिकैः सदा
पूजयेच्च नरोभक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां माघमासे विशेषतः
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं शिवलोके महीयते । नीलोत्सर्गं तु योमर्त्यः करोतिच तदग्रतः
उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् । साङ्गरुद्रजपं यस्तु चतुर्दश्यां करोति वै

सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमं पदम् ॥ २२ ॥

सौवर्णनयनंकृत्वामध्ये रत्नसमन्वितम् । यो ददाति द्विजातिभ्य इन्द्रतीर्थे तथोत्तमे

अन्धता न भवेत्तस्य जन्मानि षष्टिसङ्ख्यया ।

निर्मलत्वं सदा तेषां नयनेषु प्रजायते । महारोगास्तथाचान्येस्नात्वा यान्ति तदग्रतः
पूजिते चैकचित्तेन सर्वरोगात्प्रमुच्यते । स्नात्वा कुण्डे नरोयस्तुसन्तर्पयतियःपितॄन्
तस्य तृप्ताः सदा भूप पितरश्च पितामहाः । ये वै ग्रस्ता महारोगैः कुष्ठाद्यैश्चवदेहिनः
स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहाभवन्ति ते । ज्वरादिकष्टमापन्नाःनराःस्थानमहितायवै
स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहाभवन्ति ते । स्नात्वा चपूजयेद्देवंमुच्यतेज्वरबन्धनात्

एकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थं वा तृतीयकम् ।

विषमज्वरपीडा च मासपक्षादिकं ज्वरम् ॥ २६ ॥

इन्द्रेश्वरप्रसादाच्च नश्यते नात्र संशयः । विज्वरो जायते नूनं सत्यंसत्यं च भूपते ॥

वन्ध्या च दुर्भगा नारी काकवन्ध्या मृतप्रजा ।

मृतवत्सा महादुष्टा स्नात्वा कुण्डे शिवाग्रतः ।

पूजयेदेकचित्तेन स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥

एवंविधांश्च बहुशो वरान्दत्त्वापिनाकधृक् । गतोऽसौस्वपुरंपार्थसेव्यमानःसुरासुरैः

ततः शक्रो महातेजा गतो वै स्वपुरं प्रति । जयन्तेनापि तत्रैवस्थापितंलिङ्गमुत्तमम्
जयन्तस्य हरस्तुष्टस्तस्मिँल्लिङ्गे स्तुतः सदा । त्रिकालं पुत्रसंयुक्तःपूजनार्थंसुरेश्वरः
आयाति च महाबाहो! त्यक्त्वा स्थानं स्वकं हि वै ।
एतत्सर्वं समाख्यातं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥ ३५ ॥
इन्द्रेश्वरे तु यत्पुण्यं जयन्तेशस्य पूजनात् । तदेवाप्नोतिराजेन्द्रसत्यंसत्यं न संशयः
स्नात्वा कुण्डे महाराज सम्पूज्यंकाम्रमानसः । सर्वपापविशुद्धात्माइन्द्रलोकेमहीयते
यः शृणोति नरोभक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते । सर्वान्कामानवाप्नोतिजयन्तेशप्रसादतः
इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्य इन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनं-
नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

# विंशोऽध्यायः

## धराक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

### व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवतीर्थमनुत्तमम् । यत्रासौ शङ्करोदेवः पुनर्जन्मधरोऽभवत्
कीलितो देवदेवेशः शङ्करश्च त्रिलोचनः । गिरिजयामहाभागपातितो भूमिमण्डले
छलितो मुह्यमानस्तु दिवारात्रिंन वेत्ति च । पुंस्त्रीनपुंसकांश्चैवजडीभूतस्त्रिलोचनः
कल्पान्तमिवसञ्जातं तदा तस्मिंश्च कीलिते । पार्वत्यासहसातस्यकृतंकीलनकं तदा

### युधिष्ठिर उवाच

एतदाश्चर्यमतुलं वचनं यत्त्वया रोदितम् । यो गुरुः सर्ववेदानां योगिनां चैव सर्वदा ॥
पार्वत्या कीलितः कस्मात्प्रवृत्तिः शिवः कथम् ।
कारणं कथ्यतां तत्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥

व्यास उवाच

मन्त्रौघा विविधाराजञ्छङ्करेण प्रकाशिताः । पार्वत्यग्रे महाराज! अथर्वणोपवेदजाः

शाकिनी डाकिनी चैव काकिनी हाकिनी तथा ।

एकिनी लाकिनी ह्येताः षड्भेदास्तत्र कीर्तिताः ॥ ८ ॥

बीजान्युद्धृत्य वै ताभ्यो मालाचैकवृताकृता । शम्भुनाकथितावैचपार्वत्यग्रेनृपोत्तम

अन्यैश्चैवाष्टभिर्बीजैर्मन्त्रोद्धारः कृतस्तदा । साधयेत्सामहादुष्टाशाकिनीप्रमदानघा

श्रीपार्वत्युवाच

प्रकाशितास्त्वया नाथ! भेदा ह्येते षडेव हि ।

षड्विधाः शक्तयो नाथ अगम्या योगमालिनीः ।

षड्विधोक्तं त्वयैकेन कूटात्कृतं वदस्व माम् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेव उवाच

अप्रकाशो महादेवि! देवासुरैस्तु मानवैः ॥ १२ ॥

पार्वत्युवाच

नमस्तेसर्वरूपाय! नमस्ते वृषभध्वज !। जटिलेश! नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ!नमोऽस्तुते

कृपासिन्धो! नमस्तुभ्यं नमस्ते कालरूपिणे !।

एतैश्च बहुभिर्वाक्यैः कोमलैः करुणानिधिम् ॥ १४ ॥

तोषयित्वाद्रितनया दण्डवत्प्रणिपत्य च । जग्राह पादयुगलं तां प्रोवाच दयापरः

किमर्थं स्तूयसे भद्रे! याच्यतां मनसीप्सितम् ॥ १६ ॥

पार्वत्युवाच

समाहारं च सन्ध्यानं कथयस्व सविस्तरम् । असन्देहमशेषं च यद्यहं वल्लभा तव

श्रीरुद्र उवाच

न प्रकाश्यं त्वयादेवि समाहारोद्भवं फलम् । सर्वं तत्त्वमहं वक्ष्ये मन्त्रकूटाद्यमेन हि

मायाबीजं तु सर्वेषां कूटानां हि वरानने । सर्वेषांमध्यमोवर्णोबिन्दुनादादिशोभितः

वह्निबीजं सवातं च कूर्मबीजसमन्वितम् । आदित्यप्रभवं बीजं शक्तिबीजोद्भवं सदा

एतत्कूटं चाद्यबीजं द्वितीयं च विमोर्मतम्। तृतीयं चाग्निबीजंतुसंयुक्तंबिन्दुनेन्दुना
चतुर्थं युक्तं शेषेण ब्रह्मबीजमृषिस्तथा। पञ्चमं कालबीजं च षष्ठंपार्थिवबीजकम्॥
सप्तमे चाष्टमे बाह्यं नृसिंहेन समन्वितम्। नवमेद्वितीयमेकं च दशमेचाष्टकूटकम्॥
विपरीतं तयोर्बीजं रुद्राख्ये वरचारिणि। चतुर्दशे चतुर्थ्यर्थं पृथ्वीबीजेन संयुतम्
कूटाःशेषाक्षराः केचिद्रक्षिता मेनकात्मजे। सा पपात यदोर्व्यां हि शिवपत्नीतदानृप
रामेणाश्वासिता तत्र प्रहसंस्त्रिपुरान्तकः। भद्रेकस्मात्त्वमादज्ञातबशक्तिर्भविष्यति
मारणे मोहने वश्ये आकर्षणे च क्षोभणे। यंयंकामयसेनूनं तत्तत्सिद्धिर्भविष्यति॥

इति श्रुत्वा तदा देवी हृष्टचित्ताशुचिस्मिता।
कूटशेषास्ततो वीरा! प्रोक्तास्तस्यै तु शम्भुना॥ २८॥

उवाचचकृपासिन्धुः साधयस्व यथाविधि। कैलासात्तु हरस्तत्रधर्मारण्यंगतोभृशम्
ज्ञात्वा देवी ययौ तत्र यत्रासौवृषभध्वजः। तत्क्षणात्पतितोभूमौधर्मारण्येनृपोत्तम
जटाचन्द्रोरगाः शूलं वृषभाद्यायुधानि वै। मुण्डमाला च कौपीनंकपालं ब्रह्मणस्तु वै
गता गणाश्च सर्वत्र भूतप्रेता दिशोदश। विसञ्ज्ञंचस्वमात्मानं ज्ञात्वादेवोमहेश्वरः
स्वेदजास्तु समुत्पन्ना गणाःकूटादयस्तथा। पञ्चकूटान्समुत्पाद्यतदातस्मैचशूलिने
साधकास्ते महाराज जपहोमपरायणाः। प्रेतासनास्तुतेसर्वे कालकूटोपरिस्थिताः
कथयन्ति स्वमात्मानं येनमोक्षः पिनाकिनः। ततःकष्टसमाविष्टागौरीवह्निभयातुरा
सभाजितः शिवस्तैश्चगौरीह्रीणात्वधोमुखी। तपस्तेपेचतत्रस्थाशङ्करादेशकारिणी
पञ्चाग्निसेवनं कृत्वा धूम्रपानमधोमुखी। कूटाक्षरैः स्तुतस्तैस्तु तोषितोवृषभध्वजः
धराक्षेत्रमिदं राजन्पापघ्नं सर्वकामदम्। देवमज्जनकं शुभ्रं स्थानकेऽस्मिन्विराजते
आश्विने कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यादिने नृप। तत्र स्नात्वाचपीत्वाचसर्वपापैःप्रमुच्यते
पूजयित्वा च देवेशमुपोष्य च विधानतः। शाकिनी डाकिनीचैववेतालाःपितरोग्रहा
ग्रहा धिष्ण्या न पीड्यन्ते सत्यंसत्यं वरानने। साङ्गं रुद्रजपंतत्रकृत्वापापैःप्रमुच्यते
नश्यन्ति विविधा रोगाःसत्यंसत्यं च भूपते। एतत्सर्वं मयाख्यातंदेवमज्जनकंशुभम्
अश्वमेधसहस्रैस्तु कृतैस्तु भूरिदक्षिणैः। तत्फलं समवाप्नोति श्रोताश्रावयिता नरः

अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् । आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥
मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् । तत्सर्वं नाशमायाति स्मरणात्कीर्तनान्नृप
धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसन्तानदायकम् ।
माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्यान्वितो भवेत् ॥ ४६ ॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । सर्वयज्ञेश्च यत्पुण्यं जायते श्रवणान्नृप ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये धराक्षेत्रवर्णनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## एकविंशोऽध्यायः

### श्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनम्

व्यास उवाच

तया चोत्पादिता राजञ्छरीरात्कुलदेवताः ।
भट्टारिकी १ तथा छत्रा २ ओचिका ३ ज्ञानजा तथा ४ ॥ १ ॥
भद्रकाली च ५ माहेशी ६ सिंहोरी ७ धनमर्द्दनी ८ ।
गात्रा ९ शान्ता १० शेषदेवी ११ वाराही १२ भद्रयोगिनी १३ ॥ २ ॥
योगेश्वरी १४ मोहलज्ञा १५ कुलेशी १६ शकुलाचिता १७ ।
तारणी १८ कनकानन्दा १९ चामुण्डा २० च सुरेश्वरी २१ ॥ ३ ॥
दारभट्टारिकेत्या २२ द्या प्रत्येका शतधा पुनः ।
उत्पन्नाः शक्तयस्तस्मिन्नानारूपान्विताः शुभाः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रवराण्यथ देवताः ॥ ४ ॥

औपमन्यवसगोत्रप्रवर ३ गोत्रदेव्यागात्राचसिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ काश्यप-सगोत्रसगोत्रदेव्याज्ञानजा २ प्रवर ३ काश्यपः १ अवत्सारः २ रैभ्यः ३ माण्डव्य-

सगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ प्रवर ५ भार्गवच्यवनाअत्रिऔर्वजमदग्निः ५ कुशिकसगोत्रऽजातारणी ६ महाबलाप्रवर ३ विश्वामित्रदेवराजउद्दालक ६ शौनकसगोत्र ७ गोत्रदेवी ७ शान्ता प्रवर ३ भार्गवार्णैनहोत्रगार्त्समद ३ कृष्णात्रेयसगोत्रवीगोत्रदेव्याभद्रयोगिनी ८ प्रवर ३ आत्रेयअर्चनानसश्यावाश्व ३ गार्ग्यायणसगोत्र गोत्रजा शान्ता प्रवर५ भार्गवच्यवनआप्नुवान् और्वजमदग्निः १० गार्गायणगोत्रगोत्रजाज्ञानजा प्रवर ५ काश्यपअवत्सारशाण्डिलअसितदेवलगाङ्गेयसगोत्रदेवी शान्ताद्वारवासिनी प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि शङ्ख लिखित १२ पैङ्ग्यसगोत्रजाज्ञानजा प्रवर ३ आङ्गिरसआम्बरीषयौवनाश्व १३ वत्ससगोत्र गोत्रजाज्ञानजाप्रवर५ भार्गवच्यावनआप्नुवानऔर्वपुरोधसः १४ वात्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १५ वात्स्यसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरीप्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १६ श्यामायनसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्व जमदग्निः१७ धारणसगोत्रस्यगोत्रजा छत्रजा प्रवर ३ अगस्त्यदार्वच्युतदध्यवाहन १८ काश्यपगोत्रस्य गोत्रजा चामुण्डा प्रवर ३ काश्यपस्यावत्सार नैध्रुव १९ भरद्वाजगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाज २२ माण्डव्यसगोत्रस्य वत्ससवात्स्यसवात्स्यायनस ४ सामान्यलौगाक्षसगोत्रस्य गोत्रजा भद्रयोगिनी प्रवर ३ काश्यपवसिष्ठ अवत्सार २० कौशिकसगोत्रस्य गोत्रजापक्षिणी प्रवर ३ विश्वामित्र अथर्व भारद्वाज २१ सामान्यप्रवर १ पैङ्ग्यसभरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षसगार्ग्यायनसकाश्यपकश्यप ४ समानप्रवर ३ कौशिककुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्युलौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ ॥

यावतां प्रवरेष्वेको विश्वामित्रोऽनुवर्तते ।
न तावतां सगोत्रत्वाद्विवाहःस्यात्परस्परम् ॥ ५ ॥
त्यजेत्समानप्रवरां सगोत्रां मातुः सपिण्डामचिकित्स्यरोगाम् ।
अजातलोम्नीं च तथान्यपूर्वां सुतेन हीनस्य सुतां सुकृष्णाम् ॥ ६ ॥

एक एव ऋषिर्यत्र प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वंगिरोगणात् ॥
पञ्चसु त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषुद्वयोः । भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपिवारयेत्
समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च । तस्यामुत्पाद्य चाण्डालंब्राह्मण्यादेवहीयते

कात्यायनः

परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा ।
त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १० ॥
उत्सृज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत् ॥ ११ ॥

याज्ञवल्क्यः

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् । पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा
असमानप्रवरैर्विवाह इतिगौतमः । यद्येकं प्रवरं भिन्नं मातृगोत्रवरस्य च ।

तत्रोद्वाहो न कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ १३ ॥

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयःपरिवित्तिस्तुपूर्वजः
सदा पौनर्भवा कन्या वर्जनीया कुलाधमा । वाचादत्तामनोदत्ता कृतकौतुकमङ्गला ॥
उदकस्पर्शिता याच याच पाणिगृहीतका । अग्निपरिगता याच पुनर्भूःप्रसवा च या

इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत् ॥ १७ ॥

अथावटङ्काः कथ्यन्ते गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मण्डर्कीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १६ वालूआ २० पोकीया २१ वार्कीया २२ मकाल्या २३ लाडआ २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलण्डीया २६ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमध ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३६ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥

मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरांश्चैवत्यक्त्वाचान्द्रायणंचरेत्

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये श्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्य-कटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

# द्वाविंशोऽध्यायः

## देवतास्थापनवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

स्थानवासिन्यो योगिन्यः काजेशेन विनिर्मिताः ।
कस्मिन्स्थाने हि का देव्यः कीदृश्यस्ता वदस्व मे ॥ १ ॥

व्यास उवाच

सर्वज्ञोऽसि कुलीनोऽसिसाधुपृष्टंत्वयाऽनघ । कथयिष्याम्यहंसर्वमखिलेनयुधिष्ठिर!
नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नोपशोभिताः । नानावसनसम्वीता नानायुधसमन्विताः
नानावाहनसंयुक्ता नानास्वरनिनादिनीः । भयनाशायविप्राणां काजेशेन विनिर्मिताः
प्राच्यां याम्यामुदीच्यां च प्रतीच्यां स्थापिता हि ताः ।
आग्नेयां नैर्ऋते देशे वायव्येशानयोस्तथा ॥ ५ ॥
आशापुरीचगात्रायीछत्रायीशानजातथा । पिप्पलाम्बातथाशान्तासिद्धाभट्टारिकातथा
कदम्बा विकटा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा । मातङ्गी चमहादेवी वाराहीमुकुटेश्वरी
भद्राचैवमहाशक्तिः सिंहारा च महाबला । एताश्चान्याश्च बह्वयस्ताःकथितुंनैवशक्यते
नानारूपधरादेव्यो नानावेषसमाश्रिताः । स्थानादुत्तरदिग्भागे आशापूर्णा समीपतः
पूर्वे तु विद्यते देवी आनन्दानन्ददायिनी । वसन्तीचोत्तरे देव्यो नानारूपधरा मुदा
इष्टान्कामान्ददात्येता जलदानेन तर्पिताः ।
स्थाने नैर्ऋतिदिग्भागे शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ ११ ॥
सिंहोपरिसमासीना चतुर्हस्ता वरप्रदा । भट्टारीच महाशक्तिः पुनस्तत्रैव तिष्ठति ॥
संस्तुता पूजिता भक्त्या भक्तानां भयनाशिनी ।
स्थानात्तु सप्तमे कोशे क्षेमलाभा व्यवस्थिता ॥ १३ ॥
सा विलेपमयी पूज्या चिन्तिता सिद्धिदायिनी ।

पूर्वस्यां दिशि लोकैस्तु बलिदानेन तर्पिता ।
परिवारेण संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १४ ॥
अचिन्त्यरूपचरिता सर्वशत्रुविनाशिनी । सन्ध्यायास्त्रिषु कालेषु प्रत्यक्षैवहि दृश्यते
स्थानात्तु सप्तमेक्रोशेदक्षिणेविन्ध्यवासिनी । सायुधारूपसम्पन्नाभक्तानांभयहारिणी
पश्चिमे निम्बजा देवी तावद्भूमिसमाश्रिता । महाबलासाद्वाष्टापिनयनानन्ददायिनी
स्थानादुत्तरदिग्भागे तावद्भूमिसमाश्रिता । शक्तिर्बहुसुवर्णाक्षापूजितासासुवर्णदा
स्थानाद्वायव्यकोणे च क्रोशमात्रमितेश्रिता । क्षेत्रधरामहादेवी समयेच्छागधारिणी
पुरादुत्तरदिग्भागे क्रोशमात्रे तु कर्णिका । सर्वोपकारनिरता स्थानोपद्रवनाशिनी
स्थानान्निर्ऋतिदिग्भागे ब्रह्माणीप्रमुखास्तथा ।
नानारूपधरा देव्यो विद्यन्ते जलमातरः ॥ २१ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रयांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये देवतास्थापनंनाम
द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

---

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### लोहासुरोपाख्यानपूर्वकंज्ञातिभेदवर्णनम्

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यत्कृतम्पुरा । तत्सर्वं कथयाम्यद्य शृणुष्वैकाग्रमानसः
देवानां दानवानाञ्च वैराद्युद्धं बभूवह । तस्मिन्युद्धे महादुष्टे देवा संक्लिष्टमानसाः ॥
बभूवुस्तत्र सोद्वेगा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥

देवा ऊचुः

ब्रह्मन्केन प्रकारेण दैत्यानां वधमेवच । करोम्यद्य उपायं हि कथ्यतां शीघ्रमेव मे ॥

ब्रह्मोवाच

मया हि शङ्करेणैव विष्णुना हि तथापुरा । यमस्य तपसा दुष्टैर्धर्मारण्यंविनिर्मितम्
तत्र यद्दीयते दानं यज्ञं वा तप उत्तमम् । तत्सर्वं कोटिगुणितं भवेदिति न संशयः
पापंवायदि वापुण्यं सर्वंकोटिगुणम्भवेत् । तस्माद्दैत्यैर्धर्षितंनकदाचिदपिभोःसुराः
श्रुत्वातुब्रह्मणोवाक्यंदेवाःसर्वेसविस्मयाः । ब्रह्माणंत्वग्रतःकृत्वा धर्मारण्यमुपाययुः
सत्रं तत्र समारभ्य सहस्राब्दमनुत्तमम् । वृत्वाऽऽचार्यं चाङ्गिरसं मार्कण्डेयं तथैवच
अत्रिश्च कश्यपश्चैव होता कृत्वामहामतिः । जमदग्निं गौतमञ्च अध्वर्युं त्वन्यवेदयन्
भरद्वाजं वसिष्ठन्तु प्रत्यध्वर्युं त्वमादिशन् । नारदश्चैववाल्मीकिंनोदनायाकरोत्तदा
ब्रह्मासनेच ब्रह्माणंस्थापयामासुरादरात् । क्रोशचतुष्कमात्राश्चवेदिंकृत्वा सुरैस्ततः
द्विजाःसर्वे समाहूता यज्ञस्यार्थेद्विजापकाः । ऋग्यजुःसामाथर्वान्वैवेदानुद्गिरयन्तिये
गणनाथं शम्भुसुतं कार्त्तिकेयं तथैव च । इन्द्रं वज्रधरञ्चैव जयन्तं चेन्द्रसूनुकम् ॥
चत्वारो द्वारपालाश्च देवाः शूरा विनिर्मिताः । ततो रक्षोघ्नमन्त्रेणहूयते हव्यवाहनः
तिलांश्च यवमिश्रांश्च मध्वाज्यैनच मिश्रितान् । जुहुवुस्ते तदा देवा वेदमन्त्रैर्नरेश्वर
आघाराघाज्यभागौ च हुत्वा चैव ततःपरम् । द्राक्षेक्षुपूरानारिङ्गजम्बीरं बीजपूरकम्
उत्तरतो नालिकेरं दाडिमञ्च यथाक्रमम् । मध्वाज्यं पयसायुक्तं कृशरंशर्करायुतम् ॥

तण्डुलैः शतपत्रैश्च यज्ञे वाचं नियम्य च ।

विचिन्त्य च महाभागाः ! कृत्वा यज्ञं सदक्षिणम् ॥ १६ ॥

उत्तमञ्च शुभं स्तोमं कृत्वा हर्षमुपाययुः । अवारितान्नमददन्दीनान्धकृपणेष्वपि ॥
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेणदत्तमन्नं यथेप्सितम् । पायसंशर्करायुक्तं साज्यशाकसमन्वितम्
मण्डकावटकाःपूपास्तथावैवेष्टिकाःशुभाः । सहस्रमोदकाश्चापि फेणिकाघुर्घुरादयः
ओदनश्च तथा दालीआढकीसम्भवाशुभा । तथा वै मुद्गदालीचपर्पटा वटिका तथा

प्रलेह्यानि विचित्राणि युक्तास्त्र्यूषणसञ्चयैः ।

कुल्माषा वेल्लकाश्चैव कोमला वालकाः शुभाः ॥ २४ ॥

कर्कटिकाश्चार्द्रयुतामरिचैनसमन्विताः । एवंविधानिचान्नानि शाकानिविविधानिच

भोजयित्वा द्विजान्सर्वान्धर्मारण्यनिवासिनः । अष्टादशसहस्राणिवसुत्रांश्चतदानृप
प्रतिदिनं तदा देवा भोजयन्ति स्मवाडवान् । एवं वर्षसहस्रं वै कृत्वा यज्ञंतदामराः
कृत्वा दैत्यवधं राजन्निर्भयत्वमवाप्नुयुः । स्वर्गं जग्मुस्तेसहसा देवाः सर्वेमरुद्गणाः
तथैवाप्सरसः सर्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । कैलासशिखरं रम्यं वैकुण्ठंविष्णुवल्लभम्
ब्रह्मलोकं महापुण्यं प्राप्य सर्वे दिवौकसः । परं हर्षमुपाजग्मुः प्राप्यनन्दनमुत्तमम्

स्वे स्वे स्थाने स्थिरीभूत्वा तस्थुः सर्वे हि निर्भयाः ॥ ३१ ॥

ततःकालेन महता कृताख्ययुगपर्यये । लोहासुरो मदोन्मत्तो ब्रह्मवेषधरः सदा ॥३२॥
आगत्य सर्वान्विप्रांश्च धर्षयेद्धर्मवित्तमान् । शूद्रांश्चवणिजश्चैव दण्डघातेन ताडयेत्
विध्वंसयेच्च यज्ञादीन्होमद्रव्याणिभक्षयेत् । वेदिका दीर्घिका दृष्ट्वा कश्मलेनप्रदूषयेत्
मूत्रोत्सर्गपुरीषेण दूषयेत्पुण्यभूमिकाः । गहनेन तथा राजन्स्त्रियो दूषयते हि सः
ततस्ते वाडवाः सर्वे लोहासुरभयातुराः । प्रनष्टाः सपरीवारा गतास्ते वै दिशो दश

वणिजस्ते भयोद्विग्ना विप्राननुययुर्नृप ।

महाभयेन सम्भीता दूरं गत्वा विमृश्य च ॥ ३७ ॥

सह शूद्रैर्द्विजैः सर्व एकीभूत्वा गतास्तदा । मुक्तारण्यं पुण्यतमं निर्जनं हि ययुश्च ते
निवासंकारयामासुर्नातिदूरे नरेश्वर । वजिङ्नाम्ना हि तद्ग्रामं वासयामासुरेव ते॥

लोहासुरभयाद्राजन्विप्र नाम्ना विनिर्मितम् ।

शम्भुना वणिजो यस्मात्तस्मात्तन्नामधारणम् ॥ ४० ॥

शम्भुग्राममितिख्यातंलोकेविख्यातिमागतम् । अथकेचिद्भयान्नष्टा वणिजःप्रथमन्तदा
ते नातिदूरे गत्वावै मण्डलं चक्रुरुत्तमम् । विप्रागमनकाङ्क्षास्ते तत्र वासमकल्पयन्
मण्डलेति च नाम्नावैग्रामंकृत्वान्यवीवसन् । विप्रसार्थपरिभ्रष्टाःकेचित्तुवणिजस्तदा
अन्यमार्गे गतायेवै लोहासुरभयार्दिताः । धर्मारण्यान्नातिदूरे गत्वा चिन्तामुपाययुः

कस्मिन्मार्गे वयं प्राप्ताः कस्मिन्प्राप्ता द्विजातयः ।

इति चिन्तां परांप्राप्ता वासं तत्र त्वकारयन् ॥ ४५ ॥

अन्यमार्गेगतायस्मात्तस्मात्तन्नामसम्भवम् । ग्रामंनिवासयामासुरडालंजमितिक्षितौ

यस्मिन्ग्रामे निवासी यो यत्सञ्ज्ञश्च वणिग्भवेत् ।
तस्य ग्रामस्य तन्नाम ह्यभवत्पृथिवीपते !॥ ४७ ॥

वणिजश्चतथाविप्रामोहंप्राप्ताभयार्दिताः । तस्मान्मोहेतिसञ्ज्ञांते राजन्सर्वे निरब्रुवन्
एवं प्रनष्टं नष्टास्ते गताश्चदिशोदश । धर्मारण्येन तिष्ठन्ति वाडवावणिजोऽपिवा
उद्वसं हि तदा जातं धर्मारण्यञ्च दुर्लभम् । भूषणं सर्वतीर्थानांकृतंलोहासुरेणतत्
नष्टद्विजंनष्टतीर्थं स्थानं कृत्वाहि दानवः । परां मुदमवाप्यैव जगाम स्वालयं ततः

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वार्द्धे धर्मारण्यमाहात्म्ये ज्ञातिभेदवर्णनंनाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## धर्मारण्यमाहात्म्यप्रभावकथनम्

### व्यास उवाच

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं मयाप्रोक्तं तवाग्रतः । अनेकपूर्वजन्मोत्थपातकघ्नं महीपते !॥
स्थानानामुत्तमंस्थानंपरंस्वस्त्ययनंमहत् । स्कन्दस्याग्रेपुराप्रोक्तं महारुद्रेण धीमता
त्वं पार्थ! तत्र स्नात्वा हि मोक्ष्यसे सर्वपातकात् ।
तच्छ्रुत्वाव्यासवाक्यं हि धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

धर्मात्मजस्तदा तात धर्मारण्यं समाविशत् । महापातकनाशाय साधुपालनतत्परः॥
विगाह्य तत्र तीर्थानि देवतायतनानि च । इष्टापूर्तादिकं सर्वं कृतं तेन यथेप्सितम्
ततः पापविनिर्मुक्तः पुनर्गत्वा स्वकं पुरम् । इन्द्रप्रस्थं महासेन! शशास वसुधातलम्
इदं हि स्थानमासाद्य ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥

भुक्त्वा भोगान्पार्थिवांश्च परं निर्वाणमाप्नुयुः ।
श्राद्धकाले च सम्प्राप्ते ये पठन्ति द्विजातयः ॥ ८ ॥
उद्धृताःपितरस्तैस्तुयावच्चन्द्रार्कमेदिनी । द्वापरे च युगेभूत्वाव्यासेनोक्तंमहात्मना
वारिमात्रे धर्मवाप्यांगयाश्राद्धफलं लभेत् । अत्रागतस्य मर्त्यस्यपापंयमपदेस्थितम्
कथितं धर्मपुत्रेण लोकानां हितकाम्यया । विना अन्नैर्विना दर्भैर्विना चासनमेव वा
तोयेन नाशमायाति कोटिजन्मकृतं त्वघम् । सहस्ररुक्मशृङ्गीणां धेनूनांकुरुजाङ्गले
दत्त्वा सूर्यग्रहे पुण्यं धर्मवाप्यां च तर्पणम् ( तर्पणात् )॥ १२ ॥
एतद्वःकथितंसर्वंधर्मारण्यस्यचेष्टितम् । यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः
एकविंशतिवारैस्तुगयायांपिण्डपातने । तत्फलं समवाप्नोतिसकृदस्मिञ्छ्रुते सति
इतिश्री स्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये प्रभावकथनंनाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## पञ्चविंशोऽध्यायः

### सरस्वतीमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
धर्मारण्ये यथाऽऽनीता सत्यलोकात्सरस्वती ॥ १ ॥
मार्कण्डेयं सुखासीनं महामुनिनिषेवितम् । तरुणादित्यसङ्काशं सर्वशास्त्रविशारदम्
सर्वतीर्थमयं दिव्यमृषीणां प्रवरं द्विजम् । आसनस्थं समायुक्तं धन्यं पूज्यंदृढव्रतम्
योगात्मानं परं शान्तं कमण्डलुधरं विभुम् ।
अक्षसूत्रधरं शान्तं तथा कल्पान्तवासिनम् ॥ ४ ॥

अक्षोभ्यं ज्ञानिनं स्वस्थंपितामहसमद्युतिम् । एवंदृष्ट्वासमाधिस्थंप्रहर्षात्फुल्ललोचनम्
प्रणम्य स्तुतिभिर्युक्त्या मार्कण्डं मुनयोऽब्रुवन् ।
भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥
त्वयाऽवतारिता ब्रह्मनदी या ब्रह्मणः सुता । तथा कृतं च तत्रैव गङ्गावतरणं क्षितौ
गीयमानं कुलपतेः शौनकस्य मुनेः पुरः । सूतेन मुनिना ख्यातमन्येषामपिशृण्वताम्
तच्छ्रुत्वा महदाख्यानमस्माकं हृदि संस्थितम् ।
पापघ्नी पुण्यजननी प्राणिनां दर्शनादपि ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

धर्मारण्ये मया विप्राः! सत्यलोकात्सरस्वती ।
समानीता सुरेखाद्यौ ( सुरेन्द्राद्यैः ) शरण्या शरणार्थिनाम् ॥ १० ॥
भाद्रपदे सिते पक्षे द्वादशीपुण्यसंयुता । तत्रद्वारावतीतीर्थे मुनिगन्धर्वसेविते ॥
तस्मिन्दिने च तत्तीर्थे पिण्डदानादिकारयेत् । तत्फलंसमवाप्नोतिपितॄणांदत्तमक्षयम्
महदाख्यानमखिलं पापघ्नं पुण्यदं च यत् । पवित्रंयत्पवित्राणां महापातकनाशनम्
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं पुण्यं सारस्वतं जलम् ।
ऊर्ध्वं किं दिवि यत्पुण्यं प्रभासान्ते व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥
सारस्वतजलंनॄणां ब्रह्महत्यांव्यपोहति । सरस्वत्यांनराःस्नात्वाःसन्तर्प्य पितृदेवताः
पश्चात्पिण्डप्रदातारो न भवन्ति स्तनन्धयाः ॥ १५ ॥
यथाकामदुघा गावो भवन्तीष्टफलप्रदाः । तथा स्वर्गापवर्गैकहेतुभूता सरस्वती ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये सरस्वतीमाहात्म्यवर्णनंनाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

# षड्विंशोऽध्यायः

## द्वारिकामाहात्म्यवर्णनम्

### व्यास उवाच

मार्कण्डेयोद्घाटितं वै स्वर्गद्वारमपावृतम् । तत्रये देहसंत्यागं कुर्वन्तिफलकाङ्क्षया
लभन्ते तत्फलं ह्यन्ते विष्णोः सायुज्यमाप्नुयुः ।
अतः किं बहुनोक्तेन द्वारवत्यां सदा नरैः ॥ २ ॥
देहत्यागः प्रकर्त्तव्यो विष्णोर्लोकजिगीषया । अनाशकेजलेवाग्नौयेवसन्तिनरोत्तमाः
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः पुरीं सदा ॥ ३ ॥
अन्योऽपि व्याधिरहितोगच्छेदनशनंतु यः । सर्वपापविनिर्मुक्तोयातिविष्णोःपुरींनरः
शतवर्षसहस्राणां वसेदन्ते दिवि द्विजः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पवित्रं पावनं भुवि ॥ ५ ॥
उपवासैस्तथा तुल्यं तपःकर्म्मनविद्यते । नास्तिवेदात्परंशास्त्रंनास्तिमातृसमोगुरुः
न धर्मात्परमस्तीह तपो नाऽनशनात्परम् ।
स्नात्वा यः कुरुतेऽत्रापि श्राद्धं पिण्डोदकक्रियाम् ॥ ७ ॥
तृप्यन्तिपितरस्तस्ययावद्ब्रह्मदिवानिशम् । तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाकेशवंयस्तुपूजयेत्
समुक्तःपातकैः सर्वैर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् । तीर्थानामुत्तमंतीर्थयत्रसंनिहितो हरिः
हरते सकलं पापं तस्मिंस्तीर्थे स्थितस्य सः ॥ ६ ॥
मुक्तिदं मोक्षकामानां धनदं च धनार्थिनाम् । आयुर्दंसुखदं चैव सर्वकामफलप्रदम्
किमन्येनात्र तीर्थेन यत्रदेवो जनार्द्दनः । स्वयंवसतिनित्यं हि सर्वेषामनुकम्पया ॥
तत्रयद्दीयते किञ्चिद्दानं श्रद्धासमन्वितम् । अक्षयं तद्भवेत्सर्वमिह लोके परत्र च ॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च यत्फलं प्राप्यते बुधैः । तदत्र स्नानमात्रेण शूद्रैरपि सुसेवकैः
तत्र श्राद्धं च यः कुर्यादेकादश्यामुपोषितः । स पितॄनुद्धरेत्सर्वान्नरकेभ्योन संशयः

अक्षय्यां तृप्तिमाप्नोति परमात्मा जनार्दनः । दीयतेऽत्रयदुद्दिश्य तदक्षय्यमुदाहृतम्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये द्वारिकामाहात्म्यवर्णनंनाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

## सप्तविंशोऽध्यायः

### बलाहकोपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

तत्रतस्य समीपस्थं मार्कण्डेनोपलक्षितम् । तीर्थं गोवत्ससञ्ज्ञंतुसर्वत्रभुविसंश्रुतम्
तत्रावतीर्य गोवत्सस्वरुपेणाम्बिकापतिः । स्वयंभूलिङ्गरूपेणसंस्थितोजगतांपतिः
आसीद्बलाहकोनाम रुद्रभक्तो महाबलः । आखेटकसमायुक्तो नृपः परपुरंजयः
मृगयूथे स्थितं दृष्ट्वा गोवत्सं तत्पदातिना । उक्तो राजा मयादृष्टं कौतुकं नृपसत्तम!

गोवत्सोमृगयूथस्य दृष्टो मध्यस्थितो मया ।
तेषामेवानुरक्तोऽसौ जनन्या रहितस्तथा ॥ ५ ॥

दृष्टुं तु कौतुकं राजातंपदातिं पुरःस्थितम् । उवाचदर्शयस्वेतिगोवत्संचसमाविशत्
गत्वाटवीं तदा राज्ञोदर्शितः सपदातिना । पदातिभिर्मृगानीकं दुद्राव त्रासितं यदा
पीलुगुल्मंप्रतिगतंगोवत्सःप्रस्थितस्तदा । राजातद्धरणाकाङ्क्षोप्राविशद्गुल्ममादरात्

तत्रस्थितं सगोवत्समपश्यन्नृपतिः स्वयम् ।
यावद् गृह्णाति तं तावल्लिङ्गंजातं समुज्ज्वलम् ॥ ६ ॥

तंदृष्ट्वा विस्मितो राजाकिमेतदित्यचिंतयत् । यावच्चिंतयते ह्येवंदेहंत्यक्त्वादिवंगतः

अत्रान्तरे गगनतले समन्ततः श्रूयते सुरजयकारगर्जितम् ।
पपात पुष्पवृष्टिरम्बराद्राजा गतः शिवभुवनं च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥

तावत्पश्यतितन्नाम्यं गोवत्संबालकं स्थितम् । नूनमेष महादेवो वत्सरूपी महेश्वरः
तमानेतुं समुद्युक्तो राजा तमुज्जहार च । यदा तद्वैवलिङ्गं तु नोत्तिष्ठति कथंचन
तदा देवाः सहानेन प्रार्थयामासुरीश्वरम् ॥ १३ ॥

देवा ऊचुः

भगवन्सर्वदेवेशस्थातव्यं भवताविभो । शुक्लेनलिङ्गरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥

श्रीमहादेव उवाच

स्थास्याम्यहं सदैवात्र लिङ्गरूपेण देवताः । यस्माद्भाद्रपदे मासिकृष्णपक्षे कुहूदिने
तथा तद्दिवसे तत्रस्नानंकृत्वा विधानतः । लिङ्गं येपूजयिष्यंति न तेषां विद्यतेभयम्
ऋते चपिण्डदानेनपूर्वजाः शाश्वतीः समाः । रौरवेनरके घोरेकुम्भीपाके च ये गताः
अनेकनरकस्थाश्च तिर्यग्योनिगताश्च ये । सकृत्पिण्डप्रदानेन स्यात्तेषामक्षया गतिः
ततो बलाहको राजा सर्वदेवसमन्वितः । स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वदेवसमीपतः
चकार बहुदानानि लोकानां हितकाम्यया । यावदर्चयते ह्येवं रुद्रोऽपि स्वयमागतः

रुद्र उवाच

अस्यां रात्रौतुमनुजाःश्रद्धाभक्तिसमन्विताः । येर्चयिष्यंति देवेशंतेषांपुण्यमनंतकम्
जागरंयेकरिष्यन्ति गीतशास्त्रपुरःसरम् । उद्धरिष्यन्ति तेमर्त्याःकुलमेकोत्तरंशतम्
तावद्गर्जन्तितीर्थानिनैमिषं पुष्करं गया । प्रयागं च प्रभासं च द्वारकामथुराऽर्बुदः
यावन्न दृश्यते लिङ्गं गोवत्सं परमाद्भुतम् । यदा हि कुरुते भावं गोवत्सगमनं प्रति
स्ववंशजास्तदा सर्वे नृत्यन्ति हर्षिताध्रुवम् ॥ २५ ॥

सूत उवाच

यच्चान्यदद्भुतं तत्र वृत्तान्तं शृणुत द्विजाः । येन वै श्रुतमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्
यदावैस्थापितंलिङ्गंसर्वदेवैः पुरातनम् । विष्णोःप्रतिष्ठानगुणात्सर्वेषाञ्चदिवौकसाम्
अणुमात्रप्रमाणेन प्रत्यहं समवर्द्धत । ततस्ते मनुजा देवा भीतास्तं शरणं ययुः

देवा ऊचुः

वृद्धिं संहरदेवेश! लोकानांस्वस्ति तद्भवेत् । एवमुक्ते ततो लिङ्गाद्वागुवाचाशरीरिणी

शिववाण्युवाच

हे लोका! मा भयं वोऽस्तु उपायः श्रूयतामयम् ।

कश्चिच्चण्डालमानीयमत्पुरः स्थाप्यतां ध्रुवम् ॥ ३० ॥

चण्डालांश्च समानीय दधुर्देवस्य ते पुरः । तथापि तस्य वृद्धिस्तुनैव निर्वर्ततेपुनः

वागुवाच

कर्मणा यस्तु चण्डालः सोऽग्रे मे स्थाप्यताञ्जनाः ।

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं मति चक्रुर्विलोचने ( चक्रुश्चवीक्षणे )॥ ३२ ॥

मार्गमाणास्तदाते तुग्रामाणि च पुराणिच । कश्चित्कर्मरतं पापं ददृशुर्ब्राह्मणब्रुवम्
वृषभान्भारसंयुक्तान्मध्याह्नेवाहयत्तु सः । क्षुत्तृट्श्रमपरीतांश्च दुर्बलान्क्रूरमानसः
अस्नात्वाऽपिपर्युषितं भक्षयन्तीह वै द्विजाः । तं समादाय देवेशंजग्मुर्यत्रजगद्गुरुः
देवालयाग्रभूमौ तं स्थापयासुराद्दृताः । भस्मी बभूव सहसा गोवत्साग्रे निरूपितः

चण्डालस्थल इत्येष प्रसिद्धःसोऽभवत्क्षितौ ।

तत्र स्थितैर्न चाद्यापि प्रासादो दृश्यते हि सः ॥ ३७ ॥

तदाप्रभृतितल्लिङ्गंसाम्यभावमुपागतम् । धौतपाप्मागतस्तीर्थद्विजोलिङ्गनिरीक्षणात्
प्रत्यहं पूजयामास गोवत्संगतकिल्बिषः । विशेषात्कृष्णपक्षस्य चतुर्द्दश्यांसमागतः
एतत्तदद्भुतं तस्य देवस्य च त्रिशूलिन ।श्रृणुयाद्योनरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

सूत उवाच

गोवत्समिति विख्यातं नराणांपुण्यदंपरम् । अनेकजन्मपापघ्नंमार्कण्डेयेनभाषितम्
तत्र तीर्थे सकृत्स्नान रुद्रलोकप्रदं नृणाम् । पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम्
कूपेतर्पणतश्चैव श्राद्धतश्चैव तृप्तता । भाद्रपदे विशेषेण पक्षस्यान्ते भवेत्कलौ ॥ ४३
एकविंशतिवारांस्तु गयायां तर्पणे कृते । पितृणां परमातृप्तिः सकृद्वै गङ्गकूपके

तस्मिन्गोवत्ससामीप्ये तिष्ठते गङ्गकूपकः ।

तस्मिंस्तिलोदकेनापि सद्गतिं यान्ति तर्पिताः ॥ ४५ ॥

पितरो नरकाद्वापि सुपुण्येन सुमेधसा । गोप्रदानं प्रशंसन्ति तस्मिंस्तीर्थेमुनीश्वराः

विप्राय स्वर्णदानं तु रुद्रलोके नयेन्नरम् । सरस्वतीशिवक्षेत्रे गङ्गा च गङ्गकूपके ॥
एकस्थमेतत्त्रितयंस्वर्गापवर्गकारणम् । सेवितंचर्षिभिः सिद्धैस्तीर्थं सर्वत्रविश्रुतम्
पीलुयुग्मं स्थितं तत्र तत्तीर्थं मुनिसेवितम् ।
स्नानात्स्वर्गपदश्चैव पानात्पापविशुद्धिदम् ॥ ४६ ॥
कीर्त्तनात्पुण्यजननं सेवनान्मुक्तिदंपरम् । तद्वै पश्यन्ति ये भक्त्या ब्रह्महायदिमातृहा
बालघातीच गोघ्नश्च ये च स्त्रीशूद्रघातकाः । गरदाश्चाग्निदाश्चैव गुरुद्रोहरताश्चये
तपस्विनिन्दकाश्चैव कूटसाक्ष्यं करोति यः । वक्ताचपरदोषस्य परस्य गुणलोपकः
सर्वपापमयोऽप्यत्र मुच्यते लिङ्गदर्शनात् ॥ ५३ ॥
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये बलाहकोपाख्यानवर्णनंनाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

## अष्टविंशोऽध्यायः

### लोहयष्टिकातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

गोवत्सान्नैर्ऋतेभागेदृश्यतेलोहयष्टिका । स्वयंभुलिङ्गरूपेणरुद्रस्तत्रस्थितःस्वयम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मोक्षतीर्थे सरस्वत्या नभस्ये चन्द्रसंक्षये ।
विप्रान्सम्पूज्यविधिवत्तेभ्यो दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥ १ ॥
एकविंशतिवारांस्तु भक्त्या पिण्डस्य यत्फलम् ।
गयायां प्राप्यते पुंसां ध्रुवं तदिह तर्पणात् ॥ २ ॥

लोहयष्ट्यां कृते श्राद्धेनभस्येचन्द्रसंक्षये । प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताःक्रीडन्तिपितरोदिवि
अपि नः सकुले भूयाद्योवैदद्यात्तिलोदकम् । पिण्डं वाप्युदकंवापि प्रेतपक्षे विधूदये
लोहयष्ट्याममावस्यां कार्यंभाद्रपदे जनैः । श्राद्धं वै मुनयः प्राहुः पितरोयदिवल्लभाः
क्षीरेणतुतिलैःश्वेतैःस्नात्वासारस्वतेजले । पितॄंस्तर्पयतेयस्तुतृप्तास्तत्पितरोध्रुवम्
तत्रश्राद्धानिकुर्वीतसक्तुभिःपयसासह । अमावास्यादिनंप्राप्यपितॄणांमोक्षमिच्छुकः
रुद्रतीर्थेततोधेनुं दद्याद्वस्त्रादिभूषिताम् । विष्णुतीर्थेहिरण्यञ्चप्रदद्यान्मोक्षमिच्छुकः
गयायांपितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षंमुच्यते चऋणत्रयात्
प्रार्थयेत्तत्र गत्वा तं देवदेवंजनार्दनम् । आगतोऽस्मिगयांदेव!पितृभ्यःपिण्डदित्सया
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन !॥ १० ॥
परलोकगतेभ्यश्च त्वं हि दाता भविष्यसि । अनेनैवच मन्त्रेण तत्र दद्याद्धरेः करे
चन्द्रे क्षीणे चतुर्दश्यां नभस्येपिण्डमाहरेत् । पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यतिनसंशयः
एकविंशतिवारांश्च गयायां पिण्डपातनैः ।
भक्त्या तृप्तिमवाप्नोति लोहयष्ट्यां ( च तर्पणे ) पितृतर्पणे ॥ १२ ॥
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । फलप्रदः सुतान्भक्तानारोग्यमभयप्रदः
वित्तं न्यायार्जितंदत्तंस्वल्पं तत्र महाफलम् । स्नानेनापिहितत्तीर्थेरुद्रस्यानुचरोभवेत्

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये संक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामा-
ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

# ऊनत्रिंशोऽध्यायः

## लोहासुरस्यशिवाराधनवर्णनम्

सूत उवाच

अतःपरंशृणुध्वंहिलोहासुरविचेष्टितम् । बलेःपुत्रशतस्यापि कथयिष्यामिविश्रुतम्
यथा तौ भ्रातरौ वृद्धौ प्रापतुः स्थानमुत्तमम् ।
तदाप्रभृति वैराग्यं दैत्यो लोहासुरे दधौ ॥ २ ॥
किं करोमि क गच्छामि तपसे स्थानमुत्तमम् । यस्यपारंनजानन्तिदेवतामुनयोनराः
को मयाऽऽराध्यतां देवो हृदि चिन्तयतेभृशम् ।
इति चिन्तयतस्तस्यमतिर्जाता महात्मनः ॥ ४ ॥
दधौ गङ्गां स्वशीर्षेण पुष्पवन्तौघनेत्रयोः । हृदा नारायणं देवं ब्रह्माणं कटिमण्डले
इन्द्राद्या देवता सर्वे यद्देहे प्रतिबिम्बिताः । प्रपश्यतितदात्मानं भास्करःसलिलेयथा
तमेवाराधयिष्यामि निरञ्जनमकल्मषम् । एवं कृत्वा मतिं दैत्यस्तपस्तेपे सुदुष्करम्
भीतो जन्मभयाद्धोराद्दुष्करं यन्महात्मभिः ॥ ७ ॥
अम्बुभक्षो वायुभक्षः शीर्णपर्णाशनस्तथा । दिव्यं वर्षशतं साग्रं यदा तेपे महत्तपः ॥
ततस्तुतोष भगवांस्त्रिशूलवरधारकः ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्वभद्रन्ते मनसायदभीप्सितम् । लोहासुर! मयादेयंतव नास्तितपोबलात्
इत्युक्तो दानवस्तत्र शङ्कराग्रे वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

लोहासुर उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश वरमेकं वृणोम्यहम् । शरीरस्याजरत्वञ्चमा मृत्योरपि मेभयम्
जन्मन्यस्मिन्प्रभो! भूयात्स्थातव्यं हृदये मम ।
एवमस्तु शिवः प्राह तत्र तं दानवेश्वरम् ॥ १२ ॥

शर्वलब्धवरो दैवात्पुनस्तेपे महत्तपः । रम्ये सरस्वतीतीरे तरणाय भवार्णवात् ॥
वत्सराणांसहस्राणिप्रयुतान्यर्बुदानिच । शङ्कतेभगवानिन्द्रो भीतस्तस्यतपोबलात्
मा मे पदच्युतिर्भूयाद्दैत्यलोहासुरात्क्वचित् । मघवागुप्तरूपेण समेत्याश्रमकाननम्
तपोभङ्गंप्रकुरुते कम्पयित्वामहासुरम् । ताडयन्ति शरीरे तं मुष्टिभिस्तीक्ष्णकर्कशैः
अथ तेन च दैत्येन ध्यानमुत्सृज्य वीक्षितम् । इन्द्रेणतत्कृतं सर्वं तपोबलविनाशनम्
तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्राद्यैरथ कर्कशैः । एकस्य बहुभिः सार्द्धं देवास्ते तेन संयुगे
रुधिराक्लिन्नदेहाश्च प्रहारैर्जर्जरीकृताः । केशवं शरणम्प्राप्ता त्राहि त्राहीति भाषिणः ॥

सूत उवाच

देवानां वाक्यमाकर्ण्य वासुदेवो जनार्दनः । युयुधे केशवस्तेन युद्धे वर्षशतङ्किल ॥
ततो नारायणं तत्र जिगाय स वरोर्जितः । अथ नारायणो देवो जितोलोहासुरेणतु
मन्त्रयामास रुद्रेण ब्रह्मणा च पुनः पुनः । मीमांसित्वात्रयोदेवाः पुनर्युद्धमुद्यमम्
लोहासुरस्य दैत्यस्य वपुर्दृष्ट्वा पुनर्नवम् । महदासीत्पुनर्युद्धं दैत्यकेशवयोस्ततः ॥
न ममार यदा दैत्यो विष्णुनाप्रभविष्णुना । तरसा त केशवोऽपिपातयामासभूतले
उत्तानं पतितं दृष्ट्वा पिनाकी परमेश्वरः । दधार हृदये तस्य स्वरूपं रूपवर्जितः ॥

कण्ठे तस्थौ ततो ब्रह्मा तस्य लोहासुरस्य च ।
चरणौ पीडयामास स्वस्थितया पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥

अथ दैत्यः समुत्तस्थौ भृशंबद्धोपिभूतले । दृष्ट्वोत्थितंततोदैत्यं पातयन्तंसुरोत्तमान्
उवाच दिव्यया वाचा विरञ्चिः कमलासनः ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

लोहासुर सदा रक्ष वाचोधर्ममर्माक्ष्णशः । त्वयायत्प्रार्थितरुद्रात्तदेव समुपस्थितम्
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोऽमी सुरसत्तमाः । त्वद्देहमुपवेक्ष्यामो यावदाभूतसंप्लवम्
दानवेश शिवप्राप्तिर्भावभक्त्यैव जायते । शिवं चालयितुं बुद्धिः कथं तव भविष्यति
अचलांश्चालयेद्यस्तु प्रासादान्ब्राह्मणान्पुरान् । अचिरेणैवकालेन पातकेनैव लिप्यते
श्मशानवत्परित्याज्यः सत्यधर्मबहिष्कृतः । सत्यवागसिभद्रन्तेमा विचालयदेवताः

येन यातास्तु पितरो येनयाताःपितामहाः । तेनमार्गेणगन्तव्यंनचोल्लङ्घ्यासतांगतिः
दानवेश! पिता ते हि ददौ लोकत्रयंहरेः । वाक्पाशबद्धःपातालेराज्यंचक्रेमहीपतिः
तथात्वमसिवाक्पाशाच्छिवभक्तिसमन्वितः । भूतलेतिष्ठदैत्येन्द्र!मावाग्वैकल्प्यमाप्नुहि
वरांस्ते च प्रदास्यामो मा विचालया ( विचालय ) हि देवताः ॥ ३७ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं सन्तुष्टो दानवेश्वरः । प्राहप्रसन्नयावाचा ब्रह्माणं केशवंहरम्

लोहासुर उवाच

वाक्पाशबद्धस्तिष्ठामि न पुनर्भवतां बले । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चत्रयोऽमीसुरसत्तमाः
स्थास्यन्तिचेच्छरीरेमे किं न लब्धंमया ततः । इदंकलेवरं मे हि समारूढंत्रिभिःसुरैः
भूम्यां भवतु विख्यातं मत्प्रभावात्सुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥

लोहासुरस्यवाक्येन हर्षितास्त्रिदशास्त्रयः । ददुः प्रत्युत्तरं तस्मै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
सत्यवाक्पाशतो दैत्यो न सत्याच्चलितो यतः ।
तेन सत्येन सन्तुष्टा दास्यामस्ते मनी ( हृदी ) प्सितम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मोवाच

यथा स्नानं ब्रह्मज्ञानं देहत्यागो गयातले । धर्मारण्ये तथा दैत्य धर्मेश्वरपुरः स्थिते
कूपे तर्प्पणकं श्राद्धं शंसन्तिपितरोदिवि । सन्तुष्टाः पिण्डदानेनगयायां पितरोयथा
वाञ्छन्ति तर्प्पणं कूपे धर्मारण्येविशुद्धये । दानवेन्द्र शरीरन्तु तीर्थं तव भविष्यति
एकविंशतिवारांस्तुगयायांतर्प्पणे कृते । पितृणां या परातृप्तिर्जायते दानवाधिप !
धर्मेश्वरपुरस्तात्सात्वेकदापितृतर्पणात् । स्याद्वैदशगुणातृप्तिः सत्यमेव न संशयः
पितृणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ ४८ ॥

शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले । श्रद्धयैव हिकर्तव्याःश्राद्धपिण्डोदकक्रिया
तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥

तथा शरीरे कर्त्तव्यो भविष्यत्यसुरोत्तम । ब्रह्मणोवाक्यमाकर्ण्यरुद्रःप्राहततोऽसुरम्
लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत !॥

त्रिषु लोकेषु दुष्प्राप्यं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥
अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम । गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥
अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तवदेहे न संशयः । सत्यपाशेनबद्धाः स्म दृढमेवत्वयाऽनघ

विष्णुरुवाच

गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ।
चतुर्द्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥
बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि । मा कुरुष्वात्र सन्देहं तवदेहेस्थितास्वयम्
सरस्वतीपुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत । प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मयासह सुसङ्गता
यथा वै द्वारकावासो देवस्तत्र महेश्वरः । विरञ्चिर्यत्र तीर्थानि त्रीण्येतानिधरातले
भविष्यन्ति च पाताले स्वर्गलोके यमक्षये । विख्यातान्यसुरश्रेष्ठ पितॄणां तृप्तिहेतवे
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गाथां पितृकृतां पराम् ।
आज्ञारूपां हि पुत्राणां तां शृणुष्व ममाऽनघ ॥ ६० ॥

पितर ऊचुः

शङ्करस्याग्रतः स्थानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् । पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम्
तस्मिंस्तिलोदकेनापि सद्गतिंयान्ति तर्पिताः । पितरोनरकाद्वापि सुपुत्रेणसुमेधसा
गोप्रदानं प्रशंसन्ति तत्तत्र पितृमुक्तये । पित्रादिकान्समुद्दिश्य दृष्ट्वा रुद्रञ्च केशवम्
तिलपिण्याकपिण्डेनतृप्तियास्यामहेपराम् । चतुर्द्दश्याममावास्यांतथाच पितृतर्पणम्
अज्ञातगोत्रजन्मानस्तेभ्यः पिण्डांस्तु निर्वपेत् ।
तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डे दत्त इति श्रुतिः ॥ ६५ ॥
सर्वकार्याणिसन्त्यज्यमानवैःपुण्यमीप्सुभिः । प्राप्तेभाद्रपदेमासेगन्तव्यालोहयष्टिका
अज्ञातगोत्रनाम्नान्तु पिण्डमन्त्रमिमं शृणु ॥ ६६ ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैवच । अतीतगोत्रजास्तेभ्यः पिण्डोऽयमुपतिष्ठतु

विष्णुरुवाच

अनेनैव तु मन्त्रेण ममाग्रे सुरसत्तम । क्षीणेचन्द्रे चतुर्द्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत्

पितॄणामक्षयातृप्तिर्भविष्यतिनसंशयः। तिलापिण्याकपिण्डेन पितरोमोक्षमाप्नुयुः
ऋणत्रयविनिर्मुक्ता मानवाजगतीतले। भविष्यन्तिनसन्देहो लोहयष्ट्यांतिलतर्पणे
स्नात्वा यः कुरुते चाऽत्र पितृपिण्डोदकक्रिया।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावद् ब्रह्म दिवानिशम्॥ ७२॥
अमावास्यादिनंप्राप्यमासिभाद्रपदेसरः। ब्रह्मणोयष्टिकायांतु यः कुर्यात्पितृतर्पणम्
पितरस्तस्यतृप्ताः स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम्। तेषां प्रसन्नो भगवानादिदेवो महेश्वरः
अस्य तीर्थस्य यात्रायां मतिर्येषां भविष्यति।
गोक्षीरेण तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले॥ ७४॥
तर्पयेदक्षया तृप्तिः पितॄणां तस्य जायते। श्राद्धञ्चैव प्रकुर्वीत सक्तुभिः पयसासह
अमावास्यादिनम्प्राप्य पितॄणां मोदमिच्छुकः।
धेनुं दद्याद्रुद्रतीर्थे वस्त्राणि यमतीर्थके॥ ७६॥
विष्णुतीर्थे हिरण्यञ्च पितॄणां मोक्षमिच्छुकः। विनाक्षतैर्विनादर्भैर्विना स्नासनमेवच
वारिमात्राल्लोहयष्ट्या गयाश्राद्धफलं लभेत्॥ ७७॥

सूत उवाच

एतद्वः कथितं विप्रा लोहासुरविचेष्टितम्। यच्छ्रुत्वाब्रह्महागोघ्नोमुच्यतेसर्वपातकैः
एकविंशतिवारन्तु गयायां पिण्डपातने। तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति
चतुष्कोटिद्विलक्षं च सहस्रं शतमेव च। धेनवस्तेनदत्ताःस्युर्माहात्म्यं शृणुयात्तुयः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये लोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्ति-
र्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

# त्रिंशोऽध्यायः

## रामचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

पुरात्रेतायुगे प्राप्ते वैष्णवांशो रघूद्वहः । सूर्यवंशे समुत्पन्नो रामोराजीवलोचनः ॥
स रामो लक्ष्मणश्चैवकाकपक्षधरावुभौ । तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ
यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञा दत्तौकुमारकौ । धनुःशरधरौ वीरौ पितुर्वचनपालकौ ॥ ३
पथि प्रव्रजतो यावत्ताडकानामराक्षसी । तावदागम्य पुरतस्तस्थौ वै विघ्नकारणात्
ऋषेरनुज्ञया रामस्ताडकां समघातयत् । प्रादिशच्च धनुर्वेदविद्यां रामाय गाधिजः ॥
तस्य पादतलस्पर्शाच्छिलावासघयोगतः । अहल्यागौतमवधूःपुनर्जातास्वरूपिणी
विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सम्प्रवृत्ते रघूत्तमः । मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः ॥
ईश्वरस्य धनुर्भङ्गञ्जनकस्य गृहे स्थितम् । रामः पञ्चदशे वर्षे षड् वर्षामेवमैथिलीम्
उपयेमे यदा राजन्रम्यांसीतामयोनिजाम् । कृतकृत्यस्तदाजातःसीतांसंप्राप्यराघवः
अयोध्यामगमन्मार्गे जामदग्न्यमवेक्ष्य च । संग्रामोऽभूत्तदाराजन्देवानामपिदुःसहः
ततो रामं पराजित्य सीतयागृहमागतः । ततो द्वादशवर्षाणि रेमे रामस्तया सह
सप्तविंशतिमे वर्षे यौवराज्यप्रदायकम् । राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥ १२
तयोरेकेन रामस्तु ससीतः सहलक्ष्मणः । जटाधरः प्रव्रजतां वर्षाणीह चतुर्दश ॥१३
भरतस्तुद्वितीयेन यौवराज्याधिपोऽस्तुमे । मन्थरावचनान्मूढा वरमेतमयाचत ॥ १४
जानकीलक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः । त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेऽह्नि फलाशनः ॥
पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत् । तदा दशरथः स्वर्गं गतो राम इति ब्रुवन्
ब्रह्मशापं तु सफलंकृत्वा स्वर्गं जगाम सः । ततो भरतशत्रुघ्नौ चित्रकूटे समागतौ
स्वर्गतं पितरं राजन्रामाय विनिवेद्य च । सांत्वनं भरतस्यास्य कृत्वा निर्वर्तनं प्रति
ततो भरतशत्रुघ्नौ नन्दिग्रामं समागतौ । पादुकापूजनरतौ तत्र राज्यधरावुभौ

अत्रि दृष्ट्वा महात्मानंदण्डकारण्यमागमत् । रक्षोगणवधारम्भे विराधेविनिपातिते
अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह । ततो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम्
वने विचरतस्तस्य जानकीसहितस्य च । आगतो राक्षसोघोरःसीतापहरणाय सः
ततोमाघासिताष्टम्यांमुहूर्तेवृन्दसञ्ज्ञके । राघवाभ्यांविना सीतां जहारदशकन्धरः
मारीचस्याश्रमं गत्वामृगरूपेणतेन च । नीत्वादूरंराघवं च लक्ष्मणेनसमन्वितम्
ततो रामो जघानाशुमारीचंमृगरूपिणम् । पुनःप्राप्याश्रमंरामोविनासीतांददर्श ह
तत्रैव ह्रियमाणा सा चक्रन्दकुररी यथा । रामरामेतिमांरक्षरक्ष मां रक्षसा हृताम्

यथा श्येनः क्षुधायुक्तः क्रन्दन्तीं वर्तिकां नयेत् ।
तथा कामवशं प्राप्तो राक्षसो जनकात्मजाम् ॥ २७ ॥

नयत्येव जनकजां तच्छ्रुत्वापक्षिराट् तदा । युयुधेराक्षसेन्द्रेण रावणेन हतोऽपतत्
माघासितनवम्यां तु वसन्तींरावणालये । मार्गमाणौतदातौतु भ्रातरौरामलक्ष्मणौ
जटायुषंतु दृष्ट्वैव ज्ञात्वाराक्षससंहताम् । सीतांज्ञात्वाततःपक्षीसंस्कृतस्तेनभक्तितः
अग्रतः प्रययौ रामोलक्ष्मणस्तत्पदानुगः । पम्पाभ्याशमनुप्राप्य शबरीमनुगृह्य च
तज्जलं समुपस्पृश्य हनुमद्दर्शनं कृतम् । ततो रामो हनुमता सह सख्यं चकारह
ततः सुग्रीवमभ्येत्य अहनद्वालिवानरम् । प्रेषिता रामदेवेन हनुमत्प्रमुखाः प्रियाम्
अङ्गुलीयकमादाय वायुसूनुस्तदा गतः । सम्पातिर्दशमेमासिआचख्यौ वानरायताम्
ततस्तद्वचनादब्धिपुप्लुवेशतयोजनम् । हनुमान्निशितस्यांतुलङ्कायांपरितोऽचिनोत्
तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः । द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः

तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाऽऽह संकथाम् ।
अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥
ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ।
दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥

अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः । वह्निना पुच्छयुक्तेन लंकायादहनं कृतम्
पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः । मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः

पुनरागत्य वर्षेऽह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल । सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम्
मणिप्रदानं सीताया सर्वं रामाय शंसयत् । अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यांमुहूर्ते विजयाभिधे
मध्य ग्रामेसङ्गस्यांशौ प्रस्थानं राघवस्य च । रामःकृत्वाप्रतिज्ञांहिप्रयातुंदक्षिणांदिशम्
तीर्त्वाहंसागरमपिहनिष्येराक्षसेश्वरम् । दक्षिणाशांप्रयातस्यसुग्रीवोऽथाभवत्सखा
वासरैःसप्तभिःसिन्धोस्तीरेसैन्यनिवेशनम् । पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधौ
उपस्थानंससैन्यस्य राघवस्यबभूव ह । विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह संगतः
समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः । प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम्

समुद्राद्वरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनः ॥ ४७ ॥

सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यांसमापनम् । चतुर्दश्यांसुवेलाद्रौरामःसेनां न्यवेशयत्

पूर्णिमास्या द्वितीयायां त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ।

तीर्त्वा तोयनिधिं रामः शूरवानरसैन्यवान् ॥ ४६ ॥

रुरुध च पुरीं लङ्कां सीतार्थं शुभलक्षणः । तृतीयादिदशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकः
शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशीदिने । पौषासितेच द्वादश्यांसैन्यसङ्ख्यानमेवच
शार्दूलेनकपीन्द्राणांसारासारोपवर्णनम् । त्रयोदश्याद्यमान्तेचलङ्कायां दिवसैस्त्रिभिः
रावण सैन्यसङ्ख्यानं रणोत्साहंतदाऽकरोत् । प्रययावङ्गदो दौत्ये माघशुक्लाद्यवासरे
सीतायाश्च तदा भर्तुर्मायामूर्धादिदर्शनम् । माघशुक्लद्वितीयायांदिनैःसप्तभिरष्टमीम्
रक्षसां वानराणाञ्च युद्धमासीच्चसंकुलम् । माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजितारणे
रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल । आकुलेषु कपीशेषु हताशेषु च सर्वशः ॥
वायूपदेशाद्गरुडं सस्मार राघवस्तदा । नागपाशविमोक्षार्थंदशम्यां गरुडोऽभ्यगात्
अवहारो माघशुक्लस्यैकादश्या दिनद्वयम् । द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्यवधः कृतः
त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे । मायासीतां दर्शयित्वारामायदशकन्धरः
त्रासयामासच तदासर्वान्सैन्यगतानपि । माघशुक्लचतुर्दश्या यावत्कृष्णादिवासरम्

त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः ।

माघकृष्णद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥ ६१ ॥

रामेण तुमुले युद्धे रावणोद्राविवतोरणात् । पञ्चम्या अष्टमी यावद्रावणेन प्रबोधितः
कुम्भकर्णस्तदाचक्रेऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् । कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः
रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः । अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह
फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः । नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥

पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात् ।

अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥

निकुम्भकुम्भौद्वावेतौमकराक्षश्चतुर्दिनैः । फाल्गुनासितद्वितीयादिनेवैशक्रजिज्जितः
तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेध च । ओषध्यानयवैयग्र्यादवहारो बभूव ह ॥ ६८॥
अष्टम्यांरावणोमायामैथिलींहतवान्कुधीः । शोकावेगात्तदारामश्चक्रेसैन्यावधारणम्
ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् । लक्ष्मणेनहतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः
चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः । अमावास्यादिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः
चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीदिनपञ्चके । रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥
चैत्रंशुक्लाष्टमीं यावत्स्यन्दनाश्वादिसूदनम् । चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रे शक्तिभेदने
कोपाविष्टेन रामेण द्रावितो दशकन्धरः । विभीषणोपदेशेन हनुमद्युद्धमेव च ॥७४॥
द्रोणाद्रेरोषधीं नेतुं लक्ष्मणार्थमुपागतः । विशल्यां तु समादायलक्ष्मणंतामपाययत्
दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौयुद्धंतु रक्षसाम् । एकादश्यां तु रामायरथो मातलिसारथिः
प्राप्तोयुद्धायद्वादश्यायावत्कृष्णांचतुर्दशीम् । अष्टादशदिनैरामोरावणं द्वैरथेऽवधीत्

संस्कारा रावणादीनाममावास्यादिनेऽभवन् ।

सङ्ग्रामे तुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान् ॥ ७८ ॥

माघशुक्लद्वितीयादि चैत्रकृष्णचतुर्दशीम् । सप्ताशीतिदिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम्
युद्धावहारःसङ्ग्रामोद्वासप्ततिदिनान्यभूत् । वैशाखादितिथौराम उवास रणभूमिषु

अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ॥ ८० ॥

सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम् । दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम्

हत्वा त्वरेण लङ्केशं लक्ष्मणस्याग्रजो विभुः ।

गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ॥ ८२ ॥

आदायपरया प्रीत्याजानकींसन्यवर्तत । वैशाखस्य चतुर्थ्यान्तु रामःपुष्पकमाश्रितः
विहायसानिवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति । पूर्णेचतुर्दशेवर्षे पञ्चम्यां माधवस्यच
भारद्वाजाश्रमे रामः सगणःसमुपाविशत् । नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स पुष्पकेणसमागतः

सप्तम्यामभिषिक्तोऽसाव भोऽयोध्यायां रघूद्वहः ।

दशाहाधिकमासांश्च चतुर्दश हि मैथिली ॥ ८६ ॥

उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने । द्वाचत्वारिंशके वर्षे रामोराज्यमकारयत् ॥
सीतायास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणितुतदाभवन् । स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविष्टःस्वांपुरींप्रभुः
अयोध्यांनाम मुदितो रामोरावणदर्पहा । भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामोराज्यमकारयत्
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम्
रामराज्ये तदा लोका हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः ॥

कामवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि गुणवन्ति च ।

गावस्तु घटदोहिन्यः पादपाश्च सदाफलाः ॥ ६२ ॥

नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप । नार्यःपतिव्रताश्चासन्पितृभक्तिपरा नराः
द्विजा वेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः। कुर्वतेवैश्यवर्णाश्च भक्तिं द्विजगवासदा
न योनिसङ्करश्चासीत्तत्र नाचारसङ्करः । न वन्ध्यादुर्भगा नारी काकवन्ध्यामृतप्रजा
विधवानैवकाप्यासील्लुप्यते न सभर्तृका । नावज्ञांकुर्वतेकेपिमातापित्रोर्गुरोस्तथा
न च वाक्यं हि वृद्धानांमुल्लंघयतिपुण्यकृत् । न भूमिहरणं तत्र परनारीपराङ्मुखाः
नापवादपरोलोको नदरिद्रोन रोगभाक् । न स्तेयो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनोनहि
न हेमहारी ब्रह्मघ्नो न चैव गुरुतल्पगः । न स्त्रीघ्नो न च बालघ्नो न चैवानृतभाषणः
न वृत्तिलोपकश्चासीत्कूटसाक्षी न चैव हि । न शठो न कृतघ्नश्च मलिनोनैवदृश्यते
सदा सर्वत्र पूज्यन्तेब्राह्मणावेदपारगाः । नावैष्णवोऽव्रती राजन्रामराज्येऽतिविश्रुते
राज्यं प्रकुर्वतस्तस्यपुरोधावदताम्वरः । वसिष्ठो मुनिभिःसार्द्धंकृत्वातीर्थान्यनेकशः

आजगाम ब्रह्मपुत्रो महाभागस्तपोनिधिः ।

रामस्तं पूजयामास मुनिभिः सहितं गुरुम् ॥ १०३ ॥
अभ्युत्थानार्घपाद्यैश्च मधुपर्कादिपूजया । पप्रच्छ कुशलं रामं वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥
राज्ये चाश्वे गजे कोशे देशे सद्भ्रातृभृत्ययोः । कुशलं वर्त्तते राम इतिपृष्टेमुनेस्तदा

राम उवाच

सर्वत्र कुशलं मेऽद्य प्रसादाद्भवतः सदा । पप्रच्छ कुशलं रामो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम्
सर्वतःकुशली त्वं हिभार्यापुत्रसमन्वितः । स सर्वं कथयामास यथातीर्थान्यशेषतः
सेवितानि धरापृष्ठे क्षेत्राण्यायतनानि च । रामाय कथयामास सर्वत्रः कुशलन्तदा॥

ततः स विस्मयाविष्टो रामो राजीवलोचनः ।
पप्रच्छ तीर्थमाहात्म्यं यत्तीर्थंपुत्तमोत्तमम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये रामचरित्रवर्णनंनाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

## एकत्रिंशोऽध्यायः

### तीर्थमाहात्म्यवर्णनपूर्वकंदूतागमनवर्णनम्

श्रीराम उवाच

भगवन्यानि तीर्थानिसेवितानि त्वया विभो !। एतेषां परमं तीर्थंतन्ममाचक्ष्वमानद
मया तु सीताहरणे निहताब्रह्मराक्षसाः । तत्पापस्यविशुद्ध्यर्थं वद तीर्थोत्तमोत्तमम्

वसिष्ठ उवाच

गङ्गाच नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती । गण्डकीगोमतीपूर्णा एतानद्यः सुपावनाः
एतासां नर्मदा श्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथगामिनी । दहते किल्बिषं सर्वं दर्शनादेव राघव ॥
दृष्ट्वा जन्मशतं पापं गत्वा जन्मशतत्रयम् । स्नात्वा जन्म सहस्रञ्च हन्तिरेवाकलौयुगे

नर्मदातीरमाश्रित्य शाकमूलफलैरपि । एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिभोजफलंलभेत्

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥

फाल्गुनान्ते कुहूम्प्राप्य तथाप्रौष्ठपदेऽसिते । पक्षेगङ्गामभिप्राप्यस्नानंचपितृतर्प्पणम्
कुरुते पिण्डदानानिसोऽक्षयंफलमश्नुते । शुचौमासेच सम्प्राप्तेस्नानंवाप्यांकरोतियः
चतुरशीतिनरकाश्च पश्यति नरो नृप । तपत्याः स्मरणे राम महापातकिनामपि
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् । यमुनायां नरःस्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते

महापातकयुक्तोऽपि स गच्छेत्परमांगतिम् ।

कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे सरस्वत्यां निमज्जयेत् ॥ १२ ॥

गच्छेत्स गरुडारूढः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ।

स्नात्वा यः कार्त्तिके मासि यत्र प्राची सरस्वती ॥ १३ ॥

प्राचींमाधवमास्तूय स गच्छेत्परमांगतिम् । गण्डकीपुण्यतीर्थेहिस्नानं यःकुरुतेनरः
शालग्रामशिलामर्च्यन भूयःस्तनपोभवेत् । गोमतीजलकल्लोलैर्मज्जयेत्कृष्णसन्निधौ
चतुर्भुजो नरो भूत्वावैकुण्ठेमोदतेचिरम् । चर्मण्वतीं नमस्कृत्य अपःस्पृशतियोनरः
स तारयति पूर्वजान्दश पूर्वान्दशापरान् । द्वयोश्चसङ्गमंदृष्ट्वाश्रुत्वा वा सागरध्वनिम्
ब्रह्महत्यायुतोवापि पूतो गच्छेत्परांगतिम् । माघमासे प्रयागे तु मज्जनं कुरुते नरः
इहलोके सुखं भुक्त्वा अन्तेविष्णुपदंव्रजेत् । प्रभासे ये नराराम त्रिरात्रंब्रह्मचारिणः
यमलोकंनपश्येयुःकुम्भापाकादिकंतथा । नैमिषारण्यवासी योनरोदेवत्वमाप्नुयात्
देवानामालयं यस्मात्तद्देवभुवि दुर्लभम् । कुरुक्षेत्रे नरो राम ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

हेमदानाच्च राजेन्द्र न भूयः स्तनपो भवेत् ।

श्रीस्थले दर्शनं कृत्वा नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥

सर्वदुःखविनाशे च विष्णुलोकेमहीयते । काश्यपीं स्पर्शयेद्योगांमानवो भुविराघव
सर्वकामदुघावासमृषिलोकंसगच्छति । उज्जयिन्यांतुवैशाखेशिप्रायांस्नानमाचरेत्
मोचयेद्रौरवाद्घोरात्पूर्वजांश्चसहस्रशः । सिन्धुस्नानं नरो राम प्रकरोति दिनत्रयम्

सर्वपापविशुद्धात्माकैलासेमोदतेनरः । कोटितीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम्
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्लिप्यते न च स क्वचित् ।
अज्ञानामपि जन्तूनां महाऽमेध्ये तु गच्छताम् ॥ २७ ॥
पादोद्भूतं पयः पीत्वासर्वपापंप्रणश्यति । वेदवत्यां नरो यस्तु स्नातिसूर्योदयेशुभे
सर्वरोगात्प्रमुच्येत परं सुखमवाप्नुयात् । तीर्थानि राम सर्वत्र स्नानपानावगाहनैः
नाशयन्ति मनुष्याणां सर्वपापानिलीलया । तीर्थानां परमं तीर्थं धर्मारण्यंप्रचक्षते
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैर्यदादौ संस्थापितंपुरा । अरण्यानाञ्चसर्वेषां तीर्थानाञ्च विशेषतः
धर्मारण्यात्परं नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ३२ ॥
ते पुण्यास्ते पुण्यकृतोयेवसन्ति कलौ नराः । धर्मारण्ये रामदेव सर्वकिल्विषनाशने
ब्रह्महत्यादिपापानि सर्वस्तेयकृतानिच । परदारप्रसङ्गादि अभक्ष्यभक्षणादि वै ॥३४
अगम्यागमनाद्यानि अस्पर्शस्पर्शनादि च ।
भस्मीभवन्ति लोकानां धर्मारण्यावगाहनात् ॥ ३५ ॥
ब्रह्मघ्नश्चकृतघ्नश्च बालघ्नोऽनृतभाषणः । स्त्रीगोघ्नश्चैव ग्रामघ्नो धर्मारण्ये विमुच्यते
नातःपरंपावनंहिपापिनांप्राणिनांभुवि । स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यं वाञ्छितार्थप्रदंशुभम्
कामिनांकामदंक्षेत्रं यतीनां मुक्तिदायकम् । सिद्धानासिद्धिदम्प्रोक्तंधर्मारण्यंयुगेयुगे

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो धर्मभृतां वरः ।
परं हर्षमनुप्राप्य हृदयानन्दकारकम् ॥ ३६ ॥
प्रोत्फुल्लहृदयो रामो रोमाञ्चिततनूरुहः । गमनाय मतिं चक्रे धर्मारण्ये शुभव्रतः
यस्मिन्कीटपतंगादिमानुषा पशवस्तथा । त्रिरात्रसेवनेनैव मुच्यन्तेः सर्वपातकैः
कुशस्थली यथा काशीशूलपाणिश्चभैरवः । यथा वै मुक्तिदोरामधर्मारण्यं तथोत्तमम्
ततोरामो महेष्वासोमुदापरमया युतः । प्रस्थितस्तीर्थयात्रायां सीतयाभ्रातृभिःसह
अनुजग्मुस्तदा रामंहनुमांश्च कपीश्वरः । कौशल्याचसुमित्राचकैकेयी चमुदान्विताः

लक्ष्मणोलक्षणोपेतो भरतश्चमहामतिः । शत्रुघ्नः सैन्यसहितोप्ययोध्यावासिनस्तथा
प्रकृतयो नरव्याघ्र! धर्मारण्ये विनिर्ययुः । अनुजग्मुस्तदा रामं मुदा परमयायुताः
तीर्थयात्राविधिं कर्तुं गृहात्प्रचलितो नृपः । वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमिदमाहमहीपते

श्रीराम उवाच

एतदाश्चर्यमतुलं किमादि द्वारकाभवत् । कियत्कालसमुत्पन्ना वसिष्ठेदं वदस्व मे

वसिष्ठ उवाच

नजानामि महाराजकियत्कालादभूदिदम् । लोमशोजाम्बवांश्चैवजानातीतिचकारणम्
शरीरे यत्कृतं पापं नानाजन्मांतरेष्वपि । प्रायश्चित्तं हि सर्वेषामेतत्क्षेत्रं परं स्मृतम्
श्रुत्वेति वचनंतस्य रामो ज्ञानवतां वरः । गन्तुं कृतमतिस्तीर्थयात्राविधिमथाचरत्
वसिष्ठंचाग्रतःकृत्वामहामाण्डलिकैर्नृपैः ।पुरश्चरणविधिंकृत्वाप्रस्थितश्चोत्तरांदिशम्
वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा प्रतस्थेपश्चिमांदिशम् । ग्रामाद्ग्राममतिक्रम्य देशाद्देशंवनाद्वनम्

विमुच्य निर्ययौ रामः ससैन्यः सपरिच्छदः ।
गजवाजिसहस्रौघै रथैर्यानैश्च कोटिभिः ॥ ५४ ॥
शिबिकाभिश्चासङ्ख्याभिः प्रययौ राघवस्तदा ।
गजारूढः प्रपश्यंश्च देशान्विविधसौहृदान् ॥ ५५ ॥

श्वेतातपत्रं विधृत्य चामरेण शुभेन च । वीजितश्च जनौघेन रामस्तत्र समभ्यगात्
वादित्राणां स्वनैर्घोरैर्नृत्यगीतपुरः सरैः । स्तूयमानोपिसूतैश्चययौरामोमुदान्वितः
दशमेऽहनि सम्प्राप्तं धर्मारण्यमनुत्तमम् । अदूरे हि ततो रामोदृष्ट्वा माण्डलिकंपुरम्
तत्रस्थित्वाससैन्यस्तुउवासनिशितांपुरीम् । श्रुत्वातुनिर्जनंक्षेत्रमुद्वसंच भयानकम्
व्याघ्रसिंहाकुलं तच्च यक्षराक्षससेवितम् । श्रुत्वाजनमुखाद्रामो धर्मारण्यमरण्यकम्

तच्छ्रुत्वा (उवाच) रामदेवस्तु न चिन्ता क्रियतामिति।
तत्रस्थान्वणिजः शूरान्दक्षान्स्वव्यवसायके ॥ ६१ ॥

समर्थान्हि महाकायान्महाबलपराक्रमान् । समाहूय तदाकाले वाक्यमेतदथाब्रवीत्
शिबिकां सुसुवर्णां मेशीघ्रं वाहयताचिरम् । यथाक्षणेन चैकेनधर्मारण्यं व्रजाम्यहम्

तत्र स्नात्वा चपीत्वा चसर्वपापात्प्रमुच्यते । एवं तेवणिजःसर्वेरामेणप्रेरितास्तदा तथेत्युक्त्वा चतेसर्वेऊहुस्तच्छिबिकां तदा । क्षेत्रमध्ये यदारामःप्रविष्टःसहसैनिकः तदानस्य गतिर्मन्दासञ्जाता किलभारत । मन्दशब्दानि वाद्यानिमातङ्गामन्दगामिनः

हयाश्च तादृशा जाता रामो विस्मयमागतः ।

गुरुम्पप्रच्छ विनयाद्वशिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६७ ॥

किमेतन्मन्दगतयश्चित्रं हृदि मुनीश्वर । त्रिकालज्ञो मुनिः प्राह धर्मक्षेत्रमुपागतम् तीर्थे पुरातने रामपादचारेण गम्यताम् । एवंकृते ततःपश्चात्सैन्यसौख्यंभविष्यति पादचारी ततो रामः सैन्येन सह संयुतः । मधुवासनके ग्रामे प्राप्तः परमपावने गुरुणा चोक्तमार्गेण मातृणांपूजनं कृतम् । नानोपहारैर्विविधैः प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ततो रामो हरिक्षेत्रं सुवर्णादक्षिणे तटे । निरीक्ष्य यज्ञयोग्याञ्च भूमीर्वै बहुशस्तथा

कृतकृत्यं तदात्मानं मेने रामो रघूद्वहः ।

धर्मस्थानं निरीक्ष्याथ सुवर्णाक्षोत्तरे तटे ॥ ७२ ॥

सैन्यसङ्घं समुत्तीर्य्य बभ्राम क्षेत्रमध्यतः । तत्र तीर्थेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च यथोक्तानि चकर्माणि रामश्चक्रे विधानतः । श्राद्धानि विधिवच्चक्रेश्रद्धया परयायुतः स्थापयामास रामेशं तथा कामेश्वरं पुनः । स्थानाद्वायुप्रदेशे तु सुवर्णोभयतस्तटे कृत्वैवं कृतकृत्योऽभूद्रामोदशरथात्मजः । कृत्वा सर्वविधिञ्चैवसभार्यःसमुपाविशत् तां निशां स नदीतीरेसुष्वाप रघुनन्दनः । ततोऽर्द्धरात्रे संजाते रामो राजीवलोचनः जागृतस्तुतदाकालएकाकोधर्मवत्सलः । अश्रौषीच्च क्षणेतस्मिन्रामोनारीविरोदनम् निशायां करुणैर्वाक्यै रुदन्तींकुररीमिव । चारैर्विलोकयामासरामस्तामतिसंभ्रमात् दृष्ट्वातिविह्वलां नारीं क्रन्दन्तींकरुणैः स्वरैः । पृष्टा सादुःखितानारीरामदूतैस्तदानघ

दूता ऊचुः

काऽसि त्वंसुभगेनारि!देवी वादानवो नुकिम् । केनचात्रासितासित्वंमुग्धेकेनधनंतव विकला दारुणाञ्छब्दानुद्गिरन्तीमुहुर्मुहुः । कथयस्वयथातथ्यंरामोराजाभिपृच्छति तयोक्तं स्वामिनंदूताःप्रेषयध्वं ममान्तिकम् । यथाहं मानसंदुःखंशान्त्यैतस्मैनिवेदये

तथेत्युक्त्वा ततो दूता राममागत्य चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥
इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये दूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः

---

# द्वात्रिंशोऽध्यायः

## सत्यमन्दिरस्थापनवर्णनम्

व्यास उवाच

ततश्च रामदूतास्ते नत्वा राममथाब्रुवन् । रामराम महाबाहो वरनारी शुभानना
सुवस्त्रभूषाभरणांमृदुवाक्यपरायणाम् । एकाकिनींक्रन्दमानांदृष्ट्वातांविस्मितावयम्
समीपवर्तिनोभूत्वा पृष्टा सासुरसुन्दरी । कात्वंदेविवरारोहे देवी वा दानवीनुकिम्
रामःपृच्छतिदेवि त्वांब्रूहि सर्वंयथातथम् । तच्छ्रुत्वावचनंरामा सोवाचमधुरम्वचः
रामं प्रेषयत भद्रं वो मम दुःखापहम्परम् । तदाकर्ण्यततोरामः सम्भ्रमात्त्वरितोययौ
दृष्ट्वा तां दुःखसन्तप्तां स्वयं दुःखमवाप सः । उवाच वचनं रामः कृताञ्जलिपुटस्तदा

श्रीराम उवाच

का त्वं शुभे! कस्य परिग्रहो वा केनाऽवधूता विजने निरस्ता ।
मुष्टं धनं केन च तावकीनमाचक्ष्व मातः! सकलं ममाग्रे ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वाचातिदुःखार्तोरामो मतिमताम्वरः । प्रणामं दण्डवच्चक्रे चक्रपाणिरिवापरः
तयाभिनन्दितोरामः प्रणम्य च पुनः पुनः । तुष्टया परया प्रीत्या स्तुतो मधुरयागिरा
परमात्मन्परेशान दुःखहारिन्सनातन । यदर्थमवतारस्ते तच्च कार्यं त्वया कृतम् ॥१०
रावणः कुम्भकर्णश्च शक्रजित्प्रमुखास्तथा । खरदूषणत्रिशिरोमारीचाक्षकुमारकाः ॥
असङ्ख्या निर्जिता रौद्रा राक्षसाःसमराङ्गणे ॥ १२ ॥
किं वच्मि लोकेश! सुकीर्तिमद्य ते वेधास्त्वदीयाङ्गजपद्मसम्भवः ।

विश्वंनिविष्टञ्चततो (तवोदरस्थं) ददर्श वटस्य पत्रे (बीजे)हि यथा वटो मतः ॥१३
धन्यो दशरथोलोकेकौशल्याजननीतव । ययोर्जातोऽसि गोविन्दजगदीशपरःपुमान्

धन्यश्च तत्कुलं राम यत्र त्वमागतः स्वयम् ।
धन्याऽयोध्यापुरी राम धन्योलोकस्त्वदाश्रयः ॥ १५ ॥
धन्यः सोऽपि हि वाल्मीकिर्येन रामायणं कृतम् ।
कविना विप्रमुख्येभ्य आत्मबुद्ध्या ह्यनागतम् ॥ १६ ॥
त्वत्तोऽभवत्कुलं चेदं त्वया देव! सुपावितम् ॥ १७ ॥

नरपतिरितिलोकैः स्मर्यते वैष्णवांशः स्वयमसिरमणीयैस्त्वं गुणैर्विष्णुरेव ।
किमपि भुवनकार्यं यद्विचिन्त्यावतीर्य्यं तदिह घटयतस्ते वर्त्म निर्विघ्नमस्तु ॥

स्तुत्वा वाचाथ रामं हि त्वयि नाथे नु साम्प्रतम् ।
शून्यावृत्ते चिरं कालं यथा दोषस्तथैव हि ॥ १९ ॥
धर्मारण्यस्य क्षेत्रस्य विद्धि मामधिदेवताम् ।
वर्षाणि द्वादशेहैव जातानि दुःखिताऽस्म्यहम् ॥ २० ॥

निर्जनत्वं ममाद्य त्वमुद्धरस्वमहामते । लोहासुरभयाद्रामविप्राः सर्वे दिशो दश ॥
गताश्च वणिजः सर्वे यथास्थानंसुदुःखिताः । स दैत्योघातितोरामदेवैःसुरभयङ्करः
आक्रम्यात्रमहामायोदुराधर्षोदुरत्ययः । न ते जनाः समायान्ति तद्भयार्दतिशङ्किताः
अद्य वैद्वादशसमाःशून्यागारमनाथवत् । यस्यांहिदीर्घिकायां मे स्नानदानोद्यतोजनः
राम!तस्यां दीर्घिकायांनिपतन्तिचशूकराः । यत्राङ्गना भर्तृयुता जलक्रीडापरायणाः
चिक्रीडुस्तत्रमहिषानिपतन्तिजलाशये । यत्रस्थाने सुपुष्पाणां प्रकरःप्रचुरोऽभवत्
तद्वृद्धंकण्टकैर्वृक्षैः सिंहव्याघ्रसमाकुलैः । संचिक्रीडुःकुमाराश्चयस्यांभूमौ निरन्तरम्
कुमार्यश्चित्रकाणाञ्च तत्र क्रीडन्तिहर्षिताः । अकुर्वन्वाडवा यत्र वेदगानं निरन्तरम्
शिवानां तत्रफेत्कारा श्रूयन्तेऽतिभयङ्कराः । यत्रधूमोऽग्निहोत्राणांदृश्यन्तेवैगृहेगृहे
तत्र दावाःसधूमाश्च दृश्यन्तेऽत्युल्बणाभृशम् । नृत्यन्तेनर्त्तकायत्रहर्षिताःहिद्विजाग्रतः
तत्रैवभूतवेतालाःप्रेताःनृत्यन्तिमोहिताः । नृपा यत्र सभायां तु न्यषीदन्मन्त्रतत्पराः

तस्मिन्स्थाने निषीदन्ति गवया ऋक्षशल्लकाः ।

आवासा यत्र दृश्यन्ते द्विजानां वणिजां तथा ॥ ३२ ॥

कुट्टिमप्रतिमारामा दृश्यन्तेऽत्रबिलानि वै । कोटराणीव वृक्षाणांगवाक्षाणीह सर्वतः
चतुष्का यज्ञवेदिर्हि सोच्छ्रायाह्यभवत्पुरा । तेऽत्रवल्मीकनिचयैर्दृश्यन्तेपरिवेष्टिताः
एवंविधं निवासं मे विद्धिरामनृपोत्तम ।। शून्यंतु सर्वतोयस्मान्निवासार्थद्विजागताः
तेनमे सुमहद्दुःखं तस्मात्त्राहि नरेश्वर ।। एतच्छ्रुत्वा वचो राम उवाच वदताम्वरः

श्रीराम उवाच

न जाने तावकान्विप्रांश्चतुर्दिक्षु समाश्रितान् ।

न तेषां वेद्म्यहं सङ्ख्यां नामगोत्रे द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥

यथाज्ञातिर्यथागोत्रंयाथातथ्यंनिवेदय । ततआनीयतान्सर्वान्स्वस्थानेवासयाम्यहम्

श्रीमातोवाच

ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च स्थापिता ये नरेश्वर ।। अष्टादश सहस्राणि ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥

त्रयीविद्यासु विख्याता लोकेऽस्मिन्नमितद्युते ।।

चतुश्चत्रिक‌गोत्राणां वाडवा ये प्रतिष्ठिताः ॥ ४० ॥

श्रीमातादात्त्रयीविद्यांलोकेसर्वद्विजोत्तमाः। षट्त्रिंशच्चसहस्राणिवैश्याधर्मपरायणाः
आर्यवृत्तास्तु विज्ञेया द्विजशुश्रूषणेरताः । बहु(कु)लार्को नृपो यत्र सङ्ख्यासहराजते
कुमारावश्विनौ देवौ धनदो व्ययपूरकः । अधिष्ठात्रीत्वहं राम नाम्नाभट्टारिकास्मृता

श्रीसूत उवाच

स्थानाचाराश्रये केचित्कुलाचारास्तथैवच । श्रीमात्राकथितंसर्वंरामस्याग्रेपुरातनम्
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रामोमुदमवापह । सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यंहिभाषितन्त्वया
यस्मात्सत्यं त्वया प्रोक्तं तन्नाम्नानगरंशुभम् । वासयामिजगन्मातःसत्यमन्दिरमेवच

त्रैलोक्ये ख्यातिमाप्नोतु सत्यमन्दिरमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

एतदुक्त्वा ततो रामः सहस्रशतसंख्यया । स्वभृत्यान्प्रेषयामास विप्रानयनहेतवे ॥
यस्मिन्देशे प्रदेशे वा वने वा सरितस्तटे । पर्यन्ते वा यथास्थानेग्रामे वा तत्रतत्रच

धर्मारण्यनिवासाश्च यातायत्रद्विजोत्तमाः । अर्घपाद्यैःपूजयित्वा शीघ्रमानयतात्रतान्
अहमत्र तदा भोक्ष्ये यदा द्रक्ष्ये द्विजोत्तमान् ॥ ५१ ॥
विमान्यचद्विजानेतानागमिष्यतियोनरः। समेवध्यश्चदण्ड्यश्चनिर्वास्योविषयाद्बहिः
तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं दुःसहंदुष्प्रधर्षणम् । रामाज्ञाकारिणोदूतागताःसर्वेदिशोदश
शोधिता वाडवाः सर्वे लब्धाः सर्वेसुहर्षिताः । यथोक्तेन विधानेन अर्घपाद्यैरपूजयन्
स्तुतिंचक्रुश्चविधिवद्विनयाचारपूर्वकम् । आमन्त्र्यचद्विजान्सर्वान्रामवाक्यंप्रकाशयन्
ततस्ते वाडवाः सर्वे द्विजाः सेवकसंयुताः । गमनायोद्यताःसर्वे वेदशास्त्रपरायणाः
आगता रामपार्श्वञ्च बहुमानपुरःसराः । समागतान्द्विजान्दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दाशरथिर्नृपः । स सम्भ्रमात्समुत्थाय पदातिःप्रययौ पुरः
करसम्पुटकं कृत्वा हर्षाश्रु प्रतिमुञ्चयन् । जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥
विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम् ।
विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसादान्मम रामनाम ॥ ६० ॥
इत्येवमुक्ता रामेण वाडवास्तेप्रहर्षिताः । जयाशीर्भिःप्रपूज्याथ दीर्घायुरितिचाब्रुवन्
आवर्जितास्तेरामेणपाद्यार्घ्यविष्टरादिभिः । स्तुतिंचकारविप्राणांदण्डवत्प्रणिपत्यच
कृत्वाञ्जलिपुटः स्थित्वा चक्रे पादाभिवन्दनम् ।
आसनानि विचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ ६३ ॥
समर्पयामास ततो रामो दशरथात्मजः । अङ्गुलीयकवासांसि उपवीतानिकर्णकान्
प्रददौविप्रमुख्येभ्योनानावर्णाश्चधेनवः । एकैकशतसङ्ख्याका घटोध्नीश्चसवत्सकाः
सवस्त्रावद्धघण्टाश्चहेमशृङ्गविभूषिताः । रूप्यखुरास्ताम्रपृष्ठाः कांस्यपात्रसमन्विताः
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे सत्यमन्दिरस्थापन-
वर्णनंनाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

# त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

## श्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णनम्

### राम उवाच

जीर्णोद्धारं करिष्यामि श्रीमातुर्वचनादहम् । आज्ञाप्रदीयतां मह्यं यथादानंददामिवः
पात्रे दानं प्रदातव्यं कृत्वायज्ञवरं द्विजाः !। नापात्रे दीयते किञ्चिद्दत्तं नतुसुखावहम्
सुपात्रं नौरिव सदा तारयेदुभयोरपि । लोहपिण्डोपमं ज्ञेयं कुपात्रं भञ्जनात्मकम्
जातिमात्रेणविप्रत्वंजायतेनहिभोद्विजाः । क्रिया बलवतीलोकेक्रियाहीनेकुतःफलम्

पूज्यास्तस्मात्पूज्यतमा ब्राह्मणाःसत्यवादिनः ।
यज्ञकार्ये समुत्पन्ने कृपां कुर्वन्तु सर्वदा ॥ ५ ॥

### ब्रह्मोवाच

ततस्तुमिलिताःसर्वेविमृश्यचपरस्परम् । केचिदूचुस्तदारामंशिलोञ्छजीविकावयम्
सन्तोषं परमास्थाय स्थिता धर्मपरायणाः । प्रतिग्रहप्रयोगेण न चास्माकंप्रयोजनम्
दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमोध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥
राजप्रतिग्रहो घोरो रामसत्यं न संशयः । तस्माद्वयं न चेच्छामः प्रतिग्रहं भयावहम्

एकाहिका द्विजाः केचित्केचित्स्वामृतवृत्तयः ।
कुम्भीधान्या द्विजाः केचित्केचित्षट्कर्मतत्पराः ॥ १० ॥
त्रिमूर्त्तिस्थापिताः सर्वे पृथग्भावाः पृथग्गुणाः ।
केचिदेवं वदन्ति स्म त्रिमूर्त्याज्ञां विना वयम् ॥ ११ ॥

प्रतिग्रहस्य स्वीकारंकथं कुर्यामहद्विजाः । न ताम्बूलंस्वीकृतंनोह्यन्नोदानेनभूषितम्
विमृश्य स तदारामो वसिष्ठेन महात्मना । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांसस्मार गुरुणासह
स्मृतमात्रास्ततोदेवास्तंदेशं समुपागमन् । सूर्यकोटिप्रतीकाशंविमानावलिसम्वृताः

रामेण ते यथान्यायं पूजिताः परया मुदा ।

निवेदितं तु तत्सर्वं रामेणाऽतिसुबुद्धिना ॥ १५ ॥
अधिदेव्या वचनतो जीर्णोद्धारं करोम्यहम् । धर्मारण्ये हरिक्षेत्रे धर्मकूपसमीपतः
ततस्ते वाडवाः सर्वे त्रिमूर्त्तीः प्रणिपत्यच । महता हर्षवृन्देन पूर्णाः प्राप्तमनोरथाः
अर्घ्यपाद्यादिविधिना श्रद्धया तानपूजयन् । क्षणंविश्रम्य ते देवाब्रह्मविष्णुशिवादयः
ऊचू रामं महाशक्तिं विनयात्कृतसम्पुटम् ॥ १६ ॥

देवा ऊचुः

देवद्रुहस्त्वया राम! ये हता रावणादयः । तेन तुष्टा वयं सर्वे भानुवंशविभूषण!॥२०
उद्धरस्व महास्थानं महतीं कीर्त्तिमाप्नुहि ॥ २१ ॥
लब्ध्वासनेषामाज्ञांतुप्रीतोदशरथात्मजः । जीर्णोद्धारेऽनन्तगुणंफलमिच्छन्निलापतिः
देवानांसन्निधौतेषांकार्यारम्भमथाकरोत् । स्थण्डिलंपूर्वतःकृत्वामहागिरिसमंशुभम्
तस्योपरि वहिःशाला गृहशालाह्यनेकशः । ब्रह्मशालाश्च बहुशो निर्ममे शोभनाकृतीः
निधानैश्च समायुक्ता गृहोपकरणैर्वृताः । सुवर्णकोटिसम्पूर्णा रसवस्त्रादिपूरिताः
धनधान्यसमृद्धाश्च सर्वधातुयुतास्तथा । एतत्सर्वं कारयित्वा ब्राह्मणेभ्यस्तदा ददौ
एकैकशोदशदश ददौधेनूःपयस्विनीः । चत्वारिंशच्छतं प्रादाद्ग्रामाणां चतुराधिकम्
त्रैविद्यद्विजविप्रेभ्यो रामोदशरथात्मजः । काजेशेन त्रयेणैव स्थापिता द्विजसत्तमाः
तस्मात्त्रयीविद्यइतिख्यातिर्लोके बभूवह । एवंविधेद्विजेभ्यः स दत्त्वादानंमहाद्भुतम्
आत्मानं चापि मेने स कृतकृत्यं नरेश्वरः । ब्रह्मणा स्थापिताः पूर्वंविष्णुनाशङ्करेणये
ते पूजिता राघवेण जीर्णोद्धारेकृतेसति । षट्त्रिंशच्च सहस्राणिगोभुजायेवणिग्वराः
शुश्रूषार्थं प्रदत्तावै देवैर्हरिहरादिभिः । सन्तुष्टेन तु शर्वेण तेभ्यो दत्तं तु वेतनम् ॥
श्वेताश्वचामरौ दत्तौ खड्गं दत्तं सुनिर्मलम् । तदा प्रबोधितास्तेच द्विजशुश्रूषणायवै
विवाहादौसदाभाव्यं चामरैर्मङ्गलंपरम् । खड्गंशुभंतदाधार्य्यं ममचिह्नं करेस्थितम्
गुरुपूजा सदा कार्या कुलदेव्याः पुनः पुनः । वृद्धयागमेषु प्राप्तेषु वृद्धिदायकदक्षिणा
एकादश्यां शनैर्वारे दानंदेयं द्विजन्मने । प्रदेयंबालवृद्धेभ्यो मम रामस्य शासनात्
मण्डलेषु च येशुद्धावणिग्वृत्तिरताः पराः । सपादलक्षास्ते दत्ता रामशासनपालकाः

माण्डलीकास्तु तेषांयाराजानोमण्डलेश्वराः । द्विजशुश्रूषणे दत्ता रामेणवणिजांवराः
चामरद्वितयं रामो दत्तवान्खड्गमेव च । कुलस्य स्वामिनं सूर्यं प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम्
ब्रह्माणं स्थापयामास चतुर्वेदसमन्वितम् । श्रीमातरंमहाशक्तिंशून्यस्वामिहरिं तथा
विघ्नापध्वंसनार्थायदक्षिणद्वारसंस्थितम् । गणं संस्थापयामासतथान्यांश्चैवदेवताः
कारितास्तेनवीरेणप्रासादाःसप्तभूमिकाः । यत्किञ्चित्कुरुतेकार्यंशुभं मांगल्यरूपकम्
पुत्रे जातेजातके चाऽन्नाशने मुण्डनेऽपि वा । लक्षहोमे कोटिहोमे तथा यज्ञक्रियासुत्र

वास्तुपूजा ग्रहशान्त्योः प्राप्ते चैव महोत्सवे ।
यत्किञ्चित्कुरुतेदानं द्रव्यं वा धान्यमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

वस्त्रं व धेनवो नाथ! हेमरूप्यं तथैव च । विप्राणामथ शूद्राणां दीनानाथान्धकेषु च
प्रथमं बकुलार्कस्य श्रीमातुश्चैवमानवः । भागं दद्याच्चनिर्विघ्नकार्यसिद्ध्यैनिरन्तरम्
वचनं मे समुल्लङ्घ्यकुरुतेयोऽन्यथानरः । तस्यतत्कर्मणोविघ्नंभविष्यतिनसंशयः
एवमुक्त्वा ततो रामःप्रहृष्टेनान्तरात्मना । देवानामथवापीश्च प्राकारांस्तु सुशोभनान्

दुर्गोपकरणैर्युक्तान्प्रतोलीश्च सुविस्तृताः ।
निर्ममे चैव कुण्डानि सरांसि सरसीस्तथा ॥ ४९ ॥

धर्मवापीश्च कूपांश्च तथान्यान्देवनिर्मितान् । एतत्सर्वं च विस्तार्यधर्मारण्येमनोरमे
ददौ त्रैविद्यमुख्येभ्यः श्रद्धयापरया पुनः । ताम्रपट्टस्थितं रामशासनं लोपयेत्तु यः
पूर्वजास्तस्य नरके पतन्त्यग्रेन सन्ततिः । वायुपुत्रं समाहूय ततो रामोऽब्रवीद्वचः
वायुपुत्र! महावीर तव पूजा भविष्यति । अस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थंत्वमत्र स्थितिमाचर
आञ्जनेयस्तु तद्वाक्यं प्रणम्यशिरसादधौ । जीर्णोद्धारं तदा कृत्वा कृतकृत्योबभूवह
श्रीमातरं तदाभ्यर्च्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । श्रीमातरंनमस्कृत्यतीर्थान्यन्यानिराघवः

तेऽपि देवाः स्वकं स्थानं ययुर्ब्रह्मपुरोगमाः ॥ ५६ ॥
दत्त्वाऽऽशिषं तु रामाय वाञ्छितं ते भविष्यति ।
रम्यं कृतं त्वया राम! विप्राणां स्थापनादिकम् ॥ ५७ ॥
अस्माकमपि वात्सल्यं कृतं पुण्यवता त्वया ।

इति स्तुवन्तस्ते देवाः स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ५८ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीये ब्रह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये श्रीरामचन्द्रस्य पुरप्रत्यागमनवर्णनंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

### श्रीरामेणब्राह्मणेभ्यःशासनपट्टप्रदानवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं रामेण धर्मज्ञ! जीर्णोद्धारः पुरा कृतः । द्विजानां च हितार्थाय श्रीमातुर्वचनेन च

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं शासनंब्रह्मन्रामेण लिखितं पुरा । कथयस्व प्रसादेन त्रेतायां सत्यमन्दिरे ॥

व्यास उवाच

धर्मारण्ये वरे दिव्ये बकुलार्कस्वधिष्ठिते । शून्यस्वामिनिविप्रेन्द्रस्थितेनारायणेप्रभौ रक्षणाधिपतौ देवे सर्वज्ञे गणनायके । भवसागरमग्नानां तारिणी यत्र योगिनी ॥ शासनं तत्र रामस्य राघवस्य च नामतः । शृणुताम्राश्रयं तत्र लिखितं धर्मशास्त्रतः महाश्चर्यकरं तच्च ह्यनेकयुगसंस्थितम् । सर्वो धातुःक्षयं यातिसुवर्णं क्षयमेति च ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते पुत्र द्विजशासनमक्षयम् । अविनाशो हि ताम्रस्य कारणं तत्र विद्यते वेदोक्तं सकलं यस्माद्विष्णुरेवहि कथ्यते । पुराणेषु च वेदेषु धर्मशास्त्रेषु भारत !॥ सर्वत्रगीयते विष्णुर्नानाभावसमाश्रयः । नानादेशेषु धर्मेषु नानाधर्मनिषेविभिः ॥ नानाभेदैस्तु सर्वत्र विष्णुरेवेति चिन्त्यते । अवतीर्णःस वैसाक्षात्पुराणपुरुषोत्तमः देववैरिविनाशाय धर्मसंरक्षणाय च । तेनेदं शासनं दत्तमविनाशात्मकं सुत !॥ ११॥ यस्यप्रतापाद्दृषदस्तारिता जलमध्यतः । वानरैर्वेष्टिता लङ्का हेलया राक्षसा हताः

मुनिपुत्रं मृतंरामो यमलोकादुपानयत् । दुन्दुभिर्निहतो येन कबन्धोऽभिहतस्तथा
निहता ताडकाचैव सप्तताला विभेदिताः । खरश्च दूषणश्चैव त्रिशिराश्च महासुरः ॥
चतुर्दशसहस्राणि जवेन निहता रणे । तेनेदं शासनंदत्तमक्षयं न कथं भवेत् ॥ १५ ॥
स्ववंशवर्णनं तत्र लिखित्वा स्वयमेव तु । देशकालादिकं सर्वं लिलेखविधिपूर्वकम्
स्वमुद्राचिह्नितं तत्र त्रैविद्येभ्यस्तथा ददौ । चतुश्चत्वारिंशवर्षो रामोदशरथात्मजः

तस्मिन्काले महाश्चर्यं संदत्तं किल भारत !।

तत्र स्वर्णोपमं चापि रौप्योपममथापि च ॥ १८ ॥

उवाह सलिलं तीर्थे देवर्षिपितृतृप्तिदम् । स्ववंशनायकस्याग्रे सूर्येण कृतमेव तत् ॥
तद्दृष्ट्वामहदाश्चर्यं रामो विष्णुं प्रपूज्य च । त्रयीं विद्यामयीं दत्त्वाब्रह्मार्पणमना शुचिः

रामलेखविचित्रैस्तु लिखितं धर्मशासनम् ॥ २० ॥

यद्दृष्ट्वाऽथ द्विजाः सर्वे संसारभयबन्धनम् । कुर्वतेनैवयस्माच्चतस्मान्निखिलरक्षकम्
ये पापिष्ठा दुराचारा मित्रद्रोहरताश्च ये । तेषां प्रबोधनार्थाय प्रसिद्धिमकरोत्पुरा
रामलेखविचित्रैस्तु विचित्रे ताम्रपट्टके । वाक्यानीमानि श्रूयन्ते शासने किल नारद

आस्फोटयन्ति पितरः कथयन्ति पितामहाः ।

भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्मान्संतारयिष्यति ॥ २४ ॥

बहुभिर्बहुधा भुक्ता राजभिः पृथिवी त्वियम् ।

यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्य तदा फलम् ॥ २५ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येवनरकंव्रजेत्
संदंशस्तुद्यमानस्तु मुद्गरैर्विनिहत्य च । पाशैःसुबध्यमानस्तुरोरवीति महास्वनम्

ताड्यमानः शिरे दण्डैः समालिङ्ग्य विभावसुम् ।

क्षुरिकया छिद्यमानो रोरवीति महास्वनम् ॥ २८ ॥

यमदूतैर्महाघोरैर्ब्रह्मवृत्तिविलोपकाः । एवंविधैर्महादुष्टैः पीड्यन्ते ते महागणैः ॥२९॥

ततस्तिर्यक्त्वमाप्नोति योनिं वा राक्षसीं शुनीम् ।

व्यालीं शृगालीं पैशाचीं महाभूतभयङ्करीम् ॥ ३० ॥

भूमेरङ्गुलहर्ता हि स कथं पापमाचरेत् । भूमेरङ्गुलदाता च स कथं पुण्यमाचरेत् ॥
अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च । कन्याशतप्रदानस्यफलंप्राप्नोति भूमिदः ॥
आयुर्यशः सुखं प्रज्ञा धर्मो धान्यं धनं जयः । सन्तानंवर्द्धतेनित्यंभूमिदः सुखमश्नुते
भूमेरङ्गुलमेकं तु ये हरन्ति खला नराः । विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः
कृष्णसर्पाः प्रजायन्ते दत्तदायापहारकाः ॥ ३४ ॥
तडागानां सहस्रेण अश्वमेधशतेन वा । गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता विशुध्यति ॥
यानीह दत्तानि पुनर्धनानि दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ।
औदार्यतो विप्रनिवेदितानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ ३६ ॥
चलदलदललीलाचञ्चले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये ।
अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरकगहनगर्त्तावर्तपातोत्सुको यः ॥
ये पास्यन्ति महीभुजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्त्वाऽखिलां,
नो याता न तु याति यास्यति न वा केनापि सार्द्धं धरा ।
यत्किञ्चिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्तिः परं स्थायिनी,
त्वेवं वै वसुधापि यैरुपकृता लोप्या न सत्कीर्तयः ॥ ३८ ॥
एकैव भगिनी लोके सर्वेषामेवभूभुजाम् । न भोज्या न करग्राह्या विप्रदत्तावसुन्धरा
दत्त्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेशान्भूयोभूयो याचते रामचन्द्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः ॥ ४० ॥
अस्मिन्वंशे क्षितौ कोऽपि राजा यदि भविष्यति ।
तस्याऽहं करलग्नोऽस्मि मद्दत्तं यदि पाल्यते ॥ ४१ ॥
लिखित्वा शासनं रामश्चातुर्वेद्यद्विजोत्तमान् ।
सम्पूज्य प्रददौ धीमान्वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ ४२ ॥
ते वाडवा गृहीत्वा तं पट्टं रामाज्ञया शुभम् । ताम्रं हैमाक्षरयुतं धर्म्यंधर्मविभूषणम्
पूजार्थं भक्तिकामार्थास्तद्रक्षणमकुर्वत । चन्दनेन च दिव्येन पुष्पेण च सुगन्धिना
तथा सुवर्णपुष्पेण रूप्यपुष्पेण वा पुनः । अहन्यहनि पूजां ते कुर्वते वाडवाःशुभाम्

तदग्रे दीपकं चैव घृतेन विमलेन हि । सप्तवर्तियुतंराजन्नर्घ्यं प्रकुर्वते द्विजाः ॥ ४६॥
नैवेद्यं कुर्वते नित्यं भक्तिपूर्वं द्विजोत्तमाः । रामरामेति रामेति मन्त्रमप्युच्चरन्ति हि
अशने शयने पाने गमने चोपवेशने । सुखेवाप्यथवादुःखे राममन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ४८

न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाऽऽधिव्याधिभयं भवेत् ।
आयुःश्रियं बलं तस्य वर्द्धयन्ति दिने दिने ॥ ४६ ॥

रामेति नाम्ना मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि । नरकंनहिगच्छेतगतिंप्राप्नोतिशाश्वतीम्

व्यास उवाच

इति कृत्वा ततो रामः कृतकृत्यममन्यत । प्रदक्षिणीकृत्यतदा प्रणम्यच द्विजान्बहून्
दत्त्वा दानं भूरितरं गवाश्वमहिषीरथम् । ततः सर्वान्निजांस्तांश्चवाक्यमेतदुवाच ह
अत्रैवस्थीयतां सर्वैर्यावच्चन्द्रदिवाकरौ । यावन्मेरुर्महीपृष्ठे सागराः सप्त एव च ॥
तावदत्रैव स्थातव्यं भवद्भिर्हि न संशयः । यदाहिशासनं विप्रा न मन्यन्ते नृपाभुवि

अथवा वणिजः शूरा मदमायाविमोहिताः ।
मदाज्ञां न प्रकुर्वन्ति मन्यन्ते वा न ते जनाः ॥ ५५ ॥

तदा वै वायुपुत्रस्य स्मरणंक्रियतांद्विजाः । स्मृतमात्रोहनूमान्वैसमागत्यकरिष्यति
सहसा भस्मतान्सत्यं वचनान्मे न संशयः । य इदं शासनं रम्यं पालयिष्यतिभूपतिः

वायुपुत्रः सदा तस्य सौख्यमृद्धिं प्रदास्यति ।
ददाति पुत्रान्पौत्रांश्च साध्वीं पत्नीं यशो जयम् ॥ ५८ ॥

इत्येवं कथयित्वा च हनुमन्तं प्रबोध्य च । निवर्तितो रामदेवः ससैन्यःसपरिच्छतः

वादित्राणां स्वनैर्विष्वक्सूच्यमानशुभागमः ।
श्वेतातपत्रयुक्तोऽसौ चामरैर्वीजितो नरैः ।
अयोध्या नगरीं प्राप्य चिरं राज्यं चकार ह ॥ ६० ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये ब्रह्मनारदसम्वादे श्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः
शासनपट्टप्रदानवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

# पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

## श्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनम्

नारद उवाच

भगवन्देवदेवेश सृष्टिसंहारकारक ।। गुणातीतो गुणैर्युक्तो मुक्तीनां साधनं परम् ॥१॥

संस्थाप्य वेदभवनं विधिवद् द्विजसत्तमान् ।

किं चक्रे रघुनाथस्तु भूयोऽयोध्यां गतस्तदा ॥ २ ॥

स्वस्थाने ब्राह्मणास्तत्र कानि कर्माणि चक्रिरे ।

ब्रह्मोवाच

इष्टापूर्तरताः शान्ताः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः ॥ ३ ॥

राज्यं चक्रुर्वनस्यास्य पुरोधा द्विजसत्तमः । उवाचरामपुरतस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्

प्रयागस्य च माहात्म्यं त्रिवेणीफलमुत्तमम । प्रयागतीर्थमहिमा शुक्लतीर्थस्यचैवहि

सिद्धक्षेत्रस्य काश्याश्च गङ्गाया महिमा तथा ।

वसिष्ठः कथयामास तीर्थान्यन्यानि नारद ॥ ६ ॥

धर्मारण्यसुवर्णाया हरिक्षेत्रस्य तस्यच । स्नानदानादिकंसर्वंवाराणस्याग्रवाधिकम्

एतच्छ्रुत्वा रामदेवः स चमत्कृतमानसः । धर्मारण्ये पुनर्यात्रांकर्त्तुकामःसमभ्यगात्

सीतया सह धर्मज्ञो गुरुसैन्यपुरःसरः । लक्ष्मणेन सहभ्रात्रा भरतेन सहायवान ॥ ९

शत्रुघ्नेन परिवृतो गतो मोहेरके पुरे । तत्र गत्वा वसिष्ठं तु पृच्छतेऽसौ महामनाः

राम उवाच

धर्मारण्ये महाक्षेत्रे किं कर्त्तव्यंद्विजोत्तम । दानंवानियमोवाथ स्नानं वा तपउत्तमम्

ध्यानम्वाऽथक्रतुम्वाथहोमम्वाजपमुत्तमम् । दानम्वानियमम्वाथस्नानम्वातपउत्तमम्

येनवै क्रियमाणेन तीर्थेऽस्मिन्द्विजसत्तम ।। ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यतेतद्ब्रवीहि मे

वसिष्ठ उवाच

यज्ञङ्कुरु महाभाग धर्मारण्ये त्वमुत्तमम् । दिनेदिने कोटिगुणं यावद्वर्षशतं भवेत् ॥

तच्छ्रुत्वा चैव गुरुतो यज्ञारम्भं चकारसः। तस्मिन्नवसरे सीता रामं व्यज्ञापयन्मुदा स्वामिन्पूर्वं त्वया विप्रा वृता ये वेदपारगाः। ब्रह्मविष्णुमहेशेननिर्मितायेपुराद्विजाः कृतेत्रेतायुगेचैवधर्मारण्यनिवासिनः। विप्रांस्तान्वैवृणुष्वत्वं तैरेव साधकोऽध्वरः तच्छ्रुत्वारामदेवेन आहूता ब्राह्मणास्तदा। स्थापिताश्चयथापूर्वमथस्मिन्मोहेरकेपुरे तैस्त्वष्टादशसङ्ख्याकैस्त्रैविद्यैर्मोहिवाडवैः। यज्ञश्चकार विधिवत्तैरेवायतबुद्धिभिः॥ कुशिकःकौशिकोवत्सउपमन्युश्चकाश्यपः। कृष्णात्रेयोभरद्वाजोधारिणःशौनकोवरः

माण्डव्यो भार्गवः पैंग्यो वात्स्यो लौगाक्ष एव च।
गाङ्गायनोऽथ गाङ्गेयः शुनकः शौनकस्तथा॥ २१॥

ब्रह्मोवाच

एभिर्विप्रैःकृतंरामःसमाप्यविधिवन्नृपः। चकारावभृथं रामो विप्रान्सम्पूज्यभक्तितः यज्ञान्ते सीतयारामोविज्ञप्तःसुविनीतया। अस्याध्वरस्यसम्पत्तौदक्षिणांदेहिसुव्रत मन्नाम्ना च पुरं तत्र स्थाप्यताशीघ्रमेवच। सीताया वचनं श्रुत्वा तथाचक्रे नृपोत्तमः तेषांच ब्राह्मणानां च स्थानमेकंसुनिर्भयम्। दत्तं रामेणसीतायाःसन्तोषायमहीभृता सीतापुरमिति ख्यातं नामचक्रेतदाकिल। तस्याधिदेव्यौ वर्त्तेते शान्ताचैवसुमङ्गला मोहेरकस्य पुरतो ग्रामद्वादकस्पुरः। ददौ विप्राय विदुषे समुत्थाय प्रहर्षितः॥२७॥ तीर्थान्तरं जगामाशुकाश्यपीसरितस्तटे। वाडवाःकेऽपिनीतास्तेरामेणसहधर्मवित् धर्मालये गतः सद्यो यत्र मूलार्कमण्डपः। पुराधर्मेण सुमहत्कृतं यत्र तपो मुने॥ तदारभ्य सुविख्यातं धर्मालयमितिश्रुतम्। ददौ दाशरथिस्तत्र महादानानिषोडश ये पञ्चाशत्तदा ग्रामाः सीतापुरसमन्विताः। सत्यमन्दिरपर्यन्ता रघुनाथेन वै तदा सीताया वचनात्तत्र गुरुवाक्येनचैव हि। आत्मनोवंशवृद्ध्यर्थंद्विजेभ्योऽदाद्रघूत्तमः अष्टादशसहस्राणांद्विजानाममवत्कुलम्। वात्स्यायनउपमन्युर्जातूकर्ण्योऽथपिङ्गलः

भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च।
शाण्डिल्यः कश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा॥ ३४॥
कृष्णात्रेयस्तथावत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा।

भाण्डिलश्चैव विज्ञेयो यौवनाश्वस्ततः परम् ॥ ३५ ॥
कृष्णायनोपमन्यूच गार्ग्यमुद्गलमौखकाः । पुशिःपराशरश्चैव कौण्डिन्यश्चततः परम्
पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां नामान्येवंयथाक्रमम् । सीतापुरं श्रीक्षेत्रं च मुशली मुद्गलीतथा
ज्येष्ठला श्रेयस्थानञ्च दन्ताली वटपत्रका । राज्ञःपुरं कृष्णवाटं देहं लोहंवनस्थनम्
कोहेचं चन्दनक्षेत्रं स्थलं च हस्तिनापुरम् । कर्पटं कंनजह्ववी वनोडफनफावली ॥
मोहोधंशमोहोरलीगोविन्दणंथलत्यजम् । चारणसिद्धं सोद्रीत्राभाज्यजंवटमालिका
गोधरं मारणजश्चैव मात्रमध्यश्च मातरम् । बलवती गन्धवती ईआम्लीच राज्यजम्
रूपावली बहुधनं छत्रीटंवंशजन्तथा । जायासंरणं गोतिकी च चित्रलेखं तथैव च
दुग्धावलीहंसावली च वैहोलंचैल्लजंतथा । नालावलीआसावलीसुहालीकामतःपरम्
रामेण पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणिवसनाय च । स्वयं निर्मायदत्तानि द्विजेभ्यस्तेभ्यएवच
तेषां शुश्रूषणार्थाय वैश्याग्रामो न्यवेदयत् ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि शूद्रांस्तेभ्यश्चतुर्गुणान् ॥ ४५ ॥
तेभ्यो दत्तानि दानानि गवाश्ववसनानि च । हिरण्यं रजतं ताम्रं श्रद्धया परया मुदा

नारद उवाच

अष्टादशसहस्रास्ते ब्राह्मणा वेदपारगाः । कथं ते व्यभजन्ग्रामान्ग्रामोत्पन्नंतथा वसु
वस्त्राद्यं भूषणाद्यञ्च तन्मे कथय सुव्रतम् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मोवाच

यज्ञान्तेदक्षिणायावत्सर्त्विग्भिःस्वीकृतासुत । महादानादिकंसर्वं तेभ्यएवसमर्पितम्
ग्रामाःसाधारणादत्तामहास्थानानिवैतदा । येवसन्तिचयत्रैव तानि तेषांभवन्त्विति
वशिष्ठवचनात्तत्र ग्रामास्ते विप्रसात्कृताः । रघूद्वहेन धीरेण नोद्वसन्ति यथा द्विजाः
धान्यंतेषांप्रदत्तंहिविप्राणांचामितंवसु । कृताञ्जलिस्ततोरामो ब्राह्मणानिदमब्रवीत्
यथा कृतयुगे विप्रास्त्रेतायां च यथा पुरा । तथाचाद्येव वर्त्तव्यं मम राज्ये न संशयः
यत्किञ्चिद्धनधान्यं वा यानंवावसनानि वा । मणयःकाञ्चनादींश्चहेमादींश्चतथा वसु
ताम्राद्यं रजतादींश्चप्रार्थयध्वंममाधुना । अधुना वा भविष्येवाऽभ्यर्थनीयं यथोचितम्

प्रेषणीयंवाविकंमे सर्वदाद्विजसत्तमाः । यं यं कामंप्रार्थयध्वं तं तं दास्याम्यहंविभो
ततो रामः सेवकादीनादरात्प्रत्यभाषत । विप्राज्ञा नोल्लङ्घनीया सेवनीया प्रयत्नतः
यं यं कामं प्रार्थयन्ते कारयध्वं ततस्तः । एवं नत्वा च विप्राणां सेवनंकुरुते तु यः
स शूद्रः स्वर्गमाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् । अन्यथानिर्धनत्वं हि लभते नात्रसंशयः

यवनो म्लेच्छजातीयो दैत्यो वा राक्षसोऽपि वा ।
योऽत्र विघ्नं करोत्येव भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ५६ ॥

ब्रह्मोवाच

ततःप्रदक्षिणीकृत्यद्विजान्रामोऽतिहर्षितः । प्रस्थानाभिमुखोविप्रैराशीभिरभिनन्दितः

आसीमान्तमनुव्रज्य स्नेहव्याकुललोचनाः ।
द्विजाः सर्वे विनिवृत्ता धर्मारण्ये विमोहिताः ॥ ६१ ॥

एवं कृत्वा ततो रामःप्रतस्थे स्वांपुरीं प्रति । कश्यपाश्चैव गर्गाश्चकृतकृत्यादृढव्रताः

गुर्वासन (गुरुसेना) समाविष्टाः (ष्टः) सभार्याः (र्यः) ससुहृत्सुताः (तः) ।
राजधानीं तदा प्राप रामोऽयोध्यां गुणान्विताम् ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वेलोकाःश्रीरघुनन्दनम् । ततोरामः स धर्मात्माप्रजापालनतत्परः
सीतयासहधर्मात्मा राज्यं कुर्वंस्तदा सुधीः । जानक्यांगर्भमाधत्तरविवंशोद्भवाय च

इतिश्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये श्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्र-
जीर्णोद्धारवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

# षट्त्रिंशोऽध्यायः

## कलिधर्मवर्णनपूर्वकंहनुमत्समागमवर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत !। पूर्वं च तदशेषेण शंस मे वदताम्वर !॥ १ ॥

स्थिरीभूतं च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ।

केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याऽऽज्ञा वर्तते प्रभो !॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

त्रेतातो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः । तावत्संरक्षणेचैको हनूमान्पवनात्मजः॥ समर्थो नान्यथा कोपि विनाहनुमतासुत !। लंकाविध्वंसितायेनराक्षसाःप्रबलाहताः स एव रक्षतेतत्र रामादेशेन पुत्रक। द्विजस्याज्ञा प्रवर्तेत श्रीमातायास्तथैव च ॥ दिनेदिनेप्रहर्षोऽभूज्जनानांतत्रवासिनः । पठन्तिस्मद्विजास्तत्रऋग्यजुःसामलक्षणान् अथर्वणश्चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् । वेदनिर्घोषजःशब्दस्त्रैलोक्येसचराचरे उत्सवास्तत्र जायन्तेग्रामेग्रामे पुरेपुरे । नाना यज्ञाःप्रवर्तन्तेनानाधर्मसमाश्रिताः॥८

युधिष्ठिर उवाच

कदापि तस्यस्थानस्यभङ्गोजातोथ वा नवा। दैत्यैर्जितंकदास्थानमथवादुष्टराक्षसैः

व्यास उवाच

साधुपृष्टं त्वया राजन्धर्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः ।

आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥ १० ॥

लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ।

यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुभूपते !॥ ११ ॥

इदानीं चकलौप्राप्तौआमोनाम्ना बभूवह । कान्यकुब्जाधिपःश्रीमान्धर्मज्ञोनीतितत्परः शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः । द्वापरान्तेनृपश्रेष्ठ अनागते कलौ युगे

भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः ।
सर्वेदेवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥ १४ ॥
रामोऽपि सेतुबन्धं हि ससहायो गतो नृप !॥ १५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशं हि कलौ प्राप्ते भयंलोकेसुदुस्तरम् । यस्मिन्सुरैः परित्यक्तारत्नगर्भावसुन्धरा

व्यास उवाच

शृणुष्व कलिधर्मांस्त्वं भविष्यन्ति यथा नृप !।
असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥ १७ ॥
दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः । स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः
ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः । शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे
वैश्याचाररता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥ २० ॥
शान्तौ शूरा भयेदीनाःश्राद्धतर्पणवर्जिताः । असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः
परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचग्रहणेरताः । अस्नातभोजिनोविप्राःक्षत्रियारणवर्जिताः
भविष्यन्तिकलौप्राप्ते मलिनादुष्टवृत्तयः । मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हियाजकाः
भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुताः । भ्रातृद्वेषकराःक्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे
गव्यविक्रयिणस्ते वै ब्राह्मणावित्ततत्पराः ।
गावो दुग्धं न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥ २५ ॥
फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत !। कन्याविक्रयकर्त्तारोगोजाविक्रयकारकाः
विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारकाः । वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे
नारीगर्भं समाधत्ते हायनैकादशेन हि । एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जनाः ॥
न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च वाडवाः । बह्वाहाराभविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुलाः
जिह्मवृत्तिपराः सर्वे वेदनिन्दापरायणाः । यतिनिन्दापराश्चैव च्छद्मकाराः परस्परम्
स्पर्शदोषमयं नैव भविष्यतिकलौयुगे । क्षत्रियाराज्यहीनाश्चम्लेच्छोराजाभविष्यति

विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा । मित्रद्रोहरता राजञ्छिश्नोदरपरायणाः ॥
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ।
कलौ प्राप्ते महाराज! नान्यथा वचनं मम ॥ ३३ ॥
एतच्छ्रुत्वागुरोरेव कान्यकुब्जाधिपोबली । राज्यं प्रकुरुते तत्र आमो नाम्नाहिभूतले
सार्वभौमत्वमापन्नः प्रजापालनतत्परः । प्रजानां कलिना तत्र पापे बुद्धिरजायत ॥
वैष्णवं धर्ममुत्सृज्य बौद्धधर्ममुपागताः । प्रजास्तमनुवर्तिन्यः क्षपणैः प्रतिबोधिताः
तस्यराज्ञो महादेवी मामानाम्न्यतिविश्रुता । गर्भं दधार सा राज्ञो सर्वलक्षणसंयुता
सम्पूर्णे दशमे मासि जाता तस्याः सुरूपिणी ।
दुहिता समये राज्ञ्याः पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ३८ ॥
रत्नगङ्गेति नाम्ना सा मणिमाणिक्यभूषिता । एकदा दैवयोगेन देशान्तरादुपागतः ॥
नाम्ना चैवेन्द्रसूरिर्वै देशेऽस्मिन्कान्यकुब्जके ।
षोडशाब्दा च सा कन्या नोपनीता नृपात्मजा ॥ ४० ॥
दास्यान्तरेण मिलिता इन्द्रसूरिश्च जीविकः ।
शाबरीं मन्त्रविद्यां च कथयामास भारत !॥ ४१ ॥
एकचित्ताभवत्सा तु शूलिकर्मविमोहिता । ततः सा मोहमापन्ना तत्तद्वाक्यपरायणा
क्षपणैर्बोधिता वत्स! जैनधर्मपरायणा । ब्रह्मावर्ताधिपतये कुम्भीपालाय श्रीमते ॥
रत्नगङ्गां महादेवीं ददौ तामतिविक्रमी । मोहेरकं ददौ तस्मै विवाहे दैवमोहितः
धर्मारण्यं समागत्य राजधानी कृता तदा । देवांश्च स्थापयामासजैनधर्मप्रणीतकान्
सर्वेवर्णास्तथाभूता जैनधर्मसमाश्रिताः । ब्राह्मणा नैवपूज्यन्तेनचशान्तिकपौष्टिकम्
न ददाति कदा दानमेवं कालः प्रवर्तते । लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम्
समाकुलितचित्तास्ते नृपमानं समाययुः । कान्यकुब्जस्थितंशूरंपाखण्डैःपरिवेष्टितम्
कान्यकुब्जपुरं प्राप्य कतिभिर्वासरैर्नृप । गङ्गोपकण्ठेन्यवसञ्श्रांतास्तेमोढवाडवाः
चारैश्च कथितास्तेच नृपस्याग्रे समागताः । प्रातराकारिता विप्राआगतान्नृपसंसदि
प्रत्युत्थानाभिवादादींश्च चक्रेसादरं नृपः । तिष्ठतो ब्राह्मणान्सर्वान्पर्यपृच्छदसौततः

किमर्थमागता विप्राः! किंस्वित्कार्यं ब्रुवन्तु तत् ॥ ५२ ॥

विप्रा ऊचुः

धर्मारण्यादिहायातास्त्वत्समीपं नराधिप !। राजंस्तवसुतायास्तु भर्ताकुमारपालकः
तेनप्रलुप्तं विप्राणां शासनं महदद्भुतम् । वर्तता जैनधर्मेण प्रेरितेनेन्द्रसूरिणा ॥ ५४ ॥

राजोवाच

केन वै स्थापिता यूयमस्मिन्मोहेरके पुरे । एतद्विवाडवाः सर्वं ब्रूत वृत्तं यथातथम्

विप्रा ऊचुः

काजेशैःस्थापिताः पूर्वं धर्मराजेन धीमता । कृता चात्र शुभेस्थाने रामेणचततः पुरी
शासनं रामचन्द्रस्य दृष्ट्वाऽन्यैश्चैव राजभिः । पालितं धर्मतो ह्यत्र शासनं नृपसत्तम
इदानीं तव जामाता विप्रान्पालयते न हि ।
तच्छ्रुत्वा विप्रवाक्यं तु राजा विप्रानथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

यान्तुशीघ्रं हि भो विप्राःकथयन्तुममाज्ञया । राज्ञेकुमारपालाय देहित्वंब्राह्मणालयम्
श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्राः परं हर्षमुपागताः ।
जग्मुस्ततोऽतिमुदिता वाक्यं तत्र निवेदितम् ॥ ६० ॥
श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ।

कुमारपाल उवाच

रामस्य शासनं विप्राः पालयिष्याम्यहं नहि ॥ ६१ ॥
त्यजामि ब्राह्मणान्यज्ञे पशुहिंसापरायणान् ।
तस्माद्धि हिंसकाना तु न मे भक्तिर्भवेद् द्विजाः !॥ ६२ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

कथं पाखण्डधर्मेण लुप्तशासनको भवान् । पालयस्व नृपश्रेष्ठ मा स्मपापे मनःकृथाः

राजोवाच

अहिंसा परमो धर्मो अहिंसा च परं तपः । अहिंसा परमं ज्ञानमहिंसा परमं फलम्
तृणेषु चैव वृक्षेषु पतङ्गेषु नरेषु च । कीटेषु मत्कुणाद्येषु अजाश्वेषु गजेषु च ॥ ६५॥

लूतासु चैव सर्पेषु महिष्यादिषु वै तथा। जन्तवः सदृशा विप्राः सूक्ष्मेषु चमहत्सुच
कथं यूयं प्रवर्तध्वे विप्राहिंसापरायणाः। तच्छ्रुत्वा वज्रतुल्यं हि वचनंचद्विजोत्तमाः
प्रत्यूचुर्वाडवाः सर्वे क्रोधरक्तेक्षणा (स्तदा) द्रुशा ॥ ६८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

अहिंसा परमोधर्मः सत्यमेतत्त्वयोदितम्। परंतथापिधर्मोऽस्तिशृणुष्वैकाग्रमानसः
या वेदविहिता हिंसा सा न हिंसेति निर्णयः। शस्त्रेणाहन्यतेयच्चपीडाजन्तुषुजायते
स एवाधर्म एवास्ति लोकेधर्मविदाम्वरः। वेदमन्त्रैर्विहन्यन्ते विनाशस्त्रेण जन्तवः
जन्तुपीडाकरा नैव सा हिंसा सुखदायिनी। परोपकारः पुण्याय पापायपरिपीडनम्
वेदोदितां विधायापि हिंसां पापैर्न लिप्यते। विप्राणांवचनंश्रुत्वापुनर्वचनमब्रवीत्

राजोवाच

ब्रह्मादीनां परं क्षेत्रं धर्मारण्यमनुत्तमम्। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नेदानीमत्र सन्ति ते ॥
न धर्मो विद्यते चात्र उक्तो रामः स मानुषः।
क्व वाऽपि लम्बपुच्छोऽसौ यो मुक्तो रक्षणाय वः ॥ ७५ ॥
शासनं चेन्न दृष्टं वो नैवतत्पालयाम्यहम्। द्विजाः कोपसमाविष्टाददुः प्रत्युत्तरं तदा

द्विजा ऊचुः

रे मूढ त्वं कथं वेत्थं भाषसे मदलोलुपः। स दैत्यानां विनाशाय धर्मसंरक्षणाय च
रामश्चतुर्भुजः साक्षान्मानुषत्वं गतो भुवि। अगतीनां च गतिदः स वैधर्मपरायणः
दयालुश्च कृपालुश्च जन्तूनां परिपालकः ॥ ७८ ॥

राजोवाच

कुतोऽप्यवर्त्तते रामः कुतो वै वायुनन्दनः। भ्रष्टाभ्रमिव ते सर्वे क्व रामो हनुमानिति
परन्तुरामोहनुमान्यदि वर्त्तेत सर्वतः। इदानीं विप्रसाहाय्य आगमिष्यति मे मतिः
दर्शयध्वं हनूमन्तं रामं वा लक्ष्मणं तथा।
यद्यस्ति प्रत्ययः कश्चित्स नो विप्राः प्रदर्श्यताम् ॥ ८१ ॥
उक्तं तै रामदेवेन दूतं कृत्वाऽञ्जनीसुतम्। चतुश्चत्वारिंशदधिकं दत्तं ग्रामशतं नृप !

पुनरागत्य स्थानेऽस्मिन्दत्ता ग्रामास्त्रयोदश ।
काश्यप्यां चैव गङ्गायां महादानानि षोडश ॥ ८३ ॥
दत्तानि विप्रमुख्येभ्यो दत्ता ग्रामाः सुशोभनाः ।
पुनः सङ्कलिपता वीर! षट्पञ्चाशकसङ्ख्यया ॥ ८४ ॥

षट्त्रिंशच्चसहस्राणिगोभुजाजज्ञिरेवराः । सपादलक्षाववणिजोदत्तामाण्डलिकाभिधाः
तेनोक्तं वाडवाःसर्वेदर्शयध्वंहिमारुतिम् । यस्याभिज्ञानमात्रेणस्थितिपूर्वांददाम्यहम्
विप्रवाक्यं करिष्यामि प्रत्ययो दर्श्यते यदि । ततःसर्वेभविष्यन्तिवेदधर्मपरायणाः
अन्यथाजिनधर्मेण वर्त्तयध्वं हि सर्वशः । नृपवाक्यंतुतैश्रुत्वास्वेस्वेस्थानेसमागताः
वाडवाः खिन्नमनसःक्रोधेनान्धीकृताभुवि । निश्वासान्मुञ्चमानास्तेहाहेतिप्रवदन्तिच
दन्तान्प्राघर्षयन्सर्वान्न्यपीडंश्च करैः करान् । परस्परंभाषमाणाः कथंकुर्मोवयंत्वितः

मिलित्वा वाडवाः सर्वे चक्रुस्ते मन्त्रमुत्तमम् ।
रामवाक्यं हृदि ध्यात्वा ध्यात्वा चैवाऽञ्जनीसुतम् ॥ ९१ ॥

द्विजमेलापकं चक्रुर्बाला वृद्धतमा अपि । तेषां वृद्धतमो विप्रो वाक्यमूचे शुभं तदा

चतुःषष्टिश्च गोत्राणामस्माकं ये द्विसप्ततिः ।
स्वस्वगोत्रस्यावटङ्का एकग्रामाभिभा ( ला ) षिणः ॥ ९३ ॥
प्रयातु स्वस्ववर्गस्य एको ह्येको द्विजःसुधीः ।
रामेश्वरं सेतुबन्धं हनूमांस्तत्र विद्यते ॥ ९४ ॥

सर्वे प्रयान्तु तत्रैव रामपार्श्वे निरामयाः । निराहारा जितक्रोधा माययावर्जिताःपुनः

एकाग्रमानसाः सर्वे स्तुत्वा ध्यात्वा जपन्तु तम् ।
ततो दाशरथी रामो दयां कृत्वा द्विजन्मसु ॥ ९६ ॥

शासनं च प्रदास्यति अचलं च युगेयुगे । महता तपसा तुष्टःप्रदास्यति समीहितम्

यस्य वर्गस्य यो विप्रो न प्रयास्यति तत्र वै ।
स च वर्गात्परित्याज्यः स्थानधर्मान्न संशयः ॥९८ ॥

वणिग्वृत्ते न सम्बन्धो न विवाहेकदाचन । ग्रामवृत्ते न सम्बन्धःसर्वस्थानेबहिष्कृताः

सभावाक्यं च तच्छ्रुत्वा तन्मध्ये वाडवः शुचिः ।

वाग्मी दक्षः सुशब्दश्च त्रिरवैः श्रावयन्द्विजान् ॥ १०० ॥

प्रतिवाक्यं दत्ततालं तिष्ठन्नेतद्वचोऽब्रवीत् । असत्यवादिनां यच्च पातकं परिनिन्दके

परदाराभिगमने परद्रोहरते नरे ॥ १०१ ॥

मद्यपेषु च यत्पापं यत्पापं हेमहारिषु । तत्पापं च भवेत्तस्य गमने यः पराङ्मुखः

अथ किं बहुनोक्तेन यान्तु सत्यं द्विजोत्तमाः !॥ १०२ ॥

तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं गमनाय मनो दधे ।

गच्छतस्तान्द्विजाञ्छ्रुत्वा राजा कुमारपालकः ॥ १०३ ॥

समाहूय कृषेःकर्मभिक्षाटनमथापि वा । नानागोत्रेभ्योब्राह्मणेभ्यःप्रापयिष्येनसंशयः

तच्छ्रुत्वा व्यथिताः सर्वे किम्भविष्यत्यतः परम् ।

तथा त्रीणि सहस्राणि प्रबन्धं चक्रिरे तदा ॥ १०५ ॥

गमिष्यामो वयं सर्वे रामं प्रति न संशयः । हस्ताक्षरप्रदानं वैअन्योन्यंतुकृतं द्विजैः

कृताञ्जलिपुटाविप्रा वाक्यमेतदथाब्रुवन् । नश्यतेऽत्र त्रयीविद्यात्रयीमूर्तिः प्रकुप्यति

तस्मात्तत्रैव गन्तव्यमष्टादशसहस्रकैः । ततःस वणिजः सर्वान्समाहूय च गोभुजान्

वाक्यमूचे नृपश्रेष्ठो वारयध्वं द्विजानिति ॥ १०६ ॥

व्यास उवाच

न जैनधर्मे ये लिप्ता गोभुजा वणिगुत्तमाः । वृत्तिभंगभयात्तत्र मौनमेव समाचरन्

वारयाम कथं विप्रान्वह्निरूपान्दहन्ति ते । शापाग्निना नरपते द्विजा मृत्युपरायणाः

अडालयेषु ये जाताः शूद्रा आहूयतान्नृपः । निवार्यन्तामितिप्राहवाडवागमनोद्यताः

तेषां मध्ये कतिपया जैनधर्मं समाश्रिताः । गता वाडवपुञ्जेषु राजादेशान्निवारणे

केचिच्छूद्रा ऊचुः

क्व रामोलक्ष्मणोपेतः क्व च वायुसुतो बली । वर्तमानेन कालेनवक्तव्यंद्विजसत्तमाः

व्याघ्रसिंहाकुलेदुर्गवनेवनगजाश्रिते । परित्यज्यप्रियान्प्राणान्पुत्रान्दारान्निकेतनान्

किमर्थंगम्यतेविप्राराज्यैवं दुष्टशासने । तच्छ्रुत्वावाडवाःकेचिद्वाक्येनमनसाऽस्मरन्

पञ्चदशसहस्रास्ते वाडवा नृपसत्तमात् । भयाल्लोभाच्च दानाच्च तत्सर्वं भवतामिति
वृत्तोपकल्पनेनैव करिष्यामः कदाचन । कृषिकर्म करिष्यामो भिक्षाटनमथापि वा
ततश्च ते पञ्चदशसहस्रा द्विजसत्तमाः । दारुणंवाक्यमूचुस्तान्यान्तुचान्येयथोचितम्
शासनंभवतामस्तुरामदत्तं न संशयः । त्रयीविद्यास्तु विख्याताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः
सहस्राणि च त्रीण्येव त्रैविद्या अभवन्ध्रुवम् ।

राजोवाच

चतुर्थांशेन राज्यं च किञ्चिद्दत्ता वसुन्धरा । तस्माच्चतुर्विधेत्येवंज्ञातिबन्धमतः परम्
च्यवनोदास्यतेकन्यांयूयंकन्यामवाप्नुत । नवृत्तिर्नचसम्बन्धोभवतांस्यात्कदापिवा
इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयीविद्याश्च वाडवाः ।
स्वे स्वे स्थाने गताः सर्वे सङ्केतादनिवृत्य च ॥ १२४ ॥
पञ्चदश सहस्राणि ततस्तु द्विजपुङ्गवाः । यथागतंगताः सर्वेचातुर्विद्याद्विजोत्तमाः
तद्दिनेऽतिवाह्याथ चिताविष्टेनचेतसा । वार्यमाणाःस्वपुत्रैस्तैर्दारैश्च विनयान्वितैः
एकाग्रमानसाः सर्वे न निद्रामुपलेभिरे ।
ब्राह्मेमुहूर्ते चोत्थाय मायां त्यक्त्वा हि लौकिकीम् ॥ १२७ ॥
परित्यज्यप्रियान्पुत्रान्दारान्सनिलयानपि । ग्रामोपान्तेषुमिलिताःसर्ववाडवपुङ्गवाः
सहस्राणि तदा त्रीणि कृतनित्याह्निकक्रियाः ।
विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा संपूज्य कुलमातरम् ॥ १२६ ॥
विघ्नसङ्घविनाशाय दक्षिणद्वारसंस्थितः । सिन्दूरपुष्पमालाभिःपूजितो गणनायकः
पूजितोबकुलस्वामीसूर्यः सर्वार्थसाधकः । आदराच्चमहाशक्तिःश्रीमातापूजितातथा
शान्तां चैव नमस्कृत्य ज्ञानजां गोत्रमातरम् । गमनेनोद्यमानास्ते परं हर्षमुपाययुः
चातुर्विद्या द्विजाश्चैव पुनरामन्त्र्य तान्प्रति । पप्रच्छुश्च मुहुः सर्वं समागमनकारणम्

विप्रा ऊचुः

न गन्तव्यं भवद्भिर्वै गत्वा वाऽऽयान्तु सत्वराः ॥ १३४ ॥
यथारामप्रदत्तंहि उपकल्पयसेऽचिरात् । श्रुत्वापुनरथोचुस्ते चातुर्विद्याद्विजोत्तमाः

न स्थानेन द्विजैर्वापि न च वृत्त्याकथञ्चन । वयंनैवागमिष्यामः कथनीयं न वैपुनः
रघूद्वहेनदत्ता वै वृत्तिर्नो द्विजसत्तमाः । तां वृत्तिप्रतियास्यामो जपहोमार्चनादिभिः
ते पञ्चदशसाहस्राः पुनस्तानूचुरादरात् । अस्माभिरत्र स्थातव्यमग्निसेवार्थतत्परैः

युष्माभिस्तत्र गन्तव्यं सर्वेषां कार्यसिद्धये ।
अन्योन्यं सर्वसाहाय्या वृत्ति याम न संशयः ॥ १३६ ॥

त्यक्त्वस्वकीयवचना वृत्तिहीना भविष्यथ । ततस्तन्मध्यतः कश्चिच्चातुर्विद्य उवाचह

चातुर्विद्य उवाच

पूर्वंहिवृत्तिमस्माकंरामोवैदत्तवान्द्विजाः । चातुर्विद्यामहासत्त्वाः स्वधर्मप्रतिपालकाः
याजनाध्ययनायुक्ताःकाजेशेनविनिर्मिताः । दानं दत्त्वा तु रामेण उक्तंहि भवतांपुनः

स्थानं त्यक्त्वा न गन्तव्यमित्थं हि नियमः कृतः ।
आपत्काले तु स्मर्तव्यो वायुपुत्रो महाबलः ॥ १४३ ॥
इति रामेण पूर्वं हि स्वे स्थाने स्थापितास्तदा ।
रामवाक्यमन्यथा तत्कृत्वा गच्छेत्कथं पुनः ॥ १४४ ॥

तस्माद्युष्मान्वयंब्रूमोगच्छतःकार्यसिद्धये । भवतांकार्यसिद्ध्यर्थंवयंहोमार्चनादिभिः
झटितिकार्यसिद्धिःस्यात्सत्यंसत्यंनसंशयः। इतिवाक्यंततःश्रुत्वातेद्विजागमनंप्रति

प्रस्थानञ्च विधायाऽऽदौ गमनाय मनो दधुः ।
त्रिसाहस्रास्तदा तस्मात्प्रस्थिता द्विजसत्तमाः ॥ १४७ ॥

देशाद्देशान्तरं गत्वा वनाच्चैव वनान्तरम् । तीर्थेतीर्थेकृतश्राद्धाःसुसन्तर्पितपूर्वजाः
ध्यायन्तो रामरामेतिहनुमन्तेतिवैपुनः । एकाशनाः सदाचारा द्विजा जग्मुःशनैःशनैः
त्यक्तप्रतिग्रहाः शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः । ते गता दूरमध्वानं हनुमद्दर्शनार्थिनः ॥
सन्ध्यामुपासतेनित्यंत्रिकालञ्चकमानसाः । एवंतुगच्छतांतेषां शकुनाअभवञ्छुभाः
एवं तु गच्छतां तेषां पाथेयंत्रुटितंतदा । श्रान्ता ग्लानिगताःसर्वेपदंपरममास्थिताः
क्रमित्वाकियतींभूमिपदंगतुंन तु क्षमाः । मनसा निश्चयंकृत्वादृढीकृत्यस्वमानसम्
हनुमन्तमदृष्ट्वैव न यास्यामो वयं गृहान् । त्रैविद्यास्तुगतास्तत्र यत्र रामेश्वरो हरिः

दृढव्रताः सत्यपराः कन्दमूलफलाशनाः । ध्यायन्तो रामरामेति हनूमन्तेति वै पुनः
गृहीत्वा नियमन्तेऽपि त्यक्त्वा चान्नं तथोदकम् ।
तृषार्ताश्च क्षुधार्त्ताश्च ययुर्व्रतपरायणाः ॥ १५६ ॥

एवं तु क्लिश्यमानानांद्विजानांभक्तिभाजनः । उद्विग्नमानसोरामो हनूमन्तमथाब्रवीत् शीघ्रंगच्छद्विजार्थेत्वंपवनात्मजधर्मवित् । क्लिश्यन्तेवाडवाःसर्वे धर्मारण्यनिवासिनः दह्यतेमानसंमेऽद्यनान्यथाशान्तिरस्तिमे । विप्राणांदुःखकर्त्ताचशास्तव्योनात्रसंशयः येनवै दुःखिताविप्रास्तेनाहंदुःखितःकपे। याहिशीघ्रं हिमांत्यक्त्वाविप्राणांपरिपालने रामस्य वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्यचराघवम् । कृपया परयाविष्टः प्रादुरासीद्धरीश्वरः वृद्धब्राह्मणरूपेण परीक्षार्थं द्विजन्मनाम् । उवाच परया भक्त्याब्राह्मणाञ्छ्रमदुर्बलान् कृताञ्जलिपुटोभूत्वाकरान्मुक्त्वाकमण्डलुम् । सर्वान्प्रत्यभिवाद्याथवचनंचेदमब्रवीत कुतःस्थानादिह प्राप्ता गन्तुकामाश्चवैकुतः । किमर्थं वै भवद्भिश्चगम्यते दारुणंवनम्

विप्रा ऊचुः

धर्मारण्यात्समायातानिजदुःखंनिवेदितुम् । रामस्यदर्शनार्थं हि गन्तुकामावयंद्विजाः सेतुबन्धं महातीर्थंसर्वकामप्रदायकम् । नियमस्थाः क्षीणदेहारामं द्रष्टुं समुत्सुकाः यत्र रामेश्वरोदेवःसाक्षाद्वायुसुतःकपिः । तच्छ्रुत्वा स द्विजःप्राह क रामःक्वचवायुजः क सेतुबन्धरामेशो दूराद्दूरतरो द्विजाः । व्याघ्रसिंहाकुलं चोग्रं वनं घोरतरं महत् गत्वा यस्मान्न वर्त्तन्ते तदुग्रमनुजीविनः । निवर्तध्वं महाभागा यदि कार्यं हिमद्वचः अथवागम्यतांविप्राश्चिरंजीवसुखीभव । वृद्धस्य वाक्यंतच्छ्रुत्वावाडवाश्चैकमानसाः क्षिप्रं गच्छामहे सर्वे रामपार्श्वमसंशयः । म्रियेतयदिमार्गेऽस्मिन्रामलोकमवाप्नुयात् जीवन्वृत्तिमवाप्नोति रामादेवनसंशयः । अन्यथा शरणंनास्ति अस्माकं राघवंविना इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे रामदर्शनतत्पराः । दिनान्तमतिवाह्याथ प्रभाते विमले पुनः हनुमान्ब्रह्मरूपी स वृद्धः पूर्वगुणान्वितः । कमण्डलुधरो धीमानभिवादनतत्परः कुत्रस्थानादिहप्राप्ताःसर्वेयूयंहिवाडवाः । कुत्रास्तिवा महालाभोविवाहोत्सवएववा इतितस्यवचः श्रुत्वावाडवाविस्मयङ्गताः । प्रणामपूर्वं विज्ञप्तिं कथयामासुरादृताः

अस्माकं तु पुरा वृत्तं महदाश्चर्यकारकम् । भूमिदेव शृणुष्व त्वं दयालुर्दृश्यसेयतः
आदौ सृष्टिसमारम्भे स्थापिताकेशवेनच । शिवेनब्रह्मणाचैव त्रिमूर्तिस्थापितावयम्
श्रीरामेण ततः पश्चाज्जीर्णोद्धारेण स्थापिताः ।
ग्रामाणां वेतनं दत्तं हरिराजेन चाऽऽदरात् ॥ १७१ ॥
चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतमितात्मनाम् । ग्रामास्त्रयोदशार्चार्थंसीतापुरसमन्विताः
षट्त्रिंशच्चसहस्राणिवणिजोद्विजपालने । गोभूजसंज्ञास्तेशूद्रास्तेभ्यःसपादलक्षकाः
ते च जातास्त्रिधा तात गोभूजाडालजास्तथा ।
माण्डलीयास्तथा चैते त्रिविधाश्च मनोरमाः ॥ १८२ ॥
वृत्त्यर्थं तेन दत्ता वै ह्यनर्घ्या रत्नकोटयः । तदा ते मोढ १८००० गोभूजा १८०००
माण्डलीया १२५००० अडालजाः१८००० ॥ ८३ ॥
अधुना चाडवश्रेष्ठ आमोनाम महीपतिः । शासनं रामचन्द्रस्य न मानयति दुर्मतिः
जामाता तस्य दुष्टो वै नाम्नाकुमारपालकः । पाषण्डैर्वेष्टितोनित्यंकलिधर्मेणसम्मतः
इन्द्रसूत्रेण जैनेन प्रेरितो बौद्धधर्मिणा । शासनं तेन लुप्तं हि रामदत्तं न संशयः ॥
वणिजस्तादृशाः केऽपितन्मनस्का बभूविरे । निषेधयन्तिरामं तेहनुमन्तंमहामतिम्
प्रत्ययं तु विना विप्रानदास्यामीतिनिश्चितम् । तं ज्ञात्वातुइमेविप्रारामंशरणमाययुः
हनुमन्तं महावीरं रामशासनपालकम् । तस्माद्गच्छामहे सर्वे रामं प्रति महामने ॥
आञ्जनेयो यदस्माकं न दास्यति समीहितम् ।
अनाहारव्रतेनैव प्राणांस्त्यक्ष्यामहे वयम् ॥ १९० ॥
अस्माभिस्तेविशेषेणकथितंपरिपृच्छते । स्नेहभावं विचिन्त्याशुनिजवृत्तिंप्रकाशय

हनुमानुवाच

प्राप्ते कलियुगे विप्राःकदेवदर्शनंभवेत् । निवर्त्तध्वं हि विप्रेन्द्रा यदीच्छथ सुखंमहत्
व्याघ्रसिंहाकुले शून्ये वने वनगजाश्रिते । बहुदावसमाविष्टे प्रवेष्टुं नैव शक्यते

विप्रा ऊचुः

अतीते दिवसे विप्र एकं कथितवानिदम् । अद्यैव त्वं समागम्य एवमेव प्रभाषसे

कस्त्वंवाडवरूपेणरामोवाप्यथवायुजः । सत्यंकथय नःस्वामिन्दयांकृत्वामहाद्विज!
हनुमान्कथयामासगोपितंयद्द्विजाग्रतः । हनुमानित्यहंविप्राबुध्यध्वंनिश्चिताहिमाम्
स्वरूपं प्रकटीकृत्य लांगूलं दर्शयन्महत् ॥ १९७ ॥

हनुमानुवाच

अयमम्भोनिधिःसाक्षात्सेतुबन्धोमनोरमः । अयं रामेश्वरो देवो गर्भवासविनाशकृत्
इयं तु नगरी श्रेष्ठा लङ्कानामेति विश्रुता । यत्र सीता मयाप्राप्तारामशोकापहारिणी
तर्जन्यग्रे द्विजश्रेष्ठाअगम्यामांविनापरैः । सा सुवर्णमयीभातियस्यांराज्यंविभीषणः
स्थापितो रामदेवेन सेयं लङ्कामहापुरी । नियमस्थैः साधुवृन्दैस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः
आनीय गङ्गासलिलंरामेशमभिषिच्य च । क्षिप्ता एते महाभागा दृश्यन्तेसागरान्तरे
निष्पापास्तेन सञ्जाताः साधवस्ते दृढव्रताः ।
नूनं पुण्योदये वृद्धिः पापे हानिश्च जायते ॥ २०३ ॥
स्थानभ्रष्टाःकृताः पूर्वंचातुर्विद्याद्विजातयः । जीर्णोद्धारेणरामेणस्थापिताःपुनरेवहि
पूर्वजन्मनि भो विप्रा! हरिपूजा कृता मया ॥ २०४ ॥
साम्प्रतं निश्चला भक्तिर्भवत्स्वेवहिदृश्यते । तेन पुण्यप्रभावेणतुष्टोदास्यामिवोवरम्
धन्योऽहंकृतकृत्योहंसुभाग्योहंधरातले । अद्यमेसफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्
यदहं ब्राह्मणानाञ्च प्राप्तवाश्चरणान्तिकम् ॥ २०७ ॥

व्यास उवाच

दृष्ट्वैव हनुमन्तं ते पुलकाङ्कितविग्रहाः । सगद्गदमथोचुस्ते वाक्यं वाक्यविशारदाः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये हनुमत्समागमो नाम
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

# सप्तत्रिंशोऽध्यायः

## ब्राह्मणानाम्प्रत्यागमनवर्णनम्

व्यास उवाच

ततस्तेब्राह्मणाःसर्वे प्रत्यूचुःपवनात्मजम् । अधुनासफलंजन्मजीवितं च सुजीवितम्
अद्यनोमोढलोकानां धन्योधर्मश्च वै गृहाः । धन्या च सकलापृथ्वीयत्रधर्मोह्यनेकशः
नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च । नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे
जानकीहृदयत्राणकारिणे करुणात्मने । सीताविरहतप्तस्य श्रीरामस्य प्रियाय च
नमोऽस्तु ते महावीर रक्षास्मान्मज्जतःक्षितौ । नमोब्राह्मणदेवाय वायुपुत्रायतेनमः
नमोऽस्तु रामभक्ताय गोब्राह्मणहिताय च । नमोस्तु रुद्ररूपाय कृष्णवक्त्रायतेनमः
अञ्जनीसूनवे नित्यं सर्वव्याधिहराय च । नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते
स्वयं समुद्रतीर्णाय सेतुबन्धनकारिणे ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

स्तोत्रेणंवामुनातुष्टो वायुपुत्रोऽब्रवीद्वचः । वृणुध्वंहि वरंविप्रा यद्वो मनसिरोचते

विप्रा ऊचुः

यदि तुष्टोऽसि देवेश रामाज्ञापालक प्रभो । स्वरूपं दर्शयस्वाद्यलङ्कायांयत्कृतं हरे!
तथा विध्वंसयाऽद्य त्वं राजानंपापकारिणम् । दुष्टं कुमारपालं हि आमंचैवनसंशयः
वृत्तिलोपफलं सद्यःप्राप्नुयात्त्वं तथाकुरु । प्रतीत्यर्थं महाबाहो किञ्चिच्चिह्नंददस्वनः
येन चिह्नदत्तेन स राजा पुण्यभाग्भवेत् । प्रत्यये दर्शितेवीर शासनंपालयिष्यति
त्रयीधर्म्मःपृथिव्या तु विस्तारं प्रापयिष्यति । धर्मधीरमहावीर स्वरूपंदर्शयस्वनः

हनुमानुवाच

मत्स्वरूपं महाकायंन चक्षुर्विषयं कलौ । तेजोराशिमयंदिव्यमिति जानन्तुवाडवाः
तथापि परयाभक्त्याप्रसन्नोऽहंस्तवादिभिः । वसनान्तरितंरूपं दर्शयिष्यामिपश्यतः

एवमुक्तास्तदा विप्राः सर्वकार्यसमुत्सुकाः ।
महारूपं महाकायं महापुच्छसमाकुलम् ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं जहर्षिरे । कथञ्चिद्धैर्यमालंब्य विप्राः प्रोचुः शनैः शनैः
यथोक्तंतुपुराणेषु तत्तथैवहिदृश्यते । उवाचसहि तान्सर्वांश्चक्षुः प्रच्छाद्यसंस्थितान्
फलानीमानिगृह्णीध्वंभक्षणार्थमृषीश्वराः । एभिस्तुभक्षितैर्विप्राह्यतितृप्तिर्भविष्यति

धर्मारण्यं विना चाद्य क्षुधा वः शाम्यति ध्रुवम् ॥ २१ ॥

व्यास उवाच

क्षुधाक्रान्तैस्तदा विप्रैः कृतं वै फलभक्षणम् । अमृतप्राशनमिव तृप्तिस्तेषामजायत
न तृषा नैव क्षुच्चैव विप्राःसंक्लिष्टमानसाः । अभवन्सहसा राजन्विस्मयाविष्टचेतसः

ततः प्राहाऽञ्जनीपुत्रः सम्प्राप्ते हि कलौ द्विजाः !।
नागमिष्याम्यहं तत्र मुक्त्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ २५ ॥

अभिज्ञानं मया दत्तं गृहीत्वा तत्र गच्छत । तथ्यमेतत्प्रतीयेततस्य राज्ञो न संशयः
इत्युक्त्वाबाहुमुद्धृत्य भुजयोरुभयोरपि । पृथग्रोमाणि संगृह्य चकार पुटिकाद्वयम्
भूर्जपत्रेणसंवेष्ट्य ते अदाद्विप्रकक्षयोः । वामेतुवामकक्षोत्थां दक्षिणोत्थांतु दक्षिणे
कामदां रामभक्तस्य अन्येषां क्षयकारिणीम् । उवाचच यदाराजाब्रूते चिह्नंप्रदीयताम्
तदा प्रदीयतां शीघ्रं वामकक्षोद्भवा पुटी । अथवा तस्य राज्ञस्तु द्वारेतुपुटिकांक्षिप

ज्वालयति च तत्सैन्यं गृहं कोशं तथैव च ।
महिष्यः पुत्रकाः सर्वं ज्वलमानं भविष्यति ॥ ३० ॥
यदा तु वृत्तिं ग्रामाश्च वणिजाञ्च बलिं तथा ।
पूर्वं स्थितं तु यत्किञ्चित्तत्तद्दास्यति वाडवाः ॥ ३१ ॥

लिखित्वा निश्चयं कृत्वाप्यथदद्यात्स पूर्ववत् । करसम्पुटकंकृत्वाप्रणमेच्चयदानृपः

सम्प्राप्य च पुरा वृत्तिं रामदत्तां द्विजोत्तमाः ।
ततो दक्षिणकक्षास्थकेशानांपुटिका त्वियम् ॥ ३३ ॥

प्रक्षिप्यतां तदा सैन्यं पुरावच्चभविष्यति । गृहाणिचतथाकोशःपुत्रपौत्रादयस्तथा

वह्निनामुच्यमानास्तेदृश्यन्तेतत्क्षणादिति । श्रुत्वाऽमृतमयंवाक्यंवायुजेनोदितंपरम्
अलभन्त मुदं विप्रा ननृतुः प्रजगुर्भृ शम् । जयं चोदैरयन्केऽपि प्रहसन्ति परस्परम्
पुलकांकितसर्वाङ्गाःस्तुवन्तिचमुहुर्मुहुः । पुच्छं तस्यचसंगृह्यचुचुम्बुःकेचिदुत्सुकाः
ब्रूतेऽन्यो मम यत्नेनकार्यं नियतमेव हि । अन्यो ब्रूते महाभाग मयेदं कृतमित्युत
ततःप्रोवाच हनुमांस्त्रिरात्रं स्थीयतामिह । रामतीर्थस्यचफलंयथाप्राप्स्यथ वाडवाः
तथेत्युक्त्वाऽथ ते विप्रा ब्रह्मयज्ञं प्रचक्रिरे । ब्रह्मघोषेण महता तद्वनं बधिरं कृतम्
स्थित्वा त्रिरात्रं तेविप्रा गमनेकृतबुद्धयः । रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः

ब्राह्मणा ऊचुः

वयंप्रातर्गमिष्यामोधर्मारण्यंसुनिर्मलम् । न विस्मार्या वयंतातक्षम्यतांक्षम्यतामिति
ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् । बृहतीं चचतुःशालांदशयोजनमायतीम्

आस्तीर्य प्राह तान्विप्राञ्छिलायां द्विजसत्तमाः ।

रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥

इति श्रुत्वाततः सर्वे निद्रामापुःसुखप्रदाम् । एवं तेकृतकृत्यास्तु भूत्वासुप्तानिशामुखे
कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः । रक्षणार्थं हि विप्राणामनिद्रश्च धरातले

व्यास उवाच

अर्द्धरात्रे तु संप्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः । तातं संप्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान्

समीरण! द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ।

ततो निद्राभिभूतास्तान्वायुपुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥

समुद्धृत्यशिलां तांतुपितापुत्रेणभारत । निशीथेप्रापयामास स्वस्थानं द्विजसत्तमान्

षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रांतो द्विजातिभिः ।

त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु धर्मारण्यमवाप्तवान् ( तत्रप्रापुर्द्विजर्षभाः ) ॥ ५० ॥

भ्रममाणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ।

वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्संगीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥

गीतानि गायनोक्तानि श्रुत्वाविस्मयमाययुः । प्रभाते सुप्रसन्ने तुउदतिष्ठन्परस्परम्
ऊचुस्तेविस्मिताःसर्वेस्वप्नोऽयंवाथविभ्रमः ।ससंभ्रमाःसमुत्थायददृशुःसत्यमंदिरम्

अन्तर्बुद्धयासमालोक्य प्रभावंवायुजस्यच । श्रुत्वा वेदध्वनिंविप्राः परंहर्षमुपागताः
ग्रामीणाश्चततोलोकाद्दृष्ट्वा तुमहतींशिलाम् । अद्भुतंमेनिरेसर्वे किमिदं किमिदंत्विति
गृहेगृहेहितेलोकाः प्रवदन्तितथाद्भुतम् । ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महतीशुभा

अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ।
संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥ ५७ ॥

व्यास उवाच

ततो द्विजाना ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ।
ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा! आगताः पथिका द्विजाः ॥ ५८ ॥

ते तु संतुष्टमनसा सन्मुखाः प्रययुर्मुदा । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यांपरिरम्भणकं तथा
आघ्राणकादींश्च कृत्वा यथायोग्यंप्रपूज्यच । सर्वं विस्तार्य कथितंशीघ्रमागममात्मनः
ततः सम्पूज्यतान्सर्वान्गन्धताम्बूलकुङ्कुमैः । शान्तिपाठंपठन्तस्तेहृष्टानिजगृहान्ययुः
आनन्दायामहापीठेप्रातःपान्थाःसमुत्थिताः । ददृशुस्तेमहास्थानंसोत्कण्ठाहर्षपूरिताः

आश्चर्यं परमं प्रापुः किमेतत्स्थानमुत्तमम् ।
अयं तु दक्षिणद्वारे शान्तिपाठोऽत्र पठ्यते ॥ ६३ ॥

गृहा रम्याःप्रदृश्यन्ते शर्वापतिगृहोपमाः । प्रासादाःकुलमातॄणांदृश्यन्तेचाग्निशोभनाः
एवं ब्रुवत्सु विप्रेषु महाशक्तिप्रपूजने । आगतो ब्राह्मणोऽपश्यत्तत्र विप्रकदम्बकम्

हर्षितो भावितस्तत्र यत्र विप्राः सभासदः ।
उवाच दिष्ट्या भो विप्रा ह्यागताः पथिका द्विजाः ॥६६ ॥
प्रत्युत्तस्थुस्ततो विप्राः पूजां गृहीत्वा ( गृह्य ) समागताः ।
प्रत्युत्थानाभिवादौ चाऽकुर्वंस्ते च परस्परम् ॥ ६७ ॥

तेतेसंपूज्य वेगात्तु यथायोग्यंयथाविधि । हरीश्वरस्य यद्वृत्तं विप्राग्रे सम्प्रकाशितम्
पथिकानांवचःश्रुत्वा हर्षपूर्णाद्विजोत्तमाः । शान्तिपाठंपठन्तस्तेहृष्टानिजगृहान्ययुः

विमृश्य मिलिताः प्रातर्ज्योतिर्विद्भिः प्रतिष्ठिताः ।
ब्राह्मे मूहूर्ते चोत्थाय कान्यकुब्जं गता द्विजाः ॥ ७० ॥

दोलाभिर्वाहिताः केचित्केचिदश्वैरथैस्तथा। केचित्तु शिबिकारूढानानावाहनगाश्चते
तत्पुरं तुसमासाद्य गङ्गायाःशोभनेतटे। अकुर्वन्वसतिं धीराः स्नानदानादिकर्म्म च
चरेण केनचिद्दृष्टाः कथितानृपसन्निधौ। अश्वाश्च बहुशो दोला रथाश्च बहुशोवृषाः

विप्राणामिह दृश्यंते धर्मारण्यनिवासिनाम्।
नूनं ते च समायाता नृपेणोक्तं ममाग्रतः॥ ७४॥
अभिज्ञापय ( अभिज्ञानाय ) मे पूर्वं प्रेषिताः कपिसन्निधौ॥ ७५॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनंनाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

---

## अष्टत्रिंशोऽध्यायः

### जिनधर्मवर्णनपूर्वकंब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः। शुभवस्त्रपरीधानाः फलहस्ताःपृथक्पृथक्
रत्नाङ्गदाढ्यदोर्दण्डा अङ्गुलीयकभूषिताः। कर्णाभरणसंयुक्ताः समाजग्मुः प्रहर्षिताः
राजद्वारं तु सम्प्राप्य सन्तस्थुर्ब्रह्मवादिनः। तान्दृष्ट्वा राजपुत्रस्तु ईषत्प्रहसितो बली
रामं स्म हनुमन्तंचगत्वाविप्राःसमागताः। श्रूयतांमन्त्रिणःसर्वेदृश्यंतोद्विजसत्तमान्

एतदुक्त्वा तु वचनं तूष्णीं भूत्वा स्थितो नृपः।
ततो द्विजा द्विजाः सर्वे उपविष्टाः क्रमात्ततः॥ ५॥

क्षेमं पप्रच्छुर्नृपतिं हस्तिरथपदातिषु। ततः प्रोवाच नृपतिर्विप्रान्प्रति महामनाः
अर्हन्देवप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम। सा जिह्वायाजिनंस्तौति तौकरौयौजिनार्च्चनौ
सादृष्टिर्याजिने लीनातन्मनो यज्जिनेरतम्। दयासर्वत्रकर्तव्या जीवात्मापूज्यतेसदा

योगशाला हि गन्तव्या कर्त्तव्यंगुरुवन्दनम् । नवकारं महामन्त्रं जपितव्यमहर्निशम्

पञ्चूषणं हि कर्त्तव्यं दातव्यं श्रमणं सदा ।

श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्रास्तस्य दन्तानपीडयन् ॥ १० ॥

विमुच्य दीर्घनिश्वासमूचुस्ते नृपतिम्प्रति । रामेण कथितं राजन्धीमताच हनूमता
दीयतां विप्रवृत्तिश्च धर्मिष्ठोऽसि धरातले । ज्ञायते तव दत्ता स्यान्मद्दत्ता नैवनैव च

रक्षस्व रामवाक्यं त्वं यत्कृत्वा त्वं सुखी भव ॥ १३ ॥

राजोवाच

यत्र रामहनूमन्तौयान्तुसर्वेऽपितत्रवै । रामो दास्यति सर्वस्वं किं प्राप्ता इहवैद्विजाः
न दास्यामिनदास्यामिएकाञ्चैववराटिकाम् । नग्रामंनैववृत्तिं च गच्छध्वंयत्ररोचते

तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं द्विजाः कोपाकुलास्तदा ।

महस्व रामकोपं हि साम्प्रतञ्च हनूमतः ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वाहनुमद्दत्तावामकक्षोद्भवा पुटी । प्रक्षिप्ताचास्यनिलये व्यावृत्ताद्विजसत्तमाः
गते तदा विप्रसङ्घेज्वालामालाकुलंत्वभूत् । अग्निज्वालाकुलंसर्वंसञ्जातञ्चैव तत्र हि
दह्यन्ते राजवस्तूनिच्छत्राणिचामराणिच । कोशागाराणि सर्वाणिआयुधागारमेवच
महिष्यो राजपुत्राश्च गजाअश्वाह्यनेकशः । विमानानि च दह्यन्ते दह्यन्ते वाहनानिच
शिविकाश्च विचित्रा वै रथाश्चैव सहस्रशः । सर्वत्र दह्यमानञ्चदृष्ट्वाराजापि विव्यथे

न कोऽपि त्राता तस्याऽस्ति मानवा भयविक्लवाः ।

न मन्त्रयन्त्रैर्वह्निः स साध्यते न च मूलिकैः ॥ २२ ॥

कौटिल्यकोटिनाशीचयत्ररामः प्रकुप्यते । तत्र सर्वे प्रणश्यन्तिकिं तत्कुमारपालकः
सर्वतज्ज्वलितंदृष्ट्वानग्नक्षपणकास्तदा । धृत्वा करेण पात्राणिनीत्वादण्डाञ्छुभानपि
रक्तकम्बलिका गृह्य वेपमाना मुहुर्मुहुः । अनुपानहिकाश्चैव नष्टाः सर्वे दिशो दश ॥
कोलाहलं प्रकुर्वाणाः पलायध्वमितिब्रुवन् । दाहिताविप्रमुख्यैश्चवयं सर्वे न संशयः
केचिच्च भग्नपात्रास्ते भग्नदण्डास्तथापरे । प्रनष्टाश्च विवस्त्रास्ते वीतरागमितिब्रुवन्
अर्हन्तमेव केचिच्च पलायनपरायणाः । ततो वायुः समभवद्वह्निमान्दोलयन्निव ॥

प्रेषितो वै हनुमता विप्राणां प्रियकाम्यया । धावन्स नृपतिः पश्चादितश्चेतश्चवैतदा
पदातिरेकःप्ररुदन्कविप्रा इतिजल्पकः । लोकाच्छ्रुत्वाततोराजा गतस्तत्रयतोद्विजाः
गत्वा तु सहसा राजन्गृहीत्वाचरणौतदा । विप्राणांनृपतिर्भूमौमूर्च्छितोन्यपतत्तदा
उवाच वचनं राजा विप्रान्विनयतत्परः । जपन्दाशरथिं रामं रामरामेति वै पुनः ॥
तस्य दासस्य दासोऽहं रामस्य च द्विजस्य च ।
अज्ञानतिमिरान्धेन जातो स्म्यन्धो हि सम्प्रति ॥ ३३ ॥
अञ्जनं च मयालब्धं रामनाममहौषधम् । रामंमुत्तवा हि ये मत्या ह्यन्यं देवमुपासते
दह्यन्ते तेऽग्निना स्वामिन्यथाहं मूढचेतनः ॥ ३४ ॥
हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः । भागीरथी हरिर्विप्राःसारमेकंजगत्त्रये
स्वर्गस्यचैव सोपानं विप्राभागीरथी हरिः । रामनाममहारज्ज्वा वैकुण्ठे येनर्नीयते
इत्येवंप्रणमन्राजाप्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् । वह्निःप्रशाम्यतां विप्राः शासनंवोददाम्यहम्
दासोऽस्मि साम्प्रतं विप्रा! न मे वागन्यथा भवेत् ।
यत्पाप ब्रह्महत्यायाः परदाराभिगामिनाम् ॥ ३८ ॥
यत्पापं मद्यपानां च सुवर्णस्तेयिनांतथा । यत्पापं गुरुघातानां तत्पापं वा भवेन्मम
यं यं चिन्तयतेकामं तं तं दास्याम्यहं पुनः । विप्रभक्तिःसदाकार्यारामभक्तिस्तथैवच
अन्यथा करणीयं मे न कदाचिद् द्विजोत्तमाः !॥ ४१ ॥

व्यास उवाच

तस्मिन्नवसरेविप्राजाताभूपदयालवः । अन्या याः पुष्टिकाचासीत्सादत्ताशापशान्तये
जीवितंचैवतत्सैन्यंजातंक्षिप्रेशुरोमसु । दिशःप्रसन्नास्सञ्जाताःशान्तादिग्जनितस्वनाः
प्रजा स्वस्थाऽभवत्तत्र हर्षनिर्भरमानसा । अवतस्थे यथापूर्वं पुत्रपौत्रादिकं तथा
विप्राज्ञाकारिणोलोकाः सञ्जाताश्च यथा पुरा ।
विष्णुधर्मं परित्यज्य नान्यं जानन्ति ते वृषम् ॥ ४५ ॥
नवीनंशासनंकृत्वापूर्ववद्विधिपूर्वकम् । निष्कासितास्तुपाषण्डाःकृतशास्त्रप्रयोजकाः
वेदबाह्याः प्रनष्टास्ते उत्तमाधममध्यमाः । षट्त्रिंशच्च सहस्राणियेऽभूवन्गोभुजाःपुरा

तेषां मध्यात्तुसञ्जाताअदवीजावणिग्जनाः । शुश्रूषार्थं ब्राह्मणानांराज्ञासर्वेनिरूपिताः

सदाचाराः सुनिपुणा देवब्राह्मणपूजकाः ।

त्यक्त्वा पाखण्डमार्गन्तु विष्णुभक्तिपरास्तु ते ॥ ४६ ॥

जाह्नवीतीरमासाद्य त्रैविद्येभ्योददौनृपः । शासनं तु यदा दत्तं तेषां वै भक्तिपूर्वकम्

स्थानधर्मात्प्रचलिता वाडवास्ते समागताः ।

नृपोविज्ञापितो विप्रैस्तैरेवं क्लेशकारिभिः ॥ ५१ ॥

ये त्यक्तवाद्यो विप्रेन्द्रास्तान्निःसारय भूपते । परस्परं विवादास्तुसञ्जाता दत्तवृत्तये

न्यायप्रदर्शनार्थञ्च कारितास्तु सभासदः । हस्ताक्षरेषु दृष्टेषुपृथक्पृथक् प्रपाग्दितम्

एतच्छ्रुत्वा ततो राजा तुलादानञ्चकार ह । दीयमाने तदा दाने चातुर्विद्या बभाषिरे

अस्माभिर्हारिता जातिः कथं कुर्मः प्रतिग्रहम् ।

निवारितास्तु ते सर्वे स्थानान्मोहेरका द्विजाः ॥ ५५ ॥

दशपञ्च सहस्राणि वेदवेदाङ्गपारगाः । ततस्तेन तदा राजन्राज्ञा रामानुवर्तिना ॥५६॥

आहूयवाडवांस्तास्तुज्ञातिभेदञ्चकारसः । त्रयीविद्यावाडवा ये सेतुबन्धं प्रतिप्रभुम्

गतास्तेवृत्तिभाजःस्युर्नान्येवृत्त्यभिभागिनः । तत्र नैवगतायेवै चातुर्विद्यत्वमागताः

वणिग्भिर्नचसम्बन्धोन विवाहश्चतैःसहः । ग्रामवृत्तौ न सम्बन्धोज्ञातिभेदेकृतेसति

द्विजभक्तिपराःशूद्राःयेपाखण्डैर्नलोपिताः । जैनधर्मात्पराङ्गृत्तास्तेगोभूजास्तथोत्तमाः

ये च पाखण्डनिरतारामशासनलोपकाः । सर्वे विप्रास्तथा शूद्रा प्रतिबन्धेनयोजिताः

सत्यप्रतिज्ञां कुर्वाणास्तत्रस्थाः सुखिनोऽभवन् ।

चातुर्विद्या बहिर्ग्रामे राज्ञा तेन निवासिताः ॥ ६२ ॥

यथा रामोनकुप्येततथाकार्यं मया ध्रुवम् । पराङ्मुखायेरामस्यसन्मुखानगताःकल

चातुर्विद्यास्तेविज्ञेयावृत्तिबाह्याःकृतास्तदा । कृतकृत्यस्तदाजातोराजाकुमारपालकः

विप्राणां पुरतः प्राह प्रश्रयेण वचस्तदा । ग्रामवृत्तिर्नमे लुप्ता एतद्वै देवनिर्मितम् ॥

स्वयं कृतापराधानां दोषो कस्य न दीयते ।

यथा वने काष्ठघर्षाद्वह्निः स्याद्वैवयोगतः ॥ ६६ ॥

भवद्भिस्तु पणः प्रोक्तो ह्यभिज्ञानस्यहेतवे । रामस्य शासनंकृत्वावायुपुत्रस्य हेतवे
व्यावृत्ता वाडवा यूयं स दोषः कस्य दीयते ।
अवसाने हरि स्मृत्वा महापापयुतोऽपि वा ॥ ६८ ॥
विष्णुलोकं व्रजत्याशुसंशयस्तुकथंभवेत् । महत्पुण्योदयेनृणां बुद्धिः श्रेयसिजायते
पापस्योदयकाले च विपरीता हि साभवेत् । सकृत्पालयनेयस्तुधर्मेणैतज्जगत्त्रयम्
योऽन्तरात्माचभूतानांसंशयस्तत्रनोहितः । इन्द्रादयोऽमराःसर्वेसनकाद्यास्तपोधनाः
मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह संशयस्तत्रनो हितः । सहस्रनामतत्तुल्यंरामनामेतिगीयते ॥ ७२॥
तस्मिन्ननिश्चयं कृत्व कथं सिद्धिर्भवेदिह । मम जन्मकृतात्पुण्यादभिज्ञानं ददौहरिः
पाखण्डाद्यत्कृतं पापं मृष्टंतद्वः प्रणामतः । प्रसीदन्तु भवन्तश्चत्यक्त्वाक्रोधं ममाधुना

ब्राह्मणा ऊचुः

राजन्धर्मो बिलुप्तस्तेप्रापितानां तथापुनः । अवश्यं भाविनो भावाभवन्तिमहतामपि
नग्नत्वं नीलकण्ठस्यमहाहिशयनं हरेः । एतद्दैवकृतं सर्वं प्रभुर्यःसुखदुःखयोः ॥ ७६॥
सत्यप्रतिज्ञास्त्रैविद्या भजन्तु रामशासनम् । अस्माकं तु परं देहि स्थानंयत्र वसामहे
तेषां तु वचनं श्रुत्वा सुखमिच्छद्विजन्मनाम् । तेषांस्थानंतुदत्तंवैसुखवासं तुनामतः
हिरण्यं पुष्पवासांसि गावः कामदुघा नृप । स्वर्णालङ्करणं सर्वं नानावस्तुचयंतथा
श्रद्धया परया दत्त्वामुदंलेभेनराधिपः । त्रयीविद्यास्तुतेज्ञेयाःस्थापिता येत्रिमूर्तिभिः
चतुर्थैनैव भूपेन स्थापिताः सुखवासने । ते च भूबुद्धिजश्रेष्ठाश्चातुर्विद्याः कलौ युगे
चातुर्विद्याश्च ते सर्वे धर्मारण्ये प्रतिष्ठिताः । वेदोक्ताआशिषोदत्त्वातस्मैराज्ञेमहात्मने
रथस्थंरुद्ध्यमानाःकृतकृत्याद्विजातयः । महत्प्रमोदयुक्तास्तेप्रापुर्मोहेरकंमहत् ॥ ८३ ॥
पौषशुक्लत्रयोदश्यां लब्धं शासनकं द्विजैः । बलिप्रदानं तु कृतमुद्दिश्य कुलदेवताम्
वर्षेवर्षे प्रकर्त्तव्यं बलिदानं यथाविधि । कार्यं च मङ्गलस्नानं पुरुषेण महात्मना
गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कुर्वीत तद्दिने ध्रुवम् । तन्मासे तद्दिने नैवंकुर्वन्तिनाशोभवेद्यथा
दैवादतीतकाले चेत् वृद्धिरापद्यते यदा । तदा प्रथमतः कृत्वा पश्चाद्वृद्धिर्विधीयते
ये च भिन्नप्रपाप्रायास्त्रैविद्या मोढवंशजाः । तथा चातुर्वेदिनश्च कुर्वन्ति गोत्रपूजनम्

चर्षमध्ये प्रकुर्वीत तथा सुप्ते जनार्दने । पौषे च लुप्तं कृत्वा च श्रौतंस्मार्त्तंकरोतियः
तत्रक्रोधसमाविष्टानिघ्नन्तिकुलदेवताः । विवाहोत्सवकालेचमौञ्जीबन्धादिकर्मणि
सर्वेषु वृद्धिकालेषु मातङ्गीम्पूजयेद् बुधः ॥ ६० ॥
मुहूर्तं (पूजनं)गणनाथस्य ततः प्रभृति शोभनम् ॥ ६१ ॥
* मोहेरकस्यभङ्गोहिफाल्गुन्याश्चदिनेकृतः । मलस्नानंतदावर्ज्यंत्रिविधैर्मोढवाडवैः
अत्राऽऽश्चर्यमभूदेकं तच्छृणुष्वमहामते । आसीत् कश्चित्पुरारक्षो रुद्राल्लब्धवरोमुने!॥
मोहेरकादुत्तरतो वटवृक्षसमाश्रयः । पाणिग्रहणकाले स जहारवरकन्यके ॥ ६४ ॥
एवं बहून्वरान्कन्या जहार स दुराशयः । ततः कालेन कियता देवीं भट्टारिकां तदा
द्विजा विज्ञापयामासुर्बहुप्रजापुरस्सरम । ततस्तुष्टातुसादेवीद्विजान्भट्टारिकाऽब्रवीत्

भट्टारिकोवाच

उद्विग्नमनसो यूयं किमर्थमिहचागताः । किञ्चकार्यंहिभवतां कथ्यतामविलम्बितम्

द्विजा ऊचुः

अस्माकं दम्पतीमातः पाणिग्रहणयोगतः । हृयेते तु न जानीमस्तद्रक्षांकर्त्तुमर्हसि
तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रचान्तरधीयत । पुनर्विवाहे सम्प्राप्ते तद्रक्षो दम्पतीं तदा
आवेदिका गता हृत्वा तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ६६ ॥
ततः सुदुःखिताविप्राःपुनर्देवीमुपस्थिताः । आवेदयन्स्ववृत्तान्तंदम्पतीहरणादिकम्
ततः क्रोधसमाविष्टा देवी शूलं समाददे । युयुधे रक्षसा तेन दिनानि सुबहून्यपि ॥
ततो भट्टारिकाशान्ताचिरंयुद्धसमाकुला । निद्राम्प्राप्तातथाग्लानासुष्वापवटसन्निधौ
तदा तद्देहसम्भूता मातङ्गी रक्तलोचना । मदाघूर्णितलोलाक्षी रक्तपुष्पाम्बरावृता
तद्रक्षः पीडयामास बलेन महता मुने! । सा तद्रक्षो निहत्याऽऽशु वटवृक्षमुपाश्रिता

---

* इत उत्तरं लक्ष्मणपुर ( लखनऊ ) प्रकाशितग्रन्थे मोहेरकस्य भङ्गोहि इत आरभ्य-धर्मारण्यम्प्रविविशुः हृष्टाः प्राप्तमनोरथाः" इत्यन्तः पाठोविशेष उपलभ्यते ।

ततोनिद्रां विहायाऽऽशु प्रबुद्धाआदियोगिनी । देवीभट्टारिकादृष्ट्वाहतंरक्षोमुदान्विता
अचिन्त्यत्केन हतो राक्षसो बलगर्वितः । मातङ्ग्यानिहतंज्ञात्वा देवीध्यानप्रभावतः
उवाच विप्रान्भद्रम्वो जातं रक्षोविनाशनम् । अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्रा!भवद्भिस्स्वगृहेषुच
विवाहोत्सवकालेषु मौञ्जीचूडादिकर्मसु । महोत्सवेषुसर्वेषु मातङ्गीपूज्यतांद्विजाः
श्वेतवस्त्रपरीधाना पानपात्रधरा परा । योत्रं कलशशूर्पादिशिरसा बिभ्रती शुभा ॥
अष्टादशभुजादेवी सारमेयकरा तथा । पूजनीया द्विजवरा मातङ्गी मदविह्वला ॥
इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवाऽन्तरधीयत । अतःपूज्याद्विजैर्देवीमातङ्गीवटसन्निधौ
विवाहादिषु कालेषु कुलरक्षणकारिणी । मातङ्गीमदघूर्णाक्षींशूर्पयोत्रादिधारिणीम्
यो नैव पूजयेद्वृद्धौ तत्कुलं याति संक्षयम् । अतएव सदापूज्या मातङ्गीवृद्धिहेतवे
नाना बलिप्रदानेनमोढानां कुलदेवता । ततोद्विजास्तां सम्पूज्यमोढानांकुलदेवताम्
गीतवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिपुरस्सरम् । धर्मारण्यम्प्रविविशुर्हृष्टाः प्राप्तमनोरथाः ॥
निर्वासितास्तुयेविप्राश्रामराज्ञास्वशासनात् । पञ्चदशसहस्राणिययुस्तेसुखवासकम्
पञ्चपञ्चाशतो ग्रामान्ददौ रामः पुरास्वयम् । तत्रस्थावणिजश्चैवतेषांवृत्तिमकल्पयन्
अडालजामाण्डलीयागोभूजाश्चपवित्रकाः । ब्राह्मणानांवृत्तिदास्तेब्रह्मसेवासुतत्पराः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानां शासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनं-नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

---

## एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

### ज्ञातिभेदवर्णनम्

**ब्रह्मोवाच**

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं मतम् । एते ब्रह्मविदः प्रोक्काश्चातुर्विद्यामहाद्विजाः

स्वध्यायाश्च वषट्काराः स्वधाकाराश्च नित्यशः । रामाज्ञापालकाश्चैव हनुमद्भक्तितत्पराः
एकदा तु ततो देवा ब्रह्माणं समुपागताः । ब्राह्मणान्द्रष्टुकामास्ते ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः
तान्देवानागतान्दृष्ट्वा स्वस्थानाच्चलितास्तु ते । अर्घ्यपाद्यं पुरस्कृत्य मधुपर्कं तथैव च
पूजयित्वा ततो विप्रा देवान्ब्रह्मपुरोगमान् । ब्रह्माद्या उपविष्टास्ते वेदानुच्चारयन्तिहि
संहितां च पदं चैव क्रमं घनं तथैव च । उच्चैः स्वरेण कुर्वीतऋचामृग्वेदसंहिताम्

सामगाश्च प्रकुर्वन्ति स्तोत्राणि विविधानि च ।

शास्त्राणि च तथा याज्याःपुरोनुवाक्यांस्तथा ॥ ७ ॥

चतुरक्षरं परं चैव चतुरक्षरमेव च । द्व्यक्षरं च तथापञ्चाक्षरं द्व्यक्षरमेव च ।

एतद्यज्ञस्वरूपं च यो जपेज्ज्ञानपूर्वकम् ॥ ८ ॥

अन्ते ब्रह्मपदप्राप्तिः सत्यंसत्यं वदाम्यहम् । एकाग्रमानसाः सर्वे वेदपाठरता द्विजाः
तेषामंगणदेशेषु कण्डूयन्ते कचान्मृगाः । ब्राह्मणा वेदमातां चजपन्ति विधिपूर्वकम्
हस्ते वृतांश्च तैर्दर्भान्भक्षन्ते मृगपोतकाः । निर्वैरं तं तदा दृष्ट्वा आश्रमंगृहमेधिनाम्
तुतुषुः परमं देवा ऊचुस्तेचपरस्परम् । त्रेतायुगमिदानींचसर्वेधर्मपरायणाः ॥ १२ ॥

कलिर्दुष्टस्तथा प्रोक्तः किं करिष्यति पापकः ।

चातुर्विद्यान्समाहूय ऊचुस्ते त्रय एव च ॥ १३ ॥

वृत्त्यर्थं भवतां चैवत्रैविद्यानां तथैव च । विभागंवःप्रदास्यामोयथावत्प्रतिपाल्यताम्

ये वणिजः पुरा प्रोक्ताः षट्त्रिंशच्च सहस्रकाः ।

त्रिसहस्रास्तु त्रैविद्या दशपञ्चसहस्रकाः ॥ १५ ॥

चातुर्विद्यास्तथा प्रोक्ता अन्योन्यं वृत्तिमाश्रिताः ।

सत्रिभागास्तु त्रैविद्याश्चतुर्भागास्तु चात्रिणः ॥ १६ ॥

वणिजांगृहमागत्यपौरोहित्यमत्यनित्यशः । भागंविभज्यसंप्रापुःकाजेशेनविनिर्मिताः

परस्परं न विवाहश्चातुर्विद्यत्रिविद्ययोः ।

चातुर्विद्या मया प्रोक्तास्त्रिविद्यास्तु तथैव च ॥ १८ ॥

त्रैविभागेन त्रैविद्याश्चतुर्भागेन चात्रिणः । एवं ज्ञातिविभागस्तु काजेशेनविनिर्मितः

कृतकृत्यास्तु ते विप्राः प्रणेमुस्तान् सुरोत्तमान् ।
वृत्तिं दत्त्वा ततो देवाः स्वस्थानञ्च प्रतस्थिरे ॥ २० ॥
पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां ते द्विजाश्च निवासिनः ।
चतुर्विद्यास्तु ते प्रोक्तास्तदादि त त्रिविद्यकाः ॥ २१ ॥
चातुर्विद्यस्यगोत्राणि दशपञ्च तथैवच । भारद्वाजस्तथा वत्सःकौशिकः ४कुशएवच
शाण्डिल्यः ५ कश्यपश्चैव गौतमश्छादनस्तथा ८ ।
जातृकर्ण्यस्तथा कुन्तो वशिष्ठो ११ धारणस्तथा ॥ २३ ॥
आत्रेयोर्माण्डिलश्चैव १४ लौगाक्षश्च १५ ततः परम् ।
स्वस्थानानां च नामानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २४ ॥
सीतापुरञ्च श्रीक्षेत्रं२ मगोडी ३ तथास्मृता । ज्येष्ठलोजस्तथाम्बवशोरथाचततःपरम्
छेदे तार्ला वनोर्डी च गोव्यन्दली तथैवच । कण्टाचोपर्लीचैव कोहेचं चन्दनस्तथा
थलग्रामश्च सोहश्च हाथंजं कपडवाणकम् ।
व्रजन्होरी च वनोडी च फीणां वगोलं द्रूणस्तथा (?) ॥ २७ ॥
थलजा चारणंसिद्धा भालजाश्चततःपरम् । महोवीआईयामर्लीआगोधरीआमतःपरम्
वाठसुहार्ली तथा चैव माणजा सा नदीयास्तथा ।
आनन्दीया पाटडीअ टीकोलीया ततः परम् ॥ २६ ॥
गम्भीधर्णाआमात्राच नातमोरास्तथैवच । बलोला रान्त्यजाश्चैवरुपोलाबोधर्णाचवै
छत्रोटा अलुवा च वासतडीआमतः परम् ।
जापासणा गोतीया च चरणीया दुधीयास्तथा ॥ ३१ ॥
हालोलावहोलाचअसालानाला डास्तथा । देहोलोसौहासीयाचसणहालीयास्तथैवच
स्वस्थानंपञ्चपञ्चाशद्ग्रामाण्तेह्यनुक्रमात् । दत्ता रामेण विधिवत्कृत्वाविप्रेभ्यएवच
अतःपरंप्रवक्ष्यामिस्वस्थानस्यच गोत्रजान् । तथाहिप्रवरांश्चैव यथावद्विधिपूर्वकम्
ज्ञात्वानुगोत्रदेवींचतथाप्रवरमेव च । स्वस्थानं जायते चैव द्विजाःस्वस्थानवासिनः

नारद उवाच

कथं च ज्ञायते गोत्रं कथं तु ज्ञायते कुलम् । कथं वा ज्ञायते देवी तद्वदस्वयथार्थतः

ब्रह्मोवाच

सीतापुरं तु प्रथमं प्रवरद्वयमेव च । कुशवत्सौ तथा चात्र मया ते परिकीर्त्तितौ ॥
१ द्वितीयञ्चैव श्रीक्षेत्रं गोत्राणां त्रयमेवच । छान्दनसस्तथावत्सस्तृतीयंकुशमेवच
तृतीयं मुद्गलञ्चैव कुशभारद्वाजमेव च ३ । शोहोली च चतुर्थञ्चै कुशप्रवरमेव च
उनेष्ठलापञ्चमञ्चैववत्सकुशौप्रकीर्त्तितौ ५ । श्रेयस्थानंहिषष्ठंवैभारद्वाजःकुशस्तथा
दन्ताली सप्तमञ्चैव भारद्वाजः कुशस्तथा १ । वटस्थानमष्टमञ्च निबोध सुतसत्तम!
तत्र गोत्रं कुशं कुत्सं भारद्वाजं तथैव च । राज्ञः पुरं नवमञ्च भारद्वाजप्रवरमेवच६ ॥
कृष्णवाटं दशमञ्चैव कुशप्रवरमेव च । दहलोडमेकादशं वत्सप्रवरमेव हि ॥ ४३॥

चेखलीद्वादशं पौककुशप्रवरमेव च ॥ ४४ ॥

चाञ्चोदखे १२ देहोलोडी आत्रयश्च वत्सकुत्सकश्चैव ।

भारद्वाजीकोणाया च भारद्वाजगोलंदूणाशकुस्तथा ?॥ ४५ ॥

थलत्यजाद्वयेचैवकुशधारणमेवच । नरणस्मिद्धा च स्वस्थानं कुत्संगोत्रं प्रकीर्तितम्

भालजां कुत्सवत्सौ च मोहोची आकुशस्तथा ।

ईयाश्लीआ शाण्डिलश्च गोधरीपात्रमेव च ॥ ४७ ॥

आनन्दीया छे चैव भारद्वाजशाण्डिलश्चैवपाटडीआ कुशमेव च ॥ ४८ ॥

वांसडीआश्चैव जास्वा कौत्समणा वत्सआत्रेयौ गोता आकुशगौतमौ ॥

मरणीआ भारद्वाजः दुधीआधारणसा हि अहो सोन्नामा (शा) ण्डिल्यस्तथा

वंलोला हुशश्चैवा असाला कुशश्चैव धारणाच द्वितीयकम् ॥ ५१ ॥

नालोलावत्सधारणीया च देलोलाकुत्समेव च । सोहासीयाभारद्वाजकुशवत्समेवच

सुहालीआ वत्सश्चै प्रोक्तं गोत्राणि यथाक्रमम् ।

मया प्रोक्तानि चैवात्र स्वस्थानानि यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥

शीतवाडिया ये प्रोक्ताः कुशोवत्सस्तथैवच । विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदलमेवच
भाः वच्यावनाप्रवानौर्वजमदग्निरेव हि । वचार्द्दशोषावुद्वला गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥

इति प्रथमं गोत्रम् १

श्रीक्षेत्रं द्वितीयं प्रोक्तं गोत्रद्वितयमेव च। छान्दनसस्तथा वत्सं देवी द्वितयमेव च
आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तथैवच। भृगुच्यवन आप्नवानौर्वजमदग्निमेव च॥
देवी भट्टारिका प्रोक्ता द्वितीयाशेपलातथा। एतद्वंशोद्भवायेच शृणु तान्मुनिसत्तम

सक्रोधनाः सदाचाराः श्रौतस्मार्तक्रियापराः।
पञ्चयज्ञरता नित्यं स्वसम्बन्धसमाश्रिताः॥
कृतज्ञाः क्रतुजाश्चैव ते सर्वे नृप (द्विज) सत्तमाः॥ ५६॥

इति द्वितीयं गोत्रम् २

तृतीयं मगोडोआ वै गोत्रद्वितयमेव च। भारद्वाजस्तथाकुत्सं देवी द्वितयमेव च
आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च। विश्वामित्रदेवरातौ प्रवरत्रयमेव च॥ ६१॥

शेषला बुधला प्रोक्ताधारशान्तिस्तथैव च।
अस्मिन्ग्रामे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः॥ ६२॥

द्विजपूजाक्रियायुक्तानानायज्ञक्रियापराः। अस्मिन्गोत्रेसमुत्पन्नाद्विजाःसर्वेमुनीश्वराः

इति तृतीयं गोत्रम् ३

चतुर्थं शीहोलियाग्रामं गोत्रद्वितयमेव च। विश्वामित्रदेवरात तृतीयोदलमेव च॥
देवी चचाईवै तेषां गोत्रदेवीप्रकीर्तिता। अस्मिन्गोत्रे तु येजातादुर्बलादीनमानसाः
असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम। सर्वविद्याप्रवीणाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तम

इति चतुर्थं स्थानम् ४

ज्येष्ठलोजा पञ्चमश्च स्वस्थानं परिकीर्तितम्।
वत्सशीया कुत्सशीया प्रवरद्वितयं स्मृतम्॥ ६७॥
आवस्वृिवाप्रः यौवनाश्वभृगुच्यवन आप्नोर्वजमदग्निस्तथैव हि ?॥ ६८॥
चचाई वत्सगोत्रस्य शान्ता च कुत्सगोत्रजा।
एतैस्त्रिभिः पञ्चभिश्च द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः॥ ६९॥

शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रैश्च संयुताः। वेदाध्ययनहीनाश्चकुशलाःसर्वकर्मसु

सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः । दानधर्मरताः सर्वे अत्रजा जलदाद्विजाः

इति पञ्चमं स्थानम् ५

शेरथाग्रामेषु वै जाताः प्रवरद्वयसंयुताः । कुशभारद्वाजाश्चैव देवीद्वयं तथैव च ॥
विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च । आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च

कमला च महालक्ष्मीर्द्वितीया यक्षिणी तथा ।
अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ ७४ ॥

वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः । रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजनेयाजने रताः

ब्रह्मक्रियापराः सर्वे ब्राह्मणास्ते मयोदिताः ॥ ७५ ॥

इति षष्ठं स्थानम् ६

दन्तालीया भारद्वाजकुत्सशायास्तथैव च । आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च

देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया कर्मलातथा ।
अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ ७७ ॥

वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः । ब्रह्मभोज्यपराः सर्वेसर्वे धर्मपरायणाः

इति सप्तमं स्थानम् ७

वडोद्रीयान्वयेजाताश्चत्वारःप्रवराःस्मृताः । कुशःकुत्सश्चवत्सश्च भारद्वाजस्तथैव च
तत्प्रवराण्यहंवक्ष्ये तथा गोत्राण्यनुक्रमात् । विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदलएव च

आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ।
भार्गवश्च्यावनाप्न ( नु ) वानौर्वजमदग्निस्तथैवच ॥ ८१ ॥

आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च । कर्मला क्षेमला चैव धारभट्टारिका तथा
चतुर्थी क्षेमलाप्रोक्तागोत्रमाताअनुक्रमात् । अस्मिन्गोत्रे तु येजाताःपञ्चयज्ञरताःसदा
लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्तेबहुप्रजाः । स्नानदानादिनिरताःसदाविनिर्जितेन्द्रियाः
वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः । व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः

इत्यष्टमंस्थानम् ८

मोद्णीयाभिधे ग्रामेगोत्रौद्वौतत्र संस्थितौ । वत्सगोत्रंप्रथमकंभारद्वाजंद्वितीयकम्

भृगुच्यवनाप्नवानौर्वपुरोधसमेव च । शीहरी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया यक्षिणी तथा

अस्मिन्गोत्रोद्भवा विप्रा धनधान्यसमन्विताः ॥ ८८ ॥

सामर्षा लौल्यहीनाश्च द्वेषिणः कुटिलास्तथा ।

हिंसिनो धनलुब्धाश्च मया प्रोक्तास्तु भूपते !॥ ८९ ॥

इति नवमं स्थानम् ९

कण्डवाडीआ ग्रामे विप्राः कुशगोत्रसमुद्भवाः ।

प्रवरं तस्य वक्ष्यामि शृणु त्वं च नृपोत्तम !॥ ९० ॥

विश्वमित्रो देवरात उद्दलश्च त्रयः स्मृताः ।

चचाई देवी सा प्रोक्ता शृणु त्वं नृपसत्तम !॥ ९१ ॥

यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः । सर्वविद्यासु कुशलाब्राह्मणाः सत्यवादिनः

इति दशमं स्थानम् १०

वेखलोया मया प्रोक्ता कुत्सवंशे समुद्भवाः । प्रवरत्रयसंयुक्ताः शृणु त्वं च नृपोत्तम

विश्वामित्रो देवराजौदलश्चेति त्रयः स्मृताः । चचाई देवीतेषांवैकुलरक्षाकरीस्मृता

ब्राह्मणाश्च महात्मानःसत्त्ववन्तो गुणान्विताः । तपस्वियोगिनश्चैववेदवेदाङ्गपारगाः

साध्वश्च सदाचाराविष्णुभक्तिपरायणाः । स्नानसंध्यापरानित्यं ब्रह्मभोज्यपरायणाः

अस्मिन्वंशे मया प्रोक्ताः शृणु त्वं च अतःपरम् ॥ ९७ ॥

इत्येकादशं स्थानम् ११

देहलोर्डाआ ये प्रोक्ताः कुत्सप्रवरसंयुताः । आंगिरस आम्बरीषोयुवनाश्वस्तृतीयकः

गोत्रदेवीमयाप्रोक्ताश्रीशेषदुर्बलेति च । कुत्सवंशेच येजाताःसद्वृत्ताःसत्यभाषिणः

वेदाध्ययनशीलाश्च परच्छिद्रैकदर्शिनः । सामर्षालौल्यतोहीनाद्वेषिणःकुटिलास्तथा

हिंसिनो धनलुब्धाश्च ये च कुत्ससमुद्भवाः ॥ १०१ ॥

इति द्वादशं स्थानम् १२

कोहे च ब्राह्मणाः प्रोक्तागोत्रत्रितयसंयुताः । भारद्वाजस्तथावत्सस्तृतीयःकुशएव च

प्रवराण्यहं तथावक्ष्येयथागोत्रक्रमेण हि । भार्गवच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च

कुशप्रवरं तृतीयं तुप्रवरत्रयमेव च । विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदलमेव च ॥१०४
यक्षिणी प्रथमाप्रोक्ता द्वितीयाशीहुरी तथा । तृतीयावचाई प्रोक्तायथानुक्रमगोत्रजा

अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ।
वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चाग्निमर्द्दनाः ॥ १०६ ॥

गोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः । ब्रह्मकर्मपराः सर्वमयाप्रोक्ताद्विजोत्तमाः

इति त्रयोदशं स्थानम् १३

खान्इणखेडे ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ।
आङ्गिरसोबार्हस्पत्य स्तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ १०८ ॥
यक्षिणी खास्य वै देवी प्रोक्ता व्यासेन धीमता ।
भारद्वाजास्तु ये जाता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ १०६ ॥
शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रसमन्विताः ।
धर्मारण्ये द्विजाः श्रेष्ठाः क्रतुकर्मणि कोविदाः ॥ ११० ॥
गुरुभक्तिरताः सर्वे भासयन्ति स्वकं कुलम् ॥ १११ ॥

इति चतुर्दशं स्थानम् १४

थलग्रामेच येजाताभारद्वाजसमुद्भवाः । आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः
अस्मिन्गोत्रे च येजातावाडवाधनिनःशुभाः । वस्त्रालङ्करणोपेताद्विजभक्तिपरायणाः
ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः । गोत्रदेवी मयाख्यातायक्षिणीनाम रक्षिणी

इति पञ्चदशं स्थानम् १५

मोऊत्रीयाश्च ये जाताद्वौगोत्रौतत्रकार्तितौ । भारद्वाजःकश्यपश्च देवीद्वितयमेव च
चामुण्डा यक्षिणी चैव देवीचात्रप्रकीर्त्तिता । कश्यपाऽवत्सारश्चैवनैध्रुवश्चतृतीयकः

आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ।
प्रियवाक्या महादक्षा गुरुभक्तिरताःसदा ॥ ११७ ॥

सदा प्रतिष्ठावन्तश्च सर्वभूतहिते रताः । यजन्तिते महायज्ञान्काश्यपा ये द्विजातयः

सर्वेषां याजनकरा याज्ञिकाःपरमाः स्मृताः ।

इति षोडशं स्थानम् १६

हार्थीजणेच येजातावत्साभारद्वाजास्तथा । ज्ञानजायक्षिणी चैवगोत्रदेव्यौप्रकीर्तिते
अस्मिन्गोत्रे च येजाताःपञ्चयज्ञरताःसदा । लोभिनःक्रोधिनश्चैव प्रजावन्तोबहुश्रुताः
स्नानदानादिनिरता विष्णुभक्तिपरायणाः । व्रतशीलागुणज्ञानमूर्खा वेदविवर्जिताः

इति सप्तदशं स्थानम् १७

कपडवाणजा ब्राह्मणास्तु भारद्वाजाः कुशास्तथा ।
देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया चवाई तथा ॥ १२३ ॥
आङ्गिरसबार्हस्पत्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः । विश्वामित्रोदेवरातस्तृतीयोदल एव च
अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितव्रताः ।
जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहारा शुभाननाः ॥ १२५ ॥
सन्तोषनाः पुराणज्ञा महादानपरायणाः । निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥
दीर्घदर्शिनो महातेजा महामायाविमोहिताः ॥ १२७ ॥

इत्यष्टादशंस्थानम् १८

जन्होरोवाडवाः प्रोक्ताः कुशप्रवरसंयुताः । विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च
तारणी च महामाया गोत्रदेवीप्रकीर्त्तिता । अस्मिन्वंशेसमुत्पन्नावाडवा दुःसहान्नृप
महोत्कटामहाकायाःप्रलम्बाश्चमहोद्धताः । क्लेशरूपाःकृष्णवर्णाःसर्वशास्त्रविशारदाः
बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः । सुवस्त्रभूषा वै रूपा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥

इत्यैकोनविंशतितमं स्थानम् १९

चनोडीयाश्च ये जातागोत्राणांत्रयमेवच । कुशकुत्सौचप्रवरौतृतीयोभारद्वाजस्तथा
विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदलमेव च । आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः
आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च । शेषलाप्रथमाप्रोक्ता तथाशान्ताद्वितीयका
तृतीया धारशान्तिश्च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ।
अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बलादीनमानसाः ॥ १३५ ॥
असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम । सर्वविद्याकुशलिनोब्राह्मणाब्रह्मवित्तमाः

इतिविंशतितमं स्थानम् २०

कीणावावनकं स्थानं यदेकाधिकविंशतिः ।
भारद्वाजाश्च विप्रेन्द्राः कथिता ब्राह्मणाः शुभाः ॥ १३७ ॥
आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च । यक्षिणी चतथादेवीगोत्रदेवी प्रकीर्तिता
अस्मिन्गोत्रे च येजातावाडवाधनिनःशुभाः । वस्त्रालङ्करणोपेताद्विजभक्तिपरायणाः
ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १४० ॥

इत्येकविंशतितमं स्थानम् २१

गोविन्दणाचस्वस्थाने ये जाता ब्रह्मसत्तमाः । कुशगोत्रं च वं प्रोक्तंप्रवरत्रयमेव च
विश्वामित्रो देवरातौदलप्रवरमेव च । चचाई च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥
अस्मिन्गोत्रे च ये जाताब्राह्मणाब्रह्मवेदिनः । यजन्तेक्रतुभिस्तत्रहृष्टचित्तैकमानसाः
सर्वविद्यासु कुशला ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ १४४ ॥

इति द्वाविंशतितमं स्थानम् २२

थलत्यजा हि विप्रेन्द्रा द्वौ गोत्रौ चाप्यधिष्ठितौ ।
धारणं सङ्कुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ १४५ ॥
अगस्त्यो दाढर्यच्युतश्च रथ्यवाहन मेव च । विश्वामित्रोदेवरातस्तृतीयौदलएवच
देवी च छत्रजा प्रोक्ता द्वितीया थलजा तथा ।
धारणसगोत्रे ये जाता ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ १४७ ॥
त्रिप्रवराश्चैव विख्याताः सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ।
तदन्च ये च ये जाता धर्मकर्म समाश्रिताः ॥ १४८ ॥
धनिनोज्ञाननिष्ठा च तपोयज्ञक्रियादिषु । त्रयोविंशंप्रोक्तमेतत्स्थानंमोढकजातिनाम्

इतित्रयोविंशतितमं स्थानम्

वारणसिद्धाश्च ये प्रोक्ता ब्राह्मणा ज्ञानवित्तमाः ।
अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितव्रताः ॥ १५० ॥
जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहारा शुभाननाः । सदोद्यताःपुराणज्ञामहादानपरायणाः

निर्द्वेषिणोऽलोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः । दीर्घदर्शिनोमहातेजामहामायाविमोहिताः

चतुर्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं परमं मतम् ॥ १५३ ॥

इतिचतुर्विंशतितमं स्थानम् २४

भालजाश्चात्र वै प्रोक्ता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ १५४ ॥

वत्सगोत्रं कुशंचैव गोत्रद्वितयमेव च । तेषां प्रवराण्यहं वक्ष्ये पञ्चत्रितयमेव च ॥

भृगुश्च्यवनाप्न (नु) वानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ १५५ ॥

आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः । शान्ता च शेषलाचात्र देवीद्वितयमेव च

अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना सद्वृत्ताःसत्यभाषिणः ।

शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्धनाश्च कुचैलिनः ॥ १५७ ॥

सगर्वा लौल्ययुक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ।

*पञ्चविंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं मोढज्ञातिनाम् ॥ १५८ ॥*

इतिपञ्चविंशतितमं स्थानम् २५

महोर्वीआश्च ये सन्ति ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः । एकमेवत्र वै गोत्रंकुशलञ्चंपवित्रकम्

विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च । देवी चचाई चैवात्ररक्षारूपा व्यवस्थिता

अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ।

सत्यव्रताः सुरूपाश्च अल्पाहारा शुभाननाः ॥ १६१ ॥

दयालवः सुशीलाश्चसर्वभूतहिते रताः । षड्विंशतितमंप्रोक्तंस्वस्थानंब्रह्मवादिनम्

रामेण संस्तुताश्चैव सानुजेन तथैव च ॥ १६३ ॥

इतिषड्विंशतितमं स्थानम् २६

तियाश्रीयामथो वक्ष्ये स्वस्थानं सप्तविंशकम् ।

अस्मिन्स्थाने च ये जाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १६४ ॥

शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र कथितं वेदसत्तमैः । पञ्चप्रवरमथोप्रोक्तंज्ञानजा चात्र देवता

काश्यपावत्सारश्चैवशाण्डिलोऽसित एव च । पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणितथाक्रमात्

ज्ञानजा च तथा देवी कथिता स्थानदेवता ॥ १६६ ॥

अस्मिन्वंशे च ये जातास्ते द्विजाः सूर्यवर्चसः ।
चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ १६७ ॥
सदाचारा महाराज वेदशास्त्रपरायणाः । याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः
धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मलाहिमदोत्सुकाः । तपःस्वाध्यायनिरतान्यायधर्मपरायणाः
सप्तविंशतिमंस्थानं कथितं ब्रह्मवित्तमै ।

इतिसप्तविंशं स्थानम् २७

गोधरीयाश्च येजाता ब्राह्मणा ज्ञानसत्तमाः । गोत्रत्रयमथोवक्ष्ये यथावैवाप्यनुक्रमात्
प्रथमं धारणसं चैवजातूकर्णद्वितीयकम् । तृतीयं कौशिकं चैवयथावैवाप्यनुक्रमात्
धारणसगोत्रेयेजाताः प्रवरैस्त्रिभि संयुताः । अग्निश्चदार्ढच्युतइध्मवाहनसञ्ज्ञकः
वसिष्ठश्च तथाऽऽत्रेयो जातूकर्णस्तृतीयकः ।
विश्वामित्रो माधुच्छन्दसअघमर्षणस्तृतीयकः ॥ १७३ ॥
महाबला च मालेया द्वितीया चैव यक्षिणी ।
तृतीया च महायोगी गोत्रदेव्यः प्रकीर्त्तिताः ॥ १७४ ॥
अस्मिन्वंशेचये जाताब्राह्मणाःसत्यवादिनः । अलौल्याश्चमहायज्ञावेदाज्ञाप्रतिपालकाः

इत्यष्टाविंशं स्थानम् २८

वाटस्त्रहाले ये जाता गोत्रत्रितयमेव च । धारणं प्रथमं ज्ञेयं वत्ससञ्ज्ञं द्वितीयकम्
तृतीयं कुत्ससञ्ज्ञं च गोत्रदेव्यस्तथैव च । प्रथमं धारणसगोत्रं प्रवरत्रयमेव च
अगस्तिदार्ढच्युतश्चैव इध्मवाहन एव च ।
द्वितीयं वत्ससंज्ञं हि प्रवराणि च पञ्च वै ॥ १७८ ॥
भृगुच्यवनाप्रवानौर्वजमदग्निस्तथैव च । तृतीयं कुत्ससञ्ज्ञं हि प्रवरत्रयमेव च
आङ्गिरसाम्बरीषौ चयौवनाश्वस्तृतीयकः । देवी सच्छत्रजाचैवद्वितीया शेषलातथा
ज्ञानजा चैव देवी च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात ।
अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥ १८१ ॥
सुरूपाश्चाल्पाहाराश्च महादानपरायणाः । निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः

दीर्घदर्शिनो महातेजा महोत्काः सत्यवादिनः ॥ १८३ ।

इत्यैकोनत्रिंशं स्थनम् २६

माणजाच महास्थानंगोत्रद्वितयमेव च । शाण्डिल्यश्च कुशश्चैवगोत्रद्वयमितीरितम्
काश्यपोऽवत्सारश्च शांडिल्योऽसितएवच । पञ्चमो देवलश्चैव एकगोत्रं प्रकीर्तितम्
ज्ञानजा च तथा देवी कथिता चात्र सैव च । द्वितीयं च कुशं गोत्रं प्रवरत्रयमेव च
विश्वामित्रो देवराजस्तृतीयौदलमेव च । ज्ञानदा चात्र वै देवीद्वितीयासंप्रकीर्तिता

अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ।
असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम !॥ १८८ ॥
सर्वविद्याकुशलिनो ब्रह्मणा ब्राह्मसत्तमाः ॥ १८६ ॥

इति त्रिंशं स्थानम् ३०

साणदा चपरंस्थानं पवित्रंपरमं मतम् । कुशप्रवरजा विप्रास्तत्रस्थाःपावनाःस्मृताः
विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च । ज्ञानदा च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता
अस्मिन्गोत्रेतुये जाता दुर्बलादीनमानसाः । असत्यभाषिणोविप्रालोभिनोनृपसत्तम
सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ १६३ ॥

इत्येकत्रिंशंस्थानम् ३१

आनन्दीया चसंस्थानं गोत्रद्वितयमेवच । भारद्वाजंनामचैकंशांडिल्यं च द्वितीयकम्
आङ्गिरसोबार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः । चचाईचात्रया देवीगोत्रदेवी प्रकीर्तिता
काश्यपावत्सारश्च शाण्डिल्योऽसितए व च । पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणियथाक्रमम्
ज्ञानजा चतथादेवीकथितागोत्रदेवता । अस्मिन्गोत्रेचयेजातानिर्लोभाः शुद्धमानसाः
यदृच्छालाभसंतुष्टा ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ १६८ ॥

इति द्वात्रिंशं स्थानम् ३२

पाटडीया परं स्थानं पवित्रं परिकीर्तितम् । कुशगोत्रं भवेदत्र प्रवरत्रयसंयुतम्
विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलएव हि । अस्मिन्गोत्रेच ये जातावेदशास्त्रपरायणाः
मदोद्धराश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ २०१ ॥

इति त्रयस्त्रिंशं स्थानम् ३३

टीकोलिया परंस्थानं कुशगोत्रं तथैव च । विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च
चचाई चात्रवैदेवीगोत्रदेवीप्रकीर्तिता । अस्मिन्गोत्रेभवाविप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः

रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ।
ब्रह्मक्रियापराः सर्वे मोढाः प्रोक्ता मयात्र वै ॥ २०४ ॥

इति चतुस्त्रिंशं स्थानम् ३४

गमीधाणीयंपरमं स्थानं प्रोक्तंवैपंचत्रिंशकम् । गोत्रंधारणसं चैवदेवीचात्रमहाबला
अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकाः । अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः

अलौल्याश्च महाप्राज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ।

इति पञ्चत्रिंशं स्थानम् ३५

मात्राच परमं स्थानं पवित्रंसर्वदेहिनाम् । कुशगोत्रं पवित्रं तु परमं चात्र धिष्ठितम्
विश्वामित्रो देवरातो दलश्चैव तृतीयकः । ज्ञानदा च महादेवी सर्वलोकैकरक्षिणी

अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा देवतत्पराः ।
सस्वाध्यायवषट्कारा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ २१० ॥

इति षट्त्रिंशं स्थानम् ३६

नातमोरा परंस्थानं पवित्रंपरमं शुभम् । कुशगोत्रं च तत्रास्ति प्रवरत्रयसंयुतम्
विकामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेवच । ज्ञानजा चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता
अस्मिन्वंशे भवा ये च ब्राह्मणाब्रह्मवित्तमा । धर्मज्ञाः सत्यवक्तारो व्रतदानपरायणाः

इति सप्तत्रिंशं स्थानम् ३७

बलोला च महास्थानं पवित्रं परमाद्भुतम् । कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव च
पूर्वोक्तंप्रवरं चैव देवीचैवात्र मानदा । वंशेस्मिन्परमाः प्रोक्ताः काजेशेनविनिर्मिताः

असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ।
सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ २१६ ॥

इत्यष्टत्रिंशं स्थानम् ३८

राज्यजाच महास्थानं लौगाक्षाप्रवरं तथा । काश्यपावत्सारवाशिष्ठं प्रवरत्रयमेव च
भद्राच योगिनीचैव गोत्रदेवी प्रकीर्तिता । अस्मिन्वंशे समुद्भूताब्राह्मणावेदतत्पराः
नित्यस्नाननित्यहोमनित्यदान परायणाः । नित्यधर्मरताश्चैव नित्यनैमित्ततत्पराः

इत्येकोनचत्वारिंशं स्थानम् ३९

रूपोला परमं स्थानं पवित्रमतिपुण्यदम् । अस्मिन्गोत्रत्रये चैव देवीत्रितयमेव च
प्रथमंकुत्सवत्साख्यौभारद्वाजस्तृतीयकः । आङ्गिरसोम्बरीषश्चयौवनाश्वस्तृतीयकः

भृगुच्यवनाप्न (प्नु) वानौर्वजगदग्निस्तथैव च ।
आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ २२२ ॥

क्षेमलाचैवचैदेवीधारभट्टारिका तथा । तृतीया क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाताह्यनुक्रमात्
अस्मन्गोत्रेच ये जाता पञ्चयज्ञरताःसदा । लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्तेबहुप्रजाः
स्नानदानादिनिरताः सदा च विजितेन्द्रियाः । वापीकूपतडागानांकर्त्तारश्चसहस्रशः

इति चत्वारिंशं स्थानम् ४०

बोधणी परमं स्थानं पवित्रं पापनाशनम् । कुशश्च कौशिकश्चैव गोत्रद्वितयमेव च
विश्वामित्रश्च प्रथमो देवरातोदलेति च । विश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति तथैव च

यक्षिणी प्रथमा चैव द्वितीया तारणी तथा ।
अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ २२८ ॥

असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम । सर्वविद्याकुशलिनोब्राह्मणाब्रह्मसत्तमाः

इत्येकचत्वारिंशं स्थानम् ४१

छत्रोटा च परं स्थानं सर्वलोकैकपूजितम् । कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव हि
विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव वै । चवाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता
अस्मिन्वंशेभवाश्चैव वेदशास्त्रपरायणाः । महोदयाश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः

इति द्विचत्वारिंशं स्थानम् ४२

स्वल एवात्र संस्थानंत्रयश्चत्वारिंशमेव हि । वत्सगोत्रोद्भवाविप्रा कृषिकर्मप्रवर्तकाः
गोत्रजाज्ञानजादेवीप्रवराःपञ्चएव हि । भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येतिचैवहि

अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रौताग्निस्तुनिषेवकाः ।
वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्दनाः ॥ ३५ ॥

रोषिणो लोभिनो हृष्टा यजने याजने रताः । सर्वभूतदयाविष्टास्तथापरोपकारिणः

इति त्रय (त्रि) श्चत्वारिंशं स्थानम् ४३

वासन्तश्चाश्च विप्राणां कुशगोत्रमुदाहृतम् । विश्वामित्रो देवारास्तृतीयौदलमेवहि
त्रवाईचात्रवैदेवीगोत्रदेवीप्रकीर्तिता । अस्मिन्वंशे च ये जाताः पूर्वोक्ताब्रह्मतत्पराः
परोपकारिणश्चैव परचित्तानुवर्तिनः । परस्वविमुखाश्चैव परमार्गप्रवर्त्तकाः ॥ ३६ ॥

इति चतुश्चत्वारिंशं स्थानम् ४४

अतःपरंचसंस्थानंजाखासणमुदाहृतम् । गोत्रंचै वात्स्यसंज्ञन्तु गोत्रजाशीहुरीतथा
प्रवराणि च पञ्चैव मया तव प्रकाशितम् ॥ २४० ॥

भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वपुरोधसःस्मृताः । अस्मिन्वंशेचयेजाताखाडघाःसुखवासिनः
विप्राः स्थूलाश्च ज्ञातारः सर्वकर्मरताश्चवै ॥ ४१ ॥

सर्वे धर्मैकविश्वासाः सर्वलोकैकपूजिताः । वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः
सदाचाराः सुरूपाश्च तुन्दिलादीर्घदर्शिनः । शीहुरी चात्र वै देवीकुलदेवीप्रकीर्तिता

इति पञ्चचत्वारिंशं स्थानम् ४५

षट्चत्वारिंशकं स्थानं मोटानां तु प्रकाशितम् ।
गोतीआवामसञ्ज्ञा तु कुशगोत्रमिहास्ति च ॥ ४४ ॥

विश्वामित्र प्रथमश्चैव द्वितीयं देवरातकम् । तृतीयमौदलश्चैवप्रवरत्रितयं त्विदम्
यक्षिणीचात्रवैदेवी राक्षसानांप्रभञ्जनी । अस्मिन्वंशेचये जाता ब्राह्मणाब्रह्मतत्पराः
धर्मे मतिप्रवृत्ताश्च धर्मशास्त्रेषु निष्ठिताः ॥ ४४ ॥

इति षट्चत्वारिंशं स्थानम् ४६

सप्तचत्वारिंशकश्च संस्थानं परिकीर्तितम् । वरलीयाख्यसंस्थानं पवित्रं परमंमतम्
भारद्वाजं तथा गोत्रं प्रवराणि तथैवच । यक्षिणीचात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता
आङ्गिरसंबार्हस्पत्यंभारद्वाजंतृतीयकम् । अस्मिन्वंशे च ये जाताब्राह्मणाःपूतमूर्तयः

येषां वाक्योदकेनैव शुध्यन्ति पापिनो नराः ॥ २५१ ॥

इति सप्तचत्वारिंशं स्थानम् ४७

दुधीयाख्यं परं स्थानं गोत्रद्वितयमेव च । धारणसं तथा गोत्रमाङ्गिरकसमेव च
अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकम् । छत्राई च महादेवी द्वितीयं प्रवरं शृणु ॥५३॥
आङ्गिरसाम्बरीषौ चयौवनाश्वस्तृतीयकः । ज्ञानदा शेषलाचैव ज्ञानदा सर्वदेहिनाम्
अस्मिन्वंशेसमुत्पन्नावाडवा दुःसहा नृप । मदोत्कटामहाकायाःप्रलम्भाश्रमदोद्धताः
क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाःसर्वशास्त्रविशारदाः । बहुभुग्धनिनोदक्षा द्वेषपापविवर्जिताः

इत्यष्टचत्वारिंशकं स्थानम् ४८

हासोल्लासं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानं चात्र संश्रुतम् ।
शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र प्रवरः पञ्चभिर्युतम् ॥ २५७ ॥
भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्यकम् । यक्षिणीचात्र वै देवीपवित्रापापनाशिनी
अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः स्थूलदेहिनः ।
लम्बोदरा लम्बकर्णा लम्बहस्ता महाद्विजाः ॥ २५९ ॥
अरोगिणः सदा देवाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ २६० ॥

इत्यैकोनपञ्चाशत्तमं स्थानम् ४९

वेहालाख्यं च संस्थानं पञ्चाशत्तममेव हि । कुशगोत्रं तथा चैव देवीचात्र महाबला
अस्मिन्गोत्रे भवाविप्राद्रुष्टाः कुटिलगामिनः । धनिनो धर्मनिष्ठाश्चवेदवेदाङ्गपारगाः
दानभोगरताः सर्वे श्रौते च कृतबुद्धयः ॥ २६३ ॥

इति पञ्चाशत्तमं स्थानम् ५०

असाला परमं स्थानं प्रवरद्वयमेव हि । कुशश्च धारणश्चैव प्रवराणि क्रमेण तु ॥
विश्वामित्रो देवरातोदेवलस्तु तृतीयकः । ज्ञानजा च तथा देवीगोत्रदेवी प्रकीर्तिता

इत्यैकपञ्चाशत्तमं स्थानम् ५१

नालोलापरमंस्थानंद्विपञ्चाशत्तमंकिल । वत्सगोत्रंतथाख्यातं द्वितीयंधारणसंतथा
प्रवराश्चैव पूर्वोक्ता देव्युक्ता एवमेव हि । अस्मिन्वंशेच येजाताः पवित्राःपरमामताः

बहुनोक्तेन किं विप्राः सर्वे एवात्र सत्तमाः । सर्वे शुद्धा महात्मानःसर्वे कुलपरम्पराः
इति द्वापञ्चाशत्तमं स्थानम् ५२
देहोलं परमं स्थानं ब्राह्मणानां परंतप । कुशवंशोद्भवा विप्रास्तत्र जाता नृपसत्तम
पूर्वोक्तप्रवराण्येव देवीपूर्वोदिता मया । तस्मिन्गोत्रे द्विजाजाताः पूर्वोक्तगुणशालिनः
इति त्रिपञ्चाशत्तमं स्थानम् ५३
सोहासीयापुरं स्थानं गोत्रत्रितयमेवहि । भारद्वाजस्तथा स्यानं गोत्रंवत्संतथैव च
यक्षिणी ज्ञानजा चैव सिहोली च यथाक्रमम् ।
एतद्वंशपरीक्षा च पूर्वोक्ता नृपसत्तम ॥ २७२ ॥
इति चतुःपञ्चाशत्तमंस्थानम् ५४
पञ्चपञ्चाशकं स्थानंप्रवक्ष्यामितवाधुना । नाम्नासंहालियास्थानं दत्तं रामेण वै पुरा
तत्र वैकुत्सगोत्रस्थाब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसः । स्वधर्मनिरता नित्याःस्वकर्मनिरताश्चते
आङ्गिरसाम्बरीषेच यौवनाश्वमतः परम् ।
शान्ता चैवाऽत्र वै देवी शान्तिकर्म्मणि शान्तिदा ॥ २७५ ॥
इति पञ्चपञ्चाशत्तमं स्थानम् ५५
एवं मया ते गोत्राणि स्थानान्यपि तथैव च । प्रवराणि तथैवात्र ब्राह्मणाना परंतप
अतः परं प्रवक्ष्यामि त्रविद्याना परंतप । स्वस्थानं च मया प्रोक्तं यथानुक्रमेण तु
शीलायाः प्रथमं स्थानं मण्डोरा च द्वितीयकम् ।
एवडी च तृतीयं हि गुन्दराणा चतुर्थकम् ॥ २७८ ॥
पञ्चमं कल्याणीया देगामा षष्ठकं तथा । नायकपुरा सप्तमं च डलीआ चाष्टमं तथा
कडोव्या नवमं चैव कोहाटोयादशमं तथा ।
हरडीयैकादशं चैव भदुकीयाद्वादशं तथा ॥ २८० ॥
संप्राणाचातथा चात्र कन्दराचाप्रकीर्तितम् । वासरोवा त्रयोदशं शरंडावा चतुर्दशम्
लोलासणा पञ्चदशं वारोला षोडशं तथा ।
नागलपुरा मया चात्र उक्तं सप्तदशं तथा ॥ २८२ ॥

ब्रह्मोवाच

चातुर्विद्यास्तु येविप्रा नागताः पुनरागताः । वसतिं तत्र रम्येच चक्रिरेतेद्विजोत्तमाः
चतुर्विंशतिसंख्याका रामशासनलिप्सया । हनूमन्तंप्रति गता व्यावृत्ताःपुनरागताः
तेषांदोषात्समस्तास्ते स्थानभ्रंशत्वमागताः । कियत्काले गतेतेषांविरोधःसमपद्यत

भिन्ना चारा भिन्नभाषा वेशसंशयमागताः ।

पञ्चदशसहस्राणां मध्ये ये के च वाडवाः ॥ २८६ ॥

कृषिकर्मरता आसन्केचिद्यज्ञपरायणाः । केचिन्मल्लाश्च सञ्जाताः केचिद्वै वेदपाठकाः
आयुर्वेदरताः केचित्केचिद्रजकयाजकाः । सन्ध्यास्नानपराःकेचिन्मालीकर्तृप्रयाजकाः
तंतुकृद्यात्र(ज)नरतास्तन्तुवायादियाचकाः । कलौप्राप्तेद्विजाभ्रष्टाभविष्यन्तिनसंशयः

शूद्रेषु जातिभेदः स्यात्कलौ प्राप्ते नराधिप !।

भ्रष्टाचाराः परं ज्ञात्वा ज्ञातिबन्धेन पीडिताः ॥ २९० ॥

भोजनाच्छादनैराजन्परित्यक्तानिर्जर्जनैः । न कोऽपिकन्यां विवहेत्संसर्गेणकदाचन
ततस्ते वणिजोराजंस्तैलकाराःकलौकिल । केचिच्चकुम्भकाराश्चकेचित्तन्दुलकारिणः
राजपुत्राश्रिताः केचिन्नानावर्णसमाश्रिताः । कलौप्राप्ते तु वणिजो भ्रष्टाःकेपिमहीतले

तेषां तु पृथगाचाराः सम्बन्धाश्च पृथक्कृताः ।

सीतापुरे च वसतिः केषाञ्चित्समजायत ॥ २९३ ॥

साभ्रमत्यास्तटे केचिद्यत्र कुत्रव्यवस्थिताः । सीतापुरात्तुयेपूर्वं भयभीताःसमागताः
साभ्रमत्युत्तरेकूले श्रीक्षेत्रीये व्यवस्थिताः । यदातेषां पदंस्थानंदत्तंवै सुखवासकम्

पुनस्तेऽपि गताः सद्यस्तस्मिन्सीतापुरे स्वयम् ।

पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाश्च दत्तास्तु पुनरागमे ॥ २९६ ॥

रामेण मोढविप्राणां निवासांस्तेषु चक्रिरे ।

वृत्तिबाह्यास्तु ये विप्रा धर्मारण्यान्तरस्थिताः ॥ २९७ ॥

नास्माकं वणिजांवृत्तौग्रामवृत्तौनकिञ्चन । प्रयोजनंहिविप्रेन्द्रावासोऽस्माकंतुरोचते
इत्युक्ते समनुज्ञातास्त्रैविद्यैस्तैर्द्विजोत्तमैः । तेषु ग्रामेषु तेविप्राश्चतुर्विद्या द्विजोत्तमाः

स्वकर्मनिरताः शान्ताः कृषिकर्मपरायणाः। धर्मारण्यान्नातिदूरेधेनूः सञ्चारयन्ति ते
बहवस्तत्र गोपाला बभूवुर्द्विजबालकाः।
चातुर्विद्यास्तु शिशवस्तेषां धेनूरचारयन्॥
तेषां भोजनकामाय अन्नपानादिसत्कृतम् ॥ ३०१ ॥
अनयन्वैयुवतयो विधवाअपिबालकाः। कालेन कियताराजंस्तेषां प्रीतिरभून्मिथः
गोपाला बुभुजुः प्रेम्णा कुमार्यो द्विजबालिकाः।
जाताः सगर्भास्ताः सर्वा दृष्टास्तैर्द्विजसत्तमैः॥
परित्यक्ताश्च सदनाद्विकृताः पापकर्मणा ॥ ३०४ ॥
ताभ्यो जाता कुमारा ये कार्तीभा गोलकास्तथा।
धेनुजास्ते धरालोके ख्यातिं जग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ३०५ ॥
वृत्तिबाह्यास्तु ते विप्रा भिक्षां कुर्वन्ति नित्यशः।
अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ ३०६ ॥
कुष्ठी कोऽपि तथा पङ्गुर्मूर्खो वा बधिरोऽपिवा।
काणो वाऽप्यथ कुब्जोवा बद्धवागथवा पुनः ॥ ३०७ ॥
अप्राप्तकन्यकाह्येतेचातुर्विद्यांसमाश्रिताः। वित्तेन महताराजन्सुतास्तेषांकुमारिकाः
उद्वाहितास्तदा राजंस्तस्माज्जाताभंकास्तु ये।
त्रिदलजास्ते विख्याताः क्षितिलोकेऽभवंस्ततः ॥ ३०९ ॥
वृत्तिं चक्रुर्ब्राह्मणास्तेऽन्योन्यं मिश्रसमुद्भवाः।
अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ ३१० ॥
रामदत्तेनग्रामेण करग्रहणहेतवे। एकीभूय द्विजैः सर्वैर्ग्रामंप्रादाय तं बलिम् ॥ ११ ॥
अर्द्धं निवेदयामासुरर्द्धंचैवोपरक्षितम्।
एतल्लुब्धं हि मन्वानास्तेद्विजा लौल्यभागिनः ॥ ३१२ ॥
महास्थानगता ये च ते हि विस्मयमाययुः।
तन्मध्ये कोऽपि विप्रस्तानुवाच कुपितो वचः ॥ ३१३ ॥

विप्र उवाच

अमृतं चैव भाषन्ते लौल्येन महता वृताः । पुत्रपौत्रविनाशाय ब्रह्मस्वेष्वतिलोलुपाः
नविषंविषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्
ब्रह्मस्वेन च दग्धेषुपुत्रदारगृहादिषु । न च तेह्यपि तिष्ठन्ति ब्रह्मस्वेन विनाशिताः
ननाकं लभते सोऽथसदा ब्रह्मस्वहारकः । यदावराटिका चैव ब्राह्मणस्य हरन्ति ये
ततो जन्मत्रयाण्येव हर्त्ता निरयमाव्रजेत् ।
पूर्वजा नोपभुञ्जन्ति तत्प्रदत्तं जलं क्वचित् ॥ ३१८ ॥
क्षयाहेनोपभुञ्जन्ति तस्य पिण्डोदकक्रियाः । सन्ततिर्नैवलभते लभ्यमानानजीवति
यदि जीवति दैवाच्चेद् भ्रष्टाचारा भवेदिति ॥ ३२० ॥

एकादशविप्रा ऊचुः

नासत्यं भाषितं विप्राः कथंदूषयसे हि नः । अपराधंविनाकस्यकद्रूक्रियुं ज्यतेकिल
तच्छ्रुत्वा तैर्द्विजैः पार्श्वग्रामग्राहयिता वणिक् ।
परिपृष्टः स तत्सर्वं कथयामास कारणम् ॥ ३२२ ॥
वणिजैरेव मे दत्तो बलिश्च द्विजसत्तमाः । तत्सर्वं शुद्धभावेन कथितं तु द्विजन्मसु
ततोऽर्द्धदलं ज्ञात्वा ते कुपिता द्विजपुत्रकाः ।
वृत्तेर्बहिष्कृतास्ते वै एकादश द्विजास्ततः ॥ ३२३ ॥
एकादशसमा ज्ञातिर्विख्याता भुवनत्रये । न तेषा सहसम्बन्धो न विवाहश्चजायते ॥
एकादशसमाये च बहिर्ग्रामे वसन्ति ते । एवं भेदाः समभवन्नानामोढद्विजन्मनाम् ॥
युगानुसारात्कालेन ज्ञातीनां च वृषस्य वा ॥ ३२६ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये ज्ञातिभेदवर्णनंनामैकोन-
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## चत्वारिंशोऽध्यायः

### धर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णपूर्वकंधर्मारण्यपुराणश्रवणमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

ज्ञातिभेदे तु सजाते तस्मिन्मोहेरके पुरे । त्रैविद्यैः किंकृतंब्रह्मंस्तन्ममाचक्ष्वपृच्छतः

ब्रह्मोवाच

स्वस्थाने वाडवाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । अग्निहोत्रपराः केऽपिकेऽपियज्ञपरायणाः
केऽपिचाग्निसमाधानाःकेऽपिस्मार्तानिरन्तरम् । पुराणन्यायवेत्तारोवेदवेदाङ्गवादिनः
सुखेन स्वान्सदाचारान्कुर्वन्तोब्रह्मवादिनः । एवं धर्मसमाचारान्कुर्वताकुशलात्मनाम्

स्थानाचारान्कुलाचारानधिदेव्याश्च भाषितान् ।
धर्मशास्त्रस्थितं सर्वं काजेशैरुदित च यत् ॥ ५ ॥
परम्परागतं धर्ममूचुस्ते वाडवोत्तमाः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

उपास्ते यश्च लिखितं रक्तपादस्तु वाडवाः । ज्ञातिश्रेष्ठःसविज्ञेयोबलिर्देयस्ततःपरम्
रक्तचन्दनं प्रसाध्याथ प्रसिद्ध स्वकुलं तथा । कुङ्कुमारक्तपादस्तग्गन्धपुष्पादिचर्चितः
सम्भूय लिखितं यश्च रक्तपादं तदुच्यते । रामस्य लेख्यं ते सर्वे पूजयन्तुसमाहिताः
रामस्य करमुद्रा च पूजयन्तु द्विजाः सदा । येषांदोषाःसदाचारेव्यभिचारादयोयदि
तेषांदण्डो विधेयस्तु य उक्तो विधिवद्द्विजैः । चिह्नंभराममुद्रायायावद्दण्डंददातिन
विनादण्डप्रदानेन मुद्राचिह्नं न धार्यते । मुद्राहस्ताश्च विज्ञेया वाडवा नृपसत्तम ॥
पुत्रेजाते पिता दद्याच्छ्रामात्रेतुबलिसदा । पलानि विंशतिःसर्पिर्गुडःपञ्चपलानि च
कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्य जातमात्रः सुतस्तदा । षष्ठे च दिवसेराजन्षष्ठी पूजयते सदा

दद्यात्तत्र बलिं साज्यं कुर्याद्धि बलिपञ्चकम् ।
पञ्चप्रस्थान्बलीन्दद्यात्सचखाङ्क्षाफलैर्युतान् ॥ १५ ॥

कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्य श्रीमात्रे भक्तिपूर्वकम् । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुलेसन्ततिवृद्धये
तद्विचार्पयता द्रव्यं वृद्धौ यद्भाषितं पुनः । जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि
विप्रानुकीर्तिता याऽत्रवृत्तिःसापिविभज्यते । प्रथमालभ्यमानाचवृत्तिर्वैयावतीपुनः
तस्या वृत्तेरर्द्धभागोगोत्रदेव्यै तु कल्प्यताम् । द्विगुणंवणिजांचैवपुत्रेजाते भवेदिति

माण्डलीयाश्च ये शूद्रास्तेषामर्क ( र्ध ) करं त्विदम् ।
अडालजानां त्रिगुणं गोभुजानां चतुर्गुणम् ॥ २० ॥

इत्येतत्कथितसर्वमन्यत्रशूद्रजातिषु । यस्यदोषस्तुहत्यायाःसमुद्भूतो विधेर्वशात्

दण्डस्तु विधिवत्तस्य कर्त्तव्यो वेदशास्त्रिभिः ।

अगम्यागमनाद्यस्य दोषउत्पद्यते यदा । तस्यदण्डःपुनःकार्यआर्यैस्त्रैविद्यजातिभिः

अन्यायो न्यायवादी स्यान्निर्दोषि दोषदायकः ॥ २२ ॥

पङ्क्तिभेदस्यकर्त्ता चगोसहस्रवधःस्मृतः । वृत्तिभागविभजनंतथान्यायविचारणम्

श्रीरामदूतकस्याग्रे कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥ २३ ॥

तस्य पूजा प्रकुर्वीत तदाकालेऽथवा सदा । तैलेन लेपयेत्तस्य देहे वै विघ्नशान्तये
धूपं दीपं फलं दद्यात्पुष्पैर्नानाविधैः किल । पूजितोहनुमानेवददातितस्यवांछितम्
प्रतिपुत्रं तु तस्याग्रे कुर्यान्नान्यत्र कुत्रचित् । श्रीमातावकुलस्वामिभागधेयं तुपूर्वतः

पश्चात्प्रतिग्रहं विप्रैः कर्त्तव्यमिति निश्चितम् ।
समागमेषु विप्राणां न्यायान्यायविनिर्णये ॥ २६ ॥

निर्णयंहृदयेधृत्वातत्रस्थंश्रावयेद् द्विजान् । केवलं धर्मबुद्ध्या च पक्षपातं विवर्जयेत्
सर्वेषां सम्मतंकार्यं तद्धयविकृतमेव च । आकारितस्ततोविप्रःसभायांमयमेतिचेत्
तस्यवाक्यंश्रोतव्यंनिर्णीतार्थनिवारणे । यस्यवर्जस्तुक्रियतेमिलित्वासर्वबाडवैः
अन्नपानादिकं सर्वं कार्यं तेन विवर्जयेत् । तस्यकन्यानदातव्यातत्संसर्गी चतादृशः
ततो दण्डंप्रकुर्वीतसर्वैरेवद्विजोत्तमैः । भोजनंकन्यकादानमितिदाशरथेर्मतम् ॥ ३१ ॥
त्किञ्चित्कुरुतेपापंलघुस्थूलमथापिवा । शुष्कार्द्रंवसतिचाग्नौ तस्मादन्नं परित्यजेत्
वैस्तत्पापभागीस्यात्तस्यदण्डोयथाविधि । न्यायंनपश्यतेयस्तुशक्तोसत्यांसदायतः

पापभागी स विज्ञेय इति सत्यं न संशयः ।
उत्कोचं यस्तु गृह्णाति पापिनांदुष्टकर्मिणाम् । सकलंचभवेत्तस्यपापंनैवात्रसंशयः
तस्यान्नं गृह्यते नैव कन्यापिन कदाचन । हितमाचरते यस्तु पुत्राणामपि वै नरः
स एतान्नियमान्सर्वान्पालयेन्नात्र संशयः । एवं पत्रं लिखित्वातुवाडवास्ते प्रहर्षिताः
प्राप्ते कलियुगे घोरे यथा पापं न कुर्वते । इति ज्ञात्वा तु सर्वे ते न्यायधर्मं प्रचक्रिरे

व्यास उवाच

कलौ प्राप्ते द्विजाः सर्वे स्थानभ्रष्टा यतस्ततः ।
पक्षमुत्कलं ग्रहीष्यन्ति तथा स्युः पक्षपातिनः ॥ ३८ ॥
भोक्ष्यन्ते म्लेच्छकग्रामान्कोलाविध्वंसिभिः किल ।
वेदभ्रष्टाश्च ते विप्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच

देशेदेशे गमिष्यन्ति ते विप्रा वणिजस्तथा । कथं वै ज्ञायते सर्वैः केनचिह्नेनमारिष
यस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना वाडवा ये महाबलाः ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच

ज्ञायते गोत्रसञ्ज्ञाऽथ केचिच्चैव पराक्रमैः । यस्ययस्य चयत्कर्मतस्यतस्यावटङ्कः
अवटङ्कैर्हि ज्ञायन्ते नान्यथा ज्ञायते क्वचित् । गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव अवटङ्कैर्नृपात्मज ॥
ज्ञायन्ते हि द्विजा राजन्मोढब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव श्रुता एतेत्वाननात् । कां वा शाखामधीयानास्तन्मेब्रूहि पितामह

व्यास उवाच

ज्ञायन्ते यत्र य (त) त्रस्था माध्यन्दिनीया महाबलाः ।
कौथमीं च समाश्रित्य केचिद्विप्रा गुणान्विताः ॥ ४७ ॥
ऋगथर्वणजा शाखा नष्टा सा च महामते । एवंवै वर्तमानास्ते वाडवा धर्मसम्भवाः
धर्मारण्येमहाभागाः पुत्रपौत्रान्विताभवन् । शूद्राःसर्वे महाभागाःपुत्रपौत्रसमावृताः

धर्मारण्ये महातीर्थे सर्वे ते द्विजसेवकाः । अभयग्रामभकाश्च रामाज्ञां पालयन्ति च

आज्ञामत्याऽऽदरेणेह हनूमन्तश्च (?) वीर्यवान् ।

पालयेत्सोऽपि चेदानीं सम्प्राप्ते वै कलौ युगे ॥ ५१ ॥

अदृष्टरूपी हनुमांस्तत्र भ्रमति नित्यशः । त्रैविद्या वाडवा यत्र चातुर्विद्यास्तथैव च

सभायामुपविष्टा येऽन्यायात्पापं प्रकुर्वते ।

जयो हि न्यायकर्तृणामजयोऽन्यायकारिणाम् ॥ ५३ ॥

सापराधेयस्तु पुत्रे ताते भ्रातरि चापि वा । पक्षपातं प्रकुर्वीततस्यकुप्यतिवायुजः

कुपितो हनुमानेष धननाशं करोति वै । पुत्रनाशं करोत्येव धामनाशं तथैव च ॥

सेवार्थं निर्मितः शूद्रो न विप्रान्परिषेवते । वृत्तिंवा न ददात्येवहनुमांस्तस्यकुप्यति

अर्थनाशं पुत्रनाशं स्थाननाशं महाभयम् । कुरुतेवायुपुत्रो हि रामवाक्यमनुस्मरन्

यत्रकुत्रस्थिताविप्राशूद्रावा नृपसत्तम ! । ननिर्द्धनाभवेयुस्ते प्रसादाद्राघवस्य च ॥

योमूढश्चाप्यधर्मात्मापापपाषण्डमाश्रितः । निजान्विप्रान्परित्यज्यपरज्ञातींश्चमन्यते

तस्य पूर्वकृतं पुण्यं भस्मी भवति नान्यथा । अन्येषां दीयतेदानंम्वल्पंवायदिवाबहु

वृथा भवतिवै पूर्वं ब्रह्मविष्णुशिवैः कृतम् । तस्यदेवान गृह्णन्ति हव्यंकव्यञ्चपूर्वजाः

वञ्चयित्वा निजान्विप्रानन्येभ्यः प्रददेत्तु यः ।

तस्य जन्मार्जितम्पुण्यं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव पूजिता ये द्विजोत्तमाः । तेभ्योयेविमुखाशूद्रा रौरवे निवसन्तिते

योलौल्याच्चकुलाचारंगोत्राचारंप्रलोपयेत् । स्वाचारंयोनकुर्वीतकदाचिद्वैविमोहितः

सर्वनाशो भवेत्तस्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ।

तस्मात्सर्वःकुलाचारः स्थानाचारस्तथैव च ॥ ६५ ॥

गोत्राचारः पालनीयो यथावित्तानुसारतः । एवं ते कथितं राजन्धर्मारण्यं पुरातनम्

स्थापितं देवदेवैश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥

द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

ब्रह्मोवाच

य इदं शृणुयात्पुत्र श्रद्धयापरया युतः । धर्मारण्यस्यमाहात्म्यंसर्वकिल्बिषनाशनम्

मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधञ्च यत् ।

तत्सर्वं नाशमायाति श्रवणात्कीर्तनात्सकृत् ॥ ६६ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसन्तानदायकम् ।

माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स! सर्वसौख्यास्पदो नरः ॥ ७० ॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वक्षेत्रेषुयत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोतिधर्मारण्यस्यसेवनात्

नारद उवाच

धर्मारण्यस्य माहात्म्यं यच्छ्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ।

धर्मवाप्यां यत्र धर्मस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ७२ ॥

तस्य क्षेत्रस्य महिमा मया त्वत्तोऽवधारितः ।

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि धर्मारण्यदिदृक्षया ॥ ७३ ॥

तव वाक्यजलौघेन पावितोऽहं चतुर्मुख !॥ ७४ ॥

व्यास उवाच

इदमाख्यानकं सर्वं कथितंपाण्डुनन्दन । यच्छ्रुत्वा गोसहस्रस्य फलं प्राप्नोतिमानवः

अपुत्रोलभतेपुत्रान्निर्द्धनो धनवान्भवेत् । रोगीरोगात्प्रमुच्येतबद्धो मुच्येत बन्धनात्

विद्यार्थी लभते विद्यामुत्तमां कर्मसाधनाम् ।

तीर्थयात्राफलं तस्य कोटिकन्याफलं लभेत् ॥ ७७ ॥

यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वाचनरोत्तम । निरयं नैव पश्येत्स एकोत्तरशतैःसह

शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिभिस्तथा । पुराणपुस्तकं राजन्प्रयतःशिष्टसम्मतः

अर्चयेच्च यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक् ।

समाप्तौ नृपग्रन्थस्य वाचकस्यानुपूजनम् ॥ ८० ॥

दानादिभिर्यथान्यायं सम्पूर्णफलहेतवे । मुद्रिकां कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं हिरण्मयम्

वस्त्राणि च विचित्राणि गन्धमाल्यानुलेपनैः ।

देवयत्पूजनं कृत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ ८२ ॥
एवंविधानतःश्रुत्वाधर्मारण्यकथानकम् । धर्मारण्यनिवासस्यफलमाप्नोत्यसंशयम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये धर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वकं
धर्मारण्यपुराणश्रवणमाहात्म्यवर्णनं नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

समाप्तमिदं धर्मारण्यमाहात्म्यम्

——:०:——

॥ श्री गणेशायनमः ॥

# स्कन्दपुराणस्थब्रह्मखण्डेतृतीयं चातुर्मास्यमाहात्म्यम्

——:०:——

## प्रथमोऽध्यायः

### चातुर्मास्यस्नानमहत्त्ववर्णनम्

नारद उवाच

देवदेव महाभाग व्रतानि सुबहून्यपि । श्रुतानि त्वन्मुखाद् ब्रह्मन्नतृप्तिमधिगच्छति

अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु देवमुने! मत्तश्चातुर्मास्यव्रतं शुभम् । यत्कृत्वाभारते खण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा

मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् संसारोत्तारकारणम् । यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते

मानुष्यं दुर्लभं लोके तत्राऽपिच कुलीनता । तत्रापि सदयत्वञ्च तत्र सत्सङ्गमःशुभः

सत्सङ्गमो न यत्राऽस्ति विष्णुभक्तिर्व्रतानि च ।

चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः ॥ ६ ॥

चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु तस्य पुण्यं निरर्थकम् ।

सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ७ ॥

विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्तिचातुर्मास्येसमागते । सुपुष्टेनापिदेहेन जीवितन्तस्यशोभनम्

चातुर्मास्ये समायातेहरिंयः प्रणमेद् बुधः । कृतार्थास्तस्यविबुधायावज्जीवम्वरप्रदाः
सम्प्राप्यमानुषं जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुखः । तस्य पापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंशयः
मानुष्यं दुर्लभं लोके हरिभक्तिश्च दुर्लभा । चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने
चातुर्मास्ये नरः स्नानं प्रातरेव समाचरेत् । सर्वक्रतुफलम्प्राप्य देववद्दिवि मोदते
चातुर्मास्ये नदीस्नानं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ।
तथा निर्झरणे स्नाति तडागे कूपिकासु च ॥ १३ ॥
तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् । पुष्करेचप्रयागेवायत्रक्वापिमहाजले
चातुर्मास्येषु यः स्नाति पुण्यसङ्ख्या न विद्यते ॥ १४ ॥
रेवायां भास्करक्षेत्रेप्राच्यांसागरसङ्गमे । एकाहमपि यः स्नातश्चातुर्मास्येनदोषभाक्
दिनत्रयञ्च यः स्नाति नर्मदायांसमाहितः । सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रधा
पक्षमेकं तु यः स्नाति गोदावर्यां दिनोदये ।
स भित्त्वा कर्मजं देहं याति विष्णोः सलोकताम् ॥ १७ ॥
तिलोदकेनयःस्नाति तथा चैवामलोदकैः । बिल्वपत्रोदकैश्चैवचातुर्मास्येनदोषभाक्
गङ्गां स्मरन्ति यो नित्यमुदपानसमीपतः । तद्गाङ्गेयंजलंजातं तेन स्नानं समाचरेत्
गङ्गाऽपिदेवदेवस्यचरणाङ्गुष्ठवाहिनी । पापघ्नीसासदा प्रोक्ता चातुर्मास्येविशेषतः
यतः पापसहस्राणि विष्णुर्दहति संस्मृतः ।
तस्मात्पादोदकं शार्ङ्गं चातुर्मास्ये धृतं शिवम् ॥ २१ ॥
चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ।
सर्वतीर्थाधिकं स्नानं विष्णुतेजोंशसङ्गतम् ॥ २२ ॥
स्नानं दशविधंकार्यं विष्णुनाममहाफलम् । सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात्
विनास्नानंतुयत्कर्मपुण्यकार्यमयंशुभम् । क्रियतेनिष्फलं ब्रह्मंस्तत्प्रगृह्णन्तिराक्षसाः
स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ।
धर्मान्मोक्षफलम्प्राप्य पुनर्नैवाऽवसीदति ॥ २५ ॥
ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः । सर्वदानप्रदाये च तेषां स्नानेनशुद्धता

कृतस्नानस्य च हरिर्हृद्याश्रित्यतिष्ठति । सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत्
सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च । चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम्

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणम्विना ।
उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ॥ २६ ॥

भानुसन्दर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकर्मसु । चातुर्मास्ये विशेषेणजलशुद्धिस्तुभाविनी

अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ।
मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र! विष्णुपादोदकेन वा ॥ ३१ ॥

नारायणाग्रतःस्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषुच । यः करोतिविशुद्धात्माचातुर्मास्ये विशेषतः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये स्नानमहत्त्ववर्णनंनाम
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

# द्वितीयोऽध्यायः

## नियमविधिमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पितृणांतर्पणं कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा । स्नानावसाने नित्यंचसुप्ते देवेमहाफलम्
सङ्गमेसरितां तत्र पितॄन्संतर्प्य देवताः । जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम्

गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ।
एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥ ३ ॥

श्रद्धांधर्मयुतांनाम स्मृतिपूतानिकारयेत् । कर्माणिसकलानीह चातुर्मास्येगुणोत्तरे
सत्सङ्गोद्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् । गोप्रदानंवेदपाठः सत्क्रियासत्यभाषणम्

गोभक्तिर्द्विजभक्तिश्चसदा धर्मस्य साधनम् । कृष्णेसुप्तेविशेषेण नियमोऽपिमहाफलः

नारद उवाच

नियमः कीदृशो ब्रह्मन् फलंच नियमेन किम् । नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवतितद्वद

ब्रह्मोवाच

नियमश्चश्रुरादीनांक्रियासुविविधासुच । कार्योविप्र वतापुंसातत्प्रयोगान्महासुखम्
एतत्षड्वर्गहरणं रिपुनिग्रहणं परम् । अध्यात्ममूलमेतद्धि परमं सौख्यकारणम् ॥
तत्र तिष्ठन्तिनियतं क्षमासत्यादयोगुणाः । विवेकरूपिणः सर्वे तद्धिष्णोःपरमंपदम्
कृतं भवति यज्ञोयं कृतकृत्यत्वमत्र तत् । स्यात्तस्य तत्पूर्वजानां येन ज्ञातमिदं पदम्
तन्मुहूर्त्तमपिध्यात्वा पापंजन्मशतोद्भवम् । भस्मसाद्याति विहितंनिरञ्जननिषेवणात्
प्रत्यहंसङ्कुचद्यस्य क्षुत्पिपासादिकःश्रमः । सयोगीनियमीनित्यं हरौसुप्तेविशिष्यते

चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत् ।

तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र संशयः ॥ १४ ॥

मनोनियमितंयेन सर्वेच्छासु सदागतम् । तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि
मनोनियमने यत्नः कार्यः प्रज्ञावतासदा । मनसा सुगृहीतेन ज्ञानामिरखिला ध्रुवम्
तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथावह्निश्च वारिणा । एकया क्षमया सर्वो नियमःकथितोबुधैः
सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः । सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः
धर्ममूलमहिंसा च मनसातां च चिन्तयन् । कर्मणा च तथावाचातत एतांसमाचरेत्
परस्वहरणं चौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः । चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम् ॥
अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदाबुधैः । अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥
स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञाचक्षुरहं न धीः । अहङ्कारो विषमिदं शरीरे वर्तते नृणाम्

तस्मात्स सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः ।

अनीहया जितक्रोधो जितलोभो भवेन्नरः ॥ २३ ॥

तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा । मोहं मानं पराजित्य शमरूपेण शत्रुणा
विचारेण शमोग्राह्यः सन्तोषेणतथाहिंसः । मात्सर्यमृजुभावेन नियच्छेत्समुनीश्वरः

चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम् । सर्वदा सर्वमासेषु भूतद्रोहं विवर्जयेत्
एतत्पापसहस्राणां मूलं प्राहुर्मनीषिणः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः
सर्वेषामेव भूतानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः । स एव हि पराभूतोयो भूतद्रोहकारकः
यस्मिन् धर्मे दयानैव स धर्मोदूषितो मतः । दयांविना न विज्ञानं न धर्मोज्ञानमेवच

तस्मात्सर्वात्मभावेन दयाधर्मः सनातनः ।
सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३० ॥

इतिश्री स्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये नियमविधिमाहात्म्य वर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः

### दानमहिमावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दानधर्मं प्रशंसन्ति सर्वधर्मेषु सर्वदा । हरौ सुप्ते विशेषेण दानं ब्रह्मत्वकारणम् ॥
अन्नं ब्रह्मइति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः
वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः । वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति
मणिरत्नप्रवालानां रूप्यहाटकवाससाम् । अन्येषामपि दानानामन्नदानं विशिष्यते
अन्नोदकप्रदानं च गोप्रदानं च नित्यदा । वेदपाठो वह्निहोमश्चातुर्मास्ये महाफलम्
वैकुण्ठपदवाञ्छा चेद्विष्णुना सह सङ्गमे । सर्वपापक्षयार्थाय चातुर्मास्येऽन्नदोभवन्
सत्यं सत्यं हि देवर्षे! मयोक्तं तव नारद । जन्मान्तरसहस्रेषु नाऽदत्तमुपतिष्ठते ॥ ७
तस्मादन्नप्रदानेन सर्वे हृष्यन्ति जन्तवः । देवा वै स्पृहयन्त्येनमन्नदानप्रदायिनम् ॥
आज्यं देयं च पात्रेषु श्रद्धया यज्ञमिश्रितम् । यज्ञदानकरो मर्त्यश्चातुर्मास्येन मानवः

भोजने गुरुविप्राणां घृतदानं च सत्क्रिया ।
एतानि यस्य तिष्ठन्ति चातुर्मास्येन मानवः ॥ १० ॥
सद्धर्मः सत्कथाचैव सत्सेवा दर्शनं सताम् । विष्णुपूजारतिर्दाने चातुर्मास्येषुदुर्लभा
पितॄनुद्दिश्ययोमर्त्यश्चातुर्मास्येऽन्नदोभवेत् । सर्वपापविशुद्धात्मापितृलोकमवाप्नुयात्
देवाः सर्वेऽन्नदानेन तृप्ता यच्छन्ति वाञ्छितम् ।
पिपीलिकाऽपि तद्गेहाद्भक्ष्यमादाय गच्छति ॥ १३ ॥
रात्रौ दिवा निषिद्धान्नो अन्नदानमनुत्तमम् । हरौ सुप्ते हि पापघ्नं न वार्यमपिशत्रुषु
चातुर्मास्ये दुग्धदानं दधितक्रं महाफलम् । जन्मकाले येनबद्धः पिण्डस्तद्दानमुत्तमम्
शाकप्रदाता नरकं यमलोकं न पश्यति । वस्त्रदः सोमलोकं च वसेदाभूतसंप्लवम् ॥
सुप्ते देवे यथाशक्ति ह्यन्यासु प्रतिमासु च । पुष्पवस्त्रप्रदानेन सन्तानं नैव हीयते
चन्दनागुरुधूपं च चातुर्मास्ये प्रयच्छति । पुत्रपौत्रसमायुक्तो विष्णुरूपो भवेन्नरः
सुप्ते देवे जगन्नाथे फलदानं प्रयच्छति । विप्राय वेदविदुषे यमलोकं न पश्यति ॥
विद्यादानं च गोदानं भूमिदानं प्रयच्छति । विष्णुप्रीत्यर्थमेवेह स तारयतिपूर्वजान्
गुडसैन्धवतैलादिमधुतिक्ततिलान्नदः । देवतायास्समुद्दिश्य तासां लोकं प्रयाति हि
चातुर्मास्ये तिलान् दत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ।
यवप्रदाता वसते वासवं लोकमक्षयम् ॥ २२ ॥
हूयेतहव्यंवह्नौ च दानंदद्याद्द्विजातये । गावः सुपूजिताः कार्याश्चातुर्मास्येविशेषतः
यत्किञ्चित्सुकृतं कर्मजन्मावधिसुसञ्चितम् । चातुर्मास्येगतेपात्रे विषुवेयत्प्रदीयते
प्रणश्यति क्षणादेव वचनाद्यस्तु प्रच्युतः । दिवसे दिवसे तस्यवर्द्धते च प्रतिश्रुतम्
तस्मान्नैव प्रतिश्राव्यं स्वल्पमप्याशु दीयते ।
तावद्विवर्द्धते दानं यावत्तन्न प्रयच्छति ॥ २६ ॥
योमोहान्मनुजोलोके यावत्कोटिगुणंभवेत् । ततोदशगुणावृद्धिश्चातुर्मास्येप्रदातरि
नरके पतनं तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश । अतस्तुसर्वदादेयंनरैर्यत्सुप्रतिश्रुतम् ॥ २८ ॥
अन्यस्मैन प्रदातव्यं प्रदत्तं नैवहारयेत् । चातुर्मास्येषुयःशय्यांद्विजाग्र्याय प्रयच्छति

वेदोक्तेन विधानेन न सयातियमालयम् । आसनंवारिपात्रं च भोजनंताम्रभाजनम्
चातुर्मास्ये प्रयत्नेन देयं वित्तानुसारतः । सर्वदानानि विप्रेभ्यो दद्येत्सुमे जगद्गुरौ
आत्मानं पूर्वजैःसार्द्धं समोचयतिपातकात् । गौर्भूश्चतिलपात्रंच दीपदानमनुत्तमम्
ददेद् द्विजातये मुक्तो जायते स ऋणत्रयात् ॥ ३२ ॥
स विश्वकर्ता भुवनेषु गोप्ता स यज्ञभुक् सर्वफलप्रदश्च ।
दानानि वस्तुष्वधिदैवतं च यस्मिन्समुद्दिश्य ददाति मुक्तः ॥ ३३ ॥
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये दानमहिमावर्णनं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

### इष्टवस्तुपरित्यागमहिमावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इष्टवस्तुप्रदोविष्णुर्लोकश्चेष्टरुचिः सदा । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चातुर्मास्येत्यजेच्चतत्
नारायणस्य प्रीत्यर्थं तदेवाक्षय्यमाप्यते ।
मर्त्यस्त्यजति श्रद्धावान् सोऽनन्तफलभाग् भवेत् ॥ १ ॥
काम्यभोजनसन्त्यागाज्जायते भूपतिर्भुवि । पालाशपत्रेभुञ्जानो ब्रह्मभूयस्त्वमश्नुते
ताम्रपात्रेन भुञ्जीत कदाचिद्वाग्रहीनरः । चातुर्मास्ये विशेषेणताम्रपात्रं विवर्जयेत्
अर्कपत्रेषु भुञ्जानोऽनुपमं लभतेफलम् । वटपत्रेषु भोक्तव्यं चातुर्मास्ये विशेषतः
अश्वत्थपत्रसम्भोगःकार्योबुधजनैःसदा । एकान्नभोजीराजास्यात्सकलेभूमिमण्डले
तथा च लवणत्यागात्सुभगोजायते नरः । गोधूमान्नपरित्यागाज्जायते जनवल्लभः
अशाकभोजी दीर्घायुश्चातुर्मास्येऽभिजायते ।

रसत्यागान्महाप्राणी मधुत्यागात्सुलोचनः ॥ ७ ॥
मुद्गत्यागाद्रिपुमृती राजमाषाद्धनाढ्यता ।
अश्वाप्तिस्तण्डुलत्यागाच्चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ ८ ॥
फलत्यागाद्बहुसुतस्तैलत्यागात्सुरूपता । ज्ञानी तु वारिसन्त्यागाद्बलं वीर्यं सदैव हि
मार्गमांसपरित्यागान्नरकं न च पश्यति । शौकरस्य परित्यागाद्ब्रह्मवासमवाप्नुते
ज्ञानं लावकसन्त्यागादाज्यत्यागे महत्सुखम् ।
आसवं सम्परित्यज्य मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ ११ ॥
सबलः कनकत्यागाद्रूप्यत्यागेन मानुषः । दधिदुग्धपरित्यागी गोलोकेसुखभाग्भवेत्
ब्रह्मा पायससन्त्यागात्क्षीरत्यागान्महेश्वरः ।
कन्दर्पोऽपूपसन्त्यागान्मोदकत्याजकः सुखी ॥ १२ ॥
गृहाश्रमपरित्यागी बाह्याश्रमनिषेवकः । चातुर्मास्येहरिप्रीत्यै न मातुर्जठरेशिशुः
नृपो मरीचसन्त्यागाच्छुण्ठीत्यागेन सत्कविः ।
शर्करायाः परित्यागाज्जायते राजपूजितः ॥ १५ ॥
गुडत्यागान्महाभूतिस्तथा दाडिमवर्जनात् । रक्तवस्त्रपरित्यागाज्जायते जनवल्लभः
पट्टकूलपरित्यागादक्षय्यं स्वर्गमाप्यते । माषान्नचणकान्नस्य त्यागान्नैव पुनर्भवः
कृष्णवस्त्रं सदा त्याज्यं चातुर्मास्ये विशेषतः । सूर्यसन्दर्शनाच्छुद्धिर्नीलवस्त्रस्यदर्शनात्
चन्दनस्य परित्यागाद्गान्धर्वं लोकमश्नुते । कर्पूरस्य परित्यागाद्यावज्जीवंमहाधना
कुसुम्भस्य परित्यागान्नैवपश्येद्यमालयम् । केशरस्यपरित्यागान्मनुष्योराजवल्लभः
यक्षकर्दमसन्त्यागाद्ब्रह्मलोकेमहीयते । ज्ञानीपुष्पपरित्यागाच्छय्यात्यागेमहत्सुखम्
भार्यावियोगंनाप्नोतिचातुर्मास्येन संशयः । अलीकवादसन्त्यागान्मोक्षद्वारमपावृतम्
परमर्मप्रकाशश्च सद्यः पापसमागमः । चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते परनिन्दांविवर्जयेत्
परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम् । परनिन्दामहद् दुःखं नतस्याःपातकं परम्
केवलं निन्दने चैवतत्पापं लभते गुरु । यथा श्रृणवान एव स्यात्पातकी न ततःपरः
केशसंस्कारसन्त्यागात्तापत्रयविवर्जितः । नखरोमधरोयस्तु हरौ सुप्ते विशेषतः

दिवसे दिवसे तस्य गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥ २७ ॥
सर्वोपायैर्विष्णुरेव प्रसाद्यो योगिध्येयः प्रवरैः सर्ववर्णैः ।
विष्णोर्नाम्ना मुच्यते घोरबन्धाच्चातुर्मास्ये स्मर्यतेऽसौ विशेषात् ॥ २८

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्य इष्टवस्तुपरित्यागमहिमा-वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः

### व्रतमहिमावर्णनम्

नारद उवाच

कदा विधिनिषेधौ च कर्तव्यौ विष्णुसन्निधौ ।
युष्मद्वाक्यामृतं पीत्वा तृप्तिर्मम न विद्यते ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

कर्कसंक्रान्तिदिवसे विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः ।
फलैरर्घः प्रदातव्यः शस्तजम्बूफलैः शुभैः ॥ २ ॥

जम्बूद्वीपस्य सञ्ज्ञेयं फलेन च विजायते । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रश्रद्धाधर्मसुसंयुतः
षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यत्र क्वापि भवेन्मम । तन्मया वासुदेवाय स्वयमात्मा निवेदितः
इति मन्त्रेणाऽर्घ्यम्

ततो विधिनिषेधौ च ग्राह्यौ भक्त्याहरेः पुरः । चातुर्मास्ये समायाते सर्वलोकमहासुखे
विधिर्वेदविधिः कार्यो निषेधो नियमो मतः । विधिश्चैव निषेधश्च द्वावेतौ विष्णुरेव हि
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्य एव जनार्दनः ।
विष्णोः कथा विष्णुपूजा ध्यानं विष्णोर्नतिस्तथा ॥ ३ ॥

सर्वमेव हरिप्रीत्या यः करोति स मुक्तिभाक् ।
वर्णाश्रमविधेर्मूर्त्तिः सत्यो विष्णुः सनातनः ॥ ८ ॥
चातुर्मास्ये विशेषेण जन्मकष्टादिनाशनम् । हरिरेव व्रताद् ग्राह्यो व्रतं देहेन कारयेत्
देहोऽयं तपसा शोध्यः सुप्ते देवे तपोनिधौ ।

नारद उवाच

किं व्रतं किं तपः प्रोक्तं ब्रह्मन्ब्रूहि सविस्तरम् ।
सुप्ते देवे मया कार्यं कृतं यच्च महाफलम् ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच

व्रतंविष्णुव्रतंविद्धिविष्णुभक्तिसमन्वितम् । तपश्चधर्मवर्त्तित्वंकृच्छ्रादिकमथापिवा
शृणुव्रतस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि प्रथमं तव । ब्रह्मचर्यव्रतं सारं व्रतानामुत्तमं व्रतम्
ब्रह्मचर्यं तपःसारं ब्रह्मचर्यं महत्फलम् । क्रियासु सकलास्वेव ब्रह्मचर्यं विवर्द्धयेत्
ब्रह्मचर्यप्रभावेण तप उग्रं प्रवर्त्तते । ब्रह्मचर्यात्परं नास्ति धर्मसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥
चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवेगुणोत्तरम् । महाव्रतमिदं लोके तन्निबोध सदाद्विज
नारायणमिदंकर्म यः करोति न लिप्यते । शतत्रयं षष्ठियुतं दिनमाहुश्च वत्सरे ॥
तत्र नारायणोदेवः पूज्यतेव्रतकारिभिः । सत्क्रियाममुकीदेवकारयिष्यामिनिश्चयः
कुरुते तद्व्रतं प्राहुः सुप्ते देवेगुणोत्तरम् । वह्निहोमोविप्रभक्तिःश्रद्धा धर्म मतिःशुभा
सत्सङ्गो विष्णुपूजा च सत्यवादो दया हृदि ।
आर्जवं मधुरा वाणी सच्चरित्रे सदा रतिः ॥ ११ ॥
वेदपाठस्तथास्तेयमहिंसाह्रीःक्षमादमः । निर्लोभताऽक्रोधता च निर्मोहोयमतारतिः
श्रुतिक्रियापरंज्ञानं कृष्णार्पितमनोगतिः । एतानि यस्य तिष्ठन्ति व्रतानिब्रह्मवित्तम
जीवन्मुक्तो नरः प्रोक्तो नैव लिप्यति पातकैः । व्रतं कृतं सकृदपिसर्वदंवह्निमहाफलम्
चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मचर्यादिसेवनम् । अव्रतेनगतं येषां चातुर्मास्यंसदानृणाम्
धर्मस्तेषां वृथा सद्भिस्तत्त्वज्ञैःपरीकीर्त्तितः । सर्वेषामेववर्णानां व्रतचर्यामहाफलम्
स्वल्पाऽपि विहिता वत्स! चातुर्मास्ये सुखप्रदा ।

सर्वत्र दृश्यते विष्णुर्व्रतसेवापरैर्नृभिः ॥ २५ ॥
चातुर्मास्ये समायाते पालयेत्तत्प्रयत्नतः ॥ २६ ॥
भजस्व विष्णुं द्विजवह्नितीर्थं वेदप्रभेदमयमूर्तिमजं विराजम् ।
यत्प्रसादाद् भवति मोक्षमहातरुस्थस्तापं नयास्यति स चार्कसमुद्भवन्तम्॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये व्रतमहिमावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः

### तपोमहिमावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तपः शृणुष्व विप्रेन्द्र विस्तरेण महामते !। यस्यश्रवणमात्रेणचातुर्मास्येऽघनाशनम्
षोडशेनोपचारेण विष्णोः पूजासदातपः । ततः सुप्ते जगन्नाथे महत्तप उदाहृतम्
करणं पञ्चयज्ञानां सततं तप एव हि । तन्निवेद्य हरौसैव चातुर्मास्ये महत्तपः
ऋतुयानं गृहस्थस्य तप एव सदैव हि । चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै तन्निषेव्यं महत्तपः
सत्यवादस्तपो नित्यं प्राणिनाम्भुवि दुर्लभम् ।
सुप्ते देवपतौ कुर्वन्ननन्तफलभाग्भवेत ॥ ५ ॥
अहिंसादिगुणानाञ्च पालनं सततं तपः । चातुर्मास्ये त्यक्तवैरं महत्तप उदाहृतम्
तप एव महन्मर्त्यः पञ्चायतनपूजनम् । चातुर्मास्ये विशेषेण हरिप्रीत्या समाचरेत्

नारद उवाच

पञ्चायतनसञ्ज्ञेयं कस्योक्तासा कथम्भवेत् । कथं पूजावकर्त्तव्याविस्तरेणाऽशुतद्वद

ब्रह्मोवाच

प्रातर्मध्याह्नपूजायां मध्येपूज्योरविःसदा। रात्रौ मध्ये भवेच्चन्द्रस्तद्वर्णकुसुमैः शुभैः
वह्निकोणे तु हेरम्बं सर्वविघ्नोपशान्तये। रक्तचन्दनपुष्पैश्च चातुर्मास्ये विशेषतः
नैर्ऋतं दलमास्थाय भगवान् दुष्टदर्पहा। गृहस्थस्यसदा शत्रुविनाशं विदधातिसः
नैर्ऋत्यकोणगं विष्णुं पूजयेत्सर्वदा बुधः। सुगन्धचन्दनैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्चातिशोभनैः
गोत्रजा वायुकोणे तु पूजनीया सदाबुधैः। पुत्रपौत्रप्रवृद्ध्यर्थं सुमनोभिर्मनोहरैः

ऐशाने भगवान् रुद्रः श्वेतपुष्पैः सदार्चितः।
अपमृत्युविनाशाय सर्वदोषापनुत्तये ॥ १४ ॥

जागर्ति महिमा तेषां ब्रह्माद्यैर्नैव लिख्यते। पञ्चायतनमेतद्धि पूज्यते गृहमेधिभिः
तप एतत्सदा कार्यं चातुर्मास्ये महाफलम्। पर्वकालेषु सर्वेषु दानंदेयंतपः सदा

चातुर्मास्ये विशेषेण तदनन्तं प्रजायते ॥ १६ ॥
शौचं तु द्विविधं ग्राह्यं बाह्यमाभ्यन्तरं सदा।
जलशौचं तथा बाह्यं श्रद्धया चान्तरम्भवेत् ॥ १७ ॥

इन्द्रियाणां ग्रहःकार्यस्तपसोलक्षणं परम्। निवृत्त्येन्द्रिलौल्यस्य चातुर्मास्येमहत्तपः
इन्द्रियाश्वान् सन्नियम्य सततंसुखमेधते। नरके पात्यते प्राणैस्तैरेवोत्पथगामिभिः

ममतारूपिणीं ग्राहीं दुष्टां निर्भर्त्स्य निग्रहेत्।
तप एव सदा पुंसां चातुर्मास्येऽधिगौरवम् ॥ २० ॥

काम एव महाशत्रुस्तमेकं निर्जयेद्दृढम्। जितकामा महात्मानस्तैर्जितंनिखिलञ्जगत्
एतच्च तपसोमूलं तपसो मूलमेवतत्। सर्वदा कामविजयः सङ्कल्पविजयस्तथा ॥
तदेव हि परं ज्ञानं कामो येन विजीयते। महत्तपस्तदेवाहुश्चातुर्मास्ये फलोत्तमम्

लोभः सदा परित्याज्यः पापं लोभे समास्थितम्।
तपस्तस्यैव विजयश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २४ ॥

मोहः सदा विवेकश्चवर्जनीयःप्रयत्नतः। तेन त्यक्तोनरोज्ञानी न ज्ञानीमोहसंश्रयात्
मद एव मनुष्याणां शरीरस्थोमहारिपुः। सदा स एव निग्राह्यः सुप्ते देवे विशेषतः
मानः सर्वेषु भूतेषु वसत्येव भयावहः। क्षमयातंविनिर्जित्य चातुर्मास्ये गुणाधिकः

मात्सर्यं निर्जयेत्प्राज्ञोमहापातककारणम् । चातुर्मास्ये जितं तेन त्रैलोक्यममरैःसह

अहङ्कारसमाक्रान्ता मुनयो विजितेन्द्रियाः ।

धर्ममार्गम्परित्यज्य कुर्वन्त्युन्मार्गजां क्रियाम् ॥ ३६ ॥

अहङ्कारं परित्यज्यसनतंसुखमाप्नुयात । चातुर्मास्येविशेषेणतस्य त्यागेमहाफलम्
एतद्धि तपसोमूलं यद्देतन्मनसस्त्यजेत । त्यक्तेष्वेतेषु सर्वेषु परब्रह्ममया भवेत ॥
प्रथमं कायशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत । शयने देवदेवस्य विशेषेण महत्तपः ॥
हरेस्तुशयनेनित्यमेकान्तरमुपोषणम् । यः करोति नरोभक्त्यानस गच्छेद्यमालयम्
हरिस्वापे नरो नित्यमेकभक्तंसमाचरेत् । दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफलंलभेत्
चातुर्मास्ये नरो यस्तु शाकाहारपरो यदि । पुण्यं क्रतुसहस्राणां जायतेनात्रसंशयः
चातुर्मास्येनरोनित्यंचान्द्रायणव्रतश्चरेत । मासेमासितत्पुण्यं वर्णितुं नैव शक्यते
सुप्ते देवे च पाराकंयःकरोतिविशुद्धधीः । नारी वा श्रद्धया युक्ताशतजन्माघनाशनम्
कृच्छ्रसेवीभवेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने । पापराशि विनिर्धूय वैकुण्ठे गणताम्व्रजेत
तप्तकृच्छ्रपरोयस्तु सुप्ते देवे जनार्दने । कीर्तिसम्प्राप्यवापुत्रं विष्णुसायुज्यतांव्रजेत

दुग्धाहारपरो यस्तु चातुर्मास्येऽभिजायते ।

तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति देहिनः ॥ ४० ॥

मिताम्नाशनकृद्वीरश्चातुर्मास्ये नरो यदि । निर्धूय सकलं पापं वैकुण्ठपदमाप्नुयात
एकान्नाशनकृन्मर्त्यो न रोगैरभिभूयते । अक्षारलवणाशी च चातुर्मास्ये न पापभाक
फलाहारो।महत्पापैर्निर्मुक्तो जायते ध्रुवम् । हरिमुद्दिश्य मासेषु चतुर्षु च न संशयः

कन्दमूलाशनकरः पूर्वजान सह आत्मना ।

उद्धृत्य नरकाद् घोराद्याति विष्णुसलोकताम् ॥ ४४ ॥

नित्याम्बुप्राशनकरश्चातुर्मास्ये यदाभवेत् । दिनेदिनेऽश्वमेधस्यफलमाप्नोत्यसंशयः
शीतवृष्टिसहो यस्तुचातुर्मास्येनरोभवेत् । हरिप्रीत्यैजगन्नाथस्तस्यात्मानंप्रयच्छति
महापाराकसञ्ज्ञं तु महत्तप उदाहृतम् । मासैकमुपवासेन सर्वं पूर्णं प्रजायते ॥ ४७
देवस्वापदिनादौ तु यावत्पवित्रद्वादशी । पवित्रद्वादशीपूर्वं यावच्छ्रवणद्वादशी ॥

महापाराकमेतद्धि द्वितीयं परिकीर्तितम् । श्रवणद्वादशी पूर्वं प्राप्ता चाश्विनद्वादशी
महापाराकं तृतीयं प्राज्ञैश्च समुदाहृतम् । आश्विनद्वादशी चादौ प्राप्ता देवसुबोधिनी
महापाराकमेतद्धि चतुर्थं परिकथ्यते । एतेषामेकमपि च नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥
यः करोति नरोभक्त्या स च विष्णुः सनातनः । इदंचसर्वतपसा महत्तपउदाहृतम्
दुष्करं दुर्लभं लोके चातुर्मास्येमखाधिकम् । दिवसेदिवसेतस्ययज्ञायुतफलंस्मृतम्
महत्तप इदं येन कृतं जगति दुर्लभम् । इदमेव महापुण्यमिदमेव महत्सुखम् ॥ ५४ ॥
इदमेव परं श्रेयो महापाराकसेवनम् । नारायणो वसेद्देहे ज्ञानं तस्य प्रजायते ॥ ५५
जीवन्मुक्तः स भवति महापातककारकः । तावद्गर्जन्ति पापानि नरकास्तावदेव हि

तावन्माया सहस्राणि यावन्मासोपवासकः ।
चातुर्मास्युपवासी यो यस्य प्राङ्गणिको भवेत् ॥ ५७ ॥
सोऽपि हत्यासहस्राणि त्यक्त्वा निष्कल्मषो भवेत् ।
य इदं श्रावयेन्मर्त्यो यः पठेत्सततं स्वयम् ॥ ५८ ॥
सोपि वाचस्पतिसमः फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ५९ ॥

इदं पुराणं परमं पवित्रं शृण्वन् गृणन् पापविशुद्धिहेतु ।
नारायणं तं मनसा विचिन्त्य मृतोऽभिगच्छत्यमृतं सुखाधिकम् ॥ ६० ॥
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासंहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोमहिमावर्णनंनाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

# सप्तमोऽध्यायः

## तपोधिकारषाडशोपचारदीपमहिमावर्णनम्

नारद उवाच

उपचारैः षोडशभिः पूजनं क्रियते कथम् । ते के षोडशभावाःस्युर्नित्यंये शयनेहरेः
एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे प्रजापते ।। तवप्रसादमासाद्यजगत्पूज्यो भवाम्यहम्

ब्रह्मोवाच

विष्णुभक्तिर्दृढा कार्या वेदशास्त्रविधानतः । वेदमूलमिदं सर्वं वेदोविष्णुःसनातनः
ते वेदा ब्राह्मणाधाराब्राह्मणाश्चाग्निदैवताः । अग्नौ प्रास्ताहुतिर्विप्रीयज्ञेदेवंयजन्त्सदा

जगत्सन्धारयेत्सर्वं विष्णुपूजारतः सदा ।

नारायणः स्मृतो ध्यातः क्लेशदुःखादिनाशनः ॥ ५ ॥

चातुर्मास्ये विशेषेण जलरूपगतो हरिः । जलादन्नानि जायन्ते जगतां तृप्तिहेतवे ॥
विष्णुदेहांशसम्भूतं तदन्नं ब्रह्म इष्यते । तदन्नं विष्णवे दत्त्वा ह्यावाहनपुरःसरम् ॥
पुनर्जन्मजराक्लेशसंस्कारैर्नाभिभूयते । आकाशसम्भवो वेद एक एव पुराऽभवत् ॥
ततो यजुः सामसञ्ज्ञामृग्वेदः प्रापभूयते । ऋग्वेदोभिहितःपूर्वं यजुःसहस्रशीर्षेतिच
षोडशर्चं महासूक्तं नारायणमयं परम् । तस्यापि पाठमात्रेण ब्रह्महत्यानिवर्त्तते ॥
विप्रः पूर्वं न्यसेद्देहे स्मृत्युक्तेन निजेबुधः । ततस्तु प्रतिमायां चशालग्रामेविशेषतः
क्रमेण च ततःकुर्यात्पश्चादावाहनादिकम् । आवाह्यसकलंरूपंवैकुण्ठस्थानसंस्थितम्
कौस्तुभेन विराजन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम् । दण्डहस्तं शिखासूत्रसहितंपीतवाससम्
महासन्यासिनंध्यायेच्चातुर्मास्येविशेषतः । एवं रूपमयंविष्णुं सर्वपापौघहारिणम्
आवाहयेच्च पुरतोध्यानसंस्थं द्विजोत्तम ।। ऋचा प्रथमयाचास्योङ्कारादिसमुदीर्णया
द्वितीयया चासनंचपार्षदैश्चसमन्वितम् । सौवर्णान्यासनान्येषांमनसापरिचिन्तयेत्
चिन्तनैर्भक्तियोगेन परिपूर्णं च तद्भवेत् । पाद्यं तृतीयया कार्यं गङ्गांतत्रस्मरेद्बुधः

अर्घः कार्यस्ततो विष्णोः सरिद्भिः सप्तसागरैः । पुनराचमनंकार्यममृतेनजगत्पतेः ॥
त्रिभिराचमनैः शुद्धिर्ब्राह्मणस्य निगद्यते ।
अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ १६ ॥
हृत्कण्ठतालुगाभिश्चयथावर्णं द्विजातयः । शुद्धेरन् स्त्रीचशूद्रश्चसकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः
पञ्चम्याऽऽचमनंकार्यंभक्तियुक्तेनचेतसा । भक्तिग्राह्योहृषीकेशोभक्त्यात्मानंप्रयच्छति
ततः सुवासितैस्तोयैः सर्वौषधिसमन्वितैः ।
शोगोदकैः स्वर्णघटैः स्नानं देवस्य कारयेत् ॥ २२ ॥
तीर्थोदकैः श्रद्धया च मनसा समुपाहृतैः । अश्रद्धया रत्नराशिःप्रदत्तो निष्फलोभवेत
वार्यपि श्रद्धया दत्तमनन्तत्वाय कल्पते । चातुर्मास्ये विशेषेण श्रद्धया पूयते नरः ॥
षष्ठ्या स्नानं ततः कार्यंपुनराचमनं भवेत् । दद्याच्चवाससीस्वर्णसहितेभक्तिशक्तित.
आच्छादितं जगत्सर्वं वस्त्रेणाऽऽच्छादितो हरिः ।
चातुर्मास्ये विशेषेण वस्त्रदानं महाफलम् ॥ २६ ॥
पुनराचमनं देयं यतये विष्णुरूपिणे । वस्त्रदानं च सप्तम्या कार्यं विष्णोर्मुनीश्वर
यज्ञोपवीतमष्टम्या तच्चाध्यात्मतया शृणु । सूर्यकोटिसमस्पर्शं तेजसा भास्वरं तथा
क्रोधाभिभूते विप्रेतुतडित्कोटिसमप्रभम् । सूर्येन्दुवह्निसंयोगाद्गुणत्रयसमन्वितम्
त्रयीमयं ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपं त्रिविष्टपम् । यस्यप्रभावाद्विप्रेन्द्र मानवो द्विज उच्यते ॥
जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विजउच्यते । शापोनुग्रहसामर्थ्यं तथाक्रोधःप्रसन्नता
त्रैलोक्यप्रवरत्वं च ब्राह्मणादेव जायते । न ब्राह्मणसमो बन्धुर्न ब्राह्मणसमागतिः ॥
न ब्राह्मणसमः कश्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे । दत्तोपवीते ब्रह्मण्ये सुरेदेवे जनार्दने ॥
सर्वं जगद्ब्रह्ममयं संजातं नात्र संशयः । नवम्या च सुलेपश्च कर्त्तव्यो यज्ञमूर्तये ॥
सुयक्षकर्दमैर्लिप्तो विष्णुर्येन जगद्गुरुः । तेनाप्यायितमेतद्धि वासितं यशसा जगत्
तेजसा भास्करो लोके देवत्वं प्राप्य मानवः ।
ब्रह्मलोकादिके लोके मोदते चन्दनप्रदः ॥ ३६ ॥
चन्दनालेपसुभगंविष्णुं पश्यन्तिमानवाः । न ते यमपुरंयान्ति चातुर्मास्ये विशेषतः

दशम्या पुष्पपूजा च भक्तिपूजा तथैवच । पुष्पे चैव सदा लक्ष्मीर्वसत्येवनिरन्तरम्
लक्ष्म्याऽसर्वत्रगामिन्या दोषो नैव प्रजायते । यथा सर्वमयो विष्णुर्नदोषैरनुभूयते
तथा सर्वमयी लक्ष्मीःसतीत्वान्नैवहीयते । प्रतिमासुच सर्वासु सर्वभूतेषु नित्यदा
मनुष्यदेवपितृषु पुष्पपूजा विधीयते । पुष्पैः सम्पूजितो येन हरिरेकः श्रिया सह
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं पूजिततेन वै जगत् । अतः सुश्वेतकुसुमैर्विष्णुं सम्पूजयेत्सदा

चातुर्मास्ये विशेषेण भक्तियुक्तः सदा शुचिः ।

भक्त्या सुविहिता ब्रह्मन् पुष्पपूजा नरैर्यदि ॥ ४३ ॥

यं यं काममभिध्यायेत्तस्यसिद्धिर्निरन्तरा । पुष्पैरुपचितंविष्णुं यद्यन्यैप्रणमन्तिच
तेषामप्यक्षया लोकाश्चातुर्मास्येधिकम्फलम् । एकादश्या धूपदानं कर्तव्यं यतयेहरौ

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्धवत्तमः ।

आघ्रेय सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ४६ ॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य धूपमागुरुजं शुभम् । दद्याद्भगवते नित्यं चातुर्मास्ये महाफलम्
कर्पूरचन्दनदलैः सितामधुसमन्वितम् । मासीजटाभिः सहितं सुप्ते देवेऽथ सत्तम
देवाघ्राणेन तुष्यन्ति पूयघ्राणहरं शुभम् । द्वादश्यांदीपदानंतु कर्त्तव्यंमुक्तिमिच्छुभिः
दीपः सर्वेषुकार्येषुप्रथमस्तेजसाम्पतिः । दीपस्तमौघनाशाय दीपःकान्तिप्रयच्छति
तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः । अयं पौराणजो मन्त्रो वेदर्षेन समन्वित.

दीपप्रदाने सकलः प्रयुक्तो नाशयेदघम् ॥ ५१ ॥

चातुर्मास्ये दीपदानं कुरुते यो हरेः पुरः । तस्य पापमयो राशिर्निमेषादपि दह्यते

तावत्पापानि गर्जन्ति तावद् बिभेति पातकी ।

यावन्न विहितो भास्वान्दीपो नारायणे गृहे ॥ ५३ ॥

दर्शनादपि दीपस्य सर्वसिद्धिर्नृणाम्भवेत् । कामनायां समुद्दिश्यदीपंकारयते हरौ
त्सास्तासिद्धयनिर्निर्विघ्नासुतेऽमन्ते गुणोत्तरम् । पञ्चायतनसंस्थेषु तथादेवेषुपञ्चसु

विहितं दीपदानञ्च चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ५६ ॥

एको विष्णुस्तुष्यते मुक्तिदाता नित्यं ध्यातः पूजितः संस्तुतश्च ।

यस्याऽभीष्टं यस्य गेहे शुभं वा तत्तद्देयं मुक्तिहेतोर्नृवर्यैः ॥ ५७ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारषोडशोपचार-
दीपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

## अष्टमोऽध्यायः

### देवायान्नप्रदानमहत्त्ववर्णनम्

ईश्वर उवाच

हरेर्दीपस्तु मद्दीपादधिकोऽयं प्रवर्तते । वैकुण्ठवास एवस्यान्ममैश्वर्यमवाञ्छितम्

कार्त्तिकेय उवाच

दीपोऽयंविष्णुभवनेमन्त्रवद्विहितोनरैः । सदाविशेषफलदश्चातुर्मास्येऽधिक कथम्

ईश्वर उवाच

विष्णुर्नित्याधिदैवं मे विष्णुः पूज्यः सदा मम ।
विष्णुमेनं सदा ध्याये विष्णुर्मत्तः परो हि सः ॥ ३ ॥

स विष्णुवल्लभोदीपःसर्वदापापहारकः । चातुर्मास्ये विशेषेण कामनासिद्धिकारकः
विष्णुर्दीपेन सन्तुष्टो यथा भवति पुत्रक । तथा यज्ञसहस्रैश्च वरं नैव प्रयच्छति ॥
स्वल्पव्ययेन दीपस्यफलमानन्तकंनृणाम् । अनन्तशयने प्राप्ते पुण्यसंख्या न विद्यते
तस्मात्सर्वात्मभावेन श्रद्धया संयुते न च । दीपप्रदानं कुरुते हरेः पापैर्न लिप्यते ॥
उपचारैः षोडशकैर्यतिरूपे हरौ पुनः । दीपप्रदाने विहिते सर्वमुद्द्योतितञ्जगत ॥

ब्रह्मोवाच

दीपादनन्तरं ब्रह्मन्नन्नस्यच निवेदनम् । त्रयोदश्या भक्तियुक्तैः कार्यं मोक्षपदस्थितैः
अमृतं सम्परित्यज्य यदन्नं देवताअपि । स्पृहयन्ति गृहस्थस्य गृहद्वारगताः सदा

हरौ सुप्ते विशेषेण प्रदेयः प्रत्यहं नरैः। फलैरर्घः प्रदातव्यस्तत्कालसमुद्भवैः॥
ताम्बूलवल्लीपत्रैश्च तदा पूगफलैःशुभैः। द्राक्षाजम्ब्वाम्रजफलैरक्षोटैर्दाडिमैरपि ॥१२॥
बीजपूरफलैश्चैव दद्यादर्घ्यं सुभक्तितः। शङ्खतोयं समादाय तस्योपरिफलं शुभम्
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र! केशवाय निवेदयेत्। पुनराचमनं देयमर्घ्यदानादनन्तरम् ॥ १४॥
आर्त्तिक्यञ्च ततः कुर्यात्सर्वपापविनाशनम्। चतुर्दश्यानमस्कुर्याद्विष्णवेयतिरूपिणे

पञ्चदश्या भ्रमः कार्यः सर्वदिक्षु द्विजैः सह।
सप्तसागरजैस्तोयैर्दत्तैर्यत्फलमाप्यते ॥ १६ ॥

ततोपदानाच्च हरेः प्राप्यते विष्णुवल्लभैः। चतुर्वारभ्रमीभिश्च जगत्सर्वञ्चराचरम् ॥
क्रान्तंभवतिविप्राग्र्यतत्तीर्थगमनादिकम्। षोडश्यादेवसायुज्यंचिन्तयेद्योगवित्तमः
आत्मनश्च हरेर्नित्यममूर्त्ति भावयेत्तदा। मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपत्वाद्वृद्धस्थोभवतियोगवित्
तस्मिन्दृष्टे निवर्त्तेतसदसद्रूपजाक्रिया। आत्मानं तेजसा मध्येचिन्तयेत्सूर्यवर्चसम्
अहमेव सदाविष्णुरित्यात्मनिविचारयन्। लभतेवैष्णवंदेहं जीवन्मुक्तोद्विजोभवेत्

चातुर्मास्ये विशेषेण योगयुक्तो द्विजो भवेत्।
इयं भक्तिः समादिष्टा मोक्षमार्गप्रदे हरौ ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्येदेवायार्घसमर्पणमहत्त्ववर्णनंनामा-
ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः

### तपोधिकारेसच्छूद्रकथनम्

ईश्वर उवाच

एतत्ते पूजनंविष्णोःषोडशोपायसम्भवम् । कथितं यद्विद्विजःकृत्वाप्राप्नोतिपरमंपदम्

तथाच क्षत्रियविशां करणान्मुक्तिरुत्तमा ।
शूद्राणां चाऽधिकारोऽस्मिन्स्त्रीणां नैव कदाचन ॥ २ ॥

कार्त्तिकेय उवाच

शूद्राणाञ्चतथा स्त्रीणां धर्मं विस्तरतोवद । केनमुक्तिर्भवेत्तेषां कृष्णस्याराधनंविना

ईश्वर उवाच

सच्छूद्रैरपि नो कार्या वेदाक्षरविचारणा । न श्रोतव्यान पाठ्याच पठन्नरकभाग्भवेत्
पुराणानां नैव पाठः श्रवणंकारयेत्सदा । स्मृत्युक्तंसुगुरोर्ग्राह्यं न पाठःश्रवणादिकम्

स्कन्द उवाच

सच्छूद्राः के समाख्यातास्तांश्च विस्तरतो वद ।
के सन्तः के च शूद्राश्च सच्छूद्रा नामतश्च के ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच

धर्मोढा यस्य पत्नी स्यात्स सच्छूद्र उदाहृतः । समानकुलरूपाच दशदोषविवर्जिता
उद्वोढावेदविधिनाससच्छूद्रःप्रकीर्त्तितः । अङ्गीवाऽव्यङ्गिनीशस्तामहारोगाद्यदूषिता
अनिन्दिता शुभकला वपुरोगविवर्जिता । वाधिर्यहीना चपला कन्या मधुरभाषिणी
दूषणैर्दशभिर्हीना वेदोक्तविधिना नरैः । विवाहिता च सापत्नीगृहिणीयस्यसर्वदा
सच्छूद्रः स तु विज्ञेयो देवादीनांविभागकृत् । पुण्यकार्येषुसर्वेषुप्रथमासा प्रकीर्त्तिता
तया सुविहितो धर्मः सम्पूर्णफलदायकः । चातुर्मास्ये विशेषेणतथासहगुणाधिकः
भार्यारतिःशुचिर्भृत्यादीनांपोषणतत्परः । श्राद्धादिकारकोनित्यमिष्टापूर्तप्रसाधकः

नमस्कारादिमन्त्रेण नामसङ्कीर्तनेन च । देवास्तस्य च तुष्यन्तिपञ्चयज्ञादिकैः शुभैः
स्नानं च तर्पणं चैव वह्निहोमोऽन्नदानकम् । ब्रह्मयज्ञोऽतिथेःपूजापञ्चयज्ञान्नसन्त्यजेत्
कार्यं स्त्रीभिश्च शूद्रैश्च [illegible] । पञ्चयज्ञैश्च सन्तुष्टा यथैषाम्पितृदेवताः
तथापतिव्रतायाश्च पतिशुश्रूषया सदा । पतिव्रताया देहे तु सर्वे देवाश्च सन्ति हि
अतस्तस्यां [illegible] । यदोभयोर्मतेपुण्येसन्तुष्टाःपितृदेवताः

कार्यादीनां च सर्वेषां मङ्गलन्तत्र नित्यदा ।

चातुर्मास्ये समायाते विष्णुभक्त्या तयोः शिवम् ॥ १६ ॥

समानजातिजःशूद्रः पत्नीं [illegible] । पूर्वाभताऽर्द्धभागीस्याद्द्वितीयस्यनकिञ्चन

अर्थकार्याधिकारोऽस्यास्तेन धर्मार्द्धधारिणी ।

स्वं स्वं कृतं सदैव स्यात्तयोःकर्म शुभाशुभम् ॥ २१ ॥

यानुगच्छति भर्तारं मृतं पुण्यात्मना द्विज । साध्वीसाहिपरिज्ञेयातयाचोद्ध्रियतेकुलम्
अन्यजातिसुतं चाथ धृतावापि विवाहिता । वैश्वानरस्य मार्गेणसातमुद्धरतेपतिम्
यथाजलाच्च जम्बालं कृष्यते धार्मिकैर्भिः । एवमुद्धरते साध्वीभर्त्तारंयानुगच्छति
अन्यजातिसमुद्भूताअन्येनविधुनायदि । तावुभौधर्मकार्येषुसन्त्याज्यौनित्यदामतौ
स्वंस्वंकर्मप्रकुर्वातां [illegible] । तस्माद्विप्राद्धीनाद्वासत्कुलाच्छूद्रसम्भवैः
धृता न कार्या सा पत्नी यत्करोति न वर्द्धते । तया सह कृतंपुण्यंवर्द्धते दशधोत्तरम्
अनन्ततृप्तिदंनैव तत्सुतेऽपि वा तथा । क्रयक्रीता च या कन्यादासी सापरिकीर्तिता
सच्छूद्रस्याधिकारोना कदाचिन्नैवजायते । याकन्या स्वयमुद्यम्य पित्रादत्तावरायच
विवाहविधिनोढा पितृदेवार्थसाधिनी । सुलक्षणाविनीताया विवेकादिगुणाशुभा
सच्चरित्रा पतिरतासा तेजोदानुवर्द्धते । विशुद्धकुलजा कन्या धर्मोढाधर्मचारिणी

सा पुनाति कुलं सर्वं मातृतः पितृतस्तथा ।

एष एव मया प्रोक्तः सच्छूद्राणां परो विधिः ॥ २२ ॥

अधोजातिसमुद्भूताः सच्छूद्रान्कमर्हानजाः । विवाहोदशधातेषां दशधापुत्रताभवेत्
चत्वार उत्तमाः प्रोक्ता विवाहा मुनिसत्तम । शेषाः सर्वप्रकृतिषु कथिताश्च पुराविदैः

प्राजापत्यस्तथाब्राह्मो दैवार्षौचातिशोभनाः । गान्धर्वश्चासुरश्चैव राक्षसश्चपिशाचकः
प्रातिभोघातिनश्चेति विवाहाःकथितादश । एतेहिहीनजातीनां विवाहाःपरिकीर्तिताः
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च । गूढोत्पन्नोपविद्धश्च कानीनश्च सहोढजः
क्रीतःपौनर्भवश्चापिपुत्रा दशविधाःस्मृताः । औरसादपिहीनाश्च तेपितेषांशुभावहाः

अष्टादशमिता नीचा प्रकृतीनां यथातथा ।

विधिर्नैव क्रिया नैव स्मृतिमार्गोऽपि नेव च ॥ ३६ ॥

तासांब्राह्मणशुश्रूषा विष्णुध्यानं शिवार्चनम् । अमन्त्रात्पुण्यकरणदानं देयंचवै सदा
न दानस्य क्षयो लोके श्रद्धया यत्प्रदीयते । अश्रद्धया शुचितया दानंवैरस्यकारणम्
अहिंसादिसमादिष्टो धर्मस्तासांमहाफलः । चातुर्मास्येविशेषेणत्रिदिवेशादिसेवया
सुदर्शनैस्तथा धर्मः सेव्यतेह्यविरोधिभिः । सच्छूद्रैर्दानपुण्यैश्च द्विजशुश्रूषणादिभिः

वृत्तिश्च सत्यानृतजा वाणिज्यव्यवहारजा ।

अशीतिभागमादद्याद् द्विजाद्वार्धुषिकः शते ॥ ४४ ॥

सपादभागवृद्धा तु क्षत्रियादिषु गृह्यते । एवं न बन्धो भवति पातकस्य कदाचन

प्रातः कर्म सुरेशानं मध्याह्ने द्विजसेवनम् ।

अपराह्णेऽथ कार्याणि कुर्वन्मर्त्यः सुखी भवेत् ॥ ४६ ॥

गृहस्थैश्च सदा भाव्यं यावज्जीवं क्रियापरैः । पञ्चयज्ञरतैश्चैवातिथिद्विजसुपूजकैः
विष्णुभक्तिरतैश्चैव वेदमन्त्रविपाठकैः । सततं दानशीलैश्च दीनार्तजनवत्सलैः
क्षमादिगुणसंयुक्तैर्द्वादशाक्षरपूजकैः । षडक्षरमहोद्गारपरमानन्दपूरितैः ॥ ४६ ॥
स्वपत्न्यैः सदाचारैः सता शुश्रूषणैरपि । विमत्सरैःसदास्थेयंतापक्लेशविवर्जितैः
प्रव्रज्यावर्जनैरेवं सच्छूद्रैर्धर्मतर्जितैः । तोषणं सर्वभूतानां कार्यं वित्तानुसारतः
सदाविष्णुशिवादीनांयेभक्तास्तेनरा सदा । देववद्विदीव्यन्तिचातुर्मास्येविशेषतः

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे ईश्वरकुमारसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपो-
धिकारेसच्छूद्रकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

# दशमोऽध्यायः

## अष्टादशप्रकृतीनाम्वर्णनम्

### नारद उवाच

अष्टादश प्रकृतयः का वदस्व पितामह । वृत्तिस्तासां च कोधर्मःसर्वंविस्तरतो मम

### ब्रह्मोवाच

मज्जन्माऽभूद्भगवतोनाभिपङ्कजकोशतः । स्वकालपरिमाणेनप्रबुद्धस्यजगत्पतेः ॥ २
ततो बहुतिथे काले केशवेन पुरा स्मृतः । स्रष्टुकामेन विविधाः प्रजामनसिराजसीः
अहं कमलजस्तत्र जातः पुत्रश्चतुर्मुखः । उदरं नाभिनालेन प्रविश्याथव्यलोकयम्
तत्र ब्रह्माण्डकोटीनांदर्शनंमेऽभवत्पुनः । विस्मयाच्चिन्तयानस्य सृष्ट्यर्थमभिधावतः
निर्गम्य पुनरेवाहं पद्मनालेन यावता । बहिरागां विस्मृतं तत्सर्वंसृष्ट्यर्थकारणम्
पुनरेव ततोगत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः । नाभिनालेन निर्गत्यविस्मृतेनान्तरात्मना
तदाहं जडवज्जातोवागुवाचाऽशरीरिणी । तपस्तप महाबुद्धे ! जडत्वंनोचितंतव ॥
दशवर्षसहस्राणि ततोऽहं तप आस्थितः । पुनराकाशजा वाणीमामुवाचाविनश्वरा
वेदरूपाश्रिता पूर्वमाविर्भूतातपोबलात् । ततो भगवतादिष्टः सृज त्वं बहुधाःप्रजाः
राजसं गुणमाश्रित्य भूतसर्गमकल्मषम् । मनसा मानसी सृष्टिःप्रथमंचिन्तितामया
ततोवैब्राह्मणाजातामरीच्यादिमुनीश्वराः । तेषांकनीयांस्त्वं जातोज्ञानवेदान्तपारगः

कर्मनिष्ठाश्च ते नित्यं सृष्ट्यर्थं सततोद्यताः ।
निर्व्यापारो विष्णुभक्त एकान्तब्रह्मसेवकः ॥ १३ ॥

निर्ममोनिरहङ्कारो ममत्वं मानसः सुतः । क्रमान्मया तु तेषां वै वेदरक्षार्थमेव च
प्रथमामानसीसृष्टिर्द्विजात्यादिविनिर्मिता । ततोऽहमाङ्गिकींसृष्टिंसृष्टवांस्तत्रनारद
मुखाच्चब्राह्मणाजाताबाहुभ्यःक्षत्रियाःमम । वैश्याऊरुसमुद्भूताःपद्भ्यांशूद्राबभूविरे
अनुलोमविलोमाभ्यां क्रमाच्चक्रमयोगतः । शूद्रादधोऽधोजाताश्च सर्वे पादतलोद्भवाः

ताः सर्वास्तु प्रकृतयो मम देहांशसम्भवाः ।

नारद! त्वं विजानीहि तासां नामानि वच्मि ते ॥ १८ ॥

ब्राह्मणः क्षत्त्रियोवैश्यस्त्रय एव द्विजातयः । वेदास्तपोऽध्ययनं च यजनं दानमेव च
वृत्तिरध्यापनाच्चैवतथास्वल्पप्रतिग्रहात । विप्र समर्थस्तपसा यद्यपिस्यात्प्रतिग्रहे
तथापि नैवगृह्णीयात्तपोरक्षायतः सदा । वेदपाठो विष्णुपूजा ब्रह्मध्यानमलोभता

अक्रोधता निर्ममत्वं क्षमामारत्वमार्यता ।

क्रियातत्परता दानक्रियासत्यादिभिर्गुणैः ॥ २२ ॥

भूषितो यो भवेन्नित्यं स विप्र इतिकथ्यते । क्षत्त्रियेण तपः कार्यं यजनं दानमेवच
वेदपाठो विप्रभक्तिरेषां शस्त्रेण जीवनम् । स्त्रीबालगोब्राह्मणार्थे भूम्यर्थेस्वामिसङ्कटे
सम्प्राप्ते शरणेचैव पीडितानांच शब्दिते । आर्तत्राणपरार्थे च क्षत्त्रिया ब्रह्मणाकृताः
धनवृद्धिकरो वैश्यः पशुपाली कृषीवलः । रसादीनां च विक्रेता देवब्राह्मणपूजकः
अर्थवृद्धिकरोऽयाजाद्यन्नकर्मादिकारकः । दानमध्ययनं चेति वैश्यत्रस्तिरुदाहृता ॥२७

एतान्येव ह्यमन्त्राणि शूद्रः कारयते सदा ।

नित्यं षड्दैवतं श्राद्धं हन्तकारोऽग्नितर्पणम् ॥ २८ ॥

देवद्विजातिभक्तिश्च नमस्कारेण सिध्यति ।

शूद्रोऽपि प्रातरुत्थाय कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ २९ ॥

विष्णुभक्तिमयाञ्श्लोकान् पठन्विष्णुत्वमाप्नुयात् ।

वार्षिकव्रतकृन्नित्यं तिथिवाराधिदैवतम् ॥ ३० ॥

अन्नदः सर्वजीवानां गृहस्थःशूद्र ईरितः । अमन्त्राण्यपि कर्माणि कुर्वन्नेवहिमुच्यते
चातुर्मास्यव्रतकरः शूद्रोऽपिहरितांव्रजेत् । शिल्पी च वर्धकश्चैवकाष्ठकारःप्रजापतिः
चर्मकश्चित्रकश्चैव सूत्रको रजकस्तथा । गन्छकस्तन्तुकारश्च चाक्रिकश्चर्मकारकः

मूनिकोऽध्वनिकश्चैव कैह्विको मत्स्यघातकः ।

ग्रौनामिकस्तु चाण्डालः प्रकृत्याऽष्टादशैव ते ॥ ३४ ॥

शिल्पिनः स्वर्णकारश्च दारुकःकांस्यकारकः ।

काण्डुकःकुम्भकारश्च प्रकृत्या उत्तमाश्च षट् ॥ ३५ ॥
खरवाह्युष्ट्रवाही च हयवाही तथैव च । गोपाल इष्टकाकारो अधमाधमपञ्चकम् ॥
रजकश्चर्मकारश्च नटोबुरुड एव च । कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः
योयस्ययहीनोवर्णेन पचान्मादधमोनरः । सर्वासांप्रकृतीनां च उत्तमामध्यमाःसमाः

भेदास्त्रयः समाख्याता विज्ञेयाःस्मृतिनिर्णयात् ।
शिल्पिनः सप्त विज्ञेया उत्तमाः समुदाहृताः ॥ ३६ ॥

स्वर्णकृत्कम्बुकश्चैव तन्दुलीपुष्पलावकः । ताम्बूली नापितश्चैव मणिकारश्चसप्तधा
न स्नानं देवताहोमस्तपो नियम एव च । न स्वाध्यायवषट्कारौनचशुद्धिर्विवाहिता

एतासां प्रकृतीनां च गुरुपूजा सदोदिता ।
विप्राणां प्राकृतो नित्यं दानमेव परो विधिः ॥ ४२ ॥

सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणांमहामुने !। सर्वासांप्रकृतीनां च विष्णुभक्तिःसदाशुभा
इति ते कथितं सर्वंयथाप्रकृतिसम्भवन । कथां शृणु महापुण्यांशूद्रःशुद्धिमगाद्यथा

इदं पुराणं परमं पवित्रं विशुद्धधीर्यस्तु शृणोति वा पठेत ।
विधूय पापानि पुरार्जितानि स याति विष्णोर्भवनं क्रियापरः ॥ ४५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये प्रकृतिकथनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

# एकादशोऽध्यायः

## पैजवनोपाख्यानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शूद्रः पैजवनो नाम गार्हस्थ्याच्छुद्धिमानसवान् । धर्ममार्गाविरोधेन तन्निबोधमहामते
आसीत्पैजवनः शूद्रः पुरा त्रेतायुगे किल । स धर्मनिरतःख्यातोविष्णुब्राह्मणपूजकः
न्यायागतधनो नित्यं शान्तः सर्वजनप्रियः ।
सत्यवादी विवेकज्ञस्तस्य भार्या च सुन्दरी ॥ ३ ॥
धर्मोढा वेदविधिना समानकुलजा शुभा । पतिव्रता महाभागा देवद्विजहिते रता ॥
काश्यां सम्बन्धिता बाला वैजयन्त्यां विवाहिता ।
सा धर्माचरणे दक्षा वैष्णवव्रतचारिणी ॥ ५ ॥
भर्त्रासहतथासम्यक्विक्रीडेसुविनीतवत् । सोऽपिरेमेतयाकालेहस्तिन्येव महागजः
अर्थाप्तिः पूर्वपुण्येनजातातस्य महात्मनः । वाणिज्यं स्वजनैर्नित्यं स्वदेशपरदेशयोः
कारयत्यर्थजातैश्च परकीयस्वकीयजैः । एवमर्थश्च बहुधा सञ्जातो धर्मदर्शिनः ॥८॥
पुत्रद्वयं च सञ्जातं पितुः शुश्रूषणेरतम् । तस्य पुत्राः पितुर्भक्ता द्रव्यादिमदवर्जिताः
पितृवाक्यरताःश्रेष्ठाःस्वधर्माचारशोभनाः । पित्रोःशुश्रूषणादन्यन्नाभिनन्दन्तिकिञ्चन
ते सम्बन्धैःसुसम्बद्धाः पित्रा धर्मार्थदर्शिना ।
तत्पत्न्यो मातृपित्रर्चां कारयन्त्यनिवारितम् ॥ ११ ॥
ऋद्धिमद्भवनं तस्य धनधान्यसमन्वितम् । सोऽपिधर्मरतो नित्यंदेवतातिथिपूजकः
गृहागतो न विमुखो यस्य यातिकदाचन । शीतकाले धनं प्रादादुष्णकालेजलान्नदः
वर्षाकाले वस्त्रदश्च बभूवान्नप्रदः सदा । वापीकूपतडागादि प्रपादेवगृहाणि च ॥१४
कारयत्युचिते काले शिवविष्णुव्रतस्थितः । इष्टधर्मस्तुवर्णानां समाचीर्णोमहाफलः
अन्येषां पूर्वधर्माणां नेत्रांपूतकरः सदा । स बभूवधनाढ्योऽपि व्यसनैर्न समाश्रितः

विष्णुभक्तिरतो नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः। एकदागालवमुनिःशिष्यैर्बहुभिरावृतः
ब्रह्मध्यानरतः शान्तस्तपोनिष्ठो महाव्रती । अभ्याजगाम शूद्रस्य गेहे पैजवनस्य सः

स वाग्भिर्मधुभिस्तस्य ह्यभ्युत्थानासनादिभिः ।
उपचारैः पुनर्युक्तः कृतार्थं इव मानयन् ॥ १९ ॥

अद्य मे सफलंजन्मजातंजीवितमुत्तमम् । अद्य मे सफलोधर्मःसकुलश्चोद्धृतस्त्वया
मम पापसहस्राणि दृष्ट्या दग्धानि ते मुने !। गृहं ममगृहस्थस्यसकलंपावितंत्वया
तस्य भक्त्या प्रसन्नोऽभूद्गतमार्गपरिश्रमः । उवाच मुनिशार्दूलःसच्छूद्रंतंकृताञ्जलिम्

कच्चित्ते कुशलं सौम्य! मनोधर्मे प्रवर्त्तते ।
अर्थानुबन्धाः सततं बन्धुदारसुतादयः ॥ २३ ॥

गोविन्दे सततंभक्तिस्तथादानेप्रवर्तते । धर्मार्थकामकार्येषुसप्रभावंमनस्तव ॥ २४ ॥
विष्णुपादोदकं नित्यं शिरसाधार्यते न वा । पादोद्भवं च गङ्गोदं द्वादशाब्दफलप्रदम्
चातुर्मास्ये विशेषेण तत्फलं द्विगुणंभवेत् । हरिभक्तिर्हरिकथा हरिस्तोत्रं हरेर्नतिः
हरिध्यानं हरेः पूजा सुमे देवे च मोक्षकृत् । एवं ब्रुवाणं समुनिं पुनराह नतिं गतः

भवद्दृष्ट्या श्रमफलंमेतज्जातं न संशयः ।
तथापिश्रोतुमिच्छामि तव वाणीमनामयीम् ॥ २८ ॥

भवादृशाना गमनं सर्वार्थेषु प्रकल्प्यते । ततस्तौ सुमुदायुक्तौ सञ्जातौ हृष्टचेतसौ
मुनिर्पैजवनो नाम सच्छूद्रः प्राह सम्मतः । किमागमनकृत्यं ते कथयस्वप्रसादतः
को वा तीर्थप्रसङ्गश्चचातुर्मास्येसमीपगे । गालवःप्राहसच्छूद्रंधार्मिकंसत्यवादिनम्
मम तीर्थावसक्तस्य मासा बहुतरा गताः । इदानीमाश्रमं यास्येचातुर्मास्ये समागते
आषाढशुक्लैकादश्यांकरिष्येनियमंगृहे । नारायणस्यप्रीत्यर्थं श्रेयोर्थञ्चात्मनस्तथा

प्रत्युवाच मुनिर्धर्मान् विनयानतकन्धरम् ।

पैजवन उवाच

मामनुग्रहजां बुद्धिं ब्रूहि त्वं द्विजपुङ्गव !। वेदेऽधिकारो नैवास्ति वेदसारजपस्य वा

पुराणस्मृतिपाठस्य तस्मात्किञ्चिद्वदस्व मे ।

तस्यात्मसदृशं किञ्चिन्नास्ति रूपं महाफलम् ॥ ३५ ॥
चातुर्मास्ये विशेषेण मुक्तिसन्साधकं वद ॥ ३६ ॥

गालव उवाच

शालग्रामगतं विष्णुश्चक्राङ्कितपुटं सदा । येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेषांभक्तिस्त्वदूरतः
शालग्रामे मनोयस्ययत्किञ्चित्क्रियतेशुभम् । अक्षय्यतद्भवेन्नित्यंचातुर्मास्येविशेषतः
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावतीशिला । उभयोः सङ्गमःप्राप्तोमुक्तिस्तस्यनदुर्लभा
शालग्रामशिलायस्यांभूमौसम्प्रउयते नृभिः । पञ्चक्रोशंपुनात्येषाअपिपापशतान्वितैः
तैजसं पिण्डमेतद्धि ब्रह्मरूपमिदं शुभम् । यस्याः संदर्शनादेवसद्यः कल्मषनाशनम्
सर्वतीर्थानिपुण्यानि देवतायतनानि च । नद्यः सर्वा महाशूद्र! तीर्थत्वंप्राप्नुवन्तिहि
सन्निधानेन वै तस्याः क्रियाः सर्वत्र शोभनाः ।
व्रजन्ति हि क्रियात्वं च चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ४३ ॥

पूज्यतेभवने यस्य शालग्रामशिला शुभा । कोमलैस्तुलसीपत्रैर्विमुखस्तत्र वै यमः
ब्राह्मणक्षत्रियविशा सच्छूद्राणामथापि वा ।
शालग्रामाधिकारोऽस्ति न चाऽन्येषां कदाचन ॥ ४५ ॥

सच्छूद्र उवाच

ब्रह्मन् वेदविदांश्रेष्ठ! सर्वशास्त्रविशारद !। स्त्रीशूद्रादिनिषेधोऽयं शालग्रामे हि श्रूयते
मादृशस्तु कथं शालग्रामपूजाविधि वद ॥ ४७ ॥

गालव उवाच

असच्छूद्रगतं दास! निषेधंविद्धिमानद !। स्त्रीणामपिच साध्वीनानैवाभावःप्रकीर्तितः
मा भूत्संशयस्तेनात्र नाप्नुषे संशयात्फलम् । शालग्रामार्चनपराः शुद्धदेहाविवेकिनः
न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्येव पूजकाः । शालग्रामार्पितंमाल्यंशिरसाधारयन्तिये
तेषां पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ।
शालग्रामशिलाग्रे तु ये प्रयच्छन्ति दीपकम् ॥ ५१ ॥

तेषा सौरपुरे वासः कदाचिन्नैव जायते । शालग्रामगतं विष्णुं सुमनोभिर्मनोहरः

येऽर्चयन्ति महाशूद्र! सुप्ते देवे हरौ तथा ॥ ५२ ॥

पञ्चामृतेन स्नपनं ये कुर्वन्ति सदानराः । शालग्रामशिलायांचनतेसंसारिणो नराः

मुक्तेर्निदानममलं शालग्रामगतं हरिम् ।

हृदि न्यस्य सदा भक्त्या यो ध्यायति स मुक्तिभाक् ॥ ५४ ॥

तुलसीदलजां मालां शालग्रामोपरि न्यसेत् ।

चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

न तावत्पुष्पजामालाशालग्रामस्यवल्लभा । सर्वदातुलसीदेवीविष्णोर्नित्यंशुभाप्रिया

तुलसी वल्लभानित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ।

शालग्रामो महाविष्णुस्तुलसी श्रीर्न संशयः ॥ ५७ ॥

अतोवासितपानीयैः स्नाप्य चन्दनचर्चितैः । मञ्जरीभिर्युतंदेवंशालग्रामशिलाहरिम्

तुलसीसम्भवाभिश्च कृत्वा कामानवाप्नुयात ।

पत्रे तु प्रथमे ब्रह्मा द्वितीये भगवाञ्छिवः ॥ ५६ ॥

मञ्जर्यां भगवान्विष्णुस्तदेकत्रस्थथा तदा । मञ्जरीदलसंयुक्ता ग्राह्या बुधजनै. सदा

तां निवेद्य गुरौ भक्त्या जन्मादिक्षयकारणम् ।

शालग्रामे धूपराशिं निवेद्य हरितत्परः ॥ ६१ ॥

चातुर्मास्ये विशेषेण मनुष्यो नैव नारकी । शालग्रामं नरो दृष्ट्वापूजितं कुसुमैःशुभैः

सर्वपापविशुद्धात्मा याति तन्मयतां हरौ ।

यः स्तौत्यश्मगतं विष्णुं गण्डकीजलसम्भवम् ॥ ६३ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणैश्च सोपि विष्णुपदं व्रजेत् ।

शालग्रामशिलायाश्च चतुर्विंशतिसङ्ख्यकाः ॥

भेदाः सन्ति महाशूद्र ताञ्छृणुष्व महामते !॥ ६४ ॥

इमा द्वादशयो लोके च चतुर्विंशतिसङ्ख्यकाः ।

तासां च दैवतं विष्णुं नामानि च वदाम्यहम् ॥ ६५ ॥

स एव मूर्तश्चतुरुत्तराभिर्विंशद्भिरेकोभगवान्यथाऽऽद्यः ।

स एव सम्वत्सरनामलक्ष्मा स एव प्राणागतआविदेवः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

## द्वादशोऽध्यायः

### शालग्राममूर्त्युत्पत्तिवर्णनम्

पैजवन उवाच

एतान् भेदान् मम ब्रूहि विस्तरेण तपोधन ! । त्वद्वाक्यामृतपानेन तृषानैवप्रशाम्यति

गालव उवाच

शृणु विस्तरतो भेदान् पुराणोक्तान् वदामि ते ।

यान् श्रुत्वा मुच्यतेऽवश्यं मनुजः सर्वकिल्बिषात् ॥ २ ॥

पूर्वं तु केशवः पूज्यो द्वितीयो मधुसूदनः । सङ्कर्षणस्तृतीयस्तुततोदामोदरःस्मृतः पञ्चमो वासुदेवाख्यः षष्ठः प्रद्युम्नसञ्ज्ञकः । सप्तमोविष्णुस्तस्याष्टमो माधव एव च नवमोऽनन्तमूर्त्तिश्च दशमः पुरुषोत्तमः । अधोक्षजस्ततः पश्चाद्द्वादशस्तु जनार्दनः त्रयोदशस्तु गोविन्दश्चतुर्दशस्त्रिविक्रमः । श्रीधरश्च पञ्चदशो हृषीकेशस्तु षोडशः नृसिंहस्तुसप्तदशोविश्वयोनिस्ततः परम् । वामनश्चततःप्रोक्तस्ततोनारायणःस्मृतः पुण्डरीकाक्ष उक्तस्तु ह्युपेन्द्रश्चततःपरम् । हरिस्त्रयोविंशतिमःकृष्णश्चान्त्यउदाहृतः शालग्रामस्यभेदास्ते मयोक्तास्तवशूद्रज । मूर्तिभेदास्तथा प्रोक्ता एत एव महाधन मूर्त्तयस्तिथिनामन्यः स्युरेकादश्यःसदैवहि । सम्वत्सरेणपूज्यन्तेचतुर्विंशति मूर्त्तयः

देवाश्च ताराश्च तथा चतुर्विंशतिसङ्ख्यकाः ।

मासा मार्गशिरायाश्च मासार्द्धाः पक्षसञ्ज्ञकाः ॥ ११ ॥

अर्धांशसहिताश्चित्थं पूजयन् भक्तिमान् भवेत् । चतुर्विंशतिसङ्ख्याश्च चतुष्टयमुदाहृतम्
एतच्चतुष्टयं नृणां धर्मकामार्थमोक्षदम् । यः शृणोति नरो भक्त्या पठेद्वापि समाहितः
भूतसर्गस्य गोप्तासौ हरिस्तस्य प्रसीदति ॥ १४ ॥

इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये मृत्युत्पत्तिर्नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

# त्रयोदशोऽध्यायः

## पैजवनोपाख्यानेसतीदेहत्यागपूर्वकशिवपार्वतीविवाहवर्णनम्

पैजवन उवाच

शालग्रामशिलायाश्च जगदादिसनातनः । कथं पाषाणता प्राप्तोगण्डक्यातच्च मे वद
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे ! हरौ भक्तिर्दृढा भवेत् । भवन्तस्तीर्थरूपाहिदर्शनात्पापहारिणः
तीर्थामृतावगाहेन यथापवित्रता नृणाम् । भवद्वाक्यामृताज्जातातथामम न संशय.

गालव उवाच

इतिहासस्त्वयं पुण्यः पुराणेषु च पठ्यते । यथा सत्वभगवान्शालग्रामत्वमागतः
महेश्वरश्च लिङ्गत्वं कथयेऽहं तवानघ । पूर्वं प्रजापतिर्दक्षो ब्रह्मणोऽङ्गुष्ठसम्भवः ॥ '•
तस्याऽऽसीद्दुहिता साध्वी सती नाम्नी सुलक्षणा ।
हरेणोढा विधिज्ञेन वेदोक्तविधिना ततः ॥ ६ ॥

स चकार महायज्ञे हरद्वेष विमूढधीः । तेन द्वेषेणमहता सती प्रकुपिता भृशम् ॥
यज्ञवेद्यां समागम्य वह्निधारणया तदा । प्राणायामपरा भूत्वा देहोत्सर्गं चकारसा
पितृभागं परित्यज्य स्वभागेन हता सती । मनसा ध्यानमगच्छीतलं च हिमालयम्
यत्र यत्र मनो याति स्वकर्मवशगं मृतौ । अवतारस्तत्र तत्र जायते नात्र संशयः

दह्यमाना हि सा देवी हिमालयसुताऽभवत् ।
तत्र सा पार्वती भूत्वा तप उग्रं समाश्रिता ॥ ११ ॥

शिवभक्तिरता नित्यं हरव्रतपरायणा । भुङ्क्ते हिमवतः पुत्री मनो न्यस्य महेश्वरे ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते भगवान् भूतभावनः । अथाऽऽजगाम तं देशं विप्ररूपो महेश्वरः
तां ज्ञात्वा तपसाशुद्धांकर्मभावैःपरीक्षितैः । ततोदिव्यवपुर्भूत्वा करेजग्राहपार्वतीम्

तपसा निर्जितश्चास्मि करवाणि च किं प्रियम् ।
ततः प्राह महेशानं प्रमाणं मे पिता कुरु ॥ १५ ॥

सप्तर्षीन् स तथोक्तस्तु प्रेषयामास शङ्करः । ते तत्रगत्वा समयं वक्तुं हिमवतासह
निवेद्यच महेशानं प्रेषिता मुनयोययुः । ततोलग्नदिने देवा महेन्द्रादय ईश्वरम् ॥ १७
ब्रह्मविष्णुपुरोगैश्च पुरोधायाग्निमाययुः । योगसिद्धाः समायान्तं वरवेषं वृषध्वजम्
हिमवान् पूजयामास मधुपर्कादिकैः शुभैः । उपचारैर्मुदायुक्तोमानयन् कृतकृत्यताम्

वेदोक्तेन विधानेन तां कन्यां समयोजयत् ।
पाणिग्रहेण विधिना द्विजातिगणसम्वृतः ॥ २० ॥

वह्निप्रदक्षिणीकृत्य गिरीशस्तदनन्तरम् । दानकाले च गोत्रादि पृष्टोलज्जापरो हरः
ब्रह्मणोवचनात्तेन विधिशेगोचशेषतः । चरुप्राशनकाले तु पञ्चवक्त्रप्रकाशकृत् ॥
सहितः सकलैर्देवैः कुतूहलपरायणैः । गिरिजार्थं समायुक्तो वरः सोऽपि महेश्वरः ॥

नवकोटिमुखान्दृष्ट्वा साट्टहासो जनोऽभवत् ।
वैदिकी श्रुतिरित्युक्ता शिव! त्वं स्थिरतां व्रज ॥ २४ ॥

लज्जितासा परित्यागं नाकरोत्पञ्चजन्मसु । भर्तागमसितापाङ्गी हरमेवाभ्यगच्छत
देवानां पर्वतानाञ्च प्रहृष्टं सकलं कुलम् । ततोविवाहे सम्पूर्णे हरोगात्कौतुकौकसि
रणानां चापि साम्निध्येमनामर्पयदम्बिकाम् । पारिवर्हंततोगत्वाशैलेनसविसर्जितः

मानितः सत्कृतश्चापि मन्दरालयमभ्यगात् ।
विश्वकर्मा ततस्तस्यक्षणेन मणिमद् गृहम् ॥ २८ ॥

नर्ममे देवदेवस्यस्वेच्छावर्द्धिष्णुमन्दिरम् । सर्वर्द्धिमत्प्रशस्ताभंमणिविद्रुमभूषितम्

स्थूणासहस्रसंयुक्तं मणिवेदि मनोहरम् । गणा नन्दिप्रभृतयोयस्यद्वारिसमाश्रिताः
त्रिनेत्राः शूलहस्ताश्च बभुःशङ्कररूपिणः । वाटिका अस्यपरितःपारिजाताःसहस्रशः
कामधेनुर्मणिर्दिव्यो यस्यद्वारिसमाश्रितौ । तस्मिन्मनोहरतरे कामवृद्धिकरे गृहे ॥
वसत पार्वतीसार्द्धं कामोद्दृष्टिपथं ययौ । वायुरूपः शिवं दृष्ट्वा कामः प्रोवाचशङ्करम्
नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज !। नमस्ते गणनाथाय पाहि नाथ ! नमोस्तुते
त्वयाविरहितं लोकं शववत्सदृश्यते महौ । न त्वया रहितकिञ्चिद्दृश्यते सचराचरे
त्वं गोप्ता त्वं विधाता च लोकसंहारकारकः । कृपां कुरुमहादेव! देहदानं प्रयच्छ मे

ईश्वर उवाच

यन्मया त्वं पुरादग्धः पार्वतीपुरतोऽनघ । तस्या एव समीपे च पुनर्भवस्वदेहवान्
एवमुक्तस्ततः कामः स्वशरीरमुपागतः । ववन्दे चरणौशूद्र! विनयावनतोऽभवत् ॥
ततो ननाम चरणौ पार्वत्याः संप्रहृष्टवान् । लब्धप्रसादस्तुतयोः समीपाद्भुवनत्रये
चचारसुमहातेजा महामोहबलान्वितः । पुष्पधन्वा पुष्पबाणस्त्वाकुञ्चितशिरोरुहः
सदाघूर्णितनेत्रश्च तयोर्देहमुपाविशत् । दिव्यासवैर्दिव्यगन्धैर्दिव्यमाल्यादिभिस्तथा
सख्यः सम्भोगसमये परिचक्रुः समन्ततः । एवंप्रक्रीडतस्तस्य वत्सराणांशतं ययौ
साग्रमेका निशायद्वन्मैथुने सक्तचेतसः । एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारकप्रद्रुता भयात्
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः स्तुत्वा तं शरणं गताः ।

देवा ऊचुः

तारकोसौ महारौद्रस्त्वया दत्तवरः पुरा ॥ ४४ ॥
विजित्य तरसा शक्रं भुङ्क्ते त्रैलोक्यपूजितः ।
वधोपायो यथा तस्य जायते त्वं कुरु स्वयम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मोवाच

मयादत्तवरश्चासौ मयैवोच्छिद्यते न हि । स्वयं सम्वर्ध्यकटुकं छेत्तुंकोपिनचार्हति
तस्मात्तस्यवधोपायंकथयामिमहात्मनः । पार्वत्यांयोमहेशानात्सुतुरुत्पत्स्यतेहिसः
दिनसप्तकतुभूत्वा तारकं संहनिष्यति । इतिवाक्यं तु ते श्रुत्वामन्दरंलोकसुन्दरम्

ब्रह्मलोकात्समाजग्मुः पीडिता दैत्यदानवैः ॥ ४९ ॥
तत्रनन्दिप्रभृतयो गणाःशूलभृत पुरः । गृहद्वारे ह्यपावृत्य तस्थुः संयतचेतसः ॥ ५०
देवाश्च दुःखातुरचेतसो भृशं हतप्रभास्त्यक्तगृहाश्रयाखिलाः ।
संप्राप्य मासांश्चतुरस्तपःस्थिता देवे प्रसुप्ते हरतोषणं परम् ॥ ५१ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने शिवपार्वती-विवाहवर्णनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः

### पैजवनोपाख्याने इन्द्रादीनांशापप्रदानवर्णनम्

गालव उवाच

शक्रादयस्तु देवेशा दुःखसन्तप्तमानसाः । ईश्वरादर्शनभ्रान्तमनःकर्मेन्द्रियात्मकाः
नद्यापुर्लोकनाथंते कृष्णायःप्रतिमाकृतिम् । तपसाऽऽराधयामासुःसर्वभूतहृदिस्थितम्
कपर्दशिरसं देवं शूलहस्तं पिनाकिनम् । कपालखट्वाङ्गधरं दशहस्तं किरीटिनम्
उमासहितमीशानं पञ्चवक्त्रं महाभुजम् । कर्पूरगौरदेहाभं सितभूतिविभूषितम् ॥
नागयज्ञोपवीतेन गजचर्मसमन्वितम् । कृष्णसारत्वचा चापिकृतप्रावरणं विभुम्
कृतध्यानाः सुरास्तत्र वृक्षाधारे समाश्रिताः ।
व्रतचर्यां समाश्रित्य प्रचक्रुस्तप उत्तमम् ॥ ६ ॥
षडक्षरेण मन्त्रेण शैवेन विहितं सुराः ।

शूद्र उवाच

व्रतचर्या त्वया या सा प्रोक्ता सञ्जायते कथम् ॥ ७ ॥
ब्रह्मन्! विस्तरतो ब्रूहि न तृप्ये ते वचोऽमृतैः ॥ ८ ॥

गालव उवाच

जपन्भस्मचखट्वाङ्गं कपालंस्फाटिकं तथा। मुण्डमालांपञ्चवक्त्रमर्द्धचन्द्रंचमूर्द्धनि
चित्रकृत्तिपरीधानं कौपीनकुण्डलद्वयम्। घण्टायुग्मंत्रिशूलं च सूत्रं चर्यास्वरूपकम्
अमीभिर्लक्षणैर्लक्ष्यं मयोक्तं तव शूद्रज !। अनेनविधिना सर्वे देवा वह्निपुरोगमाः॥
सर्वे आराधयामासुः सर्वोपायैर्वरप्रदम्। चातुर्मास्ये च संपूर्णे संपूर्णे कार्त्तिकेऽमले

चीर्णव्रतान् सुरान् दृष्ट्वा विशुद्धांश्च महेश्वरः।
मतिं तेषां ददौ तुष्टो जीवात्मा सर्वभूतदृक्॥ १३॥

शतरुद्रीयजाप्येन विधानसहितेन च। ध्यानेन दीपदानेन चातुर्मास्ये तुतोष सः॥

पूजनैः षोडशविधैर्यथा विष्णोस्तथा हरेः।
कुर्वाणान् भक्तिभावेन ज्ञात्वा देवान् समागतान्॥ १५॥

प्रहृष्टो भगवान्रुद्रोददौतेषांशुभां मतिम्। ततःसमंत्र्यतेदेवा वह्निस्तुत्वा यथार्थतः
प्रसन्नवदनं चक्रुः कार्यसाधनतत्परम्। कर्मसाक्षी महातेजाः कृत्वा पारावतंवपुः॥
प्रविवेश ततो मध्ये द्रष्टुं देवं महेश्वरम्। चकार गतिविक्षेपं गुण्ठनैरवगुण्ठनैः॥
लुण्ठनैः सर्पणैश्चैव चारुरूपोऽद्भुता गतिः। तं दृष्ट्वा भगवांस्तत्र कारणं समबुध्यत
ऊर्ध्वरेतास्ततस्तस्मिन्नसर्जाद्वीर्यधारतत्। वीर्यंवह्निमुखेचैवसोत्पपातगृहाद्बहिः
गते तस्मिन्पतङ्गेऽथ पार्वती विफलश्रमा। संक्रुद्धा सर्वदेवानां सा शशाप महेश्वरी

यस्मान्ममेच्छा विहता भवद्भिर्दुष्टबुद्धिभिः।
तस्मात्पाषाणतामाशु व्रजन्तु त्रिदिवौकसः॥ २२॥

निरपत्यानिर्दयाश्च सर्वे देवा भविष्यथ। ततः प्रसादयामासुः प्रणताः शापयन्त्रिताः

महद्दुःखं संप्रविष्टाः पुनः पुनरथाब्रुवन्॥ २४॥

देवा ऊचुः

त्वं माता सर्वदेवानां सर्वसाक्षी सनातना। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं जगतांसदा
भूतप्रकृतिरूपा त्वं महाभूतसमाश्रिता। अपर्णा तपसां धात्री भूतधात्री वसुन्धरा

मन्त्राराध्या मन्त्रबीजं विश्वबीजलया स्थितिः।

यज्ञादिफलदात्री च स्वाहारूपेण सर्वदा ॥ २७ ॥
मन्त्रयन्त्रसमोपेता ब्रह्मविष्णुशिवादिषु । नित्यरूपा महारूपा सर्वरूपा निरञ्जना ॥
दोषत्रयसमाक्रान्तजननैः श्रेयसप्रदा । महालक्ष्मीर्महाकाली महादेवी महेश्वरी ॥
विश्वेश्वरी महामाया मायाबीजवरप्रदा । वररूपा वरेण्या त्वं वरदात्री वरासुता
बिल्वपत्रैः शुभैर्ये त्वां पूजयन्ति नराः सदा ।
तेषां राज्यप्रदात्री च कामदा सिद्धिदा सदा ॥ ३१ ॥
चातुर्मास्येऽर्चिता यैस्त्वं बिल्वपत्रैर्विशेषतः ।
तेषां वाञ्छितसिद्ध्यर्थं जाता कामदुघा स्वयम् ॥ ३२ ॥
येऽर्चयन्तिसदालोके महेश्वरसमन्विताम् । बिल्वपत्रैर्महाभक्त्यानतेषां दुःखदुष्कृतां
चातुर्मास्ये विशेषेण तव पूजा महाफला । अद्यप्रभृति यैर्लोकैर्बिल्वपत्रैस्तु पूजिता
विधास्यसि महेशानि तेषां ज्ञानमनुत्तमम् । चातुर्मास्येऽधिकफलं बिल्वपत्रंवरानने
उमामहेश्वरप्रीत्यै दत्तंविधिवदक्षयम् । यथा श्रीस्तुलसीवृक्षे तथा बिल्वे च पार्वती
त्वं मूर्त्या दृश्यसे विश्वं सकलाभीष्टदायिनी ।
चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितौ द्वौ महाफलौ ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यान इन्द्रादीनां शापप्रदानंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जगत्पूज्या त्वमेवैका सर्वकृत्यधारानघे । मया यदि कृतं कर्मावद्यं देवहिताय वै ॥
तथाप्येवं तव सुतो भविष्यतिनसंशयः । अथवामम सर्वेभ्यः प्राणेभ्योऽपिगरीयसी

यदिच्छसि तथा कुर्यां तथा तव मनोरथान् ।

प्रसन्नवदना भूत्वा कथयस्व वरानने !॥ ३१ ॥

इत्युक्ता सा भगवती पुनराह महेश्वरम् । चातुर्मास्ये च संप्राप्ते महाव्रतधरो यदि
देवतानां च प्रत्यक्षं ताण्डवंनर्तसे यदि । पारयित्वा व्रतं सम्यग्ब्रह्मचर्यं महेश्वर!
मत्प्रीत्यै यदि देहार्द्धं वैष्णवं च प्रयच्छसि । शापस्यानुग्रहं कुर्यां प्रसन्नवदनासती

नान्यथा मम चित्तं त्वं विश्वासमनुगच्छति ।

तच्छ्रुत्वा भगवांस्तुष्टस्तथेति प्रत्युवाच ताम् ॥ ३५ ॥

सापि हृष्टा भगवती शापस्याऽनुग्रहे वृता ॥ ३६ ॥

इदं पुराणं मनुजः शृणोति श्रद्धायुक्तो भेदबुद्ध्या दृढत्वम् ॥
तस्यावश्यं जीवितं सर्वसिद्धं मर्त्याः सत्याः तच्छ्रेयत्वं प्रयान्ति ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने शिवपार्वतीसम्वादवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

## द्वाविंशोऽध्यायः

### हरताण्डवनर्त्तनवर्णनम्

शूद्र उवाच

इदमाश्चर्यरूपं मे प्रतिभाति वचस्तव । यद्यपि स्यान्महाक्लेशो वदतस्तव सुव्रत
तथापिमम भाग्येनमत्पुण्यैर्मद्गृहंगतः । न तृप्येत्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतवाक्यामृतंपुनः
पिबन् गौरीकथाख्यानं विशेषगुणपूरितम् । कथं महेश्वरो नृत्यं चकार सुरसंघुतः

चातुर्मास्ये कथं जातं किं ग्राह्यं व्रतमुच्यते ।
अनुग्रहं कृतवती सा कथं को ह्यनुग्रहः ॥ ४ ॥

एतद्विस्तरतो ब्रूहि! पृच्छतो मे द्विजोत्तम ! । भगवान् पूज्यतेलोकेममानुग्रहकारकः प्रसन्नवदनो भूत्वा स्वस्थः कथय सुव्रत !। गालवश्चापितच्छ्रुत्वा पुनराहप्रहृष्टवान्

गालव उवाच

इतिहासमिमं पुण्यं कथयामि तवानघ । शृणुष्वावहितो भूत्वा यज्ञायुतफलप्रदम् चातुर्मास्येऽथ सम्प्राप्ते हरो भक्तिसमन्वितः । ब्रह्मचर्यव्रतपरः प्रहृष्टवदनोऽभवन् देवतानामथाह्वानं महर्षीणां चकार ह । समागत्य ततो देवा मन्दराचलमास्थिताः

प्रणम्य ते महेशानं तस्थुः प्राञ्जलयोऽग्रतः ।
तानुवाच सुरान् सर्वान् हरो दृष्ट्वा समागतान् ॥ १० ॥
पार्वत्याभिहितं प्राह कस्मिन् कार्यान्तरे सति ।
मया नियुक्तेऽभिनयेप्यत्र साहाय्यकारिणः ॥ ११ ॥

भवन्त्विन्द्रपुरोगाश्चचातुर्मास्येसमागते । ते तथोचुश्च संहृष्टा नमस्कृत्यचशूलिनम् स्वं स्वं भवनमाजग्मुर्विमानैःसूर्यसन्निभैः । तथाऽऽषाढे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां महेश्वरः प्रनर्तयितुमारेभे भवानीतोषणाय च । मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे तत्र जग्मुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ नारदो देवलो व्यासः शुकद्वैपायनादयः । अङ्गिराश्च मरीचिश्च कर्दमश्च प्रजापतिः कश्यपो गौतमश्चात्रिर्वसिष्ठो भृगुरेव च । जमदग्निस्तथोत्सङ्गो रामोभार्गव एव च अगस्त्यश्च पुलोमा च पुलस्त्यः पुलहस्तथा । प्रचेताश्चक्रतुश्चैव तथैवान्ये महर्षयः

सिद्धा यक्षाः पिशाचाश्च चारणाश्चारणैः सह ।
आदित्या गुह्यकाश्चैव साध्याश्च वसवोऽश्विनौ ॥ १८ ॥

एते सर्वे तथेन्द्राद्या ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । समाजग्मुर्महेशस्य नृत्यदर्शनलालसाः ॥

ततो गणा नन्दिमुखा रत्नानि प्रददुस्तथा ।
भूषणानि च वासांसि मुन्यादिभ्यो यथाक्रमम् ॥ २० ॥

ततो वाद्यसहस्रेषु वादितेषु समन्ततः । सर्वैर्जयेतिचैवोक्तो भगवान् व्रतमाविशत्

भवानी हृष्टहृदया महादेवं व्यलोकयत् । जया च विजयाचैव जयन्ती मङ्गलारुणा
चतुष्टयसखीमध्ये विरराज शुभानना । तस्याः सान्निध्ययोगेन जगद्भातिगुणोत्तरम्
यस्याःशरीरजाशोभावर्णितुंनैवशक्यते । ईशोऽपिगणकोटीभिर्नानावक्त्राभिरीक्षितः
पिशाचभूतसङ्घैश्च वृतः परमशोभनः । स्वर्णवेत्रधरो नन्दी बभौकपिमुखोऽग्रतः
विद्याधराश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनादयस्तथा । चित्रन्यस्ताइवबभुस्तत्रनागा मुनीश्वराः
श्रीरागप्रमुखा रागास्तस्य पुत्रा महौजसः । अमूर्त्ताश्चैव ते पुत्रा हरदेहसमुद्भवाः

एकैकस्य च षट् भार्याः सर्वासां च पितामहः ।

ताभिः सहैव ते रागा लीलावपुर्धरास्तथा ॥ २८ ॥

प्रादुर्बभूवुःसहसा चिन्तितास्तेन शम्भुना । तेषांनामानितेषच्मिश्रृणुष्वत्वंमहाधन!
श्रीरागः प्रथमः पुत्र ईश्वरस्य विमोहनः । आसाञ्चक्रे भ्रवोर्मध्ये परब्रह्मप्रदायकः ॥

तन्मध्यश्चैव माहेशात्समुद्भूतो गणोत्तमः ।

द्वितीयोऽथ वसन्तोऽभूत्कटिदेशान्महायशाः ॥ ३१ ॥

महदङ्कश्च भूतानां चक्राच्चैव विशुद्धतः । पञ्चमस्तु तृतीयोभूत्सुतो विश्वविभूषणः
महेश्वरहृदो जातश्चक्रं चैवमनाहतम् । नासादेशात्समुद्भूतो भैरवो भैरवः स्वयम्
मणिपूरकनामेदं चक्रं तद्धि विमुक्तिदम् । पञ्चाशच्च तथा वर्णा अङ्कानाम महेश्वरात्
राशयो द्वादश तथानक्षत्राणितथैवच । स्वाधिष्ठानसमुद्भूता जगद्बीजसमन्विताः
क्षणेन वृद्धिमायान्ति ततोरेतः प्रवर्तते । रेतसस्तु जगत्सृष्टं नन्दीशजननेन्द्रियम् ॥
आधाराश्च महान्षष्ठो नटोनारायणोऽभवत् । महेशवल्लभःपुत्रो नीलो विष्णुपराक्रमः

एते मूर्तिधरा रागा जाता भार्यासहायिनः ।

भार्यास्तेषां समुद्भूताः शिरोभागात्पिनाकिनः ॥ ३८ ॥

षट्त्रिंशत्परिमाणेन ततस्तास्त्वं निशामय ।

गौरी कोलाहली धीरा द्राविडी मालकौशिकी ॥ ३६ ॥

षष्ठीस्याद्देवगान्धारी श्रीरागस्यप्रियाइमाः । आन्दोलाकौशिकीचैव तथाचरममञ्जरी
गण्डगिरीदेवशाखारामगिरीवसन्तगाः । त्रिगुणास्तम्भतीर्थाच अहिरीकुकुभातथा

बैराटी सामवेरी च षड्भार्या पञ्चमेमता । भैरवी गुर्जरी चैव भाषा वेलागुली तथा कर्णाटकी रक्तहंसा षड्भार्याभैरवानुगाः । बङ्गालीमधुराचैव कामोदाचाक्षिनारिका देवगिरिच देवाली मेघरागानुगा इमाः । त्रोटकी मोडकी चैव नरा दुम्बी तथैव च मल्हारी सिन्धुमल्हारीनटनारायणानुगाः । एताहि गिरिशं नत्वा महेशञ्चमहेश्वरीम्

स्वमूर्त्तिवाहनोपेता स्वभर्तृ सहिताः स्थिताः ।
ब्रह्मा मृदङ्गवाद्येन तोषयामास शङ्करम् ॥ ४६ ॥

चतुरक्षरवाद्येन सुवाद्यञ्चाकरोत्पुनः । तालक्रियां महेशाय दर्शयामास केशवः ॥ वायवस्तत्र वाद्यञ्च चक्रुः सुस्वरमोजसा । महेन्द्रो वंशवाद्यञ्च सुगिरं सुस्वरं बहु वह्निः शूर्परवञ्चक्रे पणवञ्च तथाश्विनौ । उपाङ्गवादनं चक्रे सोमः सूर्य्यः समन्ततः घण्टानां वादनं चक्रुर्गणाः शतसहस्रशः । मुनीश्वरास्तथादेव्यःपार्वतीसहितास्तथा स्वर्णभद्रासनेष्वेते ह्युपविष्टा व्यलोकयन् । शृङ्गाणां वादनं चक्रुर्वसवः समहोरगाः

भेरीध्वनिं तथा साध्या वाद्यान्यन्ये सुरोत्तमाः ।
झर्झरीगोमुखादीनि साध्याश्चक्रुर्महोत्सवे ॥ ५२ ॥

तन्त्रीलयसमायुक्ता गन्धर्वा मधुरस्वराः । सुवर्णशृङ्गनादञ्च चक्रुः सिद्धाःसमन्ततः ततस्तु भगवानासीन्महानटवपुर्धरः । मुकुटाः पञ्चशीर्षे तु पन्नगैरुपशोभिताः ॥५४ जटा विमुच्य सकला भस्मोद्धूलितविग्रहः । बाहुभिर्दशभिर्युक्तो हारकेयूरसंयुतः त्रैलोक्यव्यापकं रूपं सूर्यकोटिसमप्रभम् । कृत्वा ननत भगवान् भासुरं स महानगे ततवीणादिकंवाद्यं कांस्यतालादिकङ्घनम् । वंशादिकंतुवादित्रंतोमरादिघनामकम् चतुर्विधं ततो वाद्यं तुमुलं समजायत । तालानां पटहादीनां हस्तकानां तथैव च मानानां चैव तानानांप्रत्यक्षंरूपमाबभौ । सुकण्ठं सुस्वरं मुक्तं सुगम्भीरंमहास्वनम् विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुश्चैव गायकाः । जगुर्गन्धर्वपतयोऽप्सरसो मधुरस्वराः ॥ ग्रामत्रयसमोपेतं स्वरसप्तकसंयुतम् । दिव्यं शुद्धञ्च साङ्कल्पं तत्र गोयमवर्तत ॥ पर्वतोऽपि महानादं हरपादतलाहतः । भ्रमीभिर्भ्रमयंस्तत्र महीं सपुरकाननाम् ॥

हस्तकांश्चतुराशीतिं स ससर्ज सदाशिवः ।

ललाटफलकस्वेदात्सूतमागधवन्दिनः ॥ ६३ ॥
महेशहृदयाज्जाता गन्धर्वा विश्वगायकाः । ते मूर्त्तादेवदेवस्य सुरङ्गालयसंयुताः
प्रेक्षकाणामृषीणाञ्च चक्रुराश्चर्यमोजसा । किन्नरा पुष्पवर्षाणिससृजुः स्वर्गु णरिह
एव चतुर्षु मासेषु यदा नृत्यमजायत । अतिक्रान्ताशरज्जाता निर्मलाकाशशोभिता
पद्मखण्डसमाच्छन्नसरोवरमुखाम्बुजा ।
फलवृक्षौषधीभिश्चकिञ्चित्पाण्डुमुखच्छविः ॥ ६७ ॥
ऊर्जशुक्ल चतुर्दश्या प्रसन्ना गिरिजा तदा ।
समाप्तव्रतचर्यः स ईश्वरोऽपि तदा बभौ ॥ ६८ ॥
सा चोवाचतदा शम्भुं विकचस्वरलोचना । विप्रशापपातितंचयल्लिङ्गं भविष्यति
नर्मदाजलसंभूतं विश्वपूज्यं भविष्यति । एवमुक्त्वा ततस्तुष्टा हरस्त्रोत्रं चकार ह
नमस्ते देवदेवाय महादेवाय मौलिने । जगद्धात्रे सवित्रे च शङ्कराय शिवाय च
कपर्दिनेऽजपादाय ब्रह्मगर्भाय तेनमः । हिरण्यरेतसे तुभ्यं नीलग्रीवाय ते नमः ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय सितभूतिधराय च । पञ्चवक्त्राय रूपाय निरूपाय नमोनमः ॥
सहस्राक्षाय शुभ्राय नमस्ते कृत्तिवाससे । अन्धकासुरमोक्षाय पशूना पतये नमः ॥
विप्रवह्निमुखाग्राय हराय च भवाय च । शङ्कराय महेशाय ईश्वराय नमोनमः ॥ ७५ ॥
अमूर्तब्रह्मरूपाय मूर्त्तानां भावनाय च । नमः शिवाय चोग्राय हराय च भवाय च
नमः कृष्णाय शर्वाय त्रिपुरान्तकहारिणे । अघोराय नमम्तेऽस्तु नमस्ते पुरुषाय ते
सद्योजाताय तुभ्यंभो वामदेवाय ते नमः । ईशानाय नमस्तुभ्यं पञ्चास्यायकपालिने
विरूपाक्षाय भावाय भगनेत्रनिपातिने । पूषदन्तनिपाताय महायज्ञनिपातिने ॥
मृगव्याधाय धर्माय कालचक्राय चक्रिणे । महापुरुषपूज्याय गणाना पतये नमः
गङ्गाधराय भवते भवानीप्रियकारिणे । जगदानन्ददात्रे च ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥
गुणातीताय गुणिने सूक्ष्माय गुरवेऽपिच । नमो महास्वरूपाय भस्मनोजन्मकारिणे
वैराग्यरूपिणेनित्यं योगाचार्याय वै नमः । मयोक्तमप्रियं देव स्मरसंहारकारक !॥
क्षन्तुमर्हसि विश्वेश शिरसा त्वांप्रसादये । शापानुग्रह एवैष कृतस्ते वै न संशयः

ममापराधज्ञो मन्युर्न कार्यो भवताऽनघ। एवं प्रसादितः शम्भुर्हृष्टात्मा त्रिदशैः सह तीर्णव्रतपरानन्दनिर्भरःप्राह तामुमाम्। यइमांमत्स्तुतिभक्त्या पठिष्यतितवोद्गताम्

तस्य चेष्टवियोगश्च न भविष्यति पार्वति !॥ ८६ ॥
जन्मत्रयं धनैर्युक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः।
भुक्त्वेह विविधान् भोगानन्ते यास्यति मत्पुरम् ॥ ८७ ॥

इत्युक्त्वा तां महेशोपिस्वमङ्गं प्रददौततः। वैष्णवं वामभागं साप्रतिजग्राहपार्वती शर्वं कपालहस्तं च ग्रीवार्द्धं गरलान्वितम्। मुण्डमालार्द्धहारं चसितगौरं समन्ततः ब्रह्माण्डकोटिजनकं जटाभिर्भूषितंशिरः। सितद्युतिकलाखण्डरत्नभासावभासितम् स्वर्णाभरणसंयुक्तमेकतो भुजगाङ्गदम्। एकतः कृत्तिवसनमन्यतः पट्टकूलवत्। मत्स्यवाहनसंयुक्तमन्यतो वृषभाङ्कितम्। एकतः पार्षदैः सेव्यमन्यतःसखिसेवितम् रूपमवं विधं दृष्ट्वा ब्रह्माद्या देवतागणाः। तुष्टुवुः परयाभक्त्या तेजोभूषितलोचनम्

त्वमेको भगवान्सर्वव्यापकः सर्वदेहिनाम्।
पितृवद्रक्षकोऽसि त्वं माता त्वं जीवसञ्ज्ञकः ॥ ९४ ॥
साक्षी विश्वस्य बीजं त्वं ब्रह्माण्डवशकारकः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते त्वयि ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ९५ ॥

ऊर्मयः सागरे नित्यं सलिले बुद्बुदा यथा। अहंकदाचित्त्वन्नेत्रात्कदाचित्तव भालतः क्वचित् सङ्गेमहादेव प्रादुर्भूत्वा सृजेजगत्। तवाज्ञाकारिणः सर्वे वयंब्रह्मादयःसुराः अनन्तवंभवोऽनन्तोऽनन्तधामास्यनन्तकः। अनन्तः सर्वभङ्गाय कुरुपे रूपमद्भुतम् ॥ भवानित्वंभयंनित्यमशिवानांपवित्रकृत्। शिवानामपि दात्रीत्वंतपसामपित्वंफलम्

यः शिवः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स सदाशिवः।
इत्यभेदमतिर्जाता स्वल्पा न त्वत्प्रसादतः ॥ १०० ॥
यत्किञ्चिच्च जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
मध्ये बहिश्च तत्सर्वं त्रयं व्याप्यस्थिता सदा ॥ १०१ ॥

जगत्पूज्य सुरेशान! जगद्वन्द्ये तथाम्बिके !। प्रसादं कुरुदेवेशि! देवेश! प्रणता वयम्

इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे हृष्टा जग्मुर्यथागतम् ॥ १०३ ॥

गालव उवाच

ते दिव्यमेतदखिलं भुवि ये मनुष्याः संसारसागरसमुत्तरणैकपोतम् ।
संचिन्तयन्ति मनसा हृतकिल्बिषास्ते ब्रह्मस्वरूपमनुयान्ति विमुक्तसङ्गाः ॥१०४

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने हरताण्डवनर्तनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

## त्रयोविंशोऽध्यायः

### लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनम्

गालव उवाच

एवं ते लब्धशापाश्च पार्वतीशापपीडिताः ।
अनपत्या बभूवुश्च तथा च प्रतिमां गताः ॥ १ ॥

शालग्रामस्तु गण्डक्यां नर्मदायां महेश्वरः । उत्पद्यते स्वयंभूश्च तावेतौ नैवकृत्रिमौ
चतुर्विंशतिभेदेनशालग्रामगतो हरिः । परीक्ष्य पुरुषो नित्यमेकरूपः सदाशिवः ।
शालग्रामशिला यत्रगण्डकीविमलेजले । तत्र स्नात्वाचपीत्वाचब्रह्मणःपदमाप्नुयात्

तां पूजयित्वा विधिवद्गण्डकीसंभवां शिलाम् ।
योगीश्वरो विशुद्धात्मा जायते नात्र संशयः ॥ ५ ॥

एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । यथा हरो विप्रशापंप्राप्तवांस्तन्निशामय ॥

यः शृणोति नरो भक्त्या वाच्यमानामिमां कथाम् ।
गिरीशनृत्यसम्बन्धामुमादेहार्धवर्णिताम् ॥ ७ ॥
ब्रह्मणः स्तुतिसंयुक्तां स गच्छेत्परमां गतिम् ।

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा समस्तं श्लोकमेव वा ॥ ८ ॥

यः पठेदविरोधेन मायामानविवर्जितः । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति
चातुर्मास्ये विशेषेणपठन्शृण्वन्नरोत्तमः । लभते चिन्तितांसिद्धि धनपुत्रादिसंवृतः
यथा ब्रह्मादयो देवा शीतबाधाभियोगतः । परां सिद्धिमवापुस्ते दुर्गाशिवसमीपतः
वर्षाकाले च सम्प्राप्ते भक्तियोगेजनार्दने । महेश्वरेऽथ दुर्गायां न भूयःस्तनपोभवेत्
गणेशस्यसदा कुर्याच्चातुर्मास्येविशेषतः । पूजां मनुष्योलाभार्थंयत्नो लाभप्रदोहिसः

सूर्यो निरोगतां दद्याद्भक्त्या यैः पूज्यते हि सः ।

चातुर्मास्ये समायाते विशेषफलदो नृणाम् ॥ १४ ॥

इदं हि पञ्चायतनं सेव्यते गृहमेधिभिः । चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितंचिन्तितप्रदम्

शालग्रामगतं विष्णुं यः पूजयति नित्यदा ।

द्वारावती चक्रशिलासहितं मोक्षदायकम् ॥ १६ ॥

चातुर्मास्ये विशेषेण दर्शनादपि मुक्तिदम् ।

यस्मिन्स्तुते स्तुतंसर्वंपूजिते पूजितञ्जगत् ॥ १७ ॥

पूजितः पठितो ध्यातःस्मृतोवैकलुषापहः । शालग्रामे किं पुनर्यच्छालग्रामगतोहरिः
पुनर्हि हरिर्नैवेद्यं फलञ्चापि धृतं जलम् । चातुर्मास्ये विशेषेण शालग्रामगतंशुभम्
तिलाःपुनन्तिसकलंशालग्रामस्यशूद्रज । चातुर्मास्येविशेषेण नरंभक्त्यासमन्वितम्
स लक्ष्मीसहितो नित्यंधनधान्यसमन्वितः । महाभाग्यवतांगेहेजायते नात्रसंशयः

स लक्ष्मीसहितो विष्णुर्विज्ञेयो नात्र संशयः ।

तं पूजयेन्महाभक्त्या स्थिरा लक्ष्मीर्गृहे भवेत् ॥ २२ ॥

तावद्दरिद्रता लोके तावद्गर्जति पातकम् ।

तावत्क्लेशाः शरीरेऽस्मिन् न यावत्पूज्यते हरिः ॥ २३ ॥

स एव पूज्यते यत्र पञ्चकोशं पवित्रकम् । करोति सकलं क्षेत्रंन तत्राऽशुभसम्भवः
एतदेव महाभाग्यमेतदेव महातपः । एष एव परो मोक्षो यत्र लक्ष्मीशपूजनम् ॥२५
शङ्खश्च दक्षिणावर्त्तोलक्ष्मीनारायणात्मकः । तुलसीकृष्णसारोऽत्रयत्रद्वारवतीशिला

तत्र श्रीर्विजयो विष्णुर्मुकिरेवं चतुष्टयम् । लक्ष्मीनारायणे पूजां विधातुर्मनुजस्यतु ददातिपुण्यमतुलंमुक्तोभवतितत्क्षणात् । चातुर्मास्येविशेषेणपूज्योलक्ष्मीयुतोहरिः

कुर्वतस्तस्य देवस्य ध्यानं कल्मषनाशनम् ।
तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजितो जन्मनाशनः ॥ २९ ॥
पूजितो बिल्वपत्रेण चातुर्मास्येऽघहृत्तमः ॥ ३० ॥

सर्वप्रयत्नेन स एव सेव्यो यो व्याप्य विश्वं जगतामधीशः ।
काले सृजत्यत्ति च हेलया वा तं प्राप्य भक्तो न हि सीदतीति ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

# चतुर्विंशोऽध्यायः

## द्वादशाक्षरमहिमावर्णनम्

### गालव उवाच

एकदा भगवान्रुद्रःकैलासशिखरे स्थितः । दध्यार परमां लक्ष्मीमुमया सहितःकिल गणानां कोट्यस्तिस्रस्तं यदा पर्यवारयन् । वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् रुचिस्तुष्टिस्तथानन्दीपुष्पदन्तस्तथोत्कटः । विकटःकण्टकश्चैवहर.केशोविघण्टकः मालाधरः पाशधरः शृङ्गी च नरनस्तथा । पुण्योत्कटःशालिभद्रो महाभद्रोविभद्रकः कणपः कालपः कालोधनपोरकलोचनः । विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजीह्वोविरोचनः पारदो धनदो ध्वांक्षी हंसकोनरकस्तथा । पञ्चशीर्षस्त्रिशीर्षश्च क्रोडदंष्ट्रोमहाद्भुतः सिंहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च । एते चान्ये च बहवस्तदाभवसमीपगाः महादेव जयेत्युच्चर्भद्रकालीसमन्विताः । भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वल्लभाः

अस्तुवंस्तं समीपस्था वसन्तेसमुपागते । वनराजिर्विभातिस्म नवकोरकशोभिता
दक्षिणानीलसंस्पर्शः कवीनां सुखकृद्वभौ ।
वियोगिहृदयाकर्षी किंशुकः पुष्पशोभितः ॥ १० ॥
द्वन्द्वादिविक्रियाभावंचिक्रीडुश्चसमन्ततः । तस्मिन्विगाढेसमये मनस्युन्मादकेतथा
नन्दी दण्डधरः सञ्ज्ञांदृष्ट्वाचक्रे हरोपरः । अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो गणाः
तदा सर्ववनमपिभूकाण्डजमगुः पुनः । गणास्तेतप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्तिवसन्तजाम्
ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् । इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वर
त्वया किं जप्यतेदेव सन्देहयति मे मनः । त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥
न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्नकश्चन ।
अहं तव परं किञ्चिद्देवि नास्तीति किञ्चन ॥ १६ ॥
श्रमेणत्वंममायुक्तोश्वासोच्छ्वासपरायणः । जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसेत्वंमयासदा
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसिचेतसा । तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव
इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः । हरेर्नामसहस्राणांसारं ध्यायामि नित्यशः
जपामिरामनामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् । चतुर्शितिसंख्याकान् प्रादुर्भावान्हरेर्गुणान
एतेषामपि यत्सारं प्रणवाख्यं महत्फलम् । द्वादशाक्षरसंयुक्तं ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥
अक्षरत्रयसम्बद्धं ग्रामत्रयसमन्वितम् । सबिन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जपमालया ॥
वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोद्यतम् । निर्मलं ह्यमृतंशान्तं सद्रूपममृतोपमम् ॥
कलातीतंनिर्वशगंनिर्व्यापारंमहत्परम् । विश्वाधारंजगन्मध्यं कोटिब्रह्माण्डबीजकम्
जडं शुद्धक्रियं धाऽपि निरञ्जनं नियामकम् ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरसंसारबन्धनात् ॥ २५ ॥
ॐकारसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् । जपतः पापकोटीनां दावाग्नित्वं प्रजायते
एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः । एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥ २७ ॥
प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् । एतदेव परंज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम्
चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदं चिन्तितप्रदम् । एतदक्षरजं स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा

मनसा कर्मणावाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः । द्वादशाक्षरसंयुक्तं चक्रद्वादशभूषितम्
मासद्वादशनामानिविष्णोर्योभक्तितत्परः । शालग्रामेषुतान्युक्त्वा न्यसेद्वहराणिच
दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफलं भवेत् । द्वादशाक्षरमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते
जिह्वासहस्रैरपि च ब्रह्मणापिन वर्ण्यते । महामन्त्रोह्ययंलोकेजप्तो ध्यातःस्तुतस्तथा
पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः । इदं रहस्यं वेदानां पुराणानामनेकशः ॥

स्मृतीनामपि सर्वासा द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।
चिन्तनादेव मर्त्यानां सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥ ३५ ॥

पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती । वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितैः ॥
जपैर्ध्यानैःशमपरैर्मोक्षंयास्यतिनिश्चितम् । शूद्राणाञ्चापि नारीणां प्रणवेनविवर्जितः

प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ।
न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥ ३८ ॥
विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिध्यति ।
नासा मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोट्यधिको भवेत् ॥ ३९ ॥

रामेति द्व्यक्षरजपःसर्वपापापनोदकः । गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजोरामकीर्तनात्
इहनिर्वृतिमायातिप्रान्तेहरिगणोभवेत् । रामेतिद्व्यक्षरोमन्त्रोमन्त्रकोटिशताधिकः
सर्वासाप्रकृतीनांचकथितः पापनाशकः । चातुर्मास्येऽथसम्प्राप्ते सोप्यनन्तफलप्रदः
चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यने भक्तितत्परैः । देवचन्निष्फलं तेषां यमलोकस्यसेवनम्
न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले । रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥
ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्रये । रामनाम्नैव विलयं यान्तिनात्रविचारणा
रमते सवभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
रामेति नन्त्रराजोऽयं भयव्याधिविषूदकः । रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः
सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः । रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि । देवाअपि प्रगायन्तिरामनामगुणाकरम्
तस्मात्त्वमपि देवेशिरामनाम सदा वद । रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः

सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते । चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम्
हीनजातिप्रजातानां महद्दहति पातकम् ॥ ५२ ॥
रामो ह्ययं विश्वमिदं समग्रं स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मना ।
पुनाति जन्मान्तरपातकानि स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाद्य दग्ध्वा ॥ ५३ ॥
इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने द्वादशाक्षरमहिमावर्णनपूर्वकरामनाममहिमावर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४ ॥

---

## पञ्चविंशोऽध्यायः

### ॐकारप्राप्त्यर्थपार्वतीतपोवर्णनम्

पार्वत्युवाच

द्वादशाक्षरमाहात्म्यं मम विस्तरतोवद । यथावर्णं यत्फलं च यथा च क्रियतेमया

श्रीमहादेव उवाच

द्विजातीनां सहङ्कारः सहितो द्वादशाक्षरः । स्त्रीशूद्राणां नमस्कारपूर्वकः समुदाहृतः
प्रकृतीनां रामनामसंमतो वा षडक्षरः । सोपि प्रणवहीनःस्यात्पुराणस्मृतिनिर्णयः
क्रमोऽयं सर्ववर्णानां प्रकृतीनां सदैव हि । क्रमेण रहितो यस्तु करोतिमनुजोजपम्
तस्य प्रकुप्यति विभुर्नरकादीनां प्रदायकः ।

पार्वत्युवाच

मया त्रिमात्रया स्वामिन् सेव्यते जगदीश्वरः ॥ ५ ॥
रूपमस्य कथं जाने वचसामप्यगोचरम् ।

ईश्वर उवाच

प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि !। नमो भगवते वासुदेवायेति जपः सदा

पार्वत्युवाच

यदि सप्रणवं दद्याद्द्वादशाक्षरचिन्तनम् । प्रणवेनाधिकारो मे कथं भवति धूर्जटे!

ईश्वर उवाच

प्रणवः सर्वदेवानामादिरेव प्रकीर्तितः । ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चैव वसन्तिदयितायुताः
तत्र सर्वाणि भूतानि सर्वतीर्थानि भागशः । तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि कैवल्यंब्रह्मणवयः
तन्ययोग्यातदादेवि भविष्यसि यदातपः । चातुर्मास्येहरिप्रीत्यैकरिष्यसि शुभानने
तपसा प्राप्यनेकामस्तपसा च महत्फलम् । तपसा जायते सर्वं तत्तपः सुलभंनरैः
यशः सौभाग्यमतुलं क्षमासत्यादयो गुणाः । सुलभं तपसा नित्यं तपश्चर्तुं नशक्यते

यदा हि तपसो वृद्धिस्तदा भक्तिर्हरौ भवेत् ।

तदा हि तपसो हानिर्यदा भक्ति विना कृतम् ॥ १३ ॥

तावत्तपांसि गर्जन्ति देहेऽस्मिन् सततं नृणाम् ।

यदा विष्णुं स्मरेन्नित्यं जिह्वाग्रं पावनं भवेत् ॥ १४ ॥

यथा प्रदीपेज्वलिते प्रणश्यति महत्तमः । तथा हरेः कथायां च याति पापमनेकधा
तस्मात्पार्वतियत्नेन हरौ सुप्ते तपः कुरु । चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते प्रणवेनसमन्वितम्
विशुद्धहृदया भूत्वा मन्त्रराजमिमं जप । स एव भगवांस्तुष्टो द्वादशाक्षरसंयुतम्
प्रदास्यति परं ज्ञानं ब्रह्मरूपमखण्डितम् । ब्रह्मकल्पान्तकोटीषु जपत्वं द्वादशाक्षरम्
मन्त्रराजं सप्रणवं ध्यायेत्सोपि न नश्यति । इत्युक्ता सा तपोनिष्ठातपश्चरितुमागता
हिमाचलस्य शिखरे चातुर्मास्ये समागते । ब्रह्मचर्यव्रतपरा वसनत्रयसंयुता ॥ २०
प्रातर्मध्ये पराह्णे च ध्यायन्ती हरिशङ्करम् । वपुर्यथा पुराकृष्टं पूजने शङ्करस्य च
सखीजनसमायुक्ता पितुः श्रृङ्गे मनोहरे । अतपत्सा विशालाक्षी क्षमादिगुणसंयुता

गालव उवाच

या हि योगेश्वरा ध्येया या वन्द्या विश्ववन्दिता ।

जननी या च विश्वस्य साऽपि कामात्तपोगता ॥ २३ ॥

याहि प्रकृतिसद्रूपा तडित्कोटिसमप्रभा । विरजा या स्वयं वन्द्यागुणतीताचरत्तपः

पृथ्व्यम्बुतेजोवायुश्च गगनं यन्मयं विदुः । मूलप्रकृतिरूपाया सा चकारोत्तमं तपः
या स्थावरं जङ्गममाशु विश्वं व्याप्य स्थिता या प्रकृतेः पुराऽपि ।
स्पृहादिरूपेण च तृप्तिदात्री देवे प्रसुप्ते तपसाऽऽप शुद्धिम् ॥ २६ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्या संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानेपार्वतीतपोवर्णनंनाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

## षड्विंशोऽध्यायः

### हरशापवार्तावर्णनम्

गालव उवाच

प्रवृत्तायां शैलपुत्र्या महत्तपसि दारुणे । कन्दर्पेण पराभूतो विचचार मही हर. ॥ १
वृक्षच्छायासु तीर्थेषु नदीषु च नदेषु च । जलेन सिञ्चन्स्ववपुः सर्वत्रापि महेश्वरः
तथापि कामाकुलितो न लेभे शर्मकर्हिचित् । एकदायमुनादृष्ट्वाजलकल्लोलमालिनीम्
विगाहितुं मनश्चक्रे तापार्त्ति शमयन्निव । कृष्णं बभूव तन्नीरं हरकामाग्निवह्निना
दग्धं विगाहनेनाशु म ीप्रायंतदा बभौ । सापि दिव्यवपुः पूर्वं श्यामा भूता हरागतः
स्तुत्वा नत्वा महेशानमुवाच पुनरेव सा । प्रसादं कुरुदेवेश वशगाऽस्मि सदा तव

ईश्वर उवाच

अस्मिस्तीर्थवरे पुण्ये यः स्नास्यति नरो भुवि ।
तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ ७ ॥

हरतीर्थमितिख्यातपुण्यंलोकेभविष्यति । इत्युक्त्वा तां प्रणम्याथतत्रैवान्तरधीयत
तस्यास्तीरेमहेशोऽपि कृत्वारूपं मनोहरम् । कामालयं वाद्यहस्तं कृतपुण्ड्रंजटाधरम्

स्वेच्छया मुनिगेहेषुदर्शयत्यङ्गचापलम् । क्वचिद्गायन्तिगीतानिक्वचिन्नृत्यतिछन्दतः

स च क्रुद्ध्यति हसतिस्त्रीणां मध्यगतः क्वचित् ।

एवं विचरतस्तस्य ऋषिपत्न्यः समन्ततः ॥ ११ ॥

पत्युः शुश्रूषणं गेहे कार्याण्यपि च तत्क्षणात् । तमेवमनसाचक्रुस्तस्यरूपेणमोहिता

भ्रमत्यश्चैव हास्यानि चक्रुस्ता अपि योषितः ।

ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तासां दुःशीलभावनाम् ॥ १३ ॥

चुक्रुधुर्मुनयः सर्वे रूपं तस्य मनोहरम् । गृह्यतां हन्यतामेष कोऽयं दुष्ट उपागतः ॥
इति ते गृह्यकाष्ठानि यदोपस्थे ययुस्तदा । पलायितःसबहुधाभयात्तेषांमहात्मनाम्
योजीवकलयाविश्वं व्याप्य तिष्ठति देहिनाम् । नज्ञायतेनचग्राह्योनभेद्यश्चापिजायते
न शेकुस्ते यदासर्वे गृहीतुं तं महेश्वरम् । तदा शिवं प्रकुपिताः शेपुरित्थंद्विजातयः
यस्माल्लिङ्गार्थमागत्य ह्याश्रमाश्चोरवत्कृतम् । परदारापहरणं तल्लिङ्गं पततांभुवि ॥
सद्य एवहि शापं त्वं दुष्टं प्राप्नुहितापस । एवमुक्ते सशापाग्निर्वज्ररूपधरो महान्
तल्लिङ्गंधूर्जटेश्छित्त्वा पातयामास भूतले । रुधिरौघपरिव्याप्तो मुमोहभगवान्विभुः
वेदनार्त्तो ज्वलवपुर्महाशापाभिभूतधीः । तं तथापतितं दृष्ट्वा त आजग्मुर्महर्षयः ॥
आकाशेसवभूतानि त्रेसुर्विश्वं चचाल ह । देवाश्च व्याकुला जातामहाभयमुपागताः
ज्ञात्वा विप्रा महेशानं पीडिताहृदयेऽभवन् । शुशुचुर्भृशदुःखार्त्ताईवं हि चलवत्तरम्
किं कृतं भगवानेपदेवैरपि स सेव्यते । साक्षात्सर्वस्य जगतोऽस्माभिर्नैवोपलक्षितः
वयं मूढधियः पापाः परमज्ञानदुर्बलाः । कथमस्माभिर्यस्यात्माश्रुतश्च ननिवेदितः
मयेदृशो गृहस्थायआत्मा यं च निवेदितः । निर्विकारोनिर्विषयोनिराहोनिरुपद्रवः
निर्ममो निरहंकारो यः शम्भुर्नोपलक्षितः । यस्य लोकाइमेसर्वेदेहेतिष्ठन्तिमध्यगाः

स एष जगतां स्वामी हरोऽस्माभिर्न वीक्षितः ।

इत्युक्त्वा ते ह्युपविष्टा यावत्तत्र समागताः ॥ २८ ॥

तान्दृष्ट्वा सहसात्रस्तः पुनरेव महेश्वरः । विप्रशापभयान्नष्टस्त्रिपुरारिर्दिवं ययौ ॥
सुरभिं गां चगोलोकेतांतुष्टावसुसंयतः । सृष्टिस्थितिविनाशानांकर्त्र्यैमात्रेनमोनमः

यात्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि भूतलम् । देवानां च तथासंघान्पितॄणामपिवै गणान्
सर्वेर्ज्ञाता रसाभिर्ह्रैर्मधुरास्वाददायिनि !। त्वया विश्वमिदं सर्वबलस्नेहसमन्वितम्

त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा ।
आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा ॥ ३३ ॥
त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा ।
ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः ॥ ३४ ॥
कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी ।
त्वया विरहितं किञ्चिन्नास्ति त्रिभुवनेष्वपि ॥ ३५ ॥

वह्नेस्तृप्तिप्रदात्री च देवादीनां च तृप्तिदा । त्वयासर्वमिदंव्याप्तंजगत्स्थावरजङ्गमम्
पादास्तेवेदाश्चत्वारःसमुद्राःस्तनतांययुः । चन्द्रार्कौ लोचनेयस्यारोमाग्रेषुचदेवताः
शृङ्गयोः पर्वताः सर्वे कर्णयोर्वायवस्तथा । नाभौचैवामृतंदेविपातालानिखुरास्तथा

स्कन्धे च भगवान् ब्रह्मा मस्तकस्थः सदाशिवः ।
हृद्देशेच स्थितो विष्णुः पुच्छाग्रे पन्नगास्तथा ॥ ३६ ॥
शकृत्स्था वसवः सर्वे साध्या मूत्रस्थितास्तव ।
सर्वे यक्षा ह्यस्थिदेशे किन्नरा गुह्यसंस्थिताः ॥ ४० ॥

पितॄणां चगणाःसर्वेपुरःस्थामान्तिसर्वदा । भर्वे यक्षाभालदेशेकिन्नराश्चकपोलयोः
सर्वदेवमयी त्वं हि सर्वभूतविवृद्धिदा। सवलोकहिता नित्यं मम देहहिता भव
प्रणतस्तव देवेशि! पूजये त्वांसदानघे !। स्तौमिविश्वार्तिहन्त्रींत्वांप्रसन्नावरदाभव
विप्रशापाग्निनादग्धंशरीरंममशोभने ! । स्वतेजसापुनःकर्त्तुमर्हस्यमृतसंभवे !॥ ४४
इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तस्या देहेलयंगतः । सापिगर्भदधाराथसुरभिस्तदनन्तरम्
कालातिक्रमयोगेन सर्वो व्याकुलतां ययौ । तस्मिन्प्रणष्टेदेवेशे विप्रशापभयावृते
देवा महार्ति प्रययुश्चचाल पृथिवीतथा । चन्द्रार्कौ निष्प्रभौ चैव वायुश्चण्डवच

समुद्राः क्षोभमगमंस्तस्मिन्काले द्विजोत्तम !॥ ४८ ॥
यस्मिञ्जगत्स्थावरजङ्गमादिकं काले लयं प्राप्य पुनः प्ररोहति ।

तस्मिन्प्रणष्टे द्विजशापपीडिते जगद्वतमान्यमवर्तत क्षणात् ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरशापोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

## सप्तविंशोऽध्यायः

### वृषस्तुतिवर्णनम्

गालव उवाच

तस्मिंस्तु पतिते लिङ्गे योजनायामविस्तृते ।
विषादार्त्ता ऋषिगणास्तत्रजग्मुः सहस्रशः ॥ १ ॥

व्यलोकयन्त सर्वत्र द्रष्टुं तत्र महेश्वरम् । नासौ दृष्टिपथे तेषां बभूव भयविह्वलः
धार्यं वर्षसहस्राणिबहून्यपिसुसञ्चितम् । पृथिवींसकलांव्याप्यस्थितंददृशिरेद्विजाः
तद्दृष्ट्वा सुमहल्लिङ्गं रुधिराक्तं जलैः प्लुतम् । ब्राह्मणाःसंशयगतादह्यमाना वसुन्धरा
तल्लिङ्गं तत्र संस्थाप्य चक्रुस्तां नर्मदा नदीम् । तज्जलंनर्मदारूपंतल्लिङ्गममरकण्टकम्
नरकं वारयत्येतत्सेवितं नरकापहम् । भूतग्रहाश्च सर्वेऽपि यास्यन्ति विलयंध्रुवम्

तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यो भुवि दुर्लभान् ॥ ७ ॥

लिङ्गानि नार्मदेयानि पूजयिष्यन्ति ये नरा । तेषां रुद्रमयो देहो भविष्यतिनसंशयः
चातुर्मास्ये विशेषेण लिङ्गपूजा महाफला । चातुर्मास्ये रुद्रजपं हरपूजा शिवे रतिः
पञ्चामृतेन स्नपनं न तेषां गर्भवेदना । ये करिष्यन्ति मधुना सेचनं लिङ्गमस्तके
तेषां दुःखसहस्राणि यास्यन्तिविलयं ध्रुवम् । दीपदानंकृतंयेनचातुर्मास्येशिवाग्रतः
कुलकोटिं समुद्धृत्य स्वेच्छया शिवलोकभाक् । चन्दनागुरुधूपैश्चसुश्वेतकुसुमैरपि

नर्मदाजललिङ्गं ये चर्चयिष्यन्तितेशिवाः । शिलात्वमापन्नाःप्राणिनामपिकाकथा
तत्सम्भूतं महालिङ्गं जलधारणसंयुतम् । पूजयित्वाविधानेनचातुर्मास्येशिवोभवेत्
चातुर्मास्ये ये मनुजा नर्मदामरकण्टके । तीर्थेस्नास्यन्तिनियतास्तेषांवासस्त्रिविष्टपे

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा ते द्विजास्तत्र स्थाप्य लिङ्गं यथाविधि ।
अमरकण्टकतीर्थे च नर्मदां च महानदीम् ॥ १६ ॥

पुनश्चिन्ता पराजाताविश्वस्यक्षोभकारणे । पद्मासन गताभून्वाप्राणायामपरायणाः
चिन्तयामासुरव्यग्रंहृदयस्थंमहेश्वरम् । ततो देवा महेन्द्राद्याःसम्प्राप्यामरकण्टकम्

ब्राह्मणानां स्तुतिं चक्रुर्विनयानतकन्धराः ।
नमोऽस्तु वो द्विजातिभ्यो ब्रह्मविद्भ्यो महेश्वराः ॥ १६ ॥

भूसुरेभ्यो गुरुभ्यश्चविमुक्तेभ्यश्च बन्धनात् । यूयं गुणत्रयातीता गुणरूपागुणाकराः
गुणत्रयमयैर्भावैः सततं प्राणबुद्बुदाः । येषांवाक्यजलेनैव पापिष्ठा अपि शुद्धताम्

प्रयान्ति पापपुञ्जाश्च भस्मसाद्यान्ति पापिनाम् ।
शस्त्रं लोहमयं येषां वागेव तत्समन्विताः ॥ २२ ॥

पापैः परा विभूतानातेषांलोकोत्तरंबलम् । क्षमयापृथिवीतुल्याः कोपेवैश्वानरप्रभाः
पातनेऽनेकशक्तीनां समर्था यूयमेव हि । स्वर्गादीनां तथा याने भवन्तोगतयोध्रुवम्
सत्कर्मकारकाश्चैव सत्कर्मनिरताः सदा । सत्कर्मफलदातारः सत्कर्मभ्यो मुमुक्षवः
सावित्रीमन्त्रनिरता ये भवन्तोघनाशनाः । आत्मानं यजमानं च तारयन्ति न संशयः
वह्नयश्चतथाविप्रास्तर्पिताःकार्यसाधकाः । चातुर्मास्येविशेषेण तेषां पूजामहाफला
कोपिताः सर्वदेहस्य नाशनाय भवन्तिहि । तावन्नवज्रमिन्द्रस्यशूलं नैव पिनाकिनः

दण्डो यमस्य तावन्नो यावच्छापो द्विजोद्भवः ।
अग्निना ज्वाल्यते दृश्यं शापोऽदृष्टानपि स्वयम् ॥ २६ ॥

हन्ति जातानजातांश्चतस्माद्विप्रंनकोपयेत् । विप्रकोपाग्निना दग्धोनरकान्नविमुच्यते
शस्त्रक्षतोऽपि नरकान्मुच्यते नात्र संशयः । देवानामपिसर्वेषां सामर्थ्यं भेदने न हि

वाङ्मात्रेण हि विप्रस्य भिद्यते सकलञ्जगत् ।
ते यूयं गुरवोऽस्माकं विश्वकारणकारकाः ॥ ३२ ॥
प्रसादपरमा नित्यं भवन्तु भुवनेश्वराः । ईश्वरेण विना सर्वे वयं लोकाश्च दुःखिताः
तत्कथ्यतां स भगवान् कुत्रास्ते परमेश्वरः ।

गालव उवाच

ज्ञात्वा मुनिभयत्रस्तं देवेशं शूलपाणिनम् ॥ ३४ ॥
सुरभीगर्भसम्भूतं देवानूचुर्महर्षयः । स्वागतं देवदेवेभ्यो ज्ञातो वै स महेश्वरः ॥
तत्र गच्छन्तु देवेशा यत्र देवः सनातनः । इत्युक्त्वा ते महात्मानः सहदेवैर्ययुस्तदा
गोलोकं देवमार्गेण यत्र पायसकर्दमः । घृतनद्यो मधुह्रदा नदीना यत्र सङ्कुशः ॥३७
पूर्वजानां गणाः सर्वे दधिपीयूषपाणयः । मरीचिपाः सोमपाश्च सिद्धसङ्घास्तथापरे
घृतपाश्चैवसाध्याश्च यत्र देवाः सनातनाः । ते तत्र गत्वा मुनयोदद्दृशुः सुरभीसुतम्
तेजसाभास्करश्चैवनीलनामेतिविश्रुतम् । इतस्ततोभिधावन्तं गवां सङ्घातमध्यगम्
नन्दा सुमनसाचैव सुरूपा च सुशीलका । कामिनीनन्दिनीचैव मेध्या चैवहिरण्यदा
धनदा धर्मदा चैव नर्मदाम्कलप्रिया । वामना लम्बिकाकृष्णादीर्घशृङ्गासुपिच्छिका
तारा तरेयिका शान्ता दुर्विषह्या मनोरमा ।
सुनासा दीर्घनासा च गौरा गौरमुखी हया ॥ ४३ ॥
हरिद्रवर्णानीला च शङ्खिनी पञ्चवर्णका । विनताभिनता चैव भिन्नवर्णा सुपत्रिका
जयाऽरुणा च कुण्डोध्नी सुदती चारुचम्पका ।
एतासां मध्यगं नीलं दृष्ट्वा ता मुनिदेवताः ॥ ४५ ॥
विचरन्तिसुरूपंतंसञ्जातविस्मयोन्मुखाः । मुनीश्वराःकृपाविष्टा इन्द्राद्याहृष्टमानसाः
स्तुतिमारेभिरे कर्तुं तेजसा तस्य तोषिताः ।

शूद्र उवाच

कथं नालेति नामासौ जातोऽयमद्भुताकृतिः ॥ ४७ ॥
किमस्तुवन् प्रसन्नास्ते ब्राह्मणा विश्वकारणम् ।

गालव उवाच

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ ४८ ॥
श्वेतः खुरविषाणेषु स नीलोवृषभः स्मृतः । चतुष्पादोधर्मरूपोनीललोहितविग्रहः
कपिलः खुरचिह्नेषु स नीलोवृषभःस्मृतः । योऽसौ महेश्वरोदेवो वृषश्चापिसएवहि
चतुष्पादो धर्मरूपो नालः पञ्चमुखो हरः । यस्य सन्दर्शनादेव वाजपेयफलं लभेत्
नीलेच पूजितेयस्मिन् पूजितंसकलञ्जगत् । स्निग्धग्रासप्रदानेनजगदाव्यापितम्भवेत्
यस्य देहे सदा श्रीमान् विश्वव्यापी जनार्दनः ।
नित्यमभ्यर्च्यते योऽसौ वेदमन्त्रैः सनातनैः ॥ ५३ ॥

ऋषय ऊचुः

त्वं देवः सर्वगोप्तृणां विश्वगोप्तासनातनः । विघ्नहर्ता ज्ञानदश्चधर्मरूपश्च मोक्षदः
त्वमेव धनदःश्रीदः सर्वव्याधिनिषूदनः । जगतां शर्मकरणे प्रवृत्तः कनकप्रदः ॥५५॥
तेजसां धाम सर्वेषां सौरभेय महाबल !। शृङ्गे धृतश्च कैलासःपार्वतीसहितस्त्वया
वेदस्तुत्यो वेदमयो वेदात्मा वेदवित्तमः । वेदवेद्यो वेदयानो वेदरूपो गुणाकरः ॥
गुणत्रयेभ्योऽपि परो याथात्म्यं वेदकस्तव ।
वृषस्त्वं भगवन् देवं यस्तुभ्यं कुरुते त्वघम् ॥ ५८ ॥
वृषलः स तु विज्ञेयो रौरवादिषु पच्यते । पदा स्पृष्ट्वा स तु नरो नरकादिषुयातनाः
सेव्यते पापनिचयैर्निगाढप्रायबन्धनैः । क्षुत्क्षामंच तृषाऽऽक्रान्तंमहाभारसमन्वितम्
निर्दयायेप्रशोष्यन्तिमतिस्तेषांनशाश्वती । चतुर्भिःसहितंमर्त्या विवाहविधिनातुये
विवाहं नीलरूपस्य येकरिष्यन्तिमानवाः । पितृनुद्दिश्यतेषां वै कुलेनैवास्तिनारकी
त्वं गतिःसर्वलोकानां त्वंपितापरमेश्वरः । त्वयाविना जगत्सर्वं तत्क्षणादेवनश्यति
परा चैवतु पश्यन्तीमध्यमावैखरीतथा । चतुर्विधाना वचसामीश्वरंत्वांविदुर्बुधाः
चतुः शृङ्गं चतुष्पादं द्विशीर्षं सप्तहस्तकम् । त्रिधाबद्धं धर्ममयं त्वामेव वृषभंविदुः
तृप्तिदं सर्वभूतानां विश्वव्यापकमोजसा । ब्रह्मधर्ममयंनित्यं त्वामात्मानं विदुर्जनाः
अच्छेद्यस्त्वमभेद्यस्त्वमप्रमेयो महायशाः ।

अशोष्यस्त्वमदाह्योऽसि विदुः पौराणिका जनाः ॥ ६७ ॥
त्वदाधारमिदं सर्वं त्वदाधारमिदञ्जगत् ।
त्वदाधाराश्च देवाश्च त्वदाधारं तथाऽमृतम् ॥ ६८ ॥
जीवरूपेण लोकांस्त्रीन् व्याप्य तिष्ठसि नित्यदा ।
एवं स संस्तुतो नीलो विप्रैस्तैः सोमपायिभिः ॥ ६६ ॥
प्रसन्नवदनोभूत्वा विप्रान्प्रणतितत्परः । पुनरेव वचः प्रोचुर्विप्रा कृतशिवागसः ॥
वरं ददुर्महेशस्य नीलरूपस्य धर्मतः । एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ॥
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि । पुनरेवतु सर्पन्तं दृष्ट्वा नीलं महावृषम् ॥
स्वल्पक्रोधसमाविष्टं द्विजाश्चक्रुस्तमङ्कितम् ।
चक्रञ्च वामभागेषु शूलं पार्श्वे च दक्षिणे ॥ ७३ ॥
उत्ससृजुर्गवां मध्ये तं देवैर्गोपितं तदा । ततो देवगणाः सर्वे महर्षीणां गणाः पुनः
स्वानि स्थानानि ते जग्मुर्मुनयो वीतमत्सराः ॥ ७४ ॥
एवं ऋषीणां दयितासु सक्तः कामार्त्तचित्तो मुनिपुङ्गवानाम् ।
शापं समासाद्य शिवोपि भक्त्या रेवाजलेऽगात्सुशिलामयत्वम् ॥ ७५ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांतृतीये ब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानेवृषस्तुतिर्नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

# अष्टाविंशोऽध्यायः

## पैजवनोपाख्यानफलवर्णनम्

गालव उवाच

इति ते कथितं सर्वं शालग्रामकथानकम् । महेश्वरस्यचोत्पत्तिर्यथालिङ्गत्वमापसः
तस्माद्धरं लिङ्गरूपं शालग्रामगतं हरिम् । येऽर्चयन्तिनराभक्त्यानतेषां दुःखयातनाः
चातुर्मास्ये समायाते विशेषात्पूजयेच्चतौ । अर्चितौ यावभेदेन स्वर्गमोक्षप्रदायकौ
देवौ हरिहरौ भक्त्या विप्रवह्निगवाङ्गतौ । येऽर्चयन्तिमहाशूद्र! तेषामोक्ष प्रदोहरिः
वेदोक्तं कारयेत्कर्म पूर्तेष्टं वेदतत्परः । पञ्चायतनपूजा च सत्यवादोह्यलोलता ॥ ५ ॥

विवेकादिगुणैर्युक्तः स शूद्रो याति सद्गतिम् ।
ब्रह्मचर्यं तपो नाऽन्यद् द्वादशाक्षरचिन्तनात् ॥ ६ ॥
मन्त्रैर्विना षोडशसोपचारैः कार्या सुपूजानरकादिहन्तुः ।
यथा तथा वै गिरिजापतेश्च कार्या महाशूद्र! महाघहर्त्री ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

एवं कथयतोरेषा रजनी क्षयमाययौ । सच्छूद्रो गालवश्चैव शिष्यैश्च परिवारितः ॥
स तेन पूजितो विप्रो ययौ शीघ्रं निजाश्रमम् ॥ ८ ॥
य इमं शृणुयान्मर्त्यो वाचयेच्छ्रावयेच्चवा । श्लोकंवासर्वमपिचतम्यपुण्यक्षयोन हि

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्या संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानफल
वर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

# एकोनत्रिंशोऽध्यायः

## कार्त्तिकेयोत्पत्तिवर्णनपूर्वकध्यानयोगवर्णनम्

नारद उवाच

कथं नित्या भगवती हरपत्नी यशस्विनी ! योगसिद्धिं सुमहतीं प्राप मासचतुष्टये
मन्त्रराजमिमं जप्त्वा द्वादशाक्षरसंभवम् । एतन्मे विस्तरेण त्वंकथयस्वयथातथम्

ब्रह्मोवाच

चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते पार्वती नियतव्रता । मनसाकर्मणा वाचा हरिभक्तिपरायणा
चारुशृङ्गे पितुर्नित्यं तिष्ठन्ती तपसि स्थिता ।
देवद्विजाग्निगोश्वत्थातिथिपूजापरायणा ॥ ४ ॥

चातुर्मास्येऽथ संप्राप्तेविमलेहरिवासरे । जजाप परमं मन्त्रं यथादिष्टं पिनाकिना
शङ्खचक्रधरो विष्णुश्चतुर्हस्तः किरीटधृक् । मेघश्यामोम्बुजाक्षश्चसूर्यकोटिसमप्रभः
गरुडाधिष्ठितो दृष्टो वसन् व्याप्य जगत्त्रयम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभयुतः पीतकौशेयवस्त्रकः ॥ ७ ॥

सर्वाभरणशोभाभिरभिदीप्तमहावपुः । बभाषे पार्वतीं विष्णुः प्रसन्नवदनः शुभाम्
देवि! तुष्टोऽस्मि भद्रन्ते कथयस्व त्वमीप्सितम् ॥ ८ ॥

पार्वत्युवाच

तज्ज्ञानममलं देहि येन नावर्त्तनं भवेत् । इत्युक्तः समहाविष्णुः प्रत्युवाचहरप्रियाम्
स एष देवदेवेशस्तव वक्ष्यत्यसंशयम् । सएवभगवान्साक्षी देहान्तरबहिःस्थितः
विश्वस्त्रष्टा चगोप्ताचपवित्राणांचपावनः । अनादिनिधनो धर्मोधर्मादीनांप्रभुर्हि सः
अक्षरत्रयसेव्यं यत्सकलं ब्रह्म एव सः । मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपेण यो योजन्मधरो हि सः
ममाधिकारो नैवास्तिवक्तुं तवनसंशयः । इत्युक्त्वाभगवानीशोविरराममहृष्टवान्
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्गिरिजाश्रममभ्यगात् । सर्वभूतगणैर्युतोविमानेसार्वकामिके

तथा वै भगवान् देवः पूजितः परमेश्वरः। सखीनामपि प्रत्यक्षमाश्चर्यं समजायत
स्तुत्वाऽथ तं महादेवं विष्णुर्देहे लयं ययौ। अथोवाचमहेशानः पार्वतीं परमेश्वरः
विमानवरमारोह तुष्टोऽहं तव सुव्रते!। गत्वैकान्तप्रदेशन्ते कथये परमं महः॥ १७॥
एवमुक्त्वाभगवतीं करे गृह्य मुदान्वितः। विमानवरमारोप्य लीलया प्रययौ तदा

नानाधातुमयानद्रीन् नानावर्णविचित्रितान्।
नदीनिर्झरकुञ्जांश्च नदान्कोकिलकूजितान्॥ १९॥
अखातान् देवखातांश्च गङ्गाद्याःसरितस्तथा।
सौगन्धिकांश्च कह्लारान् सहस्रदलपिञ्जरान्॥ २०॥
दर्शयन् कर्णिकारांश्च कोविदारान् महाद्रुमान्।
तालांस्तमालान् हिन्तालान् प्रियङ्गून् पनसानपि॥ २१॥

तिलकान् बकुलांश्चैवबहूनपिवपुष्पितान्। क्षेत्राणिपद्मनाभस्यपिञ्जराणिविदर्शयन्
ययौ देवनदीतीरे गतं शरवणं महत्। फुल्लकाशं स्वर्णमयंशरस्तम्बगणान्वितम्
हेमभूमिविभागस्थं वह्निकान्तिमृगद्विजम्। तत्र तीरगतानाचमुनीनामूर्ध्वरेतसाम्
आश्रमान्सविमानाग्रेतिष्ठन्पत्न्यैह्यदर्शयत्। षट्कृत्तिकाश्चदद्दृशोपार्वत्यावनसन्निधौ

स्नाताः स्वलङ्कृताश्चन्द्रपत्न्यस्ता विरजाम्बराः।
ऊचुस्ता योजितकराः क त्वं पुत्राय गच्छसि॥ २६॥
तत्कथ्यतां महाभागे! स च ते दर्शनं गतः।

पार्वत्युवाच

मम भाग्यवशात्पुत्रः कथमुत्सङ्गमाहरेत्॥ २७॥
महाभाग्यवशात्पुंसां क्वापि सौख्यं निरन्तरम्॥ २८॥

सुतनाम्नाप्यहं पृष्टा भवतीनाचदर्शनात्। किमर्थमिहसंप्राप्ताःकथ्यतामविलम्बितम्

कृत्तिका ऊचुः

वयं तव सुतं न्यस्तं प्रदातुमिह सुन्दरि। चातुर्मास्यैरचौरस्मातुमागतादेवनिम्नगाम्

पार्वत्युवाच

…सत्यमेवहि कथ्यताम् । …हास्यं जायते चेतरेतरम्

कृत्तिका ऊचुः

सत्यं वदामहे देवि! तवत्रैलोक्यशोभिते !। अस्यस्तम्बसमूहस्यमध्यस्थंबालकंवृणु
कृत्तिकानां वचःश्रुत्वाशङ्कितापार्वतीतदा । ददर्श बालं दीप्ताभं षण्मुखंदीप्तवर्चसम्
तडित्कोटिप्रतीकाशंरूपदिव्यश्रियायुतम् । वह्निपुत्रं च गाङ्गेयं कार्त्तिकेयंमहाबलम्
साघत्सेतिगृहीत्वातंकुमारंपाणिनामुदा । विमानमध्यमादायकृत्वोत्सङ्गेह्यवाचह

चिरं जीव चिरं नन्द चिरं नन्दय बान्धवान् ।

इत्युक्त्वा गाढमालिङ्ग्य मूर्ध्नि चाऽऽघ्राय तं सुतम् ॥ ३६ ॥

संहृष्टा परमोदारं भास्वरंहृष्टमानसम् । कार्त्तिकेयो महाप्रेम्णा प्रणिपत्य महेश्वरम्
ततः प्राञ्जलिरव्यग्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । तद्विमानं ययौ शीघ्रं तीर्त्वा नदनदीपतीन्
जम्बूद्वीपमतिक्रम्य लक्षयोजनमायतम् । ततः समुद्रं द्विगुणंलवणोदं तथैवच
उत्तरांश्च कुरून्गीत्वाविमानेनार्कतेजसा । समुद्राद्द्विगुणं द्वीपं कुशनामेतिकीर्तितम्
दिव्यलोकसमाक्रान्तंदिव्यपर्वतसङ्कुलम् । इक्षूदाद्द्विगुणंद्वीपंतद्द्वीपाद्द्विगुणंपुनः

तमतिक्रम्य तस्सिन्धोर्द्विगुणं क्रौञ्चसञ्ज्ञितम् ।

ततोऽपि द्विगुणं सिन्धुः सुरोदो यक्षसेवितः ॥ ४२ ॥

ततोऽपिद्विगुणंद्वीपंशाकद्वीपेतिसंज्ञितम् । अर्णवद्विगुणंतस्मादाज्यरूपंसुनिर्मितम्
परमस्वादुसम्पूर्णं यत्र सिद्धाःसमन्ततः । तस्माच्चद्विगुणंद्वीपंशाल्मलीवृक्षसंज्ञितम्
समुद्रो द्विगुणस्तत्रदधिमण्डोदसंभवः । साध्यावसन्तिनियतंमहत्तपसिसंस्थिताः
ततोऽपि द्विगुणंद्वीपंप्लक्षनामेति विश्रुतम् । क्षीरोदोद्विगुणस्तत्रयत्रसन्तिमहर्षयः
षडिमानिसुदिव्यानिभौमाःस्वर्गाउदाहृताः । तत्रस्वर्णमयीभूमिस्तथारजतसंयुता
वृक्षैर्मधूपमस्वादैः सर्वकामप्रदायिका । यत्र स्त्रीपुरुषाणां च कल्पवृक्षागृहेस्थिताः
वासांसिभूषणानां च समूहान् वर्षयन्तिच । एतानिदृष्टविहानिद्वीपानिमुनिसत्तम
महेश्वरो विमानेनत्यक्त्वामद्विहायसा । प्लक्षद्वीपस्यचप्रान्ते द्विगुणः क्षीरसागरः
तन्मध्ये सुमहद्द्वीपं श्वेतं नामसुनिश्चितम् । रम्यकःपर्वतस्तत्रशतशृङ्गोऽमितद्रुमः

तस्य शृङ्गे महद्दिव्ये विमानं स्थापितं यदा । नवामृतफलैर्वृक्षैः सेचिते हेमवालुके क्षीरस्यन्देन विहृते शिलातलसुसंवृते । विविक्ते सर्वसुभगे मणिरत्नसमन्विते उमायै कथयामास देवदेवः पिनाकधृक् । कार्त्तिकेयोऽपि शुश्राव गुह्याद्गुह्यतरं महत् ध्यानयोगं मन्त्ररूपं द्वादशाक्षरसंज्ञितम् । प्रणवेन युतं साग्रं सरहस्यं श्रुतेः परम्

ईश्वर उवाच

अक्षरत्रयसंयुक्तो मन्त्रोऽयं सकृदक्षरः । माघमाससहितश्चायममायो विश्वपावनः

विष्णुरूपो विष्णुमध्यो मन्त्रत्रयसमन्वितः ।
तुरीयकलयाशेषब्रह्माण्डगणसेवितः ॥ ५७ ॥
निष्कामैर्मुनिभिः सेव्यो महाविद्यादिसेवितः ।
नाभितः शिरसि व्याप्त अखण्डसुखदायकः ॥ ५८ ॥

ओङ्कारेति प्रियोक्तिस्ते महादुःखविनाशन । तपूर्वप्रणवं ध्यात्वा ज्ञानरूपं सुखाश्रयम् ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म देहशोधनतत्परः । पद्मासनपरो भूत्वा संपूज्य ज्ञानलोचनः ॥ नेत्रे मुकुलिते कृत्वा करौ कृत्वा तु सहतौ । चेतसि ध्यानरूपेण चिन्तयेच्छिवमङ्गलम्

तडित्कोटिप्रतीकाशं सूर्यकोटिसमच्छविम् ।
चन्द्रलक्षसमाच्छन्नं पुरुषं द्योतिताखिलम् ॥ ६२ ॥

मूर्त्तामूर्त्तविराजन्तं सदसद्रूपमव्ययम् । चिन्तयित्वा विराड्रूपं न भूयःस्तनपो भवेत्

चातुर्मास्ये सकृदपि ध्यानात्कल्मषसंक्षयः ॥ ६३ ॥
एवं च मद्रूपमिदं मुरारेरमोघवीर्यं गुणतोऽप्यपारम् ।
विलोकयेद्योऽघविनाशनाय क्षणं प्रभुर्जन्मशतोद्भवाय ॥ ६४ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये कार्त्तिकेयोत्पत्तिवर्णनपूर्वक-ध्यानयोगोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

# त्रिंशोऽध्यायः

## ज्ञानयोगवर्णनम्

### पार्वत्युवाच

ध्यानयोगमहं प्राप्यज्ञानयोगमवाप्नुयाम् । तथाकुरुष्वदेवेश! यथाऽहममरीभवे ॥ १

### ईश्वर उवाच

प्रत्युक्तोऽयं मन्त्रराजोद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितः । जप्तव्यः सुकुमाराङ्गि वेदेसारःसनातनः
प्रणवः सर्ववेदाद्यःसर्वब्रह्माण्डयाजकः । प्रथमःसर्वकार्येषुसर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ३ ॥
सितवर्णो मधुच्छन्दा ऋषिर्ब्रह्मा तु देवता । परमात्मा तु गायत्रीनियोगःसर्वकर्मसु
एतद्ब्रह्ममयं बीजंविश्वमन्त्रसमन्वितम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वाढ्यंसदसद्रूपमव्ययम् ॥ ५॥
नकारः पीनवर्णस्तु जलबीजः सनातनः । बीजंपृथ्वीमनश्छन्दोविषहाविनियोगतः

मोकारः पृथिवीबीजो विश्वामित्रसमन्वितः ।
रक्तवर्णो महातेजा धनदो विनियोजितः ॥ ७ ॥

भकारः पद्मवर्णस्तु जलबीजः सनातनः । मरीचिना समायुक्तः पूजितःसर्वभोगदः
गकारो हेमरक्ताभोभरद्वाजसमन्वितः । वायुबीजोविनियोगं कुर्वतां सर्वभोगदः
वकारः कुन्दधवलोव्योमबीजोमहाबलः । ऋषिमन्त्रिपुरस्कृत्ययोजितोमोक्षदायकः

तेकारो विद्युद्विकारः सोमबीजं महत्स्मृतम् ।
अङ्गिरा मुनिशार्दूलो वर्जितं कर्मकामिकम् ॥ ११ ॥

वाकारो धूम्रवर्णश्च सूर्यबीजं मनोजवम् । पुलस्त्यर्षिसमायुक्तं नियुक्तंसर्वसौख्यदम्
सुकाराक्षरोनित्यं जपाकुसुमभास्वरः । मनोर्बीजं दुर्विषह्यं पुलहाश्रितमर्थदम् ॥
देकाराक्षरकंवर्णं हंसरूपं च कर्बुरम् । सिद्धिबीजं महासत्त्वं क्रतौ कृतनियोजितम्

वाकारो निर्मलो नित्यं यजमानस्तु बीजभृत् ।
प्रचेताऋषिमाश्रेयं मोक्षे मोक्षप्रदायकम् ॥ १५ ॥

यकारस्य महाबीजं पिङ्गवर्णश्च खेचरी । भूचरी च महासिद्धिः सर्वदामवचिन्तनम्
भृगुयन्त्रे समाभ्यर्च्य नियोगे सर्वकर्मकृत् । गायत्रीच्छन्दएतेषांदेहन्यासक्रमोभवेत्
ओँकारं सर्वदा न्यस्यन्नकारं पादयोर्द्वयोः । मोकारं गुह्यदेशे ते भकारं नाभिपङ्कजे
गकारं हृदये न्यस्य वकारः कण्ठमध्यगः । तेकारंदक्षिणे हस्तेवाकारोवामहस्तकः

सुकारं मुखजिह्वायां देकारः कर्णयोर्द्वयोः ।
वाकारश्चक्षुषोर्द्वन्द्वे यकारं मस्तकंन्यसेत् ॥ २० ॥

लिङ्गमुद्रा योनिमुद्रा धेनुमुद्रा तथा त्रयम् । सकलं कृतमेतद्धि मन्त्ररूपे विनाक्षरम्
योजयेत्प्रत्यहं देवि न स पापैः प्रलिप्यते । एतद्द्वादशलिङ्गारं कर्मस्थं द्वादशाक्षरम्
शालग्रामशिलाश्चैव द्वादशैवहि पूजिताः । ताभिः महाक्षरैरेभिः प्रत्यक्षैःसहसम्पदि
यथावर्णमनुध्यानैर्मुनिबीजसमन्वितैः । विनियोगेन सहितैश्छन्दोभिः समलङ्कृतैः
ध्यानैर्जपैः पूजितैश्च भक्ताना मुनिसत्तम । मोक्षोभवतिबन्धेभ्यःकर्मजेभ्योनसंशयः

अयं हि ध्यानकर्माख्यो योगो दुष्प्राप्य एव हि ।
ध्यानयोगं पुनर्वच्मि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ २६ ॥

ध्यानयोगे न पापानां क्षयो भवति नान्यथा । जपध्यानमयोयोगःकर्मयोगोनसंशयः
शब्दब्रह्मसमुद्भूतो वेदेन द्वादशाक्षरः । ध्यानेन सर्वमाप्नोतिध्यानेनाप्नोतिशुद्धताम्
ध्यानेन परमं ब्रह्ममूर्त्तौ योगस्तुध्यानजः । सावलम्बोध्यानयोगोयन्नारायणदर्शनम्
द्वितीयोनिखिलालम्बो ज्ञानयोगेन कीर्त्तितः । अरूपमप्रमेयं यत्सर्वकायं महः सदा

तडित्कोटिसमप्रख्यं सदोदितमखण्डितम् ।
निष्कलं सकलं चापि निरञ्जनमयं वियत् ॥ ३१ ॥

तत्स्वरूपं भोगरूपं तुर्यातीतमनूपमम् । विश्रान्तकरणं मूर्त्तं प्रकृतिस्थं च शाश्वतम्
दृश्यादृश्यमजं चैव वैराजं सन्ततोज्ज्वलम् । बहुलं सर्वजं धर्म्यंनिर्विकल्पमनीश्वरम्
अगोत्रं निर्मलं चापि ब्रह्माण्डशतकारणम् । निरीहंनिर्ममं बुद्धिशून्यरूपं च निर्मलम्
सदीशरूपं निर्देहंनिर्द्वन्द्वंसाक्षिमात्रकम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशंध्यातृध्येयविवर्जितम्

नोपमेयमगाधं त्वं स्वीकुरुष्व स्वतेजसा ।

पार्वत्युवाच

तत्कथं प्राप्यते सम्यग्ज्ञानयोगस्वरूपकम् ॥ ३६ ॥
नारायणममूर्त्तञ्च स्थानं तस्य वद प्रभो !।

ईश्वर उवाच

शिरःप्रधानं गोत्रेषु शिरसा धार्यते महान् ॥ ३७ ॥
शिरसा पूजितो देवः पूजितं सकलं जगत् । शिरसाधार्यतेयोगःशिरसाध्रियतेबलम्
शिरसा ध्रियते तेजो जीवितं शिरसि स्थितम् ।
सूर्यः शिरो ह्यमूर्त्तस्य मूर्त्तस्यापि तथैव च ॥ ३६ ॥
उरस्तुपृथिवीलोकः पादश्चैव रसातलम् । अयं ब्रह्माण्डरूपे च मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपतः
विष्णुरेव ब्रह्मरूपो ज्ञानयोगाश्रयः स्वयम् । सृजते सर्वभूतानि पालयत्यपि सर्वशः
विनाशयति सर्वं हि सर्वदेवमयोह्ययम् । सर्वमासेष्वाधिपत्यंयेनविष्णोःसनातनम्
तस्मात्सर्वेषु मासेषु सर्वेषु दिवसेष्वपि । सर्वेषुयामकालेषुसंस्मरन् मुच्यतेहरिम्
चातुर्मास्ये विशेषेण ध्यानमात्रात्प्रमुच्यते । अमूर्त्तसेवनंगङ्गातीर्थध्यानाद्वरं परम्
सर्वदानोत्तरञ्चैव चातुर्मास्ये न संशयः । सर्वमेवकृतंपापं चातुर्मास्ये शुभाशुभम् ॥
अक्षय्यं तद्भवेद्देवि! नात्र कार्या विचारणा । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानयोगो बहूत्तमः
सेवितो विष्णुरूपेण ब्रह्ममोक्षप्रदायकः । शृणुष्वावहिताभूत्वामूर्त्तामूर्त्तेस्थितिशुभे
न कथ्येयं यस्य कस्य सुतस्याऽप्यवशस्य च ।
अदान्तायाथ दुष्टाय चलचित्ताय दाम्भिके ॥ ४८ ॥
स्ववाक्च्युताय निन्द्याय न वाच्या योगजाकथा ।
नित्यभक्ताय दान्ताय शमादिगुणिने तथा ॥ ४६ ॥
विष्णुभक्ताय दातव्या शूद्रायापि द्विजन्मने । अभक्तायाप्यशुचये ब्रह्मस्थानंनकथ्यते
मद्भक्त्यायोगसिद्धित्वं गृहाणाशुतपोधने !। अभूतं ज्ञानगम्यं तं विद्धिनारायणंपरम्
नादरूपेण शिरसि तिष्ठन्तं सर्वदेहिनाम् । स एव जीवशिर्षसिवर्त्तते सूर्यबिम्बवत्
सदोदितः सूक्ष्मरूपोमूर्त्तोमूर्त्याप्रणीयते । अभ्यासेनसदा देवि! प्राप्यते परमात्मकः

शरीरे सकलादेवायोगिनोनिवसन्तिहि । कर्णे तु दक्षिणे नद्यो निवसन्तितथापराः
हृदये चेश्वरः शम्भुर्नाभौ ब्रह्मा सनातनः । पृथ्वीपादतलाग्रे तु जलं सर्वगतं तथा ॥
तेजो वायुस्तथाकाशंविद्यतेभालमध्यतः । हस्ते च पञ्चतीर्थानिदक्षिणेनात्रसंशयः

सूर्यो यद्दक्षिणं नेत्रं चन्द्रो वाममुदाहृतम् ।
भौमश्चैव बुधश्चैव नासिके द्वे उदाहृते ॥ ५७ ॥

गुरुश्च दक्षिणे कर्णे वामकर्णे तथा भृगुः । मुखे शनैश्चरः प्रोक्तो गुदे राहुः प्रकीर्तितः
केतुरिन्द्रियगः प्रोक्तो ग्रहाः सर्वे शरीरगाः । योगिनो देहमासाद्य भुवनानि चतुर्दश

प्रवर्त्तन्ते सदा देवी तस्माद्योगं सदाऽभ्यसेत् ।
चातुर्मास्ये विशेषेण योगी पापं निकृन्तति ॥ ६० ॥

मुहूर्त्तमपियोयोगीमस्तकेधारयेन्मनः । कर्णौ पिधाय पापेभ्यो मुच्यतेऽसौनसंशयः
अन्तरं नैव पश्यामि विष्णोर्योगपरस्यवा । एकोपियोगीयद्गेहे ग्रासमात्रंभुनक्तिच

कुलानि त्रीणि सोऽवश्यं तारयेदात्मना सह ।
यदि विप्रो भवेद्योगी सोऽवश्यं दर्शनादपि ॥ ६३ ॥

सर्वेषां प्राणिनां देविपापराशिनिषूदकः । सक्रियोयोगनिरतः सच्छूद्रोयोगभाग्यदि
भवेत्सद्गुरुभक्तोवासोप्यमूर्त्तफलंलभेत् । यो योगीनियताहारः परब्रह्मसमाधिमान्

चातुर्मास्ये विशेषेण हरौ सलयभाग्भवेत् ।
यथा सिद्धकरस्पर्शाल्लोहं भवति काञ्चनम् ॥ ६६ ॥

तथा मूर्त्तं हरिप्रीत्या मनुष्योलयमाव्रजेत् । यथा मार्गजलं गङ्गापतितं त्रिदशैरपि
सेवितं सर्वफलदं तथा योगी विमुक्तिदः । यथा गोमयमात्रेण वह्निर्दीप्यति सर्वदा
देवतानांमुखंतद्धिकीर्त्यतेयाज्ञिकैःसदा । एवं योगी सदाभ्यासाज्जायतेमोक्षभाजनम्

योगोऽयं सेव्यते देवि ! ज्ञानसिद्धिप्रदः सदा ।
सनकादिभिराचार्यैर्मुमुक्षुभिरधीश्वरैः ॥ ७० ॥

प्रथमं ज्ञानसम्पत्तिर्जायते योगिनां सदा । तेषां गृहीतमात्रस्तु योगी भवतिपार्वति

ततस्तु सिद्धयस्तस्य त्वणिमाद्याःपुरोगताः ।

भवन्ति तत्राऽपि मनो न दद्याद्योगिनाम्वरः ॥ ७२ ॥
सर्वदानक्रतुभवं पुण्यं भवति योगतः । योगात्सकलकामाप्तिर्न योगाद्भुवि प्राप्यते
नाम हृदयग्रन्थिर्न योगान्ममतारिपुः । न योगसिद्धस्य मनोहर्तुं केनाऽपि शक्यते
स एव विमलो योगी यच्चित्तं शिरसि स्थितम् ।
स्थिरीभूतव्यथं नित्यं दशमद्वारसम्पुटे ॥ ७५ ॥
कर्णौ पिधाय मर्त्यस्य नादरूपं विचिन्वतः । तदेवप्रणवस्याग्रं तदेव ब्रह्म शाश्वतम्
तदेवाऽनन्तरूपाख्यं तदेवामृतमुत्तमम् ।
प्राणवायौ प्रबोधोऽयं जठराग्नेर्महत्पदम् ॥ ७७ ॥
पञ्चभूतं निवासं यज्ज्ञानरूपमिदं पदम् । पदं प्राप्यविमुक्तिःस्याज्जन्मसंसारबन्धनात्
पदाप्तिर्दुर्लभा लोके योगसिद्धिप्रदायिका ॥ ७६ ॥
एवं ब्रह्ममयं विभाति सकलं विश्वं चरं स्थावरं
विज्ञानाख्यमिदं परं स भगवान् विष्णुः स्वयं व्यापकः ।
ज्ञात्वा तं शिरसि स्थितं बहुचरं योगेश्वराणां परं
प्राणी मुञ्चति सर्पवज्जगतिजां निर्मोकमायाकृतिम् ॥ ८० ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे
ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये ज्ञानयोगकथनं नाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

# एकत्रिंशोऽध्यायः

## मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिवर्णनम्

### ईश्वर उवाच

यदा चित्तामलं कर्म त्यक्त्वा कर्मसुजायते । तदाज्ञानमयोयोगीजीवतांमोक्षदायकः
यदानिर्ममता देहे यदा चित्तं सुनिर्मलम् । यदा हरौभक्तिस्तदा बन्धो न कर्मणा
कुर्वन्नेवहिकर्माणिमनः शान्तं नृणां यदा । तदा योगमयी सिद्धिर्जायतेनात्रसंशयः
गुरुत्वं स्थानमसकृदनुभूय महामतिः । जीवन्विष्णुत्वमासाद्य कर्मसङ्गात्प्रमुच्यते
कर्माणिनित्यजातानिनित्यनैमित्तिकानि च । इच्छयानैवसेव्यानिदुःखतापविवृद्धये

कर्मणामीशितारञ्च विष्णुं विद्धि महेश्वरि !।

तस्मिन्संत्यज्य सर्वाणि संसारान्मुच्यतेऽखिलात् ॥ ६ ॥

एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परन्तपः । एतदेव परं श्रेयो यत्कृष्णे कर्मणोर्पणम् ॥ ७ ॥
अयं हि निर्मलो योगोनिर्गुणःसउदाहृतः । तद्विष्णोःकर्मजनितंशुभत्वप्रतिपादनम्
तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः । यावत्कुले भक्तियुतः सुतोनैवप्रजायते

तावद् द्विजाश्च गर्जन्ति तावद्गर्जति पातकम् ।

तावत्तीर्थान्यनेकानि यावद्भक्तिं न विन्दति ॥ १० ॥

स एव ज्ञानवाँल्लोकेयोगिनांप्रथमो हि सः । महाक्रतूनामाहर्त्ता हरिभक्तियुतोहिसः
निमिषं निर्जयन्मेषं योगः समभिजायते । वार्णाजये योगिनस्तुगोमेधश्चप्रकीर्तितः
मनसो विजये नित्यमश्वमेधफलं लभेत् । कल्पनाविजयान्नित्यंयज्ञं सौत्रमणिलभेत्
देहस्यौत्सर्जनान्नित्यं नरयज्ञःप्रकीर्तितः । पञ्चेन्द्रियपशून्हत्वाऽनग्नौ शीर्षेच कुण्डके
गुरूपदेशविधिना ब्रह्मभूतत्वमश्नुते । स योगी नियताहारो दण्डत्रितयधारकः ॥

त्रिदण्डी स तु विज्ञेयो ज्ञाते देवे निरञ्जने ।

मनोदण्डः कर्मदण्डो वाग्दण्डो यस्य योगिनः ॥ १६ ॥

स योगी ब्रह्मरूपेण जीवन्नेव समाप्यते । अज्ञानी बध्यते नित्यं कर्मभिर्बन्धनात्मकैः

कुर्वन्नेव हि कर्माणि ज्ञानी मुक्तिं प्रयाति हि ।

यदा हि गुरुभिः स्थानं ब्रह्मणः प्रतिपाद्यते ॥ १८ ॥

तदैव मुक्तिमाप्नोति देहस्तिष्ठति केवलम् । यावद्ब्रह्मफलावाप्त्यै प्रयातिपुरुषोत्तमः

तावत्कर्ममयी वृत्तिर्ब्रह्मवृक्षान्तराभवेत् । अवान्तराणिपर्वाणि ज्ञेयानिमुनिभिः सदा

मोक्षमार्गो द्विजानां च श्रुतिस्मृतिसमुच्चयात् ।

मोक्षोऽयं नगराकारश्चतुर्द्वारसमाकुलः ॥ २१ ॥

द्वारपालास्तत्र नित्यं चत्वारस्तु शमादयः । तएव प्रथमं सेव्या मनुजैर्मोक्षदायकाः

शमश्च सद्विचारश्च सन्तोषः साधुसङ्गमः । एते वैहस्तगा यस्य तस्य सिद्धिर्नदूरतः

योगसिद्धिर्विष्णुभक्त्या सद्धर्माचरणेन च । प्राप्यते मनुजैर्देवि! एतज्ज्ञानमलं विदुः

ज्ञानार्थश्च भ्रमन्मर्त्यो विद्यास्थानेषुसर्वशः । सद्योज्ञानंसद्गुरुतो दीपार्चिरिव निर्मला

मुहूर्त्तमात्रमपि यो ह्ययं चिन्तयति ध्रुवम् ।

तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ २६ ॥

रागद्वेषौ परित्यज्य क्रोधलोभविवर्जितः । सर्वत्र समदर्शी च विष्णुभक्तस्यदर्शनम्

सर्वेषामपिजीवानां दयायस्यहृदिस्थिरा । शौचाचारसमायुक्तोयोगीदुःखंनविन्दति

मायादिपटलैर्हीनो मिथ्यावस्तुविरागवान् । कुसंसर्गविहीनश्च योगसिद्धेश्चलक्षणम्

ममतावह्निसंयोगो नराणां तापदायकः । उत्पन्नंशमनं तस्ययोगिनः शान्तिवारणम्

इन्द्रियाणामथोद्धृत्यमनसैव निषेधयेत् । यथा लोहेन लोहं च घर्षितंतीक्ष्णतांव्रजेत्

बुद्धिर्हि द्विविधादेहे हेया ग्राह्याविशुद्धिदा । संसारविषयात्याज्या परब्रह्मणिसाशुभा

अहंकारो यथा देवि पापपुण्यप्रदायकः । ज्ञाते तत्त्वे शुभफलकृते संधाय नान्यथा ॥

श्यामलं च उपस्थं च रूपातीताक्षराः शिवम् ।

हृदिस्थं शिरसिस्थं च द्वयं बन्धविमुक्तये ॥ ३४ ॥

एतदक्षरमव्यक्तममृतं सकलं तव । रूपारूपविष्णुरूपरूपे मूर्त्तं निवेदितम् ॥ ३५ ॥

एवंज्ञात्वाविमुच्येतयोमर्त्यःसंसारबन्धनात् । गुरूपदेशाद्गृहस्थो लभतेनान्यथाक्वचित्

यदा गुरुः प्रसन्नात्मा तस्य विश्वंप्रसीदति । गुरुश्च तोषितोयेन संतुष्टः पितृदेवताः
गुरूपदेशःप्रतिमा सद्विचारः शमेमनः । क्रिया च ज्ञानसहिता मोक्षसिद्धं हिलक्षणम्

क्रियापतिर्विष्णुरेव स्वयमेव हि निष्क्रियः ।

स च प्राणविरूपाय द्वादशाक्षरबीजकः ॥ ३६ ॥

द्वादशाक्षरकं चक्रं सर्वपापनिबर्हणम् । दुष्टानां दमनं चैव परब्रह्मप्रदायकम् ॥ ४० ॥
एतदेव परं ब्रह्म द्वादशाक्षररूपधृक् । मया प्रकाशितं देवि! स्वयं हि विमलंतच ॥

एतल्लोके योगिनां ध्यानरूपं भक्तिग्राह्यं श्रद्धया चिन्तयेच्च ।

चातुर्मास्ये जन्मकोटयां च जातं पापं दग्ध्वा मुक्तिदः कैटभारिः ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नवसरे तत्र क्षीरसागरमध्यतः । निर्गतश्च विमानाग्रे तेजोभाराभिपीडितः
उरोबाहुकृतिकुर्वन्सान्निध्यंसमुपागतः । महामत्स्योऽज्ञातपूर्वः सन्निधानेऽनहंकृतिः
हुङ्कारगर्भे मत्स्यं च दृष्ट्वा तं स महेश्वरः । तेजसा स्तम्भयामास वाक्यमेतदुवाचह
कस्त्वंमत्स्योदरस्थश्च देवो यक्षोऽथमानुषः । कथंजीवस्यदेहान्तर्गतोममवद प्रभो

मत्स्य उवाच

अहंमत्स्योदरे क्षिप्तः समुद्रेक्षीरसम्भवे । मात्रातु पितृवाक्येन नायं ममकुलान्वितः
कुलक्षयभयात्तेन जातंस्वकुलनाशनम् । गण्डान्तयोगजनितो बालो न गृहकर्मकृत्

इति मात्रा दुःखितया निरस्तः शृणु वंशजः ।

झषेणाऽपि गृहीतोऽस्मि कालो मेऽत्र महानभूत् ॥ ४६॥

तव वाक्यामृतैरेभिर्ज्ञानयोगोमहानभूत् । तेन त्वं सकलो ज्ञातो मया मूर्त्तोथ मूर्त्तगः
अनुज्ञां मम देवेश! देहि निष्क्रमणाय च । यथाहं पितृपो ब्रह्मन् भवाम्याशु विवृद्धये

हर उवाच

विप्रोऽसि सुतरूपोऽसि पूज्योऽस्यपि स्वभावतः ।

बहिर्निष्क्रमवेगेन स्तम्भितोऽसि महाभयः ॥ ५२ ॥

ततोऽसौ शिरसा जात उत्क्लेशान्मत्स्ययोजितः

ततो हि विकृतं वक्त्रं क्षणाद् बहिरुपागतः ॥ ५३ ॥

रूपवान् प्रतिमायुक्तो मत्स्यगन्धेन संयुतः ।

सोमकान्तिसमस्तत्र अभवद्दिव्यगन्धभाक् ॥ ५४ ॥

उमापि प्रणतं चामुं सुतं स्वोत्सङ्गभाजनम् । चकार तस्य नामापि हरः परमहर्षितः

यस्मान्मत्स्योदराज्जातो योगिनां प्रवरो ह्ययम् ।

तस्मात्त्वं मत्स्यनाथेति लोके ख्यातो भविष्यसि ॥ ५६ ॥

अच्छेद्यः स्यान्नरतनुर्ज्ञानयोगस्यपारगः । निर्मत्सरोऽपिनिर्द्वन्द्वो निराशोब्रह्मसेवकः

जीवन्मुक्तश्च भविता भुवनानि चतुर्दश । इत्युक्तश्च महेशानं प्रणमंश्च पुनःपुनः ॥

महेश्वरेण सहितो मन्दराचलमाययौ ।

ब्रह्मोवाच

कृत्वा प्रदक्षिणं देवीं स्कन्दमालिङ्ग्य सोऽगमत् ॥ ५९ ॥

ततःसा पार्वतीहृष्टा प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् । एवंसा परमां सिद्धिं प्रणवस्यप्रभाजनम्

संप्राप्यजगतांमाताद्वादशाक्षरजामुमा । इमांमत्स्येन्द्रनाथस्य चोत्पत्तिंयःशृणोतिच

चातुर्मास्ये विशेषेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे

ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिकथनं

नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

# द्वात्रिंशोऽध्यायः

## तारकासुरवधवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कार्त्तिकेयश्च पार्वत्याः प्राणेभ्यश्चातिवल्लभः ।
संक्रीडति समीपस्थो नानाचेष्टाभिरुद्यतः ॥ १ ॥
रक्तकान्तिर्महातेजाः षण्मुखोऽद्भुतविक्रमः ।
कश्चिद्गायति चात्यर्थं कश्चिन्नृत्यति स्वेच्छया ॥ २ ॥

मातरं पितरं दृष्ट्वा विनयावनतः क्वचित् । क्वचिच्च गङ्गापुलिने सिकतालेपनारुचिः गणैः सहविचिन्वानोविविधान्वनभूरुहान् । एवंप्रक्रीडतस्तस्य दिवसा-पञ्चवैगताः ततो देवा महेन्द्राद्यास्तारकत्रासविद्रुताः । स्तुवन्तः शङ्करंसर्वे तारकस्यजिघांसया चक्रुः कुमारं सेनान्यं जाह्नव्याः स्वगणैः सुराः । सस्वनुर्देववाद्यानि पुष्पवर्षंपपातह वह्निस्तुस्या ददौ शक्ति हिमवान् वाहनं ददौ । सर्वदेवसमुद्भूतगणकोटिसमावृतः प्रणम्य मुनिसङ्घेभ्यः प्रययौरिपुपत्तने । ताम्रवत्या नगर्या च शङ्खंदध्मौप्रतापवान् ततस्तारकसन्यस्य दत्यदानवकोटयः । समाजग्मुस्तस्य पुराच्छङ्खनादभयातुरा.

स्ववाहनसमारूढाः संयता बलदर्पिताः ।
देवाः सर्वेऽपि युयुधुः स्कन्दतेजोपबृंहिताः ॥ १० ॥

तदा दानवसैन्यानि निजघान च सर्वशः । विष्णुचक्रेण ते छिन्नाःपेतुरुर्व्यांसहस्रश. ततो भग्नाश्च शतशो दानवानिहतास्तदा । नद्य-शोणितसम्भूताजाताबहुविधामुने तद्भग्नं दानवबलं दृष्ट्वा स युयुधे रणे । बभञ्ज सद्योदेवेशोबाणजालैरनेकधा ॥ १३ ॥ शक्तिनायुध्य गाङ्गेयश्चिक्षेपकृष्णप्रेरितः । तारकं च सयन्तारंचक्रे तंभस्मसात्क्षणात् शेषाः पातालमगमन् हतं दृष्ट्वाथ तारकम् । ततोदेवगणाःसर्वेशशंसुस्तस्यविक्रमम् देवदुन्दुभयोनेदु. पुष्पवृष्टिस्तथाऽभवत् । ते लब्धविजयाः सर्वे महेश्वरपुरोगमाः

सिषिचुः सर्वदेवानां सेनापत्येषडाननम् । ततः स्कन्दंसमालिङ्ग्य पार्वतीहर्षगद्गदा
माङ्गल्यानि तदा चक्रेस्वसखीभिःसमावृता । एवं चतारकं हत्वा सप्तमेऽहनिबालकः
मन्दराचलमासाद्यपितरौसंप्रहर्षयन् । उवासकलंस्कन्दः परमानन्दनिर्भरः ॥ १६ ॥
काले दारक्रियां तस्यचिन्तयामासशङ्करः । सउवाचप्रसन्नात्मागाङ्गेयममितद्युतिम्

प्राप्तकालस्तव विभो पाणिग्रहणसम्मतः ।
कुरु दारान् समासाद्य धर्मस्ताभिस्ससम्मतः ॥ २१ ॥
क्रीडस्व विविधैर्भोगैर्विमानैः सह कामिकैः ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् स्कन्दः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

अहमेव हि सर्वत्र दृश्यः सर्वगणेषु च । दृश्यादृश्यपदार्थेषु किंगृह्णामित्यजामिकिम्

याः स्त्रियः सकला विश्वे पार्वत्या ताः समा हि मे ।
नराः सर्वेऽपि देवेश! भवद्वृत्तान् विलोकये ॥ २४ ॥

त्वं गुरुर्मां च रक्षस्व पुनर्नरकमज्जनात् । येन ज्ञानमिदं ज्ञानंत्वत्प्रसादादखण्डितम्
पुनरेव महाघोरसंसाराब्धौ न मज्जये । दीपहस्तो यथा वस्तु दृष्ट्वातत्करणंत्यजेत्
तथाज्ञानमवप्राप्य योगीत्यजतिसंसृतिम् । ज्ञात्वासर्वगतंब्रह्मसर्वज्ञ! परमेश्वर ! ॥२७

निवर्तन्ते क्रियाः सर्वा यस्य तं योगिनं विदुः ।
विषये लुब्धचित्तानां वनेऽपि जायते रतिः ॥ २८ ॥

सर्वत्र समदृष्टीनां गेहे मुक्तिर्हि शाश्वती । ज्ञानमेव महेशान मनुष्याणा सुदुर्लभम्
लब्धं ज्ञानं कथमपि पण्डितोनैवपातयेत् । नाहमस्मि न मातामेनपिता न च बान्धवः
ज्ञानं प्राप्यपृथग्भावमापन्नो भुवनेष्वहम् । प्राप्यं भागमिदं दैवात् प्रभावात्तवनार्हसि
वक्तुमेवंविधं वाक्यं मुमुक्षोर्मे नसंशयः । यदाऽऽग्रहपरा देवी पुनःपुनरभाषत ॥ ३२
तदातौपितरौनत्वागतोऽसौक्रौञ्चपर्वतम् । तत्राऽऽश्रमे महापुण्ये चचार परमंतपः
जजाप परमं ब्रह्म द्वादशाक्षरबीजकम् । पूर्वं ध्यानेन सर्वाणिवशीकृत्येन्द्रियाणि च

मनोमासं प्रयुज्याऽथ ज्ञानयोगमवाप्तवान् ।
सिद्धयस्तस्य निर्विघ्ना अणिमाद्या यदा गताः ॥ ३५ ॥

तदा तासां गुहः क्रुद्धोवाक्यमेतदुवाच ह । ममापि दुष्टभावेन यदि यूयमुपागताः तदास्मत्समशान्तानां नाभिभूतं करिष्यथ । एवंज्ञात्वामहेशोपिपितोज्ञानमहोदयम् मत्तोपिज्ञानयोगेनस्कन्दोप्यधिकमावभूत् । विस्मयाविष्टहृदयःपार्वतीमनुशिष्टवान् पुत्रशोकपरां चोमां शुभैर्वाक्यामृतैर्हरः । चातुर्मास्यमाहात्म्यंसर्वपापप्रणाशनम्

महेश्वरो वा मधुकैटभारिर्ह्याश्रितोध्यानमयोऽद्वितीयः ।
अभेदबुद्ध्या परमार्त्तिहन्ता रिपुः स एवाऽतिप्रियो भवेत्ततः ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसम्वादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तारकासुरवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

† समाप्तमिदंचातुर्मास्यमाहात्म्यम् ॥

---

† इदं चातुर्मास्यमाहात्म्यं वेङ्कटेशमुद्रितपुस्तके बङ्गाक्षरमुद्रिते च नास्ति लक्ष्मणपुर ( लखनऊ ) मुद्रितपुस्तकादुद्धृतोऽयमिति ।

* श्रीगणेशायनमः *

# स्कन्दपुराणस्थब्रह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तरखण्डम्

## प्रथमोऽध्यायः

### पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनम्

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये

ऋषय ऊचुः

आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् । समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतञ्च नः

इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः । तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यमशेषाघहरं परम्

तन्मन्त्राणाञ्च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम !। तत्कथायाश्च तद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णनम्

सूत उवाच

एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् । यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी

अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ।

अपि कल्पायुषा नाऽलं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥ ६ ॥

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि । सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः

तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् । शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ॥

देवानां परमोदेवो यथा वै त्रिपुरान्तकः। मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथाशैवः षडक्षरः

एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः।

संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः॥ १०॥

अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालम्वक्तुंचतुर्मुखः। श्रुतयो यत्र सिद्धान्तंगताःपरमनिर्वृताः

सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः। स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे॥

एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना। लेभिरे मुनयः सर्वे परब्रह्म निरामयम्॥१३

नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि। ऐक्यङ्गतमतोमन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ

भवपाशनिबद्धानांदेहिनांहितकाम्यया। आहोंनमः शिवायेतिमन्त्रमाद्यंशिवःस्वयम्

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः।

यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः॥ १६॥

तावद्भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसङ्कुले। यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत्

मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः। सर्वज्ञाननिधानञ्च सोऽयञ्चैव षडक्षरः॥

कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्या सिन्धुवाडवः। महापातकदावाग्निःसोऽयंमन्त्रःषडक्षरः

तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।

स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्कीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः॥ २०॥

नास्य दीक्षान होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्। नकालोनोपदेशश्च सदाशुचिरयंमनुः

महापातकविच्छित्त्यै शिवइत्यक्षरद्वयम्। अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते

उपदिष्टः सद्गुरुणाजप्तःक्षेत्रेच पावने। सद्योयथेप्सितांसिद्धिं ददातीतिकिमद्भुतम्

अतःसद्गुरुमाश्रित्यग्राह्योऽयंमन्त्रनायकः। पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यःसद्यःसिद्धिप्रयच्छति

गुरवो निर्मलाः शान्ता साधवो मितभाषिणः।

कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः॥ २५॥

एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिद्ध्यति।

क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम्॥ २६॥

प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम्। गोकर्णं नैमिषारण्यंसद्यःसिद्धिकरंनृणाम्

अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः। असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः॥
मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः। बभूव राजा मतिमान्महोत्साहोमहाबलः
शास्त्रज्ञो नयवाञ्छूरोधैर्यवानमितद्युतिः। अप्रधृष्यःसुगम्भीरःसङ्ग्रामेष्वनिवर्त्तितः
महारथो महेष्वासोनानाशास्त्रार्थकोविदः। वदान्यो रूपसम्पन्नोयुवा लक्षणसंयुतः
स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम्। कान्तां कलावतींनाम रूपशीलगुणान्विताम्

कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः सम्प्राप्य निजमन्दिरम्।
रात्रौ तां शयनारूढां सङ्गमाय समाह्वयत्॥ ३३॥

सान्वभर्त्रासमाहूताबहुशःप्रार्थितासती। नबबन्ध मनस्तस्मिन्नचागच्छत्तदन्तिकम्
सङ्गमाय यदाहूना नागता निजवल्लभा। बलादाहर्तुकामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः॥३५

राज्ञ्युवाच

मा मां स्पृश महाराज! कारणज्ञां व्रतेऽस्थिताम्।
धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयिः॥ ३६॥
कश्चित्प्रियेण भुङ्क्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम्।
दम्पत्योः प्रीतियोगेन सङ्गमः प्रीतिवर्द्धनः॥ ३७॥
प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि।
का प्रीतिः किं सुखं पुंसां बलाद्भोगेन योषिताम्॥ ३८॥
अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम्।
रजस्वलामकामाञ्च न कामेत बलात्पुमान्॥ ३६॥

प्रीणनं लालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम्। कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतीं प्रेमवान्पतिः॥

युवती कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता॥ ४०॥

इत्युक्तोऽपितयासाध्व्यासराजास्मरविह्वलः। बलादाकृष्यतां हस्तेपरिरंभेरिरंसया
तांस्पृष्टमात्रांसहसातप्तायःपिण्डसन्निभाम्। निर्दहन्तीमिवात्मानंतत्याजभयविह्वलः

राजोवाच

अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये। कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम्॥

इत्थं सुविस्मितो राजा भीतः सा राजवल्लभा ।
प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मिता ॥ ४४ ॥

राज्ञ्युवाच

राजन्ममपुरा बाल्ये दुर्वासामुनिपुङ्गवः । शैवीं पञ्चाक्षरी विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान्
तेनमन्त्रानुभावेनममाङ्गंकलुषोज्झितम् । स्प्रष्टुं न शक्यतेपुंभिः सपापैर्दयवर्जितैः
त्वया राजन्प्रकृतिनाकुलटागणिकादयः । मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्तेसदास्त्रियः
न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।
नाराध्यते त्वयेशानः कथं मांस्प्रष्टुमर्हसि ॥ ४८ ॥

राजोवाच

ता समाख्याहि सुश्रोणि! शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम् ।
विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयीच्छामि रतिं प्रिये ॥ ४६ ॥

राज्ञ्युवाच

नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान् । उपातिष्ठ गुरुं राजन्गर्गं मन्त्रविदांवरम्

सूत उवाच

इतिसम्भाषमाणौतौदम्पतीगर्गसन्निधिम् । प्राप्यतच्चरणौमूर्ध्नावचन्दातेकृताञ्जली
अथ राजागुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनः पुनः । समाचष्ट विनीतात्मा रहस्यात्ममनोरथम्

राजोवाच

कृतार्थं मां कुरु गुरो संप्राप्तं करुणार्द्रधीः । शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि
अनाज्ञातं यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा । तत्पापं येन शुद्ध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो
एवमभ्यर्थितो राज्ञागर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः । तौ निनायमहापुण्यंकालिन्द्यास्तटमुत्तमम्
तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।
पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥ ५६ ॥
प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥ ५७ ॥

तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसङ्गमात् । निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाःशतकोटयः
ते दग्धपक्षाःक्रोशंतोनिपतन्तोमहीतले । भस्मीभूतास्ततःसर्वेदृश्यन्तेस्मसहस्रशः
दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानंसुविस्मितौ । राजा च राजमहिषी तं गुरु पर्यपृच्छताम्
भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः । वायसानां कुलं दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम्

श्रीगुरुरुवाच

राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता । सञ्चितानि दुरन्तानि सन्ति पापान्यनेकशः
तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्यानिसन्तिते । तेषामाधिक्यतःक्वापिजायतेपुण्ययोनिषु
तथा पापीयसीं योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ।
साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥ ६४ ॥
शैवी पञ्चाक्षरी विद्यायदा ते हृदयं गता । अघानांकोटयस्त्वत्तःकाकरूपेणनिर्गताः
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः । स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः
भवकोटिसहस्रेषु येऽन्ये पातकराशयः ॥ ६६ ॥
क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवेपञ्चाक्षरे धृते । आसंस्तवाद्य राजेन्द्र! दग्धाःपातककोटयः
अनया सह पूतात्माविहरस्वयथासुखम् । इत्याभाष्यमुनिश्रेष्ठस्तंमन्त्रमुपदिश्य च ॥
ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्यां सहितः स्वगृहं ययौ ।
गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥ ६९ ॥
ततः स्वभवनं प्राप्यरेजतुःस्ममहाद्युती । राजाद्रढं समाश्लिष्यपत्नींचन्दनशीतलाम्
सन्तोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥ ७१ ॥
अशेषवेदोपनिषत्पुराणशास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी ।
पञ्चाक्षरस्यैव महाप्रभावो मया समासात्कथितो वरिष्ठः ॥ ७२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः

### गोकर्णक्षेत्रमहिमानुवर्णनम्

सूत उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामिमाहात्म्यंत्रिपुरद्विषः । श्रुतमात्रेणयेनाशुच्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः
अतःपरतरंनास्ति किञ्चित्पापविशोधनम् । सर्वानन्दकरंश्रीमत्सर्वकामार्थसाधकम्
दीर्घायुर्विजयारोग्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । यदनन्येनभावेन महेशाराधनं परम् ॥ २॥
आर्द्राणामपि शुष्काणामल्पाना महतामपि । एतदेव विनिर्दिष्टंप्रायश्चित्तमथोत्तमम्
सर्वकालेऽप्यभेद्यानामघाना क्षयकारणम् । महामुनिभिर्निर्दिष्टैः प्रायश्चित्तैरथोत्तमैः
इदमेव परं श्रेयः सर्वशास्त्रविनिश्चितम् । यद्भक्त्यापरमेशस्यपूजनंपरमोदयम् ॥ ५ ॥
जानताऽजानता वापि येनकेनापि हेतुना । यत्किञ्चिदपि देवाय कृतं कर्मविमुक्तिदम्
माघे कृष्णचतुर्दश्यामुपवासोऽतिदुर्लभः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये रात्रौ जागरणंनृणाम्
अतीव दुर्लभं मन्ये शिवलिङ्गस्य दर्शनम् । सुदुर्लभतरं मन्ये पूजनं परमेशितुः ॥ ८॥
भवकोटिशतोत्पन्नपुण्यराशिविपाकतः । लभ्यते वा पुनस्तत्र बिल्वपत्रार्चनं विभोः
वर्षाणामयुतं येनस्नातंगङ्गासरिज्जले । सकृद्बिल्वार्चनेनवतत्फलंलभतेनरः ॥ १० ॥
यानियानितु पुण्यानिलीनानीहयुगेयुगे । माघेऽसितचतुर्दश्यातानितिष्ठन्तिकृत्स्नशः
एतामेव प्रशासन्ति लोके ब्रह्मादयः सुराः । मुनयश्च वशिष्ठाद्या माघेऽसितचतुर्दशीम्
अत्रोपवासःकेनापिकृतःक्रतुशताधिक । रात्रौजागरणंपुण्यंकल्पकोटितपोऽधिकम्
एकेनबिल्वपत्रेणशिवलिङ्गार्चनंकृतम् । त्रैलोक्येतस्यपुण्यस्यकोवासःदृश्यमिच्छति
अत्रानुवर्ण्यते गाथा पुण्या परमशोभना । गोपनीयापि कारुण्याद्गौतमेन प्रकाशिता
इक्ष्वाकुवंशजःश्रीमान्राजापरमधार्मिकः । आसीन्मित्रसहोनामश्रेष्ठः सर्वधनुर्भृताम्

स राजा सकलास्त्रज्ञः शास्त्रज्ञः श्रुतिपारगः ।
वीरोऽत्यन्तबलोत्साहो नित्योद्योगी दयानिधिः ॥ १७ ॥

पुण्यानामिव सङ्घातस्तेजसामिव पञ्जरः । ऐश्वर्याणामिव क्षेत्रं यस्य मूर्तिर्विराजते
हृदयं दययाक्रान्तं श्रियाक्रान्तं च तद्वपुः । चरणौ यस्य सामन्तचूडामणिमरीचिभिः
एकदा मृगयाकेलिलोलुपः स महीपतिः । विवेश गह्वरं घोरं बलेन महतावृतः ॥ २० ॥

तत्र विव्याध विशिखैः शार्दूलान्गवयान्मृगान् ।
रुरून्वराहान्महिषान्मृगेन्द्रानपि भूरिशः ॥ २१ ॥

स रथी मृगयासक्तो गहनं दंशितश्चरन् । कमपि ज्वलनाकारं निजघान निशाचरम्
तस्यानुजः शुचाविष्टो दृष्ट्वा दूरे तिरोहितः । भ्रातरं निहतं दृष्ट्वाचिन्तयामास चेतसा
नन्वेष राजा दुर्धर्षो देवानां रक्षसामपि । छद्मनैव प्रजेतव्यो मम शत्रुर्न चान्यथा
इति व्यवसितः पापो राक्षसो मनुजाकृतिः । आससाद नृपश्रेष्ठमुत्पात इव मूर्त्तिमान्
तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम् । चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः

अथ तस्मिन्वने राजा किञ्चित्कालं विहृत्य सः ।
निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीं पुनराययौ ॥ २७ ॥

तस्य राजेन्द्रमुख्यस्य मदयन्तीति नामतः । दमयन्ती नलस्यैव विदिता वल्लभा सती

एतस्मिन्समये राजा निमन्त्र्य मुनिपुङ्गवम् ।
वशिष्ठं गृहमानिन्ये सम्प्राप्ते पितृवासरे ॥ २९ ॥

रक्षसा सूदरूपेण सम्मिश्रितनरामिषम् । शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत्
धिग्धिङ्नरामिषं राजंस्त्वयैतच्छद्मकारिणा । खलेनोपहृतं मेऽद्य अतो रक्षो भविष्यसि
रक्षः कृतमविज्ञाय शप्त्वैवं स गुरुस्ततः । पुनर्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम्
राजापि कोपितः प्राह यदिदं मे न चेष्टितम् । न ज्ञातं च वृथा शप्तो गुरुश्चैव शपाम्यहम्
इत्यपोञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः । पतित्वा पादयोस्तस्य मदयन्ती न्यवारयत्
ततो निवृत्तः शापाच्च तस्या वचनगौरवात् । तत्याज पादयोरम्भः पादौ कल्मषतां गतौ

कल्माषांघ्रिरिति ख्यातस्ततः प्रभृति पार्थिवः ।
बभूव गुरुशापेन राक्षसो वनगोचरः ॥ ३६ ॥

स बिभ्रद्राक्षसं रूपं घोरं कालान्तकोपमम् । चखाद विविधाञ्जन्तून्मानुषादीन्वनेचरः

स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ । अपश्यदन्तकाकारोनवोढौमुनिदम्पती
राक्षसो मानुषाहारःकिशोरं मुनिनन्दनम् । जग्धुंजग्राहशापार्तोव्याघ्रोमृगशिशुंयथा
रक्षोगृहीतं भर्त्तारं दृष्ट्वा भीताथ तत्प्रिया । उवाच करुणं बालाक्रन्दन्ती भृशवेपिता
भोभो मामा कृथाः पापं सूर्यवंशयशोधर !। मदयन्तीपतिस्त्वंहिराजेन्द्रोनतु राक्षसः
नखाद मम भर्त्तारं प्राणात्प्रियतमं प्रभो । आर्त्तानां शरणार्त्तानांत्वमेवहियतोगतिः
पापानामिव सङ्घातैः किं मे दुष्टैर्जडासुभिः । देहेनचातिभारेण विनाभर्त्रामहात्मना
मलीमसेनपापेनपाञ्चभौतेन किंसुखम् । बालोयंवेदविच्छान्तस्तपस्वीबहुशास्त्रवित्
अतोऽस्य प्राणदानेन जगद्रक्षात्वयाकृता । कृपांकुरुमहाराजबालायाब्राह्मणस्त्रियाम्
अनाथकृपणार्त्तेषु सघृणाः खलुसाधवः । इत्थमभ्यर्थितःसोऽपिपुरुषादः स निर्घृणः
चखाद शिर उत्कृत्यविप्रपुत्रंदुराशयः । अथसाध्वीकृशादीनाविलप्य भृशदुःखिता

आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे तथोल्बणाम् ।
भर्तारमनुगच्छन्ती सम्विशन्ती हुताशनम् ॥ ४८ ॥

राजानंराक्षसाकारंशापास्त्रेणजघान तम् । रेरे पार्थिवपापात्मं स्त्वयामेभक्षितःपतिः
अतः पतिव्रतायास्त्वंशापं भुङ्क्ष्वयथोल्बणम् । अद्यप्रभृतिनारीषुयदात्वमपिसङ्गतः

तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा विवेश ज्वलनं सती ॥ ५० ॥
सोऽपि राजा गुरोः शापमुपभुज्य कृतावधिम् ।
पुनः स्वरूपमादाय स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ ५१ ॥
ज्ञात्वा विप्रसतीशापं तत्पत्नी रतिलालसम् ।
पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ ५२ ॥
अनपत्यः सनिर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः ।
विसृज्य सकलां लक्ष्मीं ययौ भूयोऽपि काननम् ॥ ५३ ॥

सूर्यवंशप्रतिष्ठित्यै वशिष्ठो मुनिसत्तमः । तस्यामुत्पादयामासमदयन्त्यांसुतोत्तमम्

विसृष्टराज्यो राजाऽपि विचरन्सकलां महीम् ।
आयान्तीं पृष्ठतोऽपश्यत्पिशाचीं घोररूपिणीम् ॥ ५५ ॥

सा हि मूर्तिमती घोरा ब्रह्महत्या दुरत्यया । यदासौ शापविभ्रष्टोमुनिपुत्रमभक्षयत्
तेनात्मकर्मणा यान्तीं ब्रह्महत्यां स पृष्ठतः । बुबुधे मुनिवर्याणामुपदेशेन भूपतिः

तस्या निर्वेशमन्विच्छन्राजा निर्विण्णमानसः ।
नानाक्षेत्राणि तीर्थानि चचार बहुवत्सरम् ॥ ५८ ॥

यदा सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाऽपि चमुहुर्मुहुः । न निवृत्ताब्रह्महत्यामिथिलामाययौतदा
बाह्योद्यानगतस्तस्याश्चिन्तया परयाऽर्दितः ॥ ५६ ॥

ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं विमलाशयम् । हुताशनमिवाशेषतपस्विजनसेवितम्
विवस्वन्तमिवात्यन्तं घनदोषतमोनुदम् । शशाङ्कमिव निःशङ्कमवदातगुणोदयम्
महेश्वरमिव श्रीमद्द्विजराजकलाधरम् । शान्तं शिष्यगणोपेतं तपसामेकभाजनम्

उपसृत्य स राजेन्द्रः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ।
गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठो राजानंरविवंशजम् ॥ ६४ ॥
अभिनन्द्य मुनिः प्रीत्या सस्मितं समभाषत ।

गौतम उवाच

कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चित्ते पदमव्ययम् ॥ ६५ ॥

कुशलिन्यःप्रजाःकच्चिद्वरोध्रजनोपिवा । किमर्थमिहसम्प्राप्तोविसृज्यसकलांश्रियम्

किं च ध्यायसि भो राजन्दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ॥ ६७ ॥

राजोवाच

सर्वे कुशलिनो ब्रह्मन्वयं त्वदनुकम्पया । राज्ञामुत्तमवंश्यानां ब्रह्मायत्ता हि सम्पदः

किं नु मां बाधते त्वेषा पिशाची घोररूपिणी ॥ ६८ ॥

अलक्षिता मदपरैर्भर्त्सयन्तीपदेपदे । यन्मया शापदग्धेनकृतमंहोदुरत्ययम् ।

न शान्तिर्जायते तस्य प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ६६ ॥
इष्टाश्च विविधा यज्ञाः कोशसर्वस्वदक्षिणाः ।
सरित्सरांसि स्नातानि यानि पुण्यानि भूतले ।
निषेवितानि सर्वाणि क्षेत्राणि भ्रमता मया ॥ ७० ॥

जप्तान्यखिलमन्त्राणि ध्याताः सकलदेवताः ।
महाव्रतानि चीर्णानि पर्णमूलफलाशिना ॥ ७१ ॥
तानि सर्वाणि कुर्वन्ति स्वस्थं मां न कदाचन ।
अद्य मे जन्मसाफल्यं सम्प्राप्तमिव लक्ष्यते ॥ ७२ ॥
यतस्त्वद्दर्शनादेव ममात्मानन्दभागभूत् । अन्विच्छँल्लभते क्वापि वर्षपूगैर्मनोरथम्
इत्येवञ्जनवादोऽपि सम्प्राप्तो मयि सत्यताम् ।
आजन्मसञ्चितानां तु पुण्यानामुदयोदये ॥ ७४ ॥
यद्भवान्भवभीतानां त्राता नयनगोचरः । कस्माद्देशादिहायातो भवान्भवभयापहः
दूरभ्रमणविश्रान्तं शङ्के त्वामिहचागतम् । दृष्ट्वाश्चर्यमिवात्यर्थं मुदितोसिमुखश्रिया
आनन्दयसि मे चेतः प्रेम्णा सम्भाषणादिव । अद्य मे तवपादाब्जशरणस्य कृतैनसः
शान्तिं कुरु महाभाग! येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ७७ ॥
इति तेनसमादिष्टोगौतमःकरुणानिधिः । समादिदेशत्रोराणामघानांसाधुनिष्कृतिम्

गौतम उवाच

साधु राजेन्द्र! धन्योऽस्मि महात्रेभ्यो भयं त्यज ॥ ७६ ॥
शिवे त्रातरिभक्तानां क भयंशरणैषिणाम् । शृणुराजन्महाभागक्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम्
महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं मनोरमम् । यत्र स्थितिर्न पापानांमहद्भ्योमहतामपि
स्मृतो ह्यशेषपापघ्नो यत्र सन्निहितः शिवः । यथाकैलासशिखरेयथा मन्दारमूर्द्धनि
निवासो निश्चितः शम्भोस्तथा गोकर्णमण्डले ।
नाऽग्निना न शशाङ्केन न ताराग्रहनायकैः ॥ ८३ ॥
तमो निस्तीर्यते सम्यग्यथा सवितृदर्शनात् । तथैव नेतरैस्तीर्थैर्न च क्षेत्रैर्मनोरमैः
सद्यः पापविशुद्धिः स्याद्यथा गोकर्णदर्शनात् । अपिपापशतंकृत्वाब्रह्महत्यादिमानवः
सकृत्प्रविश्यगोकर्णंनबिभेतिह्यघात्कचित् । तत्रसर्वेमहात्मानस्तपसाशान्तिमागताः
इन्द्रोपेन्द्रविरिञ्च्याद्यैःसेव्यते सिद्धिकाङ्क्षिभिः ।
तत्रैकेन दिनेनापि यत्कृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ८७ ॥

तदन्यभाग्दलक्षेण कृतं भवति तत्समम् । यत्रेन्द्रब्रह्मविष्ण्वादिदेवानांहितकाम्यया महाबलाभिधानेन देवः सन्निहितः स्वयम् । घोरेणतपसा लब्धंरावणाख्येनरक्षसा तल्लिङ्गं स्थापयामासगोकर्णे गणनायकः । इन्द्रो ब्रह्मामुकुन्दश्चविश्वेदेवामरुद्गणाः आदित्या वसवो दस्रौ शशाङ्कश्च दिवाकरः । एते विमानगतयोदेवास्ते सह पार्षदैः पूर्वद्वारं निषेवन्ते देवदेवस्य शूलिनः । योऽन्योमृत्युःस्वयंसाक्षाच्चित्रगुप्तश्चपावकः पितृभिः सह रुद्रैश्चदक्षिणद्वारमाश्रितः । वरुणः सरितांनाथोगङ्गादिसरितां गणैः आसेवते महादेवं पश्चिमद्वारमाश्रितः । तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकर्णिका मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिता । विश्वावसुश्चित्ररथश्चित्रसेनो महाबलः सह गन्धर्ववर्गैश्च पूजयन्ति महाबलम् । रम्भाघृताचीमेना च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा

नृत्यन्ति पुरतः शम्भोरुर्वश्याद्याः सुरस्त्रियः ।

वशिष्ठः कश्यपः कण्वो विश्वामित्रो महातपाः ॥ ९८ ॥

जैमिनिश्च भरद्वाजो जाबालिः क्रतुरङ्गिराः । एते वयं च राजेन्द्रसर्वेब्रह्मर्षयोऽमलाः देवं महाबलं भक्त्या समन्तात्पर्युपास्महे । मरीचिनासहात्रिश्चदक्षाद्याश्चमुनीश्वराः सनकाद्या महात्मान उपविष्टा उपासते । तथैव मुनयः साध्या अजिनाम्बरधारिणः

दण्डिनो व्रतमुण्डाश्च स्नातका ब्रह्मचारिणः ।

त्वगस्थिमात्रावयवास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १०२ ॥

सेवन्ते परया भक्त्यादेवदेवम्पिनाकिनम् । तथादेवाःसगन्धर्वाःपितरःसिद्धचारणाः

विद्याधराः किम्पुरुषाः किन्नरा गुह्यकाः खगाः ।

नागाः पिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः ॥ १०४ ॥

नानाविभवसम्पन्ना नानाभूषणवाहनाः । विमानैः सूर्यसङ्काशैरग्निवर्णैःशशिप्रभैः ॥

विद्युत्पुञ्जनिभैरन्यैः समन्तात्परिवारितम् ।

प्रस्तुवन्ति प्रगायन्ति पठन्ति प्रणमन्ति च ॥ १०६ ॥

प्रनृत्यन्ति प्रहृष्यन्ति गोकर्णे पृथिवीपते !।

लभन्तेऽभीप्सितान्कामान् रमन्ते च यथासुखम् ॥ १०७ ॥

गोकर्णसदृशं क्षेत्रं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके । तत्रघोरं तपस्तप्तमगस्त्येन महात्मना
तथा सनत्कुमारेण प्रियव्रतसुतैरपि । अग्निनादेववर्येण कन्दर्पेण च पार्थिव ॥
तथा देव्या भद्रकाल्या शिशुमारेणधीमता । दुर्मुखेन फणीन्द्रेण मणिनागाह्वयेन च
इलावर्तादिभिर्नागैर्गरुडेन बलीयसा । रक्षसा रावणेनापि कुम्भकर्णाह्वयेन तु ॥
विभीषणेन पुण्येन तपस्तप्तं महात्मना । एते चान्येच गीर्वाणाः सिद्धदानवमानवाः

गोकर्णे देवदेवेशं शिवमाराध्य भक्तितः ।
स्वनामाङ्कानि लिङ्गानि स्थापयित्वा सहस्रशः ॥ ११३ ॥

लेभिरे परमां सिद्धिंतथातीर्थानि चक्रिरे । अत्रस्थानानिसर्वेषांदेवानांसन्तिपार्थिव
विष्णोश्च देवदेवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । कार्त्तिकेयस्य वीरस्य गजवक्त्रस्यचानघ
धर्मस्यक्षेत्रपालस्यदुर्गायाश्चमहामते । गोकर्णेशिवलिङ्गानिविद्यन्तेकोटिकोटिशः
असङ्ख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदेपदे । बहुनात्रकिमुक्तेनगोकर्णस्थानिपार्थिव

सर्वाण्यश्मानि लिङ्गानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ।
गोकर्णे शिवलिङ्गानां तीर्थानामपि भूरिशः ॥ ११८ ॥

गीयते महिमा राजन्पुराणेषुमहर्षिभिः । गोकर्णेकोटितीर्थेच तीर्थानामुख्यतागतम्
सर्वेषां शिवलिङ्गाना सार्वभौमोमहाबलः । कृतेमहाबलः श्वेतस्त्रेतायामतिलोहितः
द्वापरे पीतवर्णश्च कलौश्यामो भविष्यति । आक्रान्तं सप्तपातालं कुर्वन्नपि महाबलः
प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति । पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णक्षेत्रमुत्तमम्
ब्रह्महत्यादिपापानि दहतीति किमद्भुतम् । ये चात्र ब्रह्महन्तारो ये च भूतद्रुहः शठाः
ये सर्वगुणहीनाश्च परदाररताश्च ये । ये दुर्वृत्ता दुराचारा दुःशीलाः कृपणाश्च ये

लुब्धाः क्रूराः खला मूढाः स्तेनाश्चैवातिकामिनः ।
ते सर्वे प्राप्य गोकर्णं स्नात्वा तीर्थजलेषु च ॥ १२५ ॥

देवं महाबलं दृष्ट्वा प्रयाताः शाङ्करं पदम् । तत्र पुण्यासु तिथिषु पुण्यर्क्षे पुण्यवासरे

येऽर्चयन्ति महेशानं ते रुद्राःस्युर्न संशयः ।
यदा कदाचिद्गोकर्णं यो वा को वाऽपि मानवः ॥ १२७ ॥

प्रविश्य पूजयेदीशं स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । रवान्दुसौम्यवारे बुधदादर्शोभविष्यति
तदा जलनिधौ स्नानं दानञ्च पितृतर्पणम् । शिवपूजा जपो होमोव्रतचर्याद्विजार्चनम्
यत्किञ्चिद्वाकृतं कर्म तदनन्तफलप्रदम् । व्यतीपातादियोगेषु रविसंक्रमणेषु च ॥
महाप्रदोषवेलासुशिवपूजाविमुक्तिदा । अथैकां ते प्रवक्ष्यामितिथिपार्थिवमुक्तिदाम्

यस्यां किल महाव्याधो लेभे शम्भोः परं पदम् ।
माघमासे महापुण्या या सा कृष्णचतुर्दशी ॥ १३२ ॥

शिवलिङ्गं बिल्वपत्रं दुर्लभं हि चतुष्टयम् । अहोबलवतीमाया यया शर्वामहातिथिः
नोपोष्यते जनै र्मूढैर्महामूकैरिव त्रयी । उपवासो जागरणं सन्निधिः परमेशितुः
गोकर्णं शिवलोकस्य नृणां सोपानपद्धति । शृणु राजन्नहमपि गोकर्णाद्धुनागतः

उपास्यैना शिवतिथिं विलोक्य च महोत्सवम् ।
अस्या शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः ॥ १३६ ॥

आगताः सर्वदेशेभ्यश्चातुवर्ण्यामहाजनाः । स्त्रियो वृद्धाश्चबालाश्चचतुराश्रमवासिनः
आगत्य दृष्ट्वा देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् । अथाहमप्यमी शिष्या ऋषयश्चतथाऽपरे
राजर्षयश्च राजेन्द्र! सनकाद्याः सुरर्षयः । स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु समुपास्य महाबलम्
लब्ध्वा च जन्मसाफल्यं प्रयाता सर्वतोदिशम् । अमुनाऽद्य नरेन्द्रेणजनकेनायियक्षुणा

निमन्त्रितोऽहं सम्प्राप्तो गोकर्णाच्छिवमन्दिरात् ।
प्रत्यागमं किमप्यङ्ग दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमहं पथि ।
महानन्देन मनसा कृतार्थोऽस्मि महीपते !॥ १४१ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
गोकर्णक्षेत्रमहिमानुवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

# तृतीयोऽध्यायः

## शिवचतुर्दशीगोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्

राजोवाच

किं दृष्टं भवताब्रह्मन्नाश्चर्यं पथि कुत्र वा । तन्ममाख्याहि येनाहं कृतकृत्यत्वमाप्नुयात्

गौतम उवाच

गोकर्णादहमागच्छन्कापि देशे विशाम्पते । जाते मध्याह्नसमये लब्धवान्विमलं सरः
तत्रोपस्पृश्य सलिलं विनीय च पथिश्रमम् । सुस्निग्धशीतलच्छायं न्यग्रोधं समुपाश्रयम्

अथाऽविदूरे चाण्डालीं वृद्धामन्धा कृशाकृतिम् ।
शुष्यन्मुखीं निराहारां बहुरोगनिपीडिताम् ॥ ४ ॥

कुष्ठव्रणपरीताङ्गीमुद्यत्कृमिकुलाकुलाम् । पूयशोणितसंसक्तजरत्पटलसत्कटीम् ॥
महायक्ष्मगलस्थेन कण्ठसंरोधविह्वलाम् । विनष्टदन्तामव्यक्ता विलुटन्तीं मुहुर्मुहुः

चण्डार्ककिरणस्पृष्टखरोष्णरजसाप्लुताम् ।
विण्मूत्रपूयदिग्धाङ्गीमसृग्गन्धदुरासदाम् ॥ ७ ॥

कफरोगबहुश्वासश्लथनाडीबहुव्यथाम् । विध्वस्तकेशावयवामपश्यं मरणोन्मुखीम्
तादृग्व्यथां च तां वीक्ष्य कृपयाहं परिप्लुतः । प्रतीक्षन्मरणं तस्याः क्षणं तत्रैव संस्थितः
अथान्तरीक्षपदवीं सिञ्चन्तमिव रश्मिभिः । दिव्यं विमानमानीतमद्राक्षं शिवकिङ्करैः
तस्मिन्नर्केन्दुवह्नीनां तेजसामिव पञ्जरे । विमाने सूर्यसङ्काशानपश्यं शिवकिङ्करान्
ते वै त्रिशूलखट्वाङ्गटङ्कचर्मासिपाणयः । चन्द्रार्धभूषणाः सान्द्रचन्द्रकुन्दोरुवर्चसः
किरीटकुण्डलभ्राजन्महाहिवलयोज्ज्वलाः । शिवानुगा मया दृष्टाश्चत्वारः शुभलक्षणाः

तानापतत आलोक्य विमानस्थान् सुविस्मितः ।
उपसृत्याऽन्तिके वेगादपृच्छं गगने स्थितान् ॥ १४ ॥

नमो नमो वस्त्रिदशोत्तमेभ्यस्त्रिलोचनश्रीचरणानुगेभ्यः ।

त्रिलोकरक्षाविधिमावहद्भ्यस्त्रिशूलचर्मासिगदाधरेभ्यः ॥ १५ ॥

विदिता हि मया यूयं महेश्वरपदानुगाः । इयं वो लोकरक्षार्था गतिराहो द्विजोत्तमाः
उत सर्वजनाघौघविजयाय कृतोद्यमाः । ब्रूत कारुण्यतो मह्यं यस्माद्यूयमिहागताः

शिवदूता ऊचुः

एषाग्रेदृश्यते वृद्धाचाण्डालीमरणोन्मुखी । एतामानेतुमायाताःसन्दिष्टाःप्रभुणावयम्
इत्युक्ते शिवदूतैस्तैरपृच्छंपुनरप्यहम् । विस्मयाविष्टचित्तस्तान्कृताञ्जलिरवस्थितः

अहो पापीयसी घोरा चाण्डाली कथमर्हति ।
दिव्यं विमानमारोढुं शुनीवाऽध्वरमण्डलम् ॥ २० ॥
आजन्मतोऽशुचिप्रायां पापां पापानुगामिनीम् ।
कथमेनां दुराचारां शिवलोकं निनीषथ ॥ २१ ॥

अस्यानास्तिशिवज्ञानंनास्तिघोरतरंतपः । सत्यंनास्तिदयानास्तिकथमेनांनिनीषथ
पशुमांसकृताहारां वारुणीपूरितोदराम् । जीवहिंसारतां नित्यं कथमेनां निनीषथ
न चपञ्चाक्षरी जप्ता नकृतं शिवपूजनम् । नध्यातो भगवाञ्छम्भुः कथमेनां निनीषथ
नोपोषिता शिवतिथिर्नकृतंशिवपूजनम् । भूतसौहृदंनजानातिनचबिल्वंशिवार्पणम्

नेष्टापूर्तादिकं वापि कथमेनां निनीषथ ॥ २५ ॥

न च स्नातानि तीर्थानिनदानानिकृतानि च । न चव्रतानिचीर्णानिकथमेनांनिनीषथ
ईक्षणे परिहर्त्तव्या किमु सम्भाषणादिषु । सत्संगरहितां चण्डीं कथमेनां निनीषथ
जन्मान्तरार्जितं किञ्चिदस्याः सुकृतमस्तिवा । तत्कथंकुष्ठरोगणकृमिभिःपरिभूयते
अहोईश्वरचर्येयंदुर्विभाव्याशरीरिणाम् । पापात्मानोऽपिनायन्तेकारुण्यात्परमंपदम्
इत्युक्तास्ते मया दूता देवदेवस्य शूलिनः । प्रत्यूचुर्मामथ प्रीत्या सर्वसंशयभेदिनः

शिवदूता ऊचुः

ब्रह्मन्सुमहदाश्चर्यंशृणुकौतूहलंयदि । इमामुद्दिश्यचाण्डालींयदुक्तंभवताऽधुना ॥
आसीदियंपूर्वभवे काचिद्ब्राह्मणकन्यका । सुमित्रानाम सम्पूर्णसोमबिम्बसमानना
उत्फुल्लमल्लिकादामसुकुमाराङ्गलक्षणा । कैकेयद्विजमुख्यस्य कस्यचित्तनयासती

तां सर्वलक्षणोपेतां रतेर्मूर्त्तिमिवाऽपराम् ।

वर्द्धमानां पितुर्गेहे वीक्ष्याऽऽसन्विस्मिता जनाः ॥ ३४ ॥

दिनेदिने वर्धमाना बन्धुभिर्लालिताभृशम् । साशनैर्यौवनं भेजे स्मरस्येव महाधनुः
अथ सा बन्धुवर्गैश्च समेतेनकुमारिका । पित्रा प्रदत्ता कस्मैचिद्विधिनाद्विजसूनवे
सा भर्त्तारमनुप्राप्य नवयौवनशालिनी । कञ्चित्कालं शुभाचारा रेमे बन्धुभिरावृता
अथ कालवशात्तस्याः पतिस्तीव्ररुजार्दितः । रूपयौवनकान्तोऽपिपञ्चत्वमगमन्मुने

मृते भर्त्तरि दुःखेन विदग्धहृदया सती ।

उवास कतिचिन्मासान्सुशीला विजितेन्द्रिया ॥ ३६ ॥

अथ यौवनभारेण जृम्भमाणेन नित्यशः । बभूव हृदयं तस्याः कन्दर्पपरिकम्पितम्
सागुप्ता बन्धुवर्गेण शासितापि महोत्तमैः । नशशाक मनो रोद्धुं मदनाकृष्टमङ्गना
सातीव्रमन्मथाविष्टाकूपयौवनशालिनी । विधवापि विशेषेण जारमार्गरताभवत्
नज्ञाता केनचिदपि जारिणीतिविचक्षणा । जुगूहात्मदुराचारं कञ्चित्कालमसत्तमा
तां दोहदसमाक्रान्तां घननीलमुखस्तनीम् । कालेन बन्धुवर्गोपिबुबोधविटदूषिताम्

इति भीतो महाक्लेशाश्चिन्तां लेभे दुरत्ययाम् ।

स्त्रियः कामेन नश्यन्ति ब्राह्मणा हीनसेवया ॥ ४५ ॥

राजानो ब्रह्मदण्डेन यतयो भोगसंग्रहात् । लीढं शुना तथैवान्नं सुरया वार्पितं पयः
रूपं कुष्ठरुजाविष्टं कुलं नश्यति कुस्त्रिया । इति सर्वे समालोच्यसमेताःपतिसोदराः
तत्यजुर्गात्रतो दूरं गृहीत्वा सकचग्रहम् । सघटोत्सर्गमुत्सृष्टा सानारीसर्वबन्धुभिः
विचरन्तीचशूद्रेणरममाणा रतिप्रिया । सा ययौ स्त्री बहिर्ग्रामाद्दृष्टाशूद्रेणकेनचित्
स तां दृष्ट्वा वरारोहा पीनोन्नतपयोधराम् । गृहंनिनाय साम्नाचविधवांशूद्रनायकः

सा नारी तस्य महिषी भूत्वा तेन दिवानिशम् ॥ ५० ॥

रममाणा क्वचिद्देशे न्यवसद्गृहवल्लभा । तत्रसापिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी
लेभेसुतं च शूद्रेण रममाणा रतिप्रिया । कदाचिद्भर्त्तरि क्वापि यातेपीतसुरा तुसा
इयेषपिशिताहारं मदिरामदविह्वला । अथ मेषेषु बद्धेषु गोभिः सह बहिर्व्रजे ॥ ५३॥

ययौ कृपाणमादाय सा तमोऽन्धे निशामुखे । अविमृश्य मदावेशात् स्वबुद्ध्यामिषप्रिया
एकं जघान गोवत्सं क्रोशन्तं निशि दुर्भगा । निहतं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्सम् अङ्गना

भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा ।

सा मुहूर्त्तमिति ध्यात्वा पिशितासवलालसा ॥ ५९ ॥

छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहारमीप्सितम् । गोवत्सार्धशरीरेण कृताहाराथ सा पुनः
तदर्धदेहं निक्षिप्य बहिश्चुक्रोश कैतवात् । अहो व्याघ्रेण भग्नोऽयं जग्धो गोवत्सकोऽत्र जे
इति तस्याः समाक्रन्दः सर्वगेहेषु शुश्रुवे । अथ सर्वे शूद्रजनाः समागम्यान्तिकेऽस्थिताः
हतं गोवत्समालोक्य व्याघ्रेणेति शुचं ययुः । गतेषु तेषु सर्वेषु व्युष्टायां च ततो निशि
तद्भर्ता गृहमागत्य दृष्टवान् गृहविड्वरम् । एवं बहुतिथे काले गते सा शूद्रवल्लभा ॥ ६१
कालस्य वशमापन्ना जगाम यममन्दिरम् । यमोऽपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम्

निर्वर्त्य निरयावासाच्चक्रे चण्डालजातिकाम् ।

साऽपि भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता ॥ ६३ ॥

ततो बभूव जात्यन्धा प्रशान्ताङ्गारमेचका ।

तत्पिता कोऽपि चाण्डालो देशे कुत्रचिदास्थितः ॥ ६४ ॥

तां तादृशीमपि सुतां कृपया पर्यपोषयत् । अभोज्येन कदन्नेन शुनालीढेन पूतिना
अपेयैश्च रसैर्मात्रापोषिता सा दिने दिने । जात्यन्धा सापि कालेन बाल्ये कुष्ठरुजार्दिता
ऊढा न केनचिन्नापि चाण्डालेनातिदुर्भगा । अतीतबाल्ये सा काले विध्वस्तपितृमातृका
दुर्भगेति परित्यक्ता बन्धुभिश्च सहोदरैः । ततः क्षुधार्दिता दीना शोचन्ती विगतेक्षणा
गृहीतयष्टिः कृच्छ्रेण सञ्चचाल सलोष्टिका । पत्तनेष्वपि सर्वेषु याचमाना दिने दिने
चाण्डालोच्छिष्टपिण्डेन जठराग्निमतर्पयत् । एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा सुबहुलं वयः
जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् । निरन्नपानवसना सा कदाचिन्महाजनान्

आयास्यन्त्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽध्वगान् ।

तस्यां तु देवयात्रायां देशदेशान्तरायिनाम् ॥ ७२ ॥

विप्राणां साग्निहोत्राणां सस्त्रीकाणां महात्मनाम् ।

राज्ञां च सावरोधानां सहस्तिरथवाजिनाम् ॥ ७३ ॥
सपरीवारघोषाणां यानच्छत्रादिशोभिनाम् ।
तथान्येषां च विट्शूद्रसंकीर्णानां सहस्रशः ॥ ७४ ॥
हसतांगायतांकापिनृत्यतामथधावताम् । जिघ्रतांपिबतांकामाद्गच्छतांप्रतिगर्जताम्
सम्प्रयाणेमनुष्याणां संभ्रमःसुमहानभूत् । इतिसर्वेषुगच्छत्सुगोकर्णं शिवमन्दिरम्
पश्यन्ति दिविजाः सर्वे विमानस्थाःसकौतुकाः ।
अथेयमपि चाण्डाली वसनाशनतृष्णया ॥ ७७ ॥
महाजनान्याचयितुं चचालच शनैःशनैः । करावलम्बेनान्यस्याःप्राग्जन्मार्जितकर्मणा
दिनैः कतिपयैर्यान्ती गोकर्णं क्षेत्रमाययौ ॥ ७८ ॥
ततो विदूरे मार्गस्य निषण्णाविवृताञ्जलिः । याचमानामुहुःपान्थान्वभाषेकृपणंवचः
प्राग्जन्मार्जितपापौघैः पीडितायाश्चिरंमम ।
आहारमात्रदानेन दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८० ॥
त्रातारः परमार्तानां दातारः परमाशिषाम् । कर्तारो बहुपुण्यानांदयांकुरुतभोजनाः
वसनाशनहीनायां स्वपितायां महीतले । महापांसुनिमग्नायां दयां कुरुत भोजनाः
महाशीतातपार्त्तायां पीडितायां महारुजा ।
अन्धायां मयि वृद्धायां दया कुरुत भो जनाः ॥ ८३ ॥
चिरोपवासदीनायां जठराग्निविवर्धनैः । संदह्यमानसर्वाङ्ग्यां दयां कुरुत भो!जनाः
अनुपार्जितपुण्यायां जन्मान्तरशतेष्वपि । पापायांमन्दभाग्यायांदयांकुरुतभो!जनाः
एवमभ्यर्थयन्त्यास्तु चाण्डाल्याः प्रसृतेऽञ्जलौ ।
एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमञ्जरीम् ॥ ८६ ॥
तामञ्जलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः । अभक्ष्येत्येवमत्वाथदूरेप्राक्षिपदातुरा
तस्याः करेण निर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमञ्जरी ।
पपात कस्यचिद् दिष्ट्या शिवलिङ्गस्य मस्तके ॥ ८८ ॥
सैवं शिवचतुर्दश्यां रात्रौ पान्थजनान्मुहुः । याचमानापियत्किञ्चिन्न लेभेदैवयोगतः

तत्रोषिताऽनया रात्रिर्भद्रकाल्यास्तु पृष्ठतः ।
किञ्चिदुत्तरतः स्थानं तदर्धेनातिदूरतः ॥ ९० ॥

ततः प्रभाते भ्रष्टाशा शोकेन महताप्लुता । शनैर्निववृते दीना स्वदेशार्थं वकेवला
श्रान्ता चिरोपवासेन निपतन्ती पदे पदे ।
क्रन्दन्ती बहुरोगार्ता वेपमाना भृशातुरा ॥ ९२ ॥
दह्यमानार्कतापेन नग्नदेहा सयष्टिका । अतीत्यैतावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥
अथ विश्वेश्वरः शम्भुःकरुणामृतवारिधिः । एनामानयतेत्यस्मान्युयुजेसविमानकान्
एषा प्रवृत्तिश्चाण्डाल्यास्तवेहपरिकीर्त्तिता । तथा संदर्शिताशम्भोःकृपणेषुकृपालुता
कर्मणः परिपाकोत्थां गतिपश्यमहामते । अधमापि परं स्थानमारोहति निरामयम्
यदेतयापूर्वभवेनाऽन्नदानादिकंकृतम् । क्षुत्पिपासादिभिःक्लेशैस्तस्मादिहनिर्पीड्यते
यदेषा मदवेगांधा चक्रे पापं महोल्बणम् । कर्मणा तेन जात्यन्धाबभूवात्रैव जन्मनि
अपि विज्ञाय गोवत्सं यदेषाऽभक्षयत्पुरा ।
कर्मणा तेन चाण्डाली बभूवेह विगर्हिता ॥ ९९ ॥
यदेषार्यपथं हित्वा जारमार्गरता पुरा । तेन पापेन केनापि दुर्वृत्ता दुर्भगापि वा
यदाश्लिक्षन मदाविष्टा जारेण विधवा पुरा । तेन पापेन महता बहुकुष्ठव्रणान्विता
कामार्त्ता यदियं स्वैरं शूद्रेण रमिता पुरा । महासृक्पूयकृमिभिःपीड्यतेतेनपाप्मना
सुव्रतानि न चीर्णानि नेष्टापूर्तादिकं कृतम् ।
सर्वभोगविहीनेयं दूयते तेन पाप्मना ॥ १०३ ॥
यदेतया पूर्वभवे सुरा पीता विमूढया । महायक्ष्मार्तिहृच्छूलैः पीड्यते तेन पाप्मना
अत्रैव सर्वमर्त्येषु पापचिह्नानि कृत्स्नशः । लक्ष्यन्ते मुनिशार्दूलसविवेकैर्महात्मभिः
अत्र ये बहुरोगार्त्ता ये पुत्रधनवर्जिताः ॥ १०६ ॥
ये च दुर्लक्षणक्लिष्टा याचका विगतह्रियः । वासोन्नपानशयनभूषणाभ्यञ्जनादिभिः
हीनाविरूपानिर्विद्याविकलाङ्गाःकुभोजनाः । येदुर्भाग्यानिन्दिताश्चयेचान्येपरसेवकाः
एते पूर्वभवे सर्वे सुमहत्पापकारिणः । एवं विमृश्य यत्नेनदृष्ट्वा लोकजनस्थितिम्

बुधो न कुरुते पापं यदि कुर्यात्स आत्महा। देहोऽयंमानुषो जन्तोर्बहुकर्मैकभाजनम्
सदा सत्कर्म सेवेत दुष्कर्मसततंत्यजेत्। पुण्यं सुखार्थीकुर्वीतदुःखार्थीपापमाचरेत्

द्वयोरेकतरे लोके गृहीते कुशलो जनः।
इमं मानुषमाश्रित्य देहं परमदुर्लभम्॥ ११२॥

य आत्महितवान्कश्चिद्देवमेकंसमाश्रयेत्। अथ पापानि सर्वाणि कुर्वन्नपिसदानरः
शिवमेकमतिर्ध्यायेत्स संतरति पातकम्। मृता पूर्वभवे त्वेषायदा प्राप्ता यमालये
तदा वितर्कः सुमहानासीद्यमसभासदाम्। यद्यपि ब्राह्मणीत्वेषासत्कुलाचारदूषिता

अतोऽस्माभिरिहानीता निरयं यातु वा न वा।
अनया साधितो बाल्ये पुण्यलेशोऽस्ति वा न वा॥ ११६॥

अथापि सुविमृश्यैवंधार्योदण्डोऽत्रनान्यथा। बहुजन्मसहस्रेषु कृतपुण्यविपाकतः
नृणां ब्रह्मकुलेजन्मलभ्यते हि कथञ्चन। अतोऽस्याः पूर्वपूर्वेषुकृतास्ति नास्तिजन्मसु
अन्यथा सत्कुले जन्म कथमेषा प्रपद्यते। अत्रैव जन्मन्यनया कृतमंहो दुरत्ययम्
अथापि नरकावासं प्रायशो नेयमर्हति। किं तुगोवत्सकंहत्वाविमृश्यागतसाध्वसा
एषा शिवशिवेत्याह प्राग्जन्मार्जितकर्मणा। यदेषापापविच्छित्त्यैसकृदप्युरुमंगलम्

शिवनाम वदेद्व्रतया तर्हि गच्छेत्परंपदम्।
एकजन्मकृतस्यास्य दारुणस्यापि यत्फलम्॥ १२२॥
क्रमेणाऽनुभवत्वेषा भूत्वा चाण्डालजातिका।
अस्मादन्यतमः को वा नरकोऽस्ति नृणामिह॥ १२३॥

अनेकक्लेशसंघातैर्यन्मुहुः परिपीडनम्। दुष्कुलेजन्मदारिद्र्यं महाव्याधिविमूढता
एकैक एव नरकःसर्वे वा चाथकिम्पुनः। प्राग्जन्मपुण्यभारेण यन्नाम विवशाऽब्रवीत्
तेनैषाऽन्यभवे भूरि पुण्यमन्ते करिष्यति। तेन पुण्येन महता निस्तीर्याखिलयातनाः
नाता तत्पुरुषैरन्ते प्रयास्यतिपरंपदम्। एतादृशाना मर्त्यानाशास्तारोनवयं क्वचित्

विचार्य स्वयमेवेशो यद्युक्तं तत्करोतु सः।

एवं वैवस्वतपुरे सर्वैर्यमपुरोगमैः। विमृश्य चित्रगुप्ताद्यैरियं मुक्ताऽपतद्भुवि॥

अम्दौ यदेषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाऽप्यसती जगाद ।
तेनेह भूयः सुकृतेन शम्भोर्बिल्वाङ्कुराराधनपुण्यमाप ॥ १२९ ॥

श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके । कृत्वाजागरणं ह्येषाचक्रेबिल्वार्पणंनिशि
अकामतः कृतस्यास्यपुण्यस्यैवचयत्फलम् । अद्यैव भोक्ष्यतेसेयंपश्यतस्तवनोमृषा

गौतम उवाच

इत्युक्त्वाशिवदूतास्तेतस्याश्चाण्डालयोनितः । जीवलेशांसमाकृष्ययुयुजुर्दिव्यतेजसा
ता दिव्यदेहसंक्रान्तां तेजोराशिसमुज्ज्वलाम् ।
विमाने स्थापयामासुः प्रीतास्ते शिवकिङ्कराः ॥ १३३ ॥

अथ सा परमोदाररूपलावण्यशालिनी । दिव्यभूषणसंभाङ्गीदिव्याम्बरविधारिणी ॥
देहेन दिव्यगन्धेन दिव्यतेजोविकाशिना । दिव्यमाल्यावतंसेन विरराज विमानगा
रत्नच्छत्रपताकाद्यैर्गीतवादित्रनिस्वनैः । मध्ये सा शिवदूतानां मोदमाना वरानना
अनुभूतानि जन्मानि स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ।
भीता त्रस्ता दृढाश्चर्यं दृष्ट्वा स्वप्नमिवोत्थिता ॥ १३७ ॥

काहंकेऽमीमहासिद्धाःकोयंलोकोमनोरमः । क्वगतंमेवपुःकष्टं चण्डचाण्डालगोत्रजम्
अहोसुमहदाश्चर्यं दृष्टं मायाविलासजम् । यन्मे भवसहस्रेषु भ्रान्तंभ्रान्तं पुनःपुनः ॥
अहो ईश्वरपूजाया माहात्म्यंविस्मयावहम् । पत्रमात्रेण संतुष्टो यो ददातिनिजंपदम्
इतिता जातनिर्वेदा स्मरन्तींभगवत्पदम् । दिव्यं विमानमारोप्य ते महेश्वरकिङ्कराः
आलोकयत्सुसर्वेषुलोकेशेषुसविस्मयम् । आमन्त्र्य तामथानिन्युःपरमेश्वरसन्निधिम्
राजन्सुमहदाश्चर्यमाख्यातं गिरिजापतेः । माहात्म्यंभक्तिलेशस्यसर्वाघौघविनाशनम्

राजोवाच

भगवन्परमेशस्य कीदृशो लोक उत्तमः । तस्य मे लक्षणं ब्रूहि यद्यस्तिमयितेदया

गौतम उवाच

ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि सुदुर्लभः । य आनन्दः सदायत्र स लोकःपारमेश्वरः
सर्वातिगमनंयत्र ज्योतिर्यत्र प्रतिष्ठितम् । क्वापि नास्तितमोयोगःसलोकपारमेश्वरः

गुणवृत्तिं विनिस्तीर्य संप्राप्ता यत्र योगिनः ।
न पतेयुः पुनः सर्वे स लोकः पारमेश्वरः ॥ १४७ ॥
यत्रवासं न कुर्वन्ति क्रोधलोभमदादयः । यत्रावस्थानजन्माद्याःस लोकःपारमेश्वरः
सर्वेषां निगमानां च यदेकं क्षेत्रमुच्यते । यस्मान्नास्ति परं विस्ततत्पदं पारमेश्वरम्
प्रत्याहारासनध्यानप्राणसंयमनादिभिः । यत्र योगपथैः प्राप्तुं यतन्ते योगिनः सदा
यत्र देवः सदानन्दनिर्मलज्ञानरूपया । अस्ति देव्या सहक्रीडन्स लोकः पारमेश्वरः
जन्मानेकसहस्रेषु सम्भृतैः पुण्यराशिभिः । आरूढाः पुरुषा नार्यःक्रीडन्ते यत्रसंगताः
तेजोराशौ समालीनादुर्विभाव्येमनोरमे । अहोरात्रादिसंस्थानं न विन्दन्ति कदाचन
स लोकः परमेशस्य दुर्लभो हि कुयोगिनः । एतद्भक्तिसुपूर्णा ये तैरेव प्रतिपद्यते
ये तत्कथाश्रवणकीर्तनजातहर्षा ये सर्वभूतसुहृदः प्रशमैकनिष्ठाः ।
संसारचक्रमतिवाह्य निरस्तमोहास्ते शाङ्करं पदमवाप्य सुखं रमन्ते ॥ १५५ ॥
तथा त्वमपिराजेन्द्रगोकर्णगिरिशालयम् । गत्वाप्रशमिताघौघः कृतकृत्यत्वमाप्नुहि
तत्र सर्वेषुकालेषुस्नात्वाभ्यर्च्यमहाबलम् । कृत्वा शिवचतुर्दश्यामुपवासंसमाहितः
कृत्वा जागरणं रात्रौ बिल्वैरभ्यर्च्य शङ्करम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्स्यसि ॥ १५८ ॥
एष ते विमलो राजन्नुपदेशो मया कृतः ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि मिथिलाधिपतेः पुरीम् ॥ १५९ ॥
इत्यामन्त्र्य मुनिः प्रीत्या गौतमो मिथिलां ययौ ।
सोऽपि हृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत ॥ १६० ॥
तत्रदृष्ट्वामहादेवं स्नात्वाऽभ्यर्च्य महाबलम् । निर्धूताशेषपापौघो लेभेशम्भोःपरंपदम्
यइमांशृणुयान्नित्यंकथांशैवींमनोहराम् । श्रावयेद्वाजनोभक्त्यासयातिपरमां गतिम्
श्रद्दधानः सकृद्वापि य इमां शृणुयात्कथाम् ।
त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १६३ ॥
इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम् ।

चरितममरगेयं मन्मथारेरुदारं सततमपि निषेव्यं स्वस्तिमद्भिश्च लोकैः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे
शिवचतुर्दशीगोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

# चतुर्थोऽध्यायः

## चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णनम्

### सूत उवाच

भूयोपिशिवमाहात्म्यंवक्ष्यामिपरमाद्भुतम् । शृण्वतांसर्वपापघ्नं भवपाशविमोचनम्
दुस्तरे दुरिताम्भोधौ मज्जतां विषयात्मनाम् ।
शिवपूजां विना कश्चित्प्लवो नास्ति निरूपितः ॥ २ ॥

शिवपूजां सदाकुर्याद्बुद्धिमानिहमानवः । अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येद्भक्तिविनम्रधीः अश्रद्धयापियःकुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम् । पश्येद्वा सोपिकालेनप्रयातिपरमंपदम् आसीत्किरातदेशेषु नाम्ना राजा विमर्दनः । शूरः परमदुर्द्धर्षो जितशत्रुः प्रतापवान सर्वदा मृगयासक्तः कृपणो निर्घृणोबली । सर्वमांसाशनः क्रूरः सर्ववर्णाङ्गनावृतः तथापि कुरुतेशम्भोःपूजां नित्यमतन्द्रितः । चतुर्दश्यांविशेषेणपक्षयोः शुक्लकृष्णोः महाविभवसम्पन्नां पूजां कृत्वासमोदते । हर्षेण महताविष्टो नृत्यतिस्तौतिगायति तस्यैवं वर्तमानस्य नृपतेः सर्वभक्षिणः । दुराचारस्य महिषी चेष्टितेनान्वतप्यत ॥ सा वै कुमुद्वतीनाम राज्ञी शीलगुणान्विता । एकदा पतिमासाद्य रहस्ये तदपृच्छत एतत्ते चरितं राजन्महदाश्चर्यकारणम् । क्व ते महान्दुराचारः क्व भक्तिः परमेश्वरे ॥ सर्वदा सर्वभक्षस्त्वं सर्वस्त्रीजनलालसः । सर्वहिंसापरः क्रूरः कथं भक्तिस्तवेश्वरे इति पृष्टः स भूपालो विसृज्य सुचिरंततः । त्रिकालज्ञः प्रहस्यैनां प्रोवाचसुकुतूहलः

राजोवाच

अहं पूर्वभवे कश्चित्सारमेयो वरानने !। पम्पानगरमाश्रित्य पर्यटामि समन्ततः ॥१४
एवं कालेषु गच्छत्सु तत्रैव नगरोत्तमे । कदाचिदागतः सोऽहं मनोज्ञं शिवमन्दिरम्
पूजायांवर्त्तमानायां चतुर्दश्यां महातिथौ । अपश्यमुत्सवं दूराद्वहिर्द्वारंसमाश्रितः
अथाहं परमक्रुद्धैर्दण्डहस्तैः प्रधावितः । तस्माद्देशादपक्रान्तः प्राणरक्षापरायणः ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य मनोज्ञं शिवमन्दिरम् ।
द्वारदेशं पुनः प्राप्य पुनश्चैव निवारितः ॥ १८ ॥

पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तदेव शिवमन्दिरम् । बलिपिण्डादिलोभेन पुनर्द्वारमुपागतः ॥
एवं पुनःपुनस्तत्र कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणाम् । द्वारदेशेसमासान्नं निजघ्नुर्निशितैःशरैः

स विद्धगात्रः सहसा शिवद्वारि गतासुकः ।
जातोऽस्म्यहं कुले राज्ञां प्रभावाच्छिवसन्निधेः ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा चतुर्दशीपूजादीपमालाविलोकिताः । तेनपुण्येनमहतात्रिकालज्ञोऽस्मिभामिनि!

प्राग्जन्मवासनाभिश्च सर्वभक्षोऽस्मि निर्घृणः ।
विदुषामपि दुर्लङ्घ्या प्रकृतिर्वासनामयी ॥ २३ ॥

अतोऽहमर्चयामीशं चतुर्दश्यां जगद्गुरुम् । त्वमपिश्रद्धया भद्रे! भजदेवंपिनाकिनम्

राज्ञ्युवाच

त्रिकालज्ञोऽसिराजेन्द्र प्रसादाद्गिरिजापतेः । मत्पूर्वजन्मचरितं वक्तुमर्हसि तत्त्वतः

राजोवाच

त्वं तु पूर्वभवे काचित्कपोती व्योमचारिणी ।
क्वापि लब्धवती किञ्चिन्मांसपिण्डं यदृच्छया ॥ २६ ॥

त्वद्गृहीतमथालोक्यगृध्रःकोऽप्यामिषंबली। निरामिषःस्वयंवेगादभिदुद्रावभीषणः
ततस्त्वं वीक्ष्यवित्रस्ता विद्रुतासि वरानने । तेनानुयाताघोरेण मांसपिण्डजिघृक्षया

दिष्ट्या श्रीगिरिमासाद्य श्रान्ता तत्र शिवालयम् ।
प्रदक्षिणं परिक्रम्य ध्वजाग्रे समुपस्थिता ॥ २९ ॥

अथाऽनुसृत्य सहसा तीक्ष्णतुण्डो विहङ्गमः ।
त्वां निहत्य निपात्याऽधो मांसमादाय जग्मिवान् ॥ ३० ॥
प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्देवदेवस्य शूलिनः । तस्याग्रे मरणाच्चैव जातासीह नृपाङ्गना ॥

राज्ञ्युवाच

श्रुतं सर्वमशेषेण प्राग्जन्मचरितंमया । जातं च महदाश्चर्यं भक्तिश्च मम चेतसि ॥
अथाऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामि त्रिकालज्ञ महामते !।
इदं शरीरमुत्सृज्य यास्यावः कां गतिं पुनः ॥ ३३ ॥

राजोवाच

अतो भवे जनिष्येऽहं द्वितीये सैन्धवो नृपः ॥ ३४ ॥
सृञ्जयेशसुतात्वंहिमामेवप्रतिपत्स्यसे । तृतीयेतुभवेराजासौराष्ट्रे भविताऽस्म्यहम्
कलिङ्गराजतनया त्वं मे पत्नीभविष्यसि । चतुर्थे तुभविष्यामि भवेगान्धारभूमिपः
मागधी राजतनया तत्रत्वं मम गेहिनी । पञ्चमेऽवन्तिनाथोऽहं भविष्यामिभवान्तरे
दाशार्हराजतनया त्वमेव मम वल्लभा । अस्माज्जन्मनि षष्ठेऽहमानर्ते भविता नृपः ॥
ययातिवंशजा कन्या भूत्वा मामेव यास्यसि ।
पाण्ड्यराजकुमारोऽहं सप्तमे भविता भवे ॥ ३६ ॥
तत्र मत्सदृशो नान्यो रूपौदार्यगुणादिभिः । सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बलवान्दृढविक्रमः
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वलोकमनोरमः । पद्मवर्णइति ख्यातः पद्ममित्रसमद्युतिः ॥ ४१
भविता त्वं च वैदर्भीरूपेणाप्रतिमाभुवि । नाम्ना वसुमती ख्यातारूपावयवशोभिनी
सर्वराजकुमाराणा मनोनयननन्दिनी । सा त्वं स्वयम्वरे सर्वान्विहाय नृपनन्दनान्
वरं प्राप्स्यसि मामेव दमयन्तीव नैषधम् ।
सोऽहं जित्वा नृपान्सर्वान्प्राप्य त्वां वरवर्णिनीम् ॥ ४४ ॥
स्वराष्ट्रस्थोऽखिलान्भोगान्भोक्ष्ये वर्षगणान्बहून् ।
इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्वाजिमेधादिभिः शुभैः ॥ ४५ ॥
सन्तर्प्य पितृदेवर्षीन्दानैश्च द्विजसत्तमान् । संपूज्य देवदेवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥

पुत्रे राज्यधुरं न्यस्य गन्तास्मि तपसे वनम् । तत्रागस्त्यान्मुनिवराद्‌ब्रह्मज्ञानमवाप्य च
त्वया सह गमिष्यामि शिवस्य परमं पदम् । चतुर्दश्यां चतुर्दश्यामेवं संपूज्य शङ्करम्
सप्तजन्मसु राजत्वं भविष्यति वरानने !। इत्येतत्सुकृतं लब्धं पूजादर्शनमात्रतः ॥

क्व सारमेयो दुष्टात्मा क्वेदृशी बत सद्गतिः ॥ ४९ ॥

सूत उवाच

इत्युक्ता निजनाथेन सा राज्ञी शुभलक्षणा ॥ ५० ॥
परं विस्मयमापन्ना पूजयामास तं मुदा ।
सोऽपि राजा तया सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ५१ ॥

जगाम सप्तजन्मान्ते शम्भोस्तत्परमं पदम् । य एतच्छिवपूजाया माहात्म्यं परमाद्भुतम्

शृणुयात्कीर्तयेद्वापि स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः

### गोपकुमारचरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम् ।
शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किञ्चन ॥ १ ॥

शिवमुद्दिश्य यत्किञ्चिद्दत्तं जप्तं हुतं कृतम् । तदनन्तफलं प्रोक्तं सर्वागमविनिश्चितम्
भक्त्या निवेदितं शम्भोः पत्रं पुष्पं फलं जलम् । अल्पादल्पतरं वापि तदानन्त्याय कल्पते
विहाय सकलान्धर्मान्सकलागमनिश्चितान् । शिवमेकं भजेद्यस्तु मुच्यते सर्वबन्धनात्
या प्रीतिरात्मनः पुत्रे या कलत्रे धनेपि सा । कृता चेच्छिवपूजायां त्रायते ति किमद्भुतम्

तस्मात्केचिन्महात्मानः सकलान्विषयासवान् ।
त्यजन्ति शिवपूजार्थे स्वदेहमपि दुस्त्यजम् ॥ ६ ॥
सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम् ।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ ॥ ७ ॥
ते नेत्रेपश्यतःपूजां तच्छिरः प्रणत शिवे । तौपादौयौशिवक्षेत्रं भक्तयापर्यटतः सदा
यस्येन्द्रियाणिसर्वाणिवर्त्ततेशिवकर्मसु । सनिस्तरति संसारंभुक्तिमुक्तिञ्चविन्दति
शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि वा ।
नारी नरो वा षण्ढो वा सद्योमुच्येत संसृतेः ॥ १० ॥
किंकुलेनकिमाचारैःकिंशीलेनगुणेन वा । भक्तिलेशयुतःशम्भोः सवन्द्यःसर्वदेहिनाम्
उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनसमाह्वयः । जातो मानवरूपेण द्वितीय इव वासवः ॥
तस्मिन्पुरे महाकालं वसन्तं परमेश्वरम् । सम्पूजयत्यसौभक्त्या चन्द्रसेनोनृपोत्तमः
तस्याऽभवत्सखाराज्ञःशिवपार्षदाग्रणीः । मणिभद्रोजिताभद्रः सर्वलोकनमस्कृतः
तस्यैकदा महीभर्त्तुः प्रसन्नः शङ्करानुगः । चिन्तामणिददौदिव्यं मणिभद्रोमहामतिः
स मणिः कौस्तुभ इव द्योतमानोऽर्कसन्निभः ।
दृष्टः श्रुतो वा ध्यातो वा नृणां गच्छति चिन्तितम् ॥ १६ ॥
तस्यकान्तिलवस्पृष्टंकांस्यंताम्रमयत्रपु । पाषाणादिकमन्यद्वासद्योभवतिकाञ्चनम्
सतं चिन्तामणिं कण्ठे बिभ्रद्राजासनंगतः । रराजराजादेवानांमध्येभानुरिवस्वयम्
सदाचिन्तामणिग्रीवं तं श्रुत्वा राजसत्तमम् । प्रवृद्धतर्षाराजानःसर्वेक्षुब्धहृदोऽभवन्
स्नेहात्केचिदयाचन्त धाष्ट्यर्यात्केचन दुर्मदाः ।
दैवलब्धमजानन्तो मणिं मत्सरिणो नृपाः ॥ २० ॥
सर्वेषां भूभृतां याच्ञा यदा व्यर्थीकृतामुना । राजानःसर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरेतदा
सौराष्ट्राः कैकयाः शाल्वाः कलिङ्गाशकमद्रकाः ।
पाञ्चालावन्तिसौवीरा मागधा मत्स्यसृञ्जयाः ॥ २२ ॥
एते चान्ये च राजानः सहाश्वरथकुञ्जराः । चन्द्रसेनं मृधे जेतुमुद्यमं चक्रुरोजसा ॥

ते तु सर्वे सुसंरब्धाःकम्पयन्तोवसुन्धराम् । उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः
संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा राजभिरुद्धतैः । चन्द्रसेनो महाकालं तमेव शरणं ययौ ॥
निर्विकल्पोनिराहारः स राजादृढनिश्चयः । अर्चयामासगौरीशंदिवा नक्तमनन्यधाः
एतस्मिन्नन्तरे गोपी काचित्तत्पुरवासिनी । एकपुत्रा भर्तृहीना तत्रैवासीच्चिरन्तना
सा पञ्चहायनं बालं वहन्ती गतभर्तृका । राज्ञा कृता महापूजां ददर्श गिरिजापतेः
सा दृष्ट्वा सर्वमाश्चर्यं शिवपूजामहोदयम् । प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥
एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा बल्लवीसुतः । कुतूहलेन विदधे शिवपूजां विरक्तिदाम् ॥

आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिबिरोत्तमे ।
नाऽतिदूरे स्वशिबिराच्छिवलिङ्गमकल्पयत ॥ ३१ ॥
यानि कानि च पुष्पाणि हस्तलभ्यानि चाऽऽत्मनः ।
आनीयस्नाप्य तल्लिङ्गम्पूजयामास भक्तितः ॥ ३२ ॥

गन्धालङ्कारवासांसि धूपदीपाक्षतादिकम् । विधायकृत्रिमैर्दिव्यैर्नैवेद्यंचाप्यकल्पयत्
भूयोभूयः समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः । नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनःपुनः
एवं पूजां प्रकुर्वाणं शिवस्यानन्यमानसम् । सापुत्रंप्रणयाद्गोपी भोजनायसमाह्वयत्
मात्राहूतोऽपिबहुशःसपूजासक्तमानसः । बालोपि भोजनं नैच्छत्तदामातास्वयंययौ

तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम् ।
चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत् ॥ ३७ ॥
आकृष्टस्ताडितो वाऽपि नाऽऽगच्छत्स्वसुतो यदा ।
ता पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिङ्गं विदूरतः ॥ ३८ ॥

हाहेति रुदमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं तदा । पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी रोषसमन्विता
मात्रा विनाशितां पूजा दृष्ट्वा देवस्यशूलिनः । देवदेवेतिचुक्रोश निपपात स बालकः
प्रणष्टसञ्ज्ञः सहसा बाष्पपूरपरिप्लुतः । लब्धसञ्ज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥

ततो मणिस्तम्भविराजमानं हिरण्मयद्वारकपाटतोरणम् ।
महार्हनीलामलवज्रवेदिकं तदेव जातं शिबिरं शिवालयम् ॥ ४२ ॥

सन्तप्तहेमकलशैर्बहुभिर्विचित्रैः प्रोद्भासितस्फटिकसौधतलाभिरामम् ।
रम्यं च तच्छिवपुरं वरपीठमध्ये लिङ्गञ्च रत्नसहितं स ददर्श बालः ॥ ४३ ॥
स दृष्ट्वा सहसोत्थाय भीतविस्मितमानसः । निमग्न इव सन्तोषात्परमानन्दसागरे
विज्ञाय शिवपूजाया माहात्म्यं तत्प्रभावतः ।
ननाम दण्डवद् भूमौ स्वमातुरघशान्तये ॥ ४५ ॥
देव! क्षमस्व दुरितं मम मातुरुमापते । मूढायास्त्वामजानन्त्याः प्रसन्नो भव शङ्कर!
यद्यस्ति मयि यत्किञ्चित्पुण्यं त्वद्भक्तिसम्भवम् ।
तेनाऽपि शिव! मे माता तव कारुण्यमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
इति प्रसाद्य गिरिशंभूयोभूयःप्रणम्य च । सूर्ये चास्तंगतेबालो निर्जगामशिवालयात्
अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरन्दरपुरोपमम् । सद्योहिरण्मयीभूतंविचित्रविभवोज्ज्वलम्
सोऽन्तः प्रविश्यभवनंमोदमानोनिशामुखे । महामणिगणाकीर्णंहेमराशिसमुज्ज्वलम्
तत्रापश्यत्स्वजननींस्मरन्तीमकुतोभयाम् । महार्हरत्नपर्यङ्के सितशय्यामधिश्रिताम्
रत्नालङ्कारदीप्ताङ्गींदिव्याम्बरविराजिनीम् । दिव्यलक्षणसम्पन्नांसाक्षात्सुरवधूमिव
जवेनोत्थापयामास सम्भ्रमोत्फुल्ललोचनः । अम्बजागृहि भद्रन्ते पश्येदं महदद्भुतम्
इति प्रबोधिता गोपी स्वपुत्रेण महात्मना ।
ततोऽपश्यत्स्वजननी स्मयन्ती मुकुटोज्ज्वला ॥ ५४ ॥
ससम्भ्रमं समुत्थाय तत्सर्वं प्रत्यवेक्षत । अपूर्वमिवचात्मानमपूर्वमिव बालकम् ॥
अपूर्वं च स्वसद्मं दृष्ट्वाऽऽसीत्सुखविह्वला । श्रुत्वापुत्रमुखात्सर्वं प्रसादंगिरिजापतेः
राज्ञे विज्ञापयामासयोभजत्यनिशंशिवम् । स राजा सहसागत्य समाप्तनियमोनिशि
ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषजम् । हिरण्मयंशिवस्थानं लिङ्गंमणिमयंतथा
गोपवध्वाश्च सदनं माणिक्यवरकोज्ज्वलम् ।
दृष्ट्वा महीपतिः सर्वं सामात्यः स्वपुरोहितः ॥ ५६ ॥
मुहूर्तं विस्मितधृतिः परमानन्दनिर्भरः । प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चन्परिरेभे तमर्भकम् ॥
एवमत्यद्भुताकाराच्छिवमाहात्म्यकीर्तनात् ।

पौराणां सम्भ्रमाच्चैव सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ ६१ ॥
अथ प्रभाते युद्धाय पुरं संरुध्यसंस्थिताः । राजानश्चारवक्त्रेभ्यः शुश्रुवुः परमाद्भुतम्
तेत्यक्तवैराःसहसाराजानश्चकिताभृशम् । न्यस्तशस्त्रानिविविशुश्चन्द्रसेनानुमोदिताः
तां प्रविश्यपुरीं रम्यां महाकालं प्रणम्य च । तद्गोपवनितागेहमाजग्मुः सर्वभूभृतः
ते तत्र चन्द्रसेनेनप्रत्युद्गम्याभिपूजिताः । महार्हविष्टरगताः प्रीत्यानन्दन्सुविस्मिताः
गोपसूनोःप्रसादायप्रादुर्भूतंशिवालयम् । लिङ्गंचर्वाक्ष्य सुमहच्छिवेचक्रुःपरामतिम्

तस्मै गोपकुमाराय प्रीतास्ते सर्वभूभुजः ।
वासो हिरण्यरत्नानि गोमहिष्यादिकं धनम् ॥ ६७ ॥
गजानश्वान्रथान्रौक्माञ्छत्रयानपरिच्छदान् ।
दासान्दासीरनेकांश्च ददुः शिवकृपार्थिनः ॥ ६८ ॥

ये ये सर्वेषु देशेषुगोपास्तिष्ठन्तिभूरिशः । तेषां तमेव राजानं चक्रिरेसर्वपार्थिवाः
अथास्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः । प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरेश्वरः ॥
तस्याभिगमनादेव राजानो जातसम्भ्रमाः । प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः
तेषां मध्येसमासीनःपूजितः प्लवगेश्वरः । गोपात्मजंसमाश्लिष्यराज्ञोवाक्ष्येदमब्रवीत
सर्वेशृणुतभद्रं वो राजानोये च देहिनः । शिवपूजामृतेनान्या गतिरस्तिशरीरिणाम्
एष गोपसुतोदिष्ट्याप्रदोषे मन्दवासरे । अमन्त्रेणापिसम्पूज्यशिवं शिवमवाप्तवान्
मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभतरः कृष्णपक्षे समागते ॥
एष पुण्यतमोलोकेगोपानांकीर्तिवर्धनः । अस्यवंशेऽष्टमोभावी नन्दोनाममहायशाः

प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणः स्वयम् ॥ ७६ ॥
अद्यप्रभृति लोकेऽस्मिन्नेष गोपालनन्दनः ।
नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ ७७ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुस्तस्मै गोपकसूनवे । उपदिश्य शिवाचारं तत्रैवाऽन्तरधीयत ७८
तेचसर्वे महीपालाः संहृष्टाः प्रतिपूजिताः । चन्द्रसेनं समामन्त्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम्

श्रीकरोऽपि महातेजा उपदिष्टोहनूमता । ब्राह्मणैः सहधर्मज्ञश्चक्रेशम्भोः समर्हणम्
कालेनश्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः । समाराध्य शिवंभक्त्याप्रापतुःपरमंपदम्
इदं रहस्यं परमं पवित्रं यशस्करं पुण्यमहर्द्धिवर्धनम् ।
आख्यानमाख्यातमघौघनाशनं गौरीशपादाम्बुजभक्तिवर्धनम् ॥ ८२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयेब्रह्मोत्तरखण्डे गोपकुमारचरितवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः

### प्रदोषव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

यदुक्तं भवता सूत ! महदाख्यानमद्भुतम् । शम्भोर्माहात्म्यकथनमशेषाघहरं परम् ॥
भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामस्तदेव सुसमाहिताः ।
प्रदोषे भगवाञ्छम्भुः पूजितस्तु महात्मभिः ॥ २ ॥
सम्प्रयच्छति कां सिद्धिमेतन्नोब्रूहि सुव्रत !। श्रुतमप्यसकृत्सूत! भूयस्तृष्णाप्रवर्धते

सूत उवाच

साधुपृष्टं महाप्राज्ञा भवद्भिर्लोकविश्रुतैः ! अतोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शिवपूजाफलंमहत्
त्रयोदश्यां तिथौ सायं प्रदोषः परिकीर्त्तितः ।
तत्र पूज्यो महादेवो नाऽन्यो देवः फलार्थिभिः ॥ ५ ॥
प्रदोषपूजामाहात्म्यंकोनुवर्णयितुंक्षमः । यत्रसर्वेऽपिविबुधास्तिष्ठन्तिगिरिशान्तिके
प्रदोषसमयेदेवः कैलासेरजतालये । करोतिनृत्यं विबुधैरभिष्टुतगुणोदयः ॥ ७ ॥
अतः पूजा जपोहोमस्तत्कथास्तद्गुणस्तवः ।
कर्त्तव्यो नियतं मर्त्यैश्चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥ ८ ॥

दारिद्र्यतिमिरान्धानां मर्त्यानांभवभीरुणाम् । भवसागरमग्नानांप्लवोऽयंपारदर्शनः

दुःखशोकभयार्त्तानां क्लेशनिर्वाणमिच्छताम् ।

प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजनं मङ्गलायनम् ॥ १० ॥

दुर्बुद्धिरपि नीचोऽपि मन्दभाग्यःशठोऽपिवा । प्रदोषेपूज्यदेवेशंविपद्भ्यःसप्रमुच्यते

शत्रुभिर्हन्यमानोऽपि दश्यमानोपि पन्नगैः ।

शैलैराक्रम्यमाणोऽपि पतितोऽपि महाम्बुधौ ॥ १२ ॥

आविद्धकालदण्डोऽपि नानारोगहतोऽपि वा ।

न विनश्यति मर्त्योऽसौ प्रदोषे गिरिशार्चनात् ॥ १३ ॥

दारिद्र्यं मरणं दुःखमृणभारं नगोपमम् । सद्यो विधूयसंपद्भिःपूज्यते शिवपूजनात्

अत्रवक्ष्ये महापुण्यमितिहासं पुरातनम् । यं श्रुत्वामनुजाःसर्वेप्रयान्तिकृतकृत्यताम्

आसीद्विदर्भविषये नाम्ना सत्यरथोनृपः । सर्वधर्मरतो धीरः सुशीलः सत्यसङ्गरः

तस्य पालयतो भूमिं धर्मेण मुनिपुङ्गवाः । व्यतीयाय महान्कालःसुखेनैवमहामतेः

अथ तस्यमहीभर्तुर्बभूवुःशाल्वभूभुजः । शत्रवश्चोद्धतबलादुर्मर्षणपुरोगमाः ॥ १८॥

कदाचिदथ ते शाल्वाः सन्नद्धबहुसैनिकाः ।

विदर्भनगरी प्राप्य रुरुधुर्विजिगीषवः ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा निरुद्ध्यमाना ता विदर्भाधिपतिः पुरीम् ।

योद्धुमभ्याययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ २० ॥

तस्य तैरभवद्युद्धंशाल्वैरपिबलोद्धतैः । पाताले पन्नगेन्द्रस्य गन्धर्वैरिव दुर्मदैः ॥२१॥

विदर्भनृपतिः सोऽथकृत्वा युद्धं सुदारुणम् । प्रनष्टोरुबलैः शाल्वैर्निहतो रणमूर्धनि

तस्मिन्महारथे वीरे निहते मन्त्रिभिः सह । दुद्रुवुः समरे भग्ना हतशेषाश्चसैनिकाः

अथ युद्धेऽभिविरते नदत्सु रिपुमन्त्रिषु । नगर्यांयुद्ध्यमानायां जाते कोलाहले रवे

तस्य सत्यरथस्यैका विदर्भाधिपतेः सती ।

भूरिशोकसमाविष्टा कञ्चिद्यत्नाद्विनिर्ययौ ॥ २५ ॥

सा निशासमये यत्नादन्तर्वत्नी नृपाङ्गना । निर्गता शोकसंतप्ताप्रतीचीं प्रययौदिशम्

अथ प्रभाते मार्गेण गच्छन्ती शनकैः सती । अतीत्य दूरमध्वानं ददर्श विमलं सरः

तत्राऽऽगत्य वरारोहा तप्ता तापेन भूयसा ।

विलसन्तं सरस्तीरे छायावृक्षं समाश्रयत् ॥ २८ ॥

तत्र दैववशाद्राज्ञी विजनेतरुकुट्टिमे । असूत तनयं साध्वीमुहूर्त्तेसद्गुणान्विते ॥ २९

अथ साराजमहिषीपिपासाभिहताभृशम् । सरोऽवतीर्णाचार्वङ्गीग्रस्ताग्राहेणभूयसा

जातमात्रः कुमारोऽपि विनष्टपितृमातृकः ।

रुरोदोच्चैः सरस्तीरे क्षुत्पिपासार्दितोऽबलः ॥ ३१ ॥

तस्मिन्नेवं क्रन्दमाने जातमात्रेकुमारके । काचिदभ्याययौशीघ्रं दिष्ट्याविप्रवराङ्गना

साप्येकहायनं बालमुद्वहन्ती निजात्मजम् ।

अधना भर्तृरहिता याचमाना गृहेगृहे ॥ ३३ ॥

एकात्मजाबन्धुहीनायाच्ञामार्गवशंगता । उमानाम द्विजसती ददर्श नृपनन्दनम् ॥

सा दृष्ट्वा राजतनयंसूर्यबिम्बमिव च्युतम् । अनाथमेनं क्रन्दन्तंचिन्तयामास भूरिशः

अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं मयाऽधुना । अच्छिन्ननाभिसूत्रोऽयंशिशुर्माता क वागता

पिता नास्ति न चान्योस्ति नास्ति बन्धुजनोऽपि वा ।

अनाथः कृपणो बालः शेते केवलभूतले ॥ ३७ ॥

एष चाण्डालजो वाऽपि शूद्रजो वैश्यजोपि वा ।

विप्रात्मजो वा नृपजो ज्ञायते कथमर्भकः ॥ ३८ ॥

शिशुमेनसमुद्धृत्यपुष्णाम्यौरसवद्ध्रुवम् । किं त्वविज्ञातकुलजंनोत्सहेस्प्रष्टुमुत्तमम्

इति मीमांसमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम् ॥ ४० ॥

कश्चित्समाययौ भिक्षुः साक्षाद् देवः शिवः स्वयम् ।

तामाह भिक्षुवर्योऽथ विप्रभामिनि ! मा खिद ॥ ४१ ॥

रक्षैनं बालकं सुभ्रूर्विसृज्य हृदि संशयम् । अनेन परमं श्रेयः प्राप्स्यसे ह्यचिरादिह

एतावदुक्त्वा त्वरितो भिक्षुः कारुणिको ययौ ।

अथ तस्मिन्गते भिक्षौ विश्रब्धा विप्रभामिनी ॥ ४३ ॥

तमर्भकं समादाय निजमेव गृहं ययौ । भिक्षुवाक्येन विश्रब्धा सा राजतनयं सती
आत्मपुत्रेण सदृशं कृपया पर्यपोषयत् । एकचक्राह्वये रम्येग्रामे कृतनिकेतना ॥ ४५ ॥
स्वपुत्रं राजपुत्रंचभिक्षान्नेनव्यवर्धयत् । ब्राह्मणीतनयश्चैव सराजतनयस्तथा ॥ ४६॥
ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ ववृधातेसुपूजितौ । कृतोपनयनौकालेबालकौनियमेस्थितौ
भिक्षार्थं चेरतुस्तत्र मात्रासह दिने दिने ।
ताभ्यां कदाचिद् बालाभ्यां सा विप्रवनिता सह ॥ ४८ ॥
भैक्ष्यं चरन्ती दैवेन प्रविष्टा देवतालयम् । तत्रवृद्धैः समाकीर्णे मुनिभिर्देवतालये ॥
तौ दृष्ट्वा बालकौ धीमाञ्छाण्डिल्यो मुनिरब्रवीत् ।
अहो दैवबलं चित्रमहो कर्म दुरत्ययम् ॥ ५० ॥
एषबालोऽन्यजननीं श्रितौभैक्ष्येण जीवति । इमामेव द्विजवधूं प्राप्यमातरमुत्तमाम्
सहैवद्विजपुत्रेण द्विजभावसमाश्रितः । इतिश्रुत्वामुनेर्वाक्यंशाण्डिल्यस्यद्विजाङ्गना
सा प्रणम्य सभामध्ये पर्यपृच्छत्सविस्मया ।
ब्रह्मन्नेषोऽर्भको नीतो मया भिक्षोर्गिरा गृहम् ॥ ५३ ॥
अविज्ञातकुलोद्यापिसुतवत्परिपोष्यते । कस्मिन्कुलेप्रसूतोऽयंकामाताजनकोस्यकः
सर्वं विज्ञातुमिच्छामि भवतो ज्ञानचक्षुषः ॥ ५५ ॥
इति पृष्टो मुनिः सोऽथ ज्ञानदृष्टिर्द्विजस्त्रिया ।
आचख्यौ तस्य बालस्य जन्मकर्म च पौर्विकम् ॥ ५६ ॥
विदर्भराजपुत्रस्तु तत्पितुः समरे मृतिम् । तन्मातुर्नक्रहरणं साकल्येन न्यवेदयत् ॥
अथ सा विस्मिता नारी पुनः प्रपच्छ तं मुनिम् ।
स राजा सकलान्भोगान्हित्वा युद्धे कथं मृतः ॥ ५८ ॥
दारिद्र्यमस्य बालस्य कथंप्राप्तंमहामुने !। दारिद्र्यं पुनरुद्धूयकथंराज्यमवाप्स्यति
अस्यापि ममपुत्रस्य भिक्षान्नेनैवजीवतः । दारिद्र्यशमनोपायमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥

शाण्डिल्य उवाच

अमुष्य बालस्यपिता स विदर्भमहीपतिः । पूर्वजन्मनिपाञ्चाल्येशो बभूव नृपसत्तमः

स राजा सर्वधर्मज्ञःपालयन्सकलां महीम् । प्रदोषसमये शम्भुं कदाचित्प्रत्यपूजयत्
तस्य पूजयतो भक्त्या देवं त्रिभुवनेश्वरम् । आसीत्कलकलारावः सर्वत्रनगरे महान्
श्रुत्वा तमुत्कटं शब्दं तदा त्यक्तशिवार्चनः । निर्ययौ राजभवनान्नगरक्षोभशङ्कया ॥
एतस्मिन्नेव समयेतस्यामात्योमहाबलः । शत्रुं गृहीत्वासामन्तंराजान्तिकमुपागमत्
अमात्येन समानीतं शत्रुं सामन्तमुद्धतम् । दृष्ट्वा क्रोधेननृपतिः शिरश्छेदमकारयत्
सतथैव महीपालो विसृज्य शिवपूजनम् । असमाप्तात्मनियमश्चकार निशिभोजनम्
तत्पुत्रोपि तथाचक्रे प्रदोषसमये शिवम् । अनर्चयित्वा मूढात्माभुक्त्वा सुष्वापदुर्मदः
जन्मान्तरे स नृपतिर्विदर्भक्षितिपोऽभवत् । शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः

तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ।
भूत्वा दारिद्र्यमापन्नः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ७० ॥

अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाऽहनत् । तेन पापेनमहता ग्राहेणास्मिन्भवे हता
एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै समुदाहृता । अनर्चितशिवा मर्त्याः प्राप्नुवन्तिदरिद्रताम्

सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ।
संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः सारोऽयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥ ७३ ॥
ये नाऽर्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे ये नाऽर्चित शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये ।
एतत्कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढास्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥ ७४॥
ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम् ।
नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥ ७५ ॥
कैलासशैलभवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाञ्चितरत्नपीठे ।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे ॥ ७६

वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मज,
स्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः ,
सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥ ७७ ॥

गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्या विद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च ।
येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सह भूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः ॥ ७८ ॥
अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः ।
तस्मिन्महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥ ७९ ॥
एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः । प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्मभिः ॥
अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शङ्करम्
इति श्रीस्कान्दे माहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
प्रदोषव्रतमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ॥ ६ ॥

## सप्तमोऽध्यायः

### प्रदोषमहिमवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्ता मुनिना साध्वी सा विप्रवनिता पुनः ।
तं प्रणम्याऽथ पप्रच्छ शिवपूजाविधेः क्रमम् ॥ १ ॥

शण्डिल्य उवाच

पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्यदा । घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत्
शुक्लाम्बरधरो धीरो वाग्यतो नियमान्वितः । कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत्
देवस्य पुरतः सम्यगुपलिप्य नवाम्भसा । विधाय मण्डलं रम्यं धौतवस्त्रादिभिर्बुधः
वितानाद्यैरलंकृत्य फलपुष्पनवाङ्कुरैः । विचित्रपद्ममुद्धृत्य वर्णपञ्चकसंयुतम् ॥
तत्रोपविश्य सुशुभे भक्तियुक्तः स्थिरासने । सम्यक्संपादिताशेषपूजोपकरणः शुचिः
आगमोक्तेन मन्त्रेण पीठमामन्त्रयेत्सुधीः । ततः कृत्वात्मशुद्धिं च भूतशुद्ध्यादिकं क्रमात्
प्राणायामत्रयं कृत्वा बीजवर्णैः सबिन्दुकैः ।

मातृका न्यस्य विधिवद्ध्यात्वा तां देवतां परम् ॥ ८ ॥
समाप्य मातृकां भूयो ध्यात्वा चैव परं शिवम् ।
वामभागे गुरुं नत्वा दक्षिणे गणपं नमेत् ॥ ९ ॥
अंसोरुयुग्मे धर्मादीन्न्यस्य नाभौ च पार्श्वयोः ।
अधर्मादीननन्तादीन्हृदि पीठे मनुं न्यसेत् ॥ १० ॥

आधारशक्तिमारभ्य ज्ञानात्मानमनुक्रमात् । उक्तक्रमेण विन्यस्य हृत्पद्मे साधुभाविते
नवशक्तिमये रम्ये ध्यायेद्देवमुमापतिम् । चन्द्रकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्
आपिङ्गलजटाजूटं रत्नमौलिविराजितम् । नीलग्रीवमुदाराङ्गं नागहारोपशोभितम्
वरदाभयहस्तं च धारिणं च परश्वधम् । दधानं नागवलयकेयूराङ्गदमुद्रिकम् ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानं रत्नसिंहासने स्थितम् । ध्यात्वा तद्वामभागे च चिन्तयेद्गिरिकन्यकाम्
भास्वज्जपाप्रसूनाभामुदयार्कसमप्रभाम् । विद्युत्पुञ्जनिभां तन्वीं मनोनयननन्दिनीम्

बालेन्दुशेखरां स्निग्धां नीलकुञ्चितकुन्तलाम् ।
भृङ्गसङ्घातरुचिरां नीलालकविराजिताम् ॥ १७ ॥

मणिकुण्डलविद्योतन्मुखमण्डलविभ्रमाम् । नवकुङ्कुमपङ्काङ्ककपोलदलदर्पणाम् ॥ १८
मधुरस्मितविभ्राजदरुणाधरपल्लवाम् । कम्बुकण्ठीं शिवामुद्यत्कुचपङ्कजकुड्मलाम्
पाशाङ्कुशाभयाभीष्टविलसत्सुचतुर्भुजाम् । अनेकरत्नविलसत्कङ्कणाङ्कितमुद्रिकाम्

वलित्रयेण विलसद्धेमकाञ्ची गुणान्विताम् ।
रक्तमाल्याम्बरधरां दिव्यचन्दनचर्चिताम् ॥ २१ ॥

दिक्पालवनितामौलिसन्नतांघ्रिसरोरुहाम् । रत्नसिंहासनारूढां सर्पराजपरिच्छदाम्

एवं ध्यात्वा महादेवं देवीं च गिरिकन्यकाम् ।
न्यासक्रमेण सम्पूज्य देवं गन्धादिभिः क्रमात् ॥ २३ ॥

पञ्चभिर्ब्रह्मभिः कुर्यात्प्रोक्तस्थानेषु वा हृदि । पृथक्पुष्पाञ्जलिं देहे मूलेन च हृदि त्रिधा
पुनः स्वयं शिवो भूत्वा मूलमन्त्रेण साधकः । ततः सम्पूजयेद्देवं बाह्यपीठे पुनः क्रमात्
सङ्कल्पं प्रवदेत्तत्र पूजारम्भे समाहितः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयेद्धूर्दिशाकृतम् ॥ २६॥

ऋणपातकदौर्भाग्यदारिद्र्यविनिवृत्तये । अशेषाघविनाशाय प्रसीद मम शङ्कर ॥२७॥
दुःखशोकाग्निसंतप्तं संसारभयपीडितम् । बहुरोगाकुलं दीनं त्राहि मां वृषवाहन
आगच्छ देवदेवेश महादेवाभयङ्कर । गृहाण सह पार्वत्या तव पूजां मया कृताम्
इति सङ्कल्प्य विधिवद्बाह्यपूजांसमाचरेत् । गुरुं गणपतिंचैवयजेत्सव्यापसव्ययोः
क्षेत्रेशमीशकोणे तु यजेद्वास्तोष्पतिक्रमात् । वाग्देवींचयजेत्तत्रततःकात्यायनींयजेत्

धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च नमोऽन्तकैः ।

स्वरैरीशादिकोणेषु पीठपादाननुक्रमात् ।

आभ्यां बिन्दुविसर्गाभ्यामधर्मादीन्प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥

सत्वरूपैश्चतुर्दिक्षुमध्येऽनन्तं सतारकम् ।

सत्त्वादींस्त्रिगुणांस्तन्तुरूपान्पीठेषु चिन्यसेत ॥ ३३ ॥

अत ऊर्ध्वच्छदे मायां सह लक्ष्म्या शिवेन च ॥ ३४ ।

तदन्ते चाम्बुजं भूयः सकलं मण्डलत्रयम् । पत्रकेसरकिञ्जल्कव्याप्तंताराक्षरं क्रमात्
पद्मत्रयं तथा‌ऽप्यर्यमध्येमण्डलमादरात् । वामाज्येष्ठाचरौद्रींचभागाद्यैर्दिक्षु पूजयेत
वामाद्या नव शक्तीश्च नवस्वरयुता यजेत् । हृदि बीजत्रयाद्येन पीठमन्त्रेणचार्चयेत

आवृत्तैः प्रथमाङ्गैश्च पञ्चभिर्मूर्तिशक्तिभिः ।

त्रिशक्तिमूर्तिभिश्चान्यैर्निधिद्वयसमन्वितैः ॥ ३८ ॥

अनन्ताद्यैः परीताश्च मातृभिश्च वृषादिभिः ।

सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिरिन्द्राद्यैश्च सहायुधैः ॥ ३९ ॥

वृषभक्षेत्रचण्डेशदुर्गाश्च स्कन्दनन्दिनौ । गणेशः सैन्यपश्चैवम्वस्वलक्षणलक्षिताः
अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमातथा । ईशित्वंचवशित्वंचप्राप्तिःप्राकाम्यमेवच

अष्टैश्वर्याणि चोक्तानि तेजोरूपाणिकेवलम् ।

पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पूर्वं हृल्लेखाद्यादिभिः क्रमात् ॥ ४२ ॥

अङ्गैरमाद्यैरिन्द्राद्यैः पूजोक्ता मुनिभिस्तुतैः । उमाचण्डेश्वरादींश्च पूजयेदुत्तरादितः
एवमावरणैर्युक्तं तेजोरूपं सदाशिवम् । उमयासहितं देवमुपचारैःप्रपूजयेत् ॥ ४४॥

सुप्रतिष्ठितशङ्कस्य तीर्थैः पञ्चामृतैरपि । अभिषिच्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः
कल्पयेद्विविधैर्मन्त्रैरासनाद्युपचारकान् । आसनं कल्पयेद्धैमं दिव्यवस्त्रसमन्वितम्
अर्घ्यमष्टगुणोपेतं पाद्यं शुद्धोदकेन च । तेनैवाचमनं दद्यान्मधुपर्कं मधूत्तरम् ॥ ४७ ॥
पुनराचमनं दत्त्वा स्नानं मन्त्रैः प्रकल्पयेत् । उपवीतं तथा वासो भूषणानि निवेदयेत्
गन्धमष्टाङ्गसंयुक्तं सुपूतं विनिवेदयेत ॥ ४८ ॥
ततश्च बिल्वमंदारकल्हारसरसीरुहम् । धत्तूरकं कर्णिकारं शणपुष्पं च मल्लिकाम्
कुशापामार्गतुलसीमाधवीचम्पकादिकम् ।
बृहतीकरवीराणि यथालब्धानि साधकः ॥ ५० ॥
निवेदयेत्सुगन्धीनि माल्यानिविविधानिच । धूपंकालागरूत्पन्नं दीपंचविमलंशुभम्
विशेषकम्
अथपायसनवेद्यं सघृतं सोपदंशकम् । मोदकापूपसंयुक्तं शर्करागुडसंयुतम् ॥ ५२
मधुनाक्तं दधियुतं जलपानसमन्वितम् । तेनैव हविषा वह्नौ जुहुयान्मन्त्रभाविते
आगमोक्तेनविधिनागुरुवाक्यनियन्त्रितः । नैवेद्यं शम्भवेभूयो दत्त्वाताम्बूलमुत्तमम्
धूप नीराजनं रम्यं छत्रं दर्पणमुत्तमम् । समर्पयित्वा विधिवन्मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः
यथाशक्तःस्वयंनिःस्वोयथाविभवमर्चयेत् । भक्त्यादत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेणतुष्यति
अथाङ्गभूतान्सकलान्गणेशादीन्प्रपूजयेत् ।
स्तवैर्नानाविधैः स्तुत्वा साष्टाङ्गं प्रणमेद् बुधः ॥ ५७ ॥
ततःप्रदक्षिणीकृत्यवृषचण्डेश्वरादिकान् । पूजासमर्प्यविधिवत्प्रार्थयेद्गिरिजापतिम्
जय देव! जगन्नाथ जयशङ्कर! शाश्वत । जयसर्वसुराध्यक्ष! जयसर्वसुरार्चित !॥५९॥
जय सर्वगुणातीत! जय सर्ववरप्रद !। जय नित्यनिराधार!जयविश्वम्भराव्यय !॥६०
जय विश्वैकवेद्येश!जयनागेन्द्रभूषण !। जय गौरीपते! शम्भो! जयचन्द्रार्धशेखर ॥६१
जय कोट्यर्कसंकाश! जयाऽनन्तगुणाश्रय !॥ ६२ ॥
जय रुद्र! विरूपाक्ष! जयाऽचिन्त्य! निरञ्जन !।
जयनाथकृपासिन्धोजयभक्तार्तिभञ्जन !। जयदुस्तरसंसारसागरोत्तारण!प्रभो !॥ ६३

प्रसीद मे महादेव ! संसारार्त्तस्य खिद्यतः । सर्वपापभयं हृत्वा रक्ष मां परमेश्वर
महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च । महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥६५॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः । ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर !॥ ६६
दरिद्रः प्रार्थयेद्देवं पूजान्ते गिरिजापतिम् । अर्थाढ्यो वापि राजा वा प्रार्थयेद्देवमीश्वरम्
दीर्घमायुः सदारोग्यं कोशवृद्धिर्बलोन्नतिः । ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर
शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु मम ग्रहाः । नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः
दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले । सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात्सुखमया दिशः

एवमाराधयेद् देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ ७१ ॥

सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी । शिवपूजा मया ख्याता सर्वाभीष्टवरप्रदा
महापातकसङ्घातमधिकं चोपपातकम् । शिवद्रव्यापहरणादन्यत्सर्वं निवारयेत् ॥
ब्रह्महत्यादिपापानां पुराणेषु स्मृतिष्वपि । प्रायश्चित्तानि दृष्टानि न शिवद्रव्यहारिणाम्
बहुनाऽत्र किमुक्तेन श्लोकार्द्धेन ब्रवीम्यहम् । ब्रह्महत्याशतं वापि शिवपूजा विनाशयेत्
मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम् । रहस्यं सर्वजन्तूनामत्र नास्त्येव संशयः ॥

एताभ्यामपि बालाभ्यामेवं पूजा विधीयताम् ।
अतः सम्वत्सरादेव परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥
इति शाण्डिल्यवचनमाकर्ण्य द्विजभामिनी ।
ताभ्यां तु सह बालाभ्यां प्रणनाम मुनेः पदम् ॥ ७८ ॥

विप्रस्त्र्युवाच

अहमद्य कृतार्थास्मि तव दर्शनमात्रतः । एतौ कुमारौ भगवंस्त्वामेव शरणङ्गतौ ॥
एष मे तनयो ब्रह्मञ्छुचिव्रत इतीरितः । एष राजसुतो नाम्ना धर्मगुप्तः कृतो मया ॥
एतावहञ्च भगवन्भवच्चरणकिङ्कराः । समुद्धराऽस्मिन्पतितान्घोरे दारिद्र्यसागरे ॥

इति प्रपन्ना शरणं द्विजाङ्गनाम्याश्वास्य वाक्यैरमृतोपमानैः ।
उपादिदेशाऽथ तयोः कुमारयोर्मुनिः शिवाराधनमन्त्रविद्याम् ॥ ८२ ॥

अथोपविष्टौ मुनिना कुमारौ ब्राह्मणी च सा ।
तं प्रणम्य समामन्त्र्य जग्मुस्ते शिवमन्दिरात् ॥ ८३ ॥

ततः प्रभृति तौ बालौ मुनिवर्योपदेशतः । प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजां चक्रतुरञ्जसा॥८४
एवं पूजयतोर्देवं द्विजराजकुमारयोः । सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥८५॥
कदाचिद्राजपुत्रेण विनाऽसौ द्विजनन्दनः । स्नातुं गतो नदीतीरे चचारबहुलीलया
तत्र निर्झरनिर्घातनिर्भिन्ने विप्रकुट्टिमे । निधानकलशं स्थूलं प्रस्फुरन्तं ददर्श ह ॥
तं दृष्ट्वा सहसागत्य हर्षकौतुकविह्वलः । दैवोपपन्नं मन्वानो गृहीत्वा शिरसा ययौ
ससंभ्रमं समानीय निधानकलशं बलात् । निधाय भवनस्यान्ते मातरं समभाषत
मातर्मातरिमं पश्य प्रसादं गिरिजापतेः । निधानं कुम्भरूपेण दर्शितं करुणात्मना

अथ सा विस्मिता साध्वी समाहूय नृपात्मजम् ।
स्वपुत्रं प्रतिनन्द्याह मानयन्ती शिवार्चनम् ॥ ९१ ॥

शृणुतां मे वचःपुत्रौनिधानकलशीमिमाम् । समं विभज्यगृह्णीतंमम शासनगौरवात्
इति मातुर्वचः श्रुत्वा तुतोषद्विजनन्दनः । प्रत्याह राजपुत्रस्तां विस्रब्धः शङ्करार्चने
मातस्तव सुतस्यैव सुकृतेन समागतम् । नाऽहं ग्रहीतुमिच्छामिविभक्तंधनसञ्चयम्
आत्मनः सुकृताल्लब्धंस्वयमेवभुनक्त्वसौ । स एव भगवानीशः करिष्यतिकृपांमयि
एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोऽपि परयामुदा । सम्वत्सरोव्यतीयायतस्मिन्नेव गृहेतयोः
अथैकदा राजसूनुः सह तेन द्विजन्मना । वसन्तसमये प्राप्ते विजहार वनान्तरे ॥९७
अथ दूरंगतौक्वापिवने द्विजनृपात्मजौ । गन्धर्वकन्याःक्रीडन्तीशतशस्तावपश्यताम्
ताः सर्वाश्चारुसर्वाङ्ग्योविहरन्त्योमनोहरम् । दृष्ट्वाद्विजात्मजोदूरादुवाचनृपनन्दनम्
इतःपुरोनगन्तव्यंविहरन्त्यग्रतःस्त्रियः । स्त्रीसन्निधानंविबुधास्त्यजन्तिविमलाशयाः
एताः कैतवकारिण्यो घनयौवनदुर्मदा । मोहयन्त्यो जनं दृष्ट्वा वाचानुनयकोविदाः

अतः परित्यजेत्स्त्रीणां सन्निधिं सहभाषणम् ।
निजधर्मरतो विद्वन्ब्रह्मचारी विशेषतः ॥ १०२ ॥
अतोऽहं नोत्सहे गन्तुं क्रीडास्थानं मृगीदृशाम् ।

इत्युक्त्वा द्विजपुत्रस्तु निवृत्तो दूरतः स्थितः ॥ १०३ ॥

अथासौ राजपुत्रस्तु कौतुकाविष्टमानसः । तासां विहारपदवीमेक एवाभ्ययौ ययौ तत्र गन्धर्वकन्यानां मध्येत्वेका वरानना । दृष्ट्वाऽऽयान्तंराजपुत्रं चिन्तयामासचेतसा अहो कोऽयमुदाराङ्गो युवा सर्वाङ्गसुन्दरः । मत्तमातङ्गगमनोलावण्यामृतवारिधिः लीलालोलविशालाक्षो मधुरस्मितपेशलः । मदनोपमरूपश्रीः सुकुमाराङ्गलक्षणः ॥ इत्याश्चर्ययुताबाला दूराद्दृष्ट्वा नृपात्मजम् । सर्वाःसखीःसमालोक्यवचनंचेदमब्रवीत् इतो विदूरे हे सख्यो वनमस्त्येकमुत्तमम् । विचित्रचम्पकाशोकपुन्नागबकुलैर्युतम् तत्र गत्वा वनं सर्वाः सञ्चीयकुसुमोत्करम् । भवत्यःपुनरायान्तुतावत्तिष्ठाम्यहं त्विह

इत्यादिष्टः सखीवर्गो जगाम विपिनान्तरम् ।

साऽपि गन्धर्वजा तस्थौ न्यस्तदृष्टिर्नृपात्मजे ॥ १११ ॥

ता समालोक्य तन्वङ्गी नवयौवनशालिनीम् ।

बाला स्वरूपसम्पत्त्या परिभूततिलोत्तमाम् ॥ ११२ ॥

राजपुत्रः समागम्य कौतुकोत्फुल्ललोचनः । अवापदवयोगेन मदनस्य शरव्यथाम् गन्धर्वतनया सापि प्राप्ताय नृपसूनवे । उत्थाय तरसा तस्मै प्रददौ पल्लवासनम् ॥ कृतोपचारमासीनं तमासाद्य सुमध्यमा । पप्रच्छ तद्रूपगुणध्वस्तधैर्याकुलेन्द्रिया ॥ कस्त्वं कमलपत्राक्ष कस्माद्देशादिहागतः । कस्य पुत्र इति प्रेम्णापृष्टःसर्वंन्यवेदयत विदर्भराजतनयं विध्वस्तपितृमातृकम् । शत्रुभिश्च हृतस्थानमात्मानं पराश्रयम् सर्वमावेद्यभूयस्तापप्रच्छनृपनन्दनः । कात्वं वामोरु!किंचात्रकार्यं ते कस्यचात्मजा

किमवध्यायसि हृदा किं वा वक्तुमिहेच्छसि ।

इत्युक्ता सा पुनः प्राह श्रृणु राजेन्द्रसत्तम !॥ ११९ ॥

अस्त्येको द्रविको नाम गन्धर्वाणां कुलाग्रणीः ।

तस्याऽहमस्मि तनया नाम्ना चांशुमती स्मृता ॥ १२० ॥

त्वामायान्तं विलोक्याऽहं त्वत्सम्भाषणलालसा ।

त्यक्त्वा सखीजनं सर्वमेकैवाऽस्मि महामते !॥ १२१ ॥

सर्वसङ्गीतविद्यासुप्रमत्तोऽन्यास्तिकाचन । ममयोगेनतुष्यन्तिसर्वाअपिसुरस्त्रियः
साहं सर्वकलाभिज्ञा ज्ञातसर्वजनेङ्गिता । तवाहमीप्सितं वेद्मि मयि ते सङ्गतं मनः

तथा ममाऽपि चौत्सुक्यं दैवेन प्रतिपादितम् ।
आवयोः स्नेहभेदोऽत्र नाभिभूयादितः परम् ॥ १२४ ॥

इतिसम्भाष्यतेनाशु प्रेम्णा गन्धर्वनन्दिनी । मुक्ताहारंददौतस्मैस्वकुचान्तरभूषणम्
तमादायाद्भुतं हारं स तस्याः प्रणयाकुलः । गाढहर्षभरोत्सिकामिदमाह नृपात्मजः

सत्यमुक्तं त्वया भीरु! तथाप्येकं वदाम्यहम् ।
त्यक्तराजस्य निःस्वस्यकथं मे भवसिप्रिया ॥ १२७ ॥
सा त्वं पितृमती बाला विलङ्घ्य पितृशासनम् ।
स्वच्छन्दाचरणं कर्तुं मूढेव कथमर्हसि ॥ १२८ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा तं प्रत्याह शुचिस्मिता ।
अस्तु नाम तथैवाऽहं करिष्ये पश्य कौतुकम् ॥ १२६ ॥

गच्छ स्वभवनंकान्तपरश्वः प्रातरेव तु । आगच्छ पुनरत्रैव कार्यमस्ति च नो मृषा
इत्युक्त्वा तं नृपसुतं सा सङ्गनसखीजना । अपाक्रामतचार्वङ्गी स चापि नृपनन्दनः
स समभ्येत्यहर्षेण द्विजपुत्रस्य सन्निधिम् । सर्वमाख्यायतेनैव सार्द्धंस्वभवनंययौ
तां च विप्रसतीं भूयो हर्षयित्वा नृपात्मजः । परश्वोद्विजपुत्रेण सार्द्धंतेन वनं ययौ
स तयापूर्वनिर्दिष्टंस्थानंप्राप्यनृपात्मजः । गन्धर्वराजमद्राक्षीत्स्वदुहित्रासमन्वितम्
सगन्धर्वपतिः प्राप्तावभिनन्द्य कुमारकौ । उपवेश्यासने रम्ये राजपुत्रमभाषत ॥१३५

गन्धर्व उवाच

राजेन्द्र पुत्र! पूर्वेद्युः कैलासं गतवाहनम् । तत्रापश्यं महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम्
आहूय मां स देवेशःसर्वेषांत्रिदिवौकसाम् । सन्निधावाहभगवान्करुणामृतवारिधिः
धर्मगुप्ताह्वयः कश्चिद्राजपुत्रोऽस्ति भूतले । अकिञ्चनोभ्रष्टराज्योहृतदेशश्च शत्रुभिः
स बालो गुरुवाक्येन मदर्च्चायांरतःसदा । अद्यतत्पितरःसर्वे मांप्राप्तास्तत्प्रभावतः
तस्यत्वमपि साहाय्यं कुरुगन्धर्वसत्तम !। अथासौनिजराज्यस्थोहतशत्रुर्भविष्यति

इत्याज्ञप्तो महेशेन सम्प्राप्तोनिजमन्दिरम् । अनयामद्दुहित्राच बहुशोऽभ्यर्थितस्तथा

ज्ञात्वेमं सकलं शम्भोर्नियोगं करुणात्मनः ।
आदायेमां दुहितरं प्राप्तोऽस्मीदं वनान्तरम् ॥ १४२ ॥
अत एनां प्रयच्छामि कन्यामंशुमतीं तव ।
हत्वा शत्रून्स्वराष्ट्रे त्वां स्थापयामि शिवाज्ञया ॥ १४३ ॥
तस्मिन्पुरे त्वमनया भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
दशवर्षसहस्रान्ते गन्तासि गिरिशालयम् ॥ १४४ ॥

तत्रापि ममकन्येयं त्वामेव प्रतिपत्स्यते । अनेनैव स्वदेहेन दिव्येन शिवसन्निधौ
इतिगन्धर्वराजस्तमाभाष्य नृपनन्दनम् । तस्मिन्वने स्वदुहितुः पाणिग्रहमकारयत्
पारिबर्हमदात्तस्मै रत्नभारान्महोज्ज्वलान् । चूडामणिचन्द्रनिभंमुक्ताहारांश्चभासुरान्

दिव्यालङ्कारवासांसि कार्त्तस्वरपरिच्छदान् ।
गजानामयुतं भूयो नियुतं नीलवाजिनाम् ॥ १४८ ॥

स्यन्दनानां सहस्राणिसौवर्णानि महान्ति च । पुनरेकंरथंदिव्यंधनुश्चेन्द्रायुधोपमम्
अस्त्राणांचसहस्राणितूर्णीचाक्षय्यसायकौ । अभेद्यंवर्म सौवर्णंशक्तिश्चरिपुमर्दिनाम्
दुहितुः परिचर्यार्थं दासीपञ्चसहस्रकम् । ददौ प्रीतमनास्तस्मैधनानिविविधानिच
गन्धर्वसेन्यमत्युग्रं चतुरङ्गसमन्वितम् । पुनश्च तत्सहायार्थं गन्धर्वाधिपतिर्ददौ ॥
इत्थं राजेन्द्रतनयः सम्प्राप्तः श्रियमुत्तमाम् । अभीष्टजायासहितो मुमुदे निजसम्पदा
कारयित्वा स्वदुहितुर्विवाहंसमयोचितम् । ययौविमानमारुह्यगन्धर्वाधिपतिर्दिवम्
धर्मगुप्तः कृतोद्वाहः सह गन्धर्वसेनया । पुनः स्वनगरंप्राप्य जघान रिपुवाहनीम् ॥
दुर्धर्षणं रणे हत्वा शत्रया गन्धर्वसेनया । निःशेषितारातिबलः प्रविवेश निजं पुरम्
ततोऽभिषिक्तः सचिवैर्ब्राह्मणैश्च महोत्तमैः । रत्नसिंहासनारूढश्चक्रेराज्यमकण्टकम्
या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् । सैवमाताऽभवत्तस्य सभ्राताद्विजनन्दनः
गन्धर्वतनया जाया विदर्भनगरेश्वरः । आराध्यदेवं गिरिशं धर्मगुप्तो नृपोऽभवत् ॥

एवमन्ये समाराध्य प्रदोषे गिरिजापतिम् ।

लभन्तेऽभीप्सितान्कामान्देहान्ते तु परां गतिम् ॥ १६० ॥

सूत उवाच

एतन्महाव्रतं पुण्यं प्रदोषे शङ्करार्चनम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेतन्साधनं परम्
य एतच्छृणुयात्पुण्यं माहात्म्यं परमाद्भुतम् । प्रदोषे शिवपूजान्ते कथयेद्वासमाहितः
भवेन्नतस्यदारिद्र्यं जन्मान्तरशतेष्वपि । ज्ञानैश्वर्यसमायुक्तः सोऽन्तेशिवपुरंव्रजेत्
ये प्राप्य दुर्लभतरं मनुजाः शरीरं कुर्वन्ति हन्त परमेश्वरपादपूजाम् ।
धन्यास्त एव निजपुण्यजितत्रिलोकास्तेषां पदाम्बुजरजोभुवनं पुनाति ॥१६४

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे प्रदोषमहिमावर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

# अष्टमोऽध्यायः

## सोमवारव्रतवर्णनेसीमन्तिनीकथानकवर्णनम्

सूत उवाच

नित्यानन्दमयं शान्तं निर्विकल्पं निरामयम् । शिवतत्त्वमनाद्यन्तंयेविदुस्तेपरंगताः
विरक्ताः कामभोगेभ्यो ये प्रकुर्वन्त्यहैतुकीम् ।
भक्तिं परां शिवे धीरास्तेषां मुक्तिर्न संसृतिः ॥ २ ॥
विषयानभिसन्धाय ये कुर्वन्ति शिवे रतिम् ।
विषयैर्नाऽभिभूयन्ते भुञ्जानास्तत्फलान्यपि ॥ ३ ॥
येन केनापि भावेन शिवभक्तियुतो नरः । न विनश्यतिकालेन सयातिपरमांगतिम्
आरुरुक्षुःपरंस्थानंविषयासक्तमानसः । पूजयेत्कर्मणाशम्भुं भोगान्तेशिवमाप्नुयात्
अशक्तः कश्चिदुत्स्रष्टुं प्रायो विषयवासनम् ।
अतः कर्ममयीपूजा कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥

मायामयेपिसंसारेयेविहृत्यचिरंसुखम्। मुक्तिमिच्छन्तिदेहान्तेतेषांधर्मोऽयमीरितः
शिवपूजा सदा लोके हेतुःस्वर्गापवर्गयोः। सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणान्विते
केवलेनापि ये कुर्युः सोमवारेशिवार्चनम्। न तेषांविद्यते किञ्चिदिहामुत्रचदुर्लभम्

उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः।
वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत्पूजयेच्छिवम् ॥ १० ॥

ब्रह्मचारीगृहस्थोवाकन्यावापिसभर्तृका। विभर्तृकावासम्पूज्यलभतेवरमीप्सितम्
अत्राहंकथयिष्यामिकथांश्रोतृमनोहराम्। श्रुत्वामुक्तिप्रयान्त्येवभक्तिर्भवतिशाम्भवी
आर्यावर्तेनृपः कश्चिदासीद्धर्मभृताम्वरः। चित्रवर्मेतिविख्यातो धर्मराजोदुरात्मनाम्

स गोप्ता धर्मसेतूनां शास्ता दुष्पथगामिनाम्।
यष्टा समस्तज्ञानां त्राता शरणमिच्छताम् ॥ १४ ॥

कर्त्ता सकलपुण्यानां दातासकलसम्पदाम्। जेतासपत्नवृन्दानांभक्तःशिवमुकुन्दयोः
सोनुकूलासुपत्नीषुलब्ध्वापुत्रान्महौजसः। चिरेणप्रार्थितांलेभेकन्यामेकांवराननाम्
स लब्ध्वा तनयां दिष्ट्याहिमवानिव पार्वतीम्। आत्मानंदेवसदृशंमेनेपूर्णमनोरथम्

स एकदा जातकलक्षणज्ञानाहूय साधून्द्विजमुख्यवृन्दान्।
कुतूहलेनाऽभिनिविष्टचेता पप्रच्छ कन्याजनने फलानि ॥ १८ ॥

अथ तत्राब्रवीदेको बहुज्ञो द्विजसत्तमः। एषा सीमन्तिनीनाम्नाकन्यातव महीपते!
उमेव माङ्गल्यवती दमयन्तीव रूपिणी। भारतीव कलाभिज्ञा लक्ष्मीरिव महागुणा
सुप्रजा देवमातेव जानकीवधृतव्रता। रविप्रभेव सत्कान्तिश्चन्द्रिकेव मनोरमा॥
दशवर्षसहस्राणि सह भर्त्रा प्रमोदते। प्रसूय तनयानष्टौ परं सुखमवाप्स्यति ॥२२

इत्युक्तवन्तं नृपतिर्धनैः सम्पूज्य तं द्विजम्।
अवाप परमां प्रीतिं तद्वागमृतसेवया ॥ २३ ॥

अथान्योऽपि द्विजः प्राह धैर्यवानमितद्युतिः। एषा चतुर्दशे वर्षे वैधव्यंप्रतिपत्स्यति
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वज्रनिर्घातनिष्ठुरम्। मुहूर्तमभवद्राजाचिन्ताव्याकुलमानसः

अथ सर्वान्समुत्सृज्य ब्राह्मणान्ब्रह्मवत्सलः।

मवं दैवकृतं मत्वा निश्चिन्तःपार्थिवोऽभवत् ॥ २६ ॥
साऽपि सीमन्तिनी बाला क्रमेण गतशैशवा ।
वैधव्यमात्मनो भावि शुश्रावाऽऽत्मसखीमुखात ॥ २७ ॥

परं निर्वेदमापन्ना चिन्तयामास बालिका । याज्ञवल्क्यमुनेः पत्नीं मैत्रेयींपर्यपृच्छत मातस्त्वच्चरणाम्भोजंप्रपन्नाऽस्मि भयाकुला । सौभाग्यवर्धनंकर्म मम शंसितुमर्हसि इति प्रपन्नां नृपतेः कन्यां प्राह मुनेः सती । शरणंव्रजतन्वङ्गिपार्वतीं शिवसंयुताम् सोमवारेशिवंगौरींपूजयन्वसमाहिता । उपोषिता वा सुस्नाताविरजाम्बरधारिणी

यतवाङ्निश्चलमनाः पूजा कृत्वा यथोचिताम् ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वाऽथ शिवं सम्यक्प्रसादयत् ॥ ३२ ॥
पापक्षयोऽभिषेकेण साम्राज्यं पीठपूजनात् ।
सौभाग्यमखिलंसौख्यं गन्धमाल्याक्षतार्पणात् ॥ ३३ ॥

धूपदानेनसौगन्ध्यं कान्तिर्दीपप्रदानतः । नैवेद्यश्चमहाभोगो लक्ष्मीस्ताम्बूलदानतः धर्मार्थकाममोक्षाश्च नमस्कारप्रदानतः । अष्टैश्वर्यादिसिद्धीनां जप एव हि कारणम् होमेन सर्वकामानां समृद्धिरुपजायते । सर्वेषामेव देवाना तुष्टिर्ब्राह्मणभोजनात् ॥ इत्थमाराधयशिवं सोमवारेशिवामपि । अत्यापदमपि प्राप्ता निस्तीर्णाभिभवाभवेः घोराद्घोरं प्रपन्नापिमहाक्लेशं भयानकम् । शिवपूजाप्रभावेण तरिष्यसि महद्भयम्

इत्थं सीमन्तिनीं सम्यगनुशास्य पुनः सती ।
ययौ सापि वरारोहा राजपुत्री तथाऽकरोत् ॥ ३६ ॥

दमयन्त्यांनलस्यासीदिन्द्रसेनाभिधःसुतः । तस्यचन्द्राङ्गदोनामपुत्रोभूच्चन्द्रसन्निभः चित्रवर्मानृपश्रेष्ठस्तमाहूयनृपात्मजम् । कन्यासीमन्तिनी तस्मैप्रायच्छद्गुर्वनुज्ञया सोऽभून्महोत्सवस्तत्र तस्या उद्वाहकर्मणि । यत्रसर्वमहीपानां समवायोमहानभूत् तस्याःपाणिग्रहंकालेकृत्वाचन्द्राङ्गदःकृती । उवासकतिचिन्मासांस्तत्रैवश्वशुरालये एकदा यमुनां तर्तुं स राजतनयो बली । आरुरोह तरीं कैश्चिद्वयस्यैः सह लीलया तस्मिंस्तरति कालिन्दींराजपुत्रे विधेर्वशात् । ममज्ज सह कैवर्तैरावर्ताभिहता तरी

हा हेतिशब्दः सुमहानासीत्तस्यास्तदह्रये ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां प्रलापो दिवमस्पृशत ॥ ४९ ॥
मज्जन्तो मम्रिरे केचित्केचिद्ग्राहोदरङ्गताः । राजपुत्रादयः केचिन्नादृश्यन्त महाजले
तदुपश्रुत्य राजापि चित्रवर्माऽतिविह्वलः । यमुनायास्तटं प्राप्य विचेष्टः समजायत
श्रुत्वाथराजपत्न्यश्चबभूवुर्गतचेतनाः । साचसीमन्तिनीश्रुत्वा पपात भुविमूर्च्छिता
तथाऽन्ये मन्त्रिमुख्याश्च नायकाः सपुरोहिताः ।
विह्वलाः शोकसन्तप्ता विलेपुर्मुक्तमूर्धजाः ॥ ५० ॥
इन्द्रसेनोऽपि राजेन्द्रः पुत्रवार्त्तासुदुःखितः । आकर्ण्यसह पत्नीभिर्नष्टसञ्ज्ञःपपात ह
तन्मन्त्रिणश्च तत्पौरास्तथा तद्देशवासिनः ।
आबालवृद्धवनिताश्चुक्रुशुः शोकविह्वलाः ॥ ५२ ॥
शोकात्केचिदुरो जघ्नुः शिरो जघ्नुश्च केचन ।
हा राजपुत्र ! हा तात ! क्वासि क्वासीति वभ्रमुः ॥ ५३ ॥
एवं शोकाकुलं दीनमिन्द्रसेनमहीपतेः । नगरं सहसा क्षुब्धं चित्रवर्मपुरं तथा ॥५४॥
अथवृद्धैःसमाश्वस्तश्चित्रवर्मामहीपतिः । शनैर्नगरमागत्य सान्त्वयामासचात्मजाम्
स राजाम्भसि मग्नस्य जामातुस्तस्य बान्धवैः ।
आगतैः कारयामास साकल्यादौर्ध्वदेहिकम् ॥ ५६ ॥
सा च सीमन्तिनी साध्वी भर्तृलोकमतिः सती ।
पित्रा निषिद्धा स्नेहेन वैधव्यं प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥
मुनेः पत्न्योपदिष्टं यत्सोमवारव्रतं शुभम् । न तत्याजशुभाचारा वैधव्यं प्राप्तवत्यपि
एवंचतुर्दशोवर्षेदुःखं प्राप्य सुदारुणम् । ध्यायन्ती शिवपादाब्जं वत्सरत्रयमत्यगात्
पुत्रशोकादिवोन्मत्तमिन्द्रसेनं महीपतिम् । प्रसह्य तस्यदायादाः समाङ्कंजह्रु रोजसा
हृतसिंहासनः शूरैर्दायादैः सोऽप्रजो नृपः । निगृह्य काराभवने सपत्नीको निवेशितः
चन्द्राङ्गदोऽपि तत्पुत्रोनिमग्नोयमुनाजले । अधोधोमज्जमानोऽसौ ददर्शोरगकामिनीः
जलक्रीडासु सक्तास्ता दृष्ट्वा राजकुमारकम् ।

विस्मितास्तमथो निन्युः पातालं पन्नगालयम् ॥ ६३ ॥
स नीयमानस्तरसा पन्नगीभिर्नृपात्मजः । तक्षकस्य पुरं रम्यं विवेश परमाद्भुतम् ॥
सोऽपश्यद्राजतनयो महेन्द्रभवनोपमम् । महारत्नपरिभ्राजन्मयूखपरिदीपितम् ॥
वज्रवैडूर्यपाचादिप्रासादशतसङ्कुलम् । माणिक्यगोपुरद्वारं मुक्तादामभिरुज्ज्वलम्
चन्द्रकान्तस्थलं रम्यं हेमद्वारकपाटकम् । अनेकशतसाहस्रमणिदीपविराजितम् ॥
तत्रापश्यत्सभा मध्ये निषण्णंरत्नविष्टरे । तक्षकं पन्नगाधीशं फणानेकशतोज्ज्वलम्
दिव्याम्बरधरं दीप्तं रत्नकुण्डलराजितम् । नानारत्नपरिक्षिप्तमुकुटद्युतिरञ्जितम्॥
फणामणिमयूखाढ्यैरसंख्यैःपन्नगोत्तमैः । उपासितं प्राञ्जलिभिश्चित्ररत्नविभूषितैः
रूपयौवनमाधुर्यविलासगतिशोभिना । नागकन्यासहस्रेण समन्तात्परिवारितम् ॥
दिव्याभरणदीप्ताङ्गं दिव्यचन्दनचर्चितम् । कालाग्निमिवदुर्धर्षंतेजसादित्यसन्निभम्
दृष्ट्वा राजसुतो धीरः प्रणिपत्य सभास्थले ।
उत्थितः प्राञ्जलिस्तस्य तेजसाऽऽक्षिप्तलोचनः ॥ ७३ ॥
नागराजोऽपि तं दृष्ट्वा राजपुत्रंमनोरमम् । कोऽयंकस्मादिहायातइति पप्रच्छपन्नगीः
ता ऊचुर्यमुनातोये दृष्टोऽस्माभिर्यदृच्छया । अज्ञातकुलनामायमानीतस्तवसन्निधिम्
अथ पृष्टो राजपुत्रस्तक्षकेण महात्मना । कस्यासि तनयःकस्त्वं को देशःकथमागतः
राजपुत्रो वचः श्रुत्वा तक्षकं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥

राजपुत्र उवाच

अस्तिभूमण्डलेकश्चिद्देशोनिषधसञ्ज्ञकः । तस्याधिपोऽभवद्राजानलोनाममहायशाः
स पुण्यकीर्तिः क्षितिपो दमयन्तीपतिः शुभः ॥ ७८ ॥
तस्मादर्पीन्द्रसेनाख्यस्तस्यपुत्रो महबलः । चन्द्राङ्गदोस्मिनाम्नाहं नवोढःश्वशुरालये
विहरन्यमुनातोये निमग्नो दैवचोदितः ॥ ७९ ॥
एताभिः पन्नगस्त्रीभिरानीतोऽस्मितवान्तिकम् ।
दृष्ट्वाऽहं तव पादाब्जं पुण्यैर्जन्मान्तरार्जितैः ॥ ८० ॥
अद्य धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि कृतार्थौ पितरौ मम ।

यत्प्रेक्षितोऽहं कारुण्यात्त्वया सम्भाषितोऽपि च ॥ ८१ ॥

सूत उवाच

इत्युदारमसम्भ्रान्तं वचःश्रुत्वातिपेशलम् । तक्षकःपुनरौत्सुक्याद्बभाषेराजनन्दनम्

तक्षक उवाच

भोभोनरेन्द्रदायादामा भैषीर्धीरतां व्रज । सर्वदेवेषु को देवो युष्माभिः पूज्यतेसदा

राजपुत्र उवाच

योदेवःसर्वदेवेषुमहादेव इतिस्मृतः । पूज्यतेसहिविश्वात्माशिवोऽस्माभिरुमापतिः

यस्य तेजोंशलेशेन रजसा च प्रजापतिः । कृतरूपोऽसृजद्विश्वं स नःपूज्यो महेश्वरः

यस्यांशात्सात्त्विकं दिव्यं बिभ्रद्विष्णुः सनातनः ।
विश्वं बिभर्त्ति भूतात्मा शिवोऽस्माभिः स पूज्यते ॥ ८६ ॥
यस्यांशात्तामसाज्जातो रुद्रः कालाग्निसन्निभः ।
विश्वमेतद्धरत्यंते स पूज्योऽस्माभिरीश्वरः ॥ ८७ ॥

योविधाता विधातुश्चकारणस्यापिकारणम् । तेजसांपरमंतेजःस शिवोनःपरागतिः

योऽन्तिकस्थोऽपि दूरस्थः पापोपहतचेतसाम् ।
अपरिच्छेद्यधामासौ शिवो नः परमा गतिः ॥ ८९ ॥
योऽग्नौ तिष्ठति यो भूमौ यो वायौ सलिले च यः
य आकाशे च विश्वात्मा स पूज्यो नः सदाशिवः ॥ ९० ॥
यः साक्षी सर्वभूतानां य आत्मस्थो निरञ्जनः ।
यस्येच्छावशगो लोकः सोऽस्माभिः पूज्यते शिवः ॥ ९१ ॥
यमेकमाद्यं पुरुषं पुराणं वदन्ति भिन्नं गुणवैकृतेन ।
क्षेत्रज्ञमेकेऽथ तुरीयमन्ये कूटस्थमन्ये स शिवो गतिर्नः ॥ ९२ ॥
यं नास्पृशंश्चैत्यमचिन्त्यतत्त्वं दुरन्तधामानमतत्स्वरूपम् ।
मनोवचोवृत्तय आत्मभाजां स एष पूज्यः परमः शिवो नः ॥ ९३ ॥
यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा ।

निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राभ्रन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥ ६४ ॥

यस्य स्मृतिः सकलपापरुजां विघातं,
सद्यः करोत्यपि च पुल्कसजन्मभाजाम् ।
यस्य स्वरूपमखिलं श्रुतिभिर्विमृग्यं,
तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥ ६५ ॥

यन्मूर्ध्नि लब्धनिलया सुरलोकसिन्धुर्यस्याङ्गगाभगवती जगदम्बिका च ।
यत्कुण्डले त्वहह तक्षकवासुकी द्वौ सोऽस्माकमेव गतिरर्धशशाङ्कमौलिः ॥६६

जयति निगमचूडाग्रेषु यस्यांघ्रिपद्मं,
जयति च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्त्तिः ।
जयति सकलतत्त्वोद्भासनं यस्य मूर्त्तिः,
स विजितगुणसर्गः पूज्यतेऽस्माभिरीशः ॥ ६७ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षकःप्रीतमानसः । जातभक्तिर्महादेवे राजपुत्रमभाषत ॥

तक्षक उवाच

परितुष्टोऽस्मि भद्रं स्तात्तव राजेन्द्रनन्दन । बालोपियत्परंतत्त्वंवेत्सिशैवंपरात्परम्
एष रत्नमयोलोक एताश्चारुदृशोऽबलाः । एतेकल्पद्रुमाः सर्वे वाप्योमृतरसाम्भसः
नात्र मृत्युभयंघोरं न जरारोगपीडनम् । यथेष्टं विहरात्रैवभुङ्क्ष्वभोगान्यथोचितान्
इत्युक्तो नागराजेन स राजेन्द्रकुमारकः । प्रत्युवाच परं प्रीत्या कृताञ्जलिरुदारधीः
कृतदारोऽस्म्यहं काले सुव्रता गृहिणी मम । शिवपूजापरा नित्यं पितरावेकपुत्रकौ
नेत्थयमां मृतंमत्वाशोकेनमहतावृताः । प्रायःप्राणैवियुज्यन्तेदैवात्प्राणान्वहन्तिवा
अतो मया बहुतिथं नात्र स्थेयं कथञ्चन । तमेव लोकं कृपया मां प्रापयितुमर्हसि

इत्युक्तवन्तं नरदेवपुत्रं दिव्यैर्वराम्नैः सुरपादपोत्थैः ।
आप्याययित्वा वरगन्धवासःस्रग्रत्नदिव्याभरणैर्विचित्रैः ॥ १०६ ॥
सन्तोषयित्वा विविधैश्च भोगैः पुनर्बभाषे भुजगाधिराजः ।

यदा यदा त्वं स्मरसि त्वदग्रे यदा तदाऽऽविष्क्रियते मयेति ॥ १०७ ॥

पुनश्च राजपुत्राय तक्षकोऽश्वञ्च कामगम् ।
नानाद्वीपसमुद्रेषु लोकेषु च निरर्गलम् ॥ १०८ ॥

दत्तवान्रत्नाभरणदिव्याभरणवाससाम् । वाहनाय ददावेकं राक्षसं पन्नगेश्वरः ॥१०९

तत्सहायार्थमेकं च पन्नगेन्द्रकुमारकम् । नियुज्य तक्षकः प्रीत्या गच्छेति विससर्ज तम्

इति चन्द्राङ्गदः सोऽथ संगृह्य विविधं धनम् ।
अश्वं कामगमारुह्य ताभ्यां सह विनिर्ययौ ॥ १११ ॥

स मुहूर्तादिवोन्मज्ज्य तस्मादेव सरिज्जलात् ।
विजहार तटे रम्ये दिव्यमारुह्य वाजिनम् ॥ ११२ ॥

अथाऽस्मिन्समये तन्वी सा च सीमन्तिनी सती ।
स्नातुं समाययौ तत्र सखीभिः परिवारिता ॥ ११३ ॥

सा ददर्श नदीतीरे विहरन्तं नृपात्मजम् । रक्षसा नररूपेण नागपुत्रेण चान्वितम्

दिव्यरत्नसमाकीर्णं दिव्यमाल्यावतंसकम् । देहेन दिव्यगन्धेन व्याक्षिप्तदशयोजनम्

तमपूर्वाकृतिं वीक्ष्य दिव्याश्वमधिसंस्थितम् ।
जडोन्मत्तेव भीतेव तस्थौ तन्न्यस्तलोचना ॥ ११६ ॥

तांच राजेन्द्रपुत्रोऽसौ दृष्टपूर्वामिति स्मरन् । निर्मुक्तकण्ठाभरणां कण्ठसूत्रविवर्जिताम्

असंयोजितधम्मिल्लामङ्गरागविवर्जिताम् ।
त्यक्तनीलाञ्जनापाङ्गीं कृशाङ्गीं शोकदूषिताम् ॥ ११८ ॥

दृष्ट्वाऽवतीर्य तुरगादुपविष्टः सरित्तटे । तामाहूय वरारोहामुपवेश्येदमब्रवीत ॥ ११९

का त्वं कस्य कलत्रं वा कस्याऽसि तनया सती ।
किमिदं तेऽङ्गने! बाल्ये दुःसहं शोकलक्षणम् ॥ १२० ॥

इति स्नेहेन संपृष्टा साश्रुधारश्रुलोचना । लज्जितास्वयमाख्यातुं तत्सखी सर्वमब्रवीत्

इयं सीमन्तिनी नाम्ना स्नुषा निषधभूपतेः । चन्द्राङ्गदस्य महिषी तनया चित्रवर्मणः

अस्याः पतिर्दैवयोगान्निमग्नोऽस्मिन्महाजले । तेनेयं प्राप्तवैधव्या बाला दुःखेन शोषिता

एवं वर्षत्रयं नीतं शोकेनातिबलीयसा। अथेन्दुवारे संप्राप्ते स्नातुमत्र समागता

श्वशुरोऽस्याश्च राजेन्द्रो हृतराज्यश्च शत्रुभिः।

बलाद् गृहीतो बद्धश्च सभार्यस्तद्वशे स्थितः॥ १२५॥

तथाप्येषा शुभाचारा सोमवारे महेश्वरम्। साम्बिकं परयाभक्त्या पूजयत्यमलाशया

सूत उवाच

इत्थं सखीमुखेनैव सर्वमावेद्यसुव्रता। ततः सीमन्तिनी प्राह स्वयमेव नृपात्मजम्

कस्त्वंकन्दर्पसङ्काशःकाविमौनवपार्श्वगौ। देवोनरेन्द्रःसिद्धोवागन्धर्वोवाथकिन्नरः

किमर्थंममवृत्तान्तंस्नेहवानिवपृच्छसि। किं मांवेत्सिमहाबाहोदृष्टवान्किमुकुत्रचित्

दृष्टपूर्व इवाभासि मया च स्वजनो यथा। सर्वं कथयतस्त्वेन सत्यसारा हि साधवः

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा नरदेवपुत्री सवाष्पकण्ठं सुचिरं रुरोद।

मुमोह भूमौ पतिता सखीभिर्वृता न किञ्चित्कथितुं शशाक॥ १३१॥

श्रुत्वा चन्द्राङ्गदः सर्वं प्रियायाः शोककारणम्।

मुहूर्तमभवत्तूष्णी स्वयं शोकसमाकुलः॥ १३२॥

अथाऽऽश्वास्य प्रियां तन्वीं विविधैर्वाक्यनैपुणैः।

सिद्धा नाम वयं देवाः कामगा इति सोऽब्रवीत्॥ १३३॥

ततो बलादिवाऽऽकृष्य पाणिग्रहणशङ्किताम्।

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं तां कर्णे त्विदमब्रवीत्॥ १३४॥

कापि लोके मया दृष्टस्तवभर्त्ता वरानने। त्वद्व्रताचरणात्प्रीतः सद्य एवागमिष्यति

अपनेष्यति ते शोकं त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम्।

एतच्छंसितुमायातस्तव भर्त्तुः सखाऽस्म्यहम्॥ १३६॥

अत्र कार्यो न सन्देहःशपामिशिवपादयोः। तावत्त्वद्धृदयेस्थेयंनप्रकाश्यंचकुत्रचित्

तातुतद्वचनंश्रुत्वासुधाधाराशताधिकम्। सम्भ्रमोद्भ्रान्तनयनातमेवमुहुरैक्षत॥ ३८

प्रेमबन्धानुगुणितं वाक्यं चाह रसायनम्। विभ्रमोदारसहितं मधुरापाङ्गवीक्षणम्

स्वपाणिस्पर्शनोद्भिन्नपुलकाञ्चितविग्रहम् । पूर्वदृष्टानि चाङ्गेषु लक्षणानिस्वरादिषु
वयः प्रमाणं वर्णं च परीक्ष्यैनमतर्कयत् ॥ १४० ॥
एष एव पतिर्मे स्याद्ध्रुवं नान्यो भविष्यति । अस्मिन्नेव प्रसक्तं मेहृदयंप्रेमकातरम्
परलोकादिहायातः कथमेवं स्वरूपधृक् । दुर्भाग्यायाः कथं मेस्याद्भर्तुर्नष्टस्यदर्शनम्
स्वप्नोऽयंकिमुन स्वप्नोभ्रमोऽयंकिन्तुनभ्रमः । एषधूर्तोऽथवाकश्चिद्यक्षोगन्धर्वएव वा
मुनिपत्न्या यदुक्तंमे परमापद्गतापि च । व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्य वा फलमेव वा
यो वर्षायुतसौभाग्यंममेत्याहद्विजोत्तमः । नूनंतस्यवचःसत्यंकोविद्यादीश्वरंविना
निमित्तानि च दृश्यन्तेमङ्गलानिदिनेदिने । प्रसन्नेपार्वतीनाथेकिमसाध्यंशरीरिणाम्
इत्थं विमृश्य बहुधा तां पुनर्मुक्तसंशयाम् ।
लज्जानम्रमुखीं कर्णे शशंसाऽऽत्मप्रयोजनम् ॥ १४७ ॥
इमं वृत्तान्तमाख्यातुं तत्पित्रोः शोकतप्तयोः ।
गच्छामः स्वस्ति ते भद्रे सद्यः पतिमवाप्स्यसि ॥ १४८ ॥
इत्युक्त्वाऽश्वं समारुह्यजगामनृपनन्दनः । ताभ्यांसहनिजंराष्ट्रंप्रत्यपद्यततत्क्षणात्
सपुरोपवनाभ्याशेस्थित्वातंफणिपुत्रकात । विससर्जात्मदायादान्नृपासनगतान्प्रति
स गत्वोवाच ताञ्छीघ्रमिन्द्रसेनो विमुच्यताम् ।
चन्द्राङ्गदस्तस्य सुतः प्राप्तोऽयं पन्नगालयात् ॥ १५१ ॥
नृपासनं विमुञ्चन्तु भवन्तो न विचार्यताम् ।
नोचेच्चन्द्राङ्गदस्याऽऽशु बाणाः प्राणान्हरन्ति वः ॥ १५२ ॥
समग्नोयमुनातोये गत्वातक्षकमन्दिरम् । लब्ध्वाचतस्यमाहात्म्यं पुनर्लोकादिहागतः
इत्याख्यातमशेषेण तद्वृत्तान्तं निशम्य ते ।
साधुसाध्विति सम्भ्रान्ताः शशंसुः परिपन्थिनः ॥ १५४ ॥
अथेन्द्रसेनाय निवेद्य सत्वरं नष्टस्य पुत्रस्य पुनः समागमम् ।
प्रसाद्य तं प्राप्तनरेश्वरासनं दायादमुख्यास्तु भयं प्रपेदिरे ॥ १५५ ॥
अथ पौरजनाः सर्वे पुरोद्याने नृपात्मजम् । दृष्ट्वा गाढं द्रुतं प्रोचुर्लेभिरे च महाधनम्

आकर्ण्य पुत्रमायान्तं राजाऽऽनन्दजलाप्लुतः। न व्यजानाद्विमलोकंराज्ञीचपरयामुदा
अथनागरिकाःसर्वेमन्त्रिवृद्धाःपुरोधसः। प्रत्युद्गम्यपरिष्वज्यतमानिन्युर्नृपान्तिकम्
अथोत्सवेन महताप्रविश्य निजमन्दिरम्। राजपुत्रः स्वपितरौववन्दे बाष्पमुत्सृजन्

तं पादमूले पतितं स्वपुत्रं विवेद नाऽसौ पृथिवीपतिः क्षणम्।
प्रबोधितोऽमात्यजनैः कथञ्चिदुत्थाप्य क्लिन्नेन हृदाऽऽलिलिङ्ग ॥ १६० ॥
क्रमेण मातृरभिवन्द्य ताभिः प्रवर्धिताशीः प्रणयाकुलाभिः।
आलिङ्गितः पौरजनानशेषान्सम्भावयामास स राजसूनुः ॥ १६१ ॥

तेषां मध्ये समासीनःस्ववृत्तान्तमशेषतः। पित्रेनिवेदयामास तक्षकस्यचमित्रताम्
दत्तं भुजङ्गराजेन रत्नादिधनसञ्चयम्। दिव्यं तद्राक्षसानीतं पित्रे सर्वं न्यवेदयत्
राजपुत्रस्य चरितंदृष्ट्वा श्रुत्वाचविह्वलः। मेनेस्नुषायाः सौभाग्यं महेशाराधनार्जितम्
सौमाङ्गल्यमयीं वार्तामिमां निषधभूपतिः। चारैर्निवेदयामास चित्रवर्ममहीपतेः
श्रुत्वाऽमृतमयींवार्त्तांससमुत्थायसम्भ्रमात्। तेभ्योदत्त्वाधनंभूरिननर्ताऽऽनन्दविह्वलः
अथाहूय स्वतनयां परिष्वज्याश्रुलोचनः। भूषणैर्भूषयामासत्यक्तवैधव्यलक्षणाम्
अथोत्सवो महानासीद्राष्ट्रग्रामपुरादिषु। सीमन्तिन्याः शुभाचारंशशंसुःसर्वतो जनाः
चित्रवर्माथनृपतिः समाहूयेन्द्रसेनजम्। पुनर्विवाहविधिना सुतां तस्मै न्यवेदयत्

चन्द्राङ्गदोऽपि रत्नाद्यैरानीतैस्तक्षकालयात्।
स्वां पत्नीं भूषयाञ्चक्रे मर्त्यानामतिदुर्लभैः ॥ १७० ॥

अङ्गरागेण दिव्येन तप्तकाञ्चनशोभिना। शुशुभे सा सुगन्धेन दशयोजनगामिना ॥
अम्लानमालयाशश्वत्पद्मकिञ्जल्कवर्णया। कल्पद्रुमोत्थया बाला भूषिता शुशुभेसती
एवं चन्द्राङ्गदः पत्नीमवाप्य समये शुभे। ययौ स्वनगरीं भूयःश्वशुरेणानुमोदितः

इन्द्रसेनोऽपि राजेन्द्रो राज्ये स्थाप्य निजात्मजम्।
तपसा शिवमाराध्य लेभे संयमिनां गतिम् ॥ १७४ ॥

दशवर्षसहस्राणिसीमन्तिन्या स्वभार्यया। सार्धं चन्द्राङ्गदोराजाबुभुजे विषयान्बहून्
प्रासूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम्। रेमेसीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम्

दिने दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात् ॥ १७६ ॥

सूत उवाच

विचित्रमिदमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ।
भूयोऽपि वक्ष्ये माहात्म्यं सोमवारव्रतोदितम् ॥ १७७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां ब्रह्मोत्तरखण्डे सोमवारव्रतवर्णनेसीमन्तिनीकथानकवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः

### सीमन्तिन्याःप्रभाववर्णनम्

ऋषय ऊचुः

साधुसाधु महाभाग! त्वयाकथितमुत्तमम् । आख्यानं पुनरन्यच्चविचित्रंवक्तुमर्हसि

सूत उवाच

विदर्भविषये पूर्वमासीदेको द्विजोत्तमः । वेदमित्र इतिख्यातोवेदशास्त्रार्थवित्सुधीः
तस्यासीदपरो विप्रःसखासारस्वताह्वयः । तावुभौ परमस्निग्धावेकदेशनिवासिनौ
वेदमित्रस्य पुत्रोऽभूत्सुमेधानाम सुव्रतः । सारस्वतस्य तनयःसोमवानिति विश्रुतः
उभौ सवयसौबालौसमवेषौ समस्थितौ । समं च कृतसंस्कारौ समविद्यौबभूवतुः
साङ्गानधीत्यतौ वेदांस्तर्कव्याकरणानि च । इतिहासपुराणानिधर्मशास्त्राणिकृत्स्नशः
सर्वविद्याकुशलिनौबाल्य एव मनीषिणौ । प्रहर्षमतुलं पित्रोर्ददतुः सकलैर्गुणैः

तावेकदा स्वतनयौ तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ।
आहूयाऽवोचतां प्रीत्या षोडशाब्दौ शुभाकृती ॥ ८ ॥

हे पुत्रकौ! युवां बाल्यैकृतविद्यौ सुवर्चसौ । वैवाहिकोऽयंसमयोवर्ततेसमयोःसमम्
इमं प्रसाद्य राजानंविदर्भेशं स्वविद्यया । ततः प्राप्य धनं भूरि कृतोद्वाहौ भविष्यथः

एवमुक्तौ सुतौ ताभ्यां तावुभौ द्विजनन्दनौ । विदर्भराजमासाद्यसमतोषयतां गुणैः
विद्यया परितुष्टाय तस्मै द्विजकुमारकौ । विवाहार्थं कृतोद्योगौ धनहीनावशंसताम्
तयोरपि मतंज्ञात्वासविदर्भमहीपतिः । प्रहस्य किञ्चित्प्रोवाचलोकतत्त्वविवित्सया
आस्ते निषधराजस्यराज्ञीसीमन्तिनीसती । सोमवारे महादेवंपूजयत्यम्बिकायुतम्

तस्मिन्दिने सपत्नीकान्द्विजाग्र्यान्वेदवित्तमान् ।

सम्पूज्य परया भक्त्या धनं भूरि ददाति च ॥ १५ ॥

अतोऽत्रयुवयोरेको नारीविभ्रमवेषधृक् । एकस्तस्याः पतिर्भूत्वाजायेतांविप्रदम्पती

युवां वधूवरौ भूत्वा प्राप्य सीमन्तिनीगृहम् ।

भुक्त्वा भूरिधनं लब्ध्वा पुनर्यातं ममाऽन्तिकम् ॥ १७ ॥

इतिराज्ञा समादिष्टौ भीतौ द्विजकुमारकौ । प्रत्यूचतुरिदंकर्म कर्तुं नौ जायतेभयम्
देवतासुगुरौपित्रोस्तथाराजकुलेषुच । कौटिल्यमाचरन्मोहात्सद्योनश्यतिसान्वयः
कथमन्तर्गृहंराज्ञांछद्मनाप्रविशेत्पुमान् । गोप्यमानमपिच्छद्मकदाचित्ख्यातिमेष्यति

ये गुणाः साधिताः पूर्वं शीलाचारश्रुतादिभिः ।

सद्यस्ते नाशमायान्ति कौटिल्यपथगामिनः ॥ २१ ॥

पापं निन्दा भयं वैरं चत्वार्येतानि देहिनाम् । छद्ममार्गप्रपन्नानांतिष्ठन्त्येवहिसर्वदा
अत आवां शुभाचारौजातौचशुचिनां कुले । वृत्तंधूर्तजनश्लाघ्यंनाऽऽश्रयावःकदाचन

राजोवाच

दैवतानां गुरूणाञ्च पित्रोश्च पृथिवीपतेः ।

शासनस्याऽप्यलङ्घ्यत्वात्प्रत्यादेशो न कर्हिचित् ॥ २४ ॥

एतैर्यद्यत्समादिष्टं शुभं वा यदि वाऽशुभम् । कर्त्तव्यं नियतं भीतैरप्रमत्तैर्बुभूषुभिः
अहोवयंहिराजानःप्रजायूयं हि सम्मताः । राजाज्ञयाप्रवृत्तानांश्रेयःस्यादन्यथाभयम्

अतो मच्छासनं कार्यं भवद्भ्यामविलम्बितम् ।

इत्युक्तौ नरदेवेन तौ तथेत्यूचतुर्भयात् ॥ २७ ॥

सारस्वतस्य तनयंसामवन्तंनराधिपः । स्त्रीरूपधारिणं चक्रे वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः

स कृत्रिमोद्भूतकलत्रभावः प्रयुक्तकर्णाभरणाङ्गरागः ।

स्निग्धाञ्जनाक्षः स्पृहणीयरूपो बभूव सद्यः प्रमदोत्तमाभः ॥ २६ ॥

तावुभौ दम्पती भूत्वा द्विजपुत्रौ नृपाज्ञया । जग्मतुर्नैषधं देशं यद्वा तद्वा भवत्विति उपेत्य राजसदनं सोमवारे द्विजोत्तमैः । सपत्नीकैःकृतातिथ्यौ धौतपादौ बभूवतुः साराज्ञीब्राह्मणान्सर्वानुपविष्टान्वरासने । प्रत्येकमर्चयाञ्चक्रे सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् तौच विप्रसुतौ दृष्ट्वा प्राप्तौकृतकदम्पती । ज्ञात्वा किञ्चिद्विहस्याथमेनेगौरीमहेश्वरौ आवाह्य द्विजमुख्येषुदेवदेवं सदाशिवम् । पत्नीष्वावाहयामाससादेवींजगदम्बिकाम् गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्धूपैर्नीराजनैरपि । अर्चयित्वा द्विजश्रेष्ठान्नमश्चक्रे समाहिता हिरण्मयेषु पात्रेषु पायसं घृतसंयुतम् । शर्करामधुसंयुक्तं शाकैर्जुष्टं मनोरमैः ॥३६॥ गन्धशाल्योदनैर्हृद्यैर्मोदकापूपराशिभिः । शष्कुलीभिश्चसंयावैः कृसरैर्माषपक्वकैः

तथाऽन्यैरप्यसंख्यातैर्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मनोरमैः ।

सुगन्धैः स्वादुभिः सूपैः पानीयैरपि शीतलैः ॥ ३८ ॥

कल्पमन्नंद्विजाग्र्येभ्यःसाभक्त्यापर्यवेषयत् । दध्योदनंनिरुपमंनिवेद्यसमतोषयत् भुक्तवत्सुद्विजाग्र्येषु स्वाचान्तेषु नृपाङ्गना । प्रणम्यदत्त्वाताम्बूलंदक्षिणाश्चयथार्हतः धेनूर्हिरण्यवासांसिरत्नस्रग्भूषणानि च । दत्त्वाभूयोनमस्कृत्यविससर्जद्विजोत्तमान्

तयोर्द्वयोर्भूसुरवर्यपुत्रयोरेकस्तया हैमवतीधियार्चितः ।

एको महादेवधियाभिपूजितः कृतप्रणामौ ययतुस्तदाज्ञया ॥ ४२ ॥

सा तु विस्मृतपुम्भावा तस्मिन्नेव द्विजोत्तमे ।

जातस्पृहा मदोत्सिक्ता कन्दर्पविवशाऽब्रवीत् ॥ ४३ ॥

अयिनाथविशालाक्षसर्वावयवसुन्दर !। तिष्ठतिष्ठक वा यासिमांन पश्यसितेप्रियाम् इदमग्रे वनं रम्यं सुपुष्पितमहाद्रुमम् । अस्मिन्विहर्तुमिच्छामित्वयासहयथासुखम्

इत्थं तयोक्तमाकर्ण्य पुरोऽगच्छद् द्विजात्मजः ।

विचिन्त्य परिहासोक्तिं गच्छतिस्म यथा पुरा ॥ ४६ ॥

पुनरप्याहसाबालातिष्ठतिष्ठकयास्यसि । दुरुत्सहस्मरावेशां परिभोक्तुमुपेत्यमाम्

परिष्वजस्व मां कान्तां पाययस्व तवाऽधरम् ।
नाऽहं गन्तुं समर्थाऽस्मि स्मरबाणप्रपीडिता ॥ ४८ ॥
इत्थमश्रुतपूर्वां तां निशम्यपरिशङ्कितः । आयान्तींपृष्ठतोवीक्ष्यसहसाविस्मयंगतः
कंशापद्मपलाशाक्षी पीनोन्नतपयोधरा । कृशोदरी बृहच्छ्रोणी नवपल्लवकोमला ॥
स एव मे सखा किन्तु जात एव वराङ्गना ।
पृच्छाम्येनमतःसर्वमिति सञ्चिन्त्य सोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥
किमपूर्व इवाभासि सखेरूपगुणादिभिः । अपूर्वं भाषसे वाक्यं कामिनीवसमाकुला
यस्त्वं वेदपुराणज्ञो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । सारस्वतात्मजःशान्तःकथमेवंप्रभाषसे
इत्युक्ता सा पुनः प्राह नाऽहमस्मि पुमान्प्रभो !।
नाम्ना सामवती बाला तवाऽस्मि रतिदायिनी ॥ ५४ ॥
यदि ते संशयः कान्तममाङ्गानिविलोकय । इत्युक्तःसहसामार्गेरहस्यैनांव्यलोकयत्
तामकृत्रिमधम्मिल्लां जघनस्तनशोभिनीम् ।
सुरूपां वीक्ष्य कामेन किञ्चिद् व्याकुलतामगात् ॥ ५६ ॥
पुनः संस्तभ्य यत्नेनचेतसोविकृतिंबुधः । मुहूर्तंविस्मयाविष्टोनकिञ्चित्प्रत्यभाषत

सामवत्युवाच

गतस्ते संशयः कच्चित्तर्ह्यागच्छ भजस्व माम् ।
पश्येदं विपिनं कान्त! परस्त्रीसुरतोचितम् ॥ ५८ ॥

सुमेधा उवाच

मैवं कथय मर्यादांमा हिंसीर्मदमत्तवत् । आवांविज्ञातशास्त्रार्थौत्वमेवंभाषसेकथम्
अधीतस्य च शास्त्रस्य विवेकस्यच कुलस्य च ।
किमेष सदृशो धर्मो जारधर्मनिषेवणम् ॥ ६० ॥
न त्वं स्त्री पुरुषो विद्वाञ्जानीह्यात्मानमाऽऽत्मना ।
अयं स्वयंकृतोऽनर्थ आवाभ्यां यद्विचेष्टितम् ॥ ६१ ॥
वञ्चयित्वात्मपितरौधूर्तराजानुशासनात् । कृत्वाऽन्वानुचितंकर्म तस्यैतद्भुज्यतेफलम्

सर्वं त्वनुचितं कर्म नृणां श्रेयोविनाशनम् ।
यस्त्वं विप्रात्मजो विद्वान्गतः स्त्रीत्वं विगर्हितम् ॥ ६३ ॥
मार्गं त्यक्त्वा गतोऽरण्यं नरो विध्येत कण्टकैः ।
बलाद्धिस्येत वा हिंस्रैर्यदा त्वक्तसमागमः ॥ ६४ ॥

एवं विवेकमाश्रित्य तूष्णामेहिस्वयंगृहम् । देवद्विजप्रसादेन स्त्रीत्वं तवविलीयते
अथवा दैवयोगेन स्त्रीत्वमेव भवेत्तव । पित्रा दत्ता मया साकं रंस्यसे वरवर्णिनि
अहो चित्रमहो दुःखमहो पापबलंमहत् । अहो राज्ञःप्रभावोयं शिवाराधनसम्भृतः
इत्युक्ताऽप्यसकृत्तेन सा वधूरतिविह्वला । बलेन तं समालिङ्ग्य चुचुम्बाधरपल्लवम्
धावतोऽपि तथा धीरःसुमेधानूतनस्त्रियम् । यत्नादानीयसदनं कृत्स्नंतत्रन्यवेदयत्

तदाकर्ण्याथ तौ विप्रौ कुपितौ शोकविह्वलौ ।
ताभ्यां सह कुमाराभ्यां वैदर्भान्तिकमीयतुः ॥ ७० ॥

ततःसारस्वतः प्राह राजानं धूर्तचेष्टितम् । राजन्ममात्मजंपश्यतवशासनयन्त्रितम्

एतौ तवाज्ञावशगौ चक्रतुः कर्मगर्हितम् ।
मत्पुत्रस्तत्फलं भुङ्क्ते स्त्रीत्वं प्राप्य जुगुप्सितम् ॥ ७२ ॥

अद्यमेसन्ततिर्नष्टानिराशाःपितरोमम । नापुत्रस्यहिलोकोऽस्तिलुप्तपिण्डादिसंस्कृतेः
शिखोपवीतमजिनं मौञ्जीं दण्डंकमण्डलुम् । ब्रह्मचर्योचितंचिह्नंविहायेमांदशांगतः
ब्रह्मसूत्रञ्चसावित्रींस्नानंसन्ध्यांजपार्चनम् । विसृज्यस्त्रीत्वमाप्तोस्यकागतिर्वदपार्थिव
त्वया मे सन्ततिर्नष्टा नष्टोवेदपथश्च मे । एकात्मजस्य मे राजन्का गतिर्वदशाश्वती

इति सारस्वतेनोक्तं वाक्यमाकर्ण्य भूपतिः ।
सीमन्तिन्याः प्रभावेण विस्मयं परमं गतः ॥ ७७ ॥

अथ सर्वान्समाहूय महर्षीनमितद्युतीन् । प्रसाद्यप्रार्थयामास तस्य पुंस्त्वंमहीपतिः

तेऽब्रुवन्नथ पार्वत्याः शिवस्य च समीहितम् ।
तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यं कोऽन्यथाकर्तुमीश्वरः ॥ ७६ ॥
अथ राजा भरद्वाजमादाय मुनिपुङ्गवम् ।

ताभ्यां सह द्विजाग्र्याभ्यां तत्सुताभ्यां समन्वितः ॥ ८० ॥
अम्बिकाभवनं प्राप्य भरद्वाजोपदेशतः । तां देवीं नियमैस्तीव्रैरुपास्तेस्ममहानिशि
एवं त्रिरात्रं सुविसृष्टभोजनः स पार्वतीध्यानरतो महीपतिः ।
सम्यक्प्रणामैर्विविधैश्च संस्तवैर्गौरीं प्रपन्नार्तिहरामतोषयत् ॥ ८२ ॥
ततः प्रसन्ना सादेवीभक्तस्य पृथिवीपतेः । स्वरूपं दर्शयामास चन्द्रकोटिसमप्रभम्
अथाह गौरी राजानं किं ते ब्रूहि समीहितम् ।
सोऽप्याह पुंस्त्वमेतस्य कृपया दीयतामिति ॥ ८४ ॥
भूयोऽप्याह महादेवी मद्भक्तैः कर्म यत्कृतम् ।
शक्यते नाऽन्यथा कर्तुं वर्षायुतशतैरपि ॥ ८५ ॥

राजोवाच

एकात्मजो हि विप्रोयं कर्मणा नष्टसन्ततिः । कथं सुखं प्रपद्येत विना पुत्रेणतादृशः

देव्युवाच

तस्याऽन्यो मत्प्रसादेन भविष्यति सुतोत्तमः ।
विद्याविनयसम्पन्नो दीर्घायुरमलाशयः ॥ ८७ ॥
एषासामवती नाम सुतातस्यद्विजन्मनः । भूत्वा सुमेधसःपत्नीकामभोगेनयुज्यताम्
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी ते च राजपुरोगमाः ।
गताःस्वंस्वं गृहं सर्वे चक्रुस्तच्छासने स्थितिम् ॥ ८६ ॥
सोऽपि सारस्वतो विप्रः पुत्रं पूर्वसुतोत्तमम् ।
लेभे देव्याः प्रसादेन ह्यचिरादेवकालतः ॥ ९० ॥
तां च सामवतींकन्यांददौ तस्मैसुमेधसे । तौदम्पती चिरं कालं बुभुजातेपरंसुखम्

सूत उवाच

इत्येष शिवभक्तायाः सीमन्तिन्या नृपस्त्रियः ।
प्रभावः कथितःशम्भोर्माहात्म्यमपि वर्णितम् ॥ ९२ ॥
भूयोऽपि शिवभक्तानां प्रभावं विस्मयावहम् ।

समासाद्वर्णयिष्यामि श्रोतृणां मङ्गलायनम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## दशमोऽध्यायः

### भद्राय्वाख्यानेऋषभयोगिनाभद्रायुजीवनम्

सूत उवाच

चिचित्रं शिवनिर्माणं विचित्रं शिवचेष्टितम् ।

चिचित्रं शिवमाहात्म्यं विचित्रं शिवभाषितम् ॥ १ ॥

विचित्रंशिवभक्तानां चरितंपापनाशनम् । स्वर्गापवर्गयोःसत्यंसाधनंतद्ब्रवीम्यहम्

अवन्तीविषये कश्चिद्ब्राह्मणोमन्दराह्वयः । बभूव विषयारामः स्त्रीजितो धनसंग्रही

सन्ध्यास्नानपरित्यक्तो गन्धमाल्याम्बरप्रियः ।

कुस्त्रीसक्तः कुमार्गस्थो यथापूर्वमजामिलः ॥ ४ ॥

सवेश्यांपिङ्गलांनामरममाणोदिवानिशम् । तस्याएवगृहेनित्यमासीदविजितेन्द्रियः

कदाचित्सदने तस्यास्तस्मिन्निवसति द्विजे ।

ऋषभो नाम धर्मात्मा शिवयोगी समाययौ ॥ ६ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्यमत्वा स्वंपुण्यमूर्जितम् । सा वेश्या स चविप्रश्चपर्यपूजयतामुभौ

तमारोप्य महापीठे कम्बलाम्बरसम्भृते । प्रक्षाल्यचरणौ भक्त्या तज्जलंदधतुःशिरः

स्वागतार्घ्यनमस्कारैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । उपचारैःसमभ्यर्च्यभोजयामासतुर्मुदा

तं भुक्तवन्तमाश्रान्तं पर्यङ्के सुखसंस्तरे । उपवेश्यमुदायुक्तौ ताम्बूलं प्रत्ययच्छताम्

पादसम्वाहनं भक्त्या कुर्वन्तौ दैवचोदितौ ।

कल्पयित्वा तु शुश्रूषां प्रीणयामासतुश्चिरम् ॥ ११ ॥

एवं समर्चितस्ताभ्यां शिवयोगीमहाद्युतिः । अतिवाह्य निशामेकां ययौ प्रातस्तदाद्भुतः
एवं काले गतप्राये स विप्रो निधनं गतः । सा च वेश्या मृता काले ययौ कर्मार्जितां गतिम्
स विप्रः कर्मणानीतो दशार्णधरणीपतेः । वज्रबाहु कुटुम्बिन्याः सुमत्या गर्भमास्थितः
तां ज्येष्ठपत्नीं नृपतेर्गर्भसम्पदमाश्रिताम् । अवेक्ष्य तस्यै गरलं सपत्न्यश्छद्मनाददुः
सा भुक्त्वा गरलं घोरं न मृता दैवयोगतः । क्लेशमेव परम्प्राप्यमरणादतिदुःसहम्
अथ काले समायाते पुत्रमेकमजीजनत् । क्लेशेन महता साध्वी पीडितावरवर्णिनी

स निर्दशो राजपुत्रः स्पृष्टपूर्वो गरेण यत् ।

तेनाऽवाप महाक्लेशं क्रन्दमानो दिवानिशम् ॥ १८ ॥

तस्य बालस्य माता च सर्वाङ्गव्रणपीडिता । बभूवतुरतिक्लिष्टौ गरयोगप्रभावतः ॥
तौ राज्ञा च समानीतौ वैद्यैश्च कृतभेषजौ । न स्वास्थ्यमापतुर्यत्नैरनेकैर्योजितैरपि

न रात्रौ लभते निद्रां सा राज्ञी विपुलव्यथा ।

स्वपुत्रस्य च दुःखेन दुःखिता नितरां कृशा ॥ २१ ॥

नीत्वैवं कतिचिन्मासान्स राजा मातृपुत्रकौ ।

जीवन्तौ च मृतप्रायौ विलोक्याऽऽत्मन्यचिन्तयत ॥ २२ ॥

एतौ मे गृहिणीपुत्रौ निरयादागताविह । अश्रान्तरोगौ क्रन्दन्तौ निद्राभङ्गविधायिनौ
अत्रोपायं करिष्यामि पापयोर्ध्रुवमेतयोः । मर्तुं वाजीवितुं वापि न क्षमौ पापभोगिनौ

इत्थं विनिश्चित्य च भूमिपालः सक्तः सपत्नीषु तदात्मजेषु ।

आहूय सूतं निजदारपुत्रौ निर्वापयामास रथेन दूरम् ॥ २५ ॥

तौ सूतेन परित्यक्तौ कुत्रचिद्विजने वने । अवापतुःपरां पीडां क्षुत्तड्भ्यां भृशविह्वलौ
सोद्वहन्ती निजं बालं निपतन्ती पदे पदे । निःश्वसन्ती निजं कर्म निन्दन्ती चकिता भृशम्

कचित्कण्टकभिन्नाङ्गी मुक्तकेशी भयाऽऽतुरा ।

कचिद्व्याघ्रस्वनैर्भीता कचिद्व्यालैरनुद्रुता ॥ २८ ॥

भत्स्यमाना पिशाचैश्च वेतालैश्च ब्रह्मराक्षसैः । महागुल्मेषु धावंती भिन्नपादाश्रुराश्मभिः
सैवं घोरे महारण्ये भ्रमन्ती नृपगेहिनी । दैवात्प्राप्ता वणिङ्मार्गं गोवाजिनरसेवितम्

गच्छन्ती तेन मार्गेण सुदूरमतियत्नतः । ददर्श वैश्यनगरं बहुस्त्रीनरसेवितम् ॥ ३१ ॥
तस्य गोप्ता महावैश्यो नगरस्य महाजनः । अस्ति पद्माकरो नाम राजराज इवापरः
तस्य वैश्यपतेः काचिद्गृहदासी नृपाङ्गनाम् । आयान्तीं दूरतो दृष्ट्वा तदन्तिकमुपाययौ

सा दासी नृपतेः कान्ता सपुत्रा भृशपीडिताम् ।
स्वयं विदितवृत्तान्ता स्वामिने प्रत्यदर्शयत् ॥ ३४ ॥
स तां दृष्ट्वा विशां नाथो रुजार्त्तां क्लिष्टपुत्रकाम् ।
नीत्वा रहसि सुव्यक्तं तद्वृत्तान्तमपृच्छत ॥ ३५ ॥

तयानिवेदिताशेषवृत्तान्तः सवणिक्पतिः । अहोकष्टमितिज्ञात्वा निशश्वास मुहुर्मुहुः
तामन्तिके स्वगेहस्य सन्निवेश्य रहोगृहे । वासोन्नपानशयनैर्मातृसाम्यमपूजयत्
तस्मिन्गृहे नृपवधूर्निवसन्ती सुरक्षिता । व्रणयक्ष्मादिरोगाणां न शान्तिं प्रत्यपद्यत

ततो दिनैः कतिपयैः स बालो व्रणपीडितः ।
विलङ्घितभिषक्सत्त्वो ममार च विधेर्वशात् ॥ ३६ ॥

मृते स्वतनये राज्ञी शोकेन महतावृता । मूर्च्छिताचाऽपतद्भूमौ गजभग्नेव वल्लरी ॥ ४०

दैवात्सञ्ज्ञामवाऽप्याथ वाष्पक्लिन्नपयोधरा ।
सान्त्विताऽपि वणिक्स्त्रीभिर्विललाप सुदुःखिता ॥ ४१ ॥

हा ताततातहा पुत्र मम प्राणरक्षक । हा राजकुलपूर्णेन्दो हा ममाऽऽनन्दवर्धन ! ॥

इमामनाथां कृपणां त्वत्प्राणां त्यक्तबान्धवाम् ।
मातरं ते परित्यज्य क यातोऽसि नृपात्मज ॥ ४३ ॥
इत्येभिरुदितैर्वाक्यैः शोकचिन्ताविवर्धकैः ।
विलपन्तीं मृतापत्यां को नु सान्त्वयितुं क्षमः ॥ ४४ ॥
एतस्मिन्समये तस्या दुःखशोकचिकित्सकः ।
ऋषभः पूर्वमाख्यातः शिवयोगी समाययौ ॥ ४५ ॥
स योगी वैश्यनाथेन सार्घहस्तेन पूजितः ।
तस्याः सकाशमगमच्छोचन्त्या इदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

ऋषभ उवाच

अकस्मात्किमहो वत्से! रोरवीषि विमूढधीः ।
को जातः कतमो लोके को मृतो वद साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥
अमी देहादयो भावास्तोयफेनसधर्मकाः ।
क्वचिद्भ्रान्तिः क्वचिच्छान्तिः स्थितिर्भवति वा पुनः ॥ ४८ ॥

अतोऽस्मिन्फेनसदृशेदेहेपञ्चत्वमागते । शोकस्यानवकाशत्वान्नशोचन्तिविपश्चितः

गुणैर्भूतानि सृज्यन्ते भ्राम्यन्ते निजकर्मभिः ।
कालेनाऽथ विकृष्यन्ते वासनायां च शेरते ॥ ५० ॥

माययोत्पत्तिमायान्तिगुणाःसत्त्वादयस्त्रयः । तैरेवदेहाजायन्तेजातास्तल्लक्षणाश्रयाः
देवत्वंयाति सत्त्वेन रजसाच मनुष्यताम् । तिर्यक्त्वंतमसा जन्तुर्वासनानुगतोवशः
संसारे वर्तमानेस्मिञ्जन्तुःकर्मानुबन्धनात् । दुर्विभाव्यांगतिंयातिसुखदुःखमयींमुहुः
अपि कल्पायुषां तेषां देवानांतुविपर्ययः । अनेकामयबद्धानांका कथा नरदेहिनाम्

केचिद्वदन्ति देहस्य कालमेव हि कारणम् ।
कर्म केचिद् गुणान्केचिद् देहः साधारणो ह्ययम् ॥ ५५ ॥

कालकर्मगुणाधानं पञ्चात्मकमिदं वपुः । जातं दृष्ट्वानहृष्यन्तिनशोचन्ति मृतं बुधाः
अव्यक्ते जायते जन्तुरव्यक्ते च प्रलीयते । मध्ये व्यक्तवदाभाति जलबुद्बुदसन्निभः
यदा गर्भगतो देहीविनाशःकल्पितस्तदा । दैवाज्जीवति वा जातो म्रियतेसहसैववा
गर्भस्था एव नश्यन्तिजातमात्रास्तथापरे । क्वचिद्युवानोनश्यन्तिम्रियन्तेकेपिवार्धके
यादृशं प्राक्तनंकर्म तादृशं विन्दतेवपुः । भुङ्क्ते तदनुरूपाणि सुखदुःखानि वै ह्यसौ
मायानुभावेरितयोःपित्रोःसुरतसम्भ्रमात् । देहउत्पद्यतेकोपिपुंयोषित्क्लीबलक्षणः
आयुः सुखं च दुःखं च पुण्यं पापंश्रुतंधनम् । ललाटे लिखितंधात्रावहञ्जन्तुःप्रजायते

कर्मणामविलङ्घ्यत्वात्कालस्याप्यनतिक्रमात् ।
अनित्यत्वाच्च भावानां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६३ ॥

क्व स्वप्नेनियतंस्थैर्यमिन्द्रजाले क्व सत्यता । क्व नित्यता शरन्मेघे क्वशश्वत्त्वंकलेवरे

तवजन्मान्यतीतानि शतकोट्ययुतानि च । अज्ञानत्याः परंतत्त्वंसम्प्राप्तोऽयंमहाभ्रमः

कस्य कस्याऽसि तनया जननी कस्य कस्य वा ।
कस्य कस्याऽसि गृहिणी भवकोटिषु वर्त्तिनी ॥ ६६ ॥
पञ्चभूतात्मको देहस्त्वगसृङ्मांसबन्धनः ।
मेदोमज्जास्थिनिचितो विण्मूत्रश्लेष्मभाजनम् ॥ ६७ ॥

शरीरान्तरमप्येतन्निजदेहोद्भवं मलम् । मत्वास्वतनयंमूढेनाशोकंकर्तुं मर्हसि ॥ ६८॥
यदि नाम जनः कश्चिन्मृत्युं तरति यत्नतः । कथंतर्हिविपद्येरन्सर्वे पूर्वे विपश्चितः
तपसा विद्ययाबुद्ध्यामन्त्रौषधिरसायनैः । अतियातिपरंमृत्युनदश्चिदपिपण्डितः
एकस्याद्य मृतिर्जन्तोःश्वश्चान्यस्यवरानने ।। तस्मादनित्यावयवेनत्वंशोचितुमर्हसि

नित्यं सन्निहितो मृत्युः किं सुखं वद देहिनाम् ।
व्याघ्रे पुरः स्थिते ग्रासःपशूनां किं नु रोचते ॥ ७२ ॥

अतो जन्म जरां जेतुं यदीच्छसि वरानने ।। शरणं व्रज सर्वेशं मृत्युंजयमुमापतिम्
तावन्मृत्युभयंघोरं तावज्जन्मजराभयम् । यावन्नो याति शरणं देही शिवपदाम्बुजम्
अनुभूयेह दुःखानि संसारे भृशदारुणे । मनो यदा वियुज्येत तदाध्येयो महेश्वरः
मनसापिबतः पुंसः शिवध्यानरसामृतम् । भूयस्तृष्णा न जायेत संसारविषयासवे
विमुक्तं सर्वसङ्गैश्चमनो वैराग्ययन्त्रितम् । यदा शिवपदे मग्नं तदा नास्ति पुनर्भवः
तस्मादिदं मनो भद्रे शिवध्यानैकसाधनम् । शोकमोहसमाविष्टं माकुरुष्व शिवं भज

सूत उवाच

इत्थं सानुनयं राज्ञी बोधिता शिवयोगिना ।
प्रत्याचष्ट गुरोस्तस्य प्रणम्य चरणाम्बुजम् ॥ ७६ ॥

राज्ञ्युवाच

भगवन्मृतपुत्रायास्त्यक्तायाः प्रियबन्धुभिः । महारोगातुराया मे का गतिर्मरणं विना
अतोऽहं मर्त्तुमिच्छामिसहैव शिशुनाऽमुना । कृतार्थाहंयदद्य त्वामपश्यंमरणोन्मुखी

सूत उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा शिवयोगी दयानिधिः ।
पूर्वोपकारं संस्मृत्य मृतस्यान्तिकमाययौ ॥ ८२ ॥
सतदाभस्मसंगृह्यशिवमन्त्राभिमन्त्रितम् । विदीर्णेतन्मुखेक्षिप्त्वामृतंप्राणैरयोजयत्
सबालः सङ्गतः प्राणैःशनैरुन्मील्य लोचने । प्राप्तपूर्वेन्द्रियबलो रुरोद स्तन्यकांक्षया
मृतस्यपुनरुत्थानं वीक्ष्य बालस्य विस्मिताः । जना मुमुदिरेसर्वेनगरेषु पुरोगमाः
अथाऽऽनन्दभरा राज्ञी विह्वलोन्मत्तलोचना । जग्राहतनयं शीघ्रंबाष्पव्याकुललोचना
उपगुह्य तदा तन्वी परमानन्दनिर्वृता । न वेदात्मानमन्यं वा सुषुप्तेव परिश्रमात्
पुनश्च ऋषभोयोगी तयोर्मातृकुमारयोः । विषव्रणयुतं देहं भस्मनैव परामृशत् ॥
तौ च तद्भस्मना स्पृष्टौप्राप्तदिव्यकलेवरौ । देवानां सदृशंरूपं दधतुःकान्तिभूषितम्
सम्प्राप्ते त्रिदिवैश्वर्ये यत्सुखं पुण्यकर्मणाम् ।
तस्माच्छतगुणं प्राप सा राज्ञी सुखमुत्तमम् ॥ ६० ॥
तां पादयोर्निपतितामृषभः प्रेमविह्वलः । उत्थाप्याश्वासयामास दुःखैर्मुक्तामुवाच ह
अयि वत्से! महाराज्ञि! जीव त्वं शाश्वतीः समाः ।
यावज्जीवसि लोकेऽस्मिन्न तावत्प्राप्स्यसे जराम् ॥ ६२ ॥
एषतेतनयःसाध्विभद्रायुरितिनामतः । ख्याति यास्यतिलोकेषुनिजंराज्यमवाप्स्यति
अस्य वैश्यस्यसदनेतावत्तिष्ठ शुचिस्मिते । यावदेष कुमारस्ते प्राप्तविद्योभविष्यति
सूत उवाच
इतितामृषभो योगीतंचराजकुमारकम् । सञ्जीव्यभस्मवीर्येणययौ देशान्यथेप्सितान्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
भद्राख्याख्याने ऋषभयोगिना भद्रायुजीवनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

# एकादशोऽध्यायः

## भद्रायुम्प्रत्यृषभोपदेशवर्णनम्

सूत उवाच

पिङ्गला नाम या वेश्या मयापूर्वमुदाहृता । शिवभक्तार्चनात्पुण्यात्त्यक्त्वा पूर्वकलेवरम्
चन्द्राङ्गदस्यसाभूयःसीमन्तिन्यामजायत । रूपौदार्यगुणोपेता नाम्नावैकीर्तिमालिनी
भद्रायुरपि तत्रैव राजपुत्रो वणिक्पतेः । ववृधे सदने भानुः शुचाविव महातपाः ॥

तस्यापि वैश्यनाथस्य कुमारस्त्वेक उत्तमः ।

स नाम्ना सुनयः प्रोक्तो राजसूनोः सखाऽभवत् ॥ ४ ॥

तावुभौपरमस्निग्धौ राजवैश्यकुमारकौ । चित्रक्रीडावुदाराङ्गौ रत्नाभरणमण्डितौ

तस्य राजकुमारस्य ब्राह्मणः स वणिक्पतिः ।

संस्कारान्कारयामास स्वपुत्रस्याऽपि विस्तरात् ॥ ६ ॥

काले कृतोपनयनौ गुरुशुश्रूषणे रतौ । चक्रतुः सर्वविद्यानां संग्रहं विनयान्वितौ ॥
अथ राकुमारस्य प्राप्ते षोडशहायने । स एव ऋषभोयोगी तस्य वेश्मन्युपाययौ
सा राज्ञी स कुमारश्च शिवयोगिनमागतम् । मुहुर्मुहुः प्रणम्योभौ पूजयामासतुर्मुदा
ताभ्यां सपूजितःसोऽथयोगीशोहृष्टमानसः । तं राजपुत्रमुद्दिश्य बभाषेकरुणार्द्रधीः

शिवयोग्युवाच

कच्चित्ते कुशलंतातत्वन्मातुश्चाप्यनामयम् । कच्चित्त्वं सर्वविद्यानामकार्षीश्चप्रतिग्रहम्
कच्चिद्गुरूणां सततं शुश्रूषातत्परोभवान् । कच्चित्स्मरसिमांताततव प्राणप्रदंगुरुम्
एवं वदतियोगीशे राज्ञीसा विनयान्विता । स्वपुत्रं पादयोस्तस्यनिपात्यैनमभाषत
एष पुत्रस्तवगुरो त्वमस्यप्राणदः पिता । एष शिष्यस्तु संग्राह्योभवता करुणात्मना
अतो बन्धुभिरुत्सृष्टमनाथं परिपालय । अस्मै सम्यक्सतांमार्गमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥

इति प्रसादितो राज्ञ्या शिवयोगी महामतिः ।

तस्मै राजकुमाराय सन्मार्गमुपदिष्टवान् ॥ १६ ॥

ऋषभ उवाच

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु प्रोक्तो धर्मः सनातनः । वर्णाश्रमानुरूपेण निषेव्यः सर्वदा जनैः
भज वत्स! सतां मार्गं सदेवचरितं चर । न देवाज्ञा विलङ्घेथा मा कार्षीर्देवहेलनम्
गोदेवगुरुविप्रेषु भक्तिमान्भवसर्वदा । चाण्डालमपि सम्प्राप्तंसदासम्भावयातिथिम्
सत्यं न त्यज सर्वत्र प्राप्तेऽपिप्राणसङ्कटे । गोब्राह्मणानां रक्षार्थमसत्यं त्वंवदक्वचित्
परस्वेषु परस्त्रीषु देवब्राह्मणवस्तुषु । तृष्णां त्यज महाबाहो दुर्लभेष्वपि वस्तुषु
सत्कथायां सदाचारे सद्व्रते च सदागमे । धर्मादिसंग्रहे नित्यं तृष्णां कुरुमहामते
स्नाने जपे च होमे च स्वाध्यायेपितृतर्पणे । गोदेवातिथिपूजासुनिरालस्योभवानघ
क्रोधं द्वेषं भयं शाठ्यं पैशुन्यमसदाग्रहम् । कौटिल्यंदम्भमुद्वेगं यत्नेन परिवर्जय
क्षात्रधर्मरतोऽपि त्वं वृथा हिंसां परित्यज । शुष्कवैरं वृथालापं परनिन्दां च वर्जय
मृगयाद्यूतपानेषु स्त्रीषु स्त्रीविजितेषु च । अत्याहारमतिक्रोधमतिनिद्रामतिश्रमम्

अत्यालापमतिक्रीडां सर्वदा परिवर्जय ॥ २७ ॥
अतिविद्यामतिश्रद्धामतिपुण्यमतिस्मृतिम् ।
अत्युत्साहमतिख्यातिमतिधैर्यं च साधय ॥ २८ ॥

सकामो निजदारेषु सक्रोधो निजशत्रुषु । सलोभः पुण्यनिचयेसाभ्यसूयोह्यधर्मिषु
सद्वेषो भव पाखण्डे सरागः सज्जनेषु च । दुर्बोधो भव दुर्मन्त्रे बधिरःपिशुनोक्तिषु
धूर्त्तं चण्डं शठं क्रूरं कितवं चपलं खलम् । पतितं नास्तिकं जिह्मंदूरतः परिवर्जय
आत्मप्रशंसांमा कार्षीः परिज्ञातेङ्गितो भव । धनेसर्वकुटुम्बे चनात्यासक्तःसदा भव
पत्न्याः पतिव्रतायाश्च जनन्याः श्वशुरस्यच । सतां गुरोश्च वचनेविश्वासंकुरुसर्वदा
आत्मरक्षापरो नित्यमप्रमत्तो दृढव्रतः । विश्वासंनैवकुर्वीथाःस्वभृत्येष्वपिकुत्रचित्

विश्वस्तं मा वधीः कञ्चिदपि चोरं महामते!।
अपापेषु न शङ्केथाः सत्याच्च चलितो भव ॥ ३५ ॥
अनाथं कृपणं वृद्धं स्त्रियं बालं निरागसम् ।

परिरक्ष धनैः प्राणैर्बुद्धया शक्तया बलेन च ॥ ३६ ॥
अपि शत्रुं वधस्याहं मा वधीः शरणागतम् ।
अप्यपात्रं सुपात्रं वा नीचो वापि महत्तमः ॥ ३७ ॥
योवाकोवापियाचेततस्मै देहि शिरोपि च । अपि यत्नेन महता कीर्तिमेव सदार्जय
राज्ञां च विदुषां चैव कीर्तिरेव हि भूषणम् ।
सत्कीर्तिप्रभवाः लक्ष्मीः पुण्यं सत्कीर्तिसंभवम् ॥ ३६ ॥
सत्कीर्त्या राजते लोकश्चन्द्रश्चन्द्रिकयायथा । गजाश्वहेमनिचयं रत्नराशिनगोपमम्
अकीर्त्योपहतं सर्वंतृणवन्मुञ्च सत्वरम् । मातुः कोपंपितुःकोपंगुरोःकोपंधनव्ययम्
पुत्राणामपराधं च ब्राह्मणानांक्षमस्वभोः । यथाद्विजप्रसादःस्यात्तथातेषां हितंचर
राजानं संकटे मग्नमुद्धरेयुर्द्विजोत्तमाः । आयुर्यशो बलं सौख्यं धनं पुण्यंप्रजोन्नतिः
कर्मणा येन जायेत तत्सेव्यं भवता सदा । देशं कालं च शक्तिं चकार्यंचाकार्यमेवच
सम्यग्विचार्य यत्नेन कुरु कार्यं च सर्वदा ।
न कुर्याः कस्यचिद्बाधा परद्बाधां निवारय ॥ ४५ ॥
चोरान्दुष्टांश्चबाधेथाःसुनात्याशक्तिमत्तया । स्नाने जपे च होमे चदेवेपित्र्येचकर्मणि
अत्वरो भव निद्रायां भोजने भव सत्वरः । दाक्षिण्ययुक्तमशठं सत्यं जनमनोहरम्
अल्पाक्षरमनन्तार्थं वाक्यं ब्रूहि महामते । अभीतो भव सर्वत्र विपक्षेषु विपत्सु च
भीतो भवब्रह्मकुलेनपापेगुरुशासने । ज्ञातिबन्धुषु विप्रेषु भार्यासु तनयेषु च ॥ ४६॥
समभावेन वर्तथास्तथा भोजनपङ्क्तिषु । सता हितोपदेशेषु तथा पुण्यकथासु च
विद्यागोष्ठीषु धर्म्यासु क्वचिन्मा भूः पराङ्मुखः ।
शुचौ पुण्यजनस्याऽन्ने प्रख्याते ब्रह्मसङ्कुले ॥ ५१ ॥
महादेशे शिवमयेवस्तव्यं भवता सदा । कुलटा गणिका यत्र यत्र तिष्ठति कामुकः
दुर्देशे नीचसम्बाधे कदाचिदपि मा वस । एकमेवाश्रितोऽपि त्वंशिवंत्रिभुवनेश्वरम्
सर्वान्देवानुपासीथास्तद्दिनानि च मानयन् ।
सदा शुचिः सदा दक्षः सदा शान्तः सदा स्थिरः ॥ ५४ ॥

सदा विजितषड्वर्गः सदैकान्तो भवाऽनघ !।
विप्रान्वेदविदः शान्तान्यतींश्च नियतोज्ज्वलान् ॥ ५९ ॥

युग्मम्

पुण्यवृक्षान्पुण्यनदीः पुण्यतीर्थं महत्सरः । धेनुं च वृषभं रत्नं युवतीं चपतिव्रताम्
आत्मनो गृहदेवांश्च सहसैव नमस्कुरु । उत्थाय समये ब्राह्मेस्वाचम्यविमलाशयः
नमस्कृत्यात्मगुरुवेध्यात्वादेवमुमापतिम् । नारायणंचलक्ष्मीशंब्रह्माणंचविनायकम्
स्कन्दं कात्यायनीं देवीं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ।
इन्द्रादीनथ लोकेशान्पुण्यश्लोकानृषीनपि ॥ ५६ ॥
चिन्तयित्वाऽथमार्त्तण्डमुद्यन्तंप्रणमेत्सदा । गन्धंपुष्पंचताम्बूलंशाकंपक्कफलादिकम्
शिवाय दत्त्वोपभुङ्क्ष्व भक्ष्यं भोज्यं प्रियं नवम् ।
यद्दत्तं यत्कृतं जप्तं यत्स्नातं यद्धतं स्मृतम् ॥ ६१ ॥
यच्च तप्तं तपः सर्वं तच्छिवाय निवेदय । भुञ्जानश्च पठन्वापि शयानो विहरन्नपि
पश्यञ्छृण्वन्वदन्गृह्णञ्छिवमेवानुचिन्तय ॥ ६२ ॥
रुद्राक्षकंकणलसत्करदण्डयुग्मो मालान्तरालधृतभस्मसितत्रिपुण्ड्रः ।
पञ्चाक्षरं परिपठन्परमन्त्रराजं ध्यायन्सदा पशुपतेश्चरणं रमेथाः ॥ ६३ ॥
इति संक्षेपतो वत्स! कथितो धर्मसंग्रहः । अन्येषु च पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्त्तितः
अथाऽपरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ।
जयप्रदं सर्वविपद्विमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥ ६५ ॥
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीयेब्रह्मोत्तरखण्डे
भद्रायुम्प्रति ऋषभोपदेशवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः

### ऋषभेणशिवकवचकथनम्

ऋषभ उवाच

नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् । वक्ष्ये शिवमयं वम सर्वरक्षाकरं नृणाम्

शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः ।

जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥ २ ॥

हृत्पुण्डरीकान्तरसन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोवकाशम् ॥

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥ ३ ॥

ध्यानावधूताखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।

षडक्षरन्याससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ॥ ४ ॥

मा पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ।

तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोति मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ५ ॥

सर्वत्र मा रक्षतु विश्वमूर्त्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।

अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ६ ॥

यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात्स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्त्तिः ।

योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति सञ्जीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ७ ॥

कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ।

स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥ ८ ॥

प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।

चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥ ९ ॥

कुठारवेदाङ्कुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान्दधानः ।

चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥१० ॥

कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥ ११ ॥
वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥ १२ ॥
वेदाभयेष्टाङ्कुशटङ्कपाशकपालढक्काक्षकशूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्द्धं परमप्रकाशः ॥ १३ ॥
मूर्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाव्याद्भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥ १४ ॥
पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्त्तिः कपोलमव्यात्सततं कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥ १५ ॥
कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥ १६ ॥
ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातुनाभिं पायात्कटी धूर्जटिरीश्वरो मे ॥ १७ ॥
उरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात्पादौ ममाऽव्यात्सुरवन्द्यपादः ॥ १८ ॥
महेश्वरः पातु दिनादियामे मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रियम्बकः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥ १९ ॥
पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ।
गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥ २० ॥
अन्तःस्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदा शिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥ २१ ॥
तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः पायाद्व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मान्निषण्णं मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥ २२ ॥

मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ॥ २३ ॥
कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपः स्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।
घोरारिसेनार्णवदुर्निवारमहाभयाद्रक्षतु वीरभद्रः ॥ २४ ॥
पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ।
अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥ २५ ॥
निहन्तु दस्यून्प्रलयानलार्चिर्ज्वलत्त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान्सन्त्रासयत्वीशधनुः पिनाकम् ॥ २६ ॥
दुःस्वप्नदुःशकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्षदुर्व्यसनदुःसहदुर्यशांसि ।
उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ॥ २७ ॥

ॐनमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सकलतत्त्वविहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्तिभञ्जनाय सकलजगदभयङ्कराय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय नीरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निःसङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयायपरमशान्तप्रकाशतेजोरूपायजयजय महारुद्र! महारौद्र! भद्रावतार! दुःखदावदारण! महाभैरव! कालभैरव! कल्पान्तभैरव! कपालमालाधर! खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिण्डिपालतोमरमुसलमुद्गरपट्टिशपरशुपरिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्राद्यायुधभीषणकरसहस्र!मुखदंष्ट्राकराल!विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डलनागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार! नागेन्द्रचर्मधर!मृत्युञ्जय!त्र्यम्बक!त्रिपुरान्तक!विरूपाक्ष!विश्वेश्वर! विश्वरूप! वृषभवाहन! विषभूषण! विश्वतोमुख! सर्वतो रक्षरक्ष मा

ज्वलज्वल महाभृत्युमयंमपमृत्युभयं नाशयनाशय रोगभयमुत्सादयोत्-
सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरभयं मारयमारय मम शत्रूनुच्चाटयो-
च्चाटय शूलेन विदारय विदारयकुठारेण भिन्धिभिन्धि खड्गेन छिन्धिछिन्धि
खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषयनिष्पेषय बाणैः सन्ताडय
सन्ताडय रक्षांसि भीषयभीषयभूतानि विद्रावयविद्रावय कूष्माण्डवेताल-
मारीगणब्रह्मराक्षसान्सन्त्रासयसन्त्रासयममाऽभयं कुरुकुरु वित्रस्तंमामा-
श्वासयाऽऽश्वासय नरकभयान्मामुद्धारयोद्धारयसञ्जीवयसञ्जीवयक्षुत्तृड्भ्यां
मामाप्याययाप्याययदुःखातुरं मामानन्दयाऽऽनन्दयशिवकवचेन मामाच्छा-
दयाऽऽच्छादय त्र्यम्बक! सदाशिव! नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

ऋषभ उवाच

इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया । सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥ २८
यः सदा धारयेन्मर्त्यःशैवं कवचमुत्तमम् । नतस्य जायते क्वापिभयं शम्भोरनुग्रहात्
क्षीणायुर्मृत्युमापन्नो महारोगहतोऽपि वा ।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ ३० ॥
सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम् । यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥
महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः । देहान्ते शिवमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ॥
त्वमपि श्रद्धया वत्सशैवंकवचमुत्तमम् । धारयस्व मयादत्तं सद्यःश्रेयोह्यवाप्स्यसि

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ऋषभोयोगी तस्मैपार्थिवसूनवे । ददौ शङ्खंमहारावंखड्गंचारिनिषूदनम्
पुनश्च भस्म सम्मन्त्र्य तदङ्गं सर्वतोऽस्पृशत् ।
गजानां षट्सहस्रस्य द्विगुणश्च बलं ददौ ॥ ३५ ॥
भस्मप्रभावात्सम्प्राप्य बलैश्वर्यधृतिस्मृतीः । स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इवश्रिया
तमाह प्राञ्जलिभूयः स योगीराजनन्दनम् । एष खड्गोमयादत्तस्तपोमन्त्रानुभावतः
शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसि स्फुटम् ।

स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥ ३८ ॥
अस्य शङ्खस्य निह्रादं ये शृण्वन्ति तवाऽहिताः ।
ते मूर्च्छिताः भविष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥ ३९ ॥
खड्गशङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशिनौ ।
आत्मसैन्यस्वपक्षाणां शौर्यतेजोविवर्धनौ ॥ ४० ॥
एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च । द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महताऽपि च ॥४१
भस्मधारणसामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ।
प्राप्य सिंहासनं पैत्र्यं गोप्तासि पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥
इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समातृकम् ।
ताभ्यां सम्पूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥ ४३ ॥

इतिश्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिनीमाहात्म्ये भद्रायूपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

# त्रयोदशोऽध्यायः

## भद्रायुविवाहवर्णनम्

सूत उवाच

दशार्णाधिपतेस्तस्य वज्रबाहोर्महाभुजः । बभूव शत्रुर्बलवान्राजा मगधराट् ततः ॥
स वै हेमरथो नाम बाहुशाली रणोत्कटः । बलेन महताऽऽवृत्यदशार्णं न्यरुधद्बली
चमूपास्तस्य दुर्धर्षाः प्राप्यदेशंदशार्णकम् । व्यलुम्पन्वसुरत्नानि गृहाणि ददहुःपरे
केचिद्धनानि जगृहुः केचिद् बालान्स्त्रियोऽपरे ।
गोधनान्यपरेऽगृह्णन्केचिद्धान्यपरिच्छदान् ॥

केचिदारामसस्यानि गृहोद्यानान्यनाशयन् ॥ ४ ॥

एवं विनाश्य तद्राज्यं स्त्रीगोधनजिघृक्षवः ।आवृत्य तस्यनगरीं वज्रबाहोस्तुमागधः
एवं पर्याकुलंवीक्ष्य राजा नगरमेव च । युद्धाय निर्जगामाशु वज्रबाहुः स सैनिकः
वज्रबाहुश्चभूपालस्तथामन्त्रिपुरःसराः । युयुधुर्मागधैःसार्धं निजघ्नुः शत्रुवाहिनीम्
वज्रबाहुर्महेष्वासो दंशितो रथमास्थितः । विकिरन्बाणवर्षाणि चकार कदनंमहत्

दशार्णराजं युध्यन्तं दृष्ट्वा युद्धे सुदुःसहम् ।

तमेव तरसा बव्रुः सर्वे मागधसैनिकाः ॥ ६ ॥

कृत्वा तु सुचिरंयुद्धं मागधाढ्ढविक्रमाः । तत्सैन्यं नाशयामासुर्लेभिरे चजयश्रियम्

केचित्तस्य रथं जघ्नुः केचित्तद्धनुराच्छिनन् ।

सूतं तस्य जघानैकस्त्वपरः खड्गमाच्छिनत् ॥ ११ ॥

सञ्छिन्नखड्गधन्वानं विरथंहतसारथिम् । बलाद्गृहीत्वाबलिनो बबन्धुर्नृपतिरुषा
तस्यमन्त्रिगणंसर्वंतत्सैन्यंचविजित्यते । मागधास्तस्यनगरीं विविशुर्जयकाशिनः
अश्वान्नरान्गजानुष्ट्रान्पशूंश्चैव धनानि च । जगृहुर्युवतीः सर्वाश्चावङ्गीश्चैवकन्यकाः
राज्ञो बबन्धुर्महिषीर्दासीश्चैव सहस्रशः । कोशञ्च रत्नसम्पूर्णं जहुतेऽप्याततायिनः ॥

एवं विनाश्य नगरीं हृत्वा स्त्रीगोधनादिकम् ।

वज्रबाहुं बलाद् बद्ध्वा रथे स्थाप्य विनिर्ययुः ॥ १६ ॥

एवं कोलाहले जाते राष्ट्रनाशे च दारुणे । राजपुत्रोऽथभद्रायुस्तद्वार्तामशृणोद्बली
पितरं शत्रुनिर्बद्धं पितृपत्नीस्तथाहृताः । नष्टं दशार्णराष्ट्रञ्च श्रुत्वा चुक्रोश सिंहवत्
स खड्गशङ्खावादायवैश्यपुत्रसहायवान् । दंशितो हयमारुह्य कुमारो विजिगीषया
जवेनागत्य तं देशं मागधैरभिपूरितम् । दह्यमानं क्रन्दमानं हृतस्त्रीसुतगोधनम् ॥

दृष्ट्वा राजजनं सर्वं राज्यं शून्यं भयाकुलम् ।

क्रोधाध्मातमनास्तूर्णं प्रविश्य रिपुवाहिनीम् ॥

आकर्णाकृष्टकोदण्डो ववर्ष शरसन्ततीः ॥ २१ ॥

ते हन्यमाना रिपवो राजपुत्रेण सायकैः । तमभिद्रुत्य वेगेन शरैर्विव्यधुरुल्बणैः ॥

हन्यमानोऽस्त्रपूगेन रिपुभिर्युद्धदुर्मदैः । न चचाल रणे धीरः शिववर्माभिरक्षितः ॥
सोऽस्त्रवर्षं प्रसह्याशु प्रविश्य गजलीलया । जघानाशु रथान्नागान्पदातीनपिभूरिशः
तत्रैकं रथिनं हत्वा ससूतं नृपनन्दनः । तमेव रथमास्थाय वैश्यनन्दनसारथिः ॥
विचचार रणे धीरः सिंहो मृगकुलं यथा ॥ २५ ॥
अथ सर्वे सुसंरब्धाः शूराः प्रोद्यतकार्मुकाः । अभिसस्तुस्तमेवैकंचमूपा बलशालिनः
तेषामापततामग्रे खड्गमुद्यम्य दारुणम् । अभ्युद्ययौ महावीरान्दर्शयन्निव पौरुषम्
करालान्तकजिह्वाभं तस्य खड्गं महोज्ज्वलम् ।
दृष्ट्वैव सहसा मम्रुश्चमूपास्तत्प्रभावतः ॥ २८ ॥
येयेपश्यन्ति तं खड्गं प्रस्फुरन्तं रणाङ्गणे । ते सर्वे निधनंजग्मुर्वज्रं प्राप्येवकीटकः
अथासौ सर्वसैन्यानांविनाशायमहाभुजः । शङ्खं दध्मौ महारावं पूरयन्निव रोदसी
तेन शङ्खनिनादेन विपाकेनैव भूयसा । श्रुतमात्रेण रिपवो मूर्च्छिताः पतिता भुवि
येऽश्वपृष्ठे रथे ये चयेचदन्तिषुसंस्थिताः । ते विसञ्ज्ञाः क्षणात्पेतुःशङ्खनादहतौजसः
तान्भूमौ पतितान्सर्वान्नष्टसंज्ञान्निरायुधान् ।
विगणय्य शवप्रायान्नावधीद्धर्मशास्त्रवित् ॥ ३३ ॥
आत्मनःपितरंबद्धंमोचयित्वारणाजिरे । तत्पत्नीःशत्रुवशगाःसर्वाःसद्योऽव्यमोचयत्
पत्नीश्च मन्त्रिमुख्यानां तथाऽन्येषां पुरौकसाम् ।
स्त्रियो बालांश्च कन्याश्च गोधनादीन्यनेकशः ॥ ३६ ॥
मोचयित्वा रिपुभयात्तमाश्वासयदाकुलः । अथारिसैन्येषुचरंस्तेषां जग्राह योषितः
मरुन्मनोजवानश्वान्मातङ्गान्गिरिसन्निभान् ।
स्यन्दनानि च रौक्माणि दासीश्च रुचिराननाः ॥ ३७ ॥

युग्मम्

सर्वमाहृत्य वेगेन गृहीत्वा तद्धनं बहु । मागधेशं हेमरथं निर्यबन्ध पराजितम् ॥
तन्मन्त्रिणश्च भूपांश्च तत्र मुख्यांश्च नायकान् ।
गृहीत्वा तरसा बद्ध्वा पुरीं प्रावेशयद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥

पूर्वयैसमरेभग्नाविवृत्ताःसर्वतोदिशम् । ते मन्त्रिमुख्याविश्वस्तानायकाश्चसमाययुः
कुमारविक्रमं दृष्ट्वा सर्वे विस्मितमानसाः । तं मेनिरे सुरश्रेष्ठं कारणादागतं भुवम् ॥
अहोनः सुमहाभाग्यमहोनस्तपसःफलम् । येनाप्यनेन वीरेण मृताः सञ्जीविताःखलु
एष किं योगसिद्धोवा तपः सिद्धोऽथवाऽमरः । अमानुषमिदंकर्म यदनेन कृतं महत्

नूनमस्य भवेन्माता सा गौरीति शिवः पिता ।

अक्षौहिणीना नवकं जिगायाऽनन्तशक्तिधृक् ॥ ४४ ॥

इत्याश्चर्ययुतेर्हृष्टैः प्रशंसद्भिः परस्परम् । पृष्टोऽमात्यजनैनासावात्मानं प्राह तत्त्वतः
समागतं स्वपितरं विस्मयाह्लादविप्लुतम् । मुञ्चन्तमानन्दजलं ववन्दे प्रेमविह्वलः
स राजा निजपुत्रेण प्रणयादभिवन्दितः । आश्लिष्य गाढं तरसा बभाषे प्रेमकातरः

कस्त्वं देवो मनुष्यो वा गन्धर्वो वा महामते !।

का माता जनकः को वा को देशस्तव तव नाम किम् ॥ ४८ ॥

कस्मान्न शत्रुभिर्बद्धान्मृतानिवहतौजसः। कारुण्यादिहसम्प्राप्यसपत्नीकान्मुमोचयः
कुतो लब्धमिदंशौर्यधैर्यंतेजोबलोन्नतिः । जिगीषसीवलोकांस्त्रीन्सदेवासुरमानुषान्
अपि जन्मसहस्रेण तवानृण्यं महौजसः । कर्तुं नाहं समर्थोस्मि सहैभिर्दारबान्धवैः
इमान्पुत्रानिमाः पत्नीरिदं राज्यमिदंपुरम् । सर्वं विहायमच्चित्तं त्वय्येव प्रेमबन्धनम्
सर्व कथय मे तात! मत्प्राणपरिरक्षक !। एतासाममपत्नीना त्वदधीनंहिजीवितम्

सूत उवाच

इति पृष्टः स भद्रायुः स्वपित्रा तमभाषत । एष वैश्यसुतो राजन्सुनयोनाममत्सखा
अहमस्य गृहे रम्ये वसामि सहमातृकः । भद्रायुर्नाम तद्वृत्तं पश्चाद्विज्ञापयामि ते
पुरं प्रविश्य भद्रंते सदारःससुहृज्जनः । त्यक्त्वाभयमरातिभ्योविहरस्वयथासुखम्
नतान्मुञ्च रिपूंस्तावद्यावदागमनं मम । अहमद्य गमिष्यामि शीघ्रमात्मनिवेशनम्
इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य भद्रायुर्नृपनन्दनः । आजगामस्वभवनं मात्रे सर्वं न्यवेदयत्
सापिहृष्टास्वतनयंपरिरेभेऽश्रुलोचना । स च वैश्यपतिःप्रेम्णापरिष्वज्याभ्यपूजयत्

वज्रबाहुश्च राजेन्द्रः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ।

स्त्रीपुत्रामात्यसहितः प्रहर्षमतुलं ययौ ॥ ६० ॥
तस्यां निशायां व्युष्टायामृषभो योगिनां वरः ।
चन्द्राङ्गदं समागत्य सीमन्तिन्याः पतिं नृपम् ॥ ६१ ॥
भद्रायुषः समुत्पत्तिं तस्य कर्माप्यमानुषम् ।
आवेद्य रहसि प्रेम्णा त्वत्सुता कीर्त्तिमालिनीम् ॥ ६२ ॥
भद्रायुषेप्रयच्छेतिबोधयित्वाच नैषधम् । ऋषभोनिर्जगामाथ देशकालार्थतत्त्ववित्

विशेषकम्

अथ चन्द्राङ्गदोराजा मुहूर्त्तेमङ्गलोचिते । भद्रायुषंसमाहूयप्रायच्छत्कीर्त्तिमालिनीम्
कृतोद्वाहः स राजेन्द्रतनयः सह भार्यया । हेमासनस्थः शुशुभे रोहिण्येव निशाकरः
वज्रबाहुं तत्पितरं समाहूय स नैषधः ।
पुरं प्रवेश्य सामात्यः प्रत्युद्गम्याऽभ्यपूजयत् ॥ ६६ ॥
तत्रापश्यन्कृतोद्वाहं भद्रायुषमरिन्दमम् । पादयोः पतितं प्रेम्णा हर्षार्त्तं परिषस्वजे
एष मे प्राणदो वीर एष शत्रुनिषूदनः । अथाप्यज्ञातवंशोऽयं मयाऽनन्तपराक्रमः ॥
एष ते नृप जामाता चन्द्राङ्गद महाबलः ।
अस्य वंशमथोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६९ ॥
इत्थं दशार्णराजेन प्रार्थितो निषधाधिपः । विविक्त उपसंगम्य प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥
एष ते तनयो राजञ्छैशवे रोगपीडितः । त्वया वने परित्यक्तः सह मात्रा रुजार्तया
परिभ्रमन्ति विपिने सा नारी शिशुनाऽमुना ।
दैवाद्वैश्यगृहं प्राप्ता तेन वैश्येन रक्षिता ॥ ७२ ॥
अथासौ बहुरोगार्तो मृतस्तव कुमारकः । केनापि योगिराजेन मृतः सञ्जीवितःपुनः
ऋषभाख्यस्य तस्यैव प्रभावाच्छिवयोगिनः ।
रूपञ्च देवसदृश प्राप्तौ मातृकुमारकौ ॥ ७४ ॥
तेन दत्तेन खड्गेन शङ्खेन रिपुघातिना । जिगाय समरे शत्रूञ्छिववर्माभिरक्षितः ॥
द्विषट्सहस्रनागानां बलमेको बिभर्त्यसौ ।

सर्वविद्यासु निष्णातो मम जामातृतां गतः ॥ ७६ ॥

अतएनंसमादायमातरंचास्यसुव्रताम् । गच्छस्वनगरींराजन्प्राप्स्यसि श्रेयउत्तमम्

इति चन्द्राङ्गदः सर्वमाख्यायाऽन्तगृहे स्थिताम् ।

तस्याग्रपत्नीमाहूय दर्शयामास भूषिताम् ॥ ७८ ॥

इत्यादिसर्वमाकर्ण्यदृष्ट्वाच स महीमतिः । व्रीडितोनितरां मौढ्यात्स्वकृतंकर्मगर्हयन्

प्राप्तश्च परमानन्दं तयोर्दर्शनकौतुकात् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तावुभौ परिषस्वजे ॥

युग्मम्

एवंनिषधराजेनपूजितश्चाभिनन्दितः । सभोजयित्वातं सम्यक्स्वयञ्चसहमन्त्रिभिः

तामात्मनोग्रमहिषीं पुत्रं तमपितां स्नुषाम् । आदायसपरिवारो वज्रबाहुःपुरीं ययौ

स सम्भ्रमेणमहताभद्रायुः पितृमन्दिरम् । सम्प्राप्यपरमानन्दं चक्रे :सर्वपुरौकसाम्

कालेन दिवमारूढे पितरि प्राप्तयौवनः ।

भद्रायुः पृथिवीं सर्वां शशासाद्भुतविक्रमः ॥ ८४ ॥

मागधेशं हेमरथंमोचयामास बन्धनात् । सन्धायमैत्रींपरमां ब्रह्मर्षीणां च सन्निधौ

इत्थं त्रिलोकमहितां शिवयोगिपूजां कृत्वा पुरातनभवेऽपिस राजसूनुः ।

निस्तीर्य दुःसहविपद्गणमाप्तराज्यश्चन्द्राङ्गदस्य सुतया सह साधु रेमे ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे

भद्रायुविवाहकथनं नाम त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥

## चतुर्दशोऽध्यायः

### भद्रायुशिवप्रसादकथनम्

सूत उवाच

प्राप्तसिंहासनो वीरो भद्रायुः स महीपतिः । प्रविवेश वनं रम्यं कदाचिद्भार्यया सह
तस्मिन्विकसिताशोकप्रसूननवपल्लवे । प्रोत्फुल्लमल्लिकाखण्डकूजद्भ्रमरसङ्कुले ॥२॥
नवकेसरसौरभ्यबद्धरागिजनोत्सवे । सद्यः कोरकिताशोकतमालगहनान्तरे ॥ ३ ॥
प्रसूनप्रकरानम्रमाधवीवनमण्डपे । प्रवालकुसुमोद्द्योतचूतशाखिभिरञ्चिते ॥ ४ ॥

पुन्नागवनविभ्रान्तपुंस्कोकिलविराविणि ।
वसन्तसमये रम्ये विजहार स्त्रिया सह ॥ ५ ॥

अथाविदूरे क्रोशन्तौधावन्तौद्विजदम्पती । अन्वीयमानौ व्याघ्रेण ददर्श नृपसत्तमः
पाहिपाहि महाराज! हा राजन्करुणानिधे !। एष धावति शार्दूलोजग्धुमावांमहाजवः
एष पर्वतसङ्काशः सर्वप्राणिभयङ्करः । यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष भूपते ॥
इत्थमाक्रन्दितंश्रुत्वा स राजाधनुराददे । तावदागत्यशार्दूलो मध्ये जग्राहतांवधूम्

हा नाथ! नाथ! हा कान्त! हा शम्भो! जगतःपते !।
इति रोरूयमाणां तां यावज्जग्राह भीषणः ॥ १० ॥

तावत्सराजानिशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत् । नच तैर्व्यथेकिञ्चिद्गिरीन्द्रइववृष्टिभिः
स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञोस्त्रैरकृतव्यथः । बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रामतसत्वरः

व्याघ्रेणाऽपहृतां पत्नीं वीक्ष्य विप्रोऽतिदुःखितः ।
रुरोद हा प्रिये! बाले! हा कान्ते! हा पतिव्रते !॥ १३ ॥
एकं मामिह सन्त्यज्य कथं लोकान्तरंगता ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियां त्यक्त्वा कथं जीवितुमुत्सहे ॥ १४ ॥

राजन्क ते महास्त्राणि क ते श्लाघ्यंमहद्धनुः । क्कते द्वादशसाहस्रमहानागातिगंबलम्

किन्तेशङ्खेनखड्गेन किन्ते मन्त्रास्त्रविद्यया । किञ्च तेनप्रयत्नेन किंप्रभावेणभूयसा
तत्सर्वं विफलंजातं यच्चान्यस्त्वयितिष्ठति । यस्त्वंवनौकसंजन्तुं निवारयितुमक्षमः

क्षात्रस्याऽयं परो धर्मः क्षताद्यत्परिरक्षणम् ।
तस्मात्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम् ॥ १८ ॥

आर्तानांशरणार्तानांत्राणंकुर्वन्ति पार्थिवाः । प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विहीनामृतोपमाः
धनिनांदानहीनानांगार्हस्थ्याद्भिक्षुतावरा । आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणंवरम्
वरं विषादनंराज्ञो वरमग्नौ प्रवेशनम् । अनाथानां प्रपन्नानां कृपणानामरक्षणात् ॥

इत्थं विलपितं तस्य स्ववीर्यस्यच गर्हणम् ।
निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥ २२ ॥

अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात् । अद्य कीर्त्तिश्च मे नष्टा पातकं प्राप्तमुत्कटम्
धर्मःकालोचितोनष्टो मन्दभाग्यस्यदुर्मतेः । नूनं मे सम्पदोराज्यमायुर्यंक्षयमेष्यति
अपुंसा सम्पदो भोगाः पुत्रदारधनानिच । दैवेन क्षणमुद्यन्ति क्षणदस्तव्रजन्ति च
अतएनं द्विजन्मानंहतदारंशुचार्दितम् । गतशोकंकरिष्यामिदत्त्वा प्राणानपिप्रियान्

इति निश्चित्य मनसा भद्रायुर्नृपसत्तमः ।
पतित्वा पादयोस्तस्य बभाषे परिसांत्वयन् ॥ २७ ॥

कृपांकुरुमयिब्रह्मन्क्षत्रबन्धौहतौजसि । शोकंत्यज महाबुद्धे दास्याम्यथ तवेप्सितम्
इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदञ्च कलेवरम् । त्वदधीनमिदं सर्वं किं तेऽभिलषितं वद

ब्राह्मण उवाच

किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः ।
किं पुस्तकेन मूर्खस्य ह्यस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३० ॥

अतोऽहंगतपत्नीको भुक्तभोगोनकर्हिचित् । इमां तवाग्रमहिषीं कामार्थं दीयतांमम

राजोवाच

ब्रह्मन्किमेष धर्मस्ते किमेतद्गुरुशासनम् । अस्वर्ग्यमयशस्यं च परदाराभिमर्शनम्

दातारः सन्ति वित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम् ।

आत्मदेहस्य वा कापि न कलत्रस्य कर्हिचित् ॥ ३३ ॥
परदारोपभोगेन यत्पापं समुपार्जितम् । न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥

ब्राह्मण उवाच

अपि ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् । तपसा नाशयिष्यामि किंपुनः पारदारिकम्
तस्मात्प्रयच्छ मे भार्यामिमां त्वं ध्रुवमन्यथा ॥ ३५ ॥
अरक्षणाद्भयार्तानांगन्तासिनिरयं ध्रुवम् । इति विप्रगिराभीतश्चिन्तयामासपार्थिवः
अरक्षणान्महत्पापं पत्नीदानं ततोवरम् ॥ ३६ ॥
अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्बिषः ।
सद्यो वह्निं प्रवेक्ष्यामि कीर्त्तिश्च निहिता भवेत् ॥ ३७ ॥
इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् ।
तं ब्राह्मणं समाहूय ददौ पत्नीं सहोदकाम् ॥ ३८ ॥
स्वं स्नातःशुचिर्भूत्वाप्रणम्यविबुधेश्वरान् । तमग्निंद्विःपरिक्रम्यशिवंदध्यौसमाहितः
तमथाग्नौपतिष्यन्तंस्वपदासक्तचेतसम् । प्रत्यदृश्यतविश्वेशः प्रादुर्भूतोजगत्पतिः
तमीश्वरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् ।
आलम्बितापिङ्गजटाकलापं मध्यन्दिनं भास्करकोटितेजसम् ॥ ४१ ॥
मृणालगौरं गजचर्मवाससं गङ्गातरङ्गोक्षितमौलिदेशम् ।
नागेन्द्रहारावलिकङ्कणोर्मिकाकिरीटकोट्यङ्गदकुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥
त्रिशूलखट्वाङ्गकुठारचर्ममृगाभयेष्टार्थपिनाकहस्तम् ।
वृषोपरिस्थं शितकण्ठमीशं प्रोद्भूतमग्रे नृपतिर्ददर्श ॥ ४३ ॥
अथाम्बराद्द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः । प्रणेदुर्देवतूर्याणि देवाश्च ननृतुर्जगुः ॥
तत्राजग्मुर्नारदाद्याः सनकाद्याः सुरर्षयः । इन्द्रादयश्च लोकेशास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः
तेषां मध्ये समासीनो महादेवः सहोमया । ववर्ष करुणासारं भक्तिनम्रे महीपतौ
तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुपरिप्लुताङ्गः ।
प्रहृष्टरोमा गलगद्गदाक्षरं तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥

राजोवाच

नतोऽस्म्यहं देवमनाथमव्ययं प्रधानमव्यक्तगुणं महान्तम् ।
अकारणं कारणकारणं परं शिवं चिदानन्दमयं प्रशान्तम् ॥ ४८ ॥
त्वं विश्वसाक्षी जगतोऽस्य कर्त्ता विरूढधामा हृदि सन्निविष्टः ।
अतो विचिन्वन्ति विधौ विपश्चितो योगैरनेकैः कृतचित्तरोधैः ॥ ४९ ॥
एकात्मतां भावयतां त्वमेको नानाधियां यस्त्वमनेकरूपः ।
अतीन्द्रियं साध्व्युदयास्तविभ्रमं मनःपथात्संह्रियते पदं ते ॥ ५० ॥
तं त्वां दुरापं वचसो धियश्च व्यपेतमोहं परमात्मरूपम् ।
गुणैकनिष्ठाः प्रकृतौ विलीनाः कथं वपुः स्तोतुमलं गिरो मे ॥ ५१ ॥
तथापि भक्त्याश्रयतामुपेयुस्तवाङ्घ्रिपद्मं प्रणतार्तिभञ्जनम् ।
सुघोरसंसारदवाग्निपीडितो भजामि नित्यं भवभीतिशान्तये ॥ ५२ ॥

नमस्ते देवदेवाय महादेवाय शम्भवे । नमस्त्रिमूर्त्तिरूपाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥
नमो विश्वादिरूपाय विश्वप्रथमसाक्षिणे ।
नमः सन्मात्रतत्त्वाय बोधानन्दघनाय च ॥ ५४ ॥

सर्वक्षेत्रनिवासाय क्षेत्रभिन्नात्मशक्तये । अशक्ताय नमस्तुभ्यं शक्ताभासाय भूयसे
निराभासाय नित्याय सत्यज्ञानान्तरात्मने । विशुद्धाय विदूराय विमुक्ताशेषकर्मणे
नमो वेदान्तवेद्याय वेदमूलनिवासिने ।
नमो विविक्तचेष्टाय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ ५७ ॥

नमः कल्याणवीर्याय कल्याणफलदायिने । नमोऽनन्ताय महते शान्तायशिवरूपिणे
अघोराय सुघोराय घोराघौघविदारिणे । भर्गाय भवबीजानां भञ्जनाय गरीयसे
नमो विध्वस्तमोहाय विशदात्मगुणाय च ।

पाहिमांजगतांनाथ! पाहिशङ्कर! शाश्वत !। पाहिरुद्र!विरूपाक्ष!पाहिमृत्युञ्जयाव्यय
शम्भो! शशाङ्ककृतशेखर! शान्तमूर्त्ते! गौरीश! गोपतिनिशापहुताशनेत्र !।
गङ्गाधरान्धकविदारण! पुण्यकीर्त्ते ! भूतेश! भूधरनिवास! सदा नमस्ते ॥ ६१

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवाम्राज्ञा देवो महेश्वरः । प्रसन्नः सह पार्वत्याप्रत्युवाच दयानिधिः

ईश्वर उवाच

राजंस्ते परितुष्टोऽस्मि भक्त्या पुण्यस्तवेन च ।
अनन्यचेता यो नित्यं सदा मां पर्यपूजयः ॥ ६३ ॥

तवभावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाऽहमागतः । व्याघ्रेण यापरिग्रस्तासैषादेवीगिरीन्द्रजा
व्याघ्रो मायामतो यस्तेशरैरक्षतविग्रहः । धीरतांद्रष्टुकामस्तेपत्नीं याचितवानहम्

अस्याश्च कीर्तिमालिन्यास्तव भक्त्या च मानद !।
तुष्टोऽहं सम्प्रयच्छामि वरं जग्य दुर्लभम् ॥ ६६ ॥

राजोवाच

एष एव वरो देव! यद्भवान्परमेश्वरः । भवतापपरीतस्य मम प्रत्यक्षतांगतः ॥ ६७ ॥
नान्यं वरं वृणे देव! भवतो वरदर्पभात् । अहं च येयंसा राज्ञी मम मातापि मत्पिता
वैश्यःपद्माकरो नाम तत्पुत्रःसुनयाभिधः । सर्वानेतान्महादेव! सदात्वत्पार्श्वगान्कुरु

सूत उवाच

अथ राज्ञीमहाभागाप्रणता कीर्त्तिमालिनी । भक्त्याप्रसाद्यगिरिशंययाचे वरमुत्तमम्

राज्ञ्युवाच

चन्द्राङ्गदोममपितामातासीमन्तिनी च मे । तयोर्याचेमहादेवत्वत्पार्श्वे!सन्निधिंसदा
एवमस्त्वितिगौरीशःप्रसन्नोभक्तवत्सलः । तयोःकामवरंदत्त्वाक्षणादन्तर्हितोऽभवत्

सोऽपि राजा सुरैः सार्धं प्रसादं प्राप्य शूलिनः ।
सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्प्रियान् ॥ ७३ ॥

कृत्वा वर्षायुतंराज्यमव्याहतबलोन्नतिः । राज्यं पुत्रेषुविन्यस्यभेजे शम्भोःपरं पदम्

चन्द्राङ्गदोपि राजेन्द्रा राज्ञी सीमन्तिनी च सा ।
भक्त्या सम्पूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ७५ ॥

एतत्पवित्रमघनाशकरं विचित्रं शम्भोर्गुणानुकथनं परमं रहस्यम् ।

यः श्रावयेद्बुधजनान्प्रयतः पठेद्वा सम्प्राप्य भोगविभवं शिवमेति सोऽन्ते ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुशिवप्रसादकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## पञ्चदशोऽध्यायः

### वामदेवाख्यानवर्णनपूर्वकभस्ममाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

ऋषभस्यानुभावोऽयं वर्णितः शिवयोगिनः ।
अथाऽन्यस्यापि वक्ष्यामि प्रभावं शिवयोगिनः ॥ १ ॥
भस्मनश्चापि माहात्म्यं वर्णयामि समासतः ।
कृत्यकृत्या भविष्यन्ति यच्छ्रुत्वा पापिनो जनाः ॥ २ ॥
अस्त्येको वामदेवाख्यः शिवयोगी महातपाः ।
निर्द्वन्द्वो निर्गुणः शान्तो निःसङ्गः समदर्शनः ॥ ३ ॥
आत्मारामो जितक्रोधो गृहदारविवर्जितः । अतर्कितगतिर्मौनी सन्तुष्टो निष्परिग्रहः
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः ।
वल्कलाजिनसम्वीतो भिक्षामात्रपरिग्रहः ॥ ५ ॥
स एकदा चरंल्लोके सर्वानुग्रहतत्परः । क्रौञ्चारण्यं महाघोरं प्रविवेश यदृच्छया ॥
तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये तिष्ठत्येकोऽतिभीषणः ।
क्षुत्तृषाकुलितो नित्यं यः कश्चिद् ब्रह्मराक्षसः ॥ ७ ॥
तं प्रविष्टं शिवात्मानं स दृष्ट्वा ब्रह्मराक्षसः । अभिदुद्राव वेगेन जग्धुं क्षुत्परिपीडितः
व्यात्ताननं महाकायं भीमदंष्ट्रं भयानकम् ।

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य योगीशो न चचाल सः ।
अथाभिद्रुत्य तरसा स घोरो वनगोचरः ।
दोर्भ्यां निष्पीड्य जग्राह निष्कम्पं शिवयोगिनम् ॥ १० ॥
तदङ्गस्पर्शनादेव सद्यो विध्वस्तकिल्बिषः ।
स ब्रह्मराक्षसो घोरो विषण्णः स्मृतिमाययौ ॥ ११ ॥

यथाचिन्तामणिस्पृष्टालोहंकाञ्चनतांव्रजेत् ।यथाजम्बूनदींप्राप्यमृत्तिकास्वर्णतांव्रजेत्
यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम् ।
यथाऽमृतं सकृत्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

तथैव हि महात्मानोदर्शनस्पर्शनादिभिः । सद्यःपुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गोदुर्लभोह्यतः
यः पूर्वं क्षुत्पिपासार्तोघोरात्माविपिनेचरः । स सद्यस्तृप्तिमायातःपूर्णानन्दो बभूवह

तद्गात्रलग्नसितभस्मकणानुविद्धः सद्योविधूतघनपापतमःस्वभावः ।
सम्प्राप्तपूर्वभवसंस्मृतिरुग्रकार्यस्तत्पादपद्मयुगुले प्रणतो बभाषे ॥ १६ ॥

राक्षस उवाच

प्रसीदमेमहयोगिन्प्रसीद करुणानिधे !। प्रसीदभवतप्तानामानन्दामृतवारिधे !॥ १७॥
क्वाऽहं पापमतिर्घोरः सर्वप्राणिभयङ्करः । क्व ते महानुभावस्य दर्शनं करुणात्मनः
उद्धरोद्धर मां घोरे पतितंदुःखसागरे । तव सन्निधिमात्रेण महानन्दोऽभिवर्धते

वामदेव उवाच

कस्त्वं वनेचरो घोरो राक्षसोऽत्र किमास्थितः ।
कथमेतां महाघोरां कष्टां गतिमवाप्तवान् ॥ २० ॥

राक्षस उवाच

राक्षसोऽहमितः पूर्वं पञ्चविंशतिमे भवे । गोप्ता यवनराष्ट्रस्यदुर्जयो नाम वीर्यवान्
सोऽहं दुरात्मा पापीयान्स्वैरचारी मदोत्कटः ।
दण्डधारी दुराचारः प्रचण्डो निर्घृणः खलः ॥ २२ ॥
युवा बहुकलत्रोऽपि कामासक्तोऽजितेन्द्रियः ।

इमां पापीयसीं चेष्टां पुनरेकां गतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥

प्रत्यहं नूतनामन्यां नारींभोक्तुमनाःसदा । आहृताःसर्वदेशेभ्यो नार्या भृत्यैर्मदाज्ञया

भुक्त्वा भुक्त्वा परित्यक्तामेकामेकां दिने दिने ।

अन्तर्गृहेषु संस्थाप्य पुनरन्याः स्त्रियो धृताः ॥ २५ ॥

एवं स्वराष्ट्रात्परराष्ट्रतश्च देशाकरग्रामपुरव्रजेभ्यः ।

आहृत्य नार्यो रमिता दिनेदिने भुक्ता पुनः काऽपि न भुज्यतेमया ॥ २६

अथान्यैश्च न भुज्यन्ते मया भुक्तास्तथा स्त्रियः ।

अन्तर्गृहेषु निहिताः शोचन्ते च दिवानिशम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यदानार्योमयाहृताः । मम राज्येस्थिता विप्राःसहदारैः प्रदुद्रुवुः

सभर्तृकाश्चकान्याश्चविधवाश्चरजस्वलाः । आहृत्यनार्योरमितामया कामहतात्मना

त्रिशतंद्विजनारीणांराजस्त्रीणांचतुःशतम् । षट्शतंवैश्यनारीणांसहस्रंशूद्रयोषिताम्

शतं चाण्डालनारीणां पुलिन्दीनां सहस्रकम् ।

शैलूषीणां पञ्चशतं रजकीनां चतुःशतम् ॥ ३१ ॥

असंख्या वारमुख्याश्च मया भुक्ता दुरात्मना ।

तथाऽपि मयि कामस्य न तृप्तिः समजायत ॥ ३२ ॥

एवं दुर्विषयासक्तं मत्तं पानरतं सदा । यौवनेऽपि महारोगा विविशुर्यक्ष्मकादयः

रोगार्दितोऽनपत्यश्च शत्रुभिश्चापि पीडितः ।

त्यक्तोमात्यैश्च भृत्यैश्च मृतोऽहं स्वेन कर्मणा ॥ ३४ ॥

आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिंव्रजेत् ।

स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम् ॥३५ ॥

अथाहं किङ्करैर्याम्यैर्नीतो वैवस्वतालयम् । ततोऽहं नरकेघोरेतत्कुण्डेविनिपातितः

तत्राऽहं नरके घोरे वर्षाणामयुतत्रयम् । रेतः पिबन्पीड्यमानोन्यवसं यमकिङ्करैः

ततः पापावशेषेणपिशाचो निर्जने वने । सहस्रशिश्नः सञ्जातो नित्यंक्षुत्तृषयाकुलः

पैशाचीं गतिमाश्रित्य नीतं दिव्यं शरच्छतम् ।

द्वितीयेऽहं भवे जातो व्याघ्रः प्राणिभयंकरः ॥ ३९ ॥
तृतीयेऽजगरो घोरश्चतुर्थेऽहंभवेवृकः । पञ्चमेविड्वराहश्च षष्ठेऽहं कृकलासकः ॥४०॥
सप्तमेऽहं सारमेयःसृगालश्चाष्टमे भवे । नवमे गवयोभीमोमृगोऽहंदशमे भवे ॥ ४१॥
एकादशे मर्कटश्चगृध्रोऽहंद्वादशे भवे । त्रयोदशेऽहं नकुलोवायसश्चचतुर्दशे ॥ ४२ ॥
अच्छभल्लः पञ्चदशेषोडशेवनकुक्कुटः । गर्दभोऽहंसप्तदशेमार्जारोऽष्टादशेभवे ॥ ४३
एकोनविंशेमण्डूकःकूर्मोविंशतिमे भवे । एकविंशे भवेमत्स्योद्वाविंशेमूषकोऽभवम्
उलूकोऽहं त्रयोविंशे चतुर्विंशे वनद्विपः । पञ्चविंशे भवेचास्मिञ्जातोहं ब्रह्मराक्षसः
क्षुत्परीतो निराहारो वसाम्यत्र महावने । इदानीमागतं दृष्ट्वा भवन्तं जग्धुमुत्सुकः
त्वद्देहस्पर्शमात्रेण जाता पूर्वभवस्मृतिः ॥ ४६ ॥
गतजन्मसहस्राणि स्मराम्यद्य त्वदन्तिके । निर्वेदश्च परो जातः प्रसन्नं हृदयं च मे
ईदृशोऽयं प्रभावस्ते कथंलब्धोमहामते !। तपसा वापितीव्रेणकिमु,तीर्थनिषेवणात्
योगेन देवशक्त्या वामन्त्रैर्वानन्तशक्तिभिः । तत्त्वतो ब्रूहिभगवन्स्त्वामहं शरणंगतः

वामदेव उवाच

एष मद्गात्रलग्नस्य प्रभावो भस्मनोमहान् । यत्सम्पर्कात्तमोवृत्तेस्तवेयं मतिरुत्तमा
को वेद भस्मसामर्थ्यं महादेवादृते परः ।
दुर्विभाव्यं यथा शम्भोर्माहात्म्यं भस्मनस्तथा ॥ ५१ ॥
पुरा भवादृशः कश्चिद्ब्राह्मणोधर्मवर्जितः । द्राविडेषु स्थितोमूढःकर्मणाशूद्रतां गतः
चौर्यवृत्तिर्निष्कृतिकोवृषलीरतिलालसः । कदाचिज्जारतां प्राप्तः शूद्रेण निहतोनिशि
तच्छवस्य बहिर्ग्रामात्क्षिप्तस्य प्रेतकर्मणः ।
चचार सारमेयोऽङ्गेभस्मपादो यदृच्छया ॥ ५४ ॥
अथ तं नरके घोरे पतितं शिवकिङ्कराः । निन्युर्विमानमारोप्य प्रसह्य यमकिङ्करान्
शिवदूतान्समभ्येत्य यमोपि परिपृष्टवान् । महापातककर्त्तारं कथमेनं निनीषथ
अथोचुःशिवदूतास्ते पश्याऽस्य शवविग्रहम् ।
वक्षोललाटदोर्मूलान्यङ्कितानि सुभस्मना ॥ ५७ ॥

अतएनंसमानेतुमागताःशिवशासनात् । नास्मान्निषेद्धु शक्तोसिमास्त्वत्रतवसंशयः
इत्याभाष्य यमंशम्भोर्दूतास्तंब्राह्मणंततः । पश्यतांसर्वलोकानांनिन्युर्लोकमनामयम्
तस्मादशेषपापानां सद्यः संशोधनं परम् । शम्भोर्विभूषणंभस्म सततं ध्रियते मर्त्या

इत्थं निशम्य माहात्म्यं भस्मनो ब्रह्मराक्षसः ।
विस्तरेण पुनः श्रोतुमौत्कण्ठ्यादित्यभाषत ॥ ६१ ॥
साधुसाधु महायोगिन्धन्योऽस्मि तव दर्शनात् ।
मां विमोचय धर्मात्मन्! घोरादस्मात्कुजन्मनः ॥ ६२ ॥

किञ्चदस्तीहमे भातिमयापुण्यंपुराकृतम् । अतोहंत्वत्प्रसादेनमुक्तोस्म्यद्यद्विजोत्तम!

एकस्मै शिवभक्ताय तस्मिन्पार्थिवजन्मनि ।
भूमिर्वृत्तिकरी दत्ता सस्यारामान्विता मया ॥ ६४ ॥

यमेनापि तदैवोक्तं पञ्चविंशतिमे भवे । कस्यचिद्योगिनः सङ्गान्मोक्ष्यसेसंसृतेरिति
तदद्यफलितंपुण्यं यत्किञ्चित्प्राग्भवार्जितम् । अतोनिर्मनुजारण्येसम्प्राप्तस्तवसङ्गमः
अतो मां घोरपाप्मानंसंसरन्तंकुजन्मनि । समुद्धरकृपासिन्धोदत्त्वाभस्मसमन्त्रकम्

कथं धार्यमिदं भस्म को मन्त्रः को विधिः शुभः ।
कः कालः कश्च वा देशः सर्वं कथय मे गुरो !॥ ६८ ॥

भवादृशामहात्मानःसदालोकहितेरताः । नात्मानोहितमिच्छन्तिकल्पवृक्षसधर्मिणः

सूत उवाच

इत्युक्तस्तेन योगीशो घोरेण वनचारिणा ।
भूयोऽपि भस्ममाहात्म्यं वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ ७० ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायांतृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे भस्ममाहात्म्यकथनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

# षोडशोऽध्यायः

## भस्ममाहात्म्यवर्णनेत्रिपुण्ड्रमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः श्रेष्ठा! वामदेवस्य भाषितम् ॥ १ ॥

वामदेव उवाच

पुरामन्दरशैलेन्द्रे नानाधातुविचित्रिते । नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाद्रुमलताकुले ॥
कालाग्निरुद्रो भगवान्कदाचिद्विश्ववन्दितः । समाससादभूतेशःस्वेच्छयापरमेश्वरः
समन्तात्समुपातिष्ठन्रुद्राणां शतकोटयः । तेषां मध्येसमासीनोदेवदेवस्त्रिलोचनः
तत्रागच्छत्सुरश्रेष्ठो देवैः सह पुरन्दरः । तथाग्निर्वरुणो वायुर्यमोवैवस्वतस्तथा ॥

गन्धर्वाश्चित्रसेनाद्याः खेचराःपन्नगादयः ।
विद्याधराः किम्पुरुषाः सिद्धाः साध्याश्च गुह्यकाः ॥ ६ ॥

ब्रह्मर्षयो वसिष्ठाद्या नारदाद्याः सुरर्षयः । पितरश्च महात्मानो दक्षाद्याश्च प्रजेश्वराः

उर्वश्याद्याश्चाप्सरसश्चण्डिकाद्याश्च मातरः ।
आदित्या वसवो दस्रौ विश्वेदेवा महौजसः ॥ ८ ॥

अथान्येभूतपतयो लोकसंहरणे क्षमाः । महाकालश्च नन्दी च तथा वै शङ्खपालकौ
वीरभद्रो महातेजाः शङ्कुकर्णो महाबलः । घण्टाकर्णश्च दुर्धर्षो मणिभद्रो वृकोदरः
कुण्डोदरश्च विकटास्तथाकुम्भोदरोबली । मन्दोदरःकर्णधारःकेतुर्भृङ्गीरिटिस्तथा

भूतनाथास्तथाऽन्ये च महाकाया महौजसः ।
कृष्णवर्णास्तथा श्वेताःकेचिन्मण्डूकसप्रभाः ॥ १२ ॥

हरिताधूसराधूम्राःकर्बुराःपीतलोहिताः। चित्रवर्णाविचित्राङ्गाश्चित्रलीलामदोत्कटाः
नानायुधोद्यतकरा नानावाहनभूषणाः । केचिद्व्याघ्रमुखाःकेचित्सूकरास्यामृगाननाः
केचिच्चनक्रवदनाः सारमेयमुखाःपरे । सृगालवदनाश्चान्य उष्ट्राभवदनाः परे ॥ १५ ॥

केचिच्छरभभेरुण्डसिंहाश्वोष्ट्रवृकाननाः ।
एकवक्त्रा द्विवक्त्राश्च त्रिमुखाश्चैव निर्मुखाः ॥ १६ ॥

एकहस्तास्त्रिहस्ताश्च पञ्चहस्तास्त्वहस्तकाः । अपादाबहुपादाश्चबहुकर्णैककर्णकाः
एकनेत्राश्चतुर्नेत्रा दीर्घाःकेचन वामनाः । समन्तात्परिवार्येशं भूतनाथमुपासते ॥
अथाशच्छन्महातेजा मुनीनांप्रवरः सुधीः । सनत्कुमारोधर्मात्मातंद्रष्टुं जगदीश्वरम्
तं देवदेवं विश्वेशं सूर्यकोटिसमप्रभम् । महाप्रलयसंक्षुब्धसमार्णवघनस्वनम् ॥

सम्वर्त्ताग्निसमाटोपं जटामण्डलशोभितम् ।
अक्षीणभालनयनं ज्वालाम्लानमुखत्विषम् ॥ २१ ॥

प्रदीप्तचूडामणिना शशिखण्डेन शोभितम् । तक्षकं वामकर्णेन दक्षिणेनचवासुकिम्
बिभ्राणं कुण्डलयुगं नीलरत्नमहाहनुम् । नीलग्रीवं महाबाहुं नागहारविराजितम् ॥
फणिराजपरिभ्राजत्कङ्कणाङ्गदमुद्रिकम् । अनन्तगुणसाहस्रमणिरञ्जितमेखलम् ॥२४
व्याघ्रचर्मपरीधानं घण्टादर्पणभूषितम् । कर्कोटकमहापद्मधृतराष्ट्रधनञ्जयैः ॥ २५ ॥
कूजन्नूपुरसङ्घुष्टपादपद्मविराजितम् । प्रासतोमरखट्वाङ्गशूलटङ्कधनुर्धरम् ॥ २६
अप्रधृष्यमनिर्देश्यमचिन्त्याकारमीश्वरम् । रत्नसिंहासनारूढं प्रणनाम महामुनिः ॥

तं भक्तिभारोच्छ्वसितान्तरात्मा संस्तूय वाग्भिः श्रुतिसम्मिताभिः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयनम्रकन्धरः पप्रच्छ धर्मानखिलाञ्छुभप्रदान् ॥ २८ ॥

यान्यानपृच्छत मुनिस्तांस्तान्धर्मानशेषतः । प्रोवाचभगवान्रुद्रोभूयोमुनिरपृच्छत

सनत्कुमार उवाच

श्रुतास्ते भगवन्धर्मास्त्वन्मुखान्मुक्तिहेतवः ।
यैर्मुक्तपापा मनुजास्तरिष्यन्ति भवार्णवम् ॥ ३० ॥

अथापरं विभो!धर्ममल्पायासंमहाफलम् । ब्रूहिकारुण्यतोमह्यंसद्योमुक्तिप्रदं नृणाम्

अभ्यासबहुला धर्माः शास्त्रदृष्टाः सहस्रशः ।
सम्यक्संसेविताः कालात्सिद्धिं यच्छन्ति वा न वा ॥ ३२ ॥
अतो लोकहितं गुह्यं भुक्तिमुक्त्योश्च साधनम् ।

धर्मं विज्ञातुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर !॥ ३३ ॥

श्रीरुद्र उवाच

सर्वेषामपिधर्माणामुत्तमं श्रुतिचोदितम् । रहस्यंसर्वजन्तूनांयत्त्रिपुण्ड्रस्यधारणम्

सनत्कुमार उवाच

त्रिपुण्ड्रस्यविधिंब्रूहिभगवञ्जगतांपते । तत्त्वतोज्ञातुमिच्छामित्वत्प्रसादान्महेश्वर!

कति स्थानानि किं द्रव्यं का शक्तिः का च देवता ।

किं प्रमाणं च कः कर्त्ता के मन्त्रास्तस्य किम्फलम् ॥ ३६ ॥

एतत्सर्वमशेषेण त्रिपुण्ड्रस्य च लक्षणम् । ब्रूहि मे जगतांनाथ लोकानुग्रहकाम्यया

श्रीरुद्र उवाच

आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसम्भवम् । तदेव द्रव्यमित्युक्तंत्रिपुण्ड्रस्यमहामुने!

सद्योजातादिभिर्ब्रह्ममयैर्मन्त्रैश्चपञ्चभिः । परिगृह्याग्निरित्यादिमन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत्

मानस्तोकेति सम्मृज्य शिरो लिम्पेच्च त्र्यम्बकम् ।

त्रियायुषादिभिर्मन्त्रैर्ललाटे च भुजद्वये ॥

स्कन्धे च लेपयेद्भस्म सजलं मन्त्रभावितम् ॥ ४० ॥

तिस्रोरेखा भवन्त्येषु स्थानेषुमुनिपुङ्गव ! । भ्रुवोर्मध्यंसमारभ्ययावदन्तोभ्रुवोर्भवेत्

मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्येतुप्रतिलोमतः । अङ्गुष्ठेनकृतारेखा त्रिपुण्ड्रस्याभिधीयते

तिसृणामपि रेखायां प्रत्येकं नवदेवता । अकारो गार्हपत्यश्च ऋग्भूर्लोको रजस्तथा

आत्मा चैव क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च । महादेवस्तु रेखायाः प्रथमायास्तुदेवता

उकारो दक्षिणाग्निश्च नभः सत्त्वं यजुस्तथा ।

मध्यन्दिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मकौ ॥ ४५ ॥

महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता । मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमो दिवः

ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं तथा । शिवश्चेति तृतीयाया रेखायाश्चाधिदेवता

एता नित्यं नमस्कृत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सुधीः । महेश्वरव्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्त्तितम्

मुक्तिकामैर्नरैःसेव्यंपुनस्तेषां न सम्भवः । त्रिपुण्ड्रंकुरुतेयस्तु भस्मनाविधिपूर्वकम्

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेववा । महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः

तथान्यैःक्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकैः ।

वीरहत्याभ्रूणहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५१ ॥

अमन्त्रेणापियः कुर्यादज्ञात्वामहिमोन्नतिम् । त्रिपुण्ड्रम्भालपटलेमुच्यतेसर्वपातकैः
परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम् । परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ॥ ५३ ॥
सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च । असत्यवादपैशुन्यं पारुष्यं वेदविक्रयः ॥

कूटसाक्ष्यं व्रतत्यागः कैतवं नीचसेवनम् ॥ ५४ ॥

गोभूहिरण्यमहिषीतिलकम्बलवाससाम् । अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्चपरिग्रहः
दासीवेश्याभुजङ्गेषु वृषलीषु नटीषु च । रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गमः
मांसचर्मरसादीनां लवणस्यच विक्रयः । एवमादीन्यसंख्यानिपापानिविविधानिच

सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ।

शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित् ॥ ५८ ॥

निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ।

रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ५९ ॥

स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमोभवेत् ।

यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन्गङ्गाद्याः सरितश्च याः ॥ ६० ॥

स्नातो भवति सर्वत्र ललाटेयस्त्रिपुण्ड्रधृक् । सप्तकोटिमहामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरःसराः
तथान्येकोटिशोमन्त्राःशैवाःकैवल्यहेतवः । तेसर्वेयेनजप्ताःस्युर्योबिभर्तित्रिपुण्ड्रकम्
सहस्रंपूर्वजातानांसहस्रंचजनिष्यताम् । स्ववंशजानां मर्त्यानामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रधृक्
इहभुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः । जीवितान्तेचमरणं सुखेनैवप्रपद्यते
अष्टैश्वर्यगुणोपेतंप्राप्यदिव्यं वपुः शुभम् । दिव्यंविमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसेवितः

विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ।

इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥

भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पुरेषु च । ब्रह्मणःपदमासाद्य तत्रकल्पशतंरमेत्

विष्णोर्लोके च रमते यावद् ब्रह्मशतत्रयम् । ॥ ६८ ॥

शिवलोकं ततः प्राप्य रमतेकालमक्षयम् । शिवसायुज्यमाप्नोतिनसभूयोऽभिजायते
सर्वोपनिषदां सारं समालोक्य मुहुर्मुहुः । इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम्
एतत्त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात्कथितंमया । रहस्यं सर्वभूतानां गोपनीयमिदं त्वया
इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत । सनत्कुमारोऽपिमुनिर्जगामब्रह्मणःपदम्

तवापि भस्मसम्पर्कात्सञ्जाता विमला मतिः ।
त्वमपि श्रद्धया पुण्यं धारयस्व त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७३ ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वावामदेवस्तुशिवयोगी महातपाः । अभिमन्त्र्य ददौ भस्मघोरायब्रह्मरक्षसे
तेनासौ भालपटले चक्रे तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् । ब्रह्मराक्षसतासद्योजहौतस्यानुभावतः
सबभौसूर्यसङ्काशस्तेजोमण्डलमण्डितः । दिव्यावयवरूपश्चदिव्यमाल्याम्बरोज्ज्वलः

भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य तं गुरुं शिवयोगिनम् ।
दिव्यं विमानमारुह्य पुण्यलोकाञ्जगाम सः ॥ ७७ ॥
वामदेवो महायोगी दत्त्वा तस्मै पराङ्गतिम् ।
चचार लोके गूढात्मा साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ ७८ ॥

य एतद्भस्ममाहात्म्यं त्रिपुण्ड्रंश्टणुयान्नरः । श्रावयेद्वापठेद्वापिस हि यातिपराङ्गतिम्

कथयति शिवकीर्तिं संसृतेर्मुक्तिहेतुं
प्रणमति शिवयोगिध्येयमीशाङ्घ्रिपद्मम् ।
रचयति शिवभक्तोद्भालि भाले त्रिपुण्ड्रं
न पुनरिह जनन्या गर्भवासं भजेत्सः ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
भस्ममाहात्म्यकथने त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यवर्णनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः

### भस्ममाहात्म्यवर्णनेपाञ्चालभृत्यशबराख्यानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः । नृणांकृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥

यथान्यजनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः । नृणां कृतोपदेशानांसिद्धिर्भवतिकादृशी

सूत उवाच

श्रद्धैवसर्वधर्मस्य चातीवहितकारिणी । श्रद्धयैवनृणां सिद्धिर्जायतेलोकयोर्द्वयोः

श्रद्धया भजतः पुंसः शिलाऽपि फलदायिनी ।

मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः ॥ ४ ॥

श्रद्धयापठितोमन्त्रस्त्वबद्धोपिफलप्रदः । श्रद्धयापूजितोदेवोनीचस्यापिफलप्रदः

अश्रद्धया कृता पूजादानंयज्ञस्तपोव्रतम् । सर्वंनिष्फलतांयातिपुष्पं वन्ध्यतरोरिव

सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः । परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजेगुरौ । यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवतितादृशी

अतो भावमयं विश्वं पुण्यं पापञ्च भावतः । ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन

अत्रेदं परमाश्चर्यमाख्यानमनुवर्ण्यते । अश्रद्धा सर्वमर्त्यानां येन सद्यो निवर्तते ॥

आसीत्पाञ्चालराजस्य सिंहकेतुरिति श्रुतः । पुत्रः सर्वगुणोपेतः क्षात्रधर्मरतः सदा

स एकदा कतिपयैर्भृत्यैर्युक्तो महाबलः । जगाम मृगयाहेतोर्बहुसत्त्वान्वितं वनम्

तद्भृत्यः शबरः कश्चिद्विचरन्मृगयां वने । ददर्शजीर्णं स्फुटितं पतितं देवतालयम्

तत्राऽपश्यद्भिन्नपीठं पतितं स्थण्डिलोपरि ।

शिवलिङ्गमृजु सूक्ष्मं मूर्तं भाग्यमिवात्मनः ॥ १४ ॥

स समादाय वेगेन पूर्वकर्मप्रचोदितः । तस्मै सन्दर्शयामास राजपुत्राय धीमते ॥१५

पश्येदं रुचिरं लिङ्गं मया दृष्टमिह प्रभो ॥ तदेतत्पूजयिष्यामि यथाविभवमादरात्

अस्य पूजाविधिं ब्रूहि यथा देवोमहेश्वरः । अमन्त्रश्च मन्त्रश्चैः प्रीतोभवतिपूजितः
इति तेन निषादेन पृष्टः पार्थिवनन्दनः । प्रत्युवाच प्रहस्यैनं परिहासविचक्षणः॥
सङ्कल्पेन सदा कुर्यादभिषेकं नवाम्भसा । उपवेश्यासने शुद्धे शुभैर्गन्धाक्षतैर्नवैः ॥

वन्यैः पत्रैश्च कुसुमैर्धूपैर्दीपैश्च पूजयेत् ॥ १६ ॥

चिताभस्मोपहारं च प्रथमं परिकल्पयेत् । आत्मोपभोग्येनान्नेन नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः
पुनश्च धूपदीपादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् । नृत्यवादित्रगीतादीन्यथावत्परिकल्पयेत् ॥
नमस्कृत्वातु विधिवत्प्रसादंधारयेद्बुधः । एष साधारणःप्रोक्तःशिवपूजाविधिस्तव

चिताभस्मोपहारेण सद्यस्तुष्यति शङ्करः ॥ २३ ॥

सूत उवाच

परिहासरसेनेत्थंशासितःस्वामिनाऽमुना । स चण्डकाख्यशबरोमूर्ध्नाजग्राहतद्वचः
ततः स्वभवनं प्राप्य लिङ्गमूर्त्तिं महेश्वरम् । प्रत्यहं पूजयामासचिताभस्मोपहारकृत्

यच्चात्मनः प्रियं वस्तु गन्धपुष्पाक्षतादिकम् ।

निवेद्य शम्भवे नित्यमुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥ २६ ॥

एवं महेश्वरं भक्त्या सह पत्न्याभ्यपूजयत् । शबरःसुखमासाद्यनिनायकतिचित्समाः
एकदा शिवपूजायै प्रवृत्तः शबरोत्तमः । न ददर्श चिताभस्म पात्रे पूरितमण्वपि ॥

अथाऽसौ त्वरितो दूरमन्विष्यन्परितोभ्रमन् ।

न लब्धवांश्चिताभस्म श्रान्तो गृहमगात्पुनः ॥ २९ ॥

तत्रआहूयपत्नींस्वां शबरोवाक्यमब्रवीत् । न लब्धंमेचिताभस्म किंकरोमिवद प्रिये
शिवपूजान्तरायोमे जातोऽद्य बतपाप्मनः । पूजां विना क्षणमपि नाहंजीवितुमुत्सहे
उपायं नात्र पश्यामि पूजोपकरणे हृते । न गुरोश्च विहन्येत शासनं सकलार्थदम् ॥
इति व्याकुलितं दृष्ट्वा भर्त्तारं शबराङ्गना । प्रत्यभाषत मा भैस्त्वमुपायं प्रवदामि ते
इदमेव गृहं दग्ध्वा बहुकालोपबृंहितम् । अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि चिताभस्म भवेत्ततः

शबर उवाच

धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् । कथं त्यजसि तं देहं सुखार्थं नवयौवनम्

अधुना त्वनपत्या त्वमभुक्तविषयासखा । भोगयोग्यमिमं देहं कथं दग्धुमिहेच्छसि

शबर्युवाच

एतावदेवसाफल्यंजीवितस्यचजन्मनः । परार्थेयस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवार्थेकिमुतस्वयम्
किं नु तप्तंतपोघोरं किं वा दत्तंमयापुरा । किं वार्चनं कृतं शम्भोः पूर्वजन्म शतान्तरे

किम्वा पुण्यं मम पितुः का वा मातुः कृतार्थता ।
यच्छिवार्थे समृद्धेऽग्नौ त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३६ ॥

इत्थंस्थिरां मतिं दृष्ट्वा तस्या भक्तिञ्च शङ्करे । तथेतिदृढसङ्कल्पःशबरः प्रत्यपूजयत्

सा भर्त्तारमनुप्राप्य स्नात्वा शुचिरलङ्कृता ।

गृहमादीप्यतंवह्निंभक्त्याचक्रेप्रदक्षिणम् । नमस्कृत्वात्मगुरवेध्यात्वाहृदिसदाशिवम्

अग्निप्रवेशाभिमुखी कृताञ्जलिरिदं जगौ ॥ ४२ ॥

शबर्युवाच

पुष्पाणि सन्तु तव देव! ममेन्द्रियाणि धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः ।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः ॥ ४३॥
वाञ्छामि नाऽहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचला न पदम्विधातुः ॥
भूयो भवामि यदि जन्मनिजन्मनि स्या त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी ॥४४
जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः ।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दान्नापैतु मे हृदयमीश नमोनमस्ते ॥ ४५ ॥

इति प्रसाद्य देवेशं शबरी दृढनिश्चया । विवेश ज्वलितं वह्निं भस्मसादभवत्क्षणात्
शबरोऽपि तद्भस्म यत्नेन परिगृह्य सः । चक्रे दग्धगृहोपान्ते शिवपूजा समाहितः

अथ सस्मार पूजान्ते प्रसादग्रहणोचिताम् ।
दयितां नित्यमायान्तीं प्राञ्जलिं विनयान्विताम् ॥ ४८ ॥

स्मृतमात्रांतदापश्यदागतांपृष्ठतःस्थिताम् । पूर्वेणावयवेनैवभक्तिनम्रांशुचिस्मिताम्
तांवीक्ष्यशबरःपत्नींपूर्ववत्प्राञ्जलिस्थिताम् । भस्मावशेषितगृहं यथापूर्वमवस्थितम्
अग्निर्दहति तेजोभिःसूर्योदहति रश्मिभिः । राजा दहति दण्डेनब्राह्मणो मनसादहेत्

किमयं स्वप्न आहोस्वित्किं वा माया भ्रमात्मिका ।
इति विस्मयसम्भ्रान्तस्तां भूयः पर्यपृच्छत ॥ ५२ ॥
अपि त्वं पावकंप्राप्ता भस्मभूताऽसि पावके । दग्धं च भवनं भूयः कथंपूर्ववदास्थितम्

शबर्युवाच

यदा गृहं समुद्दीप्य प्रविष्टाऽहं हुताशने ।
तदात्मानं न जानामि न पश्यामि हुताशनम् ॥ ५४ ॥
न तापलेशोऽप्यासीन्मेप्रविष्टायाइवोदकम् । सुषुप्तेवक्षणार्धेनप्रबुद्धाऽस्मिपुनःक्षणात्
-तावद्भवनमद्राक्षमदग्धमिव सुस्थितम् । अधुना देवपूजान्ते प्रसादं लब्धुमागता ॥
एवं परस्परं प्रेम्णा दम्पत्योर्भाषमाणयोः । प्रादुरासीत्तयोरग्रे विमानं दिव्यमद्भुतम्
तस्मिन्विमाने शतचन्द्रभास्वरे चत्वार ईशानुचराः पुरःसराः ।
हस्ते गृहीत्वाऽथ निषाददम्पती आरोपयामासुरमुक्तविग्रहौ ॥ ५८ ॥
तयोर्निषाददम्पत्योस्तत्क्षणादेव तद्वपुः । शिवदूतकरस्पर्शात्तत्सारूप्यमवाप ह ॥
तस्माच्छ्रद्धैव सर्वेषुविधेया पुण्यकर्मसु । नीचोऽपि शबरःप्राप श्रद्धयायोगिनां गतिम्
किं जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन-
किं विद्यया शकलशास्त्रविचारवत्या ।
यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः
कोऽन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोऽस्ति धन्यः ॥ ६१ ॥
इति श्रीस्कन्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
भस्ममाहात्म्यवर्णनेपाञ्चालभृत्यशबराख्यानवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

# अष्टादशोऽध्यायः

## उमामहेश्वरव्रताचरणेशारदाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वधर्मोत्तमोत्तमम् । उमामहेश्वरं नाम व्रतं सर्वार्थसिद्धिदम्
आनर्त्तसम्भवः कश्चिन्नाम्ना वेदरथो द्विजः । कलत्रपुत्रसम्पन्नो विद्वानुत्तमवंशजः
तस्यैवं वर्त्तमानस्य ब्राह्मणस्य गृहाश्रमे । बभूव शारदानाम कन्या कमललोचना ॥
ता रूपलक्षणोपेता बाला द्वादशहायनाम् । ययाचे पद्मनाभाख्यो मृतदारश्चसद्विजः
महाधनस्य शान्तस्यसदाराजसखस्यच । याञ्चाभङ्गभयात्तस्यतां कन्यांप्रददौपिता
मध्यन्दिने कृतोद्वाहः स विप्रः श्वशुरालये । सन्ध्यामुपासितुंसायं सरस्तटमुपाययौ

उपास्य सन्ध्यां विधिवत्प्रत्यागच्छत्तमोवृते ।
मार्गे दष्टो भुजङ्गेन ममार निजकर्मणा ॥ ७ ॥

तस्मिन्मृतेकृतोद्वाहेसहसा तस्यबान्धवाः । चुक्रुशुःशोकसन्तप्तौश्वशुरावस्यकन्यका
निर्हृत्यतंबन्धुजनाजग्मुःस्वंस्वं निवेशनम् । शारदाप्राप्तवैधव्या पितुरेवालये स्थिता
भूताच्छादनभोज्येनभर्त्राविरहितासती । निनायकतिचिन्मासान्साबालापितृमन्दिरे
एकदा नैध्रुवोनामकश्चिद्वृद्धतरो मुनिः । अन्धः शिष्यकरग्राही तन्मन्दिरमुपाययौ

तस्मिन्वृद्धे गृहं प्राप्ते क्वापि यातेषु बन्धुषु ।
साक्षादिवात्मनो दैवं सा बाला समुपागमत् ॥ १२ ॥

स्वागतंतेमहाभागपीठेऽस्मिन्नुपविश्यताम् । नमस्तेमुनिनाथायप्रियंतेकरवाणिकिम्
इत्युक्त्वाभक्तिमास्थायकृत्वा पादावनेजनम् । वीजयित्वापरिश्रान्तंतंमुनिपर्यतोषयत्
श्रान्तंपीठेसमावेश्यकृत्वाभ्यङ्गं स्वपाणिना । कृतस्नानंच विधिवत्कृतदेवार्चनंमुनिम्
सुखासनोपविष्टं तं धूपमाल्यानुलेपनैः । अर्चयित्वा वरान्नेन भोजयामास सादरम्
भुक्त्वाचसम्यक्छनकैस्तृप्तश्चानन्दनिर्भरः । चकारान्धमुनिस्तस्यै सुप्रीतःपरमाशिषम्

विहृत्य भर्त्रा सहसा च तेन लब्ध्वा सुतं सर्वगुणैर्वरिष्ठम् ।
कीर्त्तिं च लोके महतीमवाप्य प्रसादयोग्या भव देवतानाम् ॥ १८ ॥

इत्यभिव्याहृतंतेन मुनिना गतचक्षुषा । निशम्य विस्मिताबाला प्रत्युवाचकृताञ्जलिः
ब्रह्मंस्त्वद्वचनंसत्यं कदाचिन्नमृषा भवेत् । तदेतन्मन्दभाग्यायाः कथमेतत्फलिष्यति

शिलाग्र्यामिव सद्वृष्टिः शुनक्यामिव सत्क्रिया ।
विफला मन्दभाग्यायामाशीर्ब्रह्मविदामपि २१ ॥
सषाऽहं विधवा ब्रह्मन्दुष्कर्मफलभागिनी ।
त्वदाशीर्वचनस्याऽस्य कथं यास्यामि पात्रताम् ॥ २२ ॥

मुनिरुवाच

त्वामनालक्ष्य यत्प्रोक्तमन्धेनापिमयाऽधुना । तदेतत्साधयिष्यामिकुरुमच्छासनंशुभे!
उमामहेश्वरं नाम व्रतं यदि चरिष्यसि । तेन व्रतानुभावेन सद्यः श्रेयोऽनुभोक्ष्यसे

शारदोवाच

त्वयोपदिष्टं यत्नेनचरिष्याम्यपि दुश्चरम् । तद्व्रतं ब्रूहिमेब्रह्मन्विधानं वदविस्तरात्

मुनिरुवाच

चैत्रे वा मार्गशीर्षे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने । व्रतारम्भं प्रकुर्वीत यथावद्गुर्वनुज्ञया ॥
अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामुभयोरपि पर्वणोः । सङ्कल्पं विधिवत्कृत्वा प्रातःस्नानंसमाचरेत
सन्तर्प्य पितृदेवादीन्गत्वा स्वभवनंप्रति । मण्डपं रचयेद्दिव्यं वितानाद्यैरलङ्कृतम्
फलपल्लवपुष्पाद्यैस्तोरणैश्च समन्वितम् । पञ्चवर्णैश्च तन्मध्ये रजोभिः पद्ममुद्धरेत्
चतुर्दशदलैर्बाह्ये द्वाविंशद्भिस्तदन्तरे । तदन्तरे षोडशभिरष्टभिश्च तदन्तरे ॥ ३० ॥
एवं पद्मं समुद्धृत्य पञ्चवर्णैर्मनोरमम् । चतुरस्रं ततः कुर्यादन्तर्वर्तुलमुत्तमम् ॥ ३१
व्रीहितण्डुलराशिंचतन्मध्येच सकूर्चकम् । कूर्चोपरिसुसंस्थाप्यकलशं वारिपूरितम्
कलशोपरिविन्यस्यवस्त्रंवर्णसमन्वितम् । तस्योपरिष्टात्सौवर्ण्यौप्रतिमेशिवयो·शुभे
निधाय पूजयेद्भक्त्या यथाविभवविस्तरम् ॥ ३३ ॥

पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य तथा शुद्धोदकेन च । रुद्रैकादशकं जप्त्वा पञ्चाक्षरशताष्टकम्

अभिमन्त्र्य पुनः स्थाप्य पीठमध्ये तथाऽर्चयेत् ।
स्वयं शुद्धासनासीनो धौतशुक्लाम्बरः सुधीः ॥ ३५

पीठमामन्त्र्य मन्त्रेण प्राणायामान्समाचरेत् । सङ्कल्पंप्रवदेत्तत्रशिवाग्रेविहिताञ्जलिः
यानि पापानि घोराणिजन्मान्तरशतेषु मे । तेषां सर्वविनाशाय शिवपूजांसमारभे
सौभाग्यविजयारोग्यधर्मैश्वर्याभिवृद्धये । स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थंकरिष्येशिवपूजनम्
इतिसङ्कल्पमुच्चार्ययथावत्सुसमाहितः । अङ्गन्यासं ततः कृत्वाध्यायेदीशञ्चपार्वतीम्
कुन्देन्दुधवलाकारं नागाभरणभूषितम् । वरदाभयहस्तं च बिभ्राणं परशुं मृगम्
सूर्यकोटिप्रतीकाशं जगदानन्दकारणम् । जाह्नवीजलसम्पर्कादुदीर्णपिङ्गजटाधरम्
उरगेन्द्रफणोद्भूतमहामुकुटमण्डितम् । शीतांशुखण्डविलसत्कोटीराङ्गदभूषणम्
उन्मीलद्भालनयनं तथा सूर्येन्दुलोचनम् । नीलकण्ठं चतुर्बाहुंगजेन्द्राजिनवाससम्
रत्नसिंहासनारूढं नागाभरणभूषितम् । देवीं च दिव्यवसनांबालसूर्यायुतद्युतिम्

बालवेषां च तन्वङ्गीं बालशीतांशुशेखराम् ।
पाशाङ्कुशवराभीति बिभ्रतीं च चतुर्भुजाम् ॥ ४५ ॥

प्रसादसुमुखीमम्बां लीलारसविहारिणीम् । लसत्कुरबकाशोकपुन्नागनवचम्पकैः

कृतावतंसामुत्फुल्लमल्लिकोत्कलितालकाम् ।
काञ्चीकलापपर्यस्तजघनाभोगशालिनीम् ॥ ४७ ॥

उदारकिङ्किणीश्रेणीनूपुराढ्यपदद्वयाम् । गण्डमण्डलसंसक्तरत्नकुण्डलशोभिताम्
बिम्बाधरानुरक्तांशुलसद्दशनकुड्मलाम् । महार्हरत्नग्रैवेयतारहारविराजिताम् ॥ ४६
नवमाणिक्यरुचिरकङ्कणाङ्गदमुद्रिकाम् । रक्तांशुकपरीधानां रत्नमाल्यानुलेपनाम्

उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिन्दिताम्भोजकुड्मलाम् ।
लीलालोलासितापाङ्गीं भक्तानुग्रहदायिनीम् ॥ ५१ ॥
एवं ध्यात्वा तु हृत्पद्मे जगतः पितरौ शिवौ ।
जप्त्वा तदात्मकं मन्त्रं तदन्ते बहिरर्चयेत् ॥ ५२ ॥

आवाह्यप्रतिमायुग्मेकल्पयेदासनादिकम् । अर्घ्यंचदद्याच्छिवयोर्मन्त्रेणानेनमन्त्रवित्

नमस्ते पार्वतीनाथ! त्रैलोक्यवरदर्षभ !। त्र्यम्बकेश! महादेव! गृहाणार्घ्यंनमोऽस्तुते
नमस्ते देवदेवेशिप्रपन्नभयहारिणि । अम्बिके!वरदे! देविगृहाणार्घ्यं शिवप्रिये !॥५५
इतित्रिवारमुच्चार्यदद्यादर्घ्यंसमाहितः। गन्धपुष्पाक्षतान्सम्यग्धूपदीपान्प्रकल्पयेत्
नैवेद्यं पायसान्नेन घृताक्तं परिकल्पयेत् । जुहुयान्मूलमन्त्रेण हविरष्टोत्तरं शतम्
तत उद्वास्य नैवेद्यं धूपनीराजनादिकम् । कृत्वा निवेद्यताम्बूलंनमस्कुर्यात्समाहितः

अथाभ्यर्च्योपचारेण भोजयेद्विप्रदम्पती ॥ ५९ ॥
एवं सायन्तनीं पूजां कृत्वा विप्रानुमोदितः ।
भुञ्जीत वाग्यतो रात्रौ हविष्यं क्षीरभावितम् ॥ ६० ॥

एवं सम्वत्सरं कुर्याद्व्रतं पक्षद्वये बुधः । ततः सम्वत्सरे पूर्णे व्रतोद्यापनमाचरेत्
शतरुद्राभिजप्तेन स्नापयेत्प्रतिमे जलैः । आगमोक्तेन मन्त्रेण सम्पूज्यगिरिजाशिवौ
सवस्त्रं ससुवर्णं च कलशं प्रतिमान्वितम् । दत्त्वाचार्याय महते सदाचाररताय च

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या यथाशक्त्याभिपूज्य च ॥ ६३ ॥
दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यो गोहिरण्याम्बरादिकम् ।
भुञ्जीत तदनुज्ञातः सहेष्टजनबन्धुभिः ॥ ६४ ॥
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ६५ ॥

इन्द्रादिलोकपालानां स्थानेषु रमते ध्रुवम् । ब्रह्मलोके च रमते विष्णुलोकेचशाश्वते
शिवलोकमथ प्राप्य तत्र कल्पशतंपुनः । भुक्त्वा भोगान्सुविपुलाञ्छिवमेवप्रपद्यते
महाव्रतमिदं प्रोक्तं त्वमपि श्रद्धया चर । अत्यन्तदुर्लभं वापिलप्स्यसेत्वमनोरथम्
इत्यादिष्टामुनीन्द्रेणसाबालामुदिताभृशम् । प्रत्यग्रहीत्सुविश्रब्धातद्वाक्यंसुमनोहरम्
अथ तस्याः समायाताःपितृमातृसहोदराः । तं मुनिं सुखमासीनंददृशुःकृतभोजनम्
सहसागत्य ते सर्वे नमश्चक्रुर्महात्मने । प्रसीद नः प्रसीदेति गृणन्तः पर्यपूजयन्

श्रुत्वा च ते तया साध्व्या पूजितं परमं मुनिम् ।
अनुग्रहं व्रतं तस्यै श्रुत्वा हर्षं परं ययुः ॥ ७२ ॥

ते कृताञ्जलयः सर्वे तमूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥ ७६ ॥
अद्य धन्या वयं सर्वे तवागमनमात्रतः । पावितं नः कुलं सर्वं गृहं च सफलीकृतम्
इयं च शारदा नाम कन्या वैधव्यमागता । केनापिकर्मयोगेन दुर्विलङ्घ्येन भूयसा
सैषाद्य तव पादाब्जंप्रपन्नाशरणंसती । इमां समुद्धरासह्यात्सुघोराद्दुःखसागरात्
त्वयाऽपि तावदत्रैव स्थातव्यं नो गृहान्तिके ।
अस्मद्गृहमठेऽप्यस्मिन्स्नानपूजाजपोचिते ॥ ७७ ॥
एषा बालापि भगवन्कुर्वन्ती त्वत्पदार्चनम् । व्रतं त्वत्सन्निधावेवचरिष्यतिमहामुने!
यावत्समाप्तिमायातिव्रतमस्यास्त्वदन्तिके । उषित्वातावदत्रैवकृतार्थान्कुरुनोगुरो
एवमभ्यर्थितः सर्वैस्तस्या भ्रातृजनादिभिः ।
तथेति स मुनिश्रेष्ठस्तत्रोवास मठे शुभे ॥ ८० ॥
साऽपि तेनोपदिष्टेन मार्गेण गिरिजाशिवौ ।
अर्चयन्ती व्रतं सम्यक्चचार विमला सती ॥ ८१ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
उमामहेश्वरव्रताचरणे शारदाख्यानवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

# एकोनविंशोऽध्यायः

## शारदाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

एवं महाव्रतं तस्याश्चरन्त्या गुरुसन्निधौ ।
सम्वत्सरो व्यतीयाय नियमासक्तचेतसः ॥ १ ॥
सम्वत्सरान्ते सा बाला तत्रैव पितृमन्दिरे । चकारोद्यापनंसम्यग्विप्रभोजनपूर्वकम्
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथार्हतः ।

विसृज्य तान्नमस्कृत्य पितृभ्यामभिनन्दिता ॥ ३ ॥
उपोषिता स्वयं तस्मिन्दिने नियममाश्रिता ।
जजाप परमं मन्त्रमुपदिष्टं महात्मना ॥ ४ ॥
अथप्रदोषसमये प्राप्ते सम्पूज्यशङ्करम् । तस्मिन्गृहान्तिकमठेगुरोस्तस्यचसन्निधौ
जपार्चनरता साध्वी ध्यायन्ती परमेश्वरम् । तस्मिञ्जागरणेरात्रावुपविष्टाशिवान्तिके
तस्यां रात्रौ तया सार्धं स मुनिर्जगदम्बिकाम् ।
जपध्यानतपोभिश्च तोषयामास पार्वतीम् ॥ ७ ॥
तस्याश्च भक्त्या व्रतभाविताया मुनेस्तपोयोगसमाधिना च ।
तुष्टा भवानी जगदेकमाता प्रादुर्बभूवाकृतसान्द्रमूर्त्तिः ॥ ८ ॥
प्रादुर्भूता यदागौरी तयोरग्रे जगन्मयी । अन्धोऽपितत्क्षणादेवमुनिःप्रापदृशोर्द्वयम्
ता वीक्ष्य जगतां धात्रीमाविर्भूतां पुरःस्थिताम् ।
निपेततुस्तत्पदयोः स मुनिः सा च कन्यका ॥ १० ॥
तौ भक्तिभावोच्छ्वसितामलाशयावानन्दबाष्पोक्षितसर्वगात्रौ ।
उत्थाप्य देवी कृपया परिप्लुता प्रेम्णा बभाषे मृदुवल्गुभाषिणी ॥ ११ ॥

देव्युवाच

प्रीताऽस्मि ते मुनिश्रेष्ठ! वत्से! प्रीताऽस्मि तेऽनघे ।
किम्वा ददाम्यभिमतं देवानामपि दुर्लभम् ॥ १२ ॥

मुनिरुवाच

एषा तु शारदा नाम कन्यातुगतभर्तृका । मयाप्रतिश्रुतंचास्यै तुष्टेन गतचक्षुषा ॥१३
सह भर्त्रा चिरं कालं विहृत्यसुतमुत्तमम् । लभस्वेतिमयाप्रोक्तंसत्यंकुरुनमोऽस्तुते

श्रीदेव्युवाच

एषापूर्वभवेबाला द्राविडस्यद्विजन्मनः । आसीद्द्वितीयादयिताभामिनानामविश्रुता
सा भर्तृप्रेयसी नित्यं रूपमाधुर्यपेशला । भर्तारं वशमानिन्ये रूपवश्यादिकैतवैः ॥

अस्यां बालकहृदयः स विप्रो मोहयन्त्रितः ।
कदाचिदपि नैवाऽगाऽज्ज्येष्ठपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १७ ॥
अनभ्यागमनाद्भर्तुः सा नारीपुत्रवर्जिता । सदा शोकेन सन्तप्ता कालेन निधनं गता
अस्या गृहसमीपस्थो यः कश्चिद् ब्राह्मणो युवा ।
इमां वीक्ष्याऽथ चार्वङ्गीं कामार्तः करमग्रहीत् ॥ १६ ॥
अनया रोषताम्राक्ष्या सविप्रस्तु निवारितः । इमांस्मरन्दिवानक्तं निधनं प्रत्यपद्यत
एषासम्मोह्यभर्तारंज्येष्ठपत्न्यांपराङ्मुखम् । चकारतेनपापेनभवेस्मिन्विधवाऽभवत्
याः कुर्वन्ति स्त्रियो लोके जायापत्योश्च विप्रियम् ।
तासां कौमारवैधव्यमेकविंशतिजन्मसु ॥ २२ ॥
यदेतया पूर्वभवे मत्पूजा महती कृता । तेन पुण्येन तत्पापं नष्टं सर्वं तदैव हि ॥
यो विप्रो विरहार्तः सन्मृतः कामविमोहितः ।
सोऽस्याः पाणिग्रहं कृत्वा भवेऽस्मिन्निधनं गतः ॥ २४ ॥
प्राग्जन्मपतिरेतस्याः पाण्ड्यराष्ट्रेषु सोऽधुना ।
जातो विप्रवरः श्रीमान्सदारः सपरिच्छदः ॥ २५ ॥
तेन भर्त्रा प्रतिनिशंसैषाप्रेम्णाभिसङ्गता । स्वप्ने रतिसुखं यातु श्रेष्ठं जागरणादपि
षष्ट्युत्तरत्रिशतयोजनदूरसंस्थो देशादितो द्विजवरः स च कर्मगत्या ।
एना वधूं प्रतिनिशं मनसोभिरामां स्वप्नेषु पश्यति चिरं रतिमादधानः ॥ २७
सैषावैस्वप्नसङ्गत्या पत्युः प्रतिनिशं सती । कालेन लप्स्यते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम्
एतस्यां तनयं जातमात्मनश्चिरसङ्गमात् ।
सोऽपि विप्रोऽनिशं स्वप्ने द्रक्ष्यति प्रेमभावितम् ॥ २६ ॥
अनयाराधिता पूर्वे भवे साहं महामुने !। अस्यैव वरदानाय प्रादुर्भूतास्मिसाम्प्रतम्

सूत उवाच

अथोत्राप्यमहादेवीसांबालोभक्तिसादरम् । अयि वत्से! महाभागे! शृणु मे परमं वचः
यदाकदापि भर्तारंनावेक्षिष्ये पुराजनम् । द्रक्ष्यसिस्वप्नदृष्टंप्राग्जास्यसेत्थंविचक्षणा

त्वां द्रक्ष्यति स विप्रोऽपि सुनयां स्वप्नलक्षणाम्
तदा परस्परसलापो युवयोः सम्भविष्यति ॥ ३३ ॥

तदास्वतनयंभद्रेतस्मैदेहि बहुश्रुतम् । फलमस्य व्रतस्याग्र्यं तस्य हस्ते समर्पय
ततः प्रभृति तस्यैव वशी तिष्ठ सुमध्यमे । युवयोर्दैहिकः सङ्गो माभूत्स्वप्नरताद्दृते
कालात्पञ्चत्वमापन्ने तस्मिन्ब्राह्मणसत्तमे । अग्निंप्रविश्यतेनैवसह यास्यसि मत्पदम्
पुत्रस्ते भविता सुभ्रु! सर्वलोकमनोरमः । सम्पदश्चभविष्यन्तिप्राप्स्यते परमं पदम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा त्रिजगन्मातादत्त्वातस्यैमनोरथम् । तयोःसम्पश्यतोरेवक्षणेनादर्शनंगता
सापि बाला वरं लब्ध्वा पार्वत्याः करुणानिधेः । अवापपरमानन्दंपूजयामासतंगुरुम्
तस्यांरात्र्यांव्यतीतायांसमुनिर्लब्धलोचनः । तस्याःपित्रोश्चतत्सर्वंरहस्याचष्टधर्मवित्
अथसर्वानुपामन्त्र्यशारदां च यशस्विनीम् । विधायानुग्रहंतेषाययौस्वैरगतिर्मुनिः
एवं दिनेषु गच्छत्सु साबाला चप्रतिक्षणम् । भर्तुःसमागमंलेभेस्वप्नेसुखविवर्धनम्
गौर्या वरप्रदानेन शारदा विशदव्रता । दधार गर्भं स्वप्नेऽपि भर्तुः सङ्गानुभावतः

तां श्रुत्वा भर्तृरहितां शारदां गर्भिणीं सतीम् ।
सर्वे धिगिति प्रोचुस्तां जारिणीति जगुर्जनाः ॥ ४४ ॥
सम्परेतस्य तद्भर्तुर्ये जातिकुलबान्धवाः ।
तां वार्तां दुःसहां श्रुत्वा ययुस्तत्पितृमन्दिरम् ॥ ४५ ॥

अथ सर्वे समायाताग्रामवृद्धाश्च पण्डिताः । समाजंचक्रिरेतत्रकुलवृद्धैःसमन्वितम्
अन्तर्वत्नींसमाहूयशारदां विनताननाम् । अतर्जयन्सुसंक्रुद्धाःकेचिदासन्पराङ्मुखाः

अयि जारिणि! दुर्बुद्धे! किमेतत्ते विचेष्टितम् ।
अस्मत्कुले सुदुष्कीर्त्तिं कृतवत्यसि बालिशे !॥ ४८ ॥

इतिसन्तर्जयन्तस्ते ग्रामवृद्धामनीषिणः । सर्वेसम्मन्त्रयामासुःकिंकार्यमितिभाषिणः
तत्रोचुःकेचवृद्धास्तां बाला प्रतिविनिर्दयाः । एषा पापमतिर्बालाकुलद्वयविनाशिनी

कृत्वाऽस्याः केशवपनं छित्त्वा कर्णौ च नासिकाम् ।

विवास्यतां बहिर्ग्रामात्परित्यज्य स्वगोत्रतः ॥ ५१ ॥

इति सर्वे समालोच्य तां तथा कर्तुमुद्यताः । अथान्तरिक्षेसम्भूताशुश्रुवे वागगोचरा अनया न कृतं पापं न चैव कुलदूषणम् । व्रतभङ्गो न चैतस्यास्सुचरित्रेयमङ्गना ॥ इतः परमियं नारी जारिणीतिवदन्ति ये । तेषां दोषविमूढानासद्योजिह्वाविदीर्यते इत्यन्तरिक्षेजनितांवाणीं श्रुत्वाऽशरीरिणीम् । सर्वेप्रजहृषुस्तस्याजननीजनकादयः ततःससम्भ्रमाःसर्वेग्रामवृद्धाःसभाजनाः । मुहूर्तंमौनमालम्ब्यभीतास्तस्थुरधोमुखाः

तत्र केचिदविश्वस्ता मिथ्यावाणीत्यवादिषुः ।

नैषा जिह्वा द्विधा भिन्ना चवमुस्ते कर्मान्क्षणात् ॥ ५७ ॥

ततः सम्पूजयामासुस्तां बालां ज्ञातिबान्धवाः ।

बान्धवाश्च स्त्रियो वृद्धाः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ५८ ॥

मुमुचुः केचिदानन्दबाष्पबिन्दून् कुलोत्तमाः ।

कुलस्त्रियः प्रमुदितास्तामुद्दिश्य समाश्वसन् ॥ ५९ ॥

अथतत्रापरेप्रोचुर्दैवो वदति नानृतम् । कथमेषा ददौ गर्भं शीलान्न चलिता ध्रुवम्

इतिसर्वान्सभ्यजनान्संशयाविष्टचेतसः ।

विलोक्य वृद्धस्तत्रैको ( कः ) सर्वज्ञो लोकतत्त्ववित् ॥ ६१ ॥

मायामयमिदं विश्वं दृश्यते श्रूयते च यत् ।

किम्भाव्यं किमभाव्यं वा संसारेऽस्मिन्क्षणात्मके ॥ ६२ ॥

अनिरूप्यमभूतार्थं मायया जायते स्फुटम् । ईश्वरस्यवशेमायातस्यकोवेद चेष्टितम् यूपकेतोश्च राजर्षेः शुक्रंनिपतितं जले । सशुक्रं तज्जलं पीत्वा वेश्या गर्भं ददौ किल मुनेर्विभाण्डकस्यापिशुक्रंपीत्वासहाम्भसा । हरिणीगर्भिणीभूत्वाऋष्यशृङ्गमसूयत सुराग्न्यस्यतथा राज्ञः करंस्पृष्ट्वामृगाङ्गना । तत्क्षणाद्गर्भिणीभूत्वा मुनिंप्रासूततापसम् तथा सत्यवतीनारी शफरीगर्भसम्भवा । तथैव महिषीगर्भो जातश्च महिषासुरः ॥ तथासन्तिपुरानार्यःकारुण्याद्गर्भसम्भवाः । तथाहिवसुदेवेनरोहिण्यास्तनयोऽभवत् देवतानां महर्षीणां शापेन च वरेण च । अयुक्तमपि यत्कर्म युज्यते नात्र संशयः ॥

साम्बस्यजठराज्जातं मुसलंमुनिशापतः । युवनाश्वस्यगर्भोऽभून्मुनीनांमन्त्रगौरवात्
नूनमेषापिकल्याणी महर्षेः पादसेवनात् । महाव्रतानुभावाच्च धत्ते गर्भमनिन्दिता ॥
अस्मिन्नर्थे रहस्येनां सत्यंपृच्छन्तुयोषितः । ततोनिवृत्तसन्देहोभविष्यतिमहाजनः
ततस्तद्वचनादेव तामपृच्छन्स्त्रियोमिथः । ताभ्यःशशंसतत्सर्वंसा स्ववृत्तंमहाद्भुतम्

विजानन्तस्ततः सर्वे मानयित्वा च ता सतीम् ।
मोदमानाः प्रशंसन्तः प्रययुः स्वं स्वमालयम् ॥ ७४ ॥

अथ काले शुभे प्राप्ते शारदा विमलाशया । असूत तनयं बाला बालार्कसमतेजसम् ॥
स कुमारो महोदारलक्षणः कमलेक्षणः । अवाप्य महती विद्या बाल्य एवमहामतिः
अथोपनीतो गुरुणा काले लोकमनोरमः । स शारदेय एवेति लोके ख्यातिमवाप ह
ऋग्वेदमष्टमे वर्षे नवमे यजुषां गणम् । दशमे सामवेदं च लीलयाध्यगमत्सुधीः ॥
अथ त्रिलोकमहिते सम्प्राप्तेशिवपर्वणि । गोकर्णं प्रययु. सर्वे जनाः सर्वनिवासिन.

शारदाऽपि स्वपुत्रेण गोकर्णं प्रययौ सती ॥ ८० ॥

तत्रापश्यत्समायातं सदा स्वप्नेषु लक्षितम् । पूर्वजन्मनिभर्त्तारं द्विजबन्धुजनावृतम्
तं दृष्ट्वाप्रेमनिर्विण्णापुलकाङ्कितविग्रहा । निरुद्धबाष्पप्रसरातस्थौ तन्म्यस्तलोचना

स च विप्रोऽपि तां दृष्ट्वा रूपलक्षणलक्षिताम् ।
स्वप्ने सदा भुज्यमानामात्मनो रतिदायिनीम ॥ ८३ ॥

तंकुमारमपिस्वप्नेदृष्टञ्चात्मशरीरजम । विलोक्यविस्मयाविष्टस्तदन्तिकमुपाययौ

भद्रे! त्वां प्रष्टुमिच्छामि यत्किञ्चिन्मनसि स्थितम् ।
इति प्रथममाभाष्य रहः स्थानं निनाय ताम् ॥ ८५ ॥

कात्वंकथयवामोरुकस्यभार्यासिसुव्रते । कोदेशःकस्यवापुत्रीकिन्नामेत्यब्रवीच्चताम्
इति तेनसमापृष्टासानारीबाष्पलोचना । व्याजहारात्मनो वृत्तं बाल्यवैधव्यकारणम्
पुनः पप्रच्छ तां बालांपुत्रः कस्यायमुत्तमः । कथंधृतोवाजठरेबालोऽयंचन्द्रसन्निभः

शारदोवाच

एष मे तनयः स्वामिन्सर्वविद्याविशारदः । शारदेय इति प्रोक्तो ममनाम्नैवकल्पितः

इति तस्यावचः श्रुत्वाविहस्यब्राह्मणोत्तमः । प्रोवाचकष्टात्कष्टंहिचरितंतवभामिनि
पाणिग्रहणमात्रंते कृत्वाभर्त्तामृतःकिल । कथंवायंसुतोजातस्तस्यकारणमुच्यताम्
इति तेनोदिता वाणीमाकर्ण्याऽतीव लज्जिता ।
क्षणं चाऽश्रुमुखी भूत्वा धैर्यादित्थमभाषत ॥ ६२ ॥

शारदोवाच

तदलंपरिहासोत्तयान्वंमावेत्सिमहामते । त्वामहंवेद्मिचार्येऽस्मिन्प्रमाणंमनआवयोः
इत्युक्त्वा सर्वमावेद्य देव्यादत्तंवरादिकम् । व्रतस्यार्थं कुमारं तं ददौतस्मैधृतव्रतम्
सोऽपि प्रमुदितोविप्रःकुमारंप्रतिगृह्यतम् । पित्रोरनुमतेनैव ता निनायनिजालयम्
सापि स्थित्वा बहून्मासास्तस्य विप्रस्य मन्दिरे ।
तस्मिन्कालवशं प्राप्ते प्रविश्याग्निं तमन्वगात् ॥ ६६ ॥
ततस्तौ दम्पती भूत्वा विमानं दिव्यमास्थितौ ।
दिव्यभोगसमायुक्तौ जग्मतुः शिवमन्दिरम् ॥ ६७ ॥
इत्येतत्पुण्यमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ।
पठता शृण्वता सम्यग्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ६८ ॥
आयुरारोग्यसम्पत्तिधनधान्यविवर्द्धनम् । स्त्रीणामङ्गलसौभाग्यसन्तानसुखसाधनम्
एतन्महाख्यानमघौघनाशनं गौरीमहेशव्रतपुण्यकीर्तनम् ।
भक्त्या सकृद्यः शृणुयाच्च कीर्त्तयेदुक्त्वा स भोगान्पदमेति शाश्वतम् ॥ १०० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
शारदाख्यानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

———

# विंशोऽध्यायः

## रुद्राक्षमहिमवर्णनेराजपुत्रमन्त्रिपुत्रयोराख्यानवर्णनम्

### सूत उवाच

अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं वर्णयामि समासतः । सर्वपापक्षयकरं शृण्वतां पठतामपि ॥
अभक्तो वापिभक्तोवानीचो नीचतरोपि वा । रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यतेसर्वपातकैः
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् । महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः । तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश । एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव हि
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशेतुचत्वारिंशत्तु मस्तके । एकैककर्णयोःषट्षट् वक्षस्यष्टोत्तरंशतम्

यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्सोऽपि पूज्यते ॥ ६

मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः । समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत्
केवलानपिरुद्राक्षान्यथालाभं विभर्तियः । तंनस्पृशन्तिपापानितमांसीवविभावसुम्
रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्तफलप्रदः । अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः
यस्याङ्गेनास्तिरुद्राक्षएकोपि बहुपुण्यदः । तस्यजन्मनिरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितंयदि
रुद्राक्षं मस्तकेबद्ध्वा शिरःस्नानं करोतियः । गङ्गास्नानफलंतस्य जायतेनात्रसंशयः
रुद्राक्षंपूजयेद्यस्तुविनातोयाभिषेचनम् । यत्फलंलिङ्गपूजायास्तदेवाप्नोतिनिश्चितम्
एकवक्त्राः पञ्चवक्त्रा एकादशमुखाः परे । चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः

भक्त्या सम्पूजितो नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः ।
दरिद्रं वाऽपि कुरुते राजराजश्रियान्वितम् ॥ १४ ॥

अत्रेदम्पुण्यमाख्यानं वर्णयन्ति मनीषिणः । महापापक्षयकरं श्रवणात्कीर्तनादपि
राजाकाश्मीरदेशस्य भद्रसेनइतिश्रुतः । तस्य पुत्रोऽभवद्धीमान्सुधर्मानाम वीर्यवान्
तस्यामात्यसुतः कश्चित्तारको नाम सद्गुणः । बभूव राजपुत्रस्य सखा परमशोभनः

तावुभौपरमस्निग्धौ कुमारौ रूपसुन्दरौ । विद्याभ्यासपरौ बाल्येसहक्रीडांप्रचक्रतुः
तौ सदा सर्वगात्रेषु रुद्राक्षकृतभूषणौ । विचेरतुरुदाराङ्गौसततं भस्मधारिणौ ॥
हारकेयूरकटककुण्डलादिविभूषणम् । हेमरत्नमयं त्यक्त्वा रुद्राक्षान्दधतुश्च तौ ॥
रुद्राक्षमालिनौ नित्यं रुद्राक्षकरकङ्कणौ । रुद्राक्षकण्ठाभरणौ सदा रुद्राक्षकुण्डलौ
हेमरत्नाद्यलङ्कारे लोष्टपाषाणदर्शनौ । बोध्यमानावपि जनैर्न रुद्राक्षान्व्यमुञ्चताम् ॥
तस्य काश्मीरराजस्य गृहं प्राप्तो यदृच्छया । पराशरो मुनिवरः साक्षाद्विश्वपितामहः
तमर्चयित्वा विधिवद्राजाधर्मभृतां वरः । प्रपच्छ सुखमसीनं त्रिकालज्ञं महामुनिम्

राजोवाच

भगवन्नेष पुत्रोमे सोऽपि मन्त्रिसुतश्च मे । रुद्राक्षधारिणौनित्यं रत्नाभरणनिःस्पृहौ
शास्यमानावपि सदा रत्नाकल्पपरिग्रहे । विलङ्घितास्मद्वचनौ रुद्राक्षेष्वेव तत्परौ
नोपदिष्टाविमौ बालौ कदाचिदपि केनचित् ।
एषा स्वाभाविकी वृत्तिः कथमासीत्कुमारयोः ॥ २७ ॥

पराशर उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि तवपुत्रस्यधीमतः । यथात्वंमन्त्रिपुत्रस्यप्राग्वृत्तं विस्मयावहम्
नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता । बभूव वारवनिता शृङ्गारललिताकृतिः
छत्रंपूर्णेन्दुसङ्काशं यानंस्वर्णविराजितम् । चामराणि सुदण्डानिपादुकेचहिरण्मये
अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि द्युमन्ति च ।
चन्द्ररश्मिनिभाः शय्याः पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः ॥ ३१ ॥
गावो महिष्यः शतशो दासाश्च शतशस्तथा ॥ ३२ ॥
सर्वाभरणदीप्ताङ्ग्योदास्यश्चनवयौवनाः । भूषणानिपरार्ध्याणिनवरत्नोज्ज्वलानिच
गन्धकुङ्कुमकस्तूरीकर्पूरागुरुलेपनम् । चित्रमाल्यावतंसश्च यथेष्टं मृष्टभोजनम् ॥ ३४
नानाचित्रवितानाढ्यं नानाधान्यमयं गृहम् ।
बहुरत्नसहस्राढ्यं कोटिसंख्याधिकं धनम् ॥ ३५ ॥
एवं विभवसम्पन्ना वेश्या कामविहारिणी । शिवपूजारता नित्यं सत्यधर्मपरायणा

सदाशिवकथासक्ताशिवनामकथोत्सुका । शिवभक्ताङ्गनयवनताशिवभक्तिरतानिशम्
विनोदहेतोःसा वेश्या नाट्यमण्डपमध्यतः । रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटंचैवकुक्कुटम्

करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्वयम् ।
पुनश्च विहसन्त्युच्चैः सखीभिः परिचारिता ॥ ३६ ॥

रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणभूषणः । मर्कटः शिक्षया तस्याः सदा नृत्यति बालवत्
शिखायां बद्धरुद्राक्षःकुक्कुटःकपिनासह । चिरंनृत्यतिनृत्यज्ञः पश्यताचित्रमावहम्

एकदा भवनं तस्याः कश्चिद्वैश्यः शिवव्रती ।
आजगाम सरुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्री निर्ममः कृती ॥ ४२ ॥

स बिभ्रद्भस्म विशदे प्रकोष्ठ वरकङ्कणम् । महारत्नपरिस्तीर्णं ज्वलन्तं तरुणार्कवत्
तमागतंसा गणिकासम्पूज्य परया मुदा । तत्प्रकोष्ठगतं वीक्ष्यकङ्कणं प्राहविस्मिता

महारत्नमयः सोऽयं कङ्कणस्त्वत्करे स्थितः ।
मनो हरति मे साधो! दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ ४५ ॥

इति ता वररत्नाढ्ये सस्पृहा करभूषणे । वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितसमभाषत

वैश्य उवाच

अस्मिन्नत्नवरे दिव्ये यदि ते सस्पृहं मनः ।
तमेवादत्स्व सुप्रीता मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ ४७ ॥

वेश्योवाच

वयं तु स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ।
अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः ॥ ४८ ॥

यद्येतद्रत्नखचितं ददासि करभूषणम् । दिनत्रयमहोरात्रं तव पत्नी भवाम्यहम् ॥

वैश्य उवाच

तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वारवल्लभे !। ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मद्वधूः ॥

एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ ।
त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये !॥ ५१ ॥

वेश्योवाच

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो !। सहधर्मं चरामीति सा तद्धृदयमस्पृशत्
अथ तस्यैसवैश्यस्तुप्रददौ रत्नकङ्कणम् । लिङ्गं रत्नमयंचास्याहस्ते दत्त्वेदमब्रवीत्
इदं रत्नमयं शैवं लिङ्गं मत्प्राणसन्निभम् । रक्षणीयंत्वयाकान्ते! तस्यहानिर्मृतिर्मम

एवमस्त्विति सा कान्ता लिङ्गमादाय रत्नजम् ।
नाट्यमण्डपिकास्तम्भे निधाय प्राविशद् गृहम् ॥ ५५ ॥

सा तेन सङ्गता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा । सुखं सुष्वाप पर्यङ्के मृदुतल्पोपशोभिते
ततोनिशीथसमये नाट्यमण्डपिकान्तरे । अकस्मादुत्थितोवह्निस्तमेव सहसावृणोत्
मण्डपे दह्यमानेतुसहसोत्थायसम्भ्रमात् । सा वेश्यामर्कटंतत्र मोचयामासबन्धनात्
स मर्कटोमुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना । भीतो दूरं प्रदुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून्
स्तम्भेनसह निर्दग्धं तल्लिङ्गं शकलीकृतम् । दृष्ट्वा वेश्या च वैश्यश्च दुरन्तंदुःखमापतुः
दृष्ट्वा प्राणसमं लिङ्गं दग्धं वैश्यपतिस्तथा । स्वयमप्यात्तनिर्वेदो मरणाय मतिं दधौ

निर्वेदान्वितरा खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ।
शिवलिङ्गे तु निर्भिन्ने नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६२ ॥

चिता कारयमे भद्रेतव भृत्यैर्बलाधिकैः । शिवेमनः समावेश्य प्रविशामि हुताशनम्

यदि ब्रह्मेन्द्रविष्णवाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ।
तथाऽप्यस्मिन्क्षणे धीरः प्रविश्याग्निं त्यजाम्यसून् ॥ ६४ ॥

तमेवं दृढबन्धंसा विज्ञायबहुदुःखिता । स्वभृत्यैः कारयामासचितां स्वनगराद्बहिः

ततः स वैश्यः शिवभक्तिपूतः प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ।
विवेश पश्यत्सु जनेषु धीरः सा चानुतापं युवती प्रपेदे ॥ ६६ ॥

अथसादुःखितानारीस्मृत्वाधर्मंसुनिर्मलम् । सर्वान्बन्धून्समीक्ष्यैवं बभाषेकरुणंवचः
रत्नकङ्कणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् । दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्यसम्मना ॥
कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती । तस्मादहं प्रवेक्ष्यामिसहानेन हुताशनम्

सधर्मचारिणीत्युक्तं सत्यमेतद्धि पश्यथ ॥ ६६ ॥

सत्येनप्रीतिमायान्तिदेवास्त्रिभुवनेश्वराः । सत्यासक्तिःपरोधर्मःसत्येसर्वंप्रतिष्ठितम्
सत्येन स्वर्गमोक्षौ च नाऽसत्येन परा गतिः
तस्मात्सत्यं समाश्रित्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ७१ ॥
इतिसादृढनिर्बन्धावार्यमाणापिबन्धुभिः । सत्यलोपभयान्नारी प्राणांस्त्यक्तुंमनोदधे
सर्वस्वं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम् ।
तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी स्थिता ॥ ७३ ॥
तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम् ।
वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः शिवः स्वयम् ॥ ७४ ॥
सा तं विलोक्याऽखिलदेवदेवं त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम्
शशाङ्कसूर्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥ ७५ ॥
तां विह्वलां परित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम् ।
समाश्वास्य गलद्बाष्पां करे गृह्याऽब्रवीद्वचः ॥ ७६ ॥

शिव उवाच

सत्यं धर्मं च ते धैर्यं भक्तिं च मयि निश्चलाम् ।
निरीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाऽहमागत. ॥ ७७ ॥
माययाऽग्निं समुत्थाप्य दग्धवान्नाट्यमण्डपम् ।
दग्धं कृत्वा रत्नलिङ्गं प्रविष्टोऽस्मि हुताशनम् ॥७८ ॥
वेश्याः कैतवकारिण्यः स्वैरिण्यो जनवञ्चकाः ।
सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह ॥ ७९ ॥
अतस्ते सम्प्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान् ।
आयुश्च परमं दीर्घमारोग्यं च प्रजोन्नतिम् ॥
यद्यदिच्छसि सुश्रोणि! तत्तदेव ददामि ते ॥ ८० ॥

सूत उवाच

इति ब्रुवति गौरीशे सा वेश्या प्रत्यभाषत ॥ ८१ ॥

वेश्योवाच

नमेवाञ्छाऽस्तिभोगेषुभूमौस्वर्गेरसातले । तवपादम्बुजस्पर्शादन्यत्किञ्चिन्नवै वृणे
एते भृत्याश्च दास्यश्च ये चाऽन्ये मम बान्धवाः ।
सर्वे त्वदर्चनपरास्त्वयि सन्न्यस्तवृत्तयः ॥ ८३ ॥
सर्वानेतान्मया सार्धंनीत्वा तव परं पदम् । पुनर्जन्मभयं घोरंविमोचयनमोऽस्तु ते
तथेति तस्या वचनं प्रतिनन्द्य महेश्वरः । तान्सर्वांश्च तया सार्धं निनाय परमं पदम्

पराशर उवाच

नाट्यमण्डपिकादाहे यौदृग्ंविद्रुतौ पुरा । तत्रावशिष्टौ तावेव कुक्कुटो मर्कटस्तथा
कालेन निधनं यातो यस्तस्या नाट्यमर्कटः ।
सोऽभूत्तव कुमारोऽसौ कुक्कुटो मन्त्रिणः सुतः ॥ ८७ ॥
रुद्राक्षधारणोद्भूतात्पुण्यात्पूर्वभवार्जितात् । कुले महतिसञ्जातौ वर्ततेबालकाविमौ
पूर्वाभ्यासेन रुद्राक्षान्दधाते शुद्धमानसौ ।
अस्मिञ्जन्मनि तं लोकं शिवं सम्पूज्य यास्यतः ॥ ८६ ॥
एषा प्रवृत्तिस्त्वनयोर्बालयोः समुदाहृता ।
कथा च शिवभक्तायाः किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे रुद्राक्षमहिमवर्णने काश्मीरदेशीयराजपुत्रमन्त्रिपुत्रयोराख्यानवर्णनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

# एकविंशोऽध्यायः

## राजपुत्रस्यमृत्युनिवारणायरुद्राध्यायमहिमयवर्णनम्

सूत उवाच

एवंब्रह्मर्षिणाप्रोक्तांवाणींपीयूषसन्निभाम् । आकर्ण्य मुदितोराजाप्राञ्जलिःपुनरब्रवीत्

राजोवाच

अहो सत्सङ्गमः पुंसामशेषाघप्रशोधनः ।
कामक्रोधनिहन्ता च इष्टदोग्धा जनस्य हि ॥ २ ॥
मम मायातमो नष्टं ज्ञानदृष्टिः प्रकाशिता । तव दर्शनमात्रेण प्रायोऽहममरोत्तमः ॥३
श्रुतं च पूर्वचरितं बालयोः सम्यगेतयोः । भविष्यदपि पृच्छामि मत्पुत्राचरणं मुने
अस्यायुः कति वर्षाणि भाग्यं वद च कीदृशम ।
विद्या कीर्त्तिश्च शक्तिश्च श्रद्धा भक्तिश्च कीदृशी ॥ ५ ॥
एतत्सर्वमशेषेणमुनेत्वंवक्तुमर्हसि । तवशिष्योस्मिभृत्योस्मिशरणंत्वागतोस्म्यहम्

पराशर उवाच

अत्रावाच्यं हि यत्किञ्चित्कथं शक्तोऽस्मि शंसितुम् ।
तच्छ्रुत्वा धृतिमन्तोऽपि विषादं प्राप्नुयुर्जनाः ॥ ७ ॥
तथापि निर्व्यलीकेन भावेनपरिपृच्छतः । अवाच्यमपिवक्ष्यामितवस्नेहान्महीपते!
अमुष्य त्वत्कुमारस्य वर्षाणि द्वादशात्ययुः । इतः परं प्रपद्येत सप्तमे दिवसेमृतिम्
इतितस्यवचःश्रुत्वाकालकूटमिवोदितम । मूर्च्छित.सहसाभूमौपतितोनृपति.शुचा
तमुत्थाप्यसमाश्वास्यसमुनिः करुणार्द्रधीः । उवाचमाभैर्नृपतेपुनर्वक्ष्यामितेहितम्
सर्गात्पुरानिरालोकं तदेकंनिष्कलंपरम् । चिदानन्दमयंज्योतिस आद्यःकेवलःशिवः
स एवादौ रजोरूपं सृष्ट्वा ब्रह्माणमात्मना । सृष्टिकर्मनियुक्ताय तस्मै वेदांश्चदत्तवान्
पुनश्च दत्तवानीश आत्मतत्त्वैकसंग्रहम् । सर्वोपनिषदांसारं रुद्राध्यायं च दत्तवान्

यदेकमव्ययंसाक्षाद्ब्रह्मज्योतिःसनातनम् । शिवात्मकंपरंतत्त्वंरुद्राध्यायेप्रतिष्ठितम्
स आत्मभूः सृजद्विश्वंचतुर्भिर्वदनैर्विराट् । ससर्जवेदांश्चतुरोलोकानांस्थिति हेतवे
तत्रायं यजुषांमध्ये ब्रह्मणोदक्षिणान्मुखात् । अशेषोपनिषत्सारोरुद्राध्यायःसमुद्गतः
स एष मुनिभिःसर्वैर्मरीच्यत्रिपुरोगमैः । सह देवैर्धृतस्तेभ्यस्तच्छिष्याजगृहुश्चतम्

तच्छिष्यशिष्यैस्तत्पुत्रैस्तत्पुत्रैश्च क्रमागतैः ।

धृतो रुद्रात्मकःसोऽयं वेदसारः प्रमादितः ॥ १६ ॥

एष एव परोमन्त्र एष एव परन्तपः । रुद्राध्यायजपः पुंसां परं कैवल्यसाधनम् ॥
महापातकिनःप्रोक्ताउपपातकिनश्चये । रुद्राध्यायजपात्सद्यस्तेऽपियान्तिपराङ्गतिम्
भूयोपिब्रह्मणासृष्टाःसदसन्मिश्रयोनयः । देवतिर्यङ्मनुष्याद्यास्ततःसम्पूरितञ्जगत्

तेषा कर्माणि सृष्टानि स्वजन्मानुगुणानि च ।

लोकास्तेषु प्रवर्तन्ते भुञ्जते चैव तत्फलम् ॥ २३ ॥

लोकसृष्टिप्रवाहार्थं स्वयमेव प्रजापतिः । धर्माधर्मौ ससर्जाग्रे स्ववक्षः पृष्ठभागतः
धर्ममेवानुतिष्ठन्तः पुण्यं विन्दति तत्फलम् । अधर्ममनुतिष्ठन्तस्ते पापफलभोगिनः
पुण्यकर्मफलं स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः । तयोर्द्वावधिपौ धात्राकृतौ शतमखान्तकौ
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदमानादयः परे । अधर्मस्य सुता आसन्सर्वे नरकनायकाः
गुरुतल्पः सुरापानंतथान्यःपुल्कसीगमः । कामस्यतनया ह्येते प्रधानाःपरिकीर्त्तिताः
क्रोधात्पितृवधोजातस्तथामातृवधःपरः । ब्रह्महत्याच कन्यैका क्रोधस्यतनयाअमी
देवस्वहरणश्चैव ब्रह्मस्वहरणस्तथा । स्वर्णस्तेय इतित्वेते लोभस्य तनयाःस्मृताः
एतानाहूय चाण्डालान्यमः पातकनायकान् । नरकस्य विवृद्ध्यर्थमाधिपत्यञ्चकारह
ते यमेन समादिष्टा नवपातकनायकाः । ते सर्वे सङ्गता भूयो घोराः पातकनायकाः
नरकान्पालयामासुःस्वभृत्यैश्चोपपातकैः । रुद्राध्यायेभुविप्राप्तेसाक्षात्कैवल्यसाधने
भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे तेऽमीपातकनायकाः । यमं विज्ञापयामासुः सहान्यैरुपपातकैः
जयदेव!महाराजवयं हि तवकिङ्कराः । नरकस्य विवृद्ध्यर्थं साधिकाराःकृतास्त्वया

अधुना वर्तितुं लोके न सक्ताः स्मो वयं प्रभो !।

रुद्राध्यायानुभावेन निर्दग्धाश्चैव विद्रुताः ॥ ३६ ॥
ग्रामेग्रामे नदीकूले पुण्येष्वायतनेषु च । रुद्रजाप्ये तु पर्याप्ते कथं लोके चरेमहि ॥
प्रायश्चित्तसहस्त्रं वै गणयामो न किञ्चन । रुद्रजाप्याक्षराण्येव सोढुं बत न शक्नुमः
महापातकमुख्यानामस्माकंलोकघातिनाम् । रुद्रजाप्यं भयंघोरं रुद्रजाप्यंमहद्विषम्
अतो दुर्विषहं घोरमस्माकं व्यसनं महत् । रुद्रजाप्येन सम्प्राप्तमपनेतुं त्वमर्हसि ॥
इति विज्ञापितःसाक्षाद्यमःपातकनायकैः । ब्रह्मणोऽन्तिकमासाद्यतस्मैसर्वंन्यवेदयत्
देवदेव! जगन्नाथ त्वामेव शरणंगतः । त्वया नियुक्तो मर्त्यानानिग्रहे पापकारिणाम्
अधुना पापिनो मर्त्या न सन्ति पृथिवीतले ।
रुद्राध्यायेन निहतं पातकाना महत्कुलम् ॥ ४३ ॥
पातकाना कुलेनष्टे नरकाः शून्यतांगताः । नरकेशून्यतांयाते मम राज्यंहिनिष्फलम्
तस्मात्त्वयैवभगवान्नुपायःपरिचिन्त्यताम्। यथामेनविहन्येतस्वामित्वंमर्त्यदेहिनाम्
इति विज्ञापितो धाता यमेन परिखिद्यता । रुद्रजाप्यविघातार्थमुपायं पर्यकल्पयन्
अश्रद्धाश्चैव दुर्मेधामविद्यायाःसुतेउभे । श्रद्धामेधाविघातिन्यौ मर्त्येषुपर्यचोदयन्
ताभ्यां विमोहिते लोके रुद्राध्यायपराङ्मुखे ।
यमःस्वस्थानमासाद्य कृतार्थ इव सोऽभवत् ॥ ४८ ॥
पूर्वजन्मकृतैपापैर्जायन्तेऽल्पायुषो जनाः । तानिपापानिनश्यन्ति रुद्रं जपवतानृणाम्
क्षीणेषु सर्वपापेषु दीर्घमायुर्बलं धृतिः । आरोग्यं ज्ञानमैश्वर्यं वर्धते सर्वदेहिनाम् ॥
रुद्राध्यायेन येदेवंस्नापयन्ति महेश्वरम् । कुर्वन्तस्तज्जलं स्नानं ते मृत्युं सन्तरन्ति च
रुद्राध्यायाभिजप्तेनस्नानंकुर्वन्तियेऽम्भसा । तेषा मृत्युभयंनास्ति शिवलोकेमहीयते
शतरुद्राभिषेकेण शतायुर्जायते नरः । अशेषपापनिर्मुक्तः शिवस्य दयितो भवेत् ॥
एष रुद्रायुतस्नानं करोतु तव पुत्रक । दशवर्षसहस्राणि मोदते भुवि शक्रवत् ॥
अव्याहतबलैश्वर्यो हतशत्रुर्निरामयः । निर्धूताखिलपापौघःशास्ता राज्यमकण्टकम्
विप्रा वेदविदःशान्ताः कृतिनःशंसितव्रताः । ज्ञानयज्ञतपोनिष्ठाः शिवभक्तिपरायणाः
रुद्राध्यायजपं सम्यक्कुर्वन्तु विमलाशयाः ।

तेषां अपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति ॥ ५७ ॥
इत्युक्तवन्तं नृपतिर्महामुनिं तमेव वव्रे प्रथमं क्रियागुरुम् ।
अथाऽपरांस्त्यक्तधनाशयान्मुनीनावाहयामास सहस्रशः क्षणात् ॥ ५८ ॥
ते विप्राःशान्तमनसःसहस्रपरिसम्मिताः । कलशानांशतंस्थाप्य पुण्यवृक्षरसैयु तम्
रुद्राध्यायेन संस्नाप्यतमुर्वीपतिपुत्रकम् । विधिवत्स्नापयामासुःसम्प्राप्ते सप्तमे दिने
स्नाप्यमानो मुनिजनैःस राजन्यकुमारकः । अकस्मादेवसन्त्रस्तःक्षणंमूर्च्छामवाप ह
सहसैव प्रबुद्धोऽसौमुनिभिःकृतरक्षणः । प्रोवाच कश्चित्पुरुषोदण्डहस्तःसमागतः
मां प्रहर्तुं कृतमतिर्भीमदण्डो भयानकः । सोऽपि चान्यैर्महावीरैः पुरुषैरभिताडितः
बद्ध्वा पाशेन महता दूरं नीत इवाभवत् । एतावदहमद्राक्षं भवद्भिः कृतरक्षणः ॥
इत्युक्तवन्तं नृपतेस्तनजं द्विजसत्तमाः । आशीर्भिः पूजयामासुर्भयं राज्ञे न्यवेदयन्
अथ सर्वान्नृपश्चक्रेष्टान्दक्षिणाभिर्नृपोत्तमः ।
पूजयित्वा वरान्नेन भोजयित्वा च भक्तितः ॥ ६६ ॥
प्रतिगृह्याऽऽशिषस्तेषां मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
भक्त्या बन्धुजनैः सार्धं सभायां समुपाविशत् ॥ ६७ ॥
तस्मिन्समागते वीरे मुनिभिःसह पार्थिवे । आजगाममहायोगीदेवर्षिर्नारदःस्वयम्
तमागतं प्रेक्ष्य गुरुं मुनीनां सार्धं सदस्यैरखिलैर्मुनीन्द्रैः ।
प्रणम्य भक्त्या विनिवेश्य पीठे कृतोपचारं नृपतिर्बभाषे ॥ ६८ ॥

राजोवाच

दृष्टं किमस्ति ते ब्रह्मंस्त्रिलोक्यां किञ्चिदद्भुतम् ।
तन्नो ब्रूहि वयं सर्वे त्वद्वाक्यामृतलालसाः ॥ ७० ॥

नारद उवाच

अद्यचित्रं महद्दृष्टं व्योम्नोऽवतरतामया । तच्छृणुष्व महाराज ! सहैभिर्मुनिपुङ्गवैः
अद्य मृत्युरिहायातो निहन्तुं तवपुत्रकम् । दण्डहस्तोदुराधर्षो लोकमुद्बाधयन्सदा
ईश्वरोऽपि विदित्वैनं त्वत्पुत्रं हन्तुमागतम् । सहैवपार्षदैःकश्चिद्वीरभद्रमचोदयत्

स आगत्यहठान्मृत्युं त्वपुत्रं हन्तुमागतम् । गृहीत्वासुदृढंबद्ध्वादण्डेनाभ्यहनद्रुषा
तं नीयमानं जगदीशसन्निधिं शीघ्रं विदित्वा भगवान्यमः स्वयम् ।
कृताञ्जलिर्देव जयेत्युदीरयन्प्रणम्य मूर्ध्ना निजगाद शूलिनम् ॥ ७५ ॥

यम उवाच

देवदेव! महारुद्र! वीरभद्र! नमोऽस्तुते । निरागसिकथंमृत्यौकोपस्तव समुत्थितः
निजकर्मानुबन्धेन राजपुत्रं गतायुषम् । प्रहर्तुमुद्यते मृत्यौ कोऽपराधोवद प्रभो !॥

वीरभद्र उवाच

दशवर्षसहस्रायुः स राजतनयः कथम् । विपत्तिमन्तरायाति रुद्रस्नानहताशुभः ॥
अस्ति चेत्तव सन्देहो मद्वाक्येऽप्यनिवारिते ।
चित्रगुप्तं समाहूय प्रष्टव्योऽद्यैव मा चिरम् ॥ ७६ ॥

नारद उवाच

अथाहूतश्चित्रगुप्तो यमेनसहसागतः । आयुः प्रमाणं त्वत्सूनोः परिपृष्टः स चाब्रवीत्
द्वादशाब्दंचतस्यायुरित्युक्त्वाथविमृश्यच । पुनर्लेख्यगतंप्राह स वर्षायुतजीवितम्
अथभीतोयमोराजावीरभद्रं प्रणम्य च । कथञ्चिन्मोचयामास मृत्युं दुर्वारबन्धनात्
वीरभद्रेणमुक्तोऽथयमोऽगान्निजमन्दिरम् । वीरभद्रश्च कैलासमहं प्राप्तस्तवान्तिकम्
अतस्तवकुमारोऽयंरुद्रजाप्यानुभावतः । मृत्योर्भयं समुत्तीर्य सुखीजातोऽयुतंसमाः
इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य नारदे त्रिदिवंगते ।
विप्राः सर्वे प्रमुदिताः स्वं स्वं जग्मुरथाश्रमम् ॥ ८५ ॥
इत्थं काश्मीरनृपतीरुद्राध्यायप्रभावतः । निस्तीर्याशेषदुःखानि कृतार्थोभूत्सपुत्रकः
ये कीर्तयन्ति मनुजाः परमेश्वरस्य माहात्म्यमेतदथ कर्णपुटैः पिबन्ति ।
ते जन्मकोटिकृतपापगणैर्विमुक्ताः शान्ताः प्रयान्ति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥८७
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
राजपुत्रस्यमृत्युनिवारणायरुद्राध्यायमहिमवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

# द्वाविंशोऽध्यायः

## पुराणश्रवणमहिमवर्णनम

सूत उवाच

एव शिवतम पन्था शिवेनैव प्रदर्शित । नृणा ससृतिबद्धाना सद्यो मुक्तिकर पर
अथ दुर्मेधसा पु सा ऽेदेष्वनधिकारिणाम् ।
स्त्रीणा द्विजातिबन्धूना सर्वेषा च शरीरिणाम् ॥ २ ॥
एष साधारण पन्था साक्षात्कैवल्यसाधन । महामुनिजनै सेव्योदेवरपिसुपूजित
यत्कथाश्रवण शम्भो ससारभयनाशनम् । सद्योमुक्तिकरश्लाघ्य पवित्रसर्वदेहिनाम्
अज्ञानतिमिरान्धानादीपोऽयज्ञानसिद्धिद । भवरोगनिबद्धानासुसेव्यपरमौषधम्
महापातकशैलाना वज्रघातसुदारुणम् । भजन कर्मबीजाना साधन सर्वसम्पदाम्
येशृण्वन्तिसदाशम्भो कथाभुवनपावनीम् । ते वैमनुष्यालोकेस्मिन्रुद्राएवनसशय
शृण्वता शूलिनो गाथा तथा कीर्तयता सताम् ।
तेषा पादरजास्येव तीर्थानि मुनयो जगु ॥ ८ ॥
तस्मान्नि श्रेयस गन्तु येऽभिवाञ्छन्ति देहिन ।
ते शृण्वन्तु सदा भक्त्या शैवी पौराणिकी कथाम् ॥ ६ ॥
यद्यशक्त सदाश्रोतु कथापौराणकी नर । मुहूर्त वापिशृणुयान्नियतात्मा दिनेदिने
अथ प्रतिदिन श्रोतुमशक्तो यदिमानव । पुण्यमासेषु वा पुण्येदिनेपुण्यतिथिष्वपि
य. शृणोति कथा रम्या पुराण समुदीरिताम् ।
स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥ १२ ॥
मुहूर्तंवातदर्धंवाक्षणंवापावनींकथाम् । येशृण्वन्तिसदाभक्त्यानतेषामस्तिदुर्गति.
यत्फलंसर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फल विन्दते नर ॥१४
कलौयुगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते । नास्तिधर्म पर पु सा नास्तिमुक्तिपथ पर.

पुराणश्रवणाच्छम्भोर्नास्ति संकीर्तनं परम् ।
अत एव मनुष्याणां कल्पद्रुममहाफलम् ॥ १६ ॥
कलौ हीनायुषो मर्त्या दुर्बलाः श्रमपीडिताः ।
दुर्मेधसो दुःखभाजो धर्माचारविवर्जिताः ॥ १७ ॥
इति सञ्चिन्त्यकृपया भगवान्बादरायणः । हितायतेषांविदधे पुराणाख्यं सुधारसम्
पिबन्नेवामृतं यत्नादेनतस्यादजरामरः । शम्भोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम्
बालो युवा दरिद्रो वा वृद्धो वा दुर्बलोऽपि वा ।
पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ २० ॥
नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन । यस्यवक्त्राम्बुजाद्वाणीकामधेनुःशरीरिणाम्
गुरवः सन्ति लोकेषु जन्मतो गुणतस्तथा । तेषामपिच सर्वेषा पुराणज्ञः परो गुरुः
भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वाऽवसीदति ।
यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ २३ ॥
पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तो विजितमत्सरः ।
साधुः कारुण्यवान्वाग्मी वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २४ ॥
व्यासासनं समारूढोयदापौराणिकोद्विजः । असमाप्तप्रसङ्गश्चनमस्कुर्यान्नकस्यचित्
येधूर्तायेचदुर्वृत्तायेचान्ये विजिगीषवः । तेषांकुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत्कथाम् ॥
नदुर्जनसमाकीर्णे नशूद्रश्वापदावृते । देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २७
सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्र देवतालये । पुण्येनदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥
शिवभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ २९ ॥
अभक्ता ये कथा पुण्या शृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ ३० ॥
पुराणंयेत्वसम्पूज्यताम्बूलाद्यैरुपायनैः । शृण्वन्तिचकथांभक्त्यादरिद्राःस्युर्नपापिनः
कथाया कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ।

भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ३२ ॥
सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ।
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ३३ ॥
ताम्बूलंभक्षयन्तोयेकथांशृण्वन्तिपावनीम् । स्वविष्ठांखादयन्त्येतान्नरकेयमकिङ्कराः
येचतुङ्गासनारूढाःकथांशृण्वन्तिदाम्भिकाः।अक्षयान्नरकान्भुक्त्वातेभवन्त्येववायसाः
ये चवीरासनारूढायेच मञ्चकसंस्थिताः । शृण्वन्तिसत्कथांतेवैभवन्त्यर्जुनपादपाः
असम्प्रणम्यशृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिते । कथांशयानाःशृण्वन्तो भवन्त्यजगरानराः
यः शृणोतिकथांवक्तुः समानासनमाश्रितः । गुरुतल्पसमंपापंसम्प्राप्य नरकंव्रजेत्
ये निन्दन्ति पुराणज्ञं कथां वा पापहारिणीम् ।
ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाःसम्भवन्ति च ॥ ३९ ॥
कथायां वर्तमानायांये वदन्ति नराधमाः । ते गर्दभाःप्रजायन्तेकृकलासास्ततःपरम्
कदाचिदपियेपुण्यांनशृण्वन्तिकथांनराः । तेभुक्त्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकराः
ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानांनरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपितेयान्तिशाश्वतंपरमंपदम्
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ।
कोट्यब्दान्नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ४३ ॥
ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ।
कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥ ४४ ॥
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाजिनवासांसिमञ्चंफलकमेव च
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ४६ ॥
पुराणज्ञस्य यच्छन्ति ये सूत्रवसनंनवम् । भोगिनोज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्ति भवे भवे
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्चये । पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥४८
अत्रवक्ष्ये महापुण्यमितिहासं द्विजोत्तमाः । शृण्वतांसर्वपापघ्नंविचित्रंसुमनोहरम्
दक्षिणापथमध्येवै ग्रामोबाष्कलसञ्ज्ञितः । तत्रसन्तिजनाः सर्वैमूढाःकर्मविवर्जिताः

न तत्र ब्राह्मणाचाराः श्रुतिस्मृतिपराङ्मुखाः ।
जपस्वाध्यायरहिताः परस्त्रीविषयातुराः ॥ ५१ ॥
कृषीवलाःशस्त्रधरा निर्देवाजिह्मवृत्तयः । न जानन्ति परं धर्मं ज्ञानवैराग्यलक्षणम् ॥
स्त्रियश्च पापनिरताः स्वैरिण्यः कामलालसाः ।
दुर्बुद्धयः कुटिलगाः सद्व्रताचारवर्जिताः ॥ ५३ ॥
तत्रैको विदुरोनाम दुरात्माब्राह्मणाधमः । आसीद्वेश्यापतिर्योसौसदारोपिकुमार्गगः
स्वपत्नींबन्दुलांनाम हित्वाप्रतिनिशं तथा । वेश्याभवनमासाद्यरम ते स्मरपीडितः
सापितस्याङ्गनारात्रौ वियुक्ता नवयौवना । असहन्तीस्मरावेशं रेमेजारेण सङ्गता ॥
ता कदाचिद्दुराचारांजारेणसहसङ्गताम् । दृष्टानस्याःपतिःक्रोधादभिदुद्रावसत्वरः
जारे पलायिते पत्नीं गृहीत्वा स दुराशयः । सन्ताड्य मुष्टिबन्धेन मुहुर्मुहुरताडयत्
सा नारी पीडिता भर्त्राकुपिता प्राह निर्भया । भवान्प्रतिनिशंवेश्यारमतेकामतर्मम
अहंरूपवती योषा नवयौवनशालिनी । कथं सहिष्ये कामार्ता तव सङ्गविवर्जिता॥
इत्युक्तः स तया तन्व्याप्रोवाच ब्राह्मणाधमः ।
युक्तमेव त्वयोक्तं हि तस्माद्वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६१ ॥
जारेभ्यो धनमाकृष्यतेभ्योदेहिपरारतिम् । तद्धनंदेहिमेसर्वंपण्यस्त्रीणाददामितत्
एवं सम्पूर्यते कामो ममापिच वरानने । तथेतिभर्तृवचनंप्रतिजग्राह सा वधूः ॥ ६३
एवं तयोस्तु दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः । कालेन निधनं प्राप्तः स विप्रोवृषलीपतिः
मृते भर्तरि सा नारी पुत्रैः सहनिजालये । उवाससुचिरंकालंकिञ्चिदुत्क्रान्तयौवना
एकदा दैवयोगेन सम्प्राप्ते पुण्यपर्वणि । सा नारीबन्धुभिःसार्द्धं गोकर्णं क्षेत्रमाययौ
तत्र तीर्थजले स्नात्वा कस्मिंश्चिद्देवतालये ।
शुश्राव देवमुख्याना पुण्यां पौराणिकी कथाम् ॥ ६७ ॥
योषितां जारसक्तानां नरके यमकिङ्कराः । सन्तप्तलोहपरिघं क्षिपन्ति स्मरमन्दिरे
इति पौराणिकेनोक्तांसाश्रुत्वा धर्मसंहिताम् । तमुवाचरहस्येषाभीताब्राह्मणपुङ्गवम्
ब्रह्मन्पापमजानन्त्या मयाचरितमुल्बणम् । यौवने कामचारेण कौटिल्येन प्रवर्तितम्

इदं त्वद्वचनं श्रुत्वा पुराणार्थविजृम्भितम् । भीतिर्मे महती जाता शरीरं वेपतेमुहुः
धिङ् मां दुरिन्द्रियासक्तां पापां स्मरविमोहिताम् ।
अल्पस्य यत्सुखस्यार्थे घोरां यास्यामि दुर्गतिम् ॥ ७२ ॥
कथं पश्यामि मरणे यमदूतान्भयङ्करान् । कथं पाशैर्बलात्कण्ठे बध्यमाना धृतिं लभे
कथं सहिष्ये नरके खण्डशोदेहकृन्तनम् । पुनः कथं पतिष्यामि सन्तप्ता क्षारकर्दमे
कथं च योनिलक्षेषुक्रिमिकीटखगादिषु । परिभ्रमामिदुःखौघात्पीड्यमानानिरन्तरम्
कथं च रोचते मह्यमन्नप्रभृति भोजनम् । रात्रौ कथंवसेविष्ये निद्रां दुःखपरिप्लुता
हाहाहतास्मिदग्धास्मिविदीर्णहृदयास्मिच । हाविधे!मांमहापापेदत्त्वाबुद्धिमपातयः
पततस्तुङ्गशैलाग्राच्छूलाक्रान्तस्य देहिनः ।
यद्दुःखं जायते घोरं तस्मान्कोटिगुणं मम ॥ ७८ ॥
अश्वमेधायुत कृत्वा गङ्गास्नात्वाशतंसमाः । न शुद्धिर्जायते प्रायोमत्पापस्यगरीयसः
किंकरोमिक्वगच्छामि कंवाशरणमाश्रये । को वा मां त्रायते लोकेपतन्तीं नरकार्णवे
त्वमेवमेगुरुर्ब्रह्मंस्त्वंमातात्वंपितासि च । उद्धरोद्धरमां दीना त्वामेव शरणं गताम्
इति ता जातनिर्वेदा पतितां चरणद्वये । उत्थाप्य कृपया धीमान्बभाषे द्विजपुङ्गवः

ब्राह्मण उवाच

दिष्ट्याकालेप्रबुद्धासिश्रुत्वेमामहतीकथाम् । माभैर्गीस्तववक्ष्यामिगतिचैवसुखावहाम्
सत्कथाश्रवणादेव जाता ते मतिरीदृशी । इन्द्रियार्थेषु वैराग्यंपश्चात्तापो महानभूत्
पश्चात्तापो हि सर्वेषामघानां निष्कृतिः परा । तेनैव कुरुते सद्यःप्रायश्चित्तं सुधीर्नरः
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि कृत्वा च विधिवत्पुनः ।
अपश्चात्तापिनो मर्त्या न यान्ति गतिमुत्तमाम् ॥ ८६ ॥
सत्कथाश्रवणान्नित्यंसंयातिपरमाङ्गतिम् । पुण्यक्षेत्रनिवासाच्चचित्तशुद्धिःप्रजायते
यथा सत्कथयानित्यंसंयातिपरमांगतिम् । तथान्यैः सद्व्रतैर्जन्तोर्नभवेन्मतिरुत्तमा
यथामुहुःशोध्यमानोदर्पणोनिर्मलोभवेत् । तयासत्कथयाचेतो विशुद्धिं परमां व्रजेत्
विशुद्धे चेतसि नृणां ध्यानं सिध्यत्युमापतेः ।

ध्यानेन सर्वं मलिनं मनोवाक्कायसम्भृतम् ॥ ९० ॥
सद्यो विधूय कृतिनो यान्ति शम्भोः परं पदम् ।
अतः सन्न्यस्तपुण्यानां सत्कथासाधनं परम् ॥ ९१ ॥
कथया सिध्यति ध्यानं ध्यानात्कैवल्यमुत्तमम् ।
असिद्धपरमध्यानः कथामेतां शृणोति यः ।
सोऽन्यजन्मनि सम्प्राप्य ध्यानं याति परां गतिम् ॥ ९२ ॥
नामोच्चारणमात्रेणजप्त्वामन्त्रमजामिलः । पश्चात्तापसमायुक्तस्त्ववापपरमांगतिम्
सर्वेषां श्रेयसाम्बीजं सत्कथाश्रवणंनृणाम् ।यस्तद्विहीनःसपशुःकथंमुच्येतबन्धनात्
अतस्त्वमपिसर्वेभ्योविषयेभ्योनिवृत्तधीः । भक्तिं परांसमाश्रायसत्कथांशृणुसर्वदा
शृण्वन्त्याः सत्कथा नित्यं चेतस्ते शुद्धिमेष्यति ॥ ९५ ॥
तेनध्यायसिविश्वेशंततोमुक्तिमवाप्स्यसि । ध्यायतःशिवपादाब्जंमुक्तिरेकेनजन्मना
भविष्यति न सन्देहःसत्यंसत्यंवदाम्यहम् । इत्युक्तातेनविप्रेणसानारीबाष्पसङ्कुला
पतित्वा पादयोस्तस्य कृतार्थाऽस्मीत्यभाषत ।
तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ॥ ९८ ॥
शुश्राव सत्कथा साध्वी कैवल्यफलदायिनीम् ।
स उवाच द्विजस्तस्यै कथा वैराग्यबृंहिताम् ॥ ९९ ॥
यां श्रुत्वामनुजःसद्यस्त्यजेद्विषयवासनाम् । तस्याश्चित्तंयथाशुद्धंवैराग्यरसगंयथा
तथोवाच द्विजः शैवी कथां भक्तिसमन्विताम् ।
यथायथा मनस्तस्याः प्रसादमभिगच्छति ।
तथातथा शनैः शम्भोर्ध्यानयोगमुपादिशत् ॥ १०१ ॥
शनैः शनैर्ध्वस्तरजस्तमोमलं विमुक्तसर्वेन्द्रियभोगविग्रहम् ।
विशुद्धतत्त्वं हृदयं द्विजस्त्रिया विवेश विश्वेश्वररूपचिन्तनम् ॥ १०२ ॥
इत्थं सद्गुरुमाश्रित्यसानारीप्राप्तसन्मतिः । दध्यौ मुहुर्मुहुःशम्भोश्चिदानन्दमयंवपुः
नित्यं तीर्थजलेस्नात्वाजटावल्कलधारिणी । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गीरुद्राक्षकृतभूषणा

शिवनामजपासक्तावाग्यतामितभोजना । बद्धपद्मासनाऽव्यग्रासत्कथाश्रवणोत्सुका
गुरुशुश्रूषणरता त्यक्तापत्यसुहृज्जना । गुरूपदिष्टयोगेन शिवमेवमतोषयत् ॥ ६ ॥

विश्वेश! विश्वविलयस्थितिजन्महेतो! विश्वैकवन्द्य! शिव! शाश्वतविश्वरूप !
विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास! श्रीमन्महेश! मयि धेहि कृपाकटाक्षम् ॥७॥
शम्भो! शशाङ्ककृतशेखर ! शान्तमूर्ते! गङ्गाधरामरवरार्चितपादपद्म ।
नागेन्द्रभूषण! नगेन्द्रनिकेतनेश! भक्तार्तिहन्मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ८ ॥
श्रीविश्वनाथ! करुणाकर! शूलपाणे ! भूतेश! भर्ग भुवनत्रयगीतकीर्ते !।
श्रीनीलकण्ठ! मदनान्तक! विश्वमूर्ते! गौरीपते! मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥

इत्थं प्रतिदिनं भक्त्या प्रार्थयन्ती महेश्वरम् ।
शृण्वन्ती सत्कथां सम्यक्कर्मबन्धं समाच्छिनत् ॥ ११० ॥

अथ कालेन सा नारी समुत्सृज्यकलेवरम् । महेशानुचरैर्नीतासम्प्राप्ताशिवमन्दिरम्
तत्र देवैर्महादेवं सेव्यमानं सहोमया । गणेशनन्दिभृङ्ग्याद्यैर्वीरभद्रेश्वरादिभिः ॥
उपास्यमानं गौरीशं कोटिसूर्यसमप्रभम् । त्रिलोचनं पञ्चमुखं नीलग्रीवं सदाशिवम्
वामाङ्के बिभ्रतं गौरींविद्युच्चन्द्रसमप्रभाम् । दृष्ट्वाससम्भ्रमं नारीसाप्रणम्यपुनःपुनः
आनन्दाश्रुजलोत्सिक्ता रोमहर्षसमाकुला । सम्मानिताकरुणया पार्वत्याशङ्करेण च
तस्मिल्लोके परानन्दघनज्योतिषि शाश्वते । लब्ध्वानिवासमचलं लेभेसुखमनाहतम्
सा कदाचिदुमां देवीमुपसृत्यप्रणम्यच । पर्यपृच्छत मे भर्त्ता कां गतिं गतवानिति
तामुवाचमहादेवीसतेभर्त्ता दुराशयः । भुक्त्वा नरकदुःखानिविन्ध्येजातःपिशाचकः
पुनः पप्रच्छसानारी देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् । केनोपायेन मे भर्त्ता सद्गतिंप्राप्नुयादिति

देव्युवाच

सोऽस्मत्कथां कदाचिच्छृणुयाद्यदि । निस्तीर्य दुर्गतिं सर्वामिमं लोकम्प्रयास्यति
इति गौर्यावचःश्रुत्वासानारीविहिताञ्जलिः । प्रार्थयामासतांदेवीं भर्तुःपापविशोधने
तया मुहुः प्रार्थ्यमाना पार्वती करुणायुता । तुम्बुरुं नाम गन्धर्वमाहूयेदमथाब्रवीत् ॥

तुम्बुरो! गच्छ भद्रं ते विन्ध्यशैलं सहानया ।
आस्ते पिशाचकस्तत्र योऽस्याः पतिरसन्मतिः ॥ १२३ ॥

तस्याग्रे परमां पुण्यां कथामस्मद्गुणैर्युताम् ।
आख्याय दुर्गतेर्मुक्तं तमानय शिवान्तिकम् ॥ १२४ ॥

इतिदेव्यासमादिष्टस्तुम्बुरुस्तां प्रणम्यच । तयासहविमानेनविन्ध्याद्रिं सहसाययौ
तत्रापश्यन्महाकायं स्कनेत्रं महाहनुम् । प्रहसन्तं रुदन्तं च वलान्तञ्च पिशाचकम्
बलाद्गृहीत्वा तंपाशैर्बद्धावैसंनिवेश्यच । तुम्बुरुर्वल्लकीहस्तोजगौ गौरीपतेःकथाम्
सपिशाचोमहापुण्यां कथांश्रुत्वापुरद्विषः । विधूयकलुषंसर्वंसमाहात्प्रापसंस्मृतिम्
सपैशाचंवपुस्त्यक्त्वास्वरूपं दिव्यमाप्यच । जगौस्वयमपि श्रीमच्चरितं पार्वतीपतेः
विमानमारुह्य स दिव्यरूपधृक्सः तुम्बुरुः पार्श्वगतः स्वकान्तया ।
गायन्महेशस्य गुणान्मनोरमाञ्जगाम कैवल्यपदं सनातनम् ॥ १३० ॥

सूत उवाच

इत्येतत्कथितं पुण्यमाख्यानं दुरितापहम् । महेश्वरप्रीतिकरं निर्मलज्ञानसाधनम् ॥
यइदंशृणुयान्मर्त्यः कीर्तयेद्वा समाहितः । शम्भोर्गुणानुकथनं विचित्रं पापनाशनम्
परमानन्दजनकं भवरोगमहौषधम् । भुक्त्वेह विविधान्भोगान्मुक्तोयातिपरांगतिम्

सूत उवाच

यूयं खलु महाभागाः कृतार्था मुनिसत्तमाः । ये सेवन्ते सदाशम्भोःकथामृतरसंनवम्
ते जन्मभाजः खलु जीवलोके येषां मनो ध्यायति विश्वनाथम् ।
वाणी गुणान्स्तौति कथा शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति ॥ १३५ ॥
विविधगुणविभेदैर्नित्यमस्पृष्टरूपं जगति च बहिरन्तर्भा समानं महिम्ना ।
स्वमहसि विहरन्तं वाङ्मनोवृत्तिदूरं परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये ॥ १३६

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे
पुराणश्रवणमहिमवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

——:०:——

समाप्तमिदं ब्रह्मोत्तरखण्डं ब्रह्मखण्डश्च ॥